१९२४ में

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२४

(मई – अगस्त १९२४)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें ८ मई, १९२४ से १४ अगस्त, १९२४ तककी सामग्री संगृहीत है और उससे गांधीजीके उन प्रयत्नोंको समझनेमें मदद मिलती है जो उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनको पुनरानुशासित और उद्देश्यपूर्ण बनानेके लिए किये थे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनका यह प्रयत्न एक अवधितक सफल नहीं हुआ। मार्च १९२२ से फरवरी १९२४ तक वे जेलमें थे। इस बीच आन्दोलनकी धाराने दूसरा मार्ग पकड़ लिया और ऐसा लगा कि वह असहयोग कार्यक्रमके अपने सिद्धान्तोंसे च्युत हो गया है। कारावाससे छूटनेके बाद तीन महीनेतक गांधीजी बम्बईके पास जुहूमें रहे और वहाँ आराम करते हुए उन्होंने तात्कालिक प्रधान समस्याओं अर्थात् कौंसिल-प्रवेश और हिन्दू-मुस्लिम तनावको लेकर प्रमुख नेताओंसे बातचीत की। बातचीतके बाद अपना एक मत निर्धारित कर लेनेके पश्चात् मईके अन्तमें उन्होंने उसे अभिव्यक्ति दी। (देखिए "वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", पृष्ठ ११४-१७ और "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", पृष्ठ १३९-५९) इन लेखोंके प्रकाशनके बाद उन्होंने कांग्रेसको अधिकाधिक सुसंगठित और कारगर संस्था बनानेके विचारसे कुछ ठोस सुझाव पेश किये। अपने विचारोंको अभिव्यक्त करते हुए गांधीजीने इस बातकी पूरी कोशिश की कि प्रत्येक पक्षके साथ पूरा-पूरा न्याय हो। किन्तु जिस दृष्टिसे उन्होंने परिपूर्ण स्पष्टताका व्यवहार किया था, उसीके कारण देशके कुछ दलोंमें उसका विरोध होने लगा।

स्वराज्य दलसे गांधीजीका मूलभूत सैद्धान्तिक मतभेद था। उनके जेलमें रहते हुए स्वराज्य दलके प्रमुख नेताओं, श्री मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दासने कौंसिलोंमें प्रवेशके कार्यक्रमको अपना लिया था। यद्यपि दिल्ली और कोकोनाडा कांग्रेसके प्रस्ताव इसकी अनुमति देते थे, तथापि गांधीजीको ऐसा लगा कि उनका यह कार्य उस असहयोग कार्यक्रमके विपरीत है जिसे कांग्रेसने सन् १९२० में प्रमुख कार्यक्रमकी तरह स्वीकार किया था। असहयोगके कार्यक्रमका मंशा रचनात्मक गति-विधि अपनाकर तथा सत्य और अहिंसापर दृढ़ रहकर देशमें एक ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करनेका था जो अंग्रेजोंको सत्ता हस्तान्तरित करनेपर बाध्य कर दे। और स्वराज्यवादी दलकी अड़ंगा-नीतिसे सम्बन्धित कार्यक्रमका मंशा केवल इतना ही था कि वे कौंसिलोंमें जाकर सरकारपर दबाव डालें ताकि अन्ततोगत्वा आन्दोलनका लोकमत भारतके पक्षमें हो जाये और उसे स्वराज्य हासिल हो सके। किन्तु गांधीजी ऐसा मानते थे कि कौंसिलोंमें सरकारका विरोध करनेके कारण लोगोंका ध्यान बँटेगा और रचनात्मक कार्यक्रम तथा उसके द्वारा देशमें नवजीवन-संचार करनेके काममें बाधा उत्पन्न होगी। यद्यपि गांधीजी स्वराज्यवादी दलके कार्यक्रमका औचित्य नहीं देखते थे, तथा यथार्थवादी होनेके नाते उन्होंने इतना समझ लिया था कि चूँकि कौंसिल-प्रवेश किया ही

जा चुका है, स्वराज्यवादियोंके साथ कोई समझौता कर लिया जाना चाहिए और उस समझौतेके आधारपर कांग्रेसको परस्पर-विरोधी तत्त्वोंकी संस्था न होकर सम-तत्त्वोंकी संगठित संस्थाके रूपमें काम कर सकना चाहिए। इसलिए उन्होंने स्वराज्य दलके प्रति परिपूर्ण तटस्थताका रुख अपनाया और साथ ही यह कोशिश भी की कि कांग्रेसकी कार्यकारिणी सत्ता उन लोगोंके हाथमें रहे जो संस्थाकी सारी शक्ति और साधनोंका उपयोग रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेमें लगाना चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे जूनके अन्तमें अहमदाबादमें होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक-के लिए उन्होंने कुछ प्रस्तावोंको पेश करनेकी इच्छा जाहिर की। प्रस्तावोंका मंशा कांग्रेसकी प्रातिनिधिक और कार्यकारिणी समितियोंसे स्वराज्य दलके सदस्योंको हटाना ही था। गांधीजी इन समितियोंमें समान तत्त्वोंको ही दाखिल नहीं करना चाहते थे, वे यह भी चाहते थे कि रचनात्मक कार्यक्रमपर तेजीसे अमल किया जा सके। अतः उनके प्रस्तावोंका उद्देश्य "कथनी और करनीमें अभेद स्थापित करना था।" मुख्य प्रस्ताव यह था कि कांग्रेसका हरएक सदस्य जो संस्थाकी किसी प्रातिनिधिक अथवा कार्यकारिणी समितिके लिए चुने जानेका अधिकारी होना चाहता है, कमसे-कम नित्य आधा घंटा सूत काते और अखिल भारतीय खादी मण्डलको प्रतिमास निश्चित परिमाणमें ठीक और समान काता हुआ सूत भेजे। इस प्रकार कांग्रेसका हरएक कर्मठ सदस्य देशकी आर्थिक दुरवस्थाके साथ अपनी अभिन्नता सिद्ध कर सकेगा — एक जन-संगठन होनेके नाते कांग्रेसके सदस्योंसे कमसे-कम इतनी आशा तो की ही जानी चाहिए थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें उक्त प्रस्ताव किसी बड़े बहुमतसे तय नहीं हुए और जब गांधीजीने देखा कि स्वराज्यवादी दल, जो प्रस्तावका विरोध कर रहा था, पर्याप्त शक्तिशाली है तो उन्होंने स्वयं प्रस्तावका एक संशोधन पेश किया और उसके द्वारा सूत कातनेकी शर्तका पालन न करनेके प्रस्तावमें जो दण्ड सुझाया गया था, उसका उतना अंश रद कर दिया गया। अन्य प्रस्तावोंका भी प्रबल विरोध हुआ और स्वराज्यवादियोंके दृष्टिकोणकी रक्षाकी दृष्टिसे उनमें से दो प्रस्तावोंमें सुधार भी किये गये।

गांधीजीने बताया कि राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए उक्त प्रस्तावोंको उनकी शर्तें माना जाये। "इसलिए इन चार प्रस्तावोंको जनरलकी जगहके लिए मेरी दरखास्त ही समझिए। इसमें मेरी योग्यता और मर्यादाएँ दोनों आ जाती हैं।" (पृष्ठ २७४) यद्यपि प्रस्ताव पास हो गया, तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी कार्रवाईके दौरान जो-कुछ हुआ उसने गांधीजीको सोचनेपर बाध्य कर दिया। "यद्यपि मुझे अपने द्वारा प्रस्तुत किये गये चारों प्रस्तावोंपर बहुमत मिला, फिर भी मुझे यह स्वीकार करना ही होगा कि अपनी समझमें तो मेरी हार ही हुई है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी कार्रवाईने मेरी आँखें खोल दी हैं और अब मैं बड़ी आतुरताके साथ अपना हृदय टटोल रहा हूँ।" (पृष्ठ ३४१) गांधीजी इस विचारमें पड़ गये कि जो लोग उनके मूलभूत सिद्धान्तोंकी अवहेलना करते हैं, उनकी तरफ सहयोगका हाथ बढ़ाकर वे ठीक भी कर रहे हैं या नहीं। "मेरे दिलमें यह सवाल बराबर उठता रहा

कि क्या असत्यका परिणाम कभी सत्य भी हो सकता है? क्या मैं बुराईके साथ सहयोग नहीं कर रहा हूँ?" (पृष्ठ ३४६) उनकी इस स्वीकारोक्तिसे उनकी आन्तरिक पीड़ाको भली-भाँति समझा जा सकता था। "मेरे आँसू हर किसी बातपर नहीं निकल पड़ते। आँसू बहानेके मौकोंपर भी मैं आँसुओंको पी जानेकी कोशिश करता हूँ। परन्तु इस मौकेपर तो दिलको मजबूत बनानेका पूरा प्रयत्न करते हुए भी मेरे आँसू बह निकले।" (पृष्ठ ३४६) गांधीजीको दुःख इस बातका नहीं हुआ कि उनके प्रस्तावोंका विरोध हुआ बल्कि कार्रवाई जिस गैर-संजीदगीके साथ होती रही, उसपर उन्हें दुःख हुआ।

'गांधीजीको लगा कि वे हार गये है और उनका सिर झुक गया है, किन्तु फिर भी उन्होंने स्वराज्यवादी दलके साथ यदि सहयोग नही तो बिना परस्पर संघर्षके काम कर सकनेके किसी उपायको खोजनेकी पूरी कोशिश की। वे नहीं चाहते थे कि स्वराज्यवादी दलके लोग अपने विश्वासके बावजूद कौंसिलोंसे हट जायें अथवा लोकमतसे डरकर अपने विचार न रखें। ९ अगस्त, १९२४ के अपने पत्रमें उन्होंने मोतीलाल नेहरूको लिखा: "कांग्रेस आपके नियन्त्रणमें आ जाये, इसके लिए मैं आपका रास्ता सुगम बनाने, वास्तवमें उसमें आपको सहायता देनेके लिए तैयार हूँ। . . . आपके कार्यक्रममें शामिल होनेकी बातको छोड़कर आप और जो-कुछ चाहें, मैं करनेको तैयार हूँ।" (पृष्ठ ५४१-४२) १५ अगस्त, १९२४ के एक अन्य पत्रमें उन्होंने स्पष्ट किया: "मैं कौंसिलोंके कार्यक्रमके झमेलेमें अपनेको नही डालना चाहता।" (पृष्ठ ५८९) अगर वे क़ांग्रेसमें रहते हैं तो यह कार्यक्रम कांग्रेससे बाहर रहकर चलाया जाये और यदि स्वराज्यवादी दल कांग्रेसको अपने हाथमें ले ले, तो वे स्वयं लगभग कांग्रेससे हट जायेंगे। १९१५–१९१८ में उनकी जो स्थिति थी, वे उस स्थितिको स्वीकार करनेके लिए तैयार थे। और इसमें उनका मंशा स्वराज्यवादियोंको कमजोर बनानेका नहीं था, यहाँतक कि उन्हें परेशान करनेका भी नहीं था। (पृष्ठ ५८९-९०) उन्हें ऐसा लगता था कि जिन अपरिवर्तनवादियोंने अहमदाबादकी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके प्रति अपनी सैद्धान्तिक दृढ़ता प्रकट की थी, उनके और स्वराज्यवादियोंके बीच दिसम्बरमें होनेवाले कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें फिर झगड़ा होगा। "मै जितना ही सोचता हूँ, मेरी अन्तरात्मा बेलगाँवमें सत्ताके लिए होनेवाली रस्साकशीके खिलाफ उतना ही अधिक विद्रोह करती है।" (पृष्ठ ५८९) उन्होंने अपरिवर्तनवादियोंको यह बात समझानेकी बड़ी कोशिश की कि जहाँ-जहाँ आवश्यक हो, वे संस्थाकी कार्यकारिणी समितियाँ स्वराज्यवादियोंको सौंप दें और कांग्रेसको आन्तरिक झगड़ेसे बचायें। उन्होंने उन्हें सलाह दी कि वे स्वयं रचनात्मक कार्यक्रममें जुट जायें, विशेषतः खादी-उत्पादनके कार्यमें पृष्ठ ४७८-८०।

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के स्तम्भोंमें इस बीच गांधीजी अपने पाठकोंसे कातनेका आग्रह बराबर करते ही रहे और देशके विभिन्न भागोंमें खादी सम्बन्धी जो कार्य हो रहा था, उसकी विस्तृत जानकारी पेश करते रहे। उन्होंने सुझाव दिया, कैदियोंको दिन-भर कातनेका काम दिया जा सकता है। राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षकों

और विद्यार्थियोंके सामने भाषण देते हुए उन्होंने अनेक बार उनसे आग्रह किया कि वे अपना अधिकाधिक समय खादी-कार्यमें लगायें और यह भी सुझाया कि राष्ट्रीय स्कूलोंमें खादी अनिवार्य रूपसे दाखिल की जानी चाहिए। अहमदाबादकी राष्ट्रीय शालाके एक समारोहमें गांधीजीने राष्ट्रीय शिक्षा और उसके शिक्षकोंके कर्त्तव्यके बारेमें अपने विचार विशद रूपसे सामने रखे।

इस कालावधिमें हिन्दू-मुस्लिम तनावकी बातको लेकर गांधीजीके मनपर बड़ा बोझ रहा। सन् १९२१ में जब असहयोग आन्दोलन पूरे जोरपर था, ऐसा जान पड़ता था, मानो दोनों सम्प्रदायोंमें एकता बहुत जल्दी स्थापित हो जायेगी। किन्तु खलीफासे गद्दी छीन लिये जानेके बाद खिलाफत आन्दोलन ठंडा पड़ गया और उसके बाद गांधीजीके दो वर्षतक कारावासमें रहनेके बाद दोनों सम्प्रदायोंके बीच मनो-मालिन्य उत्पन्न हो गया। देशके अनेक भागोंमें दंगे भी हो गये। गांधीजीने "हिन्दू-मुस्लिम तनाव : कारण और उपचार" (पृष्ठ १३९-५९) नामक लेखमें इस प्रश्नका विश्लेषण किया है। जैसा कि उन्होंने कहा, स्थान-स्थानपर हुए दंगोंके पीछे स्थानीय परिस्थितियोंके अलावा देशमें हिंसाकी बढ़ती हुई मनोवृत्ति भी एक प्रबल कारण थी और यह मनोवृत्ति पैदा हुई थी असहयोग आन्दोलनके जमानेमें अहिंसाकी नीतिको अन्यमनस्क भावसे स्वीकार करनेके कारण। जिन नेताओंके मनमें साम्प्रदायिकताकी भावनाएँ अधिक थीं और अहिंसाके सिद्धान्तके प्रति पूरी निष्ठा नहीं थी, दोनों ही पक्षोंके ऐसे नेतागण सोचने लगे कि विश्वास और सहिष्णुतासे उनके सम्प्रदायको कोई लाभ नहीं होगा; लाभ होगा तो केवल अपनी शक्तिके बलपर। ५-६-१९२४ के 'यंग इंडिया' में उन्होंने "भारतीय देशभक्तों के सामने मौजूद सवालोंमें सबसे जबरदस्त" (पृष्ठ १९२) प्रश्नके विषयमें अपने विचार संक्षेपमें रखे। गांधीजीने दोनों ही पक्षोंसे सत्यको पहचाननेके लिए कहा और इस कारण दोनों ही दल उनसे नाराज हुए। गांधीजीने चाहा कि यदि स्वास्थ्य साथ दे तो वे दोनों सम्प्रदायोंमें एकता स्थापित करनेके विचारसे सारे देशका दौरा करें, किन्तु यह सम्भव नहीं हो सका। इस तरह जब उन्होंने देखा कि वे तत्कालीन वातावरणको सुधारनेमें असमर्थ हैं तो उन्होंने दिल्लीमें आत्मशुद्धिके विचारसे २१ दिनका उपवास किया।

त्रावणकोर रियासतके वाइकोम नामक स्थानमें किया गया सत्याग्रह यद्यपि एक स्थानीय समस्याको लेकर ही किया गया था, फिर भी गांधीजीने इसपर पर्याप्त ध्यान दिया। वहाँ मन्दिरको जानेवाली सार्वजनिक सड़कपर अछूतोंको चलनेका अधिकार नहीं था, इसे लेकर सुधारकोंने एक आन्दोलन शुरू कर दिया था। सत्याग्रहका मंशा गांधीजीके विचारोंके सर्वथा अनुकूल था, इसलिए उन्होंने उसे अपना नैतिक समर्थन दिया और दूर बैठकर ही सही, वे उसका मार्गदर्शन करते रहे। वे यह अवश्य चाहते थे कि उक्त सत्याग्रहका स्थानीय रूप बना रहे और केवल हिन्दू ही उसमें भाग लें। वे यह भी चाहते थे कि सत्याग्रहके आधारभूत सिद्धान्तोंका सख्तीसे पालन किया जाये, अर्थात् विरोधियोंके हृदय-परिवर्तनके लिए स्वयं कष्ट-सहनको स्वेच्छापूर्वक अपनाया जाये। उन्हें एकाध बार ऐसा भी लगा कि इस नजरियेसे देखनेपर वाइकोमका

सत्याग्रह "अपनी मर्यादाएँ भंग करने लगा है।" (पृष्ठ ८) और इसलिए उन्होंने सार्वजनिक रूपसे उसकी कुछ बातोंसे असहमति भी व्यक्त की। "भेंट : वाइकोम शिष्टमण्डलसे" (पृष्ठ ९३-९८) में इन समस्याओंपर थोड़े विस्तारसे विचार किया गया है। उन्होंने सुधारकोंसे धैर्य रखने और मध्यम मार्ग अपनानेकी अपील की और कहा कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो वे रियासत और दूसरी जगहोंके कट्टर हिन्दुओंकी सहानुभूति खो देंगे। इसी तरह गांधीजीने काठियावाड़के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंसे उक्त क्षेत्रकी भारतीय रियासतोंमें की जानेवाली राजनीतिक गतिविधियोंमें संयम बरतनेका आग्रह किया। उन्होंने समझाया कि रियासतोंमें जो बुराइयाँ व्याप्त हैं, वे अंग्रेजी शासन-पद्धतिका ही परिणाम हैं और रियासतोंकी प्रजा वहाँके राजाओंको अंग्रेज सरकारकी अधीनतासे मुक्त करनेका बोझ स्वयं अपने कन्धोंपर नहीं ले सकती। हाँ, स्वयं राजा ऐसा करे तो बात दूसरी है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतके स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए रियासतोंमें सत्याग्रह भी नहीं किया जाना चाहिए। (पृष्ठ २५३) काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्को उन्होंने सलाह दी कि वह राजा और प्रजाके सम्बन्ध सुधारनेके अपने प्रयत्नोंको ही बढ़ाये और अपने-अपने क्षेत्रकी आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक उन्नति करनेकी दिशामें जुटे। भारतीय रियासतोंके प्रति अन्ततक गांधीजीका यही रुख रहा।

खण्डकी संगृहीत सामग्रीमें "मेरे जेलके अनुभव" शीर्षक लेखमाला अपना विशिष्ट स्थान रखती है। गांधीजीने इसमें जेलकी कुछ प्रमुख समस्याएँ, जैसे कैदियोंका वैज्ञानिक वर्गीकरण तथा जेलोंको आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर बनानेकी समस्याओंपर भी विचार किया। उन्होंने कहा कि वर्गीकरण आर्थिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे न किया जाकर मानवीय दृष्टिसे किया जाना चाहिए; तथा यदि कैदियोंसे ठीक काम लिया जा सके तो जेलोंको आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। मूलशीपेटाके कैदियों और जेलके अधिकारियोंके बीच संघर्षमें जिन परिस्थितियोंमें उन्हे हस्तक्षेप करना पड़ा था, गांधीजीने इन लेखोंमें उसपर भी थोड़ा प्रकाश डाला है। गांधीजी चाहते थे कि सरकार उन्हें उक्त कैदियोंसे मिलने दे ताकि वे जेलके नियमोंके विषयमें सत्याग्रही कैदी होनेके नाते उन्हें रुख बदलनेके विषयमें समझा सकें। इस विषयको लेकर परिस्थितिमें काफ़ी उतार-चढ़ाव आता रहा; किन्तु अन्तमें परिणाम ठीक ही निकला। जेल सुपरिटेंडेंट श्री जोन्सने स्वीकार किया: "मैंने जितनी भूख-हड़तालें देखी हैं उनमें यह सबसे अधिक दोष-रहित थी।" (पृष्ठ १०२)

इन लेखोंमें गांधीजीने कुछ ऐसे कैदियोंके संस्मरण भी लिखे हैं जिन्हें कैदियोंके बीचसे चुनकर उनके ऊपर अफसरोंकी तरह तैनात कर दिया जाता है। गांधीजी और उनके साथियोंपर निगाह रखनेका काम भी इन्हें सौंपा गया था। गांधीजीने जिस उत्साहके साथ रेखा-चित्र खींचे हैं उससे स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी छोटे-बड़े सभी अधिकारियोंके प्रति समान स्नेहभाव रखते थे।

'नवजीवन' का एक लेख उनकी आन्तरिक धार्मिक भावनाओंको समझनेके लिए विशेष उपयोगी है। "प्रेमका अभाव या अतिरेक" (पृष्ठ २०१-२) शीर्षक लेखमें

उन्होंने किसी धार्मिक पत्र-लेखककी आपत्तियोंका जवाब दिया है। पत्र-लेखकका कहना था कि गांधीजी अपने लेखोंमें केवल 'राम' इत्यादि लिखकर श्री रामचन्द्र प्रभुका उल्लेख करते हैं, यह अनुचित है। यद्यपि गांधीजी सदैव यही कहते थे कि ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, और यद्यपि वे अपने नैतिक आदर्शोंका आधार निर्गुण भगवान्‌को ही मानते थे तथापि उनके अन्तरमें सगुण भक्तिकी धारा बहती रहती थी जो उन्हें बचपनमें अपने आसपास व्याप्त वैष्णवी वातावरणसे प्राप्त हुई थी। राम उनके इष्टदेव थे। "राम तो अब मेरे घर आ गये हैं। उन्हें अगर मैं 'तुम' या 'आप' कहूँ तो वे मुझपर रोष करेंगे। मेरे न माँ है, न बाप है और न भाई, ऐसा आश्रयविहीन हूँ मैं। मेरे तो अब राम ही सर्वस्व है। . . . मैं तो उसीके जिलाये जी रहा हूँ। . . . मैं उसी रामको भंगी और ब्राह्मणमें देखता हूँ। इसलिए दोनोंका अभिवादन करता हूँ।" (पृष्ठ २०१-२) एक तर्कनिष्ठ व्यक्ति होनेके कारण यद्यपि गांधीजी यह मानते और कहते भी थे कि राम, खुदा और गॉड एक ही तत्त्व-को सूचित करते हैं, फिर भी स्वाभाविक रूपसे उनका मन अपने प्रिय रामका नाम लेकर ऐसी प्रेरणा पाता था कि वे उस नामके जादूके विषयमें लिखते हुए कभी थकते नहीं थे।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम, साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि संग्रहालय, नई दिल्ली; तथा श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; तथा 'गांधीजीकी छत्रछायामें', 'नरसिंहरावनी रोजनिशी', 'बापुना पत्रो–४: मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'लाला लाजपतराय: जीवनी'; 'वायस ऑफ फ्रीडम', 'स्टोरी ऑफ माई लाइफ' पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'गुजराती', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'हिन्दी नवजीवन' तथा 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। कागजें-पत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायता देनेके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्लीके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों-की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही उसे सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़-कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधी-जीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधनसूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उप-लब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. जेलके अनुभव – ४[1]

'राजनीतिक' कैदी

"हम राजनीतिक तथा अन्य कैदियोंमें कोई भेद नहीं करते। आपके लिए ऐसा कोई भेद किया जाये, यह तो निस्सन्देह आप भी नही चाहेंगे?" जब गत वर्षके अन्तमें सर जॉर्ज लॉयड[2] यरवदा जेल आये थे; ये वाक्य उन्होंने तभी कहे थे। मेरे मुँहसे असावधानीसे यह "राजनीतिक" विशेषण निकल गया, उसीके उत्तरमें वे इस प्रकार बोले थे। मुझे अधिक सावधानीसे काम लेना चाहिए था, क्योंकि मैं जानता था कि गवर्नर महोदयको इस शब्दसे चिढ़ है। फिर भी, अजीब बात है कि हममें से अधिकांश कैदियोंके दैनिक व्यवहारके टिकटोंपर "राजनीतिक" शब्द अंकित था। जब मैंने इस असंगतिकी चर्चा की तो उस समयके जेल सुपरिंटेंडेंटने बताया कि यह तो एक खानगी चीज है और केवल अधिकारियोंकी सुविधाके लिए है। आप कैदियोंको इस भेदपर विचार करनेकी जरूरत नहीं; क्योंकि इसके आधारपर कोई हक नहीं माँगा जा सकता।

सर जॉर्ज लॉयडकी कही हुई बातको मैंने अपनी स्मृतिके अनुसार तो शब्दशः ही दिया है। सर जॉर्ज लॉयडने जो-कुछ कहा था उसमें एक दंश था, और वह भी कितना अहेतुक। वे जानते थे कि मैं किसी मेहरबानी या विशिष्ट व्यवहारकी याचना नहीं कर रहा था। प्रसंगवश इस विषयमें साधारण-सी चर्चा निकल आई थी। लेकिन वे मुझे यह जताना चाहते थे कि कानून और प्रशासनकी दृष्टिमें तुम्हारी स्थिति औरोंकी स्थितिसे किसी भी तरह बढ़कर नहीं है। और अकारण ही, सिद्धान्तके नामपर इस भेदका प्रतिवाद किया जाना और दूसरी ओर व्यवहारमें इस भेदको अमली जामा पहनाना एक शोचनीय असंगति तो थी ही और तिसपर अधिकांश अवसरोंपर इस भेदका प्रयोग राजनीतिक कैदियोंके विरुद्ध ही किया जाता था।

सच तो यह है कि भेदसे बचना असम्भव है। यदि इस तथ्यकी उपेक्षा न की जाये कि कैदी भी मनुष्य ही है, तो उसके रहन-सहनको समझना और तदनुसार जेलोंमें उसकी व्यवस्था करना जरूरी होगा। यहाँ सवाल गरीब और अमीर अथवा शिक्षित और अशिक्षितमें भेद करनेका नहीं है। कुल सवाल उनके रहन-सहनके उन तौर-तरीकोंमें भेद करनेका है, जिनके कि वे अपनी पूर्व परिस्थितियोंके कारण आदी हो गये हैं। इस वस्तुस्थितिको अनिवार्य रूपसे मान लेनेकी बजाय ऐसा कहा जाता है कि अपराध करनेवाले लोगोंको यह समझ लेना चाहिए कि कानून किसीका लिहाज नहीं करता और चाहे कोई अमीर आदमी चोरी करे अथवा कोई ग्रेजुएट या मजदूर, कानूनकी दृष्टिमें सब समान हैं। यह तो एक निर्दोष और अच्छे कानूनका

१. इस लेखमालाके पहले तीन लेखोंके लिए देखिए खण्ड २३।

२. बम्बईके गवर्नर; कैदियोंमें भेदके सम्बन्धमें गांधीजी के पत्रके लिए देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १८६-८७।

गलत अर्थ लगाना है। यदि कानूनकी दृष्टिमें सभी समान हैं, जैसा कि होना भी चाहिए, तो हर आदमीके साथ उसकी सहनशक्तिको देखकर बरताव किया जाना चाहिए। जिस चोरका शरीर नाजुक हो उसे भी ३० कोड़े लगाना और जो शरीर-से हट्टा-कट्टा हो उसे भी ३० कोड़े लगाना, निष्पक्ष व्यवहार नहीं माना जायेगा। वह तो नाजुक शरीरवालेके साथ अनुचित सख्ती और शायद हट्टे-कट्टे शरीरवालेके प्रति अनुग्रह ही कहा जायेगा। इसी तरह, उदाहरणके तौरपर, मोतीलालजी को[1] सख्त जमीनपर बिछी नारियलकी खुरदरी चटाईपर सुलाना, समान व्यवहारका नहीं अतिरिक्त सजा देनेका उदाहरण होगा।

जेलकी व्यवस्थामें यदि यह स्वीकार कर लिया जाये कि कैदी भी मनुष्य ही है, तो कैदीको जेलमें प्रवेश करानेके समयकी प्रक्रिया आजसे भिन्न हो। अँगुलियोंके निशान जरूर लिये जायेंगे; रजिस्टरमें उसके पहलेके अपराध भी दर्ज किये ही जायेंगे; लेकिन साथ ही कैदीकी आदतों और रहन-सहनका ब्योरा भी दर्ज किया जायेगा। यदि अधिकारी कैदियोंको मनुष्य समझने लगें तो उन्हें जो पद्धति स्वीकार करनी होगी उसे "भेद करना" न कहकर "वर्गीकरण" ही कहा जायेगा। एक प्रकारका वर्गीकरण तो आज भी मौजूद है। उदाहरणके लिए, कुछ अहातोंमें कैदियोंको लम्बी कोठरियोंमें इकट्ठा रखा जाता है। खतरनाक अपराधियोंके लिए अलग-अलग कोठरियाँ होती हैं और तनहाईकी सजावालोंको ताला लगाकर अलग-अलग रखा जाता है। फिर, फाँसीवालोंकी कोठरियाँ भी होती हैं, जिनमें फाँसीकी सजा सुनाये गये कैदियोंको रखा जाता है और अन्तमें हवालाती कैदियोंके लिए अलग कोठरियाँ होती हैं। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्यादातर राजनीतिक कैदियोंको अलग या तनहाईमें रखा जाता था। कुछको तो फाँसीकी सजा पाये हुए अपराधियोंकी कोठरियोंमें भी रखा जाता था। लेकिन यहाँ मैं एक बात साफ कर देना चाहूँगा, अन्यथा अधिकारियोंके साथ कहीं अन्याय न हो जाये। वह बात यह है कि जिन्हें इन विभागों और कोठरियोंकी जानकारी नहीं है, वे ऐसा सोच सकते हैं कि फाँसीकी सजा सुनाये गये कैदियोंकी कोठरियाँ खास तौरपर कुछ खराब होती होंगी, लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जहाँतक यरवदा जेलका सम्बन्ध है, इन कोठरियोंकी बनावट बहुत अच्छी है और ये हवादार हैं। लेकिन जो चीज बहुत आपत्तिजनक है वह है इनके इर्द-गिर्दका वातावरण।

जैसा मैंने ऊपर बताया, वर्गीकरण अनिवार्य है और वह किया भी जाता है। फिर कोई कारण नहीं कि वह वैज्ञानिक और मानवतापूर्ण भी क्यों न हो। मैं जानता हूँ कि मेरे सुझाये हुए ढंगसे वर्गीकरण करनेका मतलब है सारी पद्धतिमें आमूलचूल परिवर्तन। बेशक, इसमें खर्च ज्यादा होगा और नई पद्धतिको चलानेके लिए दूसरे ढंगके लोगोंकी भी जरूरत होगी। लेकिन आज अतिरिक्त खर्च होगा तो अन्तमें बचत भी होगी। मैं जो क्रान्तिकारी परिवर्तन सुझा रहा हूँ उसका सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि अपराधोंकी संख्यामें निश्चित रूपसे कमी आ जायेगी और कैदियोंका

१. मोतीलाल नेहरू (१८६१-१९३१)।

सुधार होगा। फिर तो जेल सुधार-गृह हो जायेंगे और समाजमें पाप करनेवाले लोग उन स्थानोंमें जाकर सुधर जायेंगे और लौटकर आनेपर समाजके प्रतिष्ठित सदस्य बन जायेंगे। हो सकता है, वह दिन बहुत दूर हो; लेकिन अगर हम पुरानी रूढ़ियोंके मोहमें न पड़ गये हों तो जेलोंको सुधार-गृह बनानेमें हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

यहाँ मुझे एक जेलरके सारगर्भित वचन याद आते हैं। उसने कहा था:

> "जब कभी मैं कैदियोंको भरती करता हूँ या उनकी तलाशी लेता हूँ अथवा उनके बारेमें रिपोर्ट करता हूँ, मेरे मनमें अकसर एक सवाल उठता है; क्या मैं इनमें से ज्यादातर लोगोंसे अच्छा हूँ? ईश्वर जानता है कि इनमें से कुछ जिन अपराधोंके कारण यहाँ आये हैं, उनसे बुरे अपराध तो मैंने किये हैं। फर्क इतना ही है कि इन बेचारोंके अपराधका पता लग गया और मेरे अपराधका पता नहीं लग पाया।"

जो बात इस नेक जेलरने स्वीकार की, क्या वही हममें से बहुतोंके साथ लागू नहीं होती? समाज उनपर तो अँगुली नहीं उठाता। लेकिन हमें तो, जिन लोगोंमें बच निकलनेकी चतुराई नहीं है, उनके प्रति सदा शंकित बने रहनेकी आदत पड़ गई है। कारावासके परिणामस्वरूप अकसर वे पक्के अपराधी बन जाते हैं।

कोई भी व्यक्ति पकड़ा गया कि उसके साथ पशुओंका-सा व्यवहार शुरू हो जाता है। अभियुक्त जबतक अपराधी न सिद्ध कर दिया जाये तबतक सिद्धान्ततः उसे निर्दोष माना जाता है। लेकिन व्यवहारमें उसकी देख-रेखके लिए जिम्मेदार लोगोंका रवैया दम्भपूर्ण और तिरस्कार-भरा होता है। मनुष्य अपराधी करार दिया गया कि वह समाजका अंग रह ही नहीं जाता। जेलका वातावरण उसमें अपने-आपको हीन माननेकी आदत पैदा कर देता है।

राजनीतिक कैदियोंपर इस निर्वीर्य बनानेवाले वातावरणका असर आमतौरपर नहीं होता। मनको खिन्न बना देनेवाले इस वातावरणके असरमें आनेकी बजाय वे उसके खिलाफ संघर्ष करते हैं और कुछ अंशोंमें उसे सुधार भी पाते हैं। समाज भी उन्हें अपराधी नहीं मानता। इसके विपरीत, वे वीर पुरुष और शहीद माने जाते हैं। जेलमें उन्हें जो कष्ट भोगना पड़ता है, उसका बखान लोग बहुत बढ़ा-चढ़ाकर करते हैं और कभी-कभी यह अति प्रशंसा राजनीतिक कैदियोंके नैतिक पतनका भी कारण बन जाती है। लेकिन दुर्भाग्यकी बात यह है कि राजनीतिक कैदियोंके प्रति आम लोग जितनी उदारता दिखाते हैं, अधिकारीगण उतनी ही सख्ती बरतते हैं; अधिकांश मामलोंमें यह सख्ती बिलकुल बेजा हुआ करती है। सरकार राजनीतिक कैदियोंको साधारण कैदियोंसे अधिक खतरनाक मानती है। एक अधिकारीने बड़ी गम्भीरतासे कहा था कि राजनीतिक कैदीके अपराधसे पूरे समाजको खतरा रहता है, जब कि साधारण अपराधसे केवल अपराधीका ही नुकसान होता है।

एक दूसरे अधिकारीने मुझे बताया कि राजनीतिक कैदियोंको अलग रखने और पत्र-पत्रिकाएँ न देनेका कारण यह है कि उन्हें अपने अपराधका एहसास कराया जाये।

उसने कहा, राजनीतिक कैदी "कैद" में गौरवका अनुभव करते हैं। स्वतन्त्रता खो जानेसे जहाँ साधारण अपराधियोंको दुःख होता है, राजनीतिक अपराधियोंपर उसका कोई असर ही नहीं होता। उसने आगे कहा कि इसलिए यह स्वाभाविक है कि सरकार उन्हें सजा देनेका कोई और उपाय करे; इसीलिए उन्हें साधारणतया जो सुविधाएँ बेशक मिलनी चाहिएं, वे नहीं दी जातीं। मैंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के साप्ताहिक अंक, या 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' या 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' अथवा 'मॉडर्न रिव्यू' या 'इंडियन रिव्यू' की माँग की थी। अधिकारीने उसीके जवाबमें यह बात कही थी। जो लोग अखबारोंको नाश्तेकी ही तरह जरूरी मानते हैं, उनके लिए यह बहुत कड़ी सजा थी। पाठक इसे मामूली सजा न समझें। मैं तो कहूँगा कि अगर श्री मजलीको समाचारपत्र दिये गये होते तो उनके मस्तिष्कमें खराबी पैदा न होती।[1] इसी तरह उस आदमीके लिए जो अपनेको हर अवसरपर सुधारक नहीं मानता यह बहुत उद्वेगजनक सिद्ध होगा कि उसे खतरनाक अपराधियोंके साथ रख दिया जाये, जैसा कि यरवदा जेलमें लगभग सभी राजनीतिक कैदियोंके साथ किया जा रहा था। जो लोग सिवा गालीके बात नहीं करते या जिनकी बातचीत आमतौर पर अशिष्टतापूर्ण होती है, उनके साथ रह सकना आसान काम नहीं है। यदि सरकार अक्लसे काम लेकर साधारण कैदियोंपर अच्छा असर डालनेके लिए राजनीतिक कैदियोंके साथ सलाह-मशविरा करके उन्हें ऐसे वातावरणमें रखती तो यह बात समझमें आ सकती थी। लेकिन मैं मानता हूँ कि यह बात व्यावहारिक नहीं है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि राजनीतिक कैदियोंको अरुचिकर वातावरणमें रखना उन्हें अतिरिक्त सजा देना है, जिसके वे कदापि पात्र नहीं हैं। उन्हें अलग रखा जाना चाहिए और वे किस तरह रहते आये हैं, यह समझकर उनके साथ तदनुसार बरताव करना चाहिए।

आशा है, सत्याग्रही लोग इसका और अगले अन्य किसी प्रकरणमें मैंने जेलके सुधारकी जो हिमायत की है, उसका गलत अर्थ नहीं लगायेंगे। सत्याग्रहियोंको चाहे जैसी असुविधाएँ सहनी पड़ें, उनका इस कारण रोष करना शोभा नहीं देगा। वह तो क्रूरसे-क्रूर व्यवहारके लिए तैयार होकर ही आया है; इसलिए यदि व्यवहार भलमनसीका किया जाये तो ठीक है; यदि न किया जाये तो भी ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३४८-४९।

२. टिप्पणियाँ

स्वर्गीया श्रीमती रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका[1] निधन राष्ट्रकी एक बहुत बड़ी हानि है। हम जिन गुणोंकी एक हिन्दू विधवामें कल्पना करते हैं वे उन सब गुणोंकी साकार मूर्ति थी। अपने तेजस्वी पतिके जीवन-कालमें वे उनकी सच्ची मित्र और सहधर्मिणी रहीं। उन्होंने अपने पतिके दिवंगत होनेके बाद उनके एक प्रिय कामको आगे बढ़ाना ही अपना जीवन-कार्य बना लिया था। श्री रानडे समाज-सुधारक थे और भारतीय नारियोंके उत्थानमें उनकी गहरी रुचि थी। इसलिए रमाबाई प्राणपणसे सेवासदनके काममें जुट गईं। इसी काममें उन्होंने अपनी समूची शक्ति लगा दी। इसीका परिणाम है कि आज भारत-भरमें सेवासदन-जैसी कोई दूसरी संस्था नहीं है। वहाँ लगभग एक हजार बालिकाओं और महिलाओंको शिक्षा दी जा रही है। कर्नल मैडॉकने[2] मुझे बतलाया है कि ससून अस्पतालमें ही सबसे अच्छी और सबसे अधिक संख्यामें भारतीय नर्सें तैयार की जाती हैं और वे सब नर्सें सेवासदनसे आई हुई होती हैं। इसमें शक नहीं कि रमाबाईको देवधर[3]-जैसा अथक परिश्रमी और छोटीसे-छोटी चीजोंका भी पूरा-पूरा ध्यान रखनेवाला एक कार्यकर्त्ता भी मिल गया था। लेकिन उनके पास सुयोग्य और निष्ठावान सहयोगी थे, यह तथ्य भी रमाबाईको ही अधिक प्रशंसनीय बनाता है। सेवासदन सदा उनकी पवित्र स्मृतिका जीवन्त स्मारक बना रहेगा। मैं अपनी इस दिवंगत बहनके परिवार और सेवासदनके अनेक बालक-बालिकाओंके प्रति विनम्रतापूर्वक अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूँ।

प्रिंसिपल गिडवानी[4]

मेरे पूछनेपर श्रीमती गिडवानी अपने एक पत्रमें लिखती हैं:

> कुछ समय पहले जब मैं अपने पतिसे मिलने गई, तब देखा कि अधिकारी लोग उनके साथ अशिष्टतासे पेश आ रहे थे। वे कोठरीमें बन्द थे और उनके कपड़े मैले थे। सात दिनके अनशनके कारण वे बहुत दुबले दिख रहे थे। इससे पहले चौरीचौराके समय भी उन्होंने अनशन किया था, लेकिन तब वे इतने कमजोर नहीं हुए थे। उनको अन्य बन्दियों-जैसा ही खाना दिया जाता है। मुलाकातियोंको उनसे मिलनेमें तरह-तरहकी कठिनाइयाँ पैदा की

१. (१८६२-१९२४); महादेव गोविन्द रानडेकी पत्नी

२. पूनाके ससून अस्पतालके सर्जन-जनरल, जिन्होंने जनवरी, १९२४ में गांधीजी का एपेण्डिसाइटिसका ऑपरेशन किया था।

३. गो० कृ० देवधर (१८७९-१९३५); सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके सदस्य; बादमें उसके अध्यक्ष।

४. आसूदोमल टेकचन्द गिडवानी, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबादके प्रधानाचार्य।

जाती हूँ। उनके भाईने मुलाकातके लिए दो बार लिखा, पर कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया गया। लेकिन मैं इस सबकी चिन्ता नहीं करती। इन्सान कठिनाइयोंमें से गुजरकर ही ऊपर चढ़ता है।

यह करुणाजनक पत्र एक पतिपरायणा महिलाका लिखा हुआ है, श्रीमती गिडवानीका पत्र प्रकाशनके लिए नहीं लिखा गया था। वह एक मित्रको लिखा गया घरेलू पत्र है। मैंने उन मित्रको लिखा था कि वे श्रीमती गिडवानीसे उनके पतिकी हालतके बारेमें पूछें। यदि श्रीमती गिडवानी द्वारा बतलाई गई बातें सही हैं तो उनसे नाभाके वर्तमान प्रशासनकी इज्जत नहीं बढ़ती। प्रिंसिपल गिडवानीपर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया है, फिर भी स्पष्ट है कि उनके साथ पक्के अपराधियों-जैसा ही बरताव किया जा रहा है। श्री जिमंडने बतलाया है कि प्रिंसिपल गिडवानीने मानवताकी भावनासे प्रेरित होकर ही राज्यकी सीमामें प्रवेश किया था। नाभाके प्रशासकोंसे मेरा कहना है कि वे या तो इस कथनका खण्डन करें या अपनी सफाई दें। इस बातका मैं वादा करता हूँ कि उनकी सफाईमें दिये गये उनके बयानको भी मैं उसी तरह प्रकाशित करूँगा जिस तरह मैंने श्रीमती गिडवानीके कथनको किया है।

पत्रकारिताकी भाषा

एक मित्र पूछते हैं :

> क्या आपने "महात्माको मानपत्र" शीर्षकसे लिखा गया 'क्रॉनिकल' का अग्रलेख पढ़ा है? उसमें लेखकने लिखा है कि "यदि दो-तीन विरोध-कर्त्ताओंके भाषणोंकी रिपोर्ट विरोध सूचित करती हो तो कहना पड़ेगा कि विरोध केवल विरोधके लिए किया गया था और उसके पीछे कुछ ऐसे पेशेवर झगड़ालू लोग ही थे, जिनके मनमें महात्माके आन्दोलनकी सफलतासे ईर्ष्याके कारण बड़ी ही कटुभावना व्याप्त हो गई है। 'टाइम्स' जब श्री मुहम्मद अलीके बारेमें लिखता है तो आप उसे उपदेश सुनाने लगते हैं। लेकिन क्या उस 'क्रॉनिकल' के बारेमें आप चुप रहना चाहेंगे जो अपने-आपको आपका अनुयायी बतलाता है और राजनीतिक विरोधियोंके लिए ऐसी असंयत और अयथार्थ भाषाका प्रयोग करता है?

'टाइम्स' को कभी उपदेश देनेकी बात मुझे तो याद नहीं पड़ती। वैसे अगर कभी मैं यह चाहता भी तो साहस न होता। साफ है कि लेखकने मेरे उन शब्दोंका हवाला दिया है जो मैंने देशी भाषाओंकी उन कुछ-एक पत्रिकाओंके बारेमें लिखे थे जो आजकल झूठी बदनामी फैलानेका अभियान-सा चला रही हैं। हुआ यह था कि मैंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में अनुवाद किये हुए कुछ अंश देखे और मुझे उनके बारेमें लिखना ही पड़ा। पर मैंने उसमें 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को नहीं, सम्बन्धित पत्रिकाओं-को ही सलाह दी थी। पत्र-लेखक खुद उसे देखकर अपनी तसल्ली कर सकता है। मैं यह आरोप तो स्वीकार नहीं कर सकता कि मैंने 'टाइम्स'को कभी 'उपदेश'

दिया, पर हाँ, मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि 'क्रॉनिकल' के लेखकको अहिंसात्मक असहयोगके अपने दावेके अनुरूप भाषाका प्रयोग करना चाहिए था और मानपत्रका विरोध करनेवालोंकी मंशापर शक नहीं करना चाहिए था। अवश्य ही पत्र-लेखकने जिसका हवाला दिया है वह लेख मैंने नहीं पढ़ा है। आमतौरपर मैं अपने बारेमें भारतीय समाचारपत्रोंमें निकलनेवाले लेख इत्यादि पढ़ता ही नहीं, चाहे उनमें मेरी प्रशंसा की गई हो। प्रशंसाकी मुझे दरकार नहीं है क्योंकि बिना किसी भी बाहरी सहायताके मेरे मनमें पहलेसे ही काफी अहम् भरा पड़ा है और अपनी निन्दा इस ख्यालसे नहीं पढ़ता कि कहीं मेरे भीतरका असुर सौम्य भावनाओंपर हावी होकर मेरी अहिंसाको न धर दबोचे। पूरा लेख पढ़नेके बाद मेरे इस कथनमें तदनुसार संशोधन किया जा सकता है। फिर भी, मेरा अपना अनुमान यह है कि उक्त बातें श्री जे० बी० पेटिट[1] और कानजी द्वारकादासको[2] नजरमें रखकर कही गई हैं। मैं इन दोनोंसे भली-भाँति परिचित हूँ। हम लोगोंके आपसी सम्बन्ध आज भी उतने ही मैत्रीपूर्ण हैं, जितने कि असहयोगके प्रारम्भसे पहले थे। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि इन दोनोंमें से किसीके भी दिलमें मेरे प्रति किसी प्रकारकी कटुता हो सकती है। वे साफ-साफ कहते हैं कि मेरे तरीके उन्हें पसन्द नहीं हैं। कमसे-कम वे तो विरोध करनेके लिए विरोध नहीं करेंगे। जिनकी राय मानपत्र देनेके पक्षमें थी उनसे मैंने यह सुना है कि उस अवसरपर श्री पेटिटने इतने संयमित ढंगसे अपनी बात कही कि उनके स्वभावको देखते हुए वह एक आश्चर्यजनक चीज ही थी। मुझे मालूम है कि श्री पेटिट चाहे जब आवेशमें आकर बोल सकते हैं लेकिन प्रस्तुत मामलेमें उन्हें यह अहसास रहा कि उन्हें एक मित्रके खिलाफ बोलनेका दुखद कर्त्तव्य निभाना है। निगम-के एक काफी पुराने सदस्यकी हैसियतसे उन्हें लगा कि निगम एक ऐसे व्यक्तिको मानपत्र देकर अपनी परम्पराओंके विरुद्ध आचरण करेगा जिसके सौजन्यको उसकी (पेटिटके तईं) घृणित राजनीतिसे अलग रखकर नहीं देखा जा सकता। सर्वश्री पेटिट और कानजी हृदयसे ऐसा मानते थे कि बम्बई नगर निगम एक गलत काम कर रहा है। इसलिए मेरी विनम्र सम्मतिमें उनका विरोध प्रकट करना उचित ही था। बेशक, आजकल हमारे देशके सार्वजनिक जीवनमें एक दूसरेके इरादोंपर जरूरतसे ज्यादा शंका की जाती है। (सहयोगियोंकी तो बात छोड़िए) स्वराज्यवादियोंमें भी कोई ऐसा नहीं है जिसके इरादोंपर अपरिवर्तनवादी लोग कोई शक जाहिर न करें और स्वराज्यवादी लोग भी अपरिवर्तनवादियोंके साथ ऐसा ही सलूक करते हैं। और उदार दलके लोगोंपर तो दोनों ही ऐसा शक करते हैं। समझमें नहीं आता कि जिन्हें पहले ईमानदार माना जाता था वे ही अब एकाएक राजनीतिक विचारोंके परिवर्तनके कारण बेईमान कैसे हो गये। चूँकि असहयोगियोंके विरोधियोंने नहीं, बल्कि असह-योगियोंने अपनी विचार-धारा बदली है, इसलिए उनको खास सावधानी रखनेकी जरूरत है, अपने विपक्षियोंसे कहीं ज्यादा। यदि दोनोंमें मतभेद है तो इसमें विपक्षियोंका

१. बम्बईके दानशील पारसी समाज-सेवी।

२. होमरूल लीगके प्रमुख सदस्य और गांधीजी के मित्र।

कोई दोष नहीं हो सकता। इसलिए मैं तो अपना पूरा रोष विचारकर्त्ताओंकी वजाय विचारोंके प्रति प्रकट करता।

वाइकोम सत्याग्रह

मुझे लगता है कि वाइकोम सत्याग्रह अपनी मर्यादाएँ भंग करने लगा है। मैं तो यह चाहता हूँ कि सिख अपना लंगर बन्द कर दें और यह आन्दोलन सिर्फ हिन्दुओं तक सीमित रहे। कांग्रेसके कार्यक्रममें शामिल कर लिये जानेसे ही यह हिन्दुओं और गैर-हिन्दुओंका आन्दोलन नहीं बन जाता, ठीक उसी प्रकार जैसे खिलाफत आन्दोलन कांग्रेसके कार्यक्रममें शामिल कर लिये जानेपर भी मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंका आन्दोलन नहीं बन गया। इसके सिवा खिलाफत आन्दोलनके विरुद्ध ब्रिटिश सरकारके रूपमें गैर-मुसलमान लोग थे। अगर हिन्दू या दूसरे गैर-मुसलमान लोग मुसलमानोंके अपने अन्दरूनी धार्मिक झगड़ोंमें दखल देने लगें तो वह बेजा मदाखलत होगी और अगर मुसलमान उसे धृष्टतापूर्ण समझें तो वह ठीक ही होगा। इसी तरह जो मामला सिर्फ हिन्दू समाजके सुधारसे सम्बन्धित है यदि उसमें गैर-हिन्दू टाँग अड़ाना चाहें तो कट्टरपंथी हिन्दू नाराजी जाहिर करेंगे ही। यदि मलाबारके हिन्दू-सुधारक गैर-हिन्दुओंकी सहानुभूतिको छोड़कर और किसी प्रकारकी सहायता अथवा हस्तक्षेप स्वीकार करेंगे या उसे प्रोत्साहन देंगे तो वे सारे हिन्दू समाजकी हमदर्दी खो बैठेंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि वाइकोममें इस आन्दोलनका नेतृत्व करनेवाले हिन्दू सुधारक अपने कट्टरपंथी भाइयोंके विचारोंमें जोर-जबरदस्तीके बलपर परिवर्तन नहीं चाहते। जो भी हो, नेताओंको वह सीमा-रेखा जान लेनी चाहिए जिसका अतिक्रमण किसी भी सत्याग्रहीको नहीं करना है। मैं सुधारकोंका पूरा सम्मान करते हुए, अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे सनातनी लोगोंको आतंकित करनेकी कोशिश न करें। मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ कि वाइकोममें जिस रास्तेको लेकर संघर्ष चल रहा है, यदि वह खुल जाता है तो मलाबार-भरमें छुआछूतकी समस्या हल हो जायेगी। वाइकोममें यदि अहिंसापूर्ण तरीकोंसे विजय हासिल की गई तो इसमें शक नहीं कि पण्डे-पुजारियों द्वारा फैलाये गये अन्ध-विश्वासोंके गढ़की नीवें आमतौरपर हिल जायेंगी, पर हर स्थानपर जब भी समस्या सिर उठाये तब उसे वहीं स्थानीय रूपसे ही हल करना पड़ेगा। गुजरातमें कहीं एक जगह कोई कुआँ हरिजनोंके इस्तेमालके लिए खोल दिये जानेका यह मतलब नहीं होगा कि गुजरातके सारे कुएँ उनके लिए खुल जायेंगे और अगर ईसाई, मुसलमान, अकाली और इन हिन्दू-सुधारकोंके सभी गैर-हिन्दू मित्र भी कट्टरपंथी हिन्दुओंके विरुद्ध प्रदर्शन करने लगें, इन सुधारकोंकी पैसे-रुपयेसे मदद करने लगें और अन्तमें आतंकित करके उनपर हावी हो जायें तो हिन्दू-धर्मका क्या होगा? क्या हम इसे सत्याग्रह कह सकेंगे? क्या सनातनी लोगोंका घुटने टेक देना स्वेच्छाप्रेरित कहा जायेगा? क्या उसे हिन्दू धर्ममें सुधार कहेंगे?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

३. पत्र-लेखकोंसे

मेरे नाम पत्र भेजनेवालोंकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। इनमें सम्पादकके नाम पत्र लिखनेवाले और वे लोग भी शामिल हैं जो सार्वजनिक महत्त्वके विषयोंके बारेमें मेरी सलाह माँगते हैं। मैं इन्हें आश्वस्त करना चाहता हूँ कि मुझसे जहाँतक बन पाता है, मैं सभी पत्रोंको पढ़ता हूँ और यथासामर्थ्य इन स्तम्भोंमें उनके उत्तर भी देता हूँ। साथ ही मैं यह मानता हूँ कि मैं अपने पत्र-लेखकों द्वारा चर्चित सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंके बारेमें पूरे विस्तारसे लिखनेमें असमर्थ हूँ। मेरे लिए यह भी सम्भव नहीं है कि मैं सभी पत्रोंका अलग-अलग उत्तर दूं। पत्र-लेखक 'यंग इंडिया' को ही उनके नाम भेजा गया मेरा व्यक्तिगत पत्र समझनेकी कृपा करें। यदि लोग चाहते हैं कि उनके पत्रोंपर ध्यान दिया जाये तो उनके पत्र संक्षिप्त, साफ लिखे हुए और निर्वैयक्तिक होने चाहिए।[१]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

४. आत्म-निरीक्षणका आमन्त्रण

एक सम्माननीय पत्र-लेखकका पत्र नीचे देते हुए मुझे प्रसन्नताके साथ पीड़ाका भी अनुभव हो रहा है:

> 'यंग इंडिया' के हालके लेखने मेरी अधिकांश शंकाओंको दूर कर दिया है, किन्तु अभी कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें, मैं चाहता हूँ, थोड़ा और साफ कर दिया जाये तथा फिर इन्हें शीघ्र ही 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर दिया जाये। कौंसिलोंमें प्रवेश-सम्बन्धी आपके विचार अब मेरे सम्मुख बिलकुल स्पष्ट हो गये हैं और अब वे मुझे परेशान नहीं करते। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप नगरपालिकाओं और जिला बोर्डोंमें बहुमत प्राप्त करनेके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करें। मैंने १९२१ में इन मुद्दोंपर आपका मत जाननेकी इच्छासे आपको एक तार[२] भेजा था। तब मुझे आपने उत्तर दिया था:
>
> "नगरपालिकाओंपर अधिकार कर सकते हो, जिला बोर्डोंके बारेमें सन्देह है।" १९२३ के अन्तमें सभी नगरपालिकाओंमें नये चुनाव हुए हैं और असहयोगियोंने उनमें से अधिकांशपर अधिकार कर लिया है। हमने जिला

१. यह सूचना यंग इंडियाके बादके अंकोंमें बार-बार दी जाती रही थी।

२. यह तार उपलब्ध नहीं है।

बोर्डके चुनाव भी लड़े हैं। हमारे इन चुनावोंके अनुभव बहुत ही दुःखजनक हैं। उनसे कांग्रेसके कार्यको बल नहीं मिला है, प्रत्युत हममें बहुत बड़ी कमजोरी आई है। उनके फलस्वरूप हमारे असहयोगी कार्यकर्त्ताओंमें परस्पर तीखे मतभेद, द्वेष तथा घृणाके भाव पैदा हो गये हैं।

दूसरी ओर हमने अपने नरमदलीय समर्थकों, जमींदारों तथा इनमें दिलचस्पी रखनेवाले अन्य लोगोंकी सहानुभूति भी लगभग गँवा दी है। उन्होंने अब डराने-धमकानेका रुख अख्तियार कर लिया है और वे हमारे मार्गमें रोड़े अटकाने तथा हमें बदनाम करनेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। इससे भी अधिक गम्भीर बात यह है कि हमें सरकारसे सम्बन्ध रखना पड़ता है। हम सरकारसे अनुदान प्राप्त करते हैं, इसलिए हमारे लिए सरकारी अधिकारियोंको सभी कुछ लिख भेजना जरूरी हो जाता है। यहाँ हमें जनताकी सेवा करनेका अवसर तो अवश्य मिलता है, किन्तु हम जो श्रम, समय और शक्ति इसमें लगाते हैं, उसका उतना परिणाम नहीं निकलता और उससे हमारा जल्दी स्वराज्य लेनेको कार्य भी सचमुच आगे नहीं बढ़ता। जिला बोर्डके अन्तर्गत देशी भाषाओंके प्राथमिक, माध्यमिक तथा मिडिल स्कूल हमारे नियन्त्रणमें रहते हैं, परन्तु हमको उन्हें विहित सरकारी नीतिके अनुसार ही चलाना पड़ता है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपनी राय बतायें। हमारे जिलेमें बोर्डके अध्यक्ष और उपाध्यक्षका शीघ्र ही चुनाव होनेवाला है; हमें आपका स्पष्ट उत्तर चाहिए कि हम इन स्थानोंके लिए चुनाव लड़ें या न लड़ें। एक बात साफ समझमें आती है और वह यह है कि यदि हम अपने आदमियोंको अध्यक्ष और उपाध्यक्ष नहीं बनवा सकते तो हमारा इन संस्थाओंमें जाना व्यर्थ है।

मेरा अन्तिम प्रश्न है, हमें अपने कांग्रेस-संगठनोंका क्या करना चाहिए? वर्तमान नियमोंके अनुसार हमें गाँवोंसे मण्डलोंके लिए, मण्डलोंसे थानोंके लिए, थानोंसे तहसीलों अथवा जिलेके लिए, जिलेसे प्रान्तके लिए तथा प्रान्तसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए सदस्य चुनने होते हैं। यह एक बहुत ही बड़ा काम है जिसे सँभालना मुश्किल है। हमारे पास न तो कार्यकर्त्ता हैं और न पैसा है, इसलिए हम इस विराट् संगठनको चलानेमें असमर्थ हैं। हममें से कुछ कहते हैं कि हमें अपनी सारी गतिविधि जिला बोर्डों और नगरपालिकाओंपर केन्द्रित करनी चाहिए, तथा कांग्रेस-संगठनको भगवान्पर छोड़ देना चाहिए। कांग्रेस-संगठनोंको चलाते रहना बड़े खर्चका काम है और वह साराका-सारा काम लगभग बन्द ही पड़ा है।

जहाँतक रचनात्मक कार्यका प्रश्न है, उसमें न तो हमारे कार्यकर्त्ताओंकी रुचि है, न गाँववालोंकी, और न जनताकी ही। उसमें बहुत अधिक समय लगता है और उससे स्वराज्य शीघ्र कैसे प्राप्त हो सकता है, यह बात मेरी

समझमें नहीं आती। यह तो मैं मानता हूँ कि रचनात्मक कार्य नितान्त आवश्यक है, किन्तु प्रश्न यह है कि उसे शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न कैसे किया जाये।

हमारे सभी कार्यकर्त्ताओंने अपनी निष्ठा खो दी है और वे जनताकी सहानुभूति तथा अपने और अपने कुटुम्बोंके भरण-पोषणके साधनोंके अभावमें बिलकुल हिम्मत हार बैठे हैं। एक प्रकारसे प्रायः सभीने कांग्रेस-संगठनोंको छोड़ दिया है, क्योंकि उनकी जीविकाका प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। जबतक हमारे कार्यकर्त्ताओंको उनके जीवन-निर्वाहके लायक भत्ता नहीं दिया जाता, और जबतक उनमें नवजीवन तथा नये विश्वासका संचार नहीं किया जाता तबतक कोई काम सम्भव नहीं है। अबतक आपको सब-कुछ मालूम हो गया होगा, इसलिए और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे कांग्रेस संगठनोंमें लोगोंको बिलकुल विश्वास नहीं रहा है और हमें कुछ देने अथवा हमारा समर्थन करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं है। यह सच है कि हमने मनसा, वाचा और कर्मणा अहिंसाके उच्च आदर्शके अनुसार आचरण नहीं किया है। हमने इस प्रकारसे आपसमें ही असहयोग किया है और एक असहयोगीने दूसरे असहयोगीको अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लिया है। पारस्परिक डाह, प्रतिस्पर्द्धा, भाईचारे और सचाईका अभाव — इन सबने समस्त कांग्रेस-संगठनके नामको बट्टा लगा दिया है और इसलिए जनता हमारी बात अनसुनी कर देती है। आपसमें लड़नेवाले कार्यकर्त्ताओंकी एक बड़ी फौजके बदले हमें मुट्ठी-भर सच्चे, ईमानदार और अहिंसक कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। हम सचमुचमें कुछ सफलता प्राप्त कर सकें, इससे पहले आवश्यकता है अपने हृदयोंको पूर्णतः शुद्ध करनेकी और समूचे कांग्रेस-संगठनको नये सिरेसे गढ़नेकी। हम लोग नाम, यश और नेतागिरीके मिथ्या मोहमें पड़ गये हैं। इसने हमारे दलमें अनुशासन-हीनता फैला दी है और ईर्ष्या तथा प्रतिस्पर्द्धाकी भावनाओंको उभार दिया है।

हमें पहले अपनी शुद्धि करनी चाहिए — यही पहली जरूरी बात है। दूसरी जरूरी बात यह है कि हमारे कार्यकर्त्ता अपने और अपने कुटुम्बोंके भरण-पोषणके लिए कुछ कमाई करनेकी चिन्तासे मुक्त हों। सम्पन्न लोग न तो हमें आर्थिक सहायता देते हैं और न ही स्वयं राष्ट्रीय सेवाके काममें पड़ते हैं। अतः पूरा भार गरीबोंपर पड़ता है।

पुनश्च :

१. हमें अपने कार्यकर्त्ताओंको आर्थिक सहायता देनेका प्रबन्ध तुरन्त करना चाहिए अन्यथा वे मुट्ठीभर लोग भी, जो अभी हमारे साथ हैं और काम कर रहे हैं, काम करना छोड़ देंगे।

२. यदि आप तय करें कि हम लोग जिला बोर्डों और नगरपालिकाओंमें जमे रहें, तो आप हमें इन संस्थाओंमें काम करनेके लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम

> दें। यदि आप अन्यथा निर्णय दें तो हम सबको एक साथ सारे स्थान रिक्त कर देने चाहिए। महसूल अथवा लगानोंकी अदायगी बन्द करनेकी जरूरत पड़े तो लोग उसके लिए तैयार नहीं जान पड़ते। इन संस्थाओंके भीतर हमें क्या काम करना है इस विषयमें कुछ भी स्पष्ट नहीं है। कुछ कहते हैं कि हमें इन संस्थाओंका उपयोग सरकारके विरुद्ध संघर्ष-क्षेत्रकी तरह करना चाहिए। कुछ लोग रोड़े अटकानेकी नीति अपनानेका आग्रह करते हैं और कुछ यह सलाह देते हैं कि हम इन संस्थाओंके कार्य-संचालनमें योग दें और इनका उपयोग जनताके हित-साधनके लिए करें। इन संस्थाओंपर अधिकार करनेसे हमारे कांग्रेस-संगठनोंमें कमजोरी आई है।

लेखकको सार्वजनिक जीवनका व्यापक अनुभव है और वे बड़े पक्के कार्यकर्त्ता हैं। अतः उनका पत्र ध्यानसे पढ़ने योग्य है। मेरे लिए तो वह आत्म-निरीक्षणका आमन्त्रण है।

मुझे यह पसन्द नहीं है और न कभी पसन्द था कि लोग सभी बातोंके लिए मेरा मुँह ताकें। यह राष्ट्रीय कामोंकी व्यवस्थाका निकृष्ट ढंग है। कांग्रेसको किसी एक व्यक्तिके नचाये नहीं नाचना है, जिसके आसार दिखाई दे रहे हैं, फिर वह व्यक्ति चाहे कितना ही भला अथवा महान् क्यों न हो। मैं अकसर सोचता हूँ कि अगर मैं सजाकी पूरी अवधितक जेलमें ही रहता तो वह देश और मेरे लिए बेहतर होता। तबतक देश किसी ऐसे कार्यक्रमपर जम जाता जो उसका अपना कहा जा सकता। आज यह कहना कठिन है कि आखिर कांग्रेसका कार्यक्रम है किसका। यदि कार्यकर्त्ताओंको मार्ग-दर्शनके लिए हर बार मुझसे सलाह लेनी पड़े तो यह देशका कार्यक्रम तो हो नहीं सकता और वह मेरा भी नहीं हो सकता, क्योंकि अकेला मैं कोई भी कार्यक्रम कार्यान्वित नहीं कर सकता। केवल प्रस्तुत पत्र-लेखक ही मेरी सलाहके मोहताज नहीं हैं बल्कि कार्यकर्त्ताओंकी आम प्रवृत्ति यही है। एक सज्जन कार्यक्रमकी प्रायः प्रत्येक बातपर आपत्ति करनेके पश्चात् कहते हैं: "किन्तु इस सबके बावजूद आपके प्रति मेरी श्रद्धा और मेरा स्नेह इतना गहरा है कि आप जो-कुछ करनेके लिए कहें मैं कर सकता हूँ, चाहे मैं आपसे सहमत होऊँ, चाहे न होऊँ।" ये सज्जन इनसे भी आगे हैं। प्रस्तुत सज्जन कमसे-कम कार्यक्रमसे तो सहमत हैं और सलाह माँगते हैं। किन्तु वे तो मेरा विरोध करते हैं और फिर भी मेरा अनुसरण करना चाहते हैं। अपने प्रति इस तरहकी भक्तिपर मैं भले ही कुछ गर्व कर लूँ; किन्तु उससे अपने ध्येयकी ओर हमारी प्रगति निश्चय ही रुकती है। हमें अपने ही सच्चे विश्वासके अनुसार काम करनेका साहस करना चाहिए, चाहे फिर उसमें भयानक भूलें हो जानेकी आशंका ही क्यों न हो। स्वराज्य परीक्षणों, प्रयोगों तथा भूलोंके रास्तेसे गुजरकर शासन करनेका मार्ग है। अपनी भूलोंके कारण मिट जाना, किसी एक व्यक्तिके — फिर चाहे वह कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो — निरन्तर मार्गदर्शनमें चलते रहकर भूलोंसे बचनेकी अपेक्षा हजार गुना अच्छा है। मैं सोचने लगा हूँ कि मेरा समस्त सार्वजनिक कार्योंसे पूर्णतः निवृत्त होकर और अपने कताई और बुनाईके

चुने हुए धन्धेमें, तथा जबतक निजी मित्र आश्रमको सहारा देते हैं, सत्याग्रह आश्रमके बच्चोंके साथ रम जाना, क्या देशके हितमें सबसे अच्छा काम नहीं रहेगा। कुछ भी हो, अपने मित्रों तथा साथी कार्यकर्त्ताओंको मेरी निश्चित सलाह यह है कि वे मेरी बातको अकाट्य मानकर कदापि स्वीकार न करें। मेरी सलाह उनके लिए हमेशा हाजिर है, किन्तु वह ली तो यदा-कदा ही जानी चाहिए।

ऊपरके पत्रको ध्यानसे पढ़ें तो उसमें लेखकने जिन बुराइयोंका इतना सजीव वर्णन किया है, उनका सर्वोत्तम उपाय भी उन्होंने सुझा दिया है। यदि मिथ्याचार, पाखण्ड और ईर्ष्या हमारे कार्यकर्त्ताओंमें घर कर गये हैं तो हमें इन दुर्गुणोंका उन्मूलन करना चाहिए और इसके लिए हमें अपना अन्तर टटोलना अनिवार्य है। हर हालतमें पाँच भले ईमानदार, स्वार्थत्यागी और श्रद्धावान कार्यकर्त्ता पचास हजार बेईमान, आलसी और श्रद्धाहीन कार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा अच्छे हैं। ये पचास हजार उन पाँचके काममें भी बाधक ही बनते हैं।

अब विशिष्ट मामलोंको लें।

जिला बोर्डों तथा नगरपालिकाओंका भी जहाँतक सम्बन्ध है, असहयोगियोंका इनमें प्रवेश तभी उचित माना जा सकता है, जब उनसे कांग्रेसके उद्देश्योंकी प्रगति हो और उसके संगठनमें सहायता मिले। यदि हम इन संस्थाओंके द्वारा खद्दरके कार्यक्रम या हिन्दू-मुस्लिम एकताका काम नहीं कर सकते अथवा अछूतों और राष्ट्रीय शालाओं-की सहायता सम्भव न हो तो हमें अवश्य ही इनसे बाहर निकल आना चाहिए और फिर दूर ही रहना चाहिए; यदि इनमें जानेसे असहयोगियोंमें पारस्परिक कलह तथा आमतौर पर मनमुटाव पैदा होता हो तो इसकी और भी ज्यादा जरूरत है।

कार्यकर्त्ताओंके भरण-पोषण सम्बन्धी प्रश्नके विषयमें, मैं यही मानता हूँ कि यह खर्च प्रान्तीय संगठनोंको उठाना चाहिए। केन्द्रीय संगठनका प्रान्तीय सेवाओंको नियन्त्रित तथा विनियमित कर पाना और उनका खर्च उठा पाना कभी सम्भव नहीं होगा। जब कोई प्रान्तीय संगठन स्थानीय रूपसे सहायता प्राप्त करनेमें असमर्थ हो जाये तब उसका अन्त होना ही ठीक है; क्योंकि सहायताका अभाव जाहिर करता है कि वह संगठन उस प्रान्तमें कभी लोकप्रिय नहीं था और यदि स्थानीय कांग्रेस संगठन लोकप्रिय नहीं है तो वह किस कामका? यदि किसी कांग्रेस संगठनकी सदस्य-संख्या बड़ी हो तो उसे प्रति-व्यक्ति चार आनेके शुल्कसे ही आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। यदि उसकी सदस्य-संख्या अधिक न हो तो यह भी इसी बातका सूचक है कि वह लोकप्रिय नहीं है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जहाँ-जहाँ कांग्रेसने खद्दरका काम अच्छा किया है, वहाँ-वहाँ उसका संगठन लोकप्रिय है और यदि वह अबतक वहाँ आत्मनिर्भर नहीं भी बना है तो शीघ्र ही बन जायेगा। किन्तु दूसरे लेखक, जिनके पत्रको मैंने उद्धृत किया है, कहते हैं: "चरखेमें मेरा विश्वास आज जितना कम रह गया है उतना कम कभी नहीं था। एक समूचे मध्यवर्गीय कुटुम्बका चरखेसे निर्वाह चलना असम्भव है, जबकि यह अत्यन्त स्पष्ट है कि इस प्रकार एक ही काम-पर सारी शक्ति लगा देनेका अर्थ होगा अन्य सब काम बन्द कर देना। यह मुझे भारी फिजूलखर्ची और गलत अर्थनीति लगती है, ऐसे ही जैसे अंग्रेजीके मुहावरेके

अनुसार 'घुड़दौड़के घोड़ोंको हलमें जोतना।'" इस कथनसे इतना ही जाहिर होता है कि लेखक यह भी नहीं जानता कि वे चरखेसे जितना कुछ कर दिखानेकी अपेक्षा रखते हैं, खुद चरखेका दावा उससे बहुत घटकर है। किसीने कभी नहीं कहा कि चरखे अर्थात् हाथकी कताईसे किसी समूचे मध्यवर्गीय कुटुम्बका भरण-पोषण हो सकता है। यह दावा भी नहीं किया जाता कि केवल हाथकी कताई किसी गरीब-से-गरीब कुटुम्बकी गुजर-बसरके लिए काफी है। किन्तु यह जरूर कहा गया है कि वह उन अनेक भूखसे मरते पुरुषों और स्त्रियोंका काम अवश्य चला सकता है और चला भी रहा है, जो आजतक दो पैसे रोजकी कमाईसे सन्तुष्ट रहे हैं; और हमारा उसकी क्षमताके बारेमें यह भी कहना है कि वह लाखों किसानोंकी कमाईमें काफी हदतक वृद्धि कर पाता है। मध्यवर्गवालों से चरखा नित्य चलानेको इसलिए कहा गया है कि उसके दैनिक अभ्याससे उन्हें एक प्रशिक्षण मिलेगा, चरखेका वातावरण बनेगा तथा जो लोग जीविकाके लिए कातते हैं उन्हें अधिक मजदूरी देना सम्भव हो जायेगा। अन्तिम बात यह है कि मध्यवर्गके लोग बुनाई करके जीवन-निर्वाह अवश्य ही कर सकते हैं और हजारों बुनकर आज ऐसा कर भी रहे हैं। किसी मध्यवर्गीय कुटुम्बके लिए प्रतिदिन दोसे तीन रुपयेतक कमा लेना कोई मामूली बात नहीं है। "अन्य सब कामों"से क्या मतलब है, यह मैं नहीं समझा। यदि "अन्य सब कामों"का मतलब अन्य सब सार्वजनिक कामोंसे है तो मैं चाहता हूँ कि ये सारे काम फिलहाल बन्द कर दिये जायें। जिस प्रकारके संगठन द्वारा की गई स्वराज्य सम्बन्धी माँगका ठुकराया जाना असम्भव हो, वैसा संगठन खड़ा करनेके लिए आज ठीक इसीकी जरूरत है। उस हालतमें वह 'घुड़दौड़के घोड़ोंको हलमें जोतना' नहीं होगा; वह होगा और सबको घुड़दौड़के घोड़ोंके स्तरपर लाना। जब जहाज जल रहा होता है, तब उसका कप्तान ही आग बुझानेका पम्प सँभालनेके लिए सबसे पहले आगे आता है और बादमें बाकी सभी लोगोंको उस जीवन-रक्षक यन्त्रपर जुटा लेता है। उस जलते हुए जहाजके हश्रकी कल्पना कीजिए, जिसका कप्तान चैनसे बैठा हुआ नाविकों एवं अन्य लोगोंसे आशा करता हो कि वे अपनी अक्लसे काम लेकर आग बुझानेमें जुट जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

५. क्या यह असहयोग है?

कुछ लोगोंका कहना है कि खिताबों, स्कूलों और कौंसिलोंका बहिष्कार असफल होनेके साथ-ही-साथ (वैसे मेरे विचारसे इन बातोंमें बहिष्कारको असफल मानना गलत है) असहयोगका अवसान हो गया है। आलोचकोंको मन्द गतिसे और उत्तेजना पैदा करनेवाले ढंगसे चल रहे खादीके काममें असहयोगका लेश भी दिखाई नहीं देता। वे भूल जाते हैं कि यह चतुर्विध बहिष्कार-इमारतके पूरे होनेतक उसे उठानेवाले कारीगरोंके खड़े रहनेके लिए नितान्त आवश्यक आधारके समान है। यदि हम इन संस्थाओंका, जो उस सत्ताकी प्रतीक हैं जिसका हम नाश करना चाहते हैं, उपयोग न करें तो इनका महज बना रहना कोई हर्जकी बात नहीं है। सच तो यह है कि इस चतुर्विध बहिष्कारके सहारेके बिना हम अपनी इमारत खड़ी नहीं कर सकते। और यदि हम इन संस्थाओंकी सहायताके बिना बल्कि इनके विरोधके बावजूद कांग्रेस-का काम ठीकसे चलाते रहें तो हमारी विजय निश्चित है। इसके अलावा हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा बहिष्कार चतुर्विध नहीं बल्कि पंचविध है। पाँचवाँ विषय है भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण। मेरा तात्पर्य विदेशी (न कि सिर्फ ब्रिटिश) कपड़ेके बहिष्कारसे है।

बहिष्कार हमारे कार्यक्रमका निषेधात्मक हिस्सा है, हालाँकि इस कारण वह कुछ कम उपयोगी नहीं है। खादी, राष्ट्रीय शालाएँ, पंचायतें, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अछूतों तथा शराबखोरों और अफीमचियोंका उद्धार, ये हमारे कार्यक्रमके रचनात्मक पक्ष हैं। हम जैसे-जैसे इस दिशामें आगे बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे बहिष्कार और इसलिए स्वराज्यकी दिशामें प्रगति करेंगे। प्रकृतिको रिक्तता नापसन्द है। अतएव विध्वंसके साथ-साथ निर्माण भी चलना चाहिए। यदि तमाम खिताबयाफ्ता भाई खिताब छोड़ भी दें और पाठशालाएँ, अदालतें और कौंसिलें बिलकुल खाली भी हो जायें और इस सबसे परेशान होकर सरकार सत्ता हमारे हाथोंमें सौंप दें तो भी यदि हमारे पास रचनात्मक कार्य-रूपी पूंजी न होगी तो हम स्वराज्यका संचालन न कर सकेंगे। हम बिलकुल असहाय हो जायेंगे। मेरे मनमें अकसर यह सवाल उठा करता है कि क्या लोगोंको इस बातकी पर्याप्त प्रतीति है कि हमारे आन्दोलनका उद्देश्य सिर्फ शासन-सूत्रके संचालकोंको बदलना नहीं बल्कि इस प्रणाली और इन तरीकोंको बदलना है। अतएव मेरे विचारसे तो खादीका कार्यक्रम जहाँ पूरा हुआ कि परिपूर्ण स्वराज्य ही मिल गया। भारतमें अंग्रेजोंकी दिलचस्पी बिलकुल स्वार्थमूलक है और वह राष्ट्रीय हितके विरुद्ध है। उसके राष्ट्रीय विरोधी होनेका कारण है भारतकी कपास-के प्रति उसकी बदनीयती। अतएव विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका मतलब इंग्लैंड तथा दूसरे तमाम देशोंके स्वार्थमूलक हितोंको सत्त्वहीन बना देना है। यदि अकेले इंग्लैंडके कपड़ेका बहिष्कार किया जाये तो उससे अंग्रेज लोगोंको भले ही हानि पहुँचे; पर वह हमारे रचनात्मक काममें सहायक नहीं हो सकता। सिर्फ इंग्लैंडके कपड़ेके

बहिष्कारका मतलब खाईसे बचकर खन्दकमें गिरना होगा। जबतक तमाम विदेशी कपड़ेका व्यापार बन्द नहीं हो जाता और उसका स्थान खादी पूरे तौरपर नहीं ले लेती तबतक हमारा विनाशकारी शोषण रुक नहीं सकता। अतएव विदेशी कपड़ेका बहिष्कार, बहिष्कार-कार्यक्रमका केन्द्र-बिन्दु है और यह सबसे प्रमुख बहिष्कार तबतक असम्भव है जबतक कि खादीका प्रचार घर-घरमें न कर दिया जाये। अपने ध्येयकी सिद्धिके लिए हमें अपने सभी साधनोंका अधिकसे-अधिक उपयोग करना पड़ेगा। हमें धन, जन और संगठन-तन्त्रकी जरूरत होगी। हम हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके बिना खादीको घर-घर नहीं पहुँचा सकते। खादीके कामको पूरा करनेका अर्थ है अपनी स्वशासनकी क्षमताको सिद्ध कर देना। खादीका कार्यक्रम आम जनताका कार्यक्रम है। अतएव उसे सफल बनानेके लिए प्रत्येक भारतवासीको फिर चाहे वह राव हो या रंक, छोटा हो या बड़ा, हिन्दू हो या गैर-हिन्दू, हाथ बँटाना होगा।

शंकालु लोग कहते हैं, "खादीसे स्वराज्य कैसे मिल सकता है? क्या अंग्रेज हमें सत्ता सौंपकर यहाँसे चले जायेंगे?" उत्तरमें मैं "हाँ" भी कहूँगा और "नहीं" भी। "हाँ" इसलिए कि तब अंग्रेज समझ जायेंगे कि हमारा और भारतका हित एक ही होना चाहिए; तब वे केवल सेवक बनकर यहाँ रहनेमें सन्तोष मानेंगे; क्योंकि उन्हें ज्ञान हो जायेगा कि अब वे अपना व्यापार हमपर लाद नहीं सकते। इसलिए खादीका कार्यक्रम सफल हो जानेपर अंग्रेजोंके हृदय भी बदल जायेंगे। आज वे मालिक बनकर रहना अपना हक मानते हैं, लेकिन खादीका कार्यक्रम पूरा हो जानेपर वे हमारे मित्र बननेमें गौरव मानेंगे। यदि हम अंग्रेजोंको यहाँसे निकाल भगाना चाहते हों और उनके, उचित-अनुचित दोनों तरहके स्वार्थोंका नाश कर देना चाहते हों, तो मेरा उत्तर होगा "नहीं"। अहिंसात्मक असहयोगका यह उद्देश्य नहीं है। अहिंसाकी अपनी सीमाएँ हैं। जो अहिंसक है वह न घृणा करता है और न घृणा उत्पन्न करता है। अहिंसाकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह ऐसा कर नहीं सकती। इसपर शंकालु लोग फिर कहते हैं, "लेकिन फर्ज कीजिए कि अंग्रेज अपनी प्रणालीमें परिवर्तन करनेसे इनकार कर दें और तलवारके बलपर ही भारतपर अपना कब्जा कायम रखनेकी जिद पकड़े रहें तो खादीका घर-घर प्रचार हो जानेपर भी क्या बनेगा?" खादीकी शक्तिपर इस प्रकार अविश्वास करते हुए वे इस बातको भूल जाते हैं कि खादी सविनय अवज्ञाकी एक अनिवार्य तैयारी है और इस बातको तो सभी लोग मानते हैं कि सविनय अवज्ञा एक अदम्य शक्ति है। खादीका प्रचार जबतक घर-घरमें न हो जाये तबतक व्यापक सविनय अवज्ञा अर्थात् अहिंसात्मक अवज्ञाकी मुझे तो कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। जिस किसी भी जिलेमें खादीका पूरा संगठन हो सकता हो और जहाँके लोग कष्ट-सहनके लिए भी प्रशिक्षित हों, उस जिलेको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार ही समझना चाहिए; और मुझे तो इस बातमें कोई शक ही नहीं है कि इस तरह संगठित एक ही जिला इतना शक्तिशाली होगा कि सरकार उसके मुकाबले अपनी सारी ताकत लगाकर भी उसका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकती।

अब अन्तमें यह सवाल रह जाता है कि फिर यह कठिन काम करेगा कौन? लेकिन जो चर्चा हम अभी कर रहे हैं, उसके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है। मैं तो सिर्फ इसी सवालका जवाब देना चाह रहा था कि क्या रचनात्मक कार्यक्रम अर्थात् खद्दर असहयोगका अंग माना जा सकता है। मैंने यहाँ यह साबित करनेकी कोशिश की है कि खादी असहयोगके रचनात्मक पक्षका अभिन्न अंग है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

६. भगवानदासके पत्रपर टिप्पणी

मुझे बाबू भगवानदासका[1] पत्र[2] प्रकाशित करते हुए खुशी हो रही है। कांग्रेसकी स्वराज्य-सम्बन्धी योजना तो तभी बन सकती है जब कांग्रेस स्वराज्य लेनेकी स्थितिमें आ जायेगी। आज कोई नहीं कह सकता कि तब कांग्रेस क्या करेगी। पर मैंने बाबू भगवानदासको वचन दिया है कि मैं स्वराज्यके सम्बन्धमें अपनी योजना निश्चित ही प्रकाशित करूँगा। मैं जानता हूँ कि स्वराज्य सम्बन्धी मेरी कल्पनाके बारेमें लोगोंके दिमागमें तरह-तरहकी धारणाएँ हैं। मैं सिर्फ इतना चाहता हूँ कि मुझे थोड़ा समय दिया जाये। तबतक मैं अपने सम्माननीय देशवासियोंको यह यकीन दिला देना चाहता हूँ कि पूंजीपतियोंके खिलाफ मेरे मनमें कोई बात नहीं है। मैं हिंसामें विश्वास नहीं करता, इसलिए मेरे मनमें उनके विरुद्ध कोई योजना हो ही नहीं सकती। मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि पूंजीपति — और मजदूर भी — पूरी तरह ईमानदारी बरतें। मैं ऐसे पूंजीवादका जरूर विरोध करूँगा जो मुट्ठी-भर लोगोंके लाभके लिए देशकी सम्पत्तिका शोषण करनेका साधन बनाया जाता हो। फिर चाहे वे पूंजीपति विदेशी हों चाहे देशके। पर हम पहलेसे ही किसी योजनाकी कल्पना न करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

१. (१८६९-१९५८); लेखक, दार्शनिक व काशी विद्यापीठके आचार्य।

२. इसमें गांधीजीसे अनुरोध किया गया था कि 'वे यंग इंडिया द्वारा इस बातका संकेत दें कि 'भारतको किस प्रकारके स्वराज्यकी जरूरत है।' पत्रके पूरे पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

७. पत्र: जी० ए० नटेसनको

पोस्ट अन्धेरी
८ मई, १९२४

प्रिय श्री नटेसन,

आपके हाथ की लिखावटके पुनः दर्शन हुए; आनन्द हुआ। आप जाते या लौटते हुए यहाँ अवश्य पधारें। यह तो किसी व्यक्तिने चकमा ही दिया है। भविष्यमें कुछ महीने तक मैं मद्रास न आ सकूँगा। अगर कभी आना सम्भव हुआ तो मैं यथाशक्य आपके ही पास ठहरना पसन्द करूँगा। मुझे दुःख है कि मैंने आपका भाषण नहीं पढ़ा और न आपके प्रस्तावके बारेमें ही मुझे कोई जानकारी थी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री जी० ए० नटेसन
'इंडियन रिव्यू'
मद्रास

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२३४) की फोटो-नकलसे।

८. पत्र: डाह्याभाई पटेलको

गुरुवार [८ मई, १९२४][1]

भाईश्री डाह्याभाई,

आपका पत्र मिला। आपके सम्मुख तो एक ही मार्ग है कि आपको जो कटु अनुभव हो रहे हैं उनके बावजूद आप अपना कार्य करते जायें। गोशालाओंके सम्बन्धमें आपके जो विचार हैं उनमें त्रुटि है। शहरोंमें गायें कौन रख सकता है? वहाँ दुबले-पतले पशुओंको कौन पालेगा? हाँ, गाँवोंमें गायें और भैंसें जरूर पाली जा सकती है। गोशालाएँ चलाना इसमें बाधक नहीं है।

सम्मेलनके[2] लिए मेरा सन्देश यह है:

"सम्मेलनका उद्देश्य आजतक किये गये कार्यका लेखा-जोखा और भविष्यके लिए कार्यक्रम तैयार करना हो।

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
२. धोल्का ताल्लुका सम्मेलन।

धुनाई, कताई, बुनाई इत्यादिके विषयमें अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। मेरे विचारसे यदि सम्मेलन इस दिशामें कुछ करता है तो यही माना जायेगा कि उसने धोलका तथा भारत दोनोंकी कीर्तिमें वृद्धि की है।

मैं यह माने लेता हूँ कि धोलकामें कोई अस्पृश्य माना जानेवाला मनुष्य है ही नहीं और वहाँके हिन्दू और मुसलमान भाई-भाईकी तरह रह रहे हैं।"

मैं तो बोरसद भी नहीं जा रहा हूँ। फिर आपके यहाँ कैसे आ सकता हूँ?

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री डाह्याभाई पटेल
ताल्लुका समिति
धोलका

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६८८) से।
सौजन्य : डा० एम० पटेल

९. पत्र : देवचन्द पारेखको[1]

अन्धेरी
गुरुवार [८ मई, १९२४][2]

भाईश्री,

आपका पत्र मिला। मैंने आपसे यह बात जोर देकर कही थी कि मेरी रायको कोई महत्त्व न दिया जाये। जो सब भाइयोंको अनुकूल हो वही प्रस्ताव पास किया जाना चाहिए। मैंने 'नवजीवन के लिए एक लेख[3] लिखकर भेजा है। कदाचित् उससे इस सम्बन्धमें कुछ अधिक प्रकाश पड़ेगा। मैं विशेष विचार तो सब भाइयोंसे मिलने और बात समझनेके पश्चात् ही कर सकता हूँ। मेरी रायपर ही सब-कुछ छोड़ देना हरगिज ठीक नहीं है। आप लोग ही सब बातोंपर विचार करके जो ठीक जँचे वह करनेके लिए लोगोंसे क्यों नहीं कहते?

मोहनदासके वन्देमातरम्

देवचन्दभाई पारेख
वरतेज

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ५६९०) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी के सहपाठी और मित्र; काठियावाड़के एक लोक-सेवक, जो उन दिनों काठियावाड़ राजनैतिक सम्मेलनसे सम्बद्ध थे।

२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

३. सम्भवतः "उतावला काठियावाड़", ११-५-१९२४।

१०. पत्र : वा० गो० देसाईको

अन्धेरी
गुरुवार [८ मई, १९२४][1]

भाईश्री ५ वालजी,

आपकी दूसरी लेख-सामग्री मुझे मिल गई है। आपको प्रूफ तो भेजे ही जायेंगे। पूरा हिमालय तो अभी हमें चढ़ना है, आपको नहीं। आप तो अपने बारेमें 'आधा हिमालय चढ़ गये' कह सकते हैं। जिन दिनों मेरा मुकदमा चल रहा था उन दिनों आपने जो लेख लिखा उसकी जानकारी तो आपको होनी चाहिए न कि मुझे। क्या मुझे अपने साथ जेलमें कोई कागज ले जानेकी इजाजत थी?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजी गो० देसाई

११. लाला लाजपतरायको भेजे गये तारका मसविदा[2]

[बम्बई
८ मई, १९२४ या उसके पश्चात्]

स्वप्नमें भी नहीं सोचा है। सहयोगके योग्य हृदय-परिवर्तन नजर नहीं आता।

गांधी

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

२. यह लाला लाजपतरायके उस तारके उत्तरमें था जो उन्होंने ७ मई, १९२४ को हैम्पस्टेड, इंग्लैंडसे भेजा था और जो गांधीजी को ८ मईको मिला था। तार इस प्रकार था: "तार आये हैं, उनसे सूचना मिली है कि आगामी कांग्रेसमें आप कौंसिलोंके जरिये सरकारके साथ सहयोग करनेका प्रस्ताव रखने जा रहे हैं, इससे बड़ी खलबली पैदा हो गई है। यदि यह सच नहीं है तो कृपया तार दें। क्रॉनिकलका तार आज पढ़ा।" डेली टेलीग्राफ, लन्दनमें भी, उसके कलकत्ता स्थित संवाददाता द्वारा भेजे गये पत्रमें निम्नलिखित सूचना छपी थी: "आगामी कांग्रेसमें महात्मा गांधीने इस कार्यक्रमके आधारपर स्वर्णनेतृत्व करनेका निर्णय किया है कि विधान-सभा तथा प्रान्तीय कौंसिलोंमें बहुमत प्राप्त करके बजटको व्यर्थ बनानेके स्थानपर एक ऐसा कार्यक्रम रखा जाये जिसमें आवश्यक सेवाओंके संचालनमें सहयोग किया जाये और साथ ही पर्याप्त बहुमतका समर्थन प्राप्त करके जल्दी-जल्दी अधिक सुधारोंकी माँग की जाये, उनका रूप बदला जाये और भारतीयकरणको, जिसमें सेना भी शामिल है, गति दी जाये।

तार द्वारा भेजा जानेवाला प्रस्तावित उत्तर मोतीलालजीको दिखाया जाये। यदि वे इस उत्तरका अनुमोदन करें तो इसे भेज देना चाहिए।[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७९० ए) की फोटो-नकलसे।

१२. पत्र : नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको

अन्धेरी
वैशाख सुदी ६ [१० मई, १९२४][2]

सुज्ञ भाईश्री,

आपने 'नवजीवन' में प्रकाशनार्थ जो पत्र भेजा था वह मुझे मिल गया है। उस पत्रसे यह झलकता है कि मैंने अपने लेखमें[3] आपका नाम जिस तरीकेसे प्रयुक्त किया वह आपको पसन्द नहीं आया। मैंने तो वह वाक्य स्नेह-भावसे लिखा था। मैं आपकी और भाई खबरदारकी साहित्य-सेवा तथा पाण्डित्यको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। फिर भी यदि आप ऐसा ही मानते हों कि मुझसे कोई थोड़ी भी त्रुटि हुई है तो क्या आप मुझे क्षमा नहीं कर देंगे? मैं आपके लेखको अवश्य प्रकाशित करूँगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
नरसिंहरावनी रोजनिशी

१. मसविदेके साथ गांधीजीकी उक्त टिप्पणी भी थी।

२. श्री नरसिंहरावके जिस पत्रका यहाँ उल्लेख है वह १८-५-१९२४ के नवजीवनमें प्रकाशित किया गया था। वैशाख सुदी ६, १० मईको थी।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५२७-५३०।

१३. पत्र : महादेव देसाईको

[११ मई, १९२४ के पूर्व][1]

उतावला काठियावाड़

आगामी परिषद्

अन्त्यज परिषद्

सत्याग्रह-शिविरमें भ्रष्टता

एक नम्र सेवकसे

बोहरोंका डर

ईद मुबारक

जाति सुधार

भाईश्री ५ महादेव,

ऊपर लिखे शीर्षकोंके लेख भेज रहा हूँ। अब कल कुछ भेजनेका विचार नहीं है। "सत्याग्रह-शिविरमें भ्रष्टता" लेखको वल्लभभाई देख लें। यदि वे इसे पसन्द न करें अथवा यह तुम्हें ठीक न लगे तो मत छापना।[2] यदि यह छापने योग्य न लगे तो भी मामलेकी जाँच पड़ताल कर लेना। आरोप भयंकर है।

स्वामीसे[3] कहना कि मैंने "सत्याग्रहका इतिहास" की नौ गैलियोंका प्रूफ देख लिया था और रविवारको दोपहरकी डाकसे वापस भी भेज दिया था। ये गैलियाँ तुमको सोमवारको मिल जानी थीं। जो मनुष्य डाक लेकर गया था उसने गफलत की हो तो नहीं कह सकता। यदि न मिली हों तो तार देना। यदि मिल गई हों और लिफाफा रख छोड़ा हो तो उसपर लगी डाकखानेकी मुहरकी तारीख ध्यानसे देख लेना।

वह अनाविल गाय[4] बच गई या कसाईको सौंप दी गई?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

स्वामीसे कहना कि जिस प्रकार मैं उसके बारेमें फिक्र नहीं करता उसी तरह मेरे बारेमें वह चिन्ता न किया करे। मुझे जितनी सहायता या सुविधाकी आवश्यकता होगी, माँग लूँगा। थोड़ी-बहुत बकझक तो जरूर करूँगा। आदमी जैसे-जैसे बूढ़ा होता है, अधिकाधिक बकझक करने लगता है।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७९७) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रके साथ भेजे गये सातों लेख ११-५-१९२४ के नवजीवनमें प्रकाशित हुए थे।

२. यह लेख प्रकाशित नहीं किया गया था।

३. स्वामी आनन्द।

४. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६० ।

१४. उतावला काठियावाड़

अनेक मित्रोंका कहना है कि काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के[1] सम्बन्धमें मेरे द्वारा व्यक्त विचारोंसे कुछ क्षोभ उत्पन्न हुआ है। जबसे मैंने इन तीनों पत्रोंका[2] सम्पादन हाथमें लिया है तबसे मेरा अखबार पढ़ना प्रायः बन्द ही हो गया है। परन्तु मित्रगण तो मेरी चिन्ता रखते ही हैं। वे उन बातोंकी ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते हैं जिन्हें जानना मेरे लिए जरूरी है।

मैंने लोगोंको यह कहते हुए भी सुना है: "यह गांधी — अपनी इच्छासे निर्वासित गांधी — श्री पट्टणीके[3] चक्करमें आ गया है और उसने काठियावाड़की जागृतिका सत्यानाश कर दिया है। यदि पट्टणीजी, जो दांव-पेंचके बलपर ही इस ओहदे तक पहुँचे हैं, भंगियों और जुलाहोंमें विचरनेवाले लँगोटीधारीको एक दांवमें चित्त कर दें तो इसमें आश्चर्य क्या है?" जिस प्रकार मैंने इसी अंकमें दूसरी जगह अब्बास साहबके पत्रका भावार्थ दिया है उसी प्रकार यह भी लोगोंके कथनका भावार्थ ही है। ठीक यही शब्द किसीने नहीं कहे। परन्तु पाठक इस बातपर विश्वास रखें कि जो शब्द कहे गये हैं, ऊपर उन्हींका भावार्थ दिया है। बम्बईमें रहनेवाले काठियावाड़ी कहते हैं, "गांधीने तो गुड़-गोबर कर दिया है।"

परन्तु सच बात यह है। पट्टणीजीमें लोग जितने समझते हैं उतने दांव-पेंच नहीं हैं। सत्याग्रहीको दांव-पेंचमें फँसानेके लिए पट्टणीजी-जैसे कुशल काठियावाड़ीको भी दूसरी बार जन्म लेना पड़ेगा, और वह भी सत्याग्रही होकर। सत्याग्रहीके शब्द-कोषमें हार अथवा इससे मिलता-जुलता कोई शब्द नहीं होता। ऐसा कहा जा सकता है कि एक सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रहीको हरा सकता है; किन्तु ऐसा प्रयोग करना तो 'हार' शब्दके अर्थका अनर्थ करना ही माना जा सकता है। जब सत्याग्रही अपनी भूल देखता है तब झुकता है और झुककर भी ऊँचा उठता है। यह उसकी हार नहीं कही जा सकती।

मेरी दृढ़ मान्यता है कि मेरे सामने पट्टणीजीने इस निर्णयतक पहुँचनेमें जो-कुछ भी किया है वह सभी उनके और काठियावाड़के लिए शोभनीय है। पट्टणीजीको दांव-पेंचसे काम लेनेकी जरूरत ही नहीं थी। मैंने जिन कारणोंसे उक्त विचार व्यक्त किये थे, वे सभी कारण मैं पेश कर चुका हूँ। उनके अतिरिक्त कोई अन्य कारण मुझे याद नहीं आता।

यदि मैं किसीके प्रभाव अथवा प्रेमके वशमें आकर सत्यपथ छोड़ दूं तो मैं जानता हूँ कि मैं किसी कामका नहीं रहूँगा। मुझे आत्महत्या प्रिय नहीं है; अतः मैं एकाएक सत्यपथ छोड़नेकी मूर्खता नहीं कर सकता।

१. भावनगरमें जनवरी १९२५ में आयोजित।

२. नवजीवन (गुजराती), यंग इंडिया और हिन्दी नवजीवन।

३. प्रभाशंकर पट्टणी (१८६२-१९३५)।

सत्याग्रहका हेतु पूर्णतः शुद्ध होना चाहिए। जब पोरबन्दरमें भावनगर परिषद् करनेकी सिफारिश की गई तब थोड़ी-बहुत अविनय तो अवश्य हो गई। जो कुछ हुआ है उसके सम्बन्धमें मैंने बहुत ही नरम शब्द "अविनय" का प्रयोग किया है। सत्याग्रहका यह अनिवार्य नियम ही है कि सत्याग्रही का "केस" दूधकी तरह निर्मल होना चाहिए। जिस प्रकार थोड़ा भी दूषित हो जानेपर दूध अग्राह्य हो जाता है उसी प्रकार किंचित् दोषमय सत्याग्रह भी त्याज्य है। इस कारण कठोर विशेषणका प्रयोग जरूरी ही नहीं था।

दूसरा कारण भी इतना ही सबल है। मुझे यह मालूम ही न था कि कार्यकर्त्ता [सत्ताकी कुछ] शर्तें कबूल करके परिषद् करना चाहते हैं। मैं यह कितनी ही बार कह चुका हूँ कि मैं ऐसे कामोंमें शर्तें कबूल करनेके खिलाफ हूँ। एकाध बार परिस्थितिवश शर्तें कबूल करना आवश्यक हो जाये तो अलग बात है। परन्तु जहाँ एक बार शर्तें कबूल करनेकी नीति. मान ली गई वहाँ वह बात सत्याग्रहका विषय नहीं रहती। यदि शर्तों-पर परिषद् बुलाना कबूल करें तो फिर सोनगढ़में परिषद् करनेकी बात क्यों न मानें। शर्तं कबूल करनेमें हेतु यह था कि अभी जन-जीवन दूसरी तरहसे जाग्रत नहीं हो सकता। यह हेतु निरर्थक या दोषयुक्त नहीं है। दूसरी जगह परिषद् करनेमें भी हेतु तो यही होता। यह कोई नियम नहीं है कि सत्याग्रह करें तो परिषद् होनी ही चाहिए। सत्याग्रही तो मरते दमतक लड़ता है। सत्याग्रहमें यह विचार गृहीत है कि सत्याग्रहीके लड़ते-लड़ते मर जानेमें उसकी विजय ही है। यदि सत्याग्रही सत्याग्रह करते हुए जेल भेज दिया जाता है तो समझिए कि उसने अपना काम पूरा कर लिया। परन्तु उन्हें लगा कि परिषद् तो नहीं हुई और इस समय हेतु यही था कि चाहे जैसे हो परिषद् तो की ही जानी चाहिए। परिषद् अपनी शर्तोंपर बुलाई जा सके तो ठीक, अन्यथा नहीं। सत्याग्रहकी भावना तो यही है। येन केन प्रकारेण परिषद् करना सत्याग्रहकी भावना नहीं हो सकती। लोग सरकारके मनका स्वराज्य पानेके लिए सत्याग्रहकी तैयारी नहीं कर रहे हैं। वे तो अपने मनका स्वराज्य लेनेके लिए प्रचंड शक्तिका संचय कर रहे हैं। बिना शर्त परिषद् करनेका निश्चय कर लेनेपर ही काठियावाड़के सम्मुख सत्याग्रह करनेका कर्त्तव्य उपस्थित होगा। शर्तके साथ परिषद् करना सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो पैसेके बदले कौड़ी लेनेके समान हुआ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि शर्त न हो तो सत्याग्रहीको गालियाँ देनेका इजारा ही मिल गया। वह सत्याग्रही क्या जो नम्रता और विनयको छोड़ दे। वह खुद अपनी मर्यादाको जानता है अतः वह दूसरोंकी मर्यादाको माननेसे इनकार नहीं करता। किन्तु वह खुद अपनी मर्यादा आँकनेमें बड़ी सख्तीसे काम लेता है।

यदि परिषद्का काम इस साल शुद्ध विनयके साथ सम्पन्न हो और विरोधियोंको भी 'वाह-वाह' करनी पड़े; फिर भी यदि अगले वर्ष शर्तोंके रूपमें अथवा दूसरे रूपमें विघ्न आयें तो सत्याग्रहियोंका "केस" इतना शुद्ध और मजबूत हो जाता है कि उसके खिलाफ कोई कुछ कह नहीं सकता। यदि उस समय कोई सत्याग्रह करना चाहेगा तो उसे रण-भूमि तैयार मिलेगी।

परन्तु "आजका सारा जोश ठंडा पड़ गया तो फिर सत्याग्रही कहाँसे आयेंगे?" ऐसा कहनेवाले भले और भोले काठियावाड़ी आज भी दिखाई देते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि सत्याग्रह भाँगका नशा नहीं है। सत्याग्रह मनकी तरंग नहीं है। सत्याग्रह तो अन्तर्नाद है। वह समय बीतनेसे मन्द नहीं पड़ता, बल्कि तीव्र होता है। जो दब सके सो अन्तर्नाद नहीं, उसका आभास-मात्र है। उसको मृगजलकी तरह समझना चाहिए। सत्याग्रही उसीको कह सकते हैं जो अगले साल भी कटिबद्ध मिले। काठियावाड़की भूमिमें तो राजपूत और काठी लोग जन्मभर खेतोंके लिए लड़े हैं। बरडाके बाघ, रमूल[1] माणिक[2] और जोधा माणिकने सारी एजेन्सीको[3] कँपा दिया था। उनका जोश एक क्षणमें उमड़ता और एक क्षणमें ठण्डा नहीं होता था। मोर[4]-जैसा डाकू बरसोंतक अकेला लड़ा। किन्तु ये सब तुच्छ स्वार्थके लिए लड़े थे। फिर काठियावाड़की सारी प्रजाके कष्टोंका भार उठानेवाले सत्याग्रहियोंके शान्त और निर्मल आग्रहका माप कितना अधिक होना चाहिए, इसका उत्तर आक्षेपकर्त्ताओंको त्रैराशिक गणित लगाकर वे खुद ही दें।

परन्तु यह भी कहा जा रहा है, "पट्टणीजीका हुक्म तो देखिए, उन्होंने जरा-सी कलम हिलाकर अपने मनमाने कानूनमें दस-बीस नये जुर्म जोड़ दिये हैं। और फिर इन कृत्रिम अपराधोंके लिए छः-छः महीनेकी सजाएँ। इस प्रकार 'बादूके आम'-जैसे कानून तो सरकार भी न बना पाती। ऐसा घोर जुल्म होते हुए भी सत्याग्रह न करना और सोनगढ़में परिषद् करना कहाँका न्याय है?" इस कथनमें जो दोष हैं सो भी स्पष्ट हैं। यदि हमें इस कानूनके खिलाफ सत्याग्रह करना हो तो यह कानून अवश्य सत्याग्रह करनेके लायक है। परन्तु हम तो परिषद्के सम्बन्धमें सत्याग्रह करनेकी बात कर रहे हैं। यदि परिषद् करनेके अपराधमें फाँसीका हुक्म भी दिया जाये तो सत्याग्रही उससे तनिक भी भयभीत होनेवाला नहीं है। ऐसा हुक्म निकालनेवाला अवश्य लज्जित होगा। यदि पूर्वोक्त हुक्म देनेपर पट्टणीजीकी निन्दा करनेके लिए कोई संस्था बनाई जाये और यदि केवल सत्याग्रहके अनुकूल गालियाँ देनेका नियम रखा जाये तो उसमें अपना नाम मैं भी लिखाऊँगा। मैं यह जरूर मानता हूँ कि यह हुक्म बेहूदा है। यदि भावनगरके फौजदारी कानूनमें परिषद् करना जुर्म न हो तो उन्हें उचित था कि वे अपनी नौकरी गँवाकर भी परिषद् होने देते। परन्तु ऐसे मनमाने कानून बनाना अकेले पट्टणीजीकी ही खासियत नहीं है। यह चीज तो काठियावाड़के वातावरणमें ही मौजूद है। हम यह चाहते हैं कि पट्टणीजी इस वातावरणसे ऊँचे उठें। परन्तु हम इस समय पट्टणीजीकी नीतिके चौकीदार नहीं हैं। जब काठियावाड़की ऊँची भूमिपर शुद्ध सत्याग्रहियोंकी फसल लहलहायेगी तब पट्टणीजी-जैसे लोगोंके आसपासका अत्याचारमय वातावरण गायब हो जायेगा। यदि उस समय वे भी सत्याग्रही हो जायें तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

यदि पट्टणीजी तथा खुद राजा लोग हीनतापूर्ण वातावरणमें न रहते हों तो वे पूर्वोक्त प्रकारका हुक्म ही न दे सकें। परिषदें करना प्रजाका हक होना ही चाहिए।

१ व २. प्रसिद्ध बागी सरदार; इन्होंने ब्रिटिश राज्यकी स्थापनाका विरोध किया था।
३. पश्चिम भारत रियासती एजेन्सी, राजकोट।
४. मोवर; देखिए "पत्र: महादेव देसाईको", १२-५-१९२४।

उसके बिना राजाको जनताकी रायका अन्दाज नहीं लग सकता। प्रजाको राजाकी नुक्ताचीनी करने और उसे खरी-खोटी सुनानेका हक है और राजाको ऐसा करनेवालोंको दण्ड देनेका हक है। रामचन्द्र-जैसा राजा हो तो अपनेको गालियाँ देनेवालेको कभी दण्ड न दे। उन्होंने तुच्छ धोबीतक को दण्ड नहीं दिया। उलटे उन्होंने सीता-जैसे अमूल्य स्त्री-रत्नको तत्काल त्याग देनेमें तनिक भी आगा-पीछा नहीं किया। और ऐसे संकोच-हीन रामको आज मुझ-जैसे असंख्य हिन्दू पूजते हैं। प्रजाकी स्तुतिसे राजाओंका पतन हुआ है। यदि वे प्रजाकी गालियाँ सुनने लगें तो उनकी उन्नति अवश्य हो।

गालियाँ देनेका हक पाकर भी गालियाँ न देना सत्याग्रहीका धर्म है। मैं चाहता हूँ कि सोनगढ़में इस धर्मका पालन पूरी-पूरी तरह किया जाये।

परिषद्में काठियावाड़ी क्या-क्या कर सकते हैं, हम इस सम्बन्धमें अगले सप्ताह विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१५. आगामी परिषद्

बोरसदमें होनेवाली (गुजरात प्रान्तीय) परिषद्[1] बहुत महत्त्वपूर्ण है। १९२० ईसवीमें गुजरातकी प्रान्तीय परिषद्ने कांग्रेसका काम आसान कर दिया था।[2] वैसा ही अवसर गुजरातको फिर प्राप्त हुआ है।

ऐसे सुअवसरपर मैं उपस्थित न हो सकूँगा, यह मेरे लिए दुःखकी बात है। मुझे आशा थी कि मैं खुद जाकर बोरसदके लोगोंको उनकी महान् विजयपर[3] बधाई दूँगा। परन्तु सब भाई-बहन मेरी शारीरिक स्थितिका विचार करके मुझे क्षमा कर ही देंगे, ऐसा भरोसा है। मैं इस मासके अन्ततक आश्रम पहुँच जाना चाहता हूँ।[4] परन्तु मेरी समझमें दौरेपर निकलने लायक ताकत आनेमें अभी वक्त लगेगा। फिलहाल मेरा शरीर ऐसा नहीं है कि वह यात्राओं, जुलूसों और शोरगुलको बरदाश्त कर सके। मुझे अपना आश्रम पहुँच जाना आवश्यक मालूम होता है। फिर भी कोई यह न समझे कि मैं गुजरातमें आ गया हूँ। फिलहाल तो मैं अहमदाबादमें भी कहीं आ-जा न सकूँगा। जिस प्रकार मैं जुहूमें हवा-परिवर्तनकी दृष्टिसे रुका हुआ हूँ और

१. १३ मईको काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें होनेवाली सातवीं गुजरात राजनीतिक परिषद्।

२. चौथी गुजरात राजनीतिक परिषद्ने अगस्त, १९२० में अहमदाबादमें असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया था, यद्यपि विरोधी पक्षका कहना था कि मुख्य संस्था, कांग्रेससे आगे बढ़कर प्रान्तीय परिषद् ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत नहीं कर सकती। कांग्रेसने असहयोगका प्रस्ताव सितम्बर, १९२० में कलकत्ता अधिवेशनमें स्वीकृत किया था।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४०७-४०९।

४. गांधीजी २९ मई, १९२४को साबरमती आश्रम पहुँच गये थे।

कहीं जाता-आता नहीं हूँ, उसी प्रकार मैं आश्रममें भी, बना तो तीन मास, अर्थात् अगस्तके अन्ततक चुप पड़ा रहना चाहता हूँ।

अब्बास साहब दिनपर-दिन जवान ही होते जा रहे हैं। उनका उत्साह बढ़ता जाता है। वल्लभभाईकी और गुजरातकी नाक कटवा देना उन्हें सहन नहीं है। उनके पास कार्य-कुशल चेले हैं। उन्हें उनके ऊपर अभिमान है और मुझे तो हुक्म ही दे रहे हैं—"आप अभी गुजरातमें न आयें। आपकी झोली बहुत बड़ी है। हमारे लिए उसे पूरा भर देना लाजिमी है। यदि आप यह गरूर रखते हों कि आप ही रुपये जुटा सकते हैं तो हम उसे चूर कर देंगे। दूसरे लोग भले ही यह मानते रहें कि आपके बिना काम न चलेगा, अकेले आप ही सत्याग्रहका संचालन कर सकते हैं और छोटी-बड़ी सब बातोंमें आपकी सलाह लेना जरूरी है; परन्तु हम गुजराती ऐसा नहीं मानते। हमने आपके बिना भी आपसे अच्छा सत्याग्रह करके दिखा दिया है। खुद आप ही यह बात कबूल करते हैं। आपके बिना हम रुपया एकत्र कर सकते हैं; चरखेका प्रचार कर सकते हैं, यह बात भी आपको कबूल करनी होगी।" पाठक यह न समझें कि हूबहू ये ही शब्द उनके पत्रमें हैं। उनका पत्र तो है अंग्रेजीमें। वे खुद गुजराती होनेकी डींगें तो खूब हांकते हैं, परन्तु गुजराती मुझसे भी खराब लिखते हैं—इतना मैं भी कह सकता हूँ। परन्तु अब्बास साहब ठहरे दुधारू गाय। अतः उनकी गुजरातीकी टीका-टिप्पणी कौन कर सकता है? और जो अंग्रेजीमें लिखता है उसकी गुजरातीकी टीका-टिप्पणी किस तरह की जा सकती है? मैंने उनके अंग्रेजी पत्रका भावार्थ पाठकोंके सम्मुख रखा है। यदि यह भावार्थ सही न हो तो जो भावार्थ वे स्वयं भेजेंगे उसे मैं 'नवजीवन'में प्रकाशित करके उनसे माफी माँगनेके लिए तैयार हूँ।

परन्तु इतनी बात तो तय है कि यदि अपनी तन्दुरुस्तीके खयालसे नहीं तो अब्बास साहबकी प्रतिष्ठाकी खातिर, जबतक झोली पूरी न भर जाये, तबतक मुझे आश्रममें ही चुपचाप पड़े रहना पड़ेगा और तबतक तमाम गुजरातियोंको यह मानना होगा कि मैं अभी गुजरात आया ही नही हूँ। बोरसदके लोगोंको तो मेरी जरूरत हो नहीं सकती। यदि मैं वहाँ जा सका तो वह अपने स्वार्थके लिए ही होगा। अब हमारी परिषदें बिल्कुल अमली होनी चाहिए। जहाँ कामसे काम हो वहाँ जलसों आदिकी गुंजाइश नहीं होती। हर परिषद्में बड़े-बड़े लोगोंको एकत्र करनेका जमाना गया। इसमें उनका वक्त जाता है, फिजूल रेल किराया लगता है और स्थानीय लोगों-का ध्यान कामकाजसे खिचकर स्वागत-सत्कारकी ओर जाता है; तमाशबीनोंका भब्बड़ होता है सो अलग। किसी समय यह सोचना ठीक था कि बड़े-बड़े लोगोंके आनेसे ऐसे लोग भी आकर हमारे काममें दिलचस्पी लेंगे जो अबतक नहीं आते हैं, परन्तु आज वह बात नहीं रही। हमें जनताके उस भागका ध्यान उसकी सेवा करके खींचना चाहिए। बोरसदके सत्याग्रहने जितने लोगोंको आकर्षित किया है उतने लोगोंको तो सारे हिन्दुस्तानके तमाम नेता आते तो भी आकर्षित न कर पाते।

असल बात यह है कि जितनोंको हम खींच पाये हैं उनकी सेवा भी हम पूरी-पूरी नहीं कर पाये। वे खुद अभी कार्यकर्त्ता नहीं बन पाये हैं। वे जब स्वयं

कांग्रेसके शान्ति और सत्यके रास्तेपर चलने लगेंगे और असहयोगका पाठ पूरी तरह समझ पायेंगे तभी उनकी हवा औरोंको भी लगेगी।

हमें संख्या-बलकी जरूरत थी। सो हमारे पास है। अब हमें गुण-बलकी जरूरत है। अब हमें जाँचना है कि इनमें से खरे सिक्के कितने हैं। इसकी परीक्षा हम केवल कार्य कर-कराके ही कर सकेंगे।

हमने बारडोलीमें कोई शिकस्त नहीं खाई है। एक जगह[1] कमजोरी देखकर समझसे काम लिया है और सच्चे सैनिकोंकी तरह उस कमजोरीको दूर करनेके लिए रुक-भर गये हैं। परन्तु हमें जो काम बारडोलीमें करना था वह आज भी करना बाकी है। लेकिन बारडोलीके समय पास होनेके लिए जितने नम्बर काफी थे उतने आज काफी नहीं। आज तो ज्यादा नम्बरोंकी दरकार है; क्योंकि हमें तैयारीका समय ज्यादा मिला है; आज हमारा काम अधिक मुश्किल है और हमारे सम्मुख अकल्पित विघ्न आकर खड़े हो गये हैं। हममें दलबन्दी हो गई है। हिन्दू और मुसलमानोंकी मित्रता शिथिल हो गई है। अतः अब हमें अधिक बलकी आवश्यकता है।

हमें बोरसदकी परिषद्में इस प्रश्नका जवाब देना है। इस विषयपर प्रस्ताव स्वीकार किया जाये या नहीं, यह वल्लभभाई जानें। सूत्रधार वे ही हैं। मैं तो दूर बैठकर नुक्ताचीनी करनेवाला हूँ। मैं सिर्फ इतना ही जानता हूँ और सुझाता हूँ कि यह काम आगे-पीछे करना जरूर होगा।

हाँ, स्वराज्य लेनेके लिए एक शर्तपर सविनय अवज्ञा जरूरी नहीं होगी। यदि हिन्दुस्तानका ज्यादातर भाग रचनात्मक कार्यक्रमके तमाम अंगोंको पूरी तरह विकसित कर सके तो इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। सत्याग्रह एक प्रकारका डमा[2] है। वह सोये हुएको जाग्रत करता है और निर्बलको बल देता है। यदि थोड़े भी लोग कुरबानीके लिए तैयार हों और दूसरे लोग उनके उद्देश्यको समझते हों और पसन्द करते हों — भले ही वे स्वयं कुरबानीके लिए तैयार न हों — तो भी सत्याग्रही यज्ञकी अग्निको प्रज्वलित करता है और उसमें अपनी आहुति देता है।

मेरी यह धारणा भी है कि यदि सारा गुजरात ही इस दृष्टिसे सर्वांग सम्पूर्ण हो जाये तो भी सविनय अवज्ञाकी जरूरत न होगी। सर्वांग सम्पूर्ण होनेका अर्थ है सविनय अवज्ञाकी पूरी योग्यता प्राप्त करना। ऐसी योग्यता रखनेवाले लोगोंका मुकाबला करनेकी इच्छा कोई नहीं कर सकता; बोरसदने हमें यह भी दिखा दिया है। बोरसदकी अपने कार्यके लिए आवश्यक तैयारी इतनी पूर्णताको पहुँच गई थी कि सरकारको मुकाबला करनेकी जरूरत ही नहीं मालूम हुई। फिर सत्याग्रहमें तो हृदय-परिवर्तनकी बात है। विरोधीको जहाँ यह विश्वास हुआ कि हमारे साधन सच्चे हैं वहाँ वह अपना बल आजमानेकी इच्छा ही नहीं करता। अभी सरकारको हमारे सत्य या हमारी शान्तिके विषयमें सन्देह है, यही नहीं, बल्कि उसपर उसका विश्वास ही नहीं बैठता। यदि अंग्रेज आज निःशस्त्र हो जायें तो क्या वे हमारे बीच सुरक्षित

१. यह कदाचित् चौरीचौराकी घटनाकी ओर संकेत है।
२. रोग दूर करनेके लिए दागनेका उपाय।

रह सकते हैं? अभयदान सत्याग्रहीकी प्रथम परीक्षा है। इसमें हममें से कितने लोग पास हो सकते हैं? अतएव हमें दो वर्ष पहलेकी स्थितिसे आगे नहीं बढ़ना चाहिए और गुजरातके एक ही ताल्लुके या जिलेको तैयार करनेपर अधिक जोर देना चाहिए।' मैं मानता हूँ कि ऐसा ताल्लुका फिलहाल तो बोरसद भी नहीं है। बारडोली होना चाहिए। परन्तु वह कहां है? हम बोरसदके स्थानिक सत्याग्रहके लिए जिस कम तैयारीसे काम चला सके, उसके बलपर हम स्वराज्यका बीड़ा नहीं उठा सकते।

मैं ऐसी तैयारीकी शर्तें यहां दे रहा हूँ:

१. तैयार ताल्लुकेका लगभग हरएक स्त्री-पुरुष ताल्लुकेमें ही कती-बुनी खादी पहनता हो।
२. शराब और अफीमका त्याग इस हदतक हो कि वहाँ इन चीजोंकी एक भी दुकान न हो।
३. वहां हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पूरी दिली मुहब्बत हो।
४. वहां अन्त्यज लोग अछूत न माने जाते हों, इतना ही नहीं; बल्कि उनके बालकोंको राष्ट्रीय पाठशालाओंमें शिक्षा पाने और आम कुओंसे पानी भरने तथा मन्दिरोंमें दर्शन करनेकी पूरी स्वतन्त्रता हो।
५. वहां जगह-जगह राष्ट्रीय पाठशालाएँ हों।
६. वहां अदालतोंमें शायद ही कोई मामला जाता हो और आपसी लड़ाई-झगड़ोंके फैसले पंचोंकी मार्फत ही किये जाते हों।

सच पूछें तो ऐसी तैयारी करनेके लिए बोरसदको तैयार होना चाहिए और यदि वह तैयार न हो तो उसे तैयार होनेका निश्चय करना चाहिए।

आनन्द ताल्लुकेके लोगोंने तो बारडोलीके समय अर्थात् १९२१ में ऐसी तैयारी कर लेनेका प्रस्ताव किया था। किन्तु वह आनंद शायद आज तैयार नहीं है; परन्तु क्या वह इसकी तैयारी करनेके लिए भी तैयार है? मैं आशा करता हूँ कि बोरसदमें विलायती या देशी मिलोंके कपड़ेका एक टुकड़ा भी नजर नहीं आयेगा। यदि आये भी तो सिर्फ सरकारी नौकरों आदिके शरीरोंपर। मैंने सुना था कि मण्डप बनानेके सम्बन्धमें कुछ कठिनाई हो रही है। यह भी सुना था कि खादीके मण्डपमें खर्च बहुत आनेके कारण मिलके कपड़ेसे मण्डप बनानेकी बात उठी थी। "महँगी होनेपर भी खादी सस्ती है और दूसरा कपड़ा मुफ्त मिलनेपर भी महँगा है" यह पाठ हम जबतक न पढ़ लेंगे तबतक हम पूर्णतः खादीमय नहीं हो सकते। यदि हमें हिन्दुस्तानके गरीबोंसे अपना तादात्म्य करना हो तो खादी महँगी है या सस्ती, महीन है या मोटी, यह सवाल हमारे मनमें उठना ही नहीं चाहिए। यदि पड़ता न बैठे तो हम नंगे रहनेके लिए तैयार रहें, परन्तु दूसरा कपड़ा देहसे हरगिज न छुआयें। इसी प्रकार यदि खर्चके लिए रकम न हो तो हम बिना मण्डपके ही काम चला लें। हमारा मण्डप तो तारे रूपी रत्नोंसे जटित आकाश है। जहां समयपर मेह बरसता हो वहां मण्डपकी बहुत जरूरत नहीं रहती। हम वहां बांसोंकी चौहदी बनाकर अपना काम चला लें। जो कला-रसिक हों वे इसमें अपना कला-कौशल भी दिखा सकते हैं। सभाएं सुबह-शाम

की जायें। दिनमें दूसरे काम करने हों तो वे भी किये जा सकते हैं। हजारों लोगोंके लायक विशाल मण्डप बनानेके लायक रुपया हमारे पास आये भी कहाँसे!

बोरसदमें पण्डित मोतीलालजी और अन्य महान् नेताओंके आनेकी सम्भावना है। उनके और हमारे बीच शायद मतभेद हों। भले ही हमारे एक बड़े भागको कौंसिल-प्रवेश पसन्द न हो; परन्तु ऐसी हालतमें हमें कौंसिल-प्रवेशके हिमायतीका अधिक आदर करना चाहिए। जिससे मतभेद हो उसका तिरस्कार सत्याग्रही कभी नहीं करता। यदि वह उसे जीतना चाहता है तो बुद्धि और प्रेमके बलपर जीतता है। बुद्धि धैर्य धारण किये रहे और प्रेम प्रतिष्ठाका ध्यान रखे। जहाँ मतभेद हो वहाँ हृदय भी अलग हो जायें तो स्वराज्यकी गाड़ी चल नहीं सकती। जो स्थिति पं० मोतीलालजी-जैसे मेहमानोंकी है वही गुजरातके स्वराज्यवादियोंकी है। हमारा आचरण ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे उन्हें कोई ठेस पहुँचे। विट्ठलभाई[1] कौंसिलमें गये और दूसरे गुजराती भी गये, इस कारण वे हमारे लिए कम आदरणीय नहीं हो जाते। हम करें तो वही जो हम ठीक समझते हों, परन्तु आदर हम सबका करें। सत्याग्रहीका शत्रु कैसा? सुना तो यह है कि कौंसिल-प्रवेशकी बातने गुजरातमें भी एक दूसरेके प्रति मनमुटाव पैदा कर दिया है। कोई कहता है कि इसमें स्वराज्यवादियोंका दोष है और कोई कहता है कि असहयोगियोंका। यदि यह कहावत सच हो कि ताली दोनों हाथोंसे बजती है तो थोड़ा-बहुत दोष दोनोंका ही होना चाहिए। कुछ असहयोगियोंका कथन है कि स्वराज्यवादियोंने असहयोगको ढीला बना दिया है। जो असहयोगी ऐसा कहता है उसपर इस बातका दायित्व है कि वह स्वराज्यवादियोंके प्रति मिठास अर्थात् विनय कायम रखे। फिर यह तो स्पष्ट ही है कि असहयोगियोंकी संख्या अधिक है और विनय कायम रखनेका भार हमेशा बहु-संख्यक पक्षपर होता है। मैं आशा रखता हूँ कि बोरसदकी परिषद् विनयका पदार्थपाठ पढ़ायेगी।

विनय कायम रखना एक बात है और विनय अथवा एकताके नामपर अपने विचारका त्याग करना दूसरी बात है। देशके सामने इस समय महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, कौंसिल-प्रवेशका। उसका फैसला जो-कुछ होना होगा, होगा। सेवकोंका तो यही काम है कि वे श्रद्धासे एकाग्र होकर अपना काम करते चले जायें। फसल तो जैसी चाहिए वैसी है; परन्तु वह काटनेवालोंके अभावमें खड़ी ही है। जरूरत है:

१. बुनाई-शास्त्रमें प्रवीण प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओं और कार्यकर्त्रियोंकी;
२. उद्यमी, निर्मल और जिज्ञासु शिक्षकोंकी; और
३. खास तौरपर अन्त्यजोंकी सेवा करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी।

इस किस्मके लोगोंकी कमी सारे देशमें है। यह कमी गुजरातमें भी है। उसकी पूर्ति किस तरह हो? इसका एक ही रास्ता है। हममें अपने कार्यके प्रति श्रद्धा और सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिए। स्वतन्त्रताका अर्थ यह नहीं है कि सब अधिकारी बन जायें। स्वतन्त्र तन्त्रमें सेवक, स्वार्थ साधनेके लिए नहीं, कर्तव्य समझकर सेवा करते हैं। परतन्त्रतामें सेवक पेट भरनेके लिए नौकरी करता है। स्वतन्त्रतामें तन्त्रकी

१. पटेल।

सेवा करना धर्म है और उसमें इज्जत है। परतन्त्रतामें जो नौकरी की जाती है वह अधर्म है और उसमें बेइज्जती है। जहाँ सब अधिकारी बनना चाहते हों और कोई किसीकी बात माननेके लिए तैयार न हो वहाँ स्वच्छन्दताका जो तन्त्र बन जाता है वह प्राणपोषक नहीं, प्राणघातक होता है। यदि बोरसदकी परिषद् गुजरातके लिए शुद्ध सेवकोंका दल मुहैया कर सके तो कहना चाहिए कि बहुत बड़ा काम हो गया।

परिषद्के सभापति कालेलकर[1] हैं। अन्त्यज परिषद्के सभापति मामा फडके[2] हैं। दोनों जन्मतः दक्षिणी हैं और स्वेच्छासे गुजराती बने हैं। इससे मेरी दृष्टिमें वे और भी अधिक दक्षिणी तथा और भी अधिक गुजराती हो गये हैं। महाराष्ट्रमें जो बातें अच्छी हैं उन्हें वे गुजरातको दे रहे हैं और गुजरातमें जो अच्छाई है उसे वे अन्तर्ग्रहण कर रहे हैं। महाराष्ट्र और गुजरात इत्यादि हिन्दुस्तानके अंग हैं और एक-दूसरेके पोषक हैं। पोषक होनेपर ही वे एक शरीरके अंग बन सकते हैं। अतः आशा है कि काका साहब और मामा साहबको गुजरात अच्छी तरह पहचानेगा और अपनायेगा। गुजरातको यह खयाल न करना चाहिए कि पराये तो आखिर पराये ही होते हैं। ऐसे विचारकी उत्पत्ति द्वेषके कारण होती है। हमें तो उलटे यह चाह रखनी चाहिए कि यदि महाराष्ट्र ऐसा कर सके तो अभी और कार्यकर्त्ताओंको हमारे यहाँ भेजे। सेवकके लिए तो सभी जगह क्षेत्र खुला पड़ा है। अपने पदका विचार तो नेताओंको ही करना पड़ता है। काका और मामा बिलकुल सेवा-परायण होकर गुजरातमें रह रहे हैं। गुजरातने उन दोनोंका अपूर्व सम्मान करके इसकी प्रतीति प्रकट की है और उनका सम्मान करके स्वयं अपना गौरव बढ़ाया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१६. टिप्पणियाँ

बोहरोंका डर

एक बोहरा सज्जन लिखते हैं।[3]

मैंने इस पत्रमें से ऐसी कितनी ही बातें निकाल दी हैं जो जुल्मोंको साबित करनेके लिए लिखी गई थीं। भूतकालके झगड़ोंको ताजा करनेसे किसीका लाभ नहीं। इन बोहरा बन्धुने जो प्रश्न उठाया है वह गम्भीर है; उसका हल उसे 'नवजीवन' में छाप देने या उसपर टीका-टिप्पणी कर देनेसे नही होता। हिन्दू-मुसलमान और ईसाई आदिके साथ 'बोहरा' जोड़ दिया जाये तो भी उससे सन्तोष होनेवाला नही है। एक अरसा हो गया, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी चर्चासे वातावरण गूंज रहा है; परन्तु

१. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।

२. विट्ठल लक्ष्मण फडके।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

वह है कहाँ? यह ऐक्य व्याख्यानोंसे सम्पन्न होनेवाला नहीं है। मेरी कमजोर कलम और जबान भी क्या कर सकती है? हर कौमको यह समझ लेना चाहिए कि ऐक्यमें ही हरेकका हित है, हरेकके धर्मकी रक्षा है; और उन्हें आपसमें शुद्ध प्रेम रखना चाहिए। उनमें धर्मान्धताकी जगह सहनशीलता आनी चाहिए और उन्हें सबसे बड़ी बात तो यह सीखनी चाहिए कि धर्मको निमित्त बनाकर या धर्मके नामपर एक दल दूसरे दलपर बलात्कार नहीं कर सकता। यदि हिन्दू और मुसलमान इतनी बातका भी पालन करें तो दूसरी कौमें अपने-आप निर्भय हो जाती हैं। वोहरोंका नाम अलग लेनेकी जरूरत तो कतई नहीं होनी चाहिए। वे भी मुसलमान हैं। यदि मुसलमान हिन्दुओंसे लाठियाँ लेकर लड़ना भूल जायें तो वे आपसमें लड़ना भी भूल जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच सच्ची यानी दिली सफाई हो जायेगी तो एक ही धर्मके जुदे-जुदे फिरकोंके बीच भी सफाई हो जायेगी। और यदि उसमें सफलता न मिली और हर मौकेपर एकको दूसरेसे लड़नेकी ही नौबत आती रही तो फिर हमें सदाके लिए गुलामी पसन्द करनी पड़ेगी। तब "सरकार बहादुर चिरंजीव रहे और हमें एक-दूसरेके गलेपर छुरी फेरनेसे रोकती रहे", सभी हिन्दुओं और मुसलमानोंका यह नया कलमा और नया धर्म होगा। देखना है कि हिन्दुओं और मुसलमानों — दोनोंमें से किसी एकमें भी अक्ल है या नहीं। आजकी हालत अधिक दिनोंतक नहीं टिक सकती; यह एक लाभ है। दोनों जातियाँ चार-छः महीनेमें जो निश्चय करेंगी उससे प्रकट होगा कि हिन्दुस्तानके भाग्यमें अगले पचास साल और गुलामी बदी है या थोड़े ही समयमें स्वराज्य मिलनेवाला है।

अन्त्यज परिषद्

गोधरा परिषद्के[1] बादसे हम (गुजरातमें) हर साल अन्त्यज परिषद् करते आये हैं। परन्तु इस वर्ष उसका महत्त्व अधिक है। इसका एक कारण तो यह है कि मामा फड़के उसके अध्यक्ष हैं; दूसरा यह है कि मैं जेलसे छूटकर आ गया हूँ। मैंने बारडोली और गुजरातमें चाहा था कि अस्पृश्यता तुरन्त ही मिट जाये। परन्तु वह अभीतक मिट नहीं सकी है। इसमें दैवके सिवा किसको दोष दें? अस्पृश्यताका पाप हिन्दू जातिकी रग-रगमें पैठ गया है। फलस्वरूप हम पापको ही पुण्य मान बैठे हैं। जिस बातको सारा संसार पाप-रूप मानता है और जिसके कारण हिन्दू जाति आज सारे संसारमें तिरस्कृत है, हमें उसमें कोई दोष दिखाई ही नहीं देता। पेटलाद[2] (गुजरात) के पास एक दुर्घटना हुई है। उसके सम्बन्धमें एक महाशय लिखते हैं:[3]

ऐसी दुर्घटना आज भी हो सकती है और वह भी पेटलाद स्टेशनपर! यह कोई विरल घटना नहीं है। ऐसी क्रूरता जहाँ-तहाँ देखनेमें आती ही रहती है। इस

१. सन् १९१८ की पहली परिषद्।

२. गुजरातमें आनन्द-खम्भात लाइनपर एक रेलवे स्टेशन।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है इसमें एक वैश्य यात्री द्वारा किसी अन्त्यज यात्रीके क्रूरताके साथ पीटे जानेका वर्णन था।

दर्दनाक स्थितिको समाप्त करनेके लिए सभी कांग्रेसी हिन्दुओंको अन्त्यज-रक्षक बन जाना चाहिए और जहां गाड़ियोंमें अन्त्यज दिखाई दें, उनके लिए उचित है कि वे उनकी पूरी तरह रक्षा करनेके लिए तैयार रहें। यदि कोई किसी अन्त्यजको पीटे तो वे बीचमें पड़कर उसकी मार अपनेपर झेल लें। यही सबसे आसान तरीका है। परन्तु इससे इस रोगकी जड़ें नहीं कट सकतीं। इसकी जड़ें काटनेके लिए तो अस्पृश्यता-निवारणको हलचल व्यापक बनाई जानी चाहिए। वह व्यापक तभी बन सकती है जब कांग्रेसके सदस्य खरे हों। अभी तो अस्पृश्यताकी बीमारी उनके भीतर भी घर किये है। कांग्रेसके कितने ही सज्जन अन्त्यजोंको राष्ट्रीय पाठशालाओंमें स्थान नहीं देते। उनका विश्वास कच्चा है। अन्त्यज परिषद् ऐसे शंकित चित्त लोगोंसे कांग्रेस छोड़ देनेकी प्रार्थना करे और अन्त्यजोंमें जागृति बढ़ाये। वह इस बातकी जांच करे कि उन्हें रेलमें सफर करनेमें क्या-क्या दिक्कतें पेश आती हैं और उनका इलाज खोजे। वह उन्हें बताये कि वे अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं।

उनके लिए पाठशालाएँ बढ़ाना, कताई-बुनाई आदिकी वृद्धि करना, और उन्हें शराब वगैरह छोड़नेकी प्रेरणा देना आदि काम भी इसके साथ हैं ही। हरेक कार्यमें विघ्न तो हुआ ही करते हैं; परन्तु यदि इस कार्यके लिए दृढ़ स्वयंसेवक मिल जायें तो अबतक जितना काम हुआ है उससे बहुत अधिक काम किया जा सकता है। यदि अन्त्यज परिषद् सच्चे सेवकोंकी संख्या बढ़ा सके तो यह काम बहुत ही मूल्यवान ठहरेगा।

'एक नम्र सेवक' से

एक लेखकने "एक नम्र सेवक"के नामसे पत्र लिखा है। उन्होंने अपना नाम प्रकट नहीं किया है। उनका ऐसा ही एक पत्र पहले भी आया था जिसे मैंने फाड़ दिया था। अब उनका यह जो दूसरा पत्र आया है, उसमें उन्होंने अपने पहले पत्रकी याद दिलाई है। उन्होंने यह नहीं लिखा है कि उन्होंने अपने पहले पत्रमें क्या बात पूछी थी। मेरा सामान्य नियम तो यह है कि गुमनाम पत्रोंकी ओर कोई ध्यान न दिया जाये। इस कारण इन 'नम्र सेवक'से मेरी नम्र विनय है कि यदि उनके प्रश्न महत्वपूर्ण हों तो उन्हें दोबारा लिख भेजें और नीचे अपने हस्ताक्षर करें।

ईद मुबारक

मुसलमान भाइयोंने मेरे नाम ईदके मुबारकबाद लिख भेजे हैं। मैं उनके इस प्रेमके लिए उनका शुक्रगुजार हूँ। मुझे यकीन है कि वे यह नहीं चाहते होंगे कि मैं हर भाईको अलहदा-अलहदा पत्र लिखकर धन्यवाद दूं। मैं चाहता हूँ कि उन्हें भी ईद मुबारक हो। इस समय, जब दोनों जातियोंमें अविश्वास फैल रहा है, जरा-सा शुद्ध प्रेम भी सूखी जमीनमें हरियालीकी तरह शोभा देता है। यदि ईदकी बधाईके पत्रोंमें सच्चा प्रेम है तो उसका चिह्न यह है कि मुझे पत्र भेजनेवाले भाई ऐसे काम करें जिनसे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें प्रेम-भाव बढ़े। मैं आशा रखता हूँ कि मुझे पत्र भेजनेवाले भाई जहाँ-तहाँ सुगन्धके बीज बोते रहेंगे।

जाति-सुधार

जाति-सुधारमें सत्याग्रहका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है इस विषयमें मैंने 'नवजीवन'में जो लेख[1] लिखा है उसे पढ़कर कुछ 'नवजीवन' प्रेमी चाहते हैं कि मैं 'नवजीवन'में जाति-सुधारको अधिक पल्लवित करूँ। इधर कुछ दूसरे लोगोंको भय है कि अब मेरा राजनैतिक काण्ड खतम हुआ और मैं राजनैतिक हलचलको समाज-सुधारका रूप देना चाहता हूँ। मैं जाति-सुधारके सवालको 'नवजीवन' में प्रधानता नहीं दे सकता। 'नवजीवन'का उद्देश्य है स्वराज्य। 'नवजीवन'का अस्तित्व केवल उसीके लिए है। समाज-सुधार मुझे प्रिय है। परन्तु मेरे पत्र-सम्पादनके वर्तमान कार्यसे उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जाति-सुधारका बहुत-सा काम व्यक्तियोंके जीवनसे और उदाहरणसे हो सकता है। परन्तु मैं समाज-सुधारको राजनीतिसे भिन्न नहीं मानता। जिस प्रकार नीति और धर्म राजनीतिमें अवश्य होने चाहिए उसी प्रकार समाज-सुधारके विषयमें भी कहा जा सकता है। जिस समाज-की भीतरी व्यवस्था दूषित है वह स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव मौका पड़नेपर ऐसे सुधारकी चर्चा भी 'नवजीवन'में की जा सकती है। सच पूछिए तो अस्पृश्यता-निवारण समाज-सुधारका प्रश्न है। परन्तु वह इतना व्यापक और आवश्यक है कि अब हम यह मानने लगे हैं कि उसका निपटारा किये बिना स्वराज्य मिलना ही असम्भव है। परन्तु जो सुधारक केवल जाति-सुधारके ही प्रश्नका विचार करते हैं उन्हें 'नवजीवन'की मर्यादा समझनी चाहिए और जिन लोगोंको यह डर है कि 'नवजीवन' स्वराज्य आन्दोलनको ताकपर धर देगा, उन्हें मेरे पूर्वोक्त विचारोंपर ध्यान देकर भय-मुक्त हो जाना चाहिए।

जाति-भोज

यह शादियोंका महीना है। विवाहके सिलसिलेमें जाति-भोज आदिमें बहुत खर्च किया जाता है। जिनके पास रुपया है वे जाति-भोज आदिमें खर्च न करें, यह कहना कुछ ज्यादती होगी। परन्तु ऐसे भोज अनिवार्य मान लिये गये हैं और इसलिए गरीब लोगोंपर उसका बोझ असह्य हो गया है। ऐसे भोज ऐच्छिक होने चाहिए — यही नहीं, खुद धनी लोगोंको मितव्ययी बनकर गरीबोंके सामने मिसाल पेश करनी चाहिए। यदि इससे बचा हुआ रुपया शिक्षा-प्रचार अथवा समाज या जातिके हितके अन्य कामोंमें लगाया जाये तो इससे जाति तथा सारे देशको लाभ हो। विवाहके समय जाति-भोजकी प्रथा बन्द करना केवल इष्ट है, परन्तु मृत्युके बाद किये जानेवाले जाति-भोजको बन्द करना आवश्यक है। मैं तो मृत्युके पश्चात् किये जानेवाले जाति भोजको पापरूप मानता हूँ। मुझे इस भोजमें कुछ भी तत्त्व दिखाई नहीं देता। भोज आनन्दका प्रसंग माना गया है। मृत्यु शोकका अवसर है। समझमें नहीं आता, ऐसे समय भोज किस प्रकार दिया जा सकता है। सर चिनूभाईके[2]

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४६१-६५

२. सर चिनूभाई माधवलाल, अहमदाबादके नगर-नेता।

स्वर्गवासके उपलक्ष्यमें होनेवाले भोजमें मैं भी उनके सम्मानार्थ उपस्थित हुआ था। उस समयका दृश्य, उस समय जुदी-जुदी जातियोंके बीच होनेवाले झगड़े और भोजमें सम्मिलित लोगोंका स्वेच्छाचार आज भी मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है। उसमें मैंने कहीं भी मृत व्यक्तिके प्रति आदरभाव नहीं देखा। शोककी तो वहाँ गुंजाइश ही कहाँ थी? इस सुधारके लिए वक्त दरकार है। रूढ़िका यह बल हमारी शिथिलता सूचित करता है। यदि जातिके मुखिया ऐसे सुधार न करें तो [साधारण] व्यक्ति कर सकते हैं। मुखियोंकी वर्तमान अवस्था करुणाजनक है। बहुधा वे सुधार करना तो चाहते हैं, परन्तु करते हुए डरते हैं। अतः साहसी लोग आगे बढ़कर सुधार करनेकी इच्छा रखनेवाले मुखियोंको बल दें और सुधारोंका दरवाजा खोलें।

रोटी-बेटी

जाति-भोजकी प्रथापर रोक लगानेसे भी शायद अधिक जरूरी सवाल है भिन्न-भिन्न जातियोंमें रोटी-बेटी व्यवहारको बढ़ावा देनेका। वर्णाश्रम आवश्यक है; परन्तु अनेक उपजातियाँ हानिकारक हैं। जहाँ रोटी-व्यवहार है, वहाँ बेटी-व्यवहारके सम्बन्धमें दो मत नहीं होंगे। हम देखते भी हैं कि ऐसे बहुतसे विवाह हो चुके हैं। अब इस सुधारको रोका नहीं जा सकता। अतः यह बहुत आवश्यक है कि समझदार मुखिया ऐसे सुधारको उत्तेजन दें। यदि मुखिया लोग समयके रुखके प्रतिकूल लोगोंपर जरूरतसे ज्यादा सख्ती करेंगे तो उनका मान-भंग होनेकी सम्भावना है। सुधारकोंके लिए यह शोभनीय होगा कि यदि उन्हें ऐसे मुखियोंका विरोध रहते हुए सुधार करना पड़े तो वे विनयसे काम लें। ऐसे सुधारक भी देखे जाते हैं जो मुखियोंको तुच्छ मानकर उन्हें यह चुनौती देते हैं कि वे जो हो सके सो कर लें। ऐसी उद्धतता करनेसे सुधारकी गति रुकती है और यदि मुखिया बिलकुल निर्बल और दण्ड देनेमें अशक्त हो गये हों तो सुधारक, सुधारक न रहकर स्वेच्छाचारी हो जाता है। स्वेच्छाचार सुधार नहीं है। उससे समाज उठता नहीं, बल्कि गिरता है।

लाटरीसे राष्ट्रीय शिक्षा

लाटरीसे राष्ट्रीय शिक्षाके लिए धन-संग्रह करनेके निमित्त एक विज्ञापन निकाला गया है। एक मित्रने मुझे इस विज्ञापनकी नकल भेजकर उसके सम्बन्धमें मेरी सम्मति पूछी है। मैं तो लाटरीके विरुद्ध हूँ। यह एक प्रकारका जुआ है। जहाँ सीधे तरीकेसे शिक्षाके लिए धन इकट्ठा न हो सके वहाँ कार्य संचालकोंमें कोई दोष है, चाहे वह कार्यकर्त्ताओंकी अयोग्यता ही क्यों न हो। ऐसे लोगोंको शिक्षा देनेका भार उठानेका अधिकार ही नहीं है। मेरी सलाह तो यही है कि लाटरीमें धन देनेवाले लोग अपने धनको सँभालकर रखें और उन्हें जितना धन लाटरीमें देना हो उतना किसी विश्वस्त मनुष्यको शिक्षाके निमित्त अथवा किसी अन्य कार्यके निमित्त दे दें। उनका यह कार्य स्तुत्य होगा। शेयरोंका सौदा भी एक तरहका जुआ है। मैंने सुना है कि उसमें बम्बईके सैकड़ों लोगोंका धन चला गया है। क्या इतना ही काफी नहीं है?

धर्म-संकट

एक करुण पत्र[1] मेरे सम्मुख है। मैं इस भाईको जल छिड़ककर शुद्ध होनेसे इनकार करनेपर बधाई देता हूँ। हम अस्पृश्यताको पाप मानते हैं, इसलिए जल छिड़कनेकी प्रक्रियासे शुद्ध होकर अपने ही सिद्धान्तपर पानी कैसे फेर सकते हैं? इस राजपूत युवकको अपने जाति-भाइयोंको विनयपूर्वक समझाना-बुझाना चाहिए; किन्तु वे फिर भी न समझें तो उसे जातिसे-च्युत किये जानेके दण्डको नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए; उसे छींटें लेकर शुद्ध होनेकी प्रक्रिया तो कभी पूरी न करनी चाहिए। मेरा तो यही दृढ़ मत है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१७. पत्र: महादेव देसाईको

सोमवार [१२ मई, १९२४][2]

पूर्ण विराम
उर्दू और कताई सीखना
समयकी पाबन्दीका अनुरोध
कताई और बुनाईसे गुजारा
लालाजीका पत्र
सरोजिनी देवीकी ओरसे
असंगत नहीं
श्री मजलीके साथ व्यवहार
'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'
एन्ड्र्यूजकी टिप्पणियाँ (जो गत सप्ताह भेजी थीं)
जेलके अनुभव
साम्राज्यकी चीजें
मोपलोंके लिए राहत

भाई श्री महादेव,

पढ़ते हुए अशुद्धियोंको ठीक कर लेना। मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। आजकी डाकसे ऊपर लिखी हुई सूचीके अनुसार सामग्री भेज रहा हूँ। एन्ड्र्यूजकी टिप्पणियाँ तो तुम्हारे पास पहुँच ही चुकी हैं। अब और कुछ भेजनेका इरादा नहीं है।

१. इस पत्रमें कहा गया था कि अन्त्यजोंमें कार्य करनेवाले एक राजपूत युवकको यह धमकी दी गई है कि वह अन्त्यजोंको छूनेके बाद अपने ऊपर जलके छींटे लेकर शुद्ध हो जाया करे, अन्यथा उसे जाति-च्युत कर दिया जायेगा।

२. पत्रमें उल्लिखित कुछ लेख १५-५-१९२४ के यंग इंडियामें प्रकाशित हुए थे; और सोमवार १२ मईको पड़ा था।

समझमें नहीं आ रहा है कि 'गाय बची' शीर्षक टिप्पणी गुम कैसे हो गई। अगर खोज करनेपर भी न मिले तो मैं दूसरी लिखकर भेज दूंगा। हम लोग यहाँ इस सम्बन्धमें बहुत सावधान रहते हैं; आगे और भी सावधान रहेंगे।

बोरसद परिषद् और अन्य परिषदोंका समाचार 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' में तुम ही लिखना। हमारी प्रवृत्तियोंके कुछ स्थानीय समाचार भी दिये जाने चाहिए।

वीसनगर सम्बन्धी लेखका 'स्वराज्य' में प्रकाशित अनुवाद बहुत सदोष है। तुमने जो भाषान्तर किया है, वह भी मुझे ठीक नहीं जँचा। उसमें कुछ अर्थकी अशुद्धियाँ भी हैं। मैंने उसका आधा भाग संशोधित कर दिया है। शेष भागको सुधारने-का समय नहीं मिला। अब हम शायद उसे न भी छापें। उसे अन्य पत्रोंमें भेजनेकी तो बात ही नहीं सोचनी है। अगर हम उसे छापें तो केवल 'यंग इंडिया' में ही छाप सकते हैं। अगर उसके शेष भागको संशोधित करनेका समय मिल गया तो उसे अगले सप्ताह छापनेकी बातपर विचार करेंगे। मैंने 'चैलेंज' के स्थानपर 'सिसकारबु,' शब्दका प्रयोग किया है। अगर कोई दूसरा शब्द सूझे तो लिखना। 'ऋतुसम' का अर्थ है 'ऋतुके अनुकूल और 'मूछाई' का अर्थ है अपनी बड़ाई, शेखी। काठियावाड़ सम्बन्धी लेखमें अनायास ही काठियावाड़ी शब्द लेखनीसे निकलते चले गये।

उस डाकूका नाम मोर[1] नहीं, बल्कि मोवर है। मैं उससे मिला भी हूँ।

श्रीमती जोजेफका[2] तार मुझे भी मिला था। मैंने उन्हें तार द्वारा उत्तर दे दिया है कि तुम्हारा भेजा जाना आवश्यक नहीं है क्योंकि वहाँसे शिष्टमण्डल यहाँ आनेवाला है। इसके अतिरिक्त मेरा उद्देश्य सामान्य सिद्धान्तको समझाना मात्र है। इसमें गलतफहमीकी गुंजाइश है ही नहीं। ये लोग वाइकोमके मामलेको बिगाड़ रहे हैं, मुझे अब भी ऐसा प्रतीत होता है। जब प्रतिनिधि मण्डल यहाँ आयेगा तब हम इस सम्बन्धमें विचार करेंगे।[3]

वालजीका स्वभाव तो तुम जानते ही हो। यदि हम उन्हें सन्तुष्ट रखकर उनसे उनकी रुचिका कोई काम करा सकें तो अच्छा। मैं उनको ढील देकर उनकी विचित्रताओंको निकालनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। हम इस तरहकी छूट निश्चय ही दूसरेको नहीं देंगे। वालजीमें अन्य छोटी-मोटी त्रुटियाँ भले ही हों, परन्तु सरलता तो है ही। मैं उसकी कद्र करता हुआ उनसे उपयोगी काम ले रहा हूँ। तुम भी ऐसा ही करो।

राधाका[4] स्वास्थ्य काफी अच्छा है; परन्तु उसकी खोई हुई शक्ति इतनी शीघ्रतासे वापस नहीं आ रही है, जितनी मैं चाहता हूँ। वह आजकल प्रसन्न रहती

१. देखिए "उतावला काठियावाड़", ११–५–१९२४।

२. जॉर्ज जोजेफकी धर्मपत्नी। श्री जोजेफ मदुरैके बैरिस्टर थे और उन्होंने यंग इंडिया और इंडिपेंडेंटका कुछ दिनोंतक सम्पादन किया था।

३. प्रतिनिधि मण्डलसे हुई बातचीतके लिए देखिए "भेंट: 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे", १९–१०–१९२४।

४. मगनलाल गांधीकी कन्या।

है। कीकीबेन[1] हिम्मती लड़की तो है, परन्तु बेचारी बहुत रुग्ण रहती है। ज्वर उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह भोजन नियमसे करती है। ऐसा माना जा सकता है कि यहाँकी वायु बहुत शुद्ध है। डाक्टर दलाल और डा० जीवराजने उसके रोगकी पूरी-पूरी जाँच कर ली है। परन्तु सूझ नहीं पड़ता कि क्या करना चाहिए।

मुझे ऐसा लग रहा है कि कान्ति[2], रसिक[3] और मनुको[4] यहाँ न बुलाना चाहिए। अगर इससे बा को दुःख होता है तो हो। यह अनुभवसिद्ध बात है कि "भक्ति तो जानकी बाजी है, सामनेका मार्ग निस्सन्देह दुर्गम है।" मैं तो सदासे यही मानता आया हूँ कि हृदयको कठोर किये बिना शुद्ध भक्ति सम्भव नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७८५) से।

१८. सन्देश: गुजरात राजनीतिक परिषद्को[5]

१३ मई, १९२४

बोरसदने गुजरातका मुख उज्ज्वल किया है। उसने सत्याग्रह करके और त्याग दिखा कर देशकी तथा स्वयं अपनी सेवा की है। बोरसदने जमीन तो हमवार कर दी है; अब उसपर इमारत उठानेका काम करना बाकी है और यह कार्य कठिन है। यह काम चल रहा है, यह मैं जानता हूँ किन्तु इसे पूरा हुआ तो उसी दिन समझना चाहिए जिस दिन, बोरसद ताल्लुका हाथ-कती, हाथ-बुनी खादीके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारका कपड़ा खरीदना बन्द कर देगा; जब उसकी सीमामें विलायती कपड़ेकी या मिलोंके बने कपड़ेकी एक भी दुकान न रहेगी; जब ताल्लुकेमें कोई भी मनुष्य शराब, गांजा और अफीमका इस्तेमाल नहीं करेगा, कोई चोरी या दुराचार न करेगा और जब ताल्लुकेके बच्चे — बालक और बालिकाएँ, चाहे वे अन्त्यजोंके हों अथवा अन्य वर्णोंके — राष्ट्रीय पाठशालाओंमें पढ़ने लगेंगे; जिस दिन लोगोंमें आपसमें झगड़े होने बन्द हो जायेंगे और यदि होंगे भी तो उनका फैसला पंचायत द्वारा कराया जायेगा; जब हिन्दू और मुसलमान दोनों भाइयोंकी तरह मेलजोलसे रहने लगेंगे और जिस दिन कोई भी मनुष्य किसी भी अन्त्यजका तिरस्कार न करेगा। यदि हम इस नीतिपर कमर कस लें तो हमें यह सब करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि बोरसद इतना कर लेगा तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह भारतको स्वराज्य दिला देगा। वहाँके निवासी इतना करनेकी प्रतिज्ञा लें। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि उनमें ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी शक्ति आये। किन्तु जब प्रतिज्ञाको पूरा करके दिखानेका

१. जे० बी० कृपलानीकी बहन।
२, ३ व ४. हरिलाल गांधीकी सन्तान।
५. यह बोरसदमें हुई थी।

इरादा होवे तभी हम प्रतिज्ञा लें, अन्यथा नहीं। ऐसी प्रतिज्ञाके पीछे हरिश्चन्द्रके समान ही दृढ़ता होनी चाहिए; नहीं तो ऐसी प्रतिज्ञा न लेना ही बुद्धिमानी है।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १८-५-१९२४

१९. पत्र : मु० रा० जयकरको

१३ मई, १९२४

प्रिय श्री जयकर,

दलितवर्ग प्रचारक मण्डल (डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन) के सदस्य मुझसे मिलने आये थे। शायद आपको मालूम हो कि श्री बिड़ला इस बातसे इनकार करते हैं कि उन्होंने उनके लिए मन्दिर बनवानेका वादा किया था। मैंने उनसे कह दिया है कि यदि वे स्वयं अपने बीच एक अच्छी धनराशि एकत्र कर लें तो मैं भी उनके लिए कुछ धन इकट्ठा करनेका प्रयत्न करूँगा। वे चाहते हैं कि मैं उनके साथ हुई अपनी बातचीतका सार आपको बता दूं। इसीलिए यह पत्र लिखा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

२०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

जुहू
वैशाख सुदी ९ [१३ मई, १९२४][1]

भाई श्री ५ घनश्यामदास,

आपका पत्र मुझको मिला है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि जातिवालोंके विरोधको आप बरदास कर सकेंगे तो आखरमें कुल अच्छा हि होगा। हम सबमें दैवी और आसुरी प्रकृति कार्य कर रही है। इसलीये थोड़ी बहोत अशांति अवश्य रहेगी। उससे डरनेकी कुछ आवश्यकता नहिं है। प्रयत्नपूर्वक निग्रह करते रहनेसे आसुरी प्रकृतिका नाश हो सकता है परंतु

१. वैशाख सुदी ९, १३ मईको पड़ी थी। गांधीजीके हस्ताक्षरके नीचे दी गई तिथिसे पता चलता है कि उन्होंने पत्रपर दूसरे दिन हस्ताक्षर किये थे।

दिलमें पूरा विश्वास होना चाहिये कि दैवी प्रकृतिको हि सहाय देना हमारा कर्त्तव्य है। मुझे फिकर आपके पिता और बंधुके लीये है। यदि वे आपके पक्षका संगठन कर संग्राम चाहते हैं और आप उनको शान्ति मार्गकी ओर न ला सकें तो आपके हि कुटुम्बमें दो विरोधी प्रवृत्ति होनेका सम्भव है। ऐसे मौकेपर धर्मसंकट खड़ा होता है। मैं तो अवश्य उनसे भी प्रार्थना करूंगा कि आपके हि हाथसे जातिमें दो गिरोह पैदा न हों।

जिस चीजको आपने अच्छी समझ कर की है और जिसकी योग्यताके लिये आज भी आप लोगोंके दिलमें शंका नहि है उसके लिये माफी मांगना मैं हरगीज उचित नहीं समझूंगा।

आपकी तरफसे मुझे रु० ५,००० मील गये हैं। 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', इत्यादिके लीये आप उचित समझें इतना द्रव्य भेज दें। करीब ५० नकल मुफ्त देनेकी आवश्यकता है।

आपका,
मोहनदास गांधी
१४-५-१९२४

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००४) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२१. तार: हकीम अजमल खाँको

[अन्धेरी
१३ मई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

हकीम अजमल खाँ साहब,

अधिक परिश्रम करनेसे कमजोरी बढ़ी; वैसे बहुत ठीक है। आशा है बेटीको वायु-परिवर्तनसे लाभ हो रहा होगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८०१) की फोटो-नकल से।

१. यह तार हकीम अजमल खाँ के १३ मई, १९२४ के निम्नलिखित तारके जवाबमें दिया गया था: "जब पिछली बार आपसे मिला था उसके बाद आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है, लिखनेकी मेहरबानी कीजिए।"

२२. सन्देश : अन्त्यज परिषद्को[1]

१४ मई, १९२४

अस्पृश्यताके प्रश्नका महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और बढ़ना ही चाहिए। आप और मैं दोनों ही यह जानते हैं कि अन्त्यजोंके प्रश्नको हाथमें लेनेका हमारा उद्देश्य राजनैतिक स्वार्थ साधन नहीं है। अस्पृश्यता-निवारणमें स्वराज्यकी कुंजी भले ही छिपी हो; परन्तु यह प्रश्न मुख्यतः धर्मसे सम्बन्धित है। मेरा यह विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है कि अस्पृश्यताको बनाये रखकर हिन्दू धर्म टिक ही नहीं सकता। हम अस्पृश्यताको मिटानेका प्रयत्न करके अपने-आपको शुद्ध करते हैं, अस्पृश्योंको नहीं। मैं तो इस कार्यको करते समय स्वराज्य रूपी स्वार्थका जरा भी विचार नहीं करता। हाँ, यह सच है कि राष्ट्रीय कांग्रेसके कार्यक्रममें अस्पृश्यता-निवारणको शामिल करानेमें मेरा हाथ है; परन्तु इसके पीछे राजनीतिक दृष्टि नहीं है, विशुद्ध धार्मिक दृष्टि है। लोगोंके मनोंमें यह तथ्य अंकित करना था कि अस्पृश्यताका निवारण किये बिना स्वराज्य मिल ही नहीं सकता। इस कार्यक्रमको कांग्रेसके कार्यक्रममें केवल इसी दृष्टिसे रखा गया है। यदि आज ही स्वराज्यकी प्राप्ति सम्भव हो तो भी यह समस्या तो बनी ही रहेगी। यदि कोई मनुष्य मुझसे यह कहे कि अस्पृश्यताकी बात छोड़ दो, मैं तुमको स्वराज्य दे दूंगा तो मैं एक क्षण ठहरे बिना तत्काल यह उत्तर दूंगा कि मुझे ऐसा स्वराज्य नहीं चाहिए। मेरी दृष्टिमें अस्पृश्यताको अपनाना हिन्दुत्वका त्याग करना है। आप यह निश्चित मानें कि जिन दिनों सम्मेलन हो रहा होगा उन दिनों मेरा शरीर तो जुहूमें होगा, परन्तु मेरी आत्मा आपके समीप होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

१. यह बोरसदमें हुई परिषद्के अध्यक्ष विट्ठल लक्ष्मण फड़केको भेजा गया था।

२३. पत्र : देवदास गांधीको

बुधवार [१४ मई, १९२४][1]

चि० देवदास,

बा का हृदय विदारक पत्र आया है। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ सूझ नहीं पड़ रहा है। यदि बच्चे वहाँ हों और तुम्हें ऐसा लगे कि उन्हें यहाँ आ ही जाना चाहिए तो उन्हें जरूर लेते आना। आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य अब बिलकुल ठीक हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८८१४) की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

पोस्ट अन्धेरी
वैशाख सुदी १० [१४ मई, १९२४][2]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। अकालियोंके सम्बन्धमें जिस तरह आप सोचते हैं, मैं उस तरह काम नहीं कर सकता। रोये बिना माँ बच्चेको दूध नहीं पिलाती, यह बात मेरे प्रत्येक कार्यके विषयमें लागू होती है। अगर ईश्वरकी इच्छा होगी तो वह मुझे इस काममें निमित्त बना लेगा। सूत्रधार तो वही है। मैं तो उसके हाथकी कठपुतली-मात्र हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१७८) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१. यह पत्र सम्भवतः जुहूसे लिखा गया था। बा और बच्चोंके उल्लेखसे जान पड़ता है कि यह "पत्र महादेव देसाईको", १२-५-२४ के बाद कदाचित् उसी हफ्तेमें पड़नेवाले बुधवारको लिखा गया होगा।

२. वैशाख सुदी दशमी १४ मई, १९२४ को थी।

२५. पत्र : वा० गो० देसाईको

वैशाख सुदी १०[१४ मई, १९२४][1]

भाईश्री ५ वालजी,

लेख मिला। सुझावोंपर अमल कराऊँगा। मैंने लेखमें एक स्थानपर 'इंडियन' शब्द जोड़ा है। मैं उसमें से निरामिप भोजन विषयक अंश निकाले दे रहा हूँ। आसन्न स्वराज्यमें सभी लोग निरामिषभोजी हो जायेंगे, ऐसा खयाल करना भूल है। चूंकि ठाकुरकी[2] कविताका अंग्रेजी रूपान्तर तुमने दे दिया है, इसलिए मैं उसके गुजराती रूपान्तरका अर्थ 'यंग इंडिया' में नहीं दूंगा। यदि मैं तुम्हारे लेखका गुजराती अनुवाद कराऊँगा तो उसे उसमें सम्मिलित कर लूंगा। तुम दोनोंके बीच जो आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित हो रही हैं उनपर मुझे अचरज नहीं है, क्योंकि तुम दोनों ही अचरजके पिटारे हो। मैं दिल्लीतक तो पहुँच गया था परन्तु उससे आगे गाड़ी कैसे बढ़ा सकता था। मैंने भाई अभेचन्दको पत्र लिखा है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च:]

आनन्दशंकर के बारेमें जो पत्र आया था, वह मैंने पढ़नेके बाद फाड़ दिया था।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००५) से।
सौजन्य: वालजी गो० देसाई

२६. टिप्पणियाँ

मुक्त व्यापार बनाम संरक्षण

टाटा स्टील वर्क्सको संरक्षण देनेकी बात सोची जा रही है। मुझसे उस संरक्षणके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करनेको कहा गया है। मैं नहीं जानता कि इस समय इससे क्या लाभ हो सकता है। मुझे यह भी मालूम नहीं कि इस स्टील वर्क्ससे सम्बन्धित प्रस्तावके गुणदोष क्या हैं? लेकिन मैं यहाँ यह भ्रम अवश्य दूर करना चाहूँगा कि मैं पूंजीपतियोंके खिलाफ हूँ और यदि मेरा बस चला तो मैं मशीनों और मशीनोंसे होनेवाले उत्पादन दोनों ही को नष्ट कर दूंगा। सच तो यह है कि मैं एक पक्का संरक्षणवादी हूँ। मुक्त व्यापार इंग्लैंडके लिए अच्छा हो सकता है, क्योंकि वह अपना तैयार माल असहाय लोगोंपर थोप देता है और चाहता है कि

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

उसकी आवश्यकताएँ कमसे-कम कीमतपर बाहरी देशोंसे पूरी होती रहें। मुक्त व्यापारने तो भारतके किसानोंको बरबाद ही कर दिया है, क्योंकि उससे यहाँके गृह-उद्योग बिलकुल नष्ट ही हो गये हैं और फिर संरक्षणके बिना कोई भी नया व्यापार विदेशी व्यापारसे स्पर्धामें टिक नहीं सकता। नेटालने अपने चीनी-उद्योगको राज्यकी ओरसे काफी बड़ी सहायता देकर और आयातपर भारी कर लगाकर खड़ा किया था। जर्मनीने भी अपने उद्योगपतियोंको बहुत पैसा देकर चुकन्दरसे चीनी तैयार करनेके उद्योगका विकास किया था। मैं तो मिल उद्योगको संरक्षण देनेका सदा ही स्वागत करनेको तैयार हूँ, हालाँकि मैं प्राथमिकता हाथमे तैयार किये गये खद्दरको ही देता हूँ और आगे भी देता रहूँगा। सच तो यह है कि मैं हर उपयोगी उद्योग-को संरक्षण देना चाहूँगा। अगर मैं देखूं कि सरकार भारतके आर्थिक और नैतिक कल्याणके लिए सचमुच उत्सुक है तो बहुत हदतक उसके प्रति मेरा विरोध समाप्त हो जायेगा। मैं तो चाहता हूँ कि सरकार वस्त्र उद्योगको यहाँतक संरक्षण देकर दिखाये कि यहाँके बाजारोंमें विदेशी कपड़ेका आना बिलकुल बन्द हो जाये। वह अपनी जरूरतके लिए खद्दर ही खरीदे और इस तरह चरखेको लोकप्रिय बनाकर दिखाये। वह राजस्वकी परवाह किये बिना शराब, अफीम आदि मादक द्रव्योंका उपयोग बन्द करके दिखाये और इस तरह राजस्वमें जो कमी हो उसे सेनापर खर्च कम करके पूरा करे। जब ऐसी शुभ घड़ी आयेगी तो मेरे विरोधमें कोई तथ्य नहीं रह जायेगा। इससे सुधारोंपर विचार-विमर्श करनेकी ठीक भूमिका तैयार हो जायेगी। अगर सरकार ये दोनों काम कर डाले तो वह मेरे लेखे उसके हृदय-परिवर्तनका स्पष्ट लक्षण होगा। किसी भी सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए ऐसा हृदय-परिवर्तन आव-श्यक है।

पूर्ण विराम

मौलाना मुहम्मद अलीने हिन्दुओं और मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासोंकी जो तुलना की है, उसके सम्बन्धमें मुझे अनेक पत्र मिले हैं। इन पत्र-लेखकोंने बड़ी ही काबलियतके साथ अपनी बातें कही हैं। इन पत्र-लेखकोंका कहना कुछ भी हो, मैं तो अब भी यही मानता हूँ कि मौलाना साहबने इसके अलावा और कुछ नहीं किया कि दोनों धर्मोंकी तुलना करके उन्होंने मेरे धर्मके मुकाबले अपने धर्मको अधिक ऊँचा बताया है। मेरे सामने जो पत्र हैं, उनमें से कुछ बहुत ही सारगर्भित, तथ्यपूर्ण और दिलचस्प हैं; फिर भी मुझे उन्हें छापनेका लोभ संवरण करना ही पड़ेगा। धार्मिक चर्चा और यहाँतक कि दर्शन शास्त्रीय चर्चासे कहीं बड़े-बड़े अन्य काम देशके सामने पड़े हुए हैं। मौलाना साहबके मतकी सफाईमें 'यंग इंडिया' का इतना स्थान घेरनेके पीछे मेरा मंशा सिर्फ यही है कि अभी हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जो कटुता है, उसे अगर हो सके तो व्यर्थ ही और बढ़नेसे रोकूं।[1] सिर्फ एक मित्रके लिहाजसे इस सार्वजनिक पत्रका उपयोग मौलाना साहबकी सफाई देनेके लिए तो मैं कदापि न करता। इन पत्रोंको पढ़ लेनेके बाद भी मुझे उनमें से ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता,

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५१३-१५।

जिसके कारण मैं अपने विचार बदल दूँ। इनमें से एक पत्र-लेखकके इस विचारसे मैं सहमत नहीं हूँ कि मौलाना साहबने हिन्दुओंके प्रति दुर्भावना दिखाई है और अब हिन्दू-मुस्लिम एकताकी कोई सम्भावना नही रही। मौजूदा तनातनी और हमारे रोड़े अटकानेके बावजूद वह एकता तो आ ही रही है। मौलाना साहब इस एकताके प्रेमी न हों, बल्कि छिपे हुए शत्रु हों तो भी स्थितिमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हम तो ईश्वरके आगे तृणवत् हैं। वह हमें जहाँ चाहे फूंक कर उड़ा सकता है। हम उसकी इच्छाका विरोध नहीं कर सकते। उसने हम सबका सृजन ही एक होनेके लिए किया है; हमेशा अलग-अलग बने रहनेके लिए नहीं। बड़ा अच्छा होता अगर मैं अपनी आशा और विश्वासका संचार अपने पत्र-लेखकोंमें भी कर पाता। फिर मौलाना साहबमें अविश्वास करनेका उनके सामने कोई कारण न बच रहता। जो भी हो, मुझे आशा है कि पत्र लिखनेवाले सज्जन मुझे इस बातके लिए क्षमा करेंगे कि मैं न तो मौलाना साहबके धार्मिक विचारोंके बारेमें उन लोगोंके पत्र प्रकाशित कर रहा हूँ और न इससे अधिक उनपर कोई चर्चा ही करने जा रहा हूँ।

उर्दू और कताई सीखना

त्रिवेन्द्रम सेन्ट्रल जेलसे श्री जॉर्ज जोजेफ़ लिखते हैं:

> हम सब यहाँ बड़े आनन्दसे हैं और जेल अधिकारियोंसे हमारा सम्बन्ध काफी सौहार्दपूर्ण है। कुल मिलाकर यहाँके कैदियोंकी स्थिति वैसी ही है जैसी १९२२ के आरम्भमें संयुक्त प्रान्तकी जेलोंमें "राजनीतिक कैदियों" की थी।
>
> मुझे चरखा मिल गया है और मैं प्रतिदिन तीन घंटे सूत कातता हूँ। अभी मेरे पास जो रुई है, वह मदुरईके एक मित्रने धुनकर तथा उसकी पूनियाँ बनाकर भेजी हैं। इसके समाप्त हो जानेपर मेरा इरादा त्रावणकोरकी कपास मँगानेका है। मैं स्वयं उसे ओट-धुनकर पूनियाँ बना लिया करूँगा; और आशा है कि इन प्रारम्भिक क्रियाओंमें काफी कुशल हो जाऊँगा। हिन्दीके सम्बन्धमें स्थिति यह है: जब मुझे १९२२ में जेल भेजा गया था तो वहाँ मैंने काफी उर्दू सीखी और मैं मानता तो यह हूँ कि मैं कामचलाऊ उर्दू जानने लगा हूँ। काफी हद तक मैं उर्दू (अखबार, आधुनिक गद्य, आसान कविता आदि) पढ़ और समझ सकता हूँ। मैं हिन्दी अलगसे नहीं सीखना चाहता। मैंने अपनी उर्दूकी पुस्तकें मँगाई हैं और कुछ समय उनपर भी लगाया करूँगा, जिससे मुझे उस भाषाका कुछ और ज्ञान हो जाये।

समयकी पाबन्दीका अनुरोध

निजाम राज्यमें तैयार किये गये एक बहुत ही सुन्दर स्वदेशी कागजपर एक व्यक्तिने मेरे पास निम्नलिखित पत्र भेजा है:

> मैं आपका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि कुछ नेतागण अपने भाषणोंके सम्बन्धमें समयकी पाबन्दी नहीं करते। इससे जनताको

एक गलत सीख मिलती है, जो पहलेसे ही समयकी पाबन्दी न रखनेकी आदी है। इसके अलावा, इससे वक्ताके प्रति श्रोताओंके मनोंमें खीझका भाव आ जाता है और फिर वे उसकी बात ध्यानसे नहीं सुनते। यह परिस्थिति अन्यथा सम्भव न होती। जो लोग हमें स्वराज्यके योग्य नहीं मानते, उनके मनपर भी इसकी बुरी छाप पड़ती है। बम्बईमें होनेवाली सभाओंमें मुझे बार-बार यही अनुभव हुआ है। ऊपर मैंने वही कहा है जो मैंने खुद महसूस किया है और दूसरोंको कहते सुना है।

सार्वजनिक सभाओंके आयोजक कृपया इस पत्रपर ध्यान दें।

कताई और बुनाईसे गुजारा

आचार्य रायने अपनी चटगाँव-यात्राका विवरण भेजते हुए लिखा है:

> मैंने हालमें ही चटगाँवका दौरा किया है, जिसका विवरण साथमें भेज रहा हूँ। आपको यह जानकर खुशी होगी कि चटगाँवका भीतरी इलाका हमारे कामकी दृष्टिसे बहुत उपयुक्त है और वहाँ कमी सिर्फ एक बात की है और वह है संगठन की।
>
> दौरेमें एक सज्जनसे मेरी मुलाकात हुई, जिनके बारेमें बताया गया कि वे इंजीनियर हैं। वे कृषक बन गये हैं और अब अपने खेतोंकी जुताई-बुवाई और कटाई स्वयं करते हैं। उनके घरकी तमाम जरूरतें उनके परिवारके लोग शारीरिक श्रम करके ही पूरी करते हैं और वे अपनी जरूरतके सारे कपड़े स्वयं ही कात-बुनकर तैयार कर लेते हैं।
>
> इस पत्रका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ, आप और भी बहुत महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहारमें व्यस्त रहते हैं। मैं तो चटगाँवके बारेमें आपको कुछ ऐसी जानकारी-भर दे देना चाहता हूँ, जो आपको अच्छी लग सकती है। आपको हजारों परेशानियाँ रहती हैं। सम्भव है एक छोटी-सी खुशखबरी आपको जल्दी ही चंगा बनानेमें दवाका काम कर जाये।

उक्त इंजीनियरके परिवारके लोग जो करते बताये गये हैं, वह सब हर कांग्रेस कार्यकर्त्ता, चाहे वह वकील हो या शिक्षक अथवा और कोई, कर सकता है। अगर वह इतना करे तो फिर उसे कांग्रेसके दूसरे कामोंकी फिक्र करनेकी जरूरत ही न रहे। मेरा निश्चित मत है कि वह इंजीनियर ऐसे हर वक्तासे अधिक सफलतापूर्वक खद्दरका प्रचार कर रहा है, जो खद्दरमें कोई जीवन्त आस्था न रखते हुए भी लोगोंके सामने गला फाड़-फाड़कर उसके गुणोंका बखान करता है।

डा० राय द्वारा भेजा हुआ विवरण भी जानने योग्य बातोंसे भरा हुआ है। उससे प्रकट होता है कि सैकड़ों मुसलमान स्त्रियाँ पीढ़ियोंसे कताईका काम करती आ रही हैं। वे कपास भी खुद ही ओटती और धुनती हैं, तथा अपने सूतका कपड़ा भी खुद ही बुनती हैं। जरूरतका सारा कपास पासके पहाड़ी इलाकोंसे मिल जाता है।

विवरणमें बताया गया है कि वहाँ जो कपास होती है, उसे व्यापारी लोग निर्यातके लिए खरीद लेते हैं। जब वहाँ उपजनेवाली कपासका उपयोग करनेके लिए हजारों कातनेवाले लोग वहीं मौजूद हैं तब उन्हें बेरोजगार बनाकर सारी कपास बाहर कतवा-बुनवाकर फिर हमारे पास कपड़ेके रूपमें वापस लाना, क्या दुखका विषय नहीं है? सौभाग्यसे डा० राय तथा उनके कार्यकर्तागण स्थानीय कतैयोंकी जरूरतके लिए काफी कपास एकत्र कर रखनेका बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

विवरणमें उन इलाकोंमें प्रयुक्त धुनकीका भी वर्णन किया गया है और बताया गया है कि एक प्रतियोगितामें वह बारडोलीकी धुनकीसे बाजी मार ले गई। सूचिया धुनकी (इसका नाम चटगाँवके सूचिया गाँवके नामपर पड़ा है) की डोरी अन्ननासके पत्तोंके रेशोंसे बनाई जाती है और कहते हैं वह हफ्ते-भर चल जाती है। सोचिए तो सही, बिलकुल सीधी-सादी और सस्ती चीजोंकी मददसे बढ़ियासे-बढ़िया काम किया जा सकता है।

श्री मजलीके साथ व्यवहार

सम्पादक
'यंग इंडिया,' अहमदाबाद

प्रिय महोदय,

आपने अपने ३ अप्रैलके अंकमें बेलगाँव-निवासी श्री मजलीका एक पत्र छापा था, जिसमें बताया गया था कि जब वे जेलमें थे, "सरकारके कथनके विपरीत, उन्हें कताईका नहीं, बल्कि प्रति दिन १ पौंड सूतकी बँटाईका काम दिया गया।" यह भी कहा गया है कि उन्हें "दिनभरमें उस १५ मिनटके समयके अलावा, जब उन्हें घूमने दिया जाता था, चौबीसों घंटे सबसे अलग एक कोठरीमें ताला बन्द करके रखा जाता था," और बीमारीके बावजूद उन्हें ऐसा भोजन दिया जाता था जिसे पचाना उनके लिए मुश्किल था।[1]

निःसन्देह आपको इसके सम्बन्धमें सच्ची बातें जानकर खुशी होगी और मुझे आशा है कि आप वे बातें छाप भी देंगे।

सच यह है कि श्री मजलीको चरखेसे डोरा या सूत तैयार करनेका काम दिया गया था और उन्हें अपनी कोठरीसे लगे एक बड़े कमरेमें अन्य दो साथियोंके साथ रखा गया था। दोनोंमें से एक पहले कांग्रेसी रह चुका है। उन्हें घूमने-फिरनेके लिए प्रतिदिन एक घंटेका समय दिया जाता था — आधा घंटा सुबह और आधा घंटा शाम। भोजनमें उन्हें निम्नलिखित चीजें दी जाती थीं :

(क) २३-१०-१९२३ को उन्हें इस जेलमें दाखिल किया गया और तबसे २-१२-१९२३ तक आम खुराक दी गई।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३६८-६९।

(ख) ३-१२-१९२३ से लेकर १३-१२-१९२३ तक वे मलेरियासे बीमार रहे और इस अवधिमें उनकी खुराक दूध रही।

(ग) बुखार टूटनेपर १४-१२-१९२३ से २८-१२-१९२३ तक वे धीरे-धीरे पूर्ण स्वस्थ हो गये। इस अवधिमें उन्हें आम खुराक दी गई और उसमें दालकी जगह प्रतिदिन एक पौंड दूध दिया गया।

(घ) २८-१२-१९२३ से ४-१-१९२४ तक आम खुराक।

(च) बदहजमी हो जानेके कारण, ५-१-१९२४ से लेकर १७-१-१९२४ तक आम खुराकके बदले चावल दिया गया।

(छ) १८-१-१९२४ से २९-१-१९२४ तक आम खुराक।

(ज) ३०-१-१९२४ से १७-२-१९२४ अर्थात् उनके रिहा होनेके दिन तक, उनकी खुराक दूध, एक औंस मक्खन और डबल रोटी रही।

आपका विश्वस्त,

७-५-१९२४ (ह.) अस्पष्ट

बम्बई कार्यवाहक सूचना-निदेशक

उक्त पत्र छापते हुए मुझे खुशी होती है। अभी श्री मजलीके स्वास्थ्यकी जो स्थिति है, उसे देखते हुए मैं उन्हें कोई कष्ट नहीं देना चाहता और जैसा कि मैंने अपनी टिप्पणीमें भी कहा था, मेरा ऐसा भी कोई इरादा नहीं था कि श्री मजलीके प्रति किये गये व्यवहारको लेकर शिकायत करूं। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि श्री मजलीकी दो बातें लगभग सही हैं। श्री मजली इस बातसे इनकार नहीं करते कि उन्हें "बाट-कताई"का काम दिया गया। लेकिन, "बाट कताई" का मतलब होता है "सूतकी बटाई।" कार्यवाहक सूचना निदेशकको शायद मालूम नहीं कि "बाट-कताई" जैसी कोई प्रक्रिया नहीं होती। चरखेपर या तो सूत काता जा सकता है या बटा जा सकता है। श्री मजली सूत कातना चाहते थे। यह उनका कर्तव्य भी था और इसमें उन्हें आनन्द भी आता। लेकिन उन्हें सूतकी बटाईका काम दिया गया, जो कताईके कामसे बहुत कठिन था और जिसमें उन्हें कोई आनन्द भी नहीं आता था। उन्हें कालकोठरीमें बन्द करके रखा गया, यह बात भी स्पष्टतः सत्य ही है। यदि उनके साथ दो और लोग थे तो इससे इस तथ्यमें कोई फर्क नहीं पड़ता। कालकोठरीमें, खासकर दिनमें कोई साथी हो या न हो बन्द किये जानेका मतलब क्या होता है, यह तो कोई भुक्तभोगी कैदी ही बता सकता है।

सरोजिनी देवीकी ओरसे

श्रीमती सरोजिनी नायडूने मुझे पत्र भेजा है, उसे पाठकोंके लिए नीचे दे रहा हूँ। आशा है, उन्हें यह पत्र पढ़कर प्रसन्नता होगी। पत्र इस प्रकार है:

> हिन्द महासागर बाल-रविकी स्तुतिमें अत्यन्त पुरातन श्लोक गुनगुना रहा है और ये पर्वत साक्षी हैं उस प्रतिज्ञाके जो महान् स्वप्नदर्शियोंके इन पर्वतोंके

रवि-किरण-मण्डित शिखरोंपर खड़े होकर ईश्वरको साक्षी रखकर की थी—अर्थात् यह संकल्प किया था कि वे दक्षिण आफ्रिकाको उच्चादर्शों और उदात्त परम्पराओंका देश बना देंगे, भावी पीढ़ियोंके लिए उनकी यही एक श्रेष्ठ विरासत होगी। लेकिन, आज वस्तुस्थिति कुछ और ही है। इन्हीं पर्वतोंकी छायामें, इस समुद्रके ऐन तटपर ही दक्षिण आफ्रिकाके भाग्य-विधातागण अपने दायित्वों और कर्त्तव्योंसे मुँह मोड़ रहे हैं और विधान सभाको, जिसे न्याय और स्वतन्त्रताका मन्दिर होना चाहिए था, एक ऐसे बाजारका रूप दे रहे हैं जिसमें थोड़े दिनोंके लिए पूर्वग्रहपर आधारित शक्ति और अत्याचारपर आधारित सत्ताका उपयोग करनेके लिए भावी सन्ततियोंके जन्म-सिद्ध अधिकारोंको बेचा जा रहा है। फिर भी, मेरा मन निराश नहीं है और अन्तिम प्रश्नोंके समाधानके बारेमें मेरा विश्वास अडिग है और मैंने इस विश्वास या कल्पनाको निर्भीक होकर घोषित भी किया है। दक्षिण आफ्रिकाको सिर्फ गोरोंका देश बनानेके असम्भव विचारके समर्थक नेता इससे बड़े क्षुब्ध हुए हैं, उनमें खलबली मच गई है। लेकिन इससे दक्षिण आफ्रिकाके अश्वेत लोगोंमें एक नई जागृतिकी लहर आई है और उनमें एक नई आशाका संचार हुआ है।

मुझे मालूम है कि संक्षिप्त अखबारी तारोंके माध्यमसे आप मेरे यहाँके कामकी प्रगतिसे परिचित रहे हैं। अवसर और अपनी क्षमताको देखते हुए मैंने जितना हो सकता है उतना प्रयास किया है और यद्यपि यहाँके अखबार पूर्वग्रहोंसे ग्रसित हैं और विधायकगण अज्ञानसे, फिर भी मैंने सैकड़ों नहीं, हजारों लोगोंको भारतके पक्षका समर्थक बना लिया है। इनमें दक्षिण आफ्रिकाके सभी वर्गों और सभी समुदायोंके लोग शामिल हैं। आफ्रिकी जातियों, बल्कि घोर "उपनिवेशवादी" लोगोंमें भी उत्साह भर आया है और परिस्थितिके प्रति रोष उत्पन्न हुआ है तथा उनके मनमें भारतीयोंके प्रति भाईचारेकी भावना उदित हुई है और वे अनुभव करने लगे हैं कि उनका सुख-दुख हमारा सुख-दुख है। दक्षिण आफ्रिकाके लिए मैंने "उत्पीड़नका विश्वविद्यालय" शब्दोंका प्रयोग किया था, उसका गोरोंने बहुत बुरा माना। फिर भी सचाई यही है कि यह "उत्पीड़नका विश्वविद्यालय" गैर-यूरोपीय लोगोंमें आत्मसंयमका भाव भरते हुए उनके मनोबलका पूर्ण विकास करेगा।

साम्राज्यके लौह पुरुषसे[1] मेरी मुलाकात बहुत दिलचस्प रही। वे जिस जादू और आकर्षणके लिए प्रसिद्ध हैं मैंने उसे उनमें भरपूर पाया और जाहिरमें सादगी और मिठास भी उनमें देखनेमें आई। लेकिन उनकी विनय और सादगीके पीछे कितनी कुशाग्रता और कूटनीति छिपी हुई है! उनको देखकर मेरे मनपर तो यह छाप पड़ी कि ईश्वरने उन्हें दुनियाका एक महानतम व्यक्ति होनेके

१. जनरल स्मट्स।

लिए सिरजा था, लेकिन दक्षिण आफ्रिकामें सत्ताका परिधान धारण करके उन्होंने अपनेको बौना बना लिया है। जो लोग अपनी पूर्व-निर्धारित आध्यात्मिक ऊँचाई तक नहीं उठ पाते, उनका यही हाल होता है। २७ तारीखको दक्षिण आफ्रिकासे प्रस्थान करनेके पहले हम लोग एक आपातकालीन सम्मेलन कर रहे हैं, जिसमें राजनीतिक कार्योंको ठोसरूप देनेका उपाय किया जायेगा और काम करनेकी — हो सकता है, बलिदान करनेकी ही — एक रूपरेखा तैयार की जाये। भारत लौटते हुए मैं पूर्व आफ्रिकामें लगभग पन्द्रह दिन ठहरूँगी ताकि लौटनेसे पहले वहाँका काम पूरा किया जा सके।

एक अंग्रेज द्वारा सराहना

रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स दक्षिण आफ्रिकाके सर्वाधिक सम्मानित मिशनरियोंमें से हैं। उन्होंने मेरे नाम लिखे हाल ही के एक पत्रमें श्रीमती सरोजिनी नायडूके कार्यके प्रति जो प्रशंसात्मक शब्द लिखे हैं, उन्हें नीचे दे रहा हूँ;

> हमारे बीच कोई पत्र-व्यवहार नहीं है। मुझे ऐसा ही लगता रहता है कि आपका समय बहुत ही मूल्यवान है और उसे साधारणसे पत्रोंके उत्तर देनेमें खर्च करवा देना अनुचित है। लेकिन श्रीमती सरोजिनी नायडू आजकल यहाँ आई हुई थीं और मैंने उन्हें घनिष्ठ रूपसे जाना। उन्होंने आदेश दिया था कि मैं तत्काल आपको पत्र लिख दूँ। वे कल यहाँसे चली गईं और आज मैरित्सबर्गमें होंगी। केप टाउनका "चक्कर" लगाकर वे फिर यहाँ आ रही हैं और तब मैं उनसे फिर मिलूँगा। लेकिन आपको पत्र लिखे बिना उनसे दुबारा निश्चिन्त भावसे मेरा मिलना कठिन है। आपको पत्र लिखकर कष्ट देनेके बारेमें मैंने अपनी यह सफाई दे दी। मैं तो उनके बारेमें दिन-भर लिखते रहकर भी शायद पूरी बातें न लिख पाऊँ। इसलिए मुझे तो जहाँतक हो सके थोड़ेमें ही लिखनेकी कोशिश करनी है। जोहानिसबर्गमें उन्हें अपने काममें जो आश्चर्यजनक सफलता मिली है, उसके बारेमें ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नहीं। दूसरे लोग आपको पूर्ण और विस्तृत विवरण लिखेंगे। लेकिन वह भी पर्याप्त नहीं होगा। वे तो आपकी द्वितीय आत्मा सिद्ध हुई हैं। वे एक बार फिर हमारे बीच वह उच्च आध्यात्मिक उद्देश्य लेकर आई हैं, जिसकी अनुभूति हमें बहुत पहले हुई थी। उनकी इस यात्राके लिए, उनके कहे शब्दोंके लिए और उन्होंने हमारे सामने जो परम सत्य तथा ईसामसीह-जैसे विचार रखे हैं, उस सबके लिए हम ईश्वरको धन्यवाद देते हैं। समस्त भारतीय समाज और गोरोंका भी एक बहुत बड़ा भाग उनके आह्वानपर उठ खड़ा हुआ है।

असंगत नहीं

जेलसे निकलनेके तुरन्त बाद मैंने गुरुद्वारा आन्दोलनके सम्बन्धमें अखबारोंमें एक वक्तव्य जारी किया था और ननकाना साहबवाली दुःखद घटनाके शीघ्र बाद कुछ

सलाह भी दी थी। एक पत्र-लेखकको इन दोनोंके बीच असंगति दिखाई देती है और उसने मेरा ध्यान इसी असंगतिकी ओर आकर्षित किया है। जेलसे छूटनेपर मैंने यह वक्तव्य[1] दिया था :

> मेरे (अकाली) भाइयोंने मुझे सूचित किया कि पंजाबमें आमतौरपर ऐसी गलतफहमी फैली हुई है कि ननकाना साहबकी दुःखद घटनाके बाद मैंने ऐसा विचार प्रकट किया कि स्वराज्य-प्राप्ति तक गुरुद्वारा आन्दोलन स्थगित रखना चाहिए। मुझपर जो विचार प्रकट करनेका आरोप लगाया गया है, वैसा कोई भी विचार मैंने कभी प्रकट नहीं किया। यह बात मेरे उन दिनोंके लेखों और भाषणोंसे स्पष्ट हो जायेगी।

पत्र-लेखकने उस दुःखद घटनाके बाद सिखोंके नाम लिखे मेरे पत्रसे निम्न-लिखित अवतरण उद्धृत किया है और ऐसा माना है कि यह मेरे पहले वक्तव्यसे असंगत है :

> अपने मन्दिरोंमें सच्चे सुधारके लिए तथा उनमें से सारी बुराइयोंको दूर करनेके लिए मुझसे अधिक उत्सुक कोई दूसरा नहीं हो सकता। किन्तु हमें ऐसी कार्रवाइयोंमें साथ नहीं देना चाहिए, जो उनसे भी बदतर साबित हों, जिन बातोंमें हम सुधार करना चाहते हैं। आप लोगोंके सामने दो ही मार्ग हैं: या तो आप सभी गुरुद्वारों अथवा जिन मन्दिरोंके गुरुद्वारा होनेका दावा किया जाता है उन मन्दिरोंपर कब्जेके सवालके निपटारेके लिए पंच-निर्णय समितियोंकी स्थापनाकी बात मान लें या फिर इस प्रश्नको स्वराज्य प्राप्त हो जाने तक स्थगित रखा जाये।[2]

जो शब्द रेखांकित हैं, उन्हें पत्र-लेखकने ही अपने पत्रमें रेखांकित कर रखा है। मुझे तो दोनों वक्तव्योंमें कोई भी असंगति नहीं दिखाई देती। पहले वक्तव्यका सम्बन्ध आम आन्दोलनसे है और उससे स्पष्ट है कि मैंने स्वराज्य प्राप्ति तक उसे स्थगित रखनेकी बात कभी नहीं की। दूसरेमें यह सलाह दी गई है कि अगर गुरुद्वारापर कब्जा करनेके सवालका निबटारा पंच-फैसलेसे न हो सके तो उसे स्वराज्य प्राप्ति तक स्थगित रखा जाये। इस पत्रमें मैंने शक्ति-प्रदर्शन द्वारा कब्जा करनेके औचित्य-अनौचित्यपर विचार किया है। उसमें मैंने यह सलाह दी कि अगर पंच-फैसला सफल नहीं होता और चुनाव सिर्फ उन दो बातोंके बीच करना है कि शक्ति-प्रदर्शन करके कब्जा किया जाये या मामलेको स्थगित रखा जाये, तो मामलेको स्थगित रखना ही ठीक होगा। जिज्ञासु पाठक १९२१ के 'यंग इंडिया' की फाइलमें उस पत्रको देख सकते हैं और तब उन्हें मालूम हो जायेगा कि मैंने उसमें शक्ति-प्रदर्शनके सवालपर विचार किया है। तबसे ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है जिसके कारण मुझे उस पत्रमें अपनाया गया रुख बदल देना पड़े। मेरा यह निश्चित मत

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २५० ।

२. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४०४-०८ ।

है कि शक्ति-प्रदर्शनके बलपर कोई भी सुधार सम्भव नहीं है। मैं जानता हूँ कि पंच-फैसलेके लिए दो पक्षोंका होना जरूरी है। अगर दूसरा पक्ष सहमत न हो तो असहयोगी लोग तो ब्रिटिश न्यायालयोंका आश्रय नहीं लेंगे। किन्तु यदि उसे इन दो स्थितियोंके बीच चुनाव करना हो तो वह शक्तिका प्रदर्शन करे या न्यायालयकी शरणमें जाये — अर्थात् अगर वह उस चीजको, जिसे वह अपना अधिकार समझता है, कुछ कालके लिए बलिदान करनेको तैयार न हो — तो मैं बेहिचक कहूँगा कि शक्ति-प्रदर्शन द्वारा अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके बजाय उसे न्यायालयकी ही शरण लेनी चाहिए — भले ही वह ब्रिटिश न्यायालय क्यों न हो।

धार्मिक निष्ठासे कताई करना

श्री पी० डब्ल्यू० सिबैस्तियन, जो वाइकोम सत्याग्रहके कैदी हैं, त्रिवेन्द्रम सेन्ट्रल जेलसे लिखते हैं:

> कई महीनेसे आपका कोई पत्र नहीं मिला। कोचीनमें अपने जेलके अनुभव आपको लिख भेजनेका मुझे समय नहीं मिला और इसी बीच एकाएक मैं त्रावणकोर जेल भेज दिया गया। आपको मालूम होगा कि कोचीन सरकारने मुझे सुरक्षाकी दृष्टिसे छः मासकी सजा दी थी और यह सजा काटकर जेलसे आये दो महीने भी नहीं हो पाये थे कि वाइकोम सत्याग्रहके सिलसिलेमें श्रीयुत जॉर्ज जोजेफ और अन्य लोगोंके साथ मुझे गिरफ्तार कर लिया गया और छः महीनेकी सादी कैदकी सजा दे दी गई। मेरे और मेरे कुछ मित्रोंसे राजनीतिक कैदियों-जैसा व्यवहार किया जाता है और अधिकारीगण हमारी सभी जरूरतों और सुख-सुविधाओंका खयाल रखते हैं। हमें काफी बड़े-बड़े कमरे दिये गये हैं और उनमें खाटें, बिस्तर, मेज-कुर्सियाँ, लेखन-सामग्री, पुस्तकें और अखबार, सभी कुछ दिया गया है। हमें अपने कपड़ोंका उपयोग करनेकी छूट दी गई है और हम खद्दरका उपयोग कर रहे हैं। जेलमें हमारे चरखे हमारे पास हैं और हममें से कुछ लोग निष्ठापूर्वक कताईका काम करते हैं। अधिकारीगण बड़े कृपालु हैं और हमारी सुविधाका बड़ा ध्यान रखते हैं।

अपनी अन्तरात्माकी आवाजपर जेल जानेवाले इन कैदियोंके साथ सद्व्यवहार करनेके लिए मैं त्रावणकोर राज्यको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि कुछ-एक नहीं, बल्कि सभी सत्याग्रही पूरी निष्ठाके साथ चरखा चलायेंगे। उन्हें मैं धुनना सीखने और अगर अनुमति हो तो बुनना सीखनेकी भी सलाह देता हूँ। अगर वे अपने अवकाशका एक-एक मूल्यवान् क्षण धुनाई, कताई और बुनाईमें लगायें तो वे यह सब सीख सकते हैं।

मोपलोंके लिए राहत

मुझे पाठकोंको यह सूचित करते हुए खुशी होती है कि मेरी अपीलकी ओर ध्यान देनेवालोंमें सबसे पहले व्यक्ति एक वोहरा सज्जन हैं, जिन्होंने ५०० रुपयेका

एक चेक भेजा है। मैंने यह रकम श्री याकूब हसनको भेज दी है। दूसरी रकम एक विधवा बहनने भेजी है। वह १० रुपये हैं। उसकी सखीने २ रुपये दिये हैं। एक और हिन्दूने मद्रासके १० रुपये भेजे हैं। 'यंग इंडिया' कार्यालयमें बरेलीके एक हिन्दू भाईकी तरफसे ५ रुपयेकी एक और राशि आई है।

लालाजीका पत्र

लाला लाजपतरायने अपनी यात्राके दौरान जहाजसे एक पत्र मुझे भेजा है। वे इसमें लिखते हैं:

> जहाजपर सवार होते वक्त अहिंसाका जो चिह्न मैं धारण किये हुए था उसपर मेरी समुद्र-यात्राके पहले ही दिन हिंसात्मक प्रहार किया गया। जहाजपर लगभग बीस भारतीय हैं। जब हम जहाजपर चढ़े तब हममें से केवल दो ही यात्री गांधी टोपी पहने हुए थे। सबकी आँखें हमारी ओर थीं और कुछके चेहरोंसे रोष भी झलक रहा था। भोजनके समय मैंने अपनी टोपी बाहर टोप टाँगनेकी खूंटीपर रख दी थी। भोजनके बाद जब मैंने उसे ढूँढ़ा तो वह मुझे नहीं मिली। वह गायब हो गई थी। चुरानेके लायक तो वह थी नहीं, इसलिए इसका अर्थ यही निकाला जा सकता है कि वह समुद्रमें फेंक दी गई थी। मुझे इसका दुःख नहीं है, क्योंकि फेंकनेवालेको इससे अवश्य ही सन्तोष मिला होगा। किन्तु मैंने टोपी पहनना बन्द न करनेका संकल्प कर लिया। अतः मैंने कल फिर दूसरी टोपी सैलूनके बाहर उसी जगह रख दी। किन्तु इस बार उसे किसीने हाथ नहीं लगाया और इसलिए फिलहाल इस काण्डको समाप्त समझिए।
>
> मुझे अपनी तबीयत पहलेसे अच्छी मालूम दे रही है। ठंडी समुद्री हवा और आरामसे लाभ मिल रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप भी अपनी जिम्मेदारियाँ छोड़कर हिन्दुस्तानसे बाहर जाकर कुछ दिनों पूरा विश्राम करें।

यह स्पष्ट है कि खद्दरकी टोपीको अभी कई जोरदार लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी।

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'

एक पत्र-लेखकने मुझे 'नवजीवन' प्रेसके मुनाफेके ५०,००० रुपये खद्दर-उत्पादनके लिए दे देनेके सम्बन्धमें एक पत्र लिखा है। उसका कहना है, मुनाफेसे पता चलता है कि इन साप्ताहिकोंके मूल्यमें खासी कमी की जा सकती है और वे अधिक लोगोंके लिए सुलभ किये जा सकते हैं। मैं इस पत्रके अंश नीचे देता हूँ:

> अभी कुछ दिन पहले अखबारोंमें खबर दी गई थी कि नवजीवन प्रेसमें ५०,००० रुपया मुनाफा हुआ है और यह रकम किसी लोकोपकारके कार्यमें खर्च की जायेगी। इससे मालूम होता है कि ईश्वरकी कृपासे प्रेसमें घाटा नहीं है और इसपर प्रबन्धकोंको बधाई दी जानी चाहिए।

किन्तु मैं और कई दूसरे लोग इस बातको नहीं समझ पाते कि इस समय कागजका खर्च कम होनेपर भी घटिया कागजके ८ पृष्ठोंके पत्रका मूल्य इतना अधिक क्यों है। हिन्दुस्तानमें आम पाठकोंके लिए 'यंग इंडिया' का दो आना मूल्य बहुत ज्यादा है और 'नवजीवन'का सवा आना मूल्य भी बहुत ज्यादा है। हिन्दुस्तान बहुत गरीब देश है। इस बातको सभी मानते हैं। यदि इन पत्रोंको मुनाफा हो रहा है तो क्या यह उचित नहीं है कि उनका मूल्य घटा दिया जाये और उनको इस प्रकार बहुसंख्यक जन-साधारणके लिए सुलभ बना दिया जाये?

मैं इस सम्बन्धमें यह कह दूँ कि "सैटर्डे रिव्यू,' 'नेशन ऐंड एथेनियम', 'अमेरिकन नेशन' और 'स्पैक्टेटर' आदिकी एक प्रति ६–६ पेंसकी मिलती है और यह बहुत कम माना जायेगा क्योंकि उनकी पृष्ठ-संख्या आपके पत्रकी पृष्ठ-संख्यासे तीन गुनेसे भी अधिक होती है। यदि आपके इन साप्ताहिकोंका मूल्य घटाना सम्भव न हो तो क्या आप सुविधापूर्वक इनकी पृष्ठ संख्या नहीं बढ़ा दे सकते।

हममें से कुछ लोगोंका खयाल है कि जबतक आप 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'का सम्पादन करते हैं तबतक उनको २ से ३ पैसे तक बेचनेमें भी घाटा न रहेगा। यदि आप इस सम्बन्धमें जनताके सामने स्पष्टीकरण देना अपना कर्त्तव्य मानते हैं तो अपने पत्रके माध्यमसे ऐसा करनेकी कृपा करें।

किन्तु मान लें कि इन पत्रोंको २ आना और सवा आनाके वर्तमान मूल्यपर बेचनेसे कोई लाभ नहीं हो रहा है और न कोई लाभ होनेकी सम्भावना है तो क्या आप किसी भी प्रकार प्रेसके लाभका कुछ अंश इन पत्रोंमें लगाकर उनको सस्ता नहीं बना सकते?

पत्रमें जो बातें लिखी है मैंने उनके सम्बन्धमें व्यवस्थापकसे सलाह की है और वे तथा मैं इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि निम्न कारणोंसे इनके मूल्यमें बिना कोई खतरा उठाये कमी नहीं की जा सकती।

१. मुनाफा एक अनिश्चित मद है।

२. मूल्यमें कमी करनेसे ग्राहक-संख्यापर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

३. जन-साधारणका पाठकोंके रूपमें कोई महत्व नहीं है; क्योंकि वे पढ़ नहीं पाते।

४. यद्यपि पत्रोंका सम्पादन मैं करता हूँ, इससे ग्राहकोंकी संख्या कुछ बढ़ी है, किन्तु वह वृद्धि कोई खास नहीं है। पत्र पहलेकी तरह कदापि लोकप्रिय नहीं रहे। शायद इसका कारण यह हो कि अब लोगोंका जोश कुछ ठंडा पड़ रहा है। 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' का खर्च अभीतक पूरा नहीं निकलता और यदि 'यंग इंडिया'के अंग्रेजी जाननेवाले पाठक और 'हिन्दी नवजीवन'के हिन्दी जाननेवाले पाठक स्वयं इन पत्रोंका खर्च निकालने और ग्राहक बढ़ानेमें दिलचस्पी न लें तो जल्दी ही इनको बन्द कर देनेका प्रश्न उठ सकता है।

५. दूसरे कामसे मुनाफा कमाकर सस्ता अखबार छापनेकी नीति ठीक नहीं होती। मैं चाहता हूँ कि पाठक इन पत्रोंका खर्च निकालनेमें उतनी ही दिलचस्पी लें जितनी व्यवस्थापक और सम्पादक लेते हैं।

६. पाठकोंके लिए सस्ता अखबार लेनेकी अपेक्षा उनको मुनाफेमें सीधा हिस्सेदार बना लेना अधिक अच्छा है।

७. यदि कुछ लोग ऐसे हैं जो मूल्य अधिक होनेसे पत्रोंको नहीं खरीद सकते हैं तो वे समृद्ध ग्राहक, जो इन पत्रों द्वारा प्रस्तुत विचारधारा और नीतियोंके प्रचारमें रुचि रखते हैं, चाहे जितनी प्रतियाँ मँगा लें और यदि प्रतियोंकी यह संख्या अधिक हुई तो निश्चय ही वे दाम घटाकर दी जायेंगी।

८. उपरोक्त क्रममें दिये गये सुझावको देखते हुए अधिक मूल्यका प्रश्न महत्व-पूर्ण नहीं है क्योंकि लोगोंको मुनाफेकी एक-एक पाईका लाभ मिलता है।

९. पत्रोंका आकार बढ़ाना ठीक नहीं है। किसी अन्य कारणसे नहीं तो कमसे-कम इस कारणसे कि मेरी शक्ति सीमित है और मेरे पत्रोंकी महत्वाकांक्षा भी सीमित है। लोगोंको इस समय मेरी साप्ताहिक चिट्ठी जितनी लम्बी मिल रही है, उससे बड़ी चिट्ठीकी उन्हें दरकार नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-५-१९२४

२७. साम्राज्यके मालका बहिष्कार

विचित्र बात है कि साम्राज्यके मालके बहिष्कारका प्रश्न बीच-बीचमें उठता ही रहता है। अहिंसात्मक असहयोगकी दृष्टिसे मुझे तो यह चीज ऐसी लगती है कि जिसके पक्षमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह तो खालिस बदलेकी भावना है और इसलिए इसमें दण्ड देनेका भाव निहित है। इसलिए जबतक कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोगपर कायम है तबतक दूसरे देशोंके मालको छोड़कर सिर्फ ब्रिटेनके मालके बहिष्कारका हमारे कार्यक्रममें कोई स्थान नहीं हो सकता और यदि ऐसा विचार रखनेवाला मैं ही एकमात्र कांग्रेसी हूँ तो फिर अगली कांग्रेसमें मुझे इस आशयका प्रस्ताव पेश करना ही होगा कि पिछले विशेष अधिवेशनमें इस विषयपर स्वीकृत प्रस्तावको रद कर दिया जाये।

लेकिन इस समय मैं प्रतिहिंसात्मक बहिष्कारकी नैतिकतापर नहीं, उसकी उप-योगितापर विचार करना चाहता हूँ। हम जानते हैं कि इस बहिष्कार अभियानमें नरमदलीय लोग भी शामिल थे किन्तु यह तथ्य भी उसकी उपयोगिताके सवालकी जाँच न करनेका कारण नहीं बन सकता। इसके विपरीत, यदि मेरी ही तरह वे भी यह मानने लगें कि उन्होंने और कांग्रेसवालोंने जो प्रतिहिंसात्मक बहिष्कारका रास्ता अपनाया था, वह न केवल प्रभावहीन साबित हुआ बल्कि उससे हमारे थोथे क्रोध और बहुमूल्य शक्तिके अपव्ययका एक और उदाहरण भी सामने आया तो मैं उनसे

अनुरोध करूँगा कि अब आप पूरे उत्साह और संकल्पके साथ समस्त विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार शुरू कीजिए और उनके स्थानपर भारतीय मिलोंके बने कपड़ेको नहीं, बल्कि हाथसे तैयार किये गये खद्दरको प्रतिष्ठित कीजिए।

मुझे बहिष्कार समितिकी रिपोर्ट पढ़नेका मौका मिला था। ब्रिटेन अथवा साम्राज्यके मालके बहिष्कारके रूपमें अधिकसे-अधिक क्या किया जा सकता है, उसके सम्बन्धमें इस रिपोर्टको आखिरी फतवा माना जाना चाहिए और वास्तवमें वह है भी। लेकिन, मेरे विचारमें, इस रिपोर्टसे ऐसे बहिष्कारका समर्थन नहीं, बल्कि बहुत जोरदार खण्डन होता है। उसमें साफ कहा गया है कि साम्राज्यके विभिन्न देशोंसे जितना माल यहाँ आता है उसमें से ज्यादातर मालका, उदाहरणके लिए, रेलवेके सामानका, आयात तो स्वयं सरकार या अंग्रेज पेढ़ियाँ ही करती हैं; और इत्र, साबुन, जूते आदि जो छोटी-मोटी चीजें हैं उनका उपयोग मुख्यतः आराम-तलब और विलासप्रिय, वे भारतीय करते हैं जिनके बहिष्कारमें शामिल होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। आँकड़ोंपर तनिक शान्तचित्त होकर विचार करनेसे स्पष्ट हो जायेगा कि यदि हर एक कांग्रेसी और नरमदलीय व्यक्ति इन छोटी-मोटी चीजोंका सख्तीके साथ बहिष्कार करे, तब भी उससे राष्ट्रीय धनकी जो बचत होगी वह हर साल किसी भी तरह एक करोड़ रुपयेसे ज्यादा नहीं हो सकती। इसके बाद भी जो लोग ऐसा सोच सकते हैं कि ऐसे बहिष्कारके परिणामस्वरूप केनियाके अंग्रेजों या कि आमतौरपर सभी अंग्रेजोंको अपनी नीति बदलनी पड़ेगी, तो यह असाधारण आशावादिता ही कहलायेगी।

इसपर आलोचकका कथन है, "लेकिन देखिए तो जब साम्राज्यके मालके बहिष्कारके बारेमें बम्बई नगर निगमके प्रस्तावकी खबर रायटरने बिना कोई शुल्क लिये तारसे भेजी तब चीपसाइडमें[1] कैसी हाय-तोबा मच गई थी!" मगर हमें ब्रिटेनके व्यापारिक तौर-तरीकोंकी इतनी जानकारी तो है ही कि हम इस हाय-तोबाकी बात सुनकर फूल नहीं उठेंगे। "इंग्लैंडको नुकसान पहुँचानेको कटिबद्ध और अच्छाई-बुराईका कोई खयाल न रखनेवाले भारतीय आन्दोलनकारियों" के खिलाफ भोली-भाली अंग्रेज जनताको भड़कानेके लिए ऐसी बनावटी हाय-तोबा अकसर मचाई जाती रहती है और जब इस तरहकी उत्तेजना बनावटी नहीं, वास्तविक होती है तब वह इस बातका लक्षण है कि अंग्रेज व्यापारी व्यापारिक चढ़ाव-उतारकी हरएक घटनाके प्रति कितने सतर्क होते हैं। अपने स्वार्थोंके प्रति ऐसी ही सहज जागरूकताकी बदौलत वे हर प्रकारके सम्भावित संकटके लिए बराबर तैयार रहते हैं। इसलिए मैं लोगोंको सलाह दूँगा कि वे इंग्लैंडकी — और इंग्लैंड ही क्यों, किसी भी देशके रोष-प्रदर्शन या उसकी वाहवाहीका भरोसा न करें। आपके जिस कामको वे भय अथवा प्रशंसाकी दृष्टिसे देखते हैं, वह काम यदि अपने आपमें काफी पुर-असर नहीं है तो उनके भय अथवा प्रशंसासे हमारी स्थिति निरापद कदापि नहीं बनती।

यदि हम कौममें अन्धे ही न हो गये हों तो इस बातका एहसास होनेपर कि हम अपनी कुछ राष्ट्रीय आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए भी इंग्लैंडपर निर्भर करते हैं,

१. पुराने लन्दनका एक बाजार।

हमें अपने बहिष्कारके प्रस्तावपर शर्म आनी चाहिए। जब हम अंग्रेजी पुस्तकों और दवाओंके बिना अपना काम नहीं चला सकते तो क्या इंग्लैंडकी घड़ियोंका बहिष्कार सिर्फ इसीलिए करना ठीक है कि हम घड़ियाँ जेनेवासे प्राप्त कर सकते हैं? और जब हम सिर्फ इसलिए अंग्रेजी पुस्तकोंके बिना अपना काम चलानेके लिए तैयार नहीं हैं कि उनकी हमें जरूरत है तो फिर हम इंग्लैंडसे घड़ियों और इत्रोंका आयात करनेवाले व्यक्तिसे अपने व्यापारके बलिदानकी आशा कैसे कर सकते हैं? मेरी बीमारीके दिनोंमें मेरी परिचर्याके लिए एक बहुत ही चुस्त और कुशल अंग्रेज नर्स थी। उसे मैं "जालिम" कहा करता था, क्योंकि वह बराबर बहुत ही स्नेहके साथ मुझसे, मैं जितना खाता और सोता था, उससे ज्यादा सोने और खानेके लिए आग्रह करती रहती थी। जब एक हाउस-सर्जन तथा उस नर्सने मुझे सही-सलामत एक खानगी वार्डमें पहुँचा दिया तब उसने अपने होठोंपर एक कुटिल मुस्कान लाकर आँखें चमकाते हुए कहा, "जब मैं आपके ऊपर छाता ताने आपके साथ चल रही थी, उस समय आपपर मुझे यह सोचकर बरबस हँसी आ गई कि आप ब्रिटेनकी हर चीजका ऐसा प्रबल बहिष्कार करनेवाले व्यक्ति हैं और फिर भी शायद एक अंग्रेज सर्जनकी शल्य-कुशलता और एक अंग्रेज नर्सकी परिचर्याके कारण ही आपकी जान बच सकी है। और उस सर्जनने शल्य-चिकित्साके जिन औजारों और जिन दवाओंका प्रयोग किया था, वे इंग्लैंडके ही बने हुए थे। और क्या आपको मालूम है कि आपको यहाँ लाते समय आपके ऊपर जिस छातेसे मैंने छाया कर रखी थी वह भी इंग्लैंडका ही बना हुआ है?" जब उस भली नर्सने विजय-गर्वके साथ अपना यह आखिरी वाक्य पूरा किया तो स्पष्टतः वह यही आशा कर रही थी कि यह स्नेहपूर्ण प्रवचन सुनकर मैं तो हक्का-बक्का रह जाऊँगा। लेकिन सौभाग्यसे मैंने यह कहकर उसके सारे आत्म-विश्वासको व्यर्थ कर दिया : "आप लोग वस्तुस्थितिको यथार्थ रूपमें देखना कब शुरू करेंगे? क्या आपको मालूम नहीं है कि मैं किसी भी चीजका बहिष्कार सिर्फ इसलिए नहीं करता कि वह ब्रिटेनकी है? मैं तो केवल विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करनेको कहता हूँ, क्योंकि भारतको विदेशी कपड़ेसे भर देनेके परिणामस्वरूप मेरे करोड़ों देशभाई दरिद्र हो गये हैं।" और इस तरह मैं उसमें खद्दर आन्दोलनके प्रति भी रुचि पैदा करनेमें सफल हुआ। वह शायद खद्दरकी समर्थक भी बन गई। जो भी हो, खद्दरके औचित्य, आवश्यकता और उपयोगिताको वह समझ गई, लेकिन सभी अंग्रेजी मालके सर्वथा प्रभावहीन और निरर्थक बहिष्कारपर तो वह हँस ही सकती थी। (उसका हँसना ठीक ही था)।

यदि प्रतिहिंसात्मक बहिष्कारके ये समर्थक अपने घरों और माल-असबावपर नजर डालें तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रकार मेरी नर्स मित्रने इस भ्रममें पड़कर कि मैं भी उसी बहिष्कारवादी विचारधाराका हूँ, मेरी स्थितिके भोंडेपनको स्पष्ट लक्षित किया था, उसी प्रकार उन्हें भी अपनी स्थितिके भोंडेपनका भान हो जायेगा।

हमारे केनियावासी देशभाइयोंके साथ न्याय हो और हमें जल्दीसे-जल्दी स्वराज्य मिल जाये, इस भावनाका मैं किसीसे कम समर्थक नहीं हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि क्रोधके वशीभूत होकर धैर्य खो बैठनेसे हमारे उद्देश्यकी ही हानि होगी। तब

फिर हमें अपने लक्ष्यतक पहुँचानेवाली वह कौन-सी चीज है जिसके लिए सभी दलोंके लोग — नरमदलीय भी और कौंसिल-प्रवेशके समर्थक भी, अपरिवर्तनवादी भी और अन्य लोग भी — मिल-जुलकर सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं? इस प्रश्नका उत्तर मैं दे चुका हूँ। किन्तु अगले अंकमें मैं उसपर पूरी तरह विचार करूँगा और यह दिखानेकी कोशिश करूँगा कि किन कारणोंसे यही उपाय व्यावहारिक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-५-१९२४

२८. जेलके अनुभव – ५

सुधारकी सम्भावना

मेरा यह सतत अनुभव रहा है कि भलाईसे भलाई और बुराईसे बुराई उत्पन्न होती है; इसलिए यदि बुराईका जवाब बुराईसे न दिया जाये तो वह निष्क्रिय हो जाती है और पोषण न पाकर अन्तमें निर्जीव हो जाती है। बुराई बुराईके सहारे ही जी सकती है। प्राचीन कालके सन्त-महात्मा इस सत्यको जानते थे, इसीलिए वे बुराईका बदला बुराईसे देनेके बजाय जान-बूझकर भलाईसे देते थे और इस तरह बुराईका नाश करते थे। फिर भी, बुराई अभीतक चल ही रही है। कारण यह है कि बहुत लोगोंने अभीतक इस अन्वेषणसे लाभ नहीं उठाया है, हालाँकि इसमें जो नियम अन्तर्निहित है वह वैज्ञानिक सूक्ष्मताके साथ सही काम करता है। बात यह है कि हम इतने आलसी हैं कि अपने सामने उपस्थित समस्याओंको इस नियमके अनुसार सुलझानेकी कोशिश ही नहीं करते और इसलिए मान बैठते हैं कि इसके अनुसार आचरण करनेकी हममें क्षमता ही नहीं है। वास्तविकता यह है कि जिस क्षण इस नियमके सत्यकी प्रतीति हो जाती है, उसी क्षण बदीका बदला नेकीसे देना इतना आसान हो जाता है जितना आसान कोई और काम है ही नहीं। मनुष्य और पशुके बीचका भेद स्पष्ट करनेवाला यही एक बड़ा गुण है। प्रहारके बदले प्रहार न करना, मनुष्यताका स्वाभाविक नियम है। जबतक हमें इस सत्यकी पूरी प्रतीति नहीं हो जाती और जबतक हम उसके अनुसार आचरण नहीं करते तबतक हम शरीरसे मनुष्य होते हुए भी वास्तवमें मनुष्य नहीं हैं। इस नियममें अपवादकी कोई गुंजाइश नहीं है।

मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं, जिसमें इस नियमके प्रयोगका वांछित परिणाम न हुआ हो। मेरा तो यह अनुभव रहा है कि सर्वथा अनजान व्यक्ति भी इस नियमके प्रयोगसे बरबस प्रभावित होते हैं। मुझे दक्षिण आफ्रिकाकी जिन तमाम जेलोंमें रहना पड़ा, उनके जो अधिकारी शुरूमें मेरे प्रति बहुत अधिक विरोध-भाव रखते थे, वे सबके-सब मेरे मित्र बन गये, क्योंकि मैंने उनकी बदीका जवाब बदीसे नहीं दिया। उनकी कटुताका जवाब मैंने मिठाससे दिया। इसका मतलब यह नहीं है

कि मैं अन्यायके विरुद्ध लड़ता नहीं था। इसके विपरीत, मेरे दक्षिण आफ्रिकाकी जेलोंके अनुभव-ऐसे अन्यायोंके विरुद्ध सतत संघर्षकी कहानी हैं। इनमें से अधिकांश संघर्षमें मैं सफल भी रहा। भारतकी जेलोंमें अधिक लम्बे अरसे तक रहनेके फलस्वरूप मेरे चित्तपर तो अहिंसात्मक आचरणका सत्य और सौन्दर्य और भी गहराईसे अंकित हो गया है। यरवदा जेलके अधिकारियोंके साथ कटुता पैदा करना मेरे लिए बहुत ही आसान था। उदाहरणके लिए जब सुपरिंटेंडेंटने वे अपमानजनक बातें कही थीं, जिनका वर्णन मैंने हकीम साहबको लिखे पत्रमें[1] किया है, उस समय चाहता तो मैं भी उतना ही तीखा जवाब दे सकता था। परन्तु वैसा करके तो मैं अपनी ही नजरमें हल्का हो जाता और सुपरिंटेंडेंटके इस सन्देहको भी पक्का बना देता कि मैं एक झगड़ालू और शरारती राजनीतिज्ञ हूँ। किन्तु, हकीम साहबवाले पत्रमें वर्णित अनुभव तो उनके बाद जो घटनाएँ होनेवाली थीं उनकी तुलनामें नगण्य ही थे। उनमें से कुछ घटनाओंका मैं यहाँ वर्णन कर रहा हूँ।

मुझे मालूम था कि एक गोरा वार्डर मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखता है। प्रत्येक कैदीपर शक करना वह अपना फर्ज मानता था चूँकि मैं सुपरिंटेंडेंटकी जानकारीके बिना छोटेसे-छोटे काम भी नहीं करना चाहता था, इसलिए मैंने उनसे कह रखा था कि अगर सामनेसे आनेवाला कोई कैदी मुझे सलाम करेगा तो जवाबमें मैं भी उसे सलाम करूँगा। मैंने उन्हें यह भी बता दिया था कि मेरे खानेके बाद जो खुराक बचती है वह सब मैं अपनी देख-रेख करनेवाले कैदी वार्डरको दे देता हूँ। वह गोरा वार्डर सुपरिंटेंडेंटके साथ हुई मेरी इस बातके बारेमें कुछ भी नहीं जानता था। एक बार उसने किसी कैदीको मुझे सलाम करते देखा। जवाबमें मैंने भी उसे सलाम किया। उसने हम दोनोंको यह काम करते देखा था, लेकिन उसने टिकट उस कैदीसे ही लिया। इसका अर्थ यह था कि उस बेचारेके बारेमें रिपोर्ट की जायेगी। मैंने तुरन्त उस वार्डरसे कहा कि आप मेरे बारेमें भी रिपोर्ट करें, क्योंकि मैंने भी उस बेचारे कैदीकी तरह ही अपराध किया है। उसने मुझसे सिर्फ इतना ही कहा कि मैं तो अपना फर्ज अदा कर रहा हूँ। गोरे वार्डरकी इस अनधिकार चेष्टाके लिए मैंने उसके विरुद्ध कोई रिपोर्ट नहीं की। इसके बजाय सुपरिंटेंडेंटसे मिलनेपर सिर्फ उस कैदी भाईको बचानेके खयालसे मैंने उनसे उसके और मेरे बीच हुई सलाम-बन्दगीकी ही बात कही और उस वार्डरके साथ मेरी जो बातचीत हुई थी उसका कोई जिक्र नहीं किया। इससे वार्डर समझ गया कि उसके लिए मेरे दिलमें कोई बुराई नहीं है। उस दिनसे उसने मुझपर सन्देह करना छोड़ दिया; इतना ही नहीं, वह मेरे प्रति बड़ा मित्र-भाव रखने लगा।

सब कैदियोंकी तरह मेरी भी रोज तलाशी ली जाती थी, इसपर मैंने कभी आपत्ति नहीं की। महीनों तक रोज शामको कैदियोंको बन्द करनेसे पहले नियमित रूपसे मेरी तलाशी ली जाती रही। इस मौकेपर कभी-कभी एक जेलर आता था, जो बहुत ज्यादा उद्धत था। मेरे शरीरपर मेरे कच्छके सिवा और कुछ रहता नहीं

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १३९-१४६।

था, इसलिए उसके लिए मुझे छूनेका भी कोई कारण नहीं था। फिर भी उसने एक बार मेरी कमर इत्यादिको टटोलकर मेरी जरूर तलाशी ली, उसके बाद मेरे कम्बलों और दूसरी चीजोंको उलट-पलट कर देखा और जूतेसे मेरे तसलेको हटाया। यह सब मुझे असह्य हुआ जा रहा था और मैं क्रोधके वशीभूत हो जाता, परन्तु सौभाग्यसे मैंने अपनेपर काबू पा लिया और उस नौजवान जेलरसे कुछ नहीं कहा। फिर भी, इस आदमीके बरतावके बारेमें रिपोर्ट की जाये या नहीं, यह सवाल मनमें बना रहा। यह घटना यरवदा जेलमें भरती होनेके बहुत दिन बादकी है, इसलिए यदि मैं उसके विरुद्ध रिपोर्ट करता तो उसके इस बरतावके लिए सुपरिंटेंडेंट अवश्य ही सख्त नाराजी जाहिर करता। अन्तमें मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि रिपोर्ट न की जाये। मुझे महसूस हुआ कि ऐसे व्यक्तिगत अपमान और अशिष्टताको पी ही जाना चाहिए। मैं उसके खिलाफ शिकायत करूँ तो कदाचित् उसकी नौकरी भी चली जाये। इसलिए ऐसा करनेके बजाय मैंने उसके साथ बात की। मैंने उससे कहा कि उसकी उद्धतता मुझे कितनी खटकी है और किस प्रकार मुझे पहले उसके विरुद्ध रिपोर्ट करनेका विचार आया था और अन्तमें यह सब करना छोड़कर किस प्रकार मैंने सिर्फ उसीके साथ बात करके मामला खत्म करनेका निश्चय किया है। मेरा उससे इस तरह बात करना उसे बहुत अच्छा लगा और उसने कृतज्ञताका अनुभव किया। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने अनुचित व्यवहार किया था; यद्यपि उसने कहा कि इसमें मेरी भावनाओंको चोट पहुँचानेका उसका कोई मंशा नहीं था। उस दिनके बादसे उसने मुझे कभी परेशान नहीं किया। सब कैदियोंके प्रति उसका आम व्यवहार सुधरा या नहीं, इसका मुझे पता नहीं है।

परन्तु सबसे बड़ा और अद्भुत परिणाम तो आया, कोड़ोंकी सजाओं और उपवासोंके प्रसंगोंमें मेरे बीचमें पड़नेपर। पहले-पहल आजीवन कैदकी सजावाले सिख कैदियोंने उपवास किये। उन्होंने ठान ली थी कि जबतक उन्हें उनके कच्छ, जो उनके लिए धर्मकी रूसे अनिवार्य वस्त्र हैं, वापस नहीं दे दिये जाते और उन्हें अपना भोजन खुद बनानेकी अनुमति नहीं मिल जाती तबतक वे निराहार रहेंगे। इस उपवासका पता चलते ही मैंने उनसे मिलनेकी इजाजत माँगी, परन्तु इजाजत नहीं दी गई। अधिकारियोंकी दृष्टिमें वह जेलकी प्रतिष्ठा और अनुशासनका प्रश्न था। असलमें यदि कैदियोंको बाहरके मनुष्योंकी तरह ही भावनाशील प्राणी माना जाये तो इसमें उपर्युक्त दोनों बातोंमें से एक भी बातका सवाल नहीं उठता। मुझे विश्वास है कि यदि उनसे मिलनेकी अनुमति मुझे दे दी गई होती तो अधिकारी बहुत-सी कठिनाइयों और परेशानियोंसे बच जाते और सार्वजनिक धनकी भी बचत होती। इतना ही नहीं, वे सिख कैदी अपने लम्बे कष्टपूर्ण उपवासोंसे बच जाते। परन्तु मुझे कहा गया कि मैं उन सिख कैदियोंसे मिल न सकूँ तो भी उन्हें "बेतारके तार" से अपना सन्देश भेजनेमें मुझे कोई बाधा नहीं होगी। "बेतारके तार" शब्दोंका अर्थ मैं यहाँ समझा दूँ। जेलकी भाषामें इस 'बेतारके तार' से सन्देश भेजनेका अर्थ होता है अधिकारियोंकी जानकारीमें अथवा उनकी जानकारीके बिना अनधिकृत रूपमें एक कैदीका दूसरे कैदीको सन्देश भेजना। सारे अधिकारी जेलमें ऐसे सन्देशोंके आने-जानेकी बात जानते हैं

और उसे तरह दिये रहते हैं। अनुभवसे उन्होंने सीख लिया है कि जेलके नियमोंके ऐसे उल्लंघनका पता लगाना अथवा उनका न होने देना असम्भव बात है। मैं कह देना चाहता हूँ कि मैं इस विषयमें अपने सिद्धान्तसे टससे-मस नहीं हुआ। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी अपने कामसे ऐसा "बेतारका सन्देश" भेजा हो। जब। कभी भेजा है, जेल शासनके हितकी दृष्टिसे प्रेरित होकर ही। मेरा खयाल है इसके परिणामस्वरूप अधिकारीवर्गने मुझपर अविश्वास करना बन्द कर दिया और यदि उनकी चलती तो वे उपर्युक्त ढंगके प्रसंगोंपर बीच-बचाव करनेके मेरे प्रस्तावका लाभ उठाना पसन्द करते। परन्तु ऊपरके अधिकारीगण जो अपनी प्रतिष्ठाके विषयमें जरूरतसे ज्यादा सतर्क थे, इस तरहकी कोई बात सुननेको तैयार नहीं थे।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसंगपर मैंने "बेतारके सन्देश" का उपयोग किया, परन्तु उसका लगभग कोई असर नहीं हुआ। यह उपवास बहुत दिन चलता रहा और जब टूटा तो कह नहीं सकता कि मेरे सन्देशोंका उसमें कुछ हाथ था या नहीं।

यह पहला अवसर था जब मुझे महसूस हुआ कि मानवताकी खातिर मुझे ऐसे मौकोंपर बीचमें पड़ना चाहिए।

दूसरा प्रसंग तब आया जब मुलशीपेटाके कैदियोंको उनके कम काम करनेपर कोड़े लगाये गये।[1] यहाँ उस दुखभरी कथाको विस्तारसे कहना जरूरी नहीं है। इन कैदियोंमें कुछ कैदी किशोरावस्थाके थे। सम्भव है, उन्होंने जान-बूझकर अपनी शक्तिसे कम काम किया हो। उन्हें पीसनेका काम सौंपा गया था। पता नहीं क्यों, मुलशी-पेटावाले इन कैदियोंको दूसरे स्वराज्यवादी कैदियोंकी तरह "राजनीतिक" कैदियोंकी श्रेणीमें नहीं रखा गया था। कारण चाहे कुछ भी रहा हो, काममें भी उन्हें ज्यादातर चक्की चलानेका काम ही दिया जाता था। चक्की चलानेका काम, हम लोगोंमें एक नाहक बदनाम काम है। मैं जानता हूँ कि कोई भी काम जब जबरन कराया जाता है और जब काम लेनेवाले लोग बराबर नेक और भले नहीं होते तो वह करनेवाले-के लिए बहुत कष्टकर होता है। फिर भी जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्माकी आवाजपर स्वयं जेल जाता है, उसे तो इस तरहका जो भी काम दिया जाये उसको गर्व और आनन्दकी चीज समझना चाहिए। मुलशीपेटाके कैदी — और सिर्फ वे ही क्यों, दूसरे कैदी भी — समष्टि रूपमें काम-चोर नहीं थे। उन सबके लिए यह एक नया ही अनुभव था और इसलिए सत्याग्रहीके नाते उनका क्या फर्ज है, अधिकसे-अधिक काम किया जाये अथवा कमसे-कम या बिलकुल किया ही न जाये, इसका एहसास उन्हें नहीं था। मुलशीपेटाके कैदियोंमें से अधिकांश इस मामलेमें शायद उदासीन वृत्ति रखते थे। इस बारेमें उन्होंने शायद कोई विचार ही नहीं किया था। फिर भी उनमें बहुतसे कैदी तेज-दम मर्द और नौजवान थे। वे सीधे "जो हुक्म" कहकर हुक्म बजानेवाले लोग नहीं थे। इस कारण उनमें और अधिकारियोंमें हमेशा खटपट हो जाया करती थी।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १६७-६८।

अन्तमें वह घड़ी आ ही गई। मेजर जोन्स उबल पड़े। उनका खयाल था कि ये लोग जानबूझकर अपना काम नहीं करते। उन्होंने कैदियोंको एक सबक देना तय किया और उनमें से छः आदमियोंको कोड़े लगाये जानेका हुक्म दिया। इस सजाकी खबर फैलते ही सारी जेलमें खलबली मच गई। सभी जानते थे कि जेलमें क्या हो रहा है और किस कारण हो रहा है। उन कैदियोंको जब मेरे वाड़ेके आगेसे ले जाया जा रहा था, तब मेरी नजर उनपर पड़ी और मुझे बड़ी व्यथा हुई। उनमें से एकने मुझे पहचान लिया और प्रणाम किया। "तनहाई"में जो "राजनीतिक" कैदी थे, उन्होंने इस घटनाके विरोधमें हड़ताल करनेका विचार किया। मैं इससे पहले मेजर जोन्सके गुणोंकी तारीफ कर चुका हूँ। यहाँ मुझे उनके कार्यकी आलोचना करनेका दुःखपूर्ण धर्म-पालन करना पड़ रहा है। मेजर जोन्स मूलतः बहुत अच्छी प्रकृतिके न्यायप्रिय व्यक्ति थे। वे अफसरोंके मुकाबले कैदियोंकी तरफदारी भी करते थे। परन्तु उनके काममें उतावलापन था। इसलिए कभी-कभी वे अपने निर्णयमें भूल कर जाते थे किन्तु इससे कोई बड़ी हानि नहीं होने पाती थी, क्योंकि वे अपनी भूल-को सुधारनेके लिए भी तत्पर रहते थे; परन्तु कोड़े मारने-जैसी सजाओंके मामलोंकी, जहाँ छूटा हुआ तीर वापस नहीं आ सकता, बात अलग है। मैंने नरमीसे इस विषयमें उनसे बातचीत की, परन्तु कम काम करनेपर कोड़ेकी सजा देना अनुचित है, यह बात निश्चय ही उनके गले नहीं उतरी। जब-जब पूरा काम नहीं किया गया है तब-तब इरादातन ही ऐसा किया गया हो सो बात नहीं है — वे इसे भी माननेको राजी नहीं हुए। उन्होंने इतना जरूर स्वीकार किया कि ऐसे मामलोंमें गलतीकी गुंजाइश बराबर रहती है, परन्तु उनके अपने अनुभवके अनुसार इसकी सम्भावना इतनी कम होती है कि वह नगण्य है। दुःखकी बात है कि बहुतेरे अधिकारियोंकी भाँति मेजर जोन्स भी कोड़ेकी सजाकी उपयोगितामें विश्वास रखते थे।

इस घटनाको अत्यन्त गम्भीर मानकर "राजनीतिक" कैदी उसके विरुद्ध उपवास शुरू करने ही जा रहे थे कि मुझे उसका पता चल गया। मैंने सोचा कि जबतक भूख हड़तालके पक्षमें औचित्यका आधार बहुत मजबूत नहीं कर लिया जाता, तबतक उपवास करना गलत है। कैदी कानूनको अपने हाथमें लेकर हर मामलेका निर्णय खुद ही करनेका दावा नहीं कर सकते। इसलिए इन सब भाइयोंसे मिलने देनेके लिए मैंने फिर एक बार मेजर जोन्ससे इजाजत माँगी। लेकिन इजाजत नहीं दी गई। इस बारेमें मेरा अधिकारियोंसे जो पत्र-व्यवहार हुआ उसे मैं प्रकाशित कर चुका हूँ।[1] उत्सुक पाठकोंसे मेरी सिफारिश है कि वे यह लेख पढ़ते समय वह पत्र-व्यवहार भी साथ ही पढ़ लें। मुझे फिर उस "बेतारके सन्देश"का आश्रय लेना पड़ा। इस सन्देशका सीधा परिणाम यह हुआ कि भूख-हड़ताल और यह संकट टल गया। परन्तु इसी घटनाके सिलसिलेमें एक और दुःखद प्रसंग उपस्थित हो गया। मेरा सन्देश भाई जयरामदासने उनतक पहुँचाया था और यह जेल नियमोंके विरुद्ध था। भाई जयरामदासको सम्बन्धित राजनीतिक कैदियोंसे मिलना जरूरी था और तदनुसार वे उनसे

१. देखिए खण्ड २३।

मिले भी। चूंकि उन कैदियोंको जानबूझकर अलग-अलग खण्डोंमें रखा गया था, भाई जयरामदासको अपना अहाता छोड़कर उन सब खण्डोंमें जाना पड़ा। कैदी-कर्मचारियों और एक गोरे जेलरको इस बातकी जानकारी जरूर थी। भाई जयरामदासने उनसे कहा कि मैं जेलके नियमोंको भंग कर रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ। आप मेरे खिलाफ खुशीसे रिपोर्ट कर सकते हैं। यथासमय उनके बारेमें रिपोर्ट हुई। मेजर जोन्सने कहा कि यद्यपि मैं जानता हूँ कि जयरामदासने जो-कुछ किया उसका उद्देश्य अच्छा था और यद्यपि मैं इस कामकी सराहना भी करता हूँ फिर भी इस सिलसिलेमें जेलके नियमका जो भंग हुआ है, मुझे इसके सम्बन्धमें कार्रवाई करनी ही होगी। उन्होंने भाई जयरामदासको सात दिनकी तनहाईकी सजा दी। मुझे जब यह मालूम हुआ तब मैंने मेजर जोन्ससे कहा कि मुझे भी कमसे-कम जयरामदासके बराबर तो सजा मिलनी ही चाहिए; क्योंकि जयरामदासने जेलके नियमका भंग मेरे कहनेसे ही किया है। उन्होंने कहा कि जेलके अनुशासनको बनाये रखनेकी दृष्टिसे नियमके प्रत्यक्ष उल्लंघनके विरुद्ध बाजाब्ता पेश की गई शिकायतपर कार्रवाई करना मेरा फर्ज है। जयरामदासने जो-कुछ किया, वे उसपर अप्रसन्न नहीं थे; बल्कि यह सोचकर प्रसन्न ही थे कि उन्होंने सजा भुगतनेकी जोखिम उठाकर भी उपवास करनेको तैयार राज-नीतिक कैदियोंसे मुलाकात की; और इस तरह एक बुरी परिस्थितिको पैदा नहीं होने दिया। मुझे सजा देनेके बारेमें उन्होंने कहा कि "आपको सजा देनेका मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं देता, क्योंकि आप अपनी हद छोड़कर नहीं गये; और जयरामदास गये सो आपके भेजे हुए गये, यह हकीकत अधिकृत रूपमें मेरे सामने पेश नहीं हुई।" मैं उनकी दलीलका मर्म समझ गया और फिर मुझे सजा देनेके बारेमें मैंने अपना आग्रह छोड़ दिया।

मैं अगले प्रकरणमें एक ऐसी घटनाका वर्णन करूँगा जो सत्याग्रहीकी दृष्टिसे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावपूर्ण और महत्वकी है। उसके बाद हम अहिंसात्मक व्यवहारके परिणामों और उपवासके नैतिक पहलूपर विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-५-१९२४

२९. सन्देश : धाराला परिषद्को[1]

१५ मई, १९२४

आपने लुटेरोंके साथ अपनी प्रथम सात्विक भेंटकी जो चर्चा की थी उसे मैं आजतक नहीं भूला हूँ। आज आप उस समयकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गये हैं। आपने धाराला[2] भाइयों और बहनोंको अपने स्नेह पाशमें बाँध लिया है। मेरी कामना है कि यह सम्बन्ध दृढ़तर होता जाये और आप इन भाई-बहनोंकी सर्वतोन्मुखी उन्नतिमें सहायक बनें।

मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि यदि किसी जातिमें कुछ लोग लुटेरे और आवारा बन जाते हैं तो उसका दायित्व उसी जातिपर होता है। लुटेरोंको लूटमार करना अच्छा लगता हो, सो बात नहीं है। लोग स्थितियोंसे मजबूर होकर लूटपाट करते हैं। जब वे समाज द्वारा दण्डित किये जाते हैं तब उनकी यह आदत और भी पक्की हो जाती है और इस तरह यह रोग फैलता जाता है। यदि हम लुटेरों और दूसरे जरायमपेशा लोगोंके साथ भी प्रेमका व्यवहार करें तो वे अपनी भूल समझ जाते हैं और नेक बन जाते हैं।

आप इस तरह अमूल्य कार्य कर रहे हैं। मुझे यह मालूम है कि धाराला जातिके सभी लोग लुटेरे नहीं हैं। उनमें से बहुत से लोग तो नीतिमान हैं। परन्तु हमने अज्ञान-वश उन्हें अपनेसे दूर कर रखा है। मैं आपके इस कार्यको सब कार्योंसे अधिक महत्व-पूर्ण मानता हूँ। यह कहना अनुचित न होगा कि आपके इस कार्यसे भारतका पुनरु-द्धार होना सम्भव है।

आप अपने प्रेमको विवेकशून्य न बनने दें। आप धाराला भाइयों और बहनोंको किसी उद्योगमें प्रवृत्त करें। आप उन लोगोंके बीच यह प्रचार तो कर ही रहे होंगे कि वे अपने हाथका कता-बुना कपड़ा पहनें, मद्यपान और अफीम इत्यादि व्यसनोंको त्याग दें, अपने बालकोंको पाठशालाओंमें भेजें और बड़े-बूढ़े भजन-कीर्तन सीखें। परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप इस दिशामें और भी अधिक प्रयत्न करें। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि सम्मेलनका कार्य निर्विघ्न समाप्त हो और आपकी सेवा करनेकी शक्ति और भी बढ़े।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

१. बोरसदमें हुई इस परिषद्के लिए गांधीजीने यह सन्देश रविशंकर व्यासको भेजा था। व्यासजी बादमें रविशंकर महाराजके नामसे विख्यात हुए। वे गांधीजीके पक्के अनुयायी और समाज-सेवी हैं और उन्होंने आजीवन धारालाओंका सुधार करनेका व्रत लिया है।

२. धाराला गुजरातकी एक उग्र और युद्धप्रिय जाति है। इस जातिके लोग खेतीबारी करते हैं, परन्तु उनमें से कुछ, खासकर अकालके दिनोंमें, लूटमार करने लगते हैं।

३०. पत्र : एमिल रोनिगरको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१५ मई, १९२४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला। आपने जिन रचनाओंका उल्लेख किया है उन्हें किसीके द्वारा पुनः मुद्रित किये जानेके सम्बन्धमें मैंने सर्वाधिकार सुरक्षित नहीं रखा है। मैंने उनका प्रकाशन भी नहीं किया है। सच पूछें तो आपको अनुमतिके लिए विभिन्न प्रकाशकोंको ही लिखना चाहिए। मेरा खयाल है कि प्रकाशन-सम्बन्धी आपके प्रस्तावका कोई भी व्यक्ति विरोध न करेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री एमिल रोनिगर
राइन फेल्डन
(स्विट्जरलैंड)

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८८०२) की फोटो-नकलसे।

३१. पत्र : न० चि० केलकरको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मई, १९२४

प्रिय श्री केलकर,

यह संस्मरण श्री बापटके लिए है। इच्छा और भी भेजनेकी थी क्योंकि मेरे पास बहुत-से संस्मरण हैं। किन्तु मैं आपसे और श्री बापटसे कहूँगा कि मुझपर दया करें। सचमुच मैं एक क्षणके लिए भी खाली नहीं रह पाता। लोकमान्यके[2] जितने संस्मरण मेरे पास हैं उन्हें लिखनेके लिए मुझे कोई अन्य अवसर तथा कोई और माध्यम ढूँढ़ना होगा।

१. रोनिगरने २ अप्रैलको जर्मनीसे गांधीजीको पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने भारतके सम्बन्धमें लिखी गई एक पुस्तकके रचयिताके रूपमें अपना परिचय दिया। उस पुस्तकमें उन्होंने गांधीजीपर भी कुछ लिखा था। रोनिगरने गांधीजीसे उनके कुछ चुने हुए लेख आदि छापनेकी अनुमति माँगी थी।

२. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक।

मैं श्री बापटके नाम अलगसे पत्र नहीं भेज रहा हूँ; क्योंकि इस सम्बन्धमें लिखे गये पत्रोंमें अन्तिम पत्र आपका ही था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत न० चि० केलकर
पूना

[संलग्न]

लोकमान्य तिलकके संस्मरण

लोकमान्यसे मेरी सर्वप्रथम भेंटके अवसरकी सब बातें मुझे भली-भाँति याद हैं। यह १८९४[1] की बात है। उन दिनों मुझे भारतमें इक्का-दुक्का लोग ही जानते थे। मैं दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके मामलेको लेकर एक सार्वजनिक सभाका आयोजन करनेके लिए पूना गया था। मैं पूनाके लिए एक नितान्त अपरिचित व्यक्ति था और वहाँके सार्वजनिक नेताओंको केवल नामसे जानता था। श्री सोहोनी जो मेरे भाईके मित्र थे और जिनके यहाँ मैं ठहरा था मुझे लोकमान्यके पास ले गये। उनके व्यवहारसे मेरी हिचक दूर हो गई और फिर जब उन्होंने मुझसे मेरे आनेका कारण पूछा तो मैंने तुरन्त उन्हें अपना उद्देश्य बता दिया; लोकमान्यने कहा: "अच्छा! तब तो आप पूनामें एक अजनबी-जैसे हैं, आप यहाँके सार्वजनिक नेताओंको नहीं जानते और न आपको स्थानीय मतभेदोंके बारेमें ही कुछ मालूम है। किन्तु मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि यहाँ दो राजनीतिक संस्थाएँ हैं। एक तो 'डेकन सभा' है और दूसरी है 'सार्वजनिक सभा'। दुर्भाग्यवश दोनों संस्थाएँ एक मंचपर साथ-साथ नहीं आतीं। सभाका आयोजन दोमें से कोई एक संस्था भी करे तो भी आपके उद्देश्यके प्रति तो सबकी सहानुभूति होनी ही चाहिए। इसलिए, इस सभाका सम्बन्ध किसी एक राजनीतिक संस्थासे न जोड़ा जाये। अच्छा हुआ जो आप मुझसे मिलने आ गये। आप श्री गोखलेसे[2] भी मिल लें, वे भी 'डेकन सभा' से सम्बद्ध हैं। मुझे विश्वास है कि आपको वे भी यही सलाह देंगे, जो मैंने दी है। आपको ऐसी सभा करनी चाहिए, जिसमें सभी दल शामिल हों। आप श्री गोखलेको सूचित कर सकते हैं कि मेरी ओरसे कोई अड़चन नहीं डाली जायेगी। इस प्रकारकी सभाके लिए हमें अध्यक्ष ऐसा चुनना होगा जो निष्पक्ष, विख्यात एवं प्रभावशाली हो। पूनामें डा० भण्डारकर इस प्रकारके व्यक्ति हैं। इसलिए आप उनसे भी मिल लें और आपसे जो-कुछ मैंने कहा है तथा जो-कुछ श्री गोखले कहेंगे वह सब उनसे कह दें और उन्हें अध्यक्ष बननेके लिए आमन्त्रित करें। वे सार्वजनिक जीवनसे प्रायः निवृत्त हो चुके हैं। वे संकोच करें तब भी उनसे आग्रह कीजिएगा। आपका उद्देश्य बहुत ही न्यायोचित है; वह उन्हें पसन्द जरूर आयेगा। यदि आप उन्हें अध्यक्ष बननेके लिए राजी कर सके तो बाकी सब काम सरल हो जायेगा। जो निर्णय हो उसे मुझे समय रहते सूचित कर दीजिये;

१. यह १८९६ होना चाहिए, देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४७।
२. गोपाल कृष्ण गोखले।

आप विश्वास रखें कि मेरी पूरी मदद रहेगी। मैं चाहता हूँ कि आपको पूर्ण सफलता मिले।'

मैं सोच भी नहीं सकता कि लोकमान्यने एक ऐसे नवयुवकको जिससे वे कभी मिले नहीं थे, जितना प्रोत्साहन दिया, उनके मर्तबेका कोई व्यक्ति उससे अधिक दे सकता है। यह मेरे जीवनकी स्मरणीय मुलाकात थी और लोकमान्यकी जो पहली छाप मुझपर पड़ी वह बादकी सभी मुलाकातोंके अवसरपर ज्योंकी-त्यों बनी रही।[1]

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८८०३) की फोटो-नकलसे।

३२. पत्र : देवचन्द पारेखको

बृहस्पतिवार [१५ मई, १९२४][2]

भाई श्री ५ देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला।

मैं अपना कर्त्तव्य निभा चुका हूँ। अब जो हो सो हो।

मोहनदासके वन्देमातरम्

देवचन्दभाई पारेख
तख्तेश्वर प्लाट
भावनगर

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००६) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

३३. पत्र : मणिबहन पटेलको

वैशाख सुदी १२ [१६ मई, १९२४][3]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा २० तारीख तक आरोग्य भवनसे[4] चला जाना कदापि ठीक न होगा। तुम्हें वहाँ यह मास तो पूरा करना ही चाहिए। मेरा वहाँ आना तो हो ही कैसे सकता है? मुझे २९ तारीखको साबरमती जरूर पहुँचना है।

१. आत्मकथा, भाग–२, अध्याय २८ भी देखिए।

२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

३. जैसा इस पत्रमें लिखा है, गांधीजी २९ मई, १९२४ को आश्रम आये थे। १९२४ में वैशाख सुदी द्वादशी १६ मई को पड़ी थी।

४. सूरत जिलेके हजीरा नामक स्थानमें।

वसुमती बहन जाना चाहेगी तो सूचित करूँगा; परन्तु आशा कम है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

३४. पत्र: विट्ठलभाई झ० पटेलको[1]

जुहू
१७ मई, १९२४

प्रिय महोदय,

मुझे आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ है। उत्तरमें निवेदन है कि आजकल मेरे स्वास्थ्यकी जैसी हालत है उसको देखते हुए किसी सार्वजनिक समारोहमें शामिल होना तथा उसके कार्यक्रमको निभाना निकट भविष्यमें सम्भव नहीं दिखता। तथापि आशा करता हूँ कि मैं आगामी अगस्त मासमें किसी दिन कावसजी जहांगीर हालमें नगर निगम द्वारा दिये गये मानपत्रको स्वीकार कर सकूँगा। यदि आपको असुविधाजनक न हो तो मेरा सुझाव यह है कि तिथिका निर्णय आपके साथ बातचीतके बाद ही हो।[2]

आपका सच्चा,

माननीय विट्ठलभाई झ० पटेल
अध्यक्ष
नगर निगम
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८८११) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र वि० झ० पटेलके १५ मई के पत्रका उत्तर है। उस पत्रमें उन्होंने गांधीजीको सूचना दी थी कि बम्बई नगर निगमने उन्हें मानपत्र देनेका प्रस्ताव पास किया है।

२. श्री पटेलने १९ जुलाईके अपने उत्तरमें गांधीजीसे प्रार्थना की थी कि वे १५ अगस्तसे पहले कोई तारीख निश्चित करें। गांधीजीने उन्हें लिख भेजा कि ९ अगस्त ठीक रहेगी।

३५. पत्र : नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको

वैशाख सुदी १३ [१७ मई, १९२४][1]

सुज्ञ भाईश्री

आपका पत्र मिला। आपको क्षोभ नहीं हुआ, यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ है। परन्तु मैंने उसके सम्बन्धमें 'नवजीवन' में क्षमा-याचना कर ली है। वह छप भी गई होगी।

आपका,
मोहनदास गांधी

[गुजरातीसे]
नरसिंहरावनी रोजनीशी

३६. पत्र : मणिबहन पटेलको

[१७ मई, १९२४][2]

चि० मणि,

अहमदाबाद पहुँचनेके बाद देखेंगे कि तुम्हें दवा लेनी है या नहीं। पूरे तौरसे स्वस्थ हुए बिना वहाँसे हरगिज नहीं आना है। वसुमती बहन कदाचित् सोमवारको यहाँसे चलकर वहाँ पहुँचेगी। भाई . . . सूरतमें उसका घर जानते हैं। वे वहाँ जाकर उसको देख लें और यदि वह वहाँ पहुँच गई हो तो उसे लिवा ले जायें। क्या वहाँ अलग मकान मिलते हैं? मैं यथासम्भव तार दिला दूंगा। अभी तो वसुमती बहन इन्जेक्शन ले रही है। दुर्गा बहनका[3] क्या हाल है? क्या वह मुझे पत्र लिखेगी ही नहीं? मेरा हाथ कुछ-कुछ काँपता तो जरूर है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन वल्लभभाई पटेल
आसर सेठका आरोग्य भवन
हजीरा, सूरत होकर

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने

१. इस पत्रमें जिस क्षमा-याचनाका जिक्र है वह १८ मई, १९२४ के नवजीवनमें नरसिंहरावके ७ मई, १९२४ के पत्रके साथ प्रकाशित हुई थी। १९२४ में वैशाख सुदी त्रयोदशी १७ मईको पड़ी थी।

२. प्रकाशित पुस्तकके अनुसार।

३. महादेवभाईकी पत्नी।

३७. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

बम्बई

शनिवार १७ मई, १९२४

हमारे प्रतिनिधिने पूछा : क्या आप वाइकोमसे आये प्रतिनिधि-मण्डलके साथ हुई अपनी बातचीतके बारेमें कोई वक्तव्य दे सकते हैं?

महात्माजीने धीमे स्वरमें बोलते हुए कहा :

मैं समझता हूँ कि हमारी बातचीत लगभग समाप्त हो चुकी है और मुझे यकीन हो गया है कि संगठनकर्त्ताओंने आन्दोलनको व्यवस्थित और अहिंसापूर्ण ढंगसे चलाया है। उन्होंने इस आन्दोलनको जिस दृढ़ता और मुस्तैदीसे चलाया, उससे सारी भारतीय जनताका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो गया है। यह सब बेशक हितकर है, लेकिन वाइकोमसे आये अपने मित्रोंसे पूरी तौरपर बातचीत कर लेनेके बाद मेरी अभीतक यही राय बनी हुई है कि सत्याग्रह केवल हिन्दुओं तक सीमित रखा जाना चाहिए और इसमें केरलके या ज्यादासे-ज्यादा मद्रास अहातेके स्वयंसेवकोंको ही भाग लेना चाहिए। सत्याग्रह अपने उग्रतम रूपमें आनेपर गहरा हो जाता है और इसलिए स्वाभाविक है कि तब उसकी व्याप्तिका क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है। मैं अपना आशय स्पष्ट कर दूँ। संगठनकर्त्ता जितने ही शुद्ध होंगे, सत्याग्रह उतना ही अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा। इसलिए संगठनकर्त्ताओंके द्वारा सत्याग्रहके क्षेत्रके विस्तारका अर्थ वास्तवमें अपनी कमजोरी अर्थात् उद्देश्यकी कमजोरी नहीं; बल्कि सत्याग्रहके लिए संगठित किये गये व्यक्तियोंकी कमजोरीको स्वीकार करना है। केवल हिन्दुओंसे ही सम्बन्धित धार्मिक प्रश्नको लेकर गैर-हिन्दू कदापि सत्याग्रह नहीं कर सकते, इसके बारेमें मेरा खयाल है कि मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें काफी लिख चुका हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरे मित्रोंने मेरी दलीलोंके वजनको समझ लिया है। सत्याग्रहियोंके रूपमें जो ईसाई और मुसलमान सज्जन जेल गये हैं यदि मैं उनको राजी कर सकूँ तो मैं यही चाहूँगा कि वे अधिकारियोंसे कह दें कि उन्होंने गलतीसे सत्याग्रह किया था। इसलिए अगर अधिकारीगण उनको रिहा करना चाहें तो ऐसा किया जा सकता है, क्योंकि वे फिर अछूत हिन्दुओंकी खातिर गिरफ्तार होनेकी कोशिश नहीं करेंगे। मैं 'अछूत' हिन्दू शब्दका इस्तेमाल जानबूझकर कर रहा हूँ — इसलिए कि मुझे मालूम हुआ है कि मलाबारके सीरियाई ईसाइयोंमें कुछ अछूत ईसाई भी मौजूद हैं। परन्तु चूँकि वर्तमान सत्याग्रह अछूत ईसाइयोंकी ओरसे नहीं चलाया जा रहा है, इसलिए सर्वश्री जोजेफ सिबैस्तियन और अब्दुर्रहीमके त्यागकी कोई सार्थकता नहीं है।

और जहाँतक सिखोंके लंगरका सम्बन्ध है, वह सिर्फ बेजा ही नहीं, बल्कि मुख्य उद्देश्य और केरलकी जनताके आत्मसम्मानके लिए हानिकारक भी है। उद्देश्यके लिए हानिकारक इसलिए है कि वह स्वयंसेवकोंके त्यागकी शक्तिको कमजोर बनाता है और

वह सुधार-विरोधी कट्टरपंथी हिन्दुओंको निरर्थक रूपसे नाराज किये बिना नहीं रहेगा। केरलकी जनताके आत्मसम्मानके लिए वह हानिकारक इसलिए है कि वह सिख मित्रों द्वारा दिये जानेवाले भोजनको बिना विचारे ग्रहण कर लेती है। इसे एक दान ही माना जा सकता है। जो आसानीसे अपना भोजन स्वयं जुटा सकते हैं और अपने ही रसोईघरोंमें उसका प्रबन्ध कर सकते हैं, ऐसे लोग एक बड़ी तादादमें लंगरसे भोजन लें और न चाहते हुए भी एक अनावश्यक दानको ग्रहण करनेके भागी बनें — इसे मैं आत्मसम्मानके लिए हानिकारक ही मानता हूँ। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि सिख लोग हिन्दू समाजके ही अंग माने जाते हैं या नहीं माने जाते। मैं चाहूँगा कि केरलके लोग अपना इतना आत्मसम्मान बनाये रखें और इतना साहस दिखायें कि यदि सनातनी हिन्दू भी ऐसा कोई भण्डारा खोलना चाहें तो वे नम्रतापूर्वक ऐसी सहायता स्वीकार करनेसे इनकार कर दें। मैं ऐसे भण्डारे या लंगरका औचित्य वहीं मानता हूँ जहाँ अकाल पड़ा हो और लोग भूखों मर रहे हों।

बाहरसे मिलनेवाली आर्थिक सहायताके बारेमें मेरा अभीतक यही मत है कि केरलके लोगोंको न तो ऐसी सहायता माँगनी चाहिए और न मद्रास-अहातेसे बाहरके हिन्दुओं या अन्य लोगोंसे बिना माँगे मिलनेपर भी उसे स्वीकार ही करना चाहिए। यदि उनको आर्थिक सहायताकी इतनी ही जरूरत हो तो वह केवल मद्रास-अहातेके हिन्दुओंसे ही प्राप्त की जानी चाहिए। हाँ, भारत-भरमें फैले हुए केरलके लोग यदि इस संघर्षको ठीक मानते हों तो आन्दोलनके संगठनकर्त्ताओंको यथासम्भव रुपये-पैसेकी मदद देना उनका कर्त्तव्य है।

मेरे मित्रोंने मुझसे पूछा था कि क्या मैंने यह राय जाहिर की थी कि केरलकी कांग्रेस कमेटीका इस सवालको अपने हाथमें लेना उचित नहीं था। मैंने उनको उत्तर दिया था कि यदि यह प्रश्न उठाया ही जाना था तो फिर कांग्रेस कमेटीका इसमें सबसे आगे बढ़कर दखल देना फर्ज था, क्योंकि वह सभी शान्तिपूर्ण और वैधानिक उपायोंसे छुआछूतको मिटानेके लिए शपथबद्ध है। लेकिन कांग्रेस द्वारा इस सवालको अपने हाथमें लेनेका मतलब यह नहीं हो सकता और न है ही कि सत्याग्रहमें गैर-हिन्दू भी भाग ले सकते हैं या उनको लेना चाहिए। वे सत्याग्रहको केवल अपना नैतिक समर्थन ही प्रदान कर सकते हैं।

मुझे इसमें किसी भी तरहका कोई शक नहीं है कि यदि आन्दोलनके संगठन-कर्त्ता इसी प्रकार शान्तिपूर्ण ढंगसे संघर्ष चलाते रहें, यदि वे मेरी सुझाई हुई सभी मर्यादाओंको स्वीकार कर लें और यदि उनका इरादा संघर्षको अनिश्चित कालतक जारी रखनेका हो तो उनको सफलता अवश्य ही मिलेगी। लेकिन साथ ही इस तथ्यपर मैं जितना भी जोर दूं कम होगा कि सत्याग्रह हृदय-परिवर्तनकी एक प्रक्रिया है और इसलिए आन्दोलनके संगठनकर्त्ताओंको अपने प्रतिपक्षियोंके हृदयको परिवर्तित करनेका उद्देश्य सदा सामने रखना चाहिए।

प्रश्न : क्या आपने 'डेली टेलीग्राफ' के भारत-स्थित संवाददाता द्वारा भेजा हुआ वह तार पढ़ा है, जिसमें बताया गया है कि आपने कांग्रेसके अगले अधिवेशनमें एक नई नीति स्वीकार करानेके लिए पहल करनेका निश्चय किया है? वह नीति यह है

कि विधान सभा और विधान परिषदोंमें बहुमत प्राप्त करके, बजटकी अस्वीकृतिकी वर्तमान निरर्थक नीतिके स्थानपर, एक रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल किया जाये। तारके अनुसार उस कार्यक्रमके अन्तर्गत जहाँतक एक ओर आवश्यक सेवाओंको चालू रखनेमें सरकारसे सहयोग करना है, वहाँ दूसरी ओर अपने सुस्थिर और ठोस बहुमत के बलपर आग्रहपूर्वक यह माँग भी की जानी है कि सुधारोंके क्षेत्रको तेजीके साथ व्यापक बनाया जाये, उनकी रूप-रेखामें आवश्यक परिवर्तन किये जायें और सेना सहित अन्य विभागोंके भारतीयकरणका काम और भी शीघ्रतासे पूरा किया जाये। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनको आमतौरपर और स्वराज्यवादियोंको खासतौर पर बदनाम करनेकी इच्छासे जानबूझकर की गई इस गलतबयानीको देखते हुए और आन्दोलनके वास्तविक उद्देश्योंके बारेमें इंग्लैंडमें मौजूद घोर अज्ञानको देखते हुए, क्या आप यह जरूरी नहीं समझते कि इंग्लैंडमें भारतके बारेमें सत्यका प्रचार करनेके लिए एक भारतीय ब्यूरो स्थापित किया जाये? क्या नागपुर अधिवेशनके बादसे अब तक आपके विचारोंमें कोई परिवर्तन हुआ है? यदि यह समझा जाये कि इस प्रकार का ब्यूरो चलानेमें इतना अधिक खर्च पड़ेगा कि कांग्रेस उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगी तो क्या कांग्रेस किसी ऐसे व्यक्तिको अपने कोषमें से रुपये-पैसेकी थोड़ी-बहुत सहायता नहीं दे सकती, जो यह काम करनेको राजी हो?

तार मैंने देखा तो था, पर मैंने सोचा कि कोई भी व्यक्ति उसे किसी तरहकी अहमियत नहीं देगा और न यही माननेको तैयार होगा कि तारमें सहयोगके सम्बन्धमें जो विचार मुझपर आरोपित किये गये हैं, वे विचार सचमुच मेरे हो सकते हैं। मैं तो अक्सर कहता रहा हूँ कि व्यक्तिगत हैसियतसे तो मैं सहयोग करना चाहता हूँ और इसके लिए उत्सुक भी हूँ, परन्तु जबतक सरकारमें हृदय-परिवर्तनका कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ता तबतक मैं असहयोगकी शक्तियोंको मजबूत करनेके लिए अधिक इच्छुक और अधिक उत्सुक हूँ। हृदय-परिवर्तनका मुझे अभीतक तो कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ा है। ब्रिटिश समाचारपत्रोंमें छपनेवाली गलतबयानियोंके खण्डनके लिए लन्दनमें प्रचार ब्यूरो चलाने या उसके लिए रुपये-पैसेकी मदद देनेके बारेमें मेरे विचार पहले जैसे ही हैं। मेरी अब भी यही राय है कि यदि हम अपने आपमें ठोस और दृढ़ हों तो कोई भी गलतबयानी या गलत ढंगसे पेश की गई कोई भी चीज हमें कभी कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकती। दूसरी तरफसे देखा जाये तो ब्रिटिश समाचारपत्रोंमें या विदेशी समाचारपत्रोंमें हमारी माँगोंका समर्थन करने या हमारी पीठ थपथपानेके लिए जो कुछ भी लिखा जायेगा, वह हमारे कमजोर, असंगठित और सरकार-से संघर्षके लिए अप्रस्तुत रहनेकी अवस्थामें हमारे किसी कामका साबित नहीं होगा। इसलिए हम और मदोंसे जितना धन बचा सकते हैं; उसकी पाई-पाई खद्दरके प्रचार, राष्ट्रीय पाठशालाओं और अन्य रचनात्मक कार्योंपर ही खर्च करनेकी मैं सलाह देता हूँ।

प्र० : आपने देखा होगा कि देशमें, सिर्फ राजनीतिक शिकायतोंकोही नहीं, निरी धार्मिक और सामाजिक शिकायतोंको दूर करानेके लिए भी तथाकथित सत्याग्रहका

तरीका अपनाना आम बनता जा रहा है। क्या आपका यह खयाल नहीं है कि इस अस्त्रके दुरुपयोगका और "सत्याग्रह" के बदले अवैध किस्मके उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए, "दुराग्रह"का खतरा पैदा होता जा रहा है। क्या आप सत्याग्रहियोंके लिए —कमसे-कम कांग्रेसके नेतृत्वमें चलनेवाले सत्याग्रहियोंके लिए—कुछ नियम निर्धारित कर सकते हैं?

हाँ, मैं मानता हूँ कि सत्याग्रहके सत्याग्रह न रहकर एक अनिष्टकारी शक्ति हो जानेका खतरा है और इसलिए उससे हानि पहुँच सकती है। किसी भी अच्छी चीज और विशेषकर इतनी समर्थ और सूक्ष्म तथा नाजुक शक्तिके दुरुपयोगकी सम्भावना तो हमेशा रहती ही है। मेरा खयाल है कि वाइकोमकी सत्याग्रहकी चर्चाके दौरान मैंने उसकी बुनियादी बातोंके बारेमें सरसरी तौरपर विचार किया है, पर मैं आपका यह सुझाव मानता हूँ और थोड़ी फुरसत मिलते ही मैं सत्याग्रहियोंके लिए अपने विचारके अनुसार कुछ अनिवार्य नियम निर्धारित कर दूँगा।

सर्वश्री के० माधवन नायर और कुँवर नीलकण्ठन् नम्बूद्रीपाद वाइकोमसे एक शिष्टमण्डलके सदस्योंके रूपमें आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि महात्माजीके साथ उनकी तीन-चार बार काफी देर-देर तक मुलाकातें हुई हैं और काफी ब्योरेवार चर्चा भी हुई है। उन्होंने अपनी योग्यतानुसार सारी बातें महात्माजीके सामने पेश कीं। महात्माजीने अपने सहज धैर्य और विनम्रताके साथ उनकी बातें सुनीं। उन्होंने मुझको बतलाया कि महात्माजीके वक्तव्यसे वे सन्तुष्ट हैं और उन्होंने अपना विश्वास व्यक्त किया कि केरल और मद्रास-अहातेके कार्यकर्ताओं और सहानुभूति रखनेवालोंको भी इससे सन्तोष होगा। महात्माजीने जोर देते हुए कहा कि प्रत्येक आन्दोलनमें आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन आवश्यक होते हैं। उनको ऐसी आशंका थी कि अस्पृश्यता-आन्दोलन कुछ क्षेत्रोंमें जिस रूपमें चलाया जा रहा है, उसको देखते हुए शायद महात्माजी कांग्रेस कमेटीके इस आन्दोलनको अपने हाथमें लेनेपर राजी न हों। लेकिन अब उन्हें विश्वास हो गया है कि वे ऐसी कोई आपत्ति नहीं करेंगे। महात्माजीने बड़ी ही स्पष्टताके साथ अपनी बात सामने रख दी है और इससे इस दिशामें कोई आशंका नहीं रहती। शिष्टमण्डल एक-दो दिनोंमें वाइकोम लौट रहा है।

महात्माजीने कौन्सिलके प्रश्नके सम्बन्धमें हमारे प्रतिनिधिको बताया कि इसी हफ्तेके अन्दर-अन्दर इस सम्बन्धमें एक सर्वांगपूर्ण वक्तव्य समाचारपत्रोंको भेज दिया जायेगा। हमारे प्रतिनिधिको मालूम हुआ है कि महात्माजी और स्वराज्यवादी नेताओंके बीच कई बार काफी देर-देर तक परामर्श चलता रहा है और वे किसी निर्णयपर लगभग पहुँच चुके हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-५-१९२४

३८. टिप्पणियाँ

बाल-विवाह और शास्त्र

"त्यागकी मूर्ति" शीर्षक लेखपर[1] एक भाईके पत्रका भावार्थ इस प्रकार है: "आप १५ वर्षसे कम आयुकी लड़कियोंका विवाह करनेके विरुद्ध हैं; लेकिन शास्त्रोंमें तो स्त्री-धर्मको प्राप्त होनेसे पहले ही लड़कियोंका विवाह करनेका आदेश दिया गया है। जो लोग बाल-विवाहोंके विरुद्ध हैं वे भी शास्त्रोंके नियमोंका पालन करते हैं। ऐसे धर्मसंकट में क्या किया जाना चाहिए?" मुझे तो यह धर्मसंकट नहीं जान पड़ता। शास्त्रोंके नामसे प्रसिद्ध पुस्तकोंमें जो कुछ लिखा है वह सब सच ही है और उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता, ऐसा कहने अथवा माननेवाले मनुष्यके समक्ष तो पल-पलमें धर्मसंकट उपस्थित होता रहेगा। एक ही श्लोकके अनेकार्थ होते हैं और वे भी परस्पर विरुद्ध तक। इसके अतिरिक्त शास्त्रोंमें कुछ सिद्धान्त अटल होते हैं और कुछ ऐसे जो विशेष काल और क्षेत्र आदिका विचार करके बनाये जाते हैं और उसी हदतक लागू किये जा सकते हैं। उत्तर ध्रुवमें जहाँ छः महीने तक सूर्य अस्त नहीं होता, अगर कोई मनुष्य रह सके तो उसे सन्ध्या किस समय करनी चाहिए? उसे स्नानादिके सम्बन्धमें क्या करना चाहिए? 'मनुस्मृति'में खाद्याखाद्यके अनेक नियमोंका विधान किया गया है। इस समय उनमें से एकका भी पालन नहीं किया जाता। उसके सभी श्लोक एक ही मनुष्यके द्वारा अथवा एक ही समयमें रचे गये हों, यह बात भी नहीं है। इसलिए जो मनुष्य ईश्वरसे डरकर चलना चाहता है और नीति सम्बन्धी नियमोंको भंग भी नहीं करना चाहता उसके सम्मुख तो एक मार्ग यही है कि वह, जो भी बात नीति विरुद्ध दिखाई दे उसको त्याग ही दे। स्वेच्छाचार कभी धर्म हो ही नहीं सकता। हिन्दू धर्ममें संयमकी कोई सीमा नहीं बाँधी गई है। जिस बालाको वैराग्य हो गया हो वह क्या करे? स्त्री-धर्मको प्राप्त होनेका अर्थ क्या है? जो अवस्था स्त्री-जातिके लिए सामान्य है उसको प्राप्त होनेपर लड़कीका विवाह किया ही जाना चाहिए, ऐसा आग्रह कैसे किया जा सकता है? स्त्री-धर्मको प्राप्त करनेपर ही विवाह किये जानेकी मर्यादा तो समझमें आती है। हम शास्त्रोंके अर्थके पचड़ेमें पड़कर कदापि अत्याचार नहीं कर सकते। जो हमें मोक्षकी ओर प्रवर्तित करें वे ही शास्त्र हैं; जो हमें संयमकी शिक्षा दे वही असली धर्म है। जो मनुष्य बाप-दादोंके कुएँमें डूब मरता है वह मूर्ख ही माना जायगा। अखा भगतने[2] शास्त्रोंको अंधेरा कुआँ माना है। ज्ञानेश्वरने[3] वेदोंको संकुचित बताया है। नरसिंह मेहताने[4] अनुभवको ही

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५५९-६०।

२. १७ वीं शताब्दीके एक गुजराती सन्त कवि।

३. १३ वीं शताब्दीके एक महाराष्ट्रीय सन्त।

४. १५ वीं शताब्दीके गुजराती सन्त कवि।

ज्ञान माना है। यदि हम संसारकी ओर दृष्टि फेरें तो देख सकते हैं कि जिसे उक्त भाईने धर्म माना है वह धर्म नहीं, वरन् अधर्म है; और सर्वथा त्याज्य है। आज हम इस अधर्मके फलस्वरूप असंख्य बालाओंकी हत्या करते हैं। इतिहास इसके लिए हिन्दू पुरुष-वर्गकी भर्त्सना करेगा। लेकिन हमें इतिहासकी चिन्ता नही करनी चाहिए। हम बाल-विवाहका कड़ुवा फल स्वयं ही चख रहे हैं। हिन्दू युवकोंमें बहुतेरे निःसत्व, अपंग और भयग्रस्त हैं। इसका एक सबल कारण बाल-विवाह है, इस तथ्यको कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि अपरिपक्व माता-पिताओंसे उत्पन्न सन्तानका शारीरिक गठन, चाहे जितने भी उपाय क्यों न किये जायें, मजबूत नहीं हो सकता। सौभाग्यसे उपर्युक्त भाई जिस नियमका उल्लेख कर रहे हैं उसे सारे हिन्दू मान्यता नही देते, इसलिए हिन्दुओंने अपनी शरीर-सम्पत्तिको अभी पूरी तरह नहीं खो दिया है। यदि इसका अक्षरशः पालन किया जाता तो हिन्दू-समाजमें सबल पुरुषोंका लोप ही हो जाता।

उचित शिकायत

हरिहर शर्मासे 'नवजीवन' के बहुतसे पाठक परिचित नहीं होंगे। वे 'काका' के कुटुम्बी कहे जा सकते हैं। मैं पाठकोंको इस परिवारका कुछ परिचय देता हूँ। जब भाई केशवराव देशपाण्डे बैरिस्टरने बड़ौदामें गंगानाथ विद्यालय खोला तब उन्होंने अपने आसपास एक शिक्षक-समुदाय इकट्ठा किया। उन्होंने परस्पर कुटुम्ब-भावना विकसित करनेके विचारसे ऐसे उपनाम रखे मानों सब एक दूसरेके सम्बन्धी हों। संस्थाके रूपमें तथा भवनके रूपमें तो इस विद्यालयका लोप हो गया है; लेकिन भावके रूपमें यह आज भी विद्यमान है। इस संस्थाके पुराने कौटुम्बिक सम्बन्ध अभी बने हुए हैं। खूनका रिश्ता जैसे कभी नष्ट नही हो सकता, उस तरह आध्यात्मिक सम्बन्ध भी नष्ट नहीं हो सकता, इस विचारसे प्रेरित होकर इस कुटुम्बके जिन लोगोंको उपनाम दिये गये थे उन्होंने उन उपनामोंको पवित्र मानकर अभी तक बनाये रखा है। केशवराव देशपाण्डे-को उनके कार्यकर्त्ता अब भी "साहेब" के नामसे जानते हैं और मान देते हैं। हमारे कालेलकर तो अपने आपको "काका" के नामसे ही पहचाने जानेकी अपेक्षा करते हैं। फड़केको फड़के नामसे तो बहुत कम गुजराती जानते है। हम सब तो उन्हें "मामा" नामसे ही पहचानते हैं। इसी तरह हरिहर शर्मा "अण्णा" हैं। दक्षिणी कुटुम्बोंमें प्रयुक्त उपनामोंमें अण्णा भी एक है। इसका प्रयोग तमिलमें भी लगभग इसी अर्थमें किया जाता है। "अण्णा" का अर्थ है भाई। एक अन्य व्यक्ति "भाई" नामसे पुकारे जाते हैं। हालांकि वे अभी जीवित हैं तथापि वे न होनेके बराबर हैं। मैं इस प्रख्यात कुटुम्बके सभी कुटुम्बियोंके नामोंसे परिचित नहीं हूँ। काका स्वयं ही किसी दिन फुरसतके समय हमें इस कुटुम्बका पूरा-पूरा परिचय देंगे, इस आशासे मैंने इतना सिर्फ हरिहर शर्माका परिचय देते हुए ही लिखा है।

इतनी प्रस्तावना लिखकर मैंने एक भ्रम भी दूर किया है। कुछ लोग अथवा बहुत लोग यह मानते आये हैं कि "काका" और ऐसे ही अन्य सेवक गुजरातको दी हुई मेरी भेंट हैं। सचमुच देखा जाये तो ये सब "साहेब" की देन है। उन्होंने इनको

मुझे उधार दे दिया है और इस तरह मुझे भी बाँध लिया है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इन कुटुम्बियोंकी मदद करता हुआ जितना बन सके, "साहेब" के प्रति उनके भक्ति-भावको पुष्ट करूँ। मैंने जो घोंसला बनाया है उसमें अन्य पक्षी भी आ बसे हैं। इनके मूलकी खोज करें तो मालूम होगा कि ये सब इस घोंसलेमें इसलिए आये हैं कि यहाँ उनको आश्रय मिला है। यहाँ उनके पंख काटे नहीं गये हैं, बल्कि वे और भी मजबूत बन गये हैं; इसलिए वे अपनी इच्छाके अनुसार उड़ सकते हैं। जबतक ये यहाँ रहेंगे तबतक मैं इनका कर्जदार हूँ। मैं इनको लानेवाला नहीं हूँ, इसीलिए इनको रखनेवाला भी नहीं हूँ। ये सब स्वतन्त्र हैं; लेकिन संयमका पालन करनेके कारण वे स्वेच्छाचारी नहीं कहे जा सकते।

इन "अण्णा" ने द्रविड़ प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारके कार्यको उठा लिया है। इसके लिए उन्होंने और उनकी धर्मपत्नीने प्रयागमें हिन्दीका अभ्यास किया। दोनोंने प्रयागसे हिन्दीकी परीक्षा उत्तीर्ण की और बादमें मद्रासमें हिन्दी-प्रचारका काम करने लगे हैं। जो इस सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें वे उनसे ब्यौरा मँगवा सकते हैं।

भाई "अण्णा" "हिन्दी प्रचार" नामक एक पाक्षिक पत्र भी निकालते हैं। इन्हें बोरसदकी प्रान्तीय परिषद्की[1] स्वागत समितिके अध्यक्षने निमन्त्रण भेजा था। वह साराका-सारा अंग्रेजीमें था। क्या अण्णा इसे सहन कर सकते थे? उन्होंने मुझे एक तीखा पत्र लिखा है। उन्हें लिखना तो यह पत्र मोहनलाल पण्ड्याको[2] था। अपराध तो उन्होंने किया और चोट पड़ी मुझपर। अण्णा पण्ड्याको जानते भी हैं; लेकिन वे शायद उनसे डरते हैं। मैं ठहरा एक दुबली गाय, अतः हर किसीकी लाठी मुझपर ही पड़ती है। अण्णाने भी वही किया है। वे लिखते हैं:[3]

इसपर मुझे कोई टीका करनेकी जरूरत नहीं रह जाती। अण्णाको सन्तुष्ट करनेका एक ही रास्ता है। वह यह है कि जिन गुजरातियोंने अभीतक हिन्दी-उर्दू अर्थात् हिन्दुस्तानी न सीखी हो वे उसे सीख लें और अबसे परस्पर अथवा दूसरोंसे व्यवहारमें मुख्य रूपसे मातृभाषाका अथवा राष्ट्रभाषाका ही प्रयोग करें।

नरसिंहराव भाईका पत्र

यह पत्र[4] मुझे जिस रूपमें मिला है, नरसिंहराव भाईकी इच्छानुसार उसी रूपमें प्रकाशित कर दिया है। मैंने उनके नामका जिस ढंगसे उपयोग किया है[5] देखता हूँ कि उससे उनको बड़ा दुःख हुआ है। इससे मुझे भी दुःख हुआ है और अनजाने ही मुझसे जो अपराध बन पड़ा है उसके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। मैं जब किसीके भी नामका जानबूझकर मजाक नहीं उड़ाता, तब नरसिंहराव और 'खबरदार' जैसे साहित्य-सेवियोंके नामके साथ इस प्रकारकी छूट कैसे ले सकता हूँ? मैंने जो कुछ

१. १३ मई, १९२४ को हुई सातवीं गुजरात राजनीतिक परिषद्।
२. मोहनलाल कामेश्वर पण्ड्या, गुजरातके खेड़ा जिलेके एक कांग्रेसी कार्यकर्ता।
३. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।
४. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।
५. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५३०।

लिखा है वह केवल दोनों सज्जनोंके प्रति आदरभावसे प्रेरित होकर ही लिखा है। अगर मैं अपने लेखमें इस भावको दर्शानेमें असफल रहा हूँ तो मैं दोनों सज्जनोंको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इसका कारण मेरी भाषाकी खामी है, भावकी नहीं।

भाई कल्याणजीकी हालत

भाई कल्याणजी विट्ठलजीकी[1] तबीयत ठीक नहीं रहती और उनको खुराक इत्यादि की भी असुविधा है — यह जानकर 'नवजीवन' में इस सम्बन्धमें कुछ भी लिखनेसे पहले मैंने जेलके इन्स्पेक्टर जनरलसे लिखकर पूछताछ की थी। उन्होंने इसका जो उत्तर दिया है वह निम्नलिखित है।[2]

भाई कल्याणजीका वजन सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। जिस समय वे जेलसे बाहर थे यदि उस समय उनका वजन ९२ पौण्ड था तो यह बहुत कम कहा जायेगा। जेलमें उनकी ऊँचाईके अनुपातसे उनका वजन बढ़ना ही चाहिए।

अन्त्यजोंके सम्बन्धमें कीर्तन

एक स्वयंसेवक लिखता है, स्वदेशी अर्थात् खादी-प्रचार, मद्य-निषेध आदिके विषयमें कीर्तन हो रहे हैं और इनसे गाँवोंमें प्रचार बहुत अच्छा हो जाता है। ऐसे भजन-कीर्तन अन्त्यजोंके सम्बन्धमें नहीं हैं। गुजरातमें असहयोगी और सहयोगी दोनों तरहके पर्याप्त कवि हैं। अन्त्यजोंका विषय एक ऐसा विषय है जिसे लेकर सहयोगी और असहयोगीके बीच बहुत अन्तर नहीं है। जब अन्त्यज भाइयोंके लिए स्कूल खोलनेके कार्यमें सरकारी मदद लेनेकी बात आती है, तभी केवल सहयोगी और असहयोगीके भेदकी बात उठती है। तात्पर्य यह कि अस्पृश्यता पाप है और अन्त्यजोंकी सहायता करना प्रत्येक हिन्दूका धर्म है। क्या हमारे कवि ऐसी काव्य-रचना करके गुजरातकी सेवा नहीं करेंगे?

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १८-५-१९२४

२९. गृह-कलह

एक "अनाविल"[3] भाई जिन्होंने अपना नाम-धाम लिखा है, अपने दुःखकी राम-कहानी[4] इस प्रकार सुनाते हैं:

मैं समझता हूँ कि जैसी दयनीय दशा इन भाईकी है वैसी बहुतसे व्यक्तियोंकी होगी। पति और पत्नीका पारस्परिक सम्बन्ध इतना नाजुक है कि कोई तीसरा मनुष्य

१. गुजरातके एक कांग्रेसी नेता और शिक्षा-शास्त्री।

२. यहाँ नहीं दिया गया है।

३. गुजरातकी एक जाति।

४. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने पूछा था कि वे क्यों न अपनी पत्नीके विरुद्ध सत्याग्रहका प्रयोग करें क्योंकि उनकी पत्नी सिनेमा, विवाह आदिमें सम्मिलित होते समय विदेशी कपड़ेका प्रयोग करती हैं, हालाँकि उन्होंने विदेशी कपड़ा खरीदना बन्द कर दिया है।

उनके बीच पड़कर शायद ही कुछ सेवा कर सके। सत्याग्रह शुद्ध प्रेमका चिह्न है। दाम्पत्य प्रेम बिलकुल निर्मल हो जानेपर ही पराकाष्ठाको पहुँचता है। तब उसमें विषय-वासनाकी गुंजाइश नहीं रहती और स्वार्थकी तो गन्धतक नहीं हो सकती। इसीसे कवियोंने दाम्पत्य प्रेमका वर्णन करके आत्माकी परमात्माके प्रति लगनको स्वयं पहचाना है और दूसरोंको भी उसका परिचय कराया है। ऐसा प्रेम कदाचित् ही मिल पाता है। विवाहका बीज आसक्तिमें होता है। उसकी उत्पत्ति तीव्र आसक्तिसे हुई है। तीव्र आसक्ति जब अनासक्तिके रूपमें परिणत हो जाये और जब एक आत्मा शरीर-स्पर्शकी आकांक्षा त्यागकर और उसका खयाल तक न रखकर दूसरी आत्मामें तल्लीन हो जाये, तब उस प्रेममें परमात्माके प्रेमकी कुछ झलक मिल सकती है। यह वर्णन भी बहुत स्थूल है। मैं जिस प्रेमकी कल्पना पाठकोंको कराना चाहता हूँ वह निर्विकार प्रेम है। मैं खुद अभी इतना विकार-शून्य नहीं हुआ हूँ कि उसका यथार्थ वर्णन कर सकूं। इसलिए मैं जानता हूँ कि जिस भाषाके द्वारा मुझे उस प्रेमका वर्णन करना चाहिए वह मेरी कलमसे नहीं निकल पाती; तथापि मुझे आशा है कि शुद्ध हृदय पाठक उस भाषाकी कल्पना अपने-आप कर लेंगे।

मैं दम्पतीमें जब इतने निर्मल प्रेमको सम्भव मानता हूँ तब वहाँ सत्याग्रह क्या नहीं कर सकता? यह सत्याग्रह वह वस्तु नहीं है जो आजकल सत्याग्रहके नामसे पुकारी जाती है। पार्वतीने शंकरके मुकाबलेमें सत्याग्रह किया था अर्थात् हजारों वर्ष तक तपस्या की थी। रामचन्द्रने भरतकी बात नहीं मानी तो वे नन्दिग्राममें जाकर बैठ गये। राम भी सत्य-पथपर थे और भरत भी सत्यपथपर थे। दोनोंने अपना-अपना प्रण रखा। भरत रामकी पादुकाएँ लेकर उनकी पूजा करते हुए योगारूढ़ हुए। रामकी तपश्चर्यामें बाह्य आनन्दकी गुंजाइश थी। भरतकी तपश्चर्या अलौकिक थी। रामके लिए भरतको भूल जानेका अवसर था। भरत तो पल-पल राम-नामका ही जप करते थे। इसीसे भगवान दासानुदास बन गये।

यह शुद्धतम सत्याग्रहकी मिसाल है। इसमें दोनोंमें से किसीकी भी जीत नहीं हुई। यदि कोई विजयी कहा ही जाये तो वह भरत है। यदि भरतका जन्म न हुआ होता तो रामकी महिमा भी न हुई होती। यह कहकर तुलसीदासने प्रेमका रहस्य हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है।

यदि पत्र-प्रेषक सज्जन घड़ी भरके लिए स्थूल प्रेमको भूलकर दाम्पत्य-प्रेममें छिपे सूक्ष्म प्रेमको धारण कर सकें — मैं जानता हूँ कि यह प्रयत्नसे नहीं होता, वह तो जब प्रकट होना होता है तब हो जाता है — तो मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि उनकी पत्नी अपने विलायती कपड़े उसी दिन जला देंगी। परन्तु कोई यह शंका न करे कि छोटी-सी बातके लिए मैं इतना बड़ा उपाय क्यों बता रहा हूँ? कोई यह भी न कहे कि मैं तारतम्य ही नहीं समझता। बात यह है कि छोटीसे-छोटी बातें हमारे जीवनमें जो परिवर्तन करती हैं वे जानबूझकर किये गये प्रयासोंसे अथवा बड़े-बड़े चमत्कारोंसे भी घटित नहीं हो सकते।

दम्पतीके बीच सम्भव सत्याग्रहकी बीसों मिसालें मैं अपनी अनुभव-पुस्तकमें से दे सकता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि इन सबका दुरुपयोग भी किया जा सकता

है। मुझे वर्तमान वातावरण जहरीला मालूम होता है। मैं ऐसे समय इन अनुभवोंकी मिसाल देकर उक्त भाईको, जिन्होंने शुद्ध भावसे प्रश्न किया है, भ्रमित करनेका पाप अपने सिर नहीं लेना चाहता। इसलिए मैं उच्चसे-उच्च स्थिति बताकर उसमें से अपने संकटके निवारणका उचित मार्ग खोजनेका काम उन्हींको सौंपता हूँ।

स्त्रियोंकी स्थिति नाजुक है। उनके सम्बन्धमें उठाये जानेवाले कदमोंमें बल-प्रयोगकी गन्ध आ जाती है। हिन्दू जीवन कठिन है। इसीसे वह औरोंकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ रह सका है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पतिको केवल वही प्रभाव डालनेका अधिकार है, जो शुद्ध प्रेमके द्वारा डाला जा सकता है। यदि दोनोंमें से कोई एक भी विषय-वासनाको जड़से काट सके तो रास्ता सरल हो जाता है। मेरा दृढ़ मत है कि पुरुषको स्त्रीमें जो खामियाँ दिखाई देती हैं उनकी पूरी-पूरी नहीं तो काफी जवाबदेही पुरुषकी ही है। वही स्त्रीमें सज-धजका मोह पैदा करता है। वही उसे बढ़िया माने जानेवाले कपड़े पहननेको कहता है। फिर स्त्री उनकी आदी हो जाती है; और जब पतिमें परिवर्तन होता है तब वह तत्काल पतिका साथ नहीं दे पाती। इसमें दोष पुरुषका ही है, स्त्रीका नहीं। यह समझकर पुरुषको धीरज रखना लाजिमी है।

यदि हिन्दुस्तानको शान्तिपूर्ण उपायोंसे स्वराज्य मिलना है तो उसमें स्त्रियोंको पूरा-पूरा योग अवश्य देना पड़ेगा। स्त्रियोंको जबतक, विलायती, मिलोंके तथा रेशमी कपड़ोंका मोह बना रहेगा तबतक स्वराज्य दूर ही रहेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

४०. काठियावाड़ क्या करे?

मैंने गत सप्ताह राजनीतिक परिषद् बुलानेके सम्बन्धमें अपना विचार सम्यक् रूपसे पाठकोंके समक्ष रखा था। परिषद् होगी अथवा नहीं और अगर होगी तो कहाँ होगी, इस बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि कुछ भाइयोंके मनमें भी, जो मुझसे मिलने आये थे, निराशा आ गई है। वे बड़े सत्याग्रही होनेका दम भरते हैं। मुझे उनको बता देना चाहिए कि सत्याग्रहीके कोषमें निराशा अथवा उसका समानार्थक शब्द होता ही नहीं। मेरी समझमें तो यह बात ही नहीं आती कि उनके मनमें निराशा क्यों आई? उनके विचार तो मुझसे ही मिलते-जुलते थे। लेकिन यदि यह भी मान लें कि वे मेरे तेजसे अभिभूत हो गये थे तो भी उनको उस तेजके प्रभावसे बाहर आनेपर सावधान होने और फिर विचार करनेका अधिकार था। यदि उन्होंने इस तरह विचार किया हो और उन्हें यह लगा हो कि कार्यकर्ताओंकी ओरसे कोई भूल नहीं हुई और शर्तें स्वीकार करनेपर परिषद्की अनुमति देनेका वादा करनेके बावजूद दरबारके[1] अनुमति न देनेकी स्थितिमें सत्याग्रह

१. भावनगरके शासक।

करना उनका धर्म हो जाता है तो उन सभीको अथवा उनमें से किसी एकको भी सत्याग्रह करनेका अधिकार है। सत्याग्रह बिना किसी संगी-साथीके भी किया जा सकता है, यह उसकी खूबी है। मेरे विरोधी विचारके कारण लोगोंमें बुद्धि-भेद उत्पन्न होनेकी बात मेरी समझमें आती है; लेकिन जिसे सत्यके दर्शन हो गये हैं वह सत्याग्रहकी प्रचण्ड शक्तिका उपयोग करके इस भेदसे बच सकता है। सत्याग्रही मेरे विरोध करनेपर भी कदापि पीछे नहीं हटेगा। मुझे भले ही इस बातका अभिमान हो कि सत्याग्रहके शास्त्रको तो केवल मैं ही जानता हूँ, लेकिन इस शास्त्रके ज्ञान-पर मेरा कोई एकाधिकार नहीं है। एक भाईने इस विषयपर एक पुस्तक प्रकाशित करके इस बातकी सत्यता सिद्ध करनेका प्रयत्न भी किया है। उन्होंने लिखा है कि मेरा सत्याग्रह अपेक्षाकृत अशुद्ध है और उस भाईने स्वयं जिस सत्याग्रहकी परिकल्पना की है वह शुद्धतम है। मैं किसी समय पाठकोंको इस पुस्तकका परिचय देनेकी आशा रखता हूँ। सत्याग्रहके उपयोग और उसकी योजनाके सम्बन्धमें नित्य नई खोज होती ही रहेगी। जिसमें आत्म-विश्वास हो उसका धर्म है कि वह इसमें प्राणोंका मोह त्यागकर कूद पड़े। सत्याग्रही अपनी कल्पनाका सत्य दूसरोंको दुःख देकर नहीं; बल्कि स्वयं दुःख सहकर मूर्तिमन्त करता है, केवल इस एक बातमें ही परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि सत्याग्रहकी व्याख्यामें ही उसका समावेश हो जाता है। इसलिए सत्याग्रहीको अपनी भूलोंका परिणाम मुख्य रूपसे स्वयं ही भोगना पड़ता है।

मैं इस प्रस्तावनासे जो लोग सच्चे सत्याग्रही हैं उन्हें उत्तेजन प्रदान करनेके बाद पिछले हफ्ते ली गई प्रतिज्ञापर आता हूँ।

सारे हिन्दुस्तानमें, विशेषतः काठियावाड़में फिलहाल मौन रहनेका समय आ गया है। काठियावाड़पर तो सदासे यही आरोप लगाया जाता है कि हम लोग कथनीके धनी, परन्तु करनीके कायर हैं।[1] वक्तृत्वकी छटाकी जरूरत हो तो देवी सरस्वती अपना कलश काठियावाड़पर जरूर उड़ेलेगी। इसका अनुभव तो मैं दक्षिण आफ्रिकामें भी करता था। वहाँके काठियावाड़ी सज्जन इस बातकी गवाही अवश्य देंगे। लेकिन इससे कोई यह न समझ ले कि वहाँ मेरे जैसे काम करनेवाले कुछ लोग भी अपवादरूप नहीं निकल आते थे। भाषण देनेवाले लोग तो विधाताने काठियावाड़में ही सिरजे हैं।

अतः काठियावाड़ियोंको अब अपनी ज़बान बन्द रखनी चाहिए। उन्हें अपनी कलम कलमदानमें ही पड़ी रहने देनी चाहिए। यदि परिषद् हुई तो वह आगामी वर्ष दिये जानेवाले भाषणोंके कार्यक्रमको निर्धारित करनेके लिए नहीं वरन् कामकी रूपरेखा तैयार करनेके लिए होगी। हमने अनुभवसे जान लिया है कि जनतामें जागृति पर्याप्त हो गई है और हम अवसर पड़नेपर हजारों लोगोंको इकट्ठा कर सकते हैं; हमें इस भानकी जरूरत थी। इस समय हजारों लोगोंको इकट्ठा करनेकी जरूरत नहीं है। इससे तो समय और धनका व्यर्थ ही अपव्यय होगा।

काठियावाड़की छब्बीस लाखकी आबादीमें काम करना सहल है। खादीका प्रचार, पाठशालाओंकी स्थापना, अस्पृश्यता-निवारण और दारू और अफीमका निषेध — ये कार्य

१. "काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय", १-६-१९२४ भी देखिए।

आवश्यक और तुरन्त फल देनेवाले हैं। यदि एक भी मनुष्यको भूखसे पीड़ित होकर काठियावाड़ छोड़ना पड़े तो इसपर राजा और प्रजा दोनोंको शर्म आनी चाहिए। काठियावाड़में क्या नहीं है? यहाँ जमीन अच्छी है; स्त्री पुरुष कुशल और तन्दुरुस्त है। काठियावाड़में जितनी चाहिए उतनी कपास है। स्वयं बुनकरोंने ही मुझे बताया है कि अनेक बुनकरोंको धन्धेके अभावमें काठियावाड़ छोड़ना पड़ता है। दो वर्ष पहले उन्हें धन्धा मिलता था; आज तो और भी ज्यादा धन्धा मिलना चाहिए था। इसके बजाय उनका धन्धा कम कैसे हो गया? इस अवनतिके लिए क्या काठियावाड़ी कार्यकर्त्ता उत्तरदायी नहीं हैं? यदि कार्यकर्त्ता भाषण देनेके धन्धेको छोड़कर रुई-सम्बन्धी समस्त क्रियाओंका ज्ञान प्राप्त कर लें तो एक वर्षमें ही वे काठियावाड़ियोंकी स्थिति सुधार सकते हैं। वे काठियावाड़में से विदेशी अथवा मिलके कपड़ेका बहिष्कार करें। मिलोंके कपड़ेसे बहुसंख्यक लोगोंका पैसा बहुत थोड़े लोगोंके हाथोंमें जाता है। जब मस्तिष्कमें बहुत अधिक रक्त भर जानेपर व्यक्ति धनुर्वात रोगसे पिड़ित माना जाता है तब उसका बचना मुश्किल हो जाता है। वह कभी-कभी बचता भी है तो फस्द खोलनेसे। जब बहुसंख्यक लोगोंका पैसा एक ही मनुष्यके पास इकट्ठा हो जाये तब उसे आर्थिक धनुर्वातसे पीड़ित मानना चाहिए। जिस तरह स्वस्थ मनुष्यके शरीरमें रक्त नियमित रूपसे संचरित होता है, वह किसी भी एक स्थानमें इकट्ठा नहीं हो जाता और जिस अंगको जितने रक्तकी जरूरत होती है उसमें उतना पहुँच जाता है, उसी तरह स्वस्थ अर्थ-व्यवस्थामें धन नियमित रूपसे संचरित होना और जहाँ जितनी जरूरत हो वहाँ उतना पहुँचना चाहिए। ऐसी आर्थिक स्वस्थता प्राप्त करनेका सबसे बड़ा साधन चरखा है। चरखेका नाश होनेके कारण दुनिया-भरका धन लंकाशायरमें खिंचा चला जा रहा है। यह महारोगका लक्षण है। इस रोगका निवारण चरखेके पुनरुद्धारसे ही हो सकता है।

यदि काठियावाड़के स्वयंसेवक इस सरल परन्तु चमत्कारिक नियमको समझ गये हैं तो वे रुई-सम्बन्धी समस्त क्रियाओंसे अवगत होकर जनतामें उसका प्रचार करें। यह हुआ प्रथम राजनीतिक कार्य।

काठियावाड़में कितने राष्ट्रीय स्कूल हैं? यहाँ अपढ़ बालकों और बालिकाओंकी संख्या कितनी है? क्या यहाँ उनकी आवश्यकताको पूरा करने योग्य स्कूल हैं? यदि न हों तो वैसे स्कूलोंकी स्थापना करके उनकी मारफत अक्षर ज्ञानके साथ-साथ चरखा चलानेकी शिक्षा भी दी जा सकती है। यह हुआ दूसरा राजनीतिक कार्य।

अस्पृश्यताके मैलको धोना तीसरा राजनीतिक कार्य है। इस मैलको धोते-धोते भी चरखेके प्रचारका कार्य आसानीसे किया जा सकता है।

काठियावाड़में दारू और अफीमके निषेधकी आवश्यकता कितनी अधिक है, यह बात मैं दूर बैठकर नहीं बतला सकता। लेकिन फिर भी बाहरकी छूत न्यूनाधिक लगे बिना नहीं रहती। यह है चौथा राजनीतिक कार्य।

मैं इन कामोंको तो उदाहरणोंके रूपमें गिना गया हूँ। इस तरहकी अनेक प्रवृत्तियोंकी खोज तो स्थानीय स्थितियोंसे भली-भाँति परिचित अनुभवी सज्जन कर ही सकते हैं।

इसपर अनेक टीकाकार कहेंगे कि यह तो समाज-सुधार हुआ राजनीतिक कार्य नहीं। ऐसा कहना मिथ्याभास है। राजनीतिकका अर्थ है राजासे — राज्यसे सम्बन्धित। राजाका अर्थ है प्रजातन्त्रका संचालक। प्रजातन्त्रके संचालकको उपर्युक्त बातोंकी जाँच करनी ही होती है। जो नहीं करता वह शासक नहीं है, राजा नहीं है और जिस संस्थामें इसकी अवहेलना की जाती है अथवा इसे गौण स्थान दिया जाता है वह संस्था राजनीतिक संस्था नहीं है। राजनीतिक परिषद्का उद्देश्य राजाकी मदद करना अथवा यदि वह अपने मार्गका त्याग करे तो उसपर अंकुश रखना है। वही मनुष्य ऐसी मदद दे सकता है अथवा ऐसा अंकुश रख सकता है जिसका जनतापर लगभग उतना ही प्रभाव हो जितना राजापर हो। जनतामें ऐसा प्रभाव केवल वही रख सकता है जो जनताकी शुद्ध सेवा करता है। ऐसी सेवा उपर्युक्त कार्योंके द्वारा ही की जा सकती है। इसलिए यदि राजनीतिक परिषदें सचमुच राजनीतिक कार्य करना चाहती हैं तो उपर्युक्त सेवा उसकी प्राथमिक शिक्षा ही है, अतः वह अनिवार्य है।

इसीलिए यह सेवा सत्याग्रहकी सर्वोत्तम और आवश्यक तालीम है। जिन लोगोंने इतना नहीं किया है वे जनताके हितमें सत्याग्रह करनेका अधिकार नहीं रखते और जनता भी उनके इस प्रयत्नकी सराहना नहीं करेगी। यह सेवा किये बिना तो हम सेवक अथवा सत्याग्रहीके रूपमें दुःसाहसी व्यक्ति ही ठहरेंगे।

कुछ लोग कहते हैं: "लेकिन ऐसे कठिन कार्यको हम कबतक पूरा कर सकेंगे? और राजा कब सुधरेंगे? आप अपने जाम साहबको ही देखिए। आप तो अभिमान सहित कहते थे, 'जाम साहब जब रणजीतसिंहजी कहे जाते थे, तब मैं उनसे मिला था? हम दोनों थोड़े समय तक सहपाठी रहे हैं और हम कभी-कभी परस्पर मिला करते थे। उस समय उनमें बहुत ज्यादा सादापन तथा प्रजाके प्रति गहरा प्रेम-भाव था।' लेकिन आज वह सब-कुछ नहीं है। आज तो जाम साहबकी प्रजा जितनी कष्टमें है उतनी अन्य किसी राजाकी प्रजा शायद ही होगी। उनकी राजनीतिमें सुधार करना और प्रजामें चरखेका प्रसार करना, इन दोनों बातोंमें परस्पर क्या सम्बन्ध है? हमें तो लगता है कि आप जेलसे ऊब गये हैं, आप फिर जेल नहीं जाना चाहते; इसलिए आप अपनी निर्बलताको ढाँककर और हमें भी टेढ़े मार्गपर ले जाकर निर्बल बनाना चाहते हैं।" ऐसे विचार किसी एक ही व्यक्तिके नहीं हैं। एक मित्रने विनोदमें मुझसे मेरी "निर्बलता" की बात कही थी। मैंने ऐसी सब बातोंको मिलाकर ही उपर्युक्त आरोप तैयार किया है।

जाम साहबके विरुद्ध मैंने बहुत-कुछ सुना है। कुछ मित्रोंने प्रमाणस्वरूप दो वर्ष पहले मुझे पत्र भी भेजे थे। लेकिन मैंने अन्य कार्योंमें व्यस्त होने तथा काठियावाड़के राजतन्त्रमें सुधार करना मेरे कार्यक्षेत्रसे बाहर होनेके कारण इस सम्बन्धमें न कुछ किया और न कुछ लिखा। मैं आज भी इस कार्यमें नहीं पड़ना चाहता। मेरी मान्यता है कि यदि जनता स्वराज्यकी प्रवृत्तिकी शान्तिपूर्ण गतिविधियोंसे सफलता प्राप्त कर लेगी तो देशी राज्यतन्त्रोंमें जहाँ कोई कमी है, वहाँ वह अपने आप ही दूर हो जायेगी। लेकिन यदि मैं काठियावाड़के राज्योंके मामलोंमें हस्तक्षेप करनेके लिए तैयार हो जाऊँ तो भी मैं अपनी राय एकपक्षीय टीकाओंपर कदापि कायम

नहीं करूँगा। इसके अतिरिक्त मैं पहले तो थोड़ी अथवा ज्यादा जान-पहचान होनेके कारण जाम साहबसे मिलने और सब शिकायतें उनके सामने रखनेका प्रयत्न करूँगा। इसके बाद भी यदि मुझे यह लगेगा कि अन्याय हो रहा है और जाम साहबकी वृत्ति उसे दूर करनेकी नहीं है तो मैं सार्वजनिक रूपसे उनकी आलोचना करूँगा। मैंने चम्पारनके निलहे मालिकोंके सम्बन्धमें इसी पद्धतिका उपयोग किया था।[1] मैं काठियावाड़के राजाओंके प्रति इससे कम तो कर ही नहीं सकता। मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है, यदि जाम साहब उसे देख लें तो मेरी उनसे विनती है कि वे यह न समझें कि मैं उनके राज्यतन्त्रपर कोई आक्षेप करना चाहता हूँ। मैंने तो उनके राज्य-तन्त्रका उदाहरण केवल दृष्टान्त रूपमें ही लिया है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं है कि उनकी प्रजाकी तो ऐसी ही फरियाद है।

अब हम फिर मूल बातपर आते हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि मैंने ऊपर जिन सेवाओंकी चर्चा की है उनका जाम साहबके राज्यतन्त्रमें जो दोष मिलते हैं, उनसे निकटका सम्बन्ध है। जिन्होंने ऐसी सेवा की होगी उसकी बात राजा और प्रजा दोनों ही सुनेंगे। सत्याग्रही बलवान तो होता ही है; उसमें भीरुता रंच-मात्र भी नहीं होती। लेकिन उसकी विनम्रता भी निर्भीकताके अनुपातसे ही बढ़नी चाहिए। अविनयीकी निर्भयता उसे गर्वित और उद्दण्ड बना देती है। गर्व और सत्याग्रहके बीच तो समुद्र लहराता है। विवेकीकी बात महाभिमानी राजाको भी सुननी पड़ती है। सेवाके बिना नम्रता और विनय आ ही नहीं सकती। सत्याग्रहीको स्थानीय स्थितियों-का अनुभव भी होना चाहिए किन्तु वह भी सेवाके बिना नहीं होता। राजाओंकी टीका करना अनुभवकी श्रेणीमें नहीं गिना जा सकता। काठियावाड़ी कार्यकर्ताओंमें अनेक चतुर राजनीतिज्ञोंके वर्गके होते हैं। उनकी राजनीतिज्ञताका सेवासे बहुत कम सम्बन्ध है। राजनीतिज्ञोंके वर्गका अर्थ है शासकवर्ग। मुझे अपने बचपनका यह निजी अनुभव है कि जनता इस वर्गके प्रति अपना हृदय नहीं खोल पाती। इसलिए यदि काठियावाड़ी सेवा करना चाहें तो वे राजनीतिज्ञ न बनकर भंगी, किसान, बुनकर, कुम्हार, बढ़ई आदि बनें और उसमें अपने अक्षरज्ञान और राजनीतिके अनुभवका सम्मिश्रण करें। यदि इस सम्मिश्रणमें सत्य और अहिंसा मिल जायें तो इस त्रिपुटीमें से जो शक्ति पैदा होगी उसका मुकाबला कोई भी राजशक्ति नहीं कर सकती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

१. १९१७ में; देखिए खण्ड १४।

४१. बुनकरोंकी आय

एक भाई दुःखी होकर पत्र लिखते हैं:[1]

इस पत्र-लेखक और इसके समान अन्य शंकाशील भाइयोंके मनको शान्त करनेकी जरूरत है। मैंने जो कुछ लिखा था वह वकील वर्गके समान तीव्र बुद्धिके लोगोंके लिए नहीं था। मैं इस भाईके इस कथनके बावजूद अपने मतमें कोई फेरफार नहीं करना चाहता। मैं जानता हूँ कि पंजाबमें बहुतसे बुनकर दो रुपये रोजसे अधिक कमाते हैं। बम्बईके मदनपुराके कुशल बुनकर तीन रुपये रोज सहज ही कमा लेते हैं। इतना अवश्य है कि वे विदेशी अथवा मिलोंके सूतका प्रयोग करते हैं। यदि वे आलस्यवश हाथ-कते सूतको तानेमें इस्तेमाल करनेसे इनकार न करें तो उनकी कमाई कम हो जानेकी तनिक भी आशंका नहीं है। उक्त बुनकर जितनी कमाई कर पाते हैं उतनी अन्य बुनकर क्यों नहीं कर सकते। हमें इसका उत्तर एक ही मिलेगा कि वे बुनकर बहुत अनुभवी होते हैं। यह बिलकुल सच है; परन्तु एक परिवार दो रुपये रोज कमा सके इसके लिए वर्षोंके अनुभवकी जरूरत नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि यदि मनुष्य एक वर्ष तक रविवारको छोड़कर रोज आठ घंटे करघेपर बैठे तो वह जितना चाहिए उतना अनुभव प्राप्त कर सकता है। इतना तो स्पष्ट है कि यदि कोई बुनाईमें सुन्दर आकृतियाँ निकालनेकी कला तनिक भी सीख लेता है तो इसमें समय बहुत कम लगता है और मजदूरी डेढ़ गुना अथवा इससे भी ज्यादा मिलती है। किनारीको रंगीन करने भरसे मजदूरी बढ़ जाती है। बहुतसे बुनकर केवल अपने हुनरके बलपर अधिक मजदूरी लेते हैं। इसके अतिरिक्त मैंने कमाईकी जो यह कल्पना की है वह केवल एक मनुष्यके लिए नहीं है, समस्त परिवारके लिए है।

यदि परिवारके अन्य सदस्य भी कार्यमें मदद करें तो सामान्यतया काम अधिक होता है। कल्पना कीजिए कि एक कुशल बुनकर, उसकी स्त्री और उसका दसवर्षीय बालक बुनाईके काममें लगे हैं। बुनकर अच्छी कपास ले आया और उसने उसकी पूनियाँ बनाकर पास-पड़ौसकी बहनोंको कातनेके लिए दे दीं। वह उन्हींके काते सूतको बुनता है और बुने कपड़ेको स्वयं ही बेचता है। पति और पत्नी दोनों ही बुनाईके काममें लगते हैं और दोनों मिलकर १२ घंटे काम करते हैं। बालक कुकड़ियाँ भर-भर कर देता है और अन्य प्रकारसे सहायता करता है। इस तरह काम करनेवाले कुटुम्बकी हररोजकी आय सहज ही दो रुपये हो सकती है। जहाँ इतनी आय न हो वहाँ दूसरी जगहोंकी अपेक्षा रहन-सहनका खर्च कम आता होगा। उक्त भाईको आशंका है कि मेरे लेखसे भ्रमित होकर कोई अनुभवहीन मनुष्य बुनाईके काममें न

१. यहाँ पत्र नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने गांधीजीके इस कथनपर शंका की थी कि चरखा कातनेसे मनुष्य प्रतिदिन दो रुपयेसे तीन रुपये तक कमा सकता है और लिखा था कि यदि उनका यह मत ठीक नहीं है, तो वे उसमें सुधार कर लें।

फँस जाये। मैं तो उम्मीद रखता हूँ कि मैंने जो सुझाव दिया है, उसपर कोई कुशल बुनकर स्थान चुनकर प्रयोग करके देखे। सम्भव है कि उसके अनुभवसे मेरी कल्पनाकी पुष्टि न हो तथापि इससे उसे कुछ नुकसान नहीं होगा। मैं सौ-दो सौ रुपये कमानेवाले मनुष्यको ऐसा प्रयोग करनेके लिए आमन्त्रित नहीं करता; लेकिन जो घरमें बेकार बैठे हैं अथवा प्रतिकूल वातावरणमें तीस रुपयेकी क्लर्की कर रहे हैं, मैं ऐसे लोगोंको अवश्य प्रलोभित करना चाहता हूँ। मेरी शर्त इतनी ही है कि जो यह प्रयोग करे उसका स्वास्थ्य सामान्यतया ठीक होना चाहिए। वह कामसे कतराता न हो और हररोज कमसे-कम आठ घंटे मेहनत करनेके लिए तैयार हो। यदि वह गृहस्थ हो तो ज्यादा अच्छा है। यदि वह अकेला हो परन्तु कार्यकुशल हो तो भी वह अवश्य ही तीस रुपये माहवार कमा लेगा। परन्तु मान लीजिए कि उसे यहाँतक पहुँचनेमें देर लगती है तो भी क्या हुआ? उसे फिर भी ऐसी निराशा तो अवश्य ही नहीं होनी चाहिए, कि मानो वह किसी गड्ढेमें गिर गया है।

इस विषयमें यदि किसीके पास कोई अनुभव है, भले ही वह मेरे अनुभवसे मेल न खाता हो, फिर भी यदि वह उसे लिख भेजेगा तो मैं उसका आभार मानूँगा। मैं समय मिलनेपर उसका उपयोग भी 'नवजीवन' में करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

४२. कुछ मुसीबतें

एक स्वयंसेवकने मुझे एक गम्भीर-सा पत्र[1] लिखा है। उसने इसमें अनेक प्रश्नों-पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ मैं सिर्फ उन्हीं अनुच्छेदोंको दे रहा हूँ जिन-पर मैं इस समय अपनी राय दे सकता हूँ।

भाग्यवशात् मैं किसीको अपना अनुयायी मानता ही नहीं। इस कारण मैं किसीके पापमें हिस्सेदार नहीं कहला सकता। परन्तु इतनेसे उक्त लेखककी परे-शानी दूर नहीं होती और मेरा उत्तरदायित्व समाप्त नहीं होता। चारों-ओरसे मेरे अनुयायी कहे जानेवाले लोगोंकी शिकायतें आ रही हैं। मैं इसका उपाय सोच रहा हूँ। दुखियोंका सहायक ईश्वर है। अपने इस विश्वासके कारण मुझे आशा बँधती है कि वह मुझे ऐसा उपाय सुझा देगा जिससे इन नामधारी अनुयायियोंका धन्धा बन्द हो जाये। ढोंग हमेशा नहीं चल सकता। कुछ लोग कुछ समय तक भले ही ठगे जा सकते हों, परन्तु सब लोग सदा ठगे जाते रहे हों, इसकी मिसाल इतिहासमें नहीं मिलती।

यह बात भी ठीक है कि कांग्रेसके संविधानपर चुस्तीके साथ अमल नहीं किया जा रहा है। यह धारणा कि सर्वथा दोषरहित संविधान भी अयोग्य मनुष्योंके हाथोंमें

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

जाकर निन्दाका पात्र हो जाता है और योग्य मनुष्य दोषमय संविधानका भी सदुपयोग कर सकते हैं, अधिकांशतः यथार्थ है। यह तो स्पष्ट ही है कि स्वयंसेवकोंको चाहिए कि वे किसीको भी पूरी तरह समझाए बिना चार आने लेकर सदस्य न बनायें और यह स्पष्ट है कि चार आने वसूल कर लेनेके अनन्तर उस चार आने देनेवाले व्यक्तिको भूल नहीं जाना चाहिए। ग्राम समितियोंकी स्थापनाका प्रयोजन ही यह है कि ग्रामीण लोगोंका सम्बन्ध कांग्रेसके साथ अखण्ड बना रहे।

देहातोंकी गरीबीको जिन-जिन लोगोंने इस पत्र-लेखककी तरह देखा है उन्हें उसे दूर करनेके लिए चरखेके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं सूझ सकता; क्योंकि ऐसा कोई दूसरा साधन है ही नहीं। इसीसे जिस हदतक चरखेकी प्रगति होगी उसी हदतक स्वराज्यकी प्रगति मानी जा सकती है। कांग्रेससे वेतन लेना उचित नहीं, यह विचार अभिमान सूचक ही है। बिना वेतनके अधिक सेवक मिल ही नहीं सकते। और यदि वेतन लेनेवाला कोई भी न रहे तो स्वराज्य-तन्त्र आगे नहीं बढ़ सकता। यह भी एक वहम है कि लोग वेतन लेनेवालोंको आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। वेतन लेता हो अथवा न लेता हो यदि कार्यकर्त्ता जनताकी दिलोजानसे सेवा न करेगा तो उसके प्रति लोगोंका आदरभाव टिक ही नहीं सकता। मैं अनुभवसे कह सकता हूँ कि लोगोंको दिलोजानसे काम करनेवालेको वेतन चुकाना भारस्वरूप नहीं लगेगा। यह सच है कि कांग्रेस कोई बड़ा वेतन नहीं दे सकती। परन्तु इस विषयमें भी कोई सन्देह नहीं है कि वह गरीब सेवकोंको गुजारेके लायक वेतन जरूर दे सकती है। हमें दूसरी जगह वेतन लेकर नौकरी करनेकी अपेक्षा कांग्रेससे वेतन लेकर उसकी नौकरी करनेमें प्रतिष्ठा माननी चाहिए। लोगोंमें सिविल सर्विसका मोह कितना है और वह क्यों है? हमें उससे भी अधिक मोह कांग्रेसकी सेवाका होना चाहिए। जिस प्रकार सिविल सर्विसमें जानेवाला ऊँचे पदोंपर पहुँच सकता है उसी प्रकार कांग्रेसकी सेवा करनेवाला उसका सभापति तक हो सकता है। परन्तु जो इस लालचसे सेवा करेगा वह गिरे बिना नहीं रहेगा। स्व० गोखलेने फर्ग्युसन कालेजको अपने २० वर्ष दिये। उन्हें रायल कमीशन आदिसे भी रुपये मिलते थे। वे फिर भी कालेजसे वेतन लेनेमें अपना गौरव मानते थे। पाठकोंको याद होगा कि यह वेतन ४० रुपयेसे शुरू होता और अधिकसे-अधिक ७५ रुपये तक जाता है। जबतक कांग्रेसको भी प्राण-प्रणसे काम करनेवाले वैतनिक सेवक न मिलेंगे तबतक उसका काम ठीक तरहसे नहीं चल सकता। जबतक हम यह नहीं मानने लगेंगे कि वेतन लेकर सेवा करना मानास्पद है तबतक हमें अधिक संख्यामें सेवक नहीं मिलेंगे। इस प्रकार प्रतिष्ठा बढ़ानेका सबसे अच्छा रास्ता यह है कि वल्लभभाई स्वयं वेतन लेने लगें। जब मैं सेवा करने लगूँगा तब मैं भी जरूर वैतनिक सेवकोंमें अपना नाम लिखाऊँगा।

वेतन कितना और किस तरह निश्चित किया जाये, सबको एक-सा दिया जाये या नहीं, सेवकोंकी परीक्षा रखी जाये या नहीं, आदि समस्याएँ जरूर खड़ी होती हैं; परन्तु इन्हींको हल करना ही हमारी कार्य-संचालनकी क्षमताकी कसौटी होगी।

अखबारोंकी जो टीका-टिप्पणी की गई है उसपर मैं अपनी राय न दूँगा, क्योंकि गुजरातके अखबारोंसे मेरा बिलकुल परिचय नहीं है। यह महान कार्य मेरे जेल जानेके

बाद ही शुरू हुआ है।[1] यह तो निश्चित ही है कि पत्रोंका धर्म लोगोंको कार्यकी ओर प्रवृत्त करना है। अब लोगोंको जोश दिलानेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं रही है। लोग इस बातको समझ गये हैं कि उन्हें वर्तमान राजनीति बदलनी है और स्वराज्य लेना है। वे रास्ता भी जानने लगे हैं। अभी वे उस रास्तेपर तेजीसे आगे नहीं बढ़ रहे हैं। पत्रोंको उनकी गति तेज करनेमें ही अपनी शक्ति लगानी चाहिए। इस सम्बन्धमें मतभेद हो ही नहीं सकता।

अन्त्यज भाइयोंको साफ-सुथरा रहनेकी शिक्षा देना भी हमारा काम है। हम जब उनमें आने-जाने लगेंगे तो स्वयं अपने हितकी दृष्टिसे उन्हें साफ-सुथरा रहनेकी शिक्षा भी देंगे। हमें यह समझकर धीरजसे काम लेना चाहिए कि उनकी गन्दगी हमारे पापका फल है। हमने अबतक अन्त्यज भाइयोंको अपना भाई नहीं माना। हमने उन्हें मनुष्यतक नहीं समझा। हम जैसा करते हैं वैसा फल पाते हैं; इससे हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। तथापि इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि उनके दोष दूर करनेमें हमें उनकी मदद करनी चाहिए। वे तो सीधे-सादे लोग हैं। वे जानते हैं कि उनको इन सुधारोंकी जरूरत है। उन्हें हमारी सहायताकी जरूरत है। मैं मानता हूँ कि यदि उन्हें हमारी मदद मिले तो वे हमसे भी आगे बढ़ सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

४३. भाषण : बुद्ध-जयन्ती समारोहमें[2]

बम्बई

१८ मई, १९२४

मेरा विचार है कि मुझे इस सभाकी अध्यक्षता करनेके लिए केवल इस खयालसे बुलाया गया है कि मैं गौतम बुद्ध द्वारा अनुभूत और प्रतिपादित सत्यके प्रचारके लिए बहुतोंकी अपेक्षा अधिक प्रयत्नशील हूँ। मेरा तद्विषयक ज्ञान सर एडविन आर्नोल्डकी[3] उस सुन्दर पुस्तक तक ही सीमित है, जो मैंने पहली बार आजसे कोई पैंतीस वर्ष पहले पढ़ी थी। यरवदा जेलमें रहते हुए अपनी छोटी-सी कारावास-अवधिमें भी मैंने एक-दो पुस्तक पढ़ी थीं। किन्तु बौद्ध धर्म के महान विद्वान् आचार्य कौसाम्बीका कहना कि "द लाइट ऑफ एशिया" बुद्धके जीवनका एक बहुत धुंधला चित्र ही दे पाती है; उस सुन्दर कवितामें कमसे-कम एक घटना तो

१. मार्च १९२२ से।

२. बुद्ध सोसाइटीके तत्वावधानमें आयोजित बुद्ध-जयन्ती समारोहके अध्यक्ष पदसे दिया गया भाषण। जेलसे रिहाईके बाद यह उनका पहला सार्वजनिक भाषण था। गांधीजीने भाषण पहले से ही लिखकर तैयार कर लिया था। उसका मसविदा उपलब्ध है। समाचारपत्रोंमें इसका पाठ कुछ शाब्दिक परिवर्तनोंके साथ प्रकाशित हुआ था।

३. १८३२–१९०४; संस्कृत साहित्यके अध्येता व अंग्रेज कवि।

ऐसी है जो किसी भी मौलिक और मान्य बौद्ध ग्रन्थ में नहीं मिलती। मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्वान आचार्य कौसाम्बी अपने परिपक्व ज्ञानके परिणामस्वरूप भविष्यमें कभी बुद्धकी जीवन-कथा साधारण भारतीय पाठकके हितार्थ साधिकार रूपमें प्रस्तुत करेंगे।

फिलहाल तो बौद्ध-धर्मके विषयमें मेरी जो मान्यताएँ हैं, मैं श्रोताओंके सम्मुख उन्हींको रखूँगा।

मैं तो बौद्ध मतको हिन्दूधर्मका ही अंग मानता हूँ। बुद्धने संसारको कोई नया धर्म नहीं दिया। इन्होंने संसारको धर्मकी एक नई व्याख्या दी। उन्होंने हिन्दू धर्मको जीवनकी बलि लेनेके बजाय जीवनकी बलि देना सिखाया। अन्य जीवोंकी बलि देना सच्चा बलिदान नहीं, अपनी बलि देना सच्चा बलिदान करना है। वेदोंपर कोई भी प्रहार हिन्दू धर्मको बर्दाश्त नहीं है। उसने इस नई व्याख्याको प्रहार ही माना और इसलिए बुद्धकी शिक्षाका मूल तत्व स्वीकार करके भी बौद्ध धर्मको एक नया और वेद-विरोधी मत कहा तथा इसका विरोध किया।

हिन्दू धर्मको बुद्धकी देन

कुछ लोगोंमें यह कहनेका फैशन-सा चल पड़ा है कि भारतने जिस दिन बुद्धके उपदेशोंको स्वीकार किया, उसी दिनसे भारतका पतन शुरू हुआ। यह तो दूसरे शब्दोंमें यही हुआ कि यदि संसार प्रेम और करुणापर काफी अमल करने लगे तो उसका पतन हो जायेगा। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि आलोचकोंके मतसे अन्तमें तो बुराईकी ही जीत होती है। पर मेरा अडिग विश्वास है कि भारतका पतन इसलिए नहीं हुआ है कि उसने उनकी शिक्षा स्वीकार कर ली बल्कि इसलिए हुआ कि उसने गौतमके उपदेशोंके अनुसार आचरण नहीं किया। पुजारियोंने सदाकी तरह अपने पैगम्बरको सूलीपर लटका दिया। वेदवाक्य ईश्वरीय वचन तभी हो सकता है जब वह जीवन्त हो, सदा विकासशील बना रहे और सभी परिस्थितियोंमें मार्ग-दर्शन करता, फूलता-फलता चले। पुजारीगण सिर्फ वाक्यों और शब्दोंसे चिपके रहे, उन्होंने उसकी आत्मा, उसके मर्मको नहीं समझा। लेकिन निराश होनेकी जरूरत नहीं है। बुद्धने धर्मशोधनका जो प्रयास किया था, अभीतक उसपर ठीक-ठीक अमल करके देखा ही नहीं गया। संसारके इतिहासमें ढाई हजार वर्षका काल कोई बड़ा काल नहीं माना जा सकता। यदि पिण्ड विकासकी प्रक्रियामें कई कल्प लग सकते हैं तो फिर विचार और आचरणके विकासके क्षेत्रमें हम किसी चमत्कारकी आशा क्यों करें? और चमत्कारोंका युग तो अभी समाप्त नहीं हुआ। व्यक्तियोंके बारेमें जो बात सही है वही राष्ट्रोंके बारेमें भी सही है। मैं यह बिलकुल सम्भव मानता हूँ कि जनसाधारण एकाएक किसी सन्मार्गको स्वीकार कर ले, एकाएक उसका जीवन और विचार उन्नत हो जाये और फिर जिसे हम आकस्मिकता कहते हैं, वह सिर्फ देखने-भरकी आकस्मिकता होती है क्योंकि कौन जानता है कि शिक्षाका खमीर भीतर ही भीतर कितना असर कर चुका है? प्रबलतम शक्तियाँ तो अदृश्य ही रहती हैं, यहाँ-तक कि दीर्घ कालतक उनकी अनुमति भी नहीं होती। लेकिन फिर भी वे अपनी

सुनिश्चित गतिसे निरन्तर क्रियाशील बनी रहती हैं। मेरे लेखे किसी सर्वोच्च और अदृश्य शक्तिमें जीवन्त आस्थाका ही नाम धर्म है। वह शक्ति सदा हमारी बुद्धिसे परे रही और आगे भी रहनेवाली है। बुद्धने हमको यही शिक्षा दी कि आकार या रूपको महत्व न दो और सत्य तथा प्रेमकी अन्तिम विजयपर भरोसा रखो। संसार और हिन्दू धर्मको यही उनकी अनुपम देन थी। उन्होंने हमको यह भी सिखाया कि इस मार्गपर चला कैसे जाये; क्योंकि वे अपनी शिक्षापर स्वयं भी चलते थे। प्रचार-का सबसे अच्छा साधन पर्चेबाजी नहीं; बल्कि स्वयं भी अपना जीवन उसी तरहका बनाना है जिस तरहका जीवन हम चाहते हैं कि संसार अपनाये।

अंग्रेजी मनविदे (एस० एन० ८८१३) तथा (सी० डब्ल्यू० ५१७६) की फोटो-नकलसे।

४४. पत्र : महादेव देसाईको

[१९ मई, १९२४][1]

तुमने जो पत्र लिखा है वह श्री हाइड नहीं, शेखचिल्लीकी तरह लिखा है। डाक्टर जेकिल्को भी हवाई महल बनानेका अधिकार है। फिर जब वे आश्रम रूपी महलमें रहने लगें तब तो पूछना ही क्या है? मुझसे पृथक रहनेकी इच्छामें ही दोष है। कुछ भी हो; क्या मैं ऐसा मूर्ख बनिया हूँ जो अपना बेशकीमती माल कौड़ियोंके मोल बेच दूं — तुमको एक बहुत ऊँचे वेतनपर नौकर रखवा दूं, और फिर तुमसे आश्रमके लिए धन लूं? यह नहीं होगा। इतनी रकम तो तुम भीख माँगकर भी ला सकते हो। मुझे तो आश्रमको भीख या शरीर-श्रम द्वारा अर्जित धनसे ही चलाना है। मुझे यों तो बहुत-सी बातें कहनी हैं; परन्तु तुम इस थोड़े लिखेको ही बहुत जान लेना। संयमी पुरुषका शरीर नीरोग रहना ही चाहिए। शरीर-बलकी शिक्षा और आत्मबलकी शिक्षामें विरोध है पर आरोग्य और आत्मबलके बीच सीधा सम्बन्ध है।

बापूके आशीर्वाद

चि० महादेव देसाई
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७८५) की फोटोनकलसे।

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

४५. तार: बाकरगंज जिला सम्मेलनको[1]

[२० मई, १९२४]

खेद है बहुत देर हो चुकी है। आपका तार आज ही मिला है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८१६)की फोटो-नकलसे।

४६. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

वैशाख वदी २ [२० मई, १९२४][2]

भाई घनश्यामदासजी,

आपके पत्र आ रहे हैं। आप अवश्य लीखते रहें। मैं हमेशा प्रत्युतर न लीख सकूं तो समझना मुझे इतना भी वखत नहि है।

उदण्डता और दृढ़ता करीब साथ-साथ रहते हैं। यदि हम सात्विक भावोंको बढ़ानेकी कोशिश करते रहें तो उदण्डता प्रति क्षण गौण स्थान लेती जायगी। उदण्डताको दबानेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम हमेशा विरोधको उत्तर न देते रहें।

मी. दास आ गये हैं। उनसे बातें हो रही हैं। अयोग्य आचरणका बिलकुल इनकार करते हैं।

हिन्दु औरतोंपर जो हमला हो रहा है उस बारेमें हमारा हि दोष मैं समझता हुँ। हिन्दु ऐसे नामर्द बन गये हैं कि हमारी बहनोंकी रक्षा भी नहि करते हैं। इस विषयमें मैं खूब लिखुंगा। इसका कोई सादा इलाज मेरे नजदीक नहि है। कई बात जो आपके सुननेमें आई है उसमें अतिशयोक्तिका संभव है। परन्तु अतिशयोक्ति काट देनें बाद जो शेष रहता है, हमको लज्जित करनेंके लिये काफी है।

१. बाकरगंज जिला सम्मेलनके मन्त्रीका यह तार २० मई, १९२४को मिला था। तारमें लिखा था: "बाकरगंज जिला सम्मेलन २४ मईको फीरोजपुरमें होने जा रहा है। देशबन्धु और मौलाना आजादके शरीक होनेकी अनुमति प्राप्त हो गई है और इस बातका ऐलान भी सर्वत्र कर दिया गया है। उन दोनोंको तुरन्त भेजनेकी कृपा कीजिए। उनके न आनेपर मुँह दिखाना मुश्किल होगा।"

तारके सिरेपर गांधीजीके ये शब्द भी मिलते हैं:—

"तार कब मिला, इसके बारेमें पूछताछ कीजिए।"

२. यहाँ माफीके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र १३ मई, १९२४को लिखे गये पत्रके बाद लिखा होगा। १९२४में वैशाख बदी २, २० मईको पड़ी थी।

आपको यं० इं० और हि० न० जी० भेजनेको मैंने मैनेजरसे कह दिया है उमीद है अब मील गया होगा।

मेरा अेक खत जो मैंने गत सप्ताहमें लीखा आपको मिल गया होगा।

आपका,

मोहनदास गांधो

वे० कृ० २[1]

आपके भाई यदि माफी मांग लेवें तो भी यदि आप दृढ़ रह सकें तो माफी न मांगना हि उत्तम है। किसीके मांगनेसे घृणा भी हम न करें। मनुष्य मात्र यथाशक्ति हि नीतिका पालन कर सकता है।

मोहनदास

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००७) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

४७. पत्र : देवचन्द पारेखको

वैशाख वदी २ [२० मई, १९२४][2]

भाईश्री देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। परिषद्में[3] भाग लेनेके लिए जो लोग आयेंगे वे अवश्य ही आपके यहाँ ठहरेंगे। परन्तु अभी तो बहुत वक्त है न?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००८) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

१. वैशाख कृष्ण २।
२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
३. सम्भवतः काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्, जो जनवरी १९२५ में होनेवाली थी।

४८. पत्र : मणिबहन पटेल और दुर्गा देसाईको

[२० मई, १९२४][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र तथा पोस्टकार्ड दोनों मिल गये। तुमने पत्रमें 'त्यागकी मूर्ति'[2] के विषयमें जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। इस प्रकारकी निर्मलता और संयमवृत्ति संग्रहणीय गुण है। जब मिलेंगे तब इस विषयमें बात करेंगे। फिलहाल तो तुम जो थोड़ा-सा बुखार शेष है, ईश्वरकी कृपासे उससे छुटकारा पाकर स्वस्थ हो जाओ। वसुमती बहन देवलाली जा रही है इसलिए वहाँ नहीं आ सकेगी। तुम्हें [हजीरासे] तुरन्त आनेका विचार कदापि नहीं करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

चि० दुर्गा,

आखिर तुमने मुझे पत्र नहीं ही लिखा। तुम्हारा स्वास्थ्य वहाँ कैसा रहता है?

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

४९. पत्र : एडा वेस्टको

२० मई, १९२४

प्रिय देवी,[3]

मुझे तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला, प्रसन्नता हुई। मुझमें धीरे-धीरे ताकत आ रही है। मैं जिस स्थानपर ठहरा हुआ हूँ वह समुद्र तटपर है। आशा है कि अगले सप्ताह मैं आश्रम चला जाऊँगा। तुम वहाँ कबतक हो? तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? मैं अधिक नहीं लिखूंगा। तुम्हें सब समाचार रामदाससे मिलेंगे। इस बारेमें मैं उसे लिख रहा हूँ।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५५६-६०।
३. एडा वेस्ट; गांधीजीके मित्र और सहयोगी ए० एच० वेस्टकी बहन।

तुम सबको मेरा प्यार,

तुम्हारा भाई,
मो० क० गांधी

कुमारी एडा वेस्ट
२३, जॉर्ज स्ट्रीट
साउथ लिंकन शायर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७६१८) तथा (सी० डब्ल्यू० ४४३३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट

५०. भेंट : वाइकोम शिष्टमण्डलसे[1]

[२० मई, १९२४)]

प्र० : महात्माजी, आपने कहा है कि उपवास एक ऐसा अस्त्र है जिसका प्रयोग अपने मित्रोंके अलावा अन्य किसीपर नहीं किया जा सकता। त्रावणकोर सरकार या तो मित्र है या वह प्रजाकी इच्छाका विरोध करते रहनेके कारण उसकी शत्रु है। यदि वह मित्र है, तो निश्चित है कि सत्याग्रहियों द्वारा किया जानेवाला कष्ट-सहन जो इस विषयमें उनकी भावनाओंकी तीव्रताका द्योतक है, अवश्य ही अन्तमें सरकारका हृदय पिघलाने और उसे सत्याग्रहियोंकी मांगें स्वीकार करनेपर राजी करेगा। त्रावणकोरके महाराजा भीतरसे बाहरतक कट्टर हिन्दू होते हुए भी एक रहमदिल शासक हैं और अपनी प्रजाको प्यार करते हैं और वे सत्याग्रहियों द्वारा उठाये जानेवाले कष्टोंको देखकर व्यथित हुए बिना नहीं रहेंगे। वे कोई क्रूर शासक नहीं हैं कि प्रजाके सुख-दुखकी ओर ध्यान ही न दें। ऐसी परिस्थितिमें, सत्याग्रही स्वयं कष्ट उठाकर महाराजाका हृदय द्रवित करने और उन्हें अपने पक्षमें लानेके लिए उपवासका सहारा क्यों नहीं ले सकते?

उ० : सत्याग्रहका मतलब ही परिपूर्ण प्रेम और अहिंसा है। उपवासको एक अस्त्रके तौरपर अपने ऐसे ही स्नेही, मित्र, अनुयायी या सहकर्मीपर प्रयुक्त किया जा सकता है जो आपको कष्ट उठाते हुए देखकर आपके प्रति अपने प्रेमके कारण अपनी गलती महसूस करता है और उसे ठीक कर लेता है। वह अपने अन्दर जिस बुराईको देखता और समझता है और उसे बुराई मानता है, उससे अपने आपको मुक्त कर लेता है। आप उसे बुराईके मार्गसे विमुख करके सीधे सच्चे मार्गकी ओर उन्मुख करनेकी कोशिश करते हैं। शराबी पिताका व्यसन छुड़ानेके लिए उसका पुत्र उपवास कर सकता है। पिता जानता है कि वह एक दुर्व्यसन है; किन्तु पुत्रको कष्ट उठाते देखकर उसकी

१. शिष्ट मण्डलके दो सदस्य थे; के० माधवन नायर और कुरूर नीलकण्ठन् नम्बूद्रीपाद।

समझमें आ जाता है कि दुर्व्यसन कितना बड़ा है और वह अपनेको सुधार लेता है। बम्बईमें मेरे जिन अनुयायियों और सहयोगियोंने हिंसाका मार्ग अपनाया उन्हें मालूम था कि हिंसा असहयोगके सिद्धान्तके विपरीत पड़ती है। वे उस बुनियादी सिद्धान्तसे भटक-भर गये थे। मेरे उपवास करनेपर उन्होंने अपनी गलती समझ ली और उसे सुधार लिया।

किन्तु यदि सम्भावना ऐसी हो कि मित्र अपनी गलती महसूस किये बिना ही, अन्य किन्हीं कारणोंसे आपकी बात मान लेगा तो आप उसके खिलाफ भी उपवास नहीं कर सकते। उदाहरणके लिए, मैंने जब एक अछूतको अपने परिवारका सदस्य बनानेका प्रस्ताव रखा तो मेरी पत्नीने इसपर आपत्ति की।[1] यदि उस परिस्थितिमें मैं उपवास करता तो शायद उसे झुक जाना पड़ता; लेकिन उसका कारण होता उसका यह भय कि उपवाससे कहीं मेरी मृत्यु न हो जाये और वह अपने पतिको न खो दे। वह झुकती तो उपरोक्त भयसे न कि इस खयालसे कि उसने एक इन्सानको अछूत मानकर गलत काम किया है। यदि इस मामलेमें मैं सफल होता तो उसका मतलब यह होता कि मैंने उसके विचारोंको अपने पक्षमें नहीं किया बल्कि उसपर जोर-जुल्म किया और उसकी भावनाओंको ठेस पहुँचाकर ही उससे अपनी बात मनवा ली। इसी प्रकार त्रावणकोरके महाराजा भी एक रहमदिल आदमी होनेके कारण अविचलित भावसे शायद किसी सत्याग्रहीको मरते हुए न देख सकें। हो सकता है कि आपका उपवास उनको झुकनेपर विवश कर दे। परन्तु इसका कारण यह नहीं होगा कि उन्होंने अपनी गलती महसूस कर ली है और वे छुआछूतको बुरी चीज मानने लगे हैं। वे आपकी बात इसलिए मानेंगे कि वे किसी ऐसे आदमीको मरते नहीं देख सकते जिसने, उनकी रायमें मूर्खतावश मरनेकी ठान ली है। यह किसीको बाध्य करनेका निकृष्ट ढंग है और सत्याग्रहके बुनियादी सिद्धान्तोंके सर्वथा विरुद्ध है।

प्र० : अगर मान लिया जाय कि महाराजा मित्र न होकर शत्रु और क्रूर शासक हैं तो सत्याग्रही अपने कष्ट-सहनके बलपर उनको कभी जीत ही नहीं सकते। ऐसी हालतमें क्या यह ठीक नहीं होगा कि एक शक्तिशाली लोकमत तैयार करके और सरकारको अटपटी स्थितिमें डालकर उसे हमारी बात माननेपर विवश किया जाये। इसका अर्थ यह तो होगा कि दबाव डाला गया। उदाहरणार्थ, खेड़ामें जिस शासनतन्त्रने जनताकी बात माननेसे इन्कार कर दिया था उसे प्रेमके द्वारा नहीं, दबावके बलपर झुकाया गया था। इस तरहका दबाव कारगर तभी हो सकता है जब संघर्ष जमकर किया जाये। किन्तु अपार साधनोंसे लैस एक संगठित सरकारके विरुद्ध बाहरी सहायताके बिना कमजोर जनता ऐसा संघर्ष करनेकी आशा नहीं रख सकती। यदि सत्याग्रहमें इस प्रकार के दबावके लिए भी स्थान नहीं है तो फिर वाइकोमके संघर्षको कोई दूसरा नाम देना पड़ेगा; उसे अनाक्रामक प्रतिरोध, सविनय अवज्ञा या अहिंसापूर्ण आग्रह कहिए। वैसी दशामें फिर बाहरसे मदद लेनेमें क्या आपत्ति हो सकती है?

१. देखिए आत्म कथा, भाग ४, अध्याय १०।

हम लोगोंको उपवासका प्रयोग करने और बाहरकी सहायता लेनेसे रोककर क्या आप हमें एक ऐसे सुलभ साधनसे वंचित नहीं कर रहे है, जिसका प्रयोग मित्र और शत्रु दोनोंपर किया जा सकता है?

उ० : मैं यह नहीं मानता कि खेड़ा या बोरसदमें सरकारने लोकमतके दबावके कारण घुटने टेके थे और फिर सरकारपर बाहरसे तो कोई दबाव डाला ही नहीं गया था। कई लोगोंने मुझे आर्थिक सहायता भेजनेकी बात लिखी थी, पर मैंने (खेड़ाके मामलेमें) किसी भी प्रकारकी बाहरी सहायता नहीं ली। जनता द्वारा हर प्रकारके कष्ट सहनकी तैयारीने यह प्रदर्शित कर दिया कि उसकी भावना गहरी है और इससे सरकारकी आँखें खुलीं और उसने घुटने टेक दिये। सचाईकी प्रतीतिने ही सरकारको खेड़ाकी जनताकी माँगें माननेपर विवश किया था। इस तरहकी प्रतीति आपके बलिदानकी शुचिता और शक्तिसे ही हो सकती है। बाहरसे मिलनेवाली सहायता बलिदानकी शक्तिको क्षीण कर देती है। उस हालतमें प्रतिपक्षीको आपके अन्दर त्यागकी भावना दिखाई नहीं देती। इसलिए उसके हृदयपर कोई असर नहीं पड़ता और उसकी आँखें नहीं खुलतीं। बाहरी मददके बलपर भोजन और खर्च पानेवाले स्वयं-सेवक प्रतिपक्षीको सत्याग्रही नहीं, पेशेवर सैनिक-जैसे मालूम पड़ते हैं; सत्याग्रही तो अपने सिद्धान्तोंके लिए सर्वस्वकी बलि चढ़ानेके लिए तैयार रहता है। इस तरहका संघर्ष तो भौतिक उपकरणोंकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेवाली होड़ ही है; आत्मिक शक्तिका द्योतक नहीं। यह सच्चा सत्याग्रह नहीं है। चिरला-पेरलामें[1] भी लगभग इसी तरहका प्रश्न उठा था। मैंने श्री गोपाल कृष्णय्यासे यही अनुरोध किया था कि वे बिना किसी बाहरी मददके अपना संघर्ष जारी रखें। उनका संघर्ष निर्विघ्न चलता रहा। बाहरी मदद लेकर अहिंसापूर्ण ढंगसे अपने अधिकारोंका आग्रह करना अनाक्रामक प्रतिरोध हो सकता है, वह सत्याग्रह तो नहीं ही है।

अनाक्रामक प्रतिरोध और सत्याग्रहमें जमीन-आसमानका अन्तर है। अनाक्रामक प्रतिरोध करनेवालेके लिए जरूरी नहीं है कि उसके मनमें प्रतिपक्षीके लिए प्रेमभाव हो, पर सत्याग्रहीके लिए तो यह जरूरी है। अनाक्रामक प्रतिरोध एक कमजोर अस्त्र है और कमजोर जनता ही उसका प्रयोग करती है। लेकिन सत्याग्रह एक शहजोर अस्त्र है जिसका प्रयोग कमजोर जनता करती है। केरलके दलित वर्ग अनाक्रामक प्रतिरोधका मार्ग अपना सकते हैं, लेकिन मैं उनको इसकी सलाह नहीं दूँगा और न मैं यह चाहूँगा कि कांग्रेसी लोग उसका समर्थन करें। आदर्श सत्याग्रहका मतलब है ऐसा सत्याग्रह जो एक या अनेक व्यक्ति बाहरी सहायता लिये बिना कष्ट झेलते हुए करते हैं। वाइकोमके मामलेमें वहाँके पंचम वर्णके हिन्दुओं और उनसे सहानुभूति रखनेवाले सवर्णों द्वारा किया गया सत्याग्रह ही आदर्श सत्याग्रह कहलायेगा। यदि यह सम्भव न हो तो वे इस आदर्शसे कुछ उतरकर उनकी परिस्थितिको समझनेवाले और उनसे हमदर्दी रखनेवाले क्षेत्रोंके लोगोंकी सहायता ले सकते हैं।

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १६-१८

प्र० : क्या अस्पृश्यता और अनुपगम्यता-प्रथाके निवारणकी समस्या एक अखिल भारतीय समस्या नहीं है और चूँकि वाइकोम-संघर्ष इन दोनों कुरीतियोंके विरुद्ध छेड़े गये संघर्षोंमें पहला है, इसलिए इसमें हमारा हार जाना क्या सम्बन्धित आम आन्दोलनके लिए घातक सिद्ध नहीं होगा; और यदि ऐसा अन्देशा हो तो क्या इस संघर्षमें हाथ बटाना सभी भारतीयोंका कर्तव्य नहीं हो जाता? वाइकोमके सन्दर्भमें "स्थानीय" शब्दसे क्या अभिप्राय है? यदि बाहरसे सहायता लेनेका अर्थ दबाव डालना और प्रतिपक्षियोंको डराना-धमकाना है और यदि यह तरीका सत्याग्रहके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है तो क्या वाइकोमके पंचमवर्णीय हिन्दू वाइकोमसे बाहरके किसी स्थानसे रुपये-पैसे और स्वयंसेवकोंकी मदद ले सकते हैं? खुद त्रावणकोर रियासतके वे निवासी जो वाइकोममें नहीं रहते, इस संघर्षमें भाग ले सकते हैं या नहीं? यदि वे त्रावणकोर और यहाँतक कि मद्रास अहाते-भरके लोगोंसे उक्त सहायता माँग सकते और स्वीकार कर सकते हैं तो फिर भारत-भरमें हिन्दुओंसे क्यों नहीं? सत्याग्रही हिन्दू-सभा और ऐसी ही अन्य संस्थाओंकी मदद लेनेसे इनकार क्यों करें?

उ० : पहले दिये गये उत्तरमें इस प्रश्नका उत्तर आंशिक रूपसे आ ही चुका है। वाइकोम संघर्षके प्रश्नको इस अर्थमें अखिल भारतीय प्रश्न भी माना जा सकता है कि हिन्दू समाजमें मौजूद एक ही बुराईके तहत देशके प्रत्येक भागमें अछूतोंको सभी कुओं, तालाबों, सड़कों इत्यादिका इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता; लेकिन इसके फलस्वरूप स्थानीय रूपसे खड़े होनेवाले हर मसलेपर स्थानीय रूपसे ही संघर्ष किया जाना चाहिए। इन मसलोंको लेकर सारा भारत उठ खड़ा हो या केन्द्रीय संगठन उसके लिए संघर्ष छेड़ दे, यह न तो वांछनीय है और न व्यावहारिक ही। इससे अव्यवस्था और गड़बड़ी फैल जायेगी। इसके परिणाम तो ज्यादा अच्छी तरहसे तभी समझमें आ सकते हैं जब एक ही साथ ऐसे कई संघर्ष छिड़े हुए हों। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय संगठन उस तरह अपनी शक्तिका अपव्यय करे तो काफी कमजोर हो जायेगा और फिर स्थानीय जनता बाहरी सहायताके बिना ऐसे मसलोंको हल करनेके लिए आवश्यक शक्ति अपने भीतर उत्पन्न करनेमें समर्थ न होगी। यदि हर क्षेत्र स्वावलम्बी और आत्म निर्भर बन जाये तो इससे समूचा देश शक्तिशाली बनेगा और उस बड़े संघर्षको छेड़नेकी क्षमता प्राप्त कर लेगा जो सामने दिखाई दे रहा है। वाइकोममें स्थानीय रूपसे समस्या हल कर लेनेसे सारे भारतकी अस्पृश्यताकी समस्या हल नहीं हो जायेगी। पूरा देश इस स्थानीय संघर्षकी उपलब्धियोंका लाभ उठा सकता है, पर यदि इसकी पराजय हो तो वह इसके लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

प्र० : हमारी समझमें यह नहीं आया कि आप वाइकोमके संघर्षमें गैर-हिन्दुओंके भाग लेनेपर रोक क्यों लगाते हैं। खिलाफतका सवाल एक बिलकुल ही धार्मिक मसला था; फिर भी आपने हिन्दुओंसे मुसलमानोंकी सहायता करनेके लिए कहा था। हिन्दू और मुसलमान भारत-राष्ट्रके अंग हैं; मुसलमानोंकी मदद करना तब हिन्दुओंका फर्ज इसीलिए माना गया था कि इससे शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त करनेमें सहायता मिलेगी।

भारतीयोंको एक राष्ट्रके रूपमें सुदृढ़ बनानेके लिए अस्पृश्यता-निवारण आवश्यक है ही, इसलिए क्या प्रत्येक हिन्दू और गैर-हिन्दू भारतीयका यह कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि वह इस बुराईको दूर करनेमें हाथ बँटाये ?

उ० : खिलाफतके मामलेमें संघर्ष था मुसलमान समाज और एक गैरमुसलमान सत्ताके बीच। यदि वह संघर्ष मुसलमानोंके दो फिरकोंके बीच होता तो मैं हिन्दुओंसे उसमें भाग लेनेके लिए न कहता। हिन्दू समाजमें जो बुराइयाँ फैली हुई हैं, उनको दूर करना हिन्दुओंका कर्त्तव्य है। अपने समाजमें सुधार कार्य करनेके लिए वे बाहरके लोगोंकी मदद नहीं ले सकते और न उनको लेनी ही चाहिए। इस तरहकी सहायता आपका मनोबल गिराती है और उन कट्टरपंथियोंको क्रुद्ध कर देती है जिन्हे आपको प्रेमके बलपर बदलना और अपने पक्षमें करना है। गैर हिन्दू लोगोंकी दखलदाजीसे ऐसे लोगोंको निश्चय ही, और बिलकुल न्याय-संगत लगेगा कि उनको अपमानित किया जा रहा है।

प्र० : वाइकोमके संघर्षका उद्देश्य एक नागरिक अधिकारको अर्थात् आम सड़क-पर चलनेके अधिकारको प्रतिष्ठित करना है, क्या इसे देखते हुए प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य नहीं हो जाता कि वह इस संघर्षमें मदद करे, फिर वह किसी भी धर्मका क्यों न हो ?

उ० : किसी भी देशी राज्यके आन्तरिक प्रशासनमें कांग्रेस कमेटीको हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नही है। केरल कांग्रेस कमेटीने यह आन्दोलन सिर्फ इसीलिए शुरू किया है कि कांग्रेसने हिन्दुओंसे हिन्दू-समाजमें प्रचलित अस्पृश्यताको दूर करनेके लिए कहा है। वाइकोमके संघर्षका मुख्य मसला यही है कि अमुक वर्गके लोगोंको आम सड़कपर चलनेकी इजाजत इसलिए नहीं दी जाती कि उन्हें अनुपगम्य माना जाता है। यह प्रश्न केवल हिन्दुओंसे सम्बन्धित है और इसलिए इस संघर्षमें 'गैर हिन्दुओं' का कोई स्थान नहीं है।

प्र० : महात्माजी, आप अकालियों द्वारा वहाँ चलाये जानेवाले लंगरका इतने जोरोंसे विरोध क्यों करते हैं ? अकाली लोग तो सभी जातियों और फिरकोंके लोगों-को भोजन देनेके लिए तैयार हैं और वास्तवमें दे भी रहे हैं। वे इस संघर्षमें किसी भी एक पक्षके साथ तो हैं नहीं।

उ० : आत्मसम्मान रखनेवाला कोई भी व्यक्ति ऐसे भण्डारेसे खाना नहीं लेगा। आपकी अकालकी परिस्थिति नहीं है और न आप ऐसी ही हालतको पहुँच गये हैं कि भोजनके लिए दूसरोंकी दानशीलताका मोहताज बनना पड़े। बाहरी सहायताके विपक्षमें जितनी भी दलीलें पहले दी गई हैं वे सभी वाइकोमके लंगरपर भी लागू होती हैं।

प्र० : महात्माजी, आगामी संघर्षके दौरान अपनाये जानेवाले तरीकेके बारेमें आप हम लोगोंको क्या सलाह देना चाहेंगे ?

उ० : आप जिस ढंगसे संघर्ष चला रहे हैं, उसी ढंगसे चलाते रहें। सत्याग्रह करनेवाले स्वयंसेवकोंकी संख्या भले ही बढ़ा लें। यदि आपमें पर्याप्त शक्ति हो तो

उन दूसरे स्थानोंपर भी सत्याग्रह किया जा सकता है जहाँ दलित वर्गके लोग इसी तरहकी निर्योग्यताओंके शिकार हैं। परन्तु अच्छा तो यह होगा कि इस मामलेमें सवर्ण हिन्दुओंकी भावनाओंके प्रदर्शनके रूपमें केवल सवर्ण हिन्दुओंके वाइकोमसे त्रिवेन्द्रम और वापसीके लिए, एक ऐसे जुलूसकी व्यवस्था कीजिये जो बिलकुल ही शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक हो तथा जो महाराजासे मिले और उनको पंचम वर्णके हिन्दुओंकी निर्योग्यताओंके निवारणकी आवश्यकता समझाये। जुलूसमें शामिल होनेवाले सवर्ण हिन्दुओंको उन सभी असुविधाओंको झेलनेके लिए तैयार रहना चाहिए जो इस प्रकारके पैदल और मन्द गतिके साथ चलनेवाले जुलूसोंसे सम्बद्ध हैं। उनको गाँवों और शहरोंसे बाहर अपने खेमे गाड़ने चाहिए और अपने खाने-पीनेका प्रबन्ध स्वयं ही करना चाहिए। जुलूस निकालनेका प्रबन्ध तभी किया जाना चाहिए जब उसके संगठनकर्त्ताओंको पूरा भरोसा हो जाये कि वातावरण बिलकुल अहिंसापूर्ण बना रहेगा। इस जुलूसके प्रयाणके दौरान वाइकोममें सत्याग्रह मुल्तवी रखा जा सकता है। फिलहाल तो मैं इतना ही सुझाव दे सकता हूँ।

यह महात्माजीके साथ हमारी जो बातचीत हुई उसका सार-मात्र है। महात्माजीसे हमने जितने भी सवाल किये उनके पास उन सबके अत्यन्त सन्तोषप्रद उत्तर थे। इस सारको महात्माजी द्वारा समाचारपत्रोंमें जारी किये गये वक्तव्यका पूरक माना जा सकता है। उनकी बहुत ही स्पष्ट राय है कि केरल कांग्रेस कमेटीको संघर्ष जारी रखना चाहिए। हालाँकि महात्माजी सत्याग्रह आन्दोलनमें किसी भी बाहरी मददके सिद्धान्ततः विरुद्ध हैं, फिर भी उनका स्पष्ट मत है कि केरलको, अस्पृश्यता-निवारणके इस आन्दोलनके आम प्रचारकी दृष्टिसे मद्रास अहातेसे बाहरके लोगोंसे भी सहायता लेनेका हक है। महात्माजीने यह राय भी जाहिर की है कि स्वयंसेवकोंकी सीमित संख्या और समितिके साधनोंको यथासम्भव बचाये रखनेकी जरूरतको देखते हुए अभी इस समय धारा १४४के अन्तर्गत जारी किये गये आदेशोंका उल्लंघन करना उचित नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-५-१९२४

५१. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

उषःकाल, बुधवार, २१ मई, १९२४

प्रिय चार्ली,

तुम ऐसा क्यों कहते हो कि भीलोंके बच्चोंको खद्दरकी टोपियां और कमीजें नहीं पहननी चाहिएं? फिर वे क्या पहनें? तुमने जो दृष्टान्त दिया है, क्या वह उपयुक्त है? कलक्टर-जैसी ही भूषा धारण करनेवाला मिशनरी कलक्टरके साथ बैठकर इसी अनिष्टकारी सत्ताका अंग लगता है। यदि खद्दरकी टोपी शुद्धताका प्रतीक मानी जाती है तो उसे सभी लोगोंको क्यों नहीं धारण करना चाहिए? इस प्रकार शुद्ध मानी जानेवाली एक चीजके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना कल्याणकारी होगा। पर मैं तो चाहता हूँ कि अच्छे और बुरे दोनों ही लोग खद्दर पहनें, क्योंकि तन तो सभीको ढँकना होता है। इसलिए मैं इस प्रयासमें हूँ कि खद्दरको न तो नेकीके साथ जोड़ा जाये और न बदीके साथ। वह किस शक्लमें धारण किया जाता है, यह बात कोई महत्व नहीं रखती।

मैं जानता हूँ, तुम अपने पत्रोंके उत्तरमें एक पंक्तिकी भी अपेक्षा नहीं रखते लेकिन जब तुम ऐसी बातें पूछ बैठते हो जिनका जवाब देना जरूरी हो जाता है तब फिर चारा भी क्या है।

हार्दिक स्नेह सहित,

मोहन

६, द्वारकानाथ टैगोर लेन

मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६११) की फोटो-नकलसे।

५२. जेलके अनुभव – ६

उपवासका औचित्य

जब पिछले प्रकरणमें वर्णित घटनाएँ हुई, उस समय मेरी कोठरी ग्यारह कोठ-रियोंवाले एक तिकोने अहातेमें थी। ये कोठरियाँ भी पृथक अहातेमें ही बनी थीं, लेकिन दूसरे पृथक अहातों और इस अहातेके बीच एक मोटी और ऊँची दीवार थी। इस त्रिभुजाकार अहातेकी आधार-भुजा दूसरे पृथक अहातोंकी तरफ जानेके रास्तेके बगलमें ही पड़ती थी। इसलिए कैदियोंका वहांसे आना-जाना मुझे साफ नजर आता था। असलमें इस रास्तेपर कैदियोंका आना-जाना बना ही रहता था, इसलिए कैदियोंके साथ सम्पर्क आसान था। कोड़ोंकी घटनाके कुछ ही दिन बाद हमें यूरोपीय वार्डमें भेज दिया गया। यहांकी कोठरियाँ बड़ी और अधिक हवादार तथा रोशनीवाली थीं।

सामने एक सुन्दर बगीचा था। एक कठिनाई अवश्य हो गई। उस पृथक विभागमें रहते हुए दिन-भर हमारे फाटकके सामनेसे गुजरते हुए कैदी हमें देखनेको मिल जाते थे। यह सब सम्पर्क अब बिलकुल बन्द हो गया था और हम ज्यादा अकेले पड़ गये। लेकिन यह चीज अखरी बिलकुल नहीं। उलटे, एकान्त अधिक मिलनेसे अध्ययन और मननके लिए मुझे ज्यादा समय मिलने लगा और 'बेतारके सन्देश' का साधन तो मौजूद था ही। जबतक एक भी कैदी या कर्मचारीका हमारे पास लाजिम तौरपर आना-जाना बना था तबतक ये सन्देश किसी भी तरह रोके नहीं जा सकते थे। न बतानेकी इच्छा रखते हुए भी आने-जानेवालेके मुँहसे कुछ-न-कुछ निकल जाता था और हमें जेलकी घटनाओंकी जानकारी हो जाती थी। इस प्रकार एक दिन सवेरे हमने सुना कि मुलशीपेटाके कई कैदियोंको कम काम करनेके अपराधमें कोड़े लगाये गये हैं। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि इस सजाका विरोध करनेके लिए मुलशीपेटाके अन्य कई कैदियोंने भी उपवास शुरू कर दिया है। इनमें से दोको मैं जानता था। एक थे देव और दूसरे दास्ताने। श्री देवने मेरे साथ चम्पारनमें काम किया था। अपने आचरणसे उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि वे चम्पारनमें मेरे साथ काम करनेवाले सबसे निष्ठावान, समझदार और प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओंमें से थे। भुसावलवाले भाई दास्तानेको तो सभी जानते हैं। कोड़े खानेवालों और भूख-हड़ताल करनेवालोंमें भाई देव भी एक हैं, यह जानकर मुझे कितना दुःख हुआ होगा, इसकी कल्पना पाठक आसानीसे कर सकते हैं। मेरे साथियोंमें इस समय भाई इन्दुलाल याज्ञिक और भाई मंजरअली सोख्ता भी थे। वे भी यह सुनकर उद्विग्न हो उठे। सबसे पहले तो उनके मनमें सहानुभूति प्रकट करनेके लिए स्वयं भी उपवास करनेका विचार आया, परन्तु हम ऐसी कार्रवाईके औचित्यके विषयमें चर्चा करके अन्तमें इस निर्णयपर पहुँचे कि इस प्रकारका उपवास करना अनुचित है। कोड़ेकी सजाके लिए अथवा उसके परिणामस्वरूप शुरू किये गए उपवासके लिए नैतिक अथवा अन्य किसी भी दृष्टिसे हम जिम्मेदार नहीं थे। सत्याग्रहीके नाते हमें जेलके तमाम कष्टों, यहाँतक कि कोड़ेकी सजाके लिए भी तैयार रहना था और उन्हें हँसते-हँसते झेल लेना था। इसलिए भविष्यमें ऐसी सजाएँ न दी जायें, इस खयालसे ऐसे उपवास करना जेल अधिकारियोंके प्रति एक प्रकारकी हिंसा करने जैसा था। इसके सिवा, अधिकारियोंके व्यवहारके औचित्य-अनौचित्यके बारेमें निर्णय करनेका हमें कोई हक नहीं था। ऐसा करना तो जेलके पूरे अनुशासनका अन्त कर देनेके बराबर था और यदि हम अधिकारियोंके व्यवहारके औचित्य-अनौचित्यका निर्णय करना भी चाहते तो निष्पक्ष न्याय करनेके लिए आवश्यक जानकारी हमारे पास नहीं थी और न वह जुटाई ही जा सकती थी। अब यदि उपवास करनेवालोंके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित होकर हम उपवास शुरू कर देते तो इस बातका निश्चय करनेके लिए भी हमारे पास पूरे तथ्य नहीं थे कि उनका कदम ठीक था या नहीं। उपर्युक्त कोई भी एक कारण यह दिखानेको काफी था कि यदि हम उपवास करते हैं तो वह उतावलापन ही होगा। इन सब कठिनाइयोंका विचार करके मैंने अपने साथियोंको सुझाया कि सबसे पहले तो मुझे सुपरिन्टेन्डेन्टसे

इस मामलेकी सही जानकारी प्राप्त करले और पहलेकी तरह उपवास करनेवालोंसे सम्पर्क स्थापित करनेका प्रयत्न करना चाहिए। मुझे लगा कि कैदी होते हुए भी मनुष्यके नाते हम ऐसे मामलोंमें उदासीन नहीं रह सकते; और जब लगभग अमानुषिक माना जाने लायक कोई घोर अन्याय होनेकी सम्भावना हो, उस समय कुछ परिस्थितियोंमें किसी कैदीको भी जेलके सामान्य शासनके बारेमें अपनी बात कहनेका हक होना चाहिए। इसलिए अन्तमें हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि यह मामला मैं अधिकारियोंके सामने रखूं। 'यंग इंडिया' के ६ मार्च, १९२४ के अंकमें प्रकाशित मेरे २९ जून, १९२३ के पत्रसे[1] पाठक इस मामलेका शेष विवरण देख लें। खूब पत्र-व्यवहार हुआ, काफी बातचीत हुई। परन्तु यह सब खानगी ढंगका था, इसलिए उसे कहनेकी मेरी इच्छा नहीं है। इतना कह सकता हूँ कि अन्तमें सरकारको यह विश्वास हो गया कि मैं जेलके प्रबन्धमें ख्वाहमख्वाह दखल नहीं देना चाहता और उपवास करनेवाले भाइयोंमें से जिन दो नेताओंसे मिलनेकी मैंने इजाजत माँगी है सो सिर्फ मानवताकी भावनासे प्रेरित होकर ही माँगी है। इसलिए मुझे जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट और पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल श्री ग्रिफिथकी उपस्थितिमें भाई दास्ताने और देवसे मिलनेकी इजाजत दे दी गई। पूरे तेरह दिनके अखण्ड उपवासके बावजूद जब मैंने इन दो मित्रोंको बिना किसी सहारेके दृढ़ कदमोंसे चलते देखा तो मेरा हृदय एक अनुपम आनन्द और अभिमानसे भर गया। वे जितने बहादुर थे उतने ही प्रसन्न दिखाई देते थे। मैंने देखा, उनके शरीर बहुत ही क्षीण हो गये हैं, किन्तु साथ ही उनकी आत्मशक्ति उसी अनुपातमें निखर आई है। उन्हें आलिंगन करते-करते मैंने हँसकर पूछा, "क्यों, मरणके किनारे आ पहुँचे हो न?" वे बोल उठे, "नहीं; बिलकुल नहीं।" और भाई दास्तानेने कहा, "अगर जरूरत हुई तो हम अनिश्चित कालतक उपवास कर सकते हैं, क्योंकि हम सही रास्तेपर हैं।" इसपर मैंने पूछा, "और यदि हम गलत रास्तेपर हुए तो?" उत्तर मिला, "तो हम मर्दोंकी तरह अपनी गलती मान लेंगे और उपवास छोड़ देंगे।" उनके चेहरेपर ऐसा तेज झलक रहा था कि मैं क्षण भरके लिए भूल ही गया कि वे कई दिनसे भूखका कष्ट सह रहे हैं। काश, मेरे पास इतना समय होता कि मैं उस अवसरपर हुई सारी नैतिक चर्चाको यहाँ ज्योंकी-त्यों प्रस्तुत कर पाता। अपने उपवासका कारण उन्होंने मुझे यह बताया कि सुपरिन्टेन्डेन्टकी दी हुई सजा अन्यायपूर्ण थी और इसलिए जबतक वे अपनी भूल स्वीकार न करें और माफी न माँगें तबतक उन्हें उपवास जारी रखना पड़ेगा। मैंने समझाया कि उनका यह रवैया सही नहीं है। जब मैं उनके उपवासके नैतिक आधारकी चर्चा कर रहा था, उसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट, अपने स्वाभाविक सद्भावके साथ, अपने-आप बीचमें ही बोल उठे, "मैं आपसे कह सकता हूँ कि मुझे महसूस हो जाये कि मैंने भूल की है तो मैं जरूर माफी माँग लूंगा। मुझे मालूम है कि मेरे हाथसे कई बार गलतियाँ भी होती हैं। हम सब गलती करते हैं। इस मामलेमें भी कदाचित मैंने गलती की हो, परन्तु मुझे उसका एहसास नहीं है।" मैं अपनी बातका प्रतिपादन करता रहा। इन मित्रोंको मैंने बताया

१. देखिए खण्ड २३ पृष्ठ १७९-८०।

कि जबतक हम सुपरिन्टेन्डेन्टके मनमें यह बात न बैठा दें कि उनसे गलती हुई है तबतक उनसे माफीकी आशा रखना उचित नहीं है और उन्हें सजा देने सम्बन्धी उनकी भूलको मनवानेका रास्ता उपवास नहीं है। यह काम तो केवल खुलकर बातचीत-के द्वारा ही सम्भव है और फिर यदि हम सत्याग्रहीके नाते कष्ट-सहन करनेके लिए कटिबद्ध हैं तो हमारे साथ या हमारे कैदी भाइयोंके साथ अन्याय होनेपर उसके विरोध-में उपवास किया ही कैसे जा सकता है? अन्तमें वे मेरी दलीलका मर्म समझ गये और बाकीका काम मेजर जोन्सके सद्भावनापूर्ण शब्दोंसे हो गया। वे उपवास छोड़ने-को और दूसरे भाइयोंको भी इसपर राजी करनेके लिए तयार हो गये। मैंने मेजर जोन्ससे अपने दूधमें से थोड़ा-सा दूध उन्हें देनेकी अनुमति माँगी और उन्होंने तुरन्त अनुमति दे दी। भाई देव और दास्तानेने दूध ले तो लिया, परन्तु यह कहा कि नहा-धोकर वे दूसरे उपवासी भाइयोंके साथ ही उसे पियेंगे। मेजर जोन्सने आदेश दिया कि सभी उपवासियोंको दुर्बलता दूर होने तक भोजनमें दूध और फल दिया जाये। हमने प्रेमपूर्वक आपसमें हाथ-मिलाये और फिर विदा हो गये। क्षण-भरके लिए तो अधिकारी अपनी अफसरी भूल गये और हम कैदी भी यह बात भूल गये कि हम कैदी हैं। उस समय हम आपसमें ऐसे मित्र ही बन गये थे जो एक पेचीदा गुत्थीको सुलझानेमें लगे हुए थे और आखिरमें वह गुत्थी सुलझ गई; इससे हम सब बड़े प्रसन्न थे। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण भूख-हड़ताल समाप्त हुई। मेजर साहबने मेरे सामने स्वीकार किया कि उन्होंने जितनी भूख-हड़तालें देखी हैं, उनमें यह सबसे अधिक दोषरहित थी। उपवास करनेवाले कैदियोंको चोरी-छिपे कोई खुराक न दी जा सके, इसके लिए उन्होंने अत्यन्त सावधानी बरती थी और उन्हें इतमीनान था कि सारी लड़ाईके दरम्यान उन लोगोंको कुछ भी खानेको नहीं मिल पाया है। अगर उन्हें मालूम होता कि ये उपवास करनेवाले किस धातुके बने हुए हैं तो उन्हें ऐसी खबरदारी रखनेकी जरूरत ही न पड़ती।

इस घटनाका एक स्थायी परिणाम यह हुआ कि सरकारने इस आशयका आदेश जारी कर दिया कि जेल अधिकारियोंके अपमान अथवा ऐसी ही किसी अत्यन्त गम्भीर उत्तेजनाके प्रसंगके अलावा, उच्च अधिकारियोंकी मंजूरीके बिना कैदियोंको कोड़े लगाने की सजा न दी जाये। निस्सन्देह इसमें सावधानीकी जरूरत थी। जहाँ कुछ मामलोंमें जेल सुपरिन्टेन्डेन्टको काफी अधिकार देना अनिवार्य है, वहाँ जो सजाएँ वापस न ली जा सकती हों उनके बारेमें तो समझदारसे-समझदार सुपरिन्टेन्डेन्टपर भी उचित अंकुश रखना जरूरी है।

इसमें तो सन्देह ही नहीं कि भाई दास्ताने, देव और दूसरे सत्याग्रहियोंके उपवासके बहुत आश्चर्यजनक और कल्याणकारी परिणाम निकले, क्योंकि उनका हेतु उसमें भ्रमके निहित होते हुए भी बहुत उत्कृष्ट था और उन्होंने उसके लिए जो कदम उठाया वह भी नितान्त निर्दोष था। किन्तु इस शुभ परिणामके बावजूद उस उपवासको तो निन्द्य ही कहना पड़ेगा। किन्तु जो सुपरिणाम निकला वह उपवासकी अपनी प्रभावकारिताके कारण नहीं बल्कि उपवास करनेवालोंके पश्चात्ताप करने और अपने हेतुको गलत मानकर उपवास तोड़ देनेके फलस्वरूप निकला। जब खाना और जीना लज्जाजनक बात बन

जाये, तभी सत्याग्रहीका उपवास करना उचित माना जा सकता है। इस प्रकार फिर कैदीके आचरणपर विचार करते हुए मैं कहता हूँ कि यदि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रता छीन ली जाये या मेरे साथ साधारण इन्सानकी तरह भी बरताव न किया जाये — उदाहरणके लिए मेरी खुराक मुझे ठीक ढंगसे देनेके बजाय मेरी तरफ फेंक दी जाये — तो ऐसी हालतमें वह खुराक लेना और जीना मेरे लिए लज्जाकी बात होगी। कहनेकी जरूरत नहीं कि यह धार्मिक आपत्ति सच्चे अर्थोमें धार्मिक आपत्ति होनी चाहिए और अपने प्रति की जानेवाली अशिष्टताका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वह किसी भी कैदीको साफ तौरपर खटके। यह सावधानी जरूरी है, क्योंकि अक्सर यह धार्मिक आवश्यकता केवल बहाना होती है और उसके पीछे अधिकारियोंको तंग करनेका मंशा होता है। इसी प्रकार बहुधा जहाँ अशिष्टतासे पेश आनेका कोई इरादा नहीं रहता वहाँ भी लोग मान बैठते हैं कि उनके साथ अशिष्टता बरती गई है। तो यदि मैं जेलके नियमके अनुसार निषिद्ध चिट्ठी-पत्री आदिको छिपाकर रखनेके लिए धर्म-पुस्तकके बहाने 'भगवद्गीता' को अपने पास रखने अथवा प्राप्त करनेका आग्रह करूँ तो यह मुझे शोभा नहीं देगा। इसी प्रकार जरूरी तौरपर प्रत्येक कैदीकी जो तलाशी ली जाती है, उसे अशिष्टता मानकर उसपर रोष करना ठीक नहीं है। सत्याग्रहमें पाखण्डके लिए कोई गुंजाइश नही है। किन्तु समझ लीजिए कि उक्त उपवासके अवसरपर यदि सरकार सिर्फ भूख हड़तालियोंका दृष्टिकोण समझने और उनकी भूल हो तो उन्हें उससे विरत करनेके लिए मुझे उनसे मिलनेका मौका नहीं देती तो उस हालतमें उपवास करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता। यह जानते हुए कि यदि जेल अधिकारी मानवीयताके साधारण नियमोंको स्वीकार करें तो भूखसे मरते हुए लोगोंको बचाया जा सकता है और तिसपर भी वे कुछ नहीं करते तो फिर मुझे जिन्दा रहनेके लिए भोजन करना किस तरह सहन हो सकता है।

कुछ मित्र कहते हैं : "ऐसा सूक्ष्म भेद करनेकी जरूरत ही क्या है? हम बाहरके अधिकारियोंकी तरह ही जेलके अधिकारियोंको भी परेशान क्यों न करें? आपने जेल अधिकारियोंके साथ जैसा सहयोग किया वैसा हम क्यों करें? क्यों नही हम यहाँ भी अहिंसात्मक प्रतिरोध जारी रखें? हमारी अपनी सुविधाके लिए जो नियम हों उनके सिवा अन्य किसी भी नियमका पालन हम किसलिए करें? जेल-शासनको ठप कर देनेका क्या हमें पूरा हक नहीं है? क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है? बल-प्रयोग किये बिना यदि हम अधिकारियोंकी नाकमें दम कर दें तो सरकारके लिए लोगोंको बड़ी संख्यामें गिरफ्तार करना कठिन हो जायेगा और उसे सुलहकी बातचीत शुरू करनी पड़ेगी।" यह तर्क बड़ी गम्भीरताके साथ पेश किया गया है, इसलिए अगले प्रकरणमें हम इसपर विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-५-१९२४

५३. विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करो

पिछले सप्ताह मैंने यह दिखानेकी कोशिश की थी कि साम्राज्यके मालका बहिष्कार करनेसे कुछ बननेवाला नहीं है। मैं तो कहूँगा कि यह निष्प्रयोजन ही नहीं, हानिकर भी है; क्योंकि इसके कारण देशका ध्यान उस बहिष्कारकी ओरसे हट जाता है जो एकमात्र प्रभावकारी है और अनिवार्य बहिष्कार भी है। मैं एकबार नहीं, अनेक बार कह चुका हूँ कि यदि हम अपने मनसे अहिंसाकी बात हटा दें तो जो लोग राजनीतिके क्षेत्रमें मेरी तरह अहिंसाको उद्देश्य-प्राप्तिका एकमात्र साधन नहीं मानते और यदि उन्हें यह विश्वास हो गया है कि अहिंसात्मक उपाय विफल हो चुके हैं तो दूसरे उपायोंको अधिक कारगर पाकर उनका उनसे काम लेना न केवल उचित बल्कि कर्त्तव्य-रूप होगा। परन्तु अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि साम्राज्यके मालका बहिष्कार किसी भी हालतमें तबतक व्यावहारिक नहीं है, जबतक वर्तमान शासन प्रणालीका अस्तित्व कायम है। जहाँतक मेरी नजर पहुँचती है, अहिंसा तथा अहिंसासे जो वस्तु अभिप्रेत है उसका एकमात्र विकल्प सशस्त्र विद्रोह है। यदि हम उसकी तैयारी करना चाहते हों तो हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रममें साम्राज्यके मालके बहिष्कारका स्थान केवल उचित ही नहीं, अनिवार्य है। इस बहिष्कार अभियानको जारी रखने और इसके पक्षमें प्रबल प्रचार करनेका परिणाम यह होगा कि हमें ज्यों-ज्यों अपनी बेबसीका एहसास होगा, हमारा क्रोध बढ़ेगा। इसलिए ऐसे प्रचारका स्वाभाविक फल चारों ओर अनुशासनहीन हिंसाकाण्डके रूपमें प्रकट हुए बिना नही रहेगा। उस अवस्थामें उसका कुचल दिया जाना हमारे लिए विशेष हानिकर प्रसंग नहीं होगा। तब भी उसे सशस्त्र बगावतके लिए एक किस्मकी तालीम माना जायेगा। हर दमनके साथ बहुतसे लोगोंमें पस्ती जरूर आ जायेगी, लेकिन कुछ लोगोंमें अधिक संकल्प और दृढ़ता भी आयेगी और उन थोड़ेसे कृतसंकल्प लोगोंकी टोलीसे, सम्भव है, विलियम द सायलेंटकी[1] सेनाकी तरह एक सेना उत्पन्न हो जाये। यदि राष्ट्रके कार्यकर्त्ता इस निष्कर्षपर पहुँच चुके हों कि भारत नये इतिहासकी रचना नहीं कर सकता; बल्कि उसे उसी रास्तेपर चलना पड़ेगा जिसपर यूरोपके देश चले हैं; तब मैं साम्राज्यीय मालके उनके बहिष्कार-अभियानकी उपयोगिताको तसलीम कर लूँगा। बहिष्कार-आन्दोलन भले ही कभी सफल न हो, किन्तु उसे एक आदर्शके रूपमें जारी रखना होगा; क्योंकि तब वह शक्ति और उत्साह रूपी वाष्प पैदा करनेवाले कारखानोंमें से एक गिना जायेगा। भारत चाहे तो उसे इस परम्परागत साधनको ग्रहण करनेका अधिकार है और दुनियाकी कोई ताकत उससे यह अधिकार छीन नहीं सकती।

१. प्रथम विलियम (१५३३-८४); डच गणतन्त्रका संस्थापक; प्रोटेस्टेंटोंपर फिलिप द्वितीयके अत्याचारका विरोध किया और स्पेनकी सेनाके खिलाफ "स्वातन्त्र्य युद्ध" छेड़ा और इस तरह हॉलैंडके कई प्रान्तोंको स्वतन्त्र करवाया।

मगर मैं विश्वासपूर्वक यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि तलवारका रास्ता भारतके लिए है ही नहीं। मैं तो यह भविष्यवाणी करनेका दुःसाहस करता हूँ कि यदि भारतने उस राहको पसन्द किया तो उसे दोमें से एक बातके लिए तैयार रहना चाहिए :

(१) या तो पीढ़ियोंतक विदेशी शासन कबूल करना;

(२) या फिर विशुद्ध हिन्दू राज्य या पूरे तौरपर मुसलमानी राज्यको लगभग सदाके लिए स्वीकार कर लेना।

मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसे हिन्दू भी हैं, जो यदि भारतको शुद्ध हिन्दू राज्य न बना सकें तो अंग्रेजोंको हर तरहसे खुश करके रहनेको तैयार हैं और मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ ऐसे मुसलमान भी हैं, जो तबतक अंग्रेजी राज्यके अधीन रहनेके लिए तैयार हैं जबतक वे भारतमें सोलहों आना मुस्लिम राज्य स्थापित नहीं कर पाते। पर इनकी संख्या थोड़ी है। उनसे मैं कुछ नहीं कहना चाहता। वे रेतमें हल चलाते हैं तो चलायें। मैं जानता हूँ कि बहुत बड़ी तादाद तो उन लोगोंकी है जो विदेशी आधिपत्यसे ऊब गये हैं और जो भारतको उससे मुक्त करानेके लिए कोई कारगर उपाय खोजनेके लिए बेचैन हैं। मुझे विश्वास है कि मैं एक न एक दिन लोगोंसे यह मनवा लूँगा कि यदि विचारशील जनसमुदाय सर्वथा अहिंसात्मक साधनसे ही काम ले तो ऐसे स्वराज्यकी प्राप्ति, जिसमें हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य मतावलम्बी बराबरके साझेदारोंकी हैसियतसे रह सकें, उनके द्वारा कल्पित अवधिसे पहले ही हो सकती है; और यह भी कि ऐसा स्वराज्य अन्य किसी भाँति नहीं मिल सकता।

परन्तु फिलहाल तो मैं यह मान लेना चाहता हूँ कि कांग्रेस द्वारा अपनाया गया धर्म जैसा है उसे देखते हुए कांग्रेसजन हिंसानुकूल वातावरण तैयार कर ही नही सकते और साम्राज्यके मालके निष्फल बहिष्कारसे ऐसा वातावरण जरूर तैयार होगा और इसलिए मैं तो यहाँतक कहता हूँ कि बहिष्कारका यह प्रस्ताव कांग्रेसके सिद्धान्तके खिलाफ है। लेकिन इस बातका निर्णय तो सिर्फ कांग्रेस ही कर सकती है।

अतएव अब मैं पाठकोंका ध्यान दूसरे बहिष्कार अर्थात् विदेशी कपड़ेके बहिष्कार-पर केन्द्रित करना चाहता हूँ। मैं नरमदलवालों तथा राष्ट्रवादियों और कांग्रेसजनों, सभीसे कहता हूँ कि यदि वे तमाम विदेशी कपड़े और देशी मिलोंके कपड़ेके बजाय सिर्फ हाथसे तैयार की गई खादी ही निजी इस्तेमालमें लायें और यदि वे रोज कुछ समय तक निष्ठापूर्वक खुद चरखा चलायें और अपने-अपने परिवारके हर व्यक्तिको उसके लिए प्रेरित करें तथा यदि वे अपनी शक्ति-भर अपने पड़ोसियोंके घरमें भी चरखे और खद्दरका प्रचलन करायें तो देश एक ही सालके अन्दर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकता है। जिस प्रकार वे किसी भी कारणसे विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल न करें, उसी प्रकार हमारी मिलोंके कपड़ेका भी इस्तेमाल न करें। विदेशी कपड़े और देशी मिलोंके कपड़ेके निषेधमें जो भेद है, उसे मैं स्पष्ट कर दूँ। विदेशी कपड़ेका बहिष्कार तो सदाके लिए एक परम आवश्यकता है। परन्तु देशी मिलोंके कपड़ेके स्थायी और राष्ट्र-व्यापी बहिष्कारकी जरूरत नहीं है। लेकिन कपड़ेकी मौजूदा माँगको सिर्फ देशी मिलें

कभी पूरा नहीं कर सकतीं; चरखा और करघा कर सकता है। लेकिन चरखेसे उत्पादित खादी अभी सर्वप्रिय और सार्वजनीन नहीं हो पाई है। यह तभी हो सकता है जब भारतके समझदार लोग उसका श्रीगणेश करें। अतएव उन्हें खादीके सिवा किसी कपड़ेका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। हमारी मिलोंको हमारे आश्रयकी जरूरत नहीं है, उनका माल काफी लोकप्रिय है। इसके अलावा, मिलोंपर राष्ट्रका अंकुश भी नहीं है। वे परोपकारिणी संस्थाएँ नहीं हैं। वे जानबूझकर स्वार्थके लिए शुरू की गई हैं। उनका अपना प्रचार-कार्य भी हो रहा है। यदि मिलमालिक कालकी गति को पहचानेंगे तो वे अपने कपड़ेको सस्ता करके और उन स्थानोंमें कपड़ा पहुँचाकर, जहाँ अभीतक खादी नहीं पहुँच पाई है, विदेशी कपड़ेके बहिष्कारमें सहायक होंगे। यदि वे चाहें तो अपनी मिलोंको खादीके साथ स्पर्द्धासे बचाते हुए केवल उसका पूरक उद्योग बननेमें सन्तोष मानेंगे। "यदि हरएक राष्ट्रीय कार्यकर्ता मिलके कपड़ेके उपयोगसे निष्ठापूर्वक विरत न रहे तो विदेशी कपड़ेका बहिष्कार तत्काल सम्भव नहीं है।" यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके लिए किसी दलीलकी जरूरत नहीं। खादीकी खपत तो तभी हो सकती है जब पढ़े-लिखे और समझदार लोग इसे प्राथमिकता दें।

अबतक तो मैंने यह बात कहनेका प्रयत्न किया कि यदि विदेशी कपड़ेका — न कि साम्राज्यके मालका — पूर्ण बहिष्कार सफलताके साथ करना है तो इसका तत्काल फलदायक और प्रभावकारी एकमात्र उपाय खद्दरका उपयोग है। लेकिन जब हम खादीकी इस क्षमताके साथ-साथ उसकी एक और शक्तिकी ओर ध्यान देते हैं तब तो उसका पक्ष अकाट्य ही हो जाता है। वह शक्ति यह है कि खादी करोड़ों भूख-पीड़ित लोगोंको रोजी भी दे सकती है।

अब शायद यह बात आसानीसे समझी जा सकती है कि हमें क्योंकर वातावरणको चरखामय बनाना चाहिए और क्यों उन तमाम स्त्री-पुरुषों और बच्चोंके लिए जो राष्ट्रके कल्याणके लिए चरखेकी आवश्यकता समझते हैं, धर्म-भावसे नित्य कुछ समय तक चरखा चलाना जरूरी है। भारतके किसान दुनियाके सबसे ज्यादा मेहनती किसानों-की श्रेणीमें हैं, लेकिन साथ ही वे शायद सबसे अधिक निठल्ले भी रहते हैं। यह मेहनत और यह निठल्लापन दोनों उनपर थोपे गये हैं। खेतोंमें फसल पैदा करनेके लिए तो वे काम करते ही हैं; किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनीने हाथ-कताईको समाप्त कर दिया और जिसके फलस्वरूप उनके पास जितने दिन खेती-बारीसे सम्बन्धित काफी काम नहीं होता, उन्हें बेकार रहना पड़ता है। ये किसान अब फिर चरखेको तभी ग्रहण करेंगे, जब हम उनके सामने मिसाल पेश करेंगे। महज उपदेशसे उनपर कोई असर नहीं होगा। जब हजारों लोग अपना प्रिय काम मानकर कताई करने लगेंगे तब यदि हम खादीकी कीमत आजकी ही तरह रखेंगे तो रोजीके तौरपर कताई करने-वालोंको ज्यादा मजदूरी भी दी जा सकेगी। मने खुद सत्याग्रह आश्रममें तैयार की गई खादी बहुत सस्ती बेची थी; क्योंकि जब मैं १९१९ में पंजाबके दौरेपर था तब वहाँकी बहनोंने मुझे मनों सूत प्रेमपूर्वक अर्पण किया था। यदि मैं चाहता तो खादीकी कीमत कम न करके कताईका धन्धा करनेवालोंको अधिक मजदूरी दे सकता था। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि खादी-आन्दोलनकी वह प्रारम्भिक अवस्था थी और मुझे

मोटेझोटे और कमजोर सूतके लिए भी प्रति पौंड ४ आनेके हिसावसे मजदूरी देनी पड़ती थी।

यदि नरमदलीय लोग और कांग्रेसजन केनियाके निर्णयसे क्षुब्ध होकर वहांके गोरे निवासियोंके सिरपर साम्राज्यके मालके प्रभावहीन बहिष्कार-रूपी अस्त्रसे प्रहार कर सकते हैं तो फिर वे शान्तचित्त हो जानेपर खादी आन्दोलनको सफल बनानेमें अपनी सारी शक्ति क्यों नहीं लगा सकते और क्यों नहीं इस प्रकार तमाम विदेशी कपड़ेके बहिष्कारको अवश्यम्भावी बना डालते? क्या मुझे यह बात साबित करनेकी जरूरत है कि विदेशी कपड़ेके बहिष्कारसे न केवल केनियाके भारतीयोंके दुःख दूर होंगे, बल्कि स्वराज्य भी मिल जायेगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-५-१९२४

५४. टिप्पणियाँ

'एक मुसलमानसे, एक हिन्दूसे'

एक पत्र-लेखकने अथवा दो पत्र-लेखकोंने कुछ समय पहले पत्र लिखकर इस स्तम्भमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर मांगा था। लेखकने पत्रमें नीचे अपना नाम नहीं लिखा था और मैं गुमनाम पत्रोंको प्रोत्साहित नहीं करना चाहता; इसलिए मैंने उसे रद्दी कागजोंकी टोकरीमें डाल दिया था। यदि यह पत्र-लेखक (क्योंकि मुझे शक है कि एक ही लेखकने दो नामोंसे पत्र लिखे हैं) सचमुच यह चाहता है कि मैं उसके प्रश्नका उत्तर दूं तो प्रकाशनके लिए नहीं, वरन् अपनी सदाशयता सिद्ध करनेके लिए, उसे अपना नाम प्रकट करना चाहिए।

मोपलोंकी सहायताके सम्बन्धमें मालवीयजीके विचार

पण्डित मालवीयजीने मोपलोंको सहायता देनेके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसे पढ़कर पाठकोंको प्रसन्नता होगी। मुझे हिन्दीमें लिखा गया उनका एक पत्र मिला है, जो इस प्रकार है:[1]

> मोपला स्त्रियों और बच्चोंको सहायता देनेके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा है, मैं उसके प्रत्येक शब्दसे सहमत हूँ।
>
> 'उपकारका बदला साधुतासे देनेमें बड़ाईकी कौनसी बात है। जो अपकारका बदला साधुतासे देता है, सन्तजन उसे ही साधु कहते हैं। साधु पुरुष तो वही हैं जो अपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं और ऐसे ही महात्मा धरतीकी शोभा हैं, क्योंकि उन्हींको पाकर धरती समृद्ध होती है।'

१. मूल हिन्दी पत्र उपलब्ध नहीं है, इसलिए उसके अंग्रेजी अनुवादको ही पुनः अनूदित करके दिया जा रहा है।

मैंने जो श्लोक उद्धृत किया है उससे कृपया यह निष्कर्ष न निकालें कि मेरी रायमें सभी मोपलोंने हिन्दुओंको क्षति पहुँचाई है। तथापि यह मान भी लें कि सभी मोपलोंने क्षति पहुँचाई है तो भी हमें संकटके समय उनकी सहायता करनी चाहिए। ऐसा आचरण करनेमें ही हमारे धर्मकी शोभा है।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालिकवादिनं॥

अबतक मेरे पास मोपलोंकी सहायताके निमित्त छः सौ रुपयेकी रकम ही आई है। इसमें से पाँच सौ रुपये तो एक वोहरा सज्जनने दिये हैं। मुझे उम्मीद है कि अन्य सब भाई और बहन भी यथाशक्ति पैसा भजेंगे।[1]

आचार्य गिडवानी

मेरे प्रश्नके उत्तरमें नाभा राज्यके प्रशासकने कृपा करके निम्न उत्तर, जिसपर १२ मई, १९२४ तारीख पड़ी है, भेजा है।

प्रिय महोदय,

आपका ५ मईका पत्र प्राप्त हुआ। मैंने जेलमें आचार्य गिडवानीकी हालतकी जाँच कराई है। प्राप्त जानकारी नीचे लिखे अनुसार है:

श्री गिडवानी जेलके कपड़े पहनते हैं, किन्तु ये कपड़े साफ सुथरे होते हैं। और उनको वे जब धोना चाहते हैं तब उन्हें साबुन दे दिया जाता है। उन्होंने २१ मार्च, १९२४ के बाद कभी उपवास नहीं किया। उनके स्वास्थ्यकी दशा अच्छी है, और वजन १ मन और ३८ सेर है। उन्हें अभीतक वही भोजन मिला है, जो जेलके दूसरे सजायाफ्ता कैदियोंको मिलता है; किन्तु उनको कभी-कभी स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणोंसे दूध भी दिया गया है। मुझे मालूम हुआ है कि लोगोंसे उनकी मुलाकातके सम्बन्धमें रुकावट नहीं डाली जाती। उनसे कुछ दिन हुए उनकी पत्नी और उनके भाई मिलने आये थे, उन्हें उनसे मिलने दिया गया था और उस अवसरपर उनको सभी सुविधाएँ दी गई थीं। जेलके नियमोंके अनुसार छः महीनेमें केवल एक मुलाकात दी जा सकती है।

मैंने खुद जेलमें जाकर देखा है और ऊपर लिखे तथ्योंके बारेमें अपनी तसल्ली कर ली है। श्री गिडवानीने मुझसे कुछ सुविधाएँ माँगी थीं, जैसे, वे अपना भोजन स्वयं बना सकें, उन्हें साग-भाजी और थोड़ा घी दिया जाये, तथा कसरत करनेकी अनुमति दी जाये। मैंने उनके ये अनुरोध मंजूर कर लिये थे। उन्होंने मुझसे जेलके अधिकारियोंके अथवा अन्य किसीके अशिष्ट व्यवहारकी

१. यह अंश २५-५-१९२४को नवजीवनमें छपे "मोपलोंकी सहायता" शीर्षकसे लिया गया है।

कोई शिकायत नहीं की; यदि वे चाहते तो शिकायत कर सकते थे, क्योंकि उस समय हम दोनों ही वहाँ थे।

लगता है कि आचार्य गिडवानी जेलमें किस परिस्थितिमें भेजे गये हैं उसके बारेमें आपके मनमें कुछ मिथ्या धारणा है। उन्हें पण्डित जवाहरलाल और श्री सन्तानम्के साथ पिछले अक्तूबरमें भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १८८ और १४५के अन्तर्गत दण्ड दिया गया था। प्रशासक होनेके नाते, मैंने उस दण्डको इस शर्तपर मुल्तवी कर दिया था कि वे राज्यसे चले जायें और बिना अनुमतिके वापस न आयें। किन्तु श्री गिडवानीने २१ फरवरीको नाभा राज्यमें वापस आकर वह शर्त तोड़ दी। अब वे जेलमें हैं, और पहले दी गई सजाको भोग रहे हैं। हम उनपर किसी भी अन्य अभियोगमें मुकदमा चलाना नहीं चाहते।

इस प्रकार श्री जिमांडकी रायमें मानवताके हितार्थ नाभा राज्यकी सीमामें प्रवेश करनेके जुर्ममें आचार्य गिडवानीको पहले दी गई २ सालकी कैदकी सजा भोगनी है। आचार्य गिडवानी कोई शिकायत नहीं करते, क्योंकि उन्होंने रिहाईकी दरख्वास्त कभी दी ही नहीं। किन्तु जनता उस प्रशासनके बारेमें क्या राय बनाये जिसके अधीन एक मनुष्य ऐसा काम करनेके लिए बन्दी बनाया जाता है, जिसे वह मानवताका काम समझता है, और जिसके फलस्वरूप किसीको भी सचमुच कोई नुकसान नहीं पहुँचा है। यदि श्री जिमांडकी बात ठीक है तो आचार्य गिडवानीका विचार जत्थेके साथ राज्यमें प्रवेश करनेका नहीं था। मेरे खयालसे उनके कहनेका मतलब यह नहीं है कि यदि आचार्य गिडवानी मुक्त रखे जायें तो वे नाभा राज्यमें ही बने रहनेका आग्रह करेंगे। अतः ऐसा लगता है कि उन्हें बिना किसी न्यायसंगत कारणके जेल भोगनी पड़ रही है।

क्या सिख हिन्दू हैं?

पंजाबसे एक मित्र लिखते हैं :

वाइकोम सम्बन्धी आपकी टिप्पणीके कारण जिसमें आपने अकालियोंको मुसलमानों और ईसाइयोंके साथ गैर-हिन्दुओंकी श्रेणीमें रखा है, यहाँके अकाली बहुत नाराज हुए हैं। मुझसे कई लोगोंने शिकायत की है कि सिख औपचारिक रूपसे कभी हिन्दू धर्मसे अलग नहीं हुए। और यदि कहा जाये कि कुछ लोग हिन्दू कहे जानेसे इनकार करते हैं तो उसके उत्तरमें तर्क दिया जा सकता है कि यों तो कुछ समय पहले स्वयं स्वामी श्रद्धानन्दने भी 'हिन्दू' कहे जानेपर तीव्र आपत्ति की थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिके कई प्रमुख सदस्य हिन्दू सभाके सदस्य हैं; और यद्यपि अकालियोंके एक वर्ग विशेषकी अवश्य ही यह धारणा है कि हिन्दू धर्मसे उनका अपनेको सब प्रकारसे अलग घोषित करना ही अधिक अच्छा होगा; परन्तु उनमें एक उतना ही शक्तिशाली दल

ऐसा भी है, जो इस मामलेमें परम्परापर दृढ़ रहनेका आग्रह रखता है। यह ठीक है कि वे चाहते हैं कि उनके मन्दिर सामान्य हिन्दू-मन्दिरोंसे अलग माने जायें और उनके अपने नियन्त्रणमें रहें। किन्तु यह हाल तो सभी हिन्दू पन्थोंका है। जहांतक मुझे मालूम है, जैनोंको भी यह अधिकार प्राप्त है। मेरा ध्यान इस बातकी ओर खींचा गया है कि आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी तथा दूसरे पन्थ जो परम्परागत सनातन हिन्दू धर्मके अनुयायी नहीं हैं, जिस बातका दावा करते हैं, सिख उसी बातका दावा करते हैं, उससे अधिकका बिलकुल नहीं। यहाँके सिख नेताओंसे घनिष्ठ परिचय होने और सिख आन्दोलनका थोड़ा बहुत अध्ययन करनेके बाद, मुझे स्वयं लगता है कि अकालियोंको गैर-हिन्दुओंकी श्रेणीमें रखना, उनके प्रति अन्याय करना है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे सिख भाइयोंको गैर-हिन्दुओंकी श्रेणीमें रखे जानेकी बात पसन्द नहीं है। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें नाराज करनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। मैंने अपने पंजाबके पहले दौरेमें सिखोंके बारेमें बोलते हुए कहा था कि सिख मेरी रायमें हिन्दू समाजके अंग हैं। मने ऐसा इसलिए कहा था कि मैं जानता था कि लाखों हिन्दू गुरु नानकमें विश्वास करते हैं और 'ग्रन्थसाहब' हिन्दू-भावना और हिन्दू पौराणिक कथाओंसे परिपूर्ण है। किन्तु बैठकमें मौजूद एक सिख मित्रने मुझे एक ओर ले जाकर बहुत चिन्तित भावसे कहा, आपने सिखोंको हिन्दू समाजका अंग बताया, इससे सिखोंमें नाराजी पैदा हुई है। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं आगे कभी सिखों और हिन्दुओंको एक न बताऊँ। मैंने अपने पंजाबके दौरेमें देखा कि उनकी दी हुई चेतावनी ठीक ही थी; मैंने देखा कि कई सिख अपनेको हिन्दू धर्मसे एक अलग धर्मका अनुयायी मानते हैं। मैंने उन मित्रको वचन दिया कि मैं आगे कभी सिखोंको हिन्दू नहीं कहूँगा। अतः यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है कि अलगावकी यह भावना बहुत थोड़े सिखोंतक ही सीमित है और अधिकांश सिख अपने आपको हिन्दू मानते हैं। आर्य समाजियोंका भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ। मैंने एक बार यों ही सहज भावसे उनको हिन्दू समाजका ही एक अंग कह दिया था। इसका उन्होंने बुरा माना था। मैंने एक आर्य समाजी सज्जनको उनकी भावनाओंको आघात पहुँचानेकी लेशमात्र भी इच्छा न रखते हुए हिन्दू कह दिया तो उन्होंने इसे अपना अपमान माना। तब मैंने उन्हें तुरन्त ही क्षमा माँग कर शान्त किया। मुझे कुछ जैनोंका अनुभव भी ऐसा ही हुआ है। महाराष्ट्रके दौरेके वक्त कई जैनोंने मुझसे कहा कि उनका समाज हिन्दू समाजसे अलग है। जैनोंकी यह आपत्ति मेरी समझमें कभी नहीं आई क्योंकि, जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्मोंमें बहुत अधिक समान तत्त्व हैं। आर्य समाजियोंकी आपत्ति मैं थोड़ी-बहुत समझ सकता हूँ, क्योंकि यदि उन्हें बिना अप्रसन्न किये ऐसा कहा जा सके तो ठीक है, क्योंकि वे मूर्ति-पूजाके कट्टर विरोधी हैं और 'वेदों' तथा 'उपनिषदों'को छोड़कर पुराण आदि ग्रन्थोंको नहीं मानते। किन्तु जहांतक मैं जानता हूँ, जैन धर्म और बौद्ध धर्मका हिन्दू धर्मसे ऐसा कोई विरोध नहीं है। इसमें शक नहीं कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म हिन्दू धर्ममें

ही किये गये जबर्दस्त सुधारोंके सूचक हैं। बौद्ध धर्ममें आन्तरिक शुचिताका आग्रह है, जो उचित है। उसकी बात लोगोंके हृदयपर सीधा असर कर गई। उसने दर्पपूर्ण श्रेष्ठताकी मिथ्या कल्पनाकी धज्जियाँ उड़ा दीं। जैन धर्ममें तर्कका उच्चतम स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। उसने किसी भी मान्यताको स्वयंसिद्ध नहीं माना और आत्म-ज्ञान सम्बन्धी सत्यको बुद्धि द्वारा ग्रहण और सिद्ध करनेका प्रयास किया। इन दो सुधार आन्दोलनोंने साहित्यके जिस विशाल भण्डारको जन्म दिया, मेरी रायमें, हमने अभी उसे समझनेकी कोशिश तक नहीं की है।

आशा है कि मेरे सिख मित्र इसे उचित ही ठहरायेंगे कि अगर मैंने अपने विचारोंके बावजूद उन्हें गैर-हिन्दुओंकी श्रेणीमें रखा है तो ऐसा उनकी भावनाओंको किसी भी तरहकी चोट न पहुँचने देनेके खयालसे और अपनी रुचिके विरुद्ध ही किया है। जहाँतक सिख-लंगरका सवाल है, वह एक खतरेकी चीज है, फिर चाहे सिख हिन्दू माने जायें, चाहे गैर-हिन्दू। बाहरके लोगोंकी यह अनधिकार चेष्टा — मैं इसे और कुछ कह ही नहीं सकता — महाराजाकी सनातनी भावना अथवा उनकी कठिनाईका कोई विचार ही नहीं करती। मुझे सिख-लंगरसे सम्बन्धित तथ्य और भी अच्छी तरह मालूम हो गये हैं; इसलिए मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इससे केरलके लोगोंके आत्मसम्मानको क्षति पहुँचती है। वे कोई भूखो नहीं मर रहे हैं। यदि मैं स्वयंसेवक होता तो हिन्दू अथवा गैर-हिन्दू, किसीके भी दानका भोजन ग्रहण करनेके बजाय, भूखा रहना ज्यादा पसन्द करता। केरलके लोगोंपर इतना भरोसा किया ही जाना चाहिए कि वे अपने स्वयंसेवकोंके भोजनकी व्यवस्था करेंगे।

सद्‌गुणकी सजा

> दुकान न चलाने, दुकानके लिए ताड़ोंसे रस न निकालने और इससे ताड़ी न बनानेके सम्बन्धमें ठेकेदारकी कैफियत सन्तोषजनक नहीं है। उसपर ५० रुपया जुर्माना किया जाता है।

मद्रास अहातेके अन्तर्गत नमकल क्षेत्रके राजस्व अधिकारीने अपने फैसलेके दौरान ऐसा लिखा है। पाठक जानते हैं कि यह दुकान शराबकी है। ठेकेदारने यह कैफियत दी थी कि शराब पीनेवालोंने शराब न पीनेका निश्चय किया है, इसलिए उसे दुकान खुली रखनेमें कोई फायदा दिखाई नहीं दिया। किन्तु वह दुकानका किराया देनेके लिए तैयार था। उसकी यह कैफियत सन्तोषजनक नहीं मानी गई। शराब-पीना छोड़नेवाले ग्रामीण, मदिरा-त्यागके अपने इस नये सद्‌गुणका शौक पूरा करनेके लिए शराबके व्यापारसे होनेवाला साल-भरका करारशुदा नफा सरकारको देनेके लिए तैयार थे, किन्तु यह भी काफी नहीं था। यह भी नहीं हो सकता था क्योंकि कानून लोगोंके खिलाफ था। यदि कानूनकी दृष्टिसे पूरी कार्रवाईकी जाँच की जाये तो शायद यही निष्कर्ष निकलेगा कि सम्बद्ध अधिकारी अन्य कोई फैसला दे ही नहीं सकते। दोष उनका नहीं है। वास्तवमें यह पद्धति ही दूषित है, क्योंकि इस पद्धतिमें मुख्य ध्येय राजस्व प्राप्त करना है, उसका आत्मा अथवा शरीरके स्वास्थ्यसे कोई सरोकार नहीं। यदि बात अन्यथा होती तो शराब और अफीमका व्यापार कबका समाप्त हो गया होता।

सुधारोंकी[1] एक विशेष कृपा यह भी हुई है कि शराब और नशीली चीजोंकी आमदनी हमारे बच्चोंकी शिक्षापर ही खर्च की जायेगी। मैं आशा करता हूँ कि गाँवके लोगों और बेचारे ठेकेदारने जिस सुधारका सूत्रपात किया है उनमें उसके लिए जुर्माना और दूसरी तरहके सभी दण्डोंको सहन करनेकी शक्ति आ जायेगी।

खादीके छाते

एक पत्र-लेखक, जो खादीके पक्के भक्त हैं, पूछते हैं कि हमें छातोंके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए। मैं छातोंको पोशाकमें नहीं गिनता और स्वयं विदेशी छातेका उपयोग करनेमें संकोच नहीं करूँगा। किन्तु मैंने खादी चढ़े छाते देखे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि खादीको पानी रोकनेवाले मसालेका लेप करके जलरोधी बनाना सम्भव है। यह खर्चीला हो सकता है, किन्तु दृढ़ निश्चयी मनुष्य खर्चकी परवाह नहीं करेगा। मैंने गरीबोंके छाते भी देखे हैं। जेलमें खुलेमें काम करनेवाले वार्डरोंको छोड़कर कैदियोंको छातेका उपयोग करनेकी अनुमति नहीं रहती। हम यरवदा जेलमें बोरीके एक कोनेको दूसरे कोनेमें घुसा देते थे और उसे ढीला-ढीला सिरपर ओढ़कर उसके द्वारा वर्षासे बड़े कारगर तौरपर अपना ठीक बचाव कर लेते थे।

पूजाके समय रेशमी धोती पहनी जाये या नहीं, पत्र-लेखक इस सम्बन्धमें असमंजसमें पड़ा हुआ है। मेरे लिए तो खादी, विदेशी अथवा स्वदेशी, किसी भी रेशमसे पवित्र है — और कुछ नहीं तो इसलिए कि रेशमका उत्पादन कुछ हजार लोगोंतक ही सीमित है, जबकि सूतका उत्पादन लाखों लोगोंतक फैला हुआ है। किन्तु इस आन्दोलनमें स्वदेशमें बनी खादीके उपयोगकी ही अनुमति है। प्रस्तुत प्रसंगमें भी रेशमके स्थानमें ऊनकी मोटी धोतियाँ पूर्ण उपयोगी बताई जाती हैं। हाथका कता रेशम आसानीसे नहीं मिल पाता और यदि मिले तो भी यह सन्देह सदा बना रहता है कि रेशमका धागा विदेशी है या देशी।

धर्मका उपहास

दिल्लीसे एक पत्र-लेखक लिखते हैं : —

> रोहतक जिलेके रोहद गाँवमें चमारोंके लगभग साठ घर हैं। ये लोग सभी मजदूर हैं और गाँवकी जमीनमें उनके कोई मालिकाना हक नहीं हैं। जबतक गाँवके तालाबमें पानी था तबतक वे उसमें से पानी लिया करते थे। किन्तु उसका पानी खतम हो जानेके बाद अब वे कुएँके पानीके लिए जमींदारकी दयाके मुहताज हो गये। जमींदार उन बेचारे अछूतोंको घंटों खड़ा रखते थे, तब कहीं पानी देनेकी मेहरबानी होती थी। इस परेशानीसे बचनेका कोई उपाय सोचनेके लिए एक समिति बनाई गई, जिसमें एक चमार भी था। उस समितिने तय किया कि चमार पानी खींचनेके लिए एक मालीको रख लें और उसे प्रतिमास १५ रुपया दें। चमार इस बातको मानने जा रहे थे; किन्तु अब

१. मॉर्ले मॉन्टेग्यु सुधार।

उन्हें लगता है कि यह पैसा उन्हें नहीं देना चाहिए, क्योंकि आखिरकार यह तो उनके ऊपर एक प्रकारका अन्यायपूर्ण और भारी मासिक कर ही हुआ। क्या किया जाये? क्या चमार कुएँके लिए सरकारी अधिकारियोंके पास जमीन माँगने जायें? क्या यह असहयोगके विरुद्ध नहीं होगा।

पूछे हुए प्रश्नका उत्तर अत्यन्त ही सरल है। चमार कोई असहयोगी तो हैं नहीं। उनकी कोई राजनीति भी नहीं है। किन्तु कट्टरसे-कट्टर असहयोगीको भी आवश्यक प्रयोजनके लिए सरकारसे जमीन खरीदने या प्राप्त करनेकी मनाही नहीं है। निःसन्देह ऐसे अवसर जितने कम आयें उतना ही अच्छा। किन्तु इस सम्बन्धमें कांग्रेसका प्रस्ताव प्रतिबन्ध नहीं लगाता। जो असहयोगी प्रस्तावकी भावनाको समझता है, वह निश्चय ही आर्थिक लाभके लिए सरकारसे जमीन नहीं खरीदेगा वर्तमान प्रसंगमें, जमीन एक प्राकृतिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिए चाहिए और यदि चमार सरकारसे कुआँ खोदनेके लिए जमीन पा सकते हों तो मेरी रायमें पक्केसे-पक्के असहयोगीको भी इस कार्यमें उनकी सहायता करते हुए कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

इस प्रश्नका उत्तर देना तो मेरे लिए बड़ा ही आसान था; परन्तु उन हिन्दू जमींदारोंके बारेमें क्या कहा जाये, जिनमें इतनी शिष्टता और सामान्य दयालुता भी नहीं है कि वे उन लोगोंको, जो उन्हींके धर्मके अनुयायी हैं और जो सैकड़ों तरहसे उनकी सेवा करते हैं, उचित समयपर पानी दे सकें? और यह सारी हृदयहीनता धर्मके नामपर बरती जाती है। यदि चमारों द्वारा उपयोग किये जानेसे कुएँके अपवित्र हो जानेकी सम्भावना है तो स्वयं ये जमींदार इस एकाधिकारका सुख भोगनेके लिए मालीकी तनख्वाह अपनी जेबसे क्यों नहीं देते? वे उन्हें कुआँ खोदनेके लिए थोड़ी-सी जमीन क्यों नहीं दे देते? क्या पत्र-लेखक बता सकेंगे कि चमारोंने जमींदारोंसे जमीन माँगी थी या नहीं? यदि चमारोंका एक शिष्टमण्डल उनसे मिले तो वे कदाचित् जमीन तो दे ही देंगे, बल्कि खुद पैसा खर्च करके कुआँ भी खुदवा देंगे। यदि यह प्रयत्न नहीं किया गया है तो अब किया जाना चाहिए; सरकारसे जमीन प्राप्त करके कष्टका निवारण तुरन्त किया जा सकता है। किन्तु अस्पृश्यता विरोधी अभियान तो हिन्दू धर्मके एक कलंकको धो डालनेका प्रयास है। कितने ही पृथक कुएँ क्यों न खोदे जायें, उनसे यह कलंक नहीं धुलनेका। अतः हिन्दू सुधारकोंके आगे दो काम हैं — अपने कष्ट-पीड़ित भाइयोंका कष्ट-निवारण करना और उपयुक्त ढंगसे उन लोगोंके हृदयोंको बदलना जो अपने ही आत्मीयजन और सम्बन्धियोंको अछूत समझनेकी निन्दनीय और अमानुषिक प्रथामें विश्वास करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-५-१९२४

५५. सरोजिनीके भाषणपर टिप्पणी[1]

डर्बनके 'नेटाल मर्क्युरी' में प्रकाशित निम्न भाषण 'यंग इंडिया' के पाठकोंको अवश्य रोचक लगेगा। मैं उसे यहाँ 'मर्क्युरी' की प्रशंसात्मक टिप्पणीके साथ उद्धृत करता हूँ।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-५-१९२४

५६. वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको

[बम्बई]

२२ मई, १९२४

केन्द्रीय विधान सभा और कौंसिलोंमें कांग्रेसियोंके प्रवेशके कठिन प्रश्नपर मैंने स्वराज्यवादी भाइयोंसे[3] बातचीत की, लेकिन दुःखके साथ कहना पड़ता है कि मैं उनके दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हो सका। मैं जनताको विश्वास दिलाता हूँ कि स्वराज्य-वादियोंकी बात समझकर उसे स्वीकार करनेके लिए मैं कम इच्छुक नहीं रहा हूँ और इस दिशामें प्रयत्न भी कम नहीं किया है। यदि मैं उनके दृष्टिकोणको अपना सकता तो मेरा काम बहुत आसान हो जाता। ये नेतागण परमश्रद्धेय और लोकमान्य व्यक्ति हैं। इनमें से कुछने देशके हितके लिए बहुत बड़ा त्याग किया है और देशकी स्वतन्त्रताकी जितनी उत्कट अभिलाषा इन्हें है उससे अधिक किसीको नहीं होगी। ऐसे नेताओंके विरोधका विचार करना भी मेरे लिए कोई सुखकर चीज नहीं हो सकती। मैंने बहुत प्रयत्न किया और बहुत चाहा, लेकिन उनकी दलीलें मेरे गले नहीं उतरीं।

उनका और मेरा मतभेद सिर्फ तफसीलकी बातोंपर हो, सो भी नहीं है। हमारा मतभेद प्रामाणिक और बुनियादी है। मैं अपने इस विचारपर अब भी कायम हूँ कि असहयोगकी मेरी जो कल्पना है, उससे कौंसिल-प्रवेशका मेल नहीं बैठता। ऐसा भी

१. श्रीमती नायडूने दक्षिण आफ्रिकामें बच्चोंके बीच भाषण देते हुए उन्हें बताया कि वे अपनी जात-पाँतका खयाल किये बिना एक-दूसरेके प्रति सद्भाव रखें। उन्होंने भाषण समाप्त करते हुए कहा था: "तुमको कहना चाहिए: हम ऐसे देशमें नहीं रहेंगे जिसमें एक कौम और दूसरी कौमके बीच फूट है और जहाँ घृणा और स्वार्थका निवास है। जब तुम सारे संसारको प्यार करने लगोगे तब सारा संसार शान्ति और प्रसन्नतासे भर जायेगा।"

२. इन्हें नहीं दिया जा रहा है।

३. गांधीजी, मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दासके बीच सप्ताह-भर विचार-विमर्श होता रहा था, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। स्वराज्यवादियोंके वक्तव्यके लिए देखिए परिशिष्ट २।

नहीं है कि यह मतभेद सिर्फ "असहयोग" शब्दकी व्याख्यासे सम्बद्ध हो। इसका सम्बन्ध तो मूलभूत मनोवृत्तिसे है, जिसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण समस्याओंसे निबटनेके हमारे तरीकोंमें फर्क पड़ जाता है। त्रिविध बहिष्कारकी सफलता-विफलताका निर्णय इसी मनोवृत्तिकी पृष्ठभूमिमें किया जाना है; केवल उपलब्ध परिणामोंके आधारपर इसका निर्णय नहीं हो सकता। इसी दृष्टिकोणसे मैं यह कहता हूँ कि विधायक संस्थाओंमें प्रवेश करनेकी अपेक्षा उनसे बाहर रहना देशके लिए लाख दर्जे लाभदायक है।

यद्यपि मैं स्वराज्यवादी भाइयोंको अपने दृष्टिकोणसे सहमत नहीं कर पाया; फिर भी मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जबतक उनके विचार मुझसे इस प्रकार भिन्न हैं, तबतक निःसन्देह उनके लिए कौंसिल-प्रवेश उचित ही है। यही हम सबके लिए उत्तम है। मैंने यह अपेक्षा भी नहीं की थी कि स्वराज्यवादी बातचीतके दौरान दी जानेवाली मेरी दलीलोंके कायल हो जायेंगे। उनमें से अनेक तो सर्वाधिक योग्य, अनुभवी और सच्चे देशभक्तोंकी कोटिमें आते हैं। उन्होंने पूरी तरह सोचे-विचारे बिना विधायक संस्थाओंमें प्रवेश नहीं किया है और इसलिए जबतक अनुभवसे उन्हें इस बातकी प्रतीति नहीं हो जाती कि उनके तरीके बेकार हैं, तबतक यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि वे अपना कदम वापस ले लेंगे।

इसलिए देशके सामने सवाल यह नहीं है कि वह मेरे और स्वराज्यवादियोंके मतभेदोंके गुण-दोषपर विचार करके उनके बारेमें कोई फैसला करे। कौंसिल-प्रवेश हो ही चुका; अब सवाल यह है कि करना क्या है? क्या असहयोगियोंको स्वराज्य-वादियोंके तरीकेके प्रति अपना विरोध कायम रखना चाहिए? या कि उन्हें तटस्थ रहना चाहिए और सम्भाव्य अथवा अपने सिद्धान्तोंसे संगत होनेपर स्वराज्यवादियोंकी मदद भी करनी चाहिए।

जिन कांग्रेस-जनोंको कौंसिलों और विधानसभामें जानेके बारेमें अन्तरात्माकी बाधा न हो, उन्हें दिल्ली और कोकनाडाके प्रस्तावोंने ऐसा करनेकी छूट दे दी है। इसलिए मेरे विचारसे स्वराज्यवादियोंका विधायक संस्थाओंमें प्रवेश करना और अपरिवर्तन-वादियोंसे पूर्ण तटस्थताकी अपेक्षा रखना अनुचित नहीं है। उनका विघ्न-बाधाका तरीका अपनाना भी उचित ही है, क्योंकि उनकी नीति ऐसी ही थी और कांग्रेसने उनके इन संस्थाओंमें प्रवेश करनेके बारेमें किसी प्रकारकी शर्त नहीं रखी थी। वहाँ यदि स्वराज्यवादियोंके काममें प्रगति होती है और देशको उससे लाभ होता है तो, उस प्रत्यक्ष प्रमाणका परिणाम यही होगा कि उनके तरीकोंके बारेमें ईमानदारीसे शंका करनेवाले मुझ-जैसे लोगोंको अपनी भूलकी प्रतीति हो जायेगी और यदि कहीं अनुभवसे स्वराज्यवादियोंके ही मनका भ्रम दूर हो जाता है तो म जानता हूँ कि उनमें इतनी देशभक्ति अवश्य है कि वे अपने कदम वापस ले लेंगे।

इसलिए मैं स्वराज्यवादियोंके मार्गमें कोई विघ्न उपस्थित करने या विधान सभाओंके लिए उनके निर्वाचनके खिलाफ किसी प्रचारमें शरीक नहीं होऊँगा। लेकिन साथ ही, जिस योजनामें मेरा विश्वास नहीं है, उसे लागू करनेमें मैं उन्हें कोई सहायता भी नहीं पहुँचा सकता। दिल्ली और कोकनाडाके प्रस्तावोंका उद्देश्य स्वराज्य-वादियोंको कौंसिल-प्रवेशके तरीकेको आजमानेका एक मौका देना था और यह उद्देश्य

तभी फलीभूत होगा जब अपरिवर्तनवादी लोग उन्हें कौंसिलोंमें अपने कार्यक्रमपर अमल करनेके लिए अत्यन्त ईमानदारीके साथ पूरी छूट देंगे और उनके मार्गमें कोई विघ्न उपस्थित नहीं करेंगे।

कौंसिलोंमें कामका तरीका क्या हो, इसके सम्बन्धमें मैं यह कहूँगा कि मैं किसी भी विधायक संस्थामें तभी प्रवेश करूँगा, जब मुझे लगेगा कि सचमुच मैं उसका कोई लाभदायक उपयोग कर सकता हूँ। इसलिए यदि मैं कौंसिल-प्रवेश करूँ तो अवरोधकी नीतिका पालन करनेके बजाय कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको बल देनेकी कोशिश करूँगा। अतएव मैं वहाँ ऐसे प्रस्ताव पेश करना चाहूँगा जिनके अनुसार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारके लिए यथाप्रसंग यह आवश्यक हो कि वह:

(१) जो कपड़ा खरीदे वह हाथ-कते सूतसे हाथ बुनी खादी ही हो;
(२) विदेशी कपड़ेपर कसकर चुंगी लगाये।
(३) शराब और अफीम वगैरह मादक पदार्थोंसे प्राप्त होनेवाले राजस्वको समाप्त कर दे; और
(४) सेनापर होनेवाले खर्चमें कमसे-कम उतनी कमी करे जितनी कमी शराब और मादक पदार्थोंसे प्राप्त होनेवाले राजस्वको समाप्त कर देनेसे सरकारी आयमें हो गई है।

यदि विधायक संस्थाओं द्वारा स्वीकृत हो जानेपर भी सरकार उन प्रस्तावोंपर अमल न करे तो मैं उसे आमन्त्रित करूँगा कि वह उन संस्थाओंको भंग कर दे और उसी विशेष मुद्देके आधारपर फिरसे निर्वाचन कराये। यदि तब भी सरकार उन संस्थाओंको भंग न करे तो मैं अपना पद त्याग दूँगा और देशको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार करूँगा। जब वह अवस्था आ जायेगी तो स्वराज्यवादी लोग देखेंगे कि मैं उनके साथ और उनके अधीन काम करनेको तैयार हूँ।

सविनय अवज्ञाकी पात्रताकी मेरी कसौटी अब भी वही है जो पहले थी। इस परीक्षा-कालतक के लिए मैं अपरिवर्तनवादियोंको सलाह दूँगा कि स्वराज्यवादी लोग क्या कर या कह रहे हैं, इसकी चिन्ता न करके वे पूरी शक्ति और एकाग्रतासे रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करें और अपनी ही निष्ठाको चरितार्थ करें। खादी और राष्ट्रीय शालाओंका ही काम इतना बड़ा है कि बिना किसी दिखावेके, चुपचाप ईमानदारीसे काम करनेमें विश्वास रखनेवाले जितने कार्यकर्त्ता मिल सकते हों, उसमें खप सकते है। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्या भी ऐसी ही है, जिसमें कार्यकर्त्ताओंका अपनी पूरी शक्ति और आस्थासे काम करना अनिवार्य होगा। जिस प्रकार परिवर्तनवादी अपने कौंसिल-प्रवेशका औचित्य परिणामोंसे ही सिद्ध कर सकते हैं, उसी प्रकार अपरिवर्तनवादी लोग भी रचनात्मक कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेकी अपनी लगनके परिणाम सामने पेश करके ही कौसिल-प्रवेशके प्रति अपने विरोधका औचित्य सिद्ध कर सकते हैं।

एक तरहसे अपरिवर्तनवादी ज्यादा अच्छी स्थितिमें हैं; क्योंकि वे परिवर्तनवादियोंका भी सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। परिवर्तनवादियोंने रचनात्मक कार्यक्रममें अपना

विश्वास व्यक्त किया है, लेकिन उनका कहना यह है कि कार्यक्रम अपने आपमें ऐसा नहीं है जो देशको उसके लक्ष्यतक पहुँचा सके। लेकिन जहाँतक विधायक संस्थाओंके बाहर रचनात्मक कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेका सवाल है, अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी तथा दूसरे सभी लोग यदि चाहें तो आवश्यकता पड़नेपर अपने-अपने संगठनोंके जरिये एक साथ होकर काम कर सकते हैं।

कांग्रेस संगठनकी रोजानाकी कार्य-निर्वहन पद्धतिपर विचार किये बिना यह वक्तव्य पूरा नहीं हो सकता। उसके बारेमें मेरे विचार बहुत मूलगामी और सुनिश्चित हैं। लेकिन उन्हें मैं आगे किसी अवसरपर शीघ्र ही प्रस्तुत करूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-५-१९२४

५७. पत्र : वसुमती पण्डितको

वैशाख वदी ५ [२३ मई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ रुक ही गई हो तो आ जाना। लेकिन एकदम जा रही हो तो आना जरूरी नहीं। स्वास्थ्य पूरे तौरपर ठीक हो जानेपर ही देवलालीसे आनेका विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

चि० बहन वसुमती
दौलतराय काशीराम ऐण्ड कम्पनी
रावल बिल्डिंग
लैमिंग्टन रोड,–बम्बई

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

५८. सचिवको हिदायत

[२३ मई, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

तार कर दो कि कदापि नहीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०३२८) की फोटो-नकलसे।

१. वैशाख वदी ५, २३-५-१९२४ को पड़ी थी। डाकखानेकी मुहर २४-५-१९२४ तारीखकी है।
२. यह हिदायत २३ मई, १९२४ को मिले दीपक चौधरीके निम्न तारके बारेमें थी।
"यदि माँ मान जाये तो क्या आप मुझ नाबालिगको तारकेश्वर सत्याग्रहमें शामिल होनेकी मंजूरी दे देंगे।"

५९. पत्र : जी० वी० सुब्बारावको

२४ मई, १९२४

प्रिय श्री सुब्बाराव,

अपने पुत्र और श्री दासके जरिये श्रीयुत अरविन्द घोषके[1] विचार [मैंने जान लिये हैं]। मेरा पुत्र उनसे विशेष तौरपर मिला था। मैं इस बातसे सहमत हूँ कि हमारा आधार आध्यात्मिक होना चाहिए और मैं अपनी सभी गतिविधियोंको अपनी अल्पमति-के अनुसार आध्यात्मिक दृष्टिको सामने रखकर ही चलानेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३६२३) की फोटो-नकलसे।

६०. पत्र : अली हसनको[2]

अन्धेरी
२४ मई, १९२४

प्रिय श्री हसन,

पत्रके लिए धन्यवाद। मैं आपकी इस रायसे सहमत नहीं[3] हूँ कि असहयोगका काम करनेसे मुसलमानोंने कुछ खोया है। मैं यह बात भी नहीं मानता कि शासन चलाने-की योग्यता मुसलमानोंमें हिन्दुओंसे ज्यादा है। आम सवालके बारेमें मेरे पूरे खयालात आपको समय-समयपर लिखे गये मेरे लेखोंमें मिल जायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी समाचारपत्रकी कतरन (एस० एन० १०४९१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सुप्रसिद्ध दार्शनिक।

२. यह पत्र बैरिस्टर श्री अली हसनकी १५ मई, १९२४ की खुली चिट्ठीके उत्तरमें लिखा गया था। श्री हसनने कहा था कि असहयोग आन्दोलनने मुसलमानोंको और अलीगढ़ विश्वविद्यालय-जैसी उनकी संस्थाओंको बिल्कुल चौपट कर दिया है। उन्होंने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे आन्दोलन बन्द करके हिन्दुओंसे मुसलमानोंके साथ ज्यादा अच्छी तरह पेश आने और यह स्वीकार कर लेनेके लिए कहें कि वे आमतौरपर हिन्दुओंसे श्रेष्ठ होते हैं। अली हसनने यह पत्र प्रकाशनके लिए न्यू इंडियाको भेज दिया था।

३. यहाँ मूलमें 'नहीं' शब्द छूट गया था। इसका स्पष्टीकरण गांधीजीने अपने एक लेखमें किया है। देखिए "टिप्पणियाँ", १०-७-१९२४ उप-शीर्षक "बेहतर प्रशासक कौन है?"।

६१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

वैशाख बदी ६
शनिवार [२४ मई, १९२४][1]

भाई श्री घनश्यामदासजी,

महार लोग जो यहाँ रहते हैं वे मुझे कहते हैं कि आपने उन लोगोंको रू. ३०,००० मंदीर और बसती-गृह बनानेके लीये देनेका कहा है यदि मैं उसमें सम्मत हुँ तो क्या आपने उन लोगोंसे ऐसा कुछ कहा है? उनके नेताका नाम श्री भोंसले है।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च]

उत्तर साबरमती भेजीयेगा। मैं गुरुवारके रोज वहाँ पहुँच जाऊंगा।

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४६) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

६२. मेरी प्रार्थना

आगामी सप्ताहमें[2] सत्याग्रह आश्रममें पहुँच चुकूँगा। मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि अभी मुझमें नारोंको सहन करने, सभाओंमें जाने और भाषण देनेकी शक्ति नहीं आई है। घूमना-फिरना भी एक निश्चित सीमातक ही हो सकता है। ऐसी स्थितिमें मैं बहुतसे भाइयोंसे मिल सकता हूँ इसकी आशा फिलहाल मुझे और उन्हें दोनोंको छोड़ ही देनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि बहुतसे भाई और बहनें मुझसे मिलनेके लिए आतुर हैं। जितने वे मुझसे मिलनेके लिए आतुर हैं उतना ही मैं भी उनसे मिलनेको आतुर हूँ। पर फिलहाल हमें संयमसे काम लेना पड़ेगा। इसलिए सब भाइयों और बहनोंको अभी यही समझना चाहिए कि मैंने गुजरातमें प्रवेश ही नहीं किया है। मैं जिस तरह जलवायु-परिवर्तनके लिए जुहू[3] गया था उसी तरह सभी यह समझें कि मैं जलवायु-परिवर्तनके लिए आश्रममें आया हूँ। यदि सब भाई और बहन मुझपर इतनी दया करेंगे तो मैं कुछ शान्ति प्राप्त कर सकूँगा और मेरे जिम्मे जो

१. यह पत्र गांधीजीने जुहूसे लिखा था। १९२४में वैशाख वदी ६, २४ मईको पड़ी थी।

२. गांधीजी १० मार्च, १९२२को गिरफ्तार किये गये थे और २९ मई, १९२४को आश्रममें वापस पहुँचे थे।

३. यरवदा जेलसे रिहा होनेके बाद वे ११ मार्चसे २८ मई तक बम्बईके जुहू उपनगरमें ठहरे थे।

काम हैं उनका बोझ उठा सकूँगा। मुझमें जितनी शक्ति है वह लगभग सब 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' का सम्पादन करनेमें लग जाती है।[1] जो शक्ति बच रहती है उसमें मैं कदाचित पत्र-व्यवहार पूरा कर सकूँ। मैं सोमवार और बुधवारको तो मौनव्रतका पालन कर ही रहा हूँ।[2] ये दोनों दिन मैं उक्त पत्रोंके लिए लेख लिखनेमें लगाता हूँ। इसीलिए मैं इन दिनोंमें किसीसे भी मिलना नहीं चाहता। मैंने अन्य दिनोंमें जुहूकी तरह लोगोंसे मिलने-जुलनेके लिए प्रतिदिन शामको ४ बजेसे ६ बजेतक का समय रखा है। अन्य दिनोंमें भी मैं सुबहके वक्त मौन ही रखना चाहता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ, तो जो लोग अपने आप सुबह मुझसे मिलने चले आते हैं उन्हें निराश नहीं कर सकता और फिर उस हदतक मैं अपना काम पूरा नहीं कर सकता।

मैं इस नियमका दृढ़तापूर्वक पालन जुलाई मासतक तो करना ही चाहता हूँ। उसके बादका कार्यक्रम मेरी तबीयत और कामकी कमी-बेशीपर निर्भर होगा।

मेरी यह प्रार्थना तो मेरे शारीरिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे है।

मेरी दूसरी प्रार्थना अपने देशके कार्यको लेकर है। मेरे लिए बहुत-कुछ करना बाकी है। मैं इस विषयमें 'नवजीवन' में चर्चा कर रहा हूँ। लेकिन एक बात तो मैं माँगना ही चाहता हूँ। क्या मेरे भाग्यमें अब भी गुजरातियोंके शरीरोंपर विदेशी वस्त्र देखना लिखा है? क्या गुजरातको खादीमय देखनेका अवसर नहीं आयेगा? वल्लभभाईने दस लाख रुपयेकी थैली देनेकी योजना बनाई है। क्या वे गुजरातको खादीमय करनेकी योजना नहीं बनायेंगे? "गुजरात आपको एक करोड़ रुपया दे तो आप इसे पसन्द करेंगे अथवा आप गुजरातको खादीमय बनानेकी बात पसन्द करेंगे?" यदि कोई मुझे यह पूछे तो मैं तुरन्त उत्तर दूंगा कि मैं गुजरातसे एक करोड़ रुपया लेनेकी अपेक्षा उसको खादीमय बनानेकी बात ज्यादा पसन्द करूँगा।

मैं बम्बईसे अपनी रवानगीका दिन नहीं बताना चाहता। मैं चाहता हूँ कि कोई भी इसकी जिज्ञासा न रखे और यदि लोगोंको इसका पता लग जाये तो वे स्टेशनपर झुण्डके-झुण्ड आकर खड़े न हों। यदि सब लोग स्टेशनपर आनेकी अपेक्षा सूत कातनेमें जुटे रहें तो कितना सूत तैयार हो सकता है? यदि हम अपने बचे हुए समयका आधा भाग भी सूत कातनेमें लगायें तो हिन्दुस्तानकी जरूरतके योग्य सूत खेल-खेलमें तैयार हो जाये।

सीधा हिसाब

हमारी कपड़ेकी जरूरत प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष १३ गज होती है। मान लीजिए, इतने कपड़ेका वजन तीन सेर हुआ। यदि प्रत्येक मनुष्य रोज आधा घंटा काते तो साल-भरमें इतना सूत आसानीसे तैयार किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि

१. जेलसे आनेके बाद गांधीजीने अप्रैल, १९२४ के पहले सप्ताहमें उक्त दोनों साप्ताहिक पत्रोंका सम्पादन-भार सम्भाला था।

२. गांधीजीने १७ मार्च, १९२४ से हर सोमवारको और ५ अप्रैल १९२४ से हर बुधको मौन रखना शुरू किया था।

यदि आधी आबादी केवल एक घंटे ही सूत काते तो सारे देशकी आवश्यकता पूरी करने लायक सूत कत जाये। आशा है कि ये भाई और बहन स्टेशनपर आनेका कष्ट उठाने-की अपेक्षा अपने मनको वशमें रखकर उतना समय सूत कातनेमें लगायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६३. ब्रह्मचर्य

इस विषयपर लिखना आसान नहीं है। लेकिन इस विषयमें मेरा निजी अनुभव इतना विशाल है कि इच्छा बनी रहती है कि कुछ बातें पाठकोंके सामने रखूं। मेरे नाम आये हुए कुछ पत्रोंने मेरी इस इच्छाको और भी तीव्र कर दिया है।

एक भाई पूछते हैं:

> ब्रह्मचर्यका अर्थ क्या है? क्या उसका पूर्ण पालन सम्भव है? अगर सम्भव हो तो क्या आप उसका पूर्ण पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्यका पूरा और ठीक अर्थ तो ब्रह्मकी खोज है। ब्रह्म सबमें बसता है और इसलिए अन्तर्मुख होनेसे तथा उससे उत्पन्न ज्ञानके सहारे उसकी खोज की जा सकती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियोंके सम्पूर्ण संयमके बिना असम्भव है। इस प्रकार ब्रह्मचर्यका अर्थ है सब इन्द्रियोंका हर समय और हर जगह मन, वचन और कर्मसे संयम।

जो स्त्री या पुरुष ऐसे ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है वह सर्वथा विकार रहित होता है। इसलिए ऐसा व्यक्ति ईश्वरके निकट रहता है और ईश्वर-जैसा ही होता है।

मुझे जरा भी शंका नहीं कि इस प्रकारके ब्रह्मचर्यका मन, वचन और कर्मसे पूरी तरह पालन करना सम्भव है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि मैं ब्रह्मचर्यकी इस पूर्ण अवस्थातक अभी पहुँच नहीं पाया हूँ। किन्तु मैं उस अवस्थातक पहुँचनेका प्रयत्न निरन्तर करता रहता हूँ और मैंने इस शरीरके द्वारा उस स्थितितक पहुँचनेकी आशा छोड़ी नहीं है। मैंने कायापर तो काबू पा लिया है। मैं जाग्रत अवस्थामें सावधान रह सकता हूँ। मैं वाणीमें संयमका पालन करना भी ठीक-ठीक सीख गया हूँ। किन्तु अभी विचारोंपर काबू पाना बहुत-कुछ बाकी है। मेरे मनमें जिस समय जिस बातका विचार करना हो उस समय उसके सिवा दूसरे विचार भी आते हैं। इससे विचारोंमें परस्पर द्वन्द्व चला ही करता है।

फिर भी मैं जाग्रत अवस्थामें अपने विचारोंका एक-दूसरेसे टकराना रोक सकता हूँ। मेरी ऐसी स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार मेरे मनमें कभी नहीं आ पाते। परन्तु निद्रावस्थामें विचारोंपर मेरा यह नियन्त्रण कम होता है। नींदमें अनेक प्रकारके विचार आते हैं; अकल्पित सपने भी दिखते हैं और कभी-कभी इसी देहसे की हुई क्रियाओंकी वासना भी जाग्रत होती है। वे विचार जब गन्दे होते हैं तब स्वप्नदोष भी हो जाता है। यह स्थिति विकारी जीवकी ही हो सकती है।

मेरे पापयुक्त विचार क्षीण होते जा रहे हैं, परन्तु उनका नाश नहीं हो पाया है। यदि मैं विचारोंपर भी नियन्त्रण प्राप्त कर सका होता तो पिछले दस बरसोंमें मुझे जो तीन रोग — पसलीका दर्द, पेचिश और आंत्र-पुच्छ शोथ[1] हुए वे कभी न होते। मैं मानता हूँ कि नीरोग आत्माका शरीर भी निरोग होता है। इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्यों-ज्यों रोगरहित, निर्विकार होता जाता है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोग होता जाता है। नीरोग शरीरका अर्थ बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीरमें वास करता है। ज्यों-ज्यों आत्मबल बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीरकी क्षीणता बढ़ती है। सम्पूर्ण नीरोग शरीर देखनेमें बहुत क्षीण हो सकता है। बलवान शरीरमें प्रायः रोग तो रहते ही हैं; रोग न हों तो भी वह शरीर संक्रामक रोगोंका शिकार तुरन्त हो जाता है। परन्तु पूर्ण नीरोग शरीरपर ऐसे रोगोंका असर हो ही नहीं सकता। शुद्ध रक्तमें संक्रामक रोगोंके कीटाणुओंको दूर रखनेका गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ जरूर है, नहीं तो अबतक मैं उसे प्राप्त कर चुका होता, क्योंकि मेरी आत्मा साक्षी देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिए जिन उपायोंसे काम लेनेकी आवश्यकता है, उनसे मैं मुँह नहीं मोड़ूंगा। ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नहीं है, जो मुझे उससे दूर रखनेमें समर्थ हो। परन्तु पूर्व संस्कारोंको धोना सबके लिए सरल नहीं होता। इसमें देर हो रही है, फिर भी मैं बिलकुल निराश नहीं हुआ हूँ, क्योंकि मैं निर्विकार अवस्थाकी कल्पना कर सकता हूँ, उसकी धुंधली झलक भी देख सकता हूँ; और मैंने जितनी प्रगति अबतक की है वह मुझे निराश करनेके बदले आशावान बनाती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण होनेसे पूर्व ही मेरा शरीर-पात हो जाये तो भी मैं अपनेको असफल नहीं मानूंगा। मुझे जितना विश्वास इस देहके अस्तित्वमें है उतना ही पुनर्जन्ममें भी है। इसलिए मैं जानता हूँ कि थोड़ा-सा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं जाता।

अपने अनुभवोंका इतना वर्णन करनेका कारण यही है कि जिन्होंने मुझे पत्र लिखे हैं उन्हें तथा उनके समान दूसरे लोगोंको धीरज रहे और उनमें आत्मविश्वास पैदा हो। आत्मा सबकी एक ही है। सबकी आत्माओंकी शक्ति एक-सी है। अन्तर केवल यह है कि कुछ लोगोंकी शक्ति प्रकट हो गई है और कुछकी प्रकट होनी है। प्रयत्न करनेसे उन्हें भी अवश्य ही ऐसा ही अनुभव होगा।

यहाँतक मैंने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यका विवेचन किया। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो इतना ही माना जाता है — विषयेन्द्रियका मन, वचन और कायाके द्वारा संयम। यह अर्थ वास्तविक है, क्योंकि उसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके संयमपर उतना जोर नहीं दिया गया। इस कारणसे विषयेन्द्रियका संयम मुश्किल और प्रायः अशक्य जैसा हो गया है। फिर, रोगसे अशक्त बने हुए शरीरमें विषय-वासना हमेशा अधिक रहती है, ऐसा चिकित्सकोंका अनुभव है। इसलिए भी हमारे देशके रोगग्रस्त लोगोंको ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना कठिन मालूम होता है।

१. गांधीजीको ये रोग क्रमशः अक्तूबर १९१४, अगस्त १९१८ और जनवरी १९२४ में हुए थे।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोग शरीरके विषयमें लिख चुका हूँ। परन्तु उसका अर्थ यह नहीं करना चाहिए कि शारीरिक बलका विकास न किया जाये। मैंने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी बात अपनी अति प्राकृत भाषामें लिखी है। इससे शायद गलतफहमी हो सकती है। जो सब इन्द्रियोंके पूर्ण संयमका पालन करना चाहता है, उसे अन्तमें शारीरिक क्षीणताका स्वागत करना ही होगा। जब शरीरका मोह और ममत्व क्षीण हो जायेगा, तब शारीरिक बलकी इच्छा ही जाती रहेगी।

परन्तु विषयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना ही चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेन्द्रिय कभी स्वप्नावस्थामें भी विकारी न बने, वह मनुष्य इस जगतमें वन्दनीय है। इसमें शंका नहीं कि उनके लिए दूसरा सब प्रकारका संयम सहज हो जाता है।

इस ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें एक दूसरे भाई लिखते हैं :

> मेरी स्थिति दयाजनक है। दफ्तरमें, रास्तेमें, रातमें, पढ़ते समय, काम करते समय और ईश्वरका नाम लेते समय भी वही विकारी विचार आते हैं। मैं मनके इन विचारोंको किस तरह वशमें रखूँ? मुझमें स्त्री-मात्रके प्रति मातृभाव कैसे उत्पन्न हो सकता है? मेरी आँखोंसे शुद्ध वात्सल्यकी ही किरणें किस प्रकार निकल सकती हैं? मेरे दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मल हो सकते हैं? मैंने आपका ब्रह्मचर्य-विषयक लेख[1] अपने पास रख छोड़ा है। परन्तु इस परिस्थितिमें वह बिलकुल उपयोगी नहीं होता?

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। बहुतोंकी ऐसी स्थिति होती है। परन्तु जबतक मन ऐसे विचारोंसे लड़ता रहता है, तबतक भय करनेका कोई कारण नहीं है। आँखें बुरा काम करती हों तो उनको बन्द कर लेना चाहिए। कान बुरी बात सुनते हों तो उन्हें रुईसे भर लेना चाहिए। आँखोंको हमेशा नीचा रखकर ही चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हें दूसरी बातें देखनेका अवसर ही नहीं मिलता। जहाँ गन्दी बातें होती हों अथवा गन्दे गाने गाये जाते हों वहाँसे उठ जाना चाहिए। स्वादेन्द्रियपर पूरी तरह नियन्त्रण रखना चाहिए।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वादको नहीं जीता वह विषयोंको नहीं जीत सकता। स्वादको जीतना बहुत कठिन है। इस विजयके साथ ही दूसरी विजय सम्भव बन जाती है। स्वादको जीतनेके लिए एक नियम तो यह है कि मसालोंका सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग किया जाये। दूसरा नियम जो इससे भी अधिक जबर्दस्त है, यह है कि हमें भोजन स्वादके लिए नहीं, बल्कि केवल शरीर-रक्षाके लिए ही करना चाहिए। हम इस भावनाका पोषण सदा करते रहें। हम अपने फेफड़ोंमें हवा स्वादके लिए नहीं, बल्कि श्वासके लिए भरते हैं और हम पानी प्यास बुझाने के लिए पीते हैं। इसी प्रकार हमें भोजन केवल भूख मिटानेके लिए ही करना चाहिए। दुर्भाग्यवश हमारे माँ-बाप हमें बचपनसे ही उलटी आदत डाल देते हैं। वे हमें शरीरके

१. कदाचित् "ब्रह्मचर्यका पालन कैसे करें", शीर्षक लेख, नवजीवन, १०-११-१९२१; देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४३८-३९।

पोषणके लिए नहीं बल्कि अपना लाड़-दुलार दिखानेके लिए तरह-तरहके स्वाद सिखाकर हमारी आदतें बिगाड़ते हैं। हमें ऐसे वातावरणके विरुद्ध लड़नेकी आवश्यकता है।

लेकिन विषयोंको जीतनेका स्वर्ण-नियम तो रामनामका अथवा ऐसे ही किसी दूसरे मन्त्रका जप करना है। द्वादश मन्त्र[1] भी यही काम देता है। हमें अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मन्त्रका जप करना चाहिए। मुझे बचपनमें रामनाम सिखाया गया था; उसका सहारा मुझे बराबर मिलता रहता है। इसलिए मैंने वही रामनाम सुझाया है। हम, जो भी मन्त्र जपें उसमें तल्लीन हो जाना चाहिए। यदि मन्त्र जपते समय दूसरे विचार आयें तो कोई चिन्ता नहीं। फिर भी यदि हम श्रद्धा रखकर मन्त्रका जप करते रहेंगे तो अन्तमें सफलता अवश्य प्राप्त करेंगे। मुझे इसमें रत्ती-भर भी शक नहीं है। यह मन्त्र मनुष्यकी जीवन-डोर बनेगा और उसे सारे संकटोंसे बचायेगा। किसीको भी ऐसे पवित्र मन्त्रोंका उपयोग आर्थिक लाभके लिए हरगिज नहीं करना चाहिए। इस मन्त्रका चमत्कार हमारी नीतिको सुरक्षित रखनेमें है और यह अनुभव प्रत्येक साधकको थोड़े ही समयमें मिल जायेगा; हाँ, हमें इतना याद रखना चाहिए कि कोई भी इस मन्त्रको तोतेकी तरह न रटे। उसमें हमें अपनी सारी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते ऐसे मन्त्रको यन्त्रकी तरह बिना विचारे रटते हैं; हमें ऐसे मन्त्रका जप अवांछनीय विचारोंका निवारण करनेकी भावना रखकर और मन्त्रकी तद्विषयक शक्तिमें विश्वास रखकर ज्ञानपूर्वक करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६४. मिल-मजदूर और खादी

अहमदाबादके मिल-मजदूरोंमें जो खादी प्रचार हो रहा है, उसका विस्तृत विवरण 'खादी समाचार पत्रिका'[2] के छठे अंकमें प्रकाशित हुआ है। उससे पता चलता है कि बहुतसे मजदूरोंने खादी ही पहननेका निश्चय किया है तथा कुछेक मजदूरोंने अपने घरोंमें चरखे रखने और करघे लगानेका फैसला किया है। मजदूरोंकी ओरसे बीस स्कूल चलते हैं, जिनमें आठ सौ बालक पढ़ते हैं। ये सब खादी पहनते हैं। इनकी सुविधाके लिए व्यवस्थापकोंने खादीके कुर्ते-टोपियाँ आदि तैयार करवाई हैं। थोक-बन्द काम करवानेसे एक कुर्तेकी सिलाई पौने तीन आने और टोपीकी केवल छः पाई पड़ती है।

'मजूर सन्देश'[3] में नीचे लिखा आकर्षक ब्यौरा दिया गया है:

आप सेर खादी लेंगे तो —

दस आने हमारे किसी गरीब किसानको मिलेंगे;

१. द्वादशाक्षर मन्त्र, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

२. मगनलाल गांधी द्वारा सम्पादित।

३. अहमदाबादके कपड़ा मिल-मजदूर संघ द्वारा प्रकाशित पत्रिका।

डेढ़ अथवा दो आने हमारे किसी गरीब पिंजारेको मिलेंगे;
चार या छः आने हमारी किसी गरीब कातनेवाली बहनको मिलेंगे;
आठ या नौ आने इन बहनोंका सूत बुननेवाले किसी बुनकरको मिलेंगे;
३ पैसे हमारे किसी धोबीको मिलेंगे।
आप खादी पहनेंगे तो ये सब पैसे देशमें रहेंगे और हमारे किन्हीं गरीब भाइयों और बहनोंको मिलेंगे।

यह बात न केवल मजदूर भाइयोंको ही वरन् प्रत्येक भाई और बहनको गाँठमें बाँध लेनी चाहिए।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २५-५-१९२४

६५. सत्याग्रही गालियाँ

मैंने "उतावला काठियावाड़" शीर्षक लेखमें सत्याग्रही गालियोंका उल्लेख किया है। एक सज्जन सत्याग्रही गालियोंकी फेहरिस्त चाहते हैं, जिससे वे उन्हें सीखकर दूसरोंको दे सकें। पहली शर्त तो यह है कि असत्याग्रही अथवा दुराग्रही मनुष्य गालियाँ दे ही नहीं सकता। यदि वह दे तो वे उसके मुँहसे अवश्य भोंड़ी लगेंगी। जो मनुष्य इस नियमको समझ लेगा उसे फेहरिस्त देनेकी जरूरत न रहेगी।

सत्याग्रही गालियाँ अनन्त हैं। जिस प्रकार प्रेमकी कोई सीमा नहीं है उसी प्रकार सत्याग्रही गालियोंकी भी सीमा नहीं है। यदि मैं वल्लभभाईको सत्याग्रही गालियाँ देना चाहूँ तो मैं यह कहूँगा: "यह पटेलवा खुद तो नंगा हो ही गया है अब दूसरोंको भी लूटने लगा है। इसीलिए उसकी नजरमें दस लाख रुपये कोई चीज नहीं।" अब्बास साहबको[1] यदि सत्याग्रही गालियाँ देनी हों तो कहेंगे: "बुड्ढा ठहरा। घर-बार छोड़कर सारा दिन भटकता-फिरता है। उसे न धूपकी परवाह है, न छाँहकी। लोगोंको परेशान करता ही रहता है? बुड्ढेका क्या? उसे रोक भी कौन सकता है?" पट्टणीजीको ऐसी ही गालियाँ देनी हों तो कहेंगे — "वे काठियावाड़के राजाओंको नाच नचाते हैं, गवर्नरोंको फुसलाकर भावनगरको ऊँचा चढ़ाते हैं और अब काठियावाड़ियों-को फुसलाने चले हैं। परन्तु हम भी सच्चे काठियावाड़ी या सच्चे भावनगरी होंगे तो उन्हें मजा चखा देंगे। हम राजाओं या गोरे साहबों-जैसे भोले-भाले नहीं हैं। हम तो हैं 'जैसोंके साथ तैसे।'

ये तो मैंने सत्याग्रही गालियोंके सौम्य प्रयोग करके दिखाये। पूरी-पूरी गालियाँ तो खुद मैं भी नहीं जानता। मैं तो प्रेमाग्रही हूँ। यदि प्रेममूर्ति होता तो गोपियोंकी तरह गालियाँ लिख देता। कृष्णको "माखन-चोर" और "लुटेरा" आदि विशेषणोंसे गोपियाँ ही सम्बोधित कर सकती हैं। नरसिंह मेहता तो कृष्ण-जैसे अखण्ड ब्रह्मचारीको

१. अब्बास तैयबजी।

व्यभिचारी कहता है और कृष्ण उसकी गालियाँ खाकर उसकी ओरसे दहेज[1] देनेका इन्तजाम करते हैं।

यह सब किस तरह होता होगा — यह बात शुकदेव-जैसे आजन्म ब्रह्मचारी ही जान सकते हैं। गुजरातके आधुनिक इतिहासमें तो एक विशेषण "प्याज चोर" है, जिसका प्रयोग मैंने श्री मोहनलाल पण्ड्याके लिए किया है। वह गोपियोंकी गालियोंसे कुछ मिलता-जुलता है। मैं पाठकोंको यह बात बता ही दूँ कि सत्याग्रही गालियोंकी सूची माँगनेवाले सज्जन भावनगरके ही हैं। मैं आशा करता हूँ कि मैंने गालियोंके जो नमूने पेश किये हैं उनके अतिरिक्त गालियाँ वे खुद बना लेंगे। यदि भावनगरके निवासी यह सबक सीख लें तो मुझे निश्चय है कि वे अब भी भावनगरमें बिना शर्त काठियावाड़ राजकीय परिषद् कर सकते हैं। परन्तु

"सतनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने।"[2]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६६. "एक मुस्लिम"

किसी भाईने "एक मुस्लिम" के नामसे वीसनगरके हिन्दू-मुस्लिम फसादके सम्बन्धमें एक गुमनाम पत्र भेजा है। इसके कुछ तथ्य प्रकाशित करने योग्य हो सकते हैं लेकिन चूँकि मैं गुमनाम पत्रोंको प्रोत्साहन नहीं देना चाहता और गुमनाम पत्रमें दिये गये तथ्योंकी सचाईके बारेमें सदा सन्देह रहता है; इसलिए मैं इस पत्रके विवरणको प्रकाशित नहीं कर सकता। यदि ये भाई यह चाहते हों कि उनका भेजा हुआ विवरण प्रकाशित किया जाये तो उन्हें ऐसा पत्र, जिसके तथ्य प्रमाणित किये जा सकें फिर लिख भेजना चाहिए, क्योंकि उनका गुमनाम पत्र फाड़ दिया गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

१. पुत्रीके पुत्र-प्रसवके अवसरपर नरसिंह मेहताके पास दामाद-पक्षको भेंट देनेके लिए कुछ भी नहीं था। इस परम्पराको उनकी ओरसे स्वयं कृष्णने पूरा किया।

२. अठारहवीं सदीके गुजराती कवि प्रीतमदासके गीतकी प्रथम पंक्तिका; रूपान्तर।

६७. काठियावाड़ राजपूत परिषद्[1]

काठियावाड़में राजपूत परिषद् होनेवाली है। मेरी उसमें जानेकी बड़ी इच्छा है; परन्तु यह सम्भव नहीं होगा।

काठियावाड़ शूरवीरोंकी भूमि थी। राजपूतोंकी बहादुरी संसारमें प्रसिद्ध है। परन्तु प्राचीन बहादुरीकी स्तुतिसे आज राजपूत बहादुर नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंने ब्रह्मज्ञान छोड़ा, राजपूतोंने रक्षा-धर्म छोड़कर वणिक वृत्ति स्वीकार की और वणिक दास बन गये। तब यदि शूद्र सेवक न रहें तो इसमें उन्हें कौन दोष दे सकता है? चारों वर्णोंके पतित होनेपर उनमें से एक पाँचवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ — वह अस्पृश्य कहलाया। पाँचवें वर्णको उत्पन्न करके उसे दबाकर चारों वर्ण खुद भी दबे और पतित हुए।

ऐसी कठिन दशासे हिन्दुओंका उद्धार कौन करेगा? यदि हिन्दुओंकी रक्षा न हो तो मुसलमानोंकी रक्षा भी नहीं हो सकती। बाईस करोड़का पतन हो तो सात करोड़ नहीं टिक सकते। जब रेलगाड़ी चलती हो तब हम नजदीक नहीं खड़े रह सकते; उसका तीव्र वेग हमें घसीट लेगा।

अतः हिन्दुस्तानको आजाद करनेका उपाय हिन्दुओंकी उन्नति करना है। हिन्दुओंकी उन्नति शुद्ध रूपसे धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान बच सकता है। यदि हिन्दू पश्चिमके पशुबलका अनुकरण करने लगेंगे तो खुद भी गिरेंगे और दूसरोंको भी गिरायेंगे।

इस पतित हिन्दू-समाजका उद्धार कौन कर सकता है? भयभीत लोगोंको निर्भय कौन बना सकता है? यह धर्म तो क्षत्रियोंका है। अतः यदि राजपूत-परिषद् अपना कर्त्तव्य समझने और उसका पालन करनेकी इच्छा करे तो उसे अपने धर्मका विचार करना पड़ेगा।

रक्षा करनेके लिए तलवारकी जरूरत नहीं है। तलवारका जमाना चला गया अथवा शीघ्र ही चला जायेगा। संसारने तलवारका अनुभव बहुत कर लिया। वह अब तलवारसे घबड़ा गया है। पश्चिम भी तलवारसे ऊब गया जान पड़ता है। जो मारकर रक्षा करता है वह क्षत्रिय नहीं, बल्कि जो मरकर रक्षा करता है वही क्षत्रिय है। जो भाग खड़ा हो वह बहादुर नहीं है, बल्कि जो छाती खोलकर खड़ा रहे और प्रहार किये बिना प्रहार सहे वही क्षत्रिय है।

परन्तु थोड़ी देरके लिए मान लें कि तलवारकी आवश्यकता है; तो इससे भी क्या? रामने तलवार चलाई; किन्तु वे पहले चौदह साल बनमें तपस्या करके निर्मल हो चुके थे। पाण्डवोंने भी वनवास भोगा था। अर्जुनको इन्द्रके ही पास जाकर दिव्य अस्त्र प्राप्त करने पड़े थे। शस्त्रबलसे पहले तपोबलकी आवश्यकता होती है। यदि तपोबल न होगा तो यादवी (गृहयुद्ध) मच जायेगी और जिस प्रकार यादव अपने ही शस्त्रोंसे कट मरे उसी प्रकार हमारे शस्त्र हमारा ही संहार कर डालेंगे।

१. यह शायद जून, १९२४ में हुई थी। देखिए "परदा और प्रतिज्ञा", २२-६-१९२४।

अतः राजपूत परिषद्का प्रथम कर्त्तव्य आत्मोन्नति है। राजपूत अपने हकोंकी बात तो करेंगे ही; परन्तु वह अपने कर्त्तव्यकी बात पहले करें। वे व्यसनोंको छोड़ें, सादगी ग्रहण करें, गरीबसे-गरीब काठियावाड़ीको पहचानें, उसके दुःखमें शरीक हों और उसकी सेवा करें। उनके सेवा करनेके इस हकको उनसे कोई नहीं छीन सकता। यदि काठियावाड़के किसी भी मनुष्यको काठियावाड़ छोड़ना पड़े तो राजपूतोंको लज्जित होना चाहिए। जहाँ चरखा है, पींजन है, करघा है, वहाँ आजीविका तो है ही। काठियावाड़ी काठियावाड़की अमृत-जैसी वायुको छोड़कर बम्बईकी दूषित वायुमें क्यों जायें? इसका जवाब दूसरे काठियावाड़ियोंके पहले राजपूतोंको देना चाहिए। यह लांछन काठियावाड़के राजाओंपर ही है। यदि काठियावाड़के राजा प्रजाके हितका ही विचार करें तो काठियावाड़की प्रजाको यह देश-निकाला क्यों भोगना पड़े? राजपूत परिषद्में राजा लोग तो नहीं होंगे; परन्तु यदि राजपूत चाहें तो राजाओंको भी यह बात समझनी पड़ेगी। यह जमाना लोकतन्त्रका है। अतः प्रजाजन जैसे होंगे वैसा ही राजाको होना और रहना पड़ेगा। राजपूत जन-जागृतिमें खासी सहायता दे सकते हैं।

यदि परिषद्के सदस्य दूसरोंके ऐब बतानेके बदले अपने ऐब दूर करनेमें और अधिक समय दें तो वे दूसरोंको भी सन्मार्ग दिखा सकेंगे। आजकल हम अपने कष्टोंके लिए दूसरोंको दोष देते हैं। हम भूल जाते हैं अथवा भूल जाना चाहते हैं कि अपने कष्टोंके लिए खुद हम ही जिम्मेदार हैं। यदि जुल्मको बरदाश्त करनेवाले ही न हों तो जालिम क्या करेगा? जबतक हम अधीन हो जानेकी कमजोरीको कायम रखेंगे तबतक अधीन करनेवाले तो मिलते ही रहेंगे। हमारा अधीन करनेवालोंको गालियाँ देना आसान परन्तु व्यर्थका उद्यम है। अपनी कमजोरियोंको खोजकर दूर करना कठिन तो है, परन्तु फलदायक तो यही है। इस कमजोरीको दूर करनेका उपाय हमारे ही हाथमें है, अतः उसे हमसे कोई नही छीन सकता।

राजपूत परिषद्के सदस्य इन विचारोंको प्रथम स्थान देकर आत्म-निरीक्षण करें, उनसे मेरी यही प्रार्थना है।

मैं अन्तमें उन्हें एक अनुभवसिद्ध बात बताये देता हूँ। वे भाषणोंसे और भाषण करनेवालोंसे सावधान रहें। उनसे दूर रहना अच्छा है। यदि वे चुपचाप काम करनेका तरीका अख्तियार करेंगे तो काम सुधरेगा। भूखके दुःखोंका केवल रोना रोनेवाला मनुष्य किसी दूसरेकी भूखको शान्त नहीं कर सकता। परन्तु यदि एक जन्मतः गूंगा साधु पुरुष भूखेके पास एक मुट्ठी ज्वार-बाजरा ले जायेगा तो उससे भूखे आदमीकी आँखोंमें जान आ जायेगी, उसके चेहरेपर लाली झलकने लगेगी और उसके ओठोंपर मुसकान नजर आयेगी। उसकी आत्मा उस गूंगे आदमीको दुआ देगी। ईश्वर हमें व्याख्यानोंके द्वारा शिक्षा नहीं देता। वह तो सदा कर्मरत रहता है। जब हम सो जाते हैं तब भी वह जागता रहता है। उसे काम छोड़कर बोलनेका समय ही नही रहता। राजपूत केवल काम करके ही काठियावाड़के दूसरे वाचाल, राज-नीतिपटु कार्यकर्त्ताओंको पदार्थपाठ पढ़ायें — यही उनसे मेरा निवेदन है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६८. वसन्त विजय

कविने[1] पाण्डुको मारकर तथा माद्रीको चितामें जलाकर वसन्तकी विजयका गान गाया है। आनन्दशंकरभाईने[2] 'वसन्त'के चैत्रमासके अंकमें कुछ इसी तरहका हिंसक विजय-गान गानेका प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न आनन्दशंकरभाईने मिलके कपड़ेके सम्बन्धमें मेरे कुछ विचारोंके बारेमें कल्पना दौड़ाकर किया है। यदि इसमें उन्हें सफलता मिल गई तो बेचारी खादी कहींकी नहीं रहेगी। इसलिए हम ऐसी हिंसक विजयको रोकना अपना धर्म समझते हैं।

पाठक जानते हैं कि मैं कदाचित् ही किसी पत्र अथवा व्यक्तिकी टीका करता हूँ। मुझे इस तरहकी टीका मिथ्या जान पड़ती है और उससे व्यर्थ वाद-विवाद बढ़ता है तथा कभी-कभी द्वेषभाव भी उत्पन्न होता है। मैं आनन्दशंकरभाईके लेखोंके सम्बन्धमें निर्भय रहता हूँ। उनके और मेरे बीच मतभेद हो सकता है लेकिन गलतफ़हमी नहीं हो सकती। टिप्पणियाँ लिखते समय एक साथीने मुझे 'वसन्त' की उक्त टिप्पणी दिखाई। इसलिए मैं इसका उत्तर देनेका अपना लोभ-संवरण नहीं कर सकता। लेकिन इससे पाठक यह न समझें कि 'वसन्त' से हमेशा ऐसी नोंक-झोंक चलती रहेगी। मेरा कर्त्तव्य अपने विचारोंको जनताके सामने रखना और उत्पन्न शंकाओंका परोक्ष रूपसे समाधान करना है। मैं अपने आपको सदा सबसे पराजित हुआ ही मानता हूँ। मुझे लोगोंको तर्कसे भी समझानेका आग्रह कभी नहीं रहा और मैंने अनेक बार अनुभव किया है कि अधूरे मनुष्यके अधूरे विचारोंको बेचारी अधूरी भाषा पूरी तरह कैसे व्यक्त कर सकती है। फिर यदि अपूर्णताकी इस त्रिपुटीमें पाठकका उतावलापन और विरोध भी आ मिलें तो पाठककी सहज समझनेकी शक्ति और भी कम हो जाती है। ऐसी स्थितिमें कम बोलना और कार्यको ही अपना प्रभाव करने देना उचित होता है। मैं अपनी इस मान्यताके कारण वाद-विवादमें नहीं पड़ता और इसीलिए मुझे ज्यादा अखबार पढ़नेकी जरूरत भी नहीं रहती।

'वसन्त' की यह टिप्पणी ही मेरे इस कथनका सुन्दर उदाहरण है। यदि आनन्द-शंकरभाई मेरे विचारोंको पूरी तरह समझ सके होते तो उन्हें कुछ भी लिखनेकी जरूरत न रहती अथवा यदि रहती तो भी वे खादीके एकदेशीय प्रचारका सहर्ष स्वागत करते और इस तरह मेरे और गुजरातके कार्य एवं स्वराज्यके मार्गको सरल करते। लेकिन वे ऐसा कैसे समझ सकते हैं? मैंने इस सम्बन्धमें आगे और पीछे क्या लिखा है, इसे आनन्दशंकरभाई अथवा कोई भी क्यों पढ़े? जो कुछ पढ़ा अथवा देखा उसीके आधारपर अपना निर्णय दे डाला। मैं इस स्थितिको जाननेके बावजूद लिखता जा रहा हूँ, इसमें दोष मेरा ही है। अगर किसीको कुछ लिखना ही हो तो

१. मणिशंकर भट्टकी "वसन्त विजय" कविता महाभारतकी कथाके आधारपर लिखी गई थी।
२. आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव।

ऐसी भाषामें लिखना चाहिए जिसका अनर्थ न हो सके। लेकिन जिसे ऐसी भाषा प्राप्त है उसे क्या कुछ लिखनेकी जरूरत रह जाती है? अपूर्ण मनुष्य ही लिखता है। इसलिए हमें एक दूसरेकी अपूर्णताको सहन करना ही चाहिए। यदि हम उसे दूर करनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा केवल मिठासको ही बनाये रखें तो यद्यपि हम पूर्ण तो न बन पायेंगे तथापि अपनी अपूर्णताको कम अवश्य कर सकेंगे।

पाठकोंके लिए और मेरे लिए यह सुविधाजनक होगा कि मैं आनन्दशंकरभाईकी टीकाका उत्तर देनेकी अपेक्षा अपने विचारोंको ही एक बार फिर लिख दूं। मेरे विचार निम्नलिखित हैं:

१. मुझे मिलोंके वस्त्र-उद्योगसे द्वेष नहीं है, किन्तु मुझे उससे राग भी नहीं है।

२. अगर कपड़ेकी मिलें न हों तो भी हिन्दुस्तानकी जरूरतका कपड़ा चरखेसे सूत कातकर और हाथ-करघेसे बुनकर तैयार किया जा सकता है। इसकी पुष्टिके लिए आवश्यक प्रमाण मौजूद हैं।

३. मिलोंके कपड़ेके उद्योगको उत्तेजन देनेकी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि उसको हानिका अन्देशा नहीं है।

४. हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोंके लिए खेतीके बाद एक ही घरेलू धन्धा है और वह है कातने-बुननेका।

५. खादीकी प्रथा नई है। उसे अभी स्थायी स्थान नहीं मिला है और उसे विदेशी कपड़े और मिलके कपड़ोंके मुकाबलेमें अपना मार्ग बनाना है।

६. आधुनिक प्रवृत्ति जनताके बहुत थोड़ेसे भागमें ही फैल पाई है। उसे भी अगर मिलके कपड़ोंका प्रयोग करनेकी छूट हो तो खादी कौन और कब पहनेगा? खादीका थोड़ा-बहुत प्रचार उसी हालतमें सम्भव है जब यह छोटा-सा समुदाय खादी पहनना अपना धर्म समझे और आग्रहपूर्वक उसे अंगीकार करे।

७. विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार आवश्यक है। विदेशी कपड़ेसे देशी मिलोंको हानि पहुँचेगी। हिन्दुस्तान आज ही खादीमय हो जायेगा, ऐसा शुभ चिह्न मुझे दिखाई नहीं देता, इसलिए देशी मिलके कपड़ेके लिए पर्याप्त स्थान है। मिलके कपड़ेको खादीसे नहीं विदेशी कपड़ेसे खतरा है। अतः मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि मिलके वस्त्र-उद्योग-को इस भयसे मुक्त करनेकी खातिर विदेशी कपड़ेपर इतना आयात-कर लगा दिया जाये जितनेसे देशी मिलके वस्त्र-उद्योगकी रक्षा हो सके।

८. चरखा और हथौड़ा भी यन्त्र हैं, मैं ऐसा मानता हूँ। मैंने सिद्धान्त रूपमें बाह्य यन्त्रकी अनावश्यकताको माना है और आज भी मानता हूँ। किन्तु साथ ही मेरी मान्यता यह भी है कि बाह्य वस्तुओंके संग्रहके सम्बन्धमें संयम बरतना चाहिए। पश्चिमकी मान्यता इसके विरुद्ध है; अर्थात् उसके विचारानुसार यन्त्र जितने ज्यादा हों, उन्नति भी उतनी ही ज्यादा होगी। यन्त्रोंको स्थान तो दोनों सिद्धान्तवादी देते हैं। प्राचीन सभ्यता इन्हें अनिवार्य समझकर गौण स्थान देती है; किन्तु आधुनिक सभ्यता उनको वांछनीय समझकर उनका स्वागत करती है।

९. इतिहाससे यह प्रमाणित नहीं होता कि सस्ते और बढ़िया विदेशी कपड़ेके सुलभ होनेसे खादीका नाश हुआ। अच्छी खादीसे विदेशी कपड़ा आज भी होड़ नहीं

कर सकता। ढाकाकी शबनम मलमल तो जगतसे लुप्त ही हो गई। विदेशी कपड़ा पहले-पहल जब यहाँ आया तब वह सस्ता भी नहीं था। इतिहास तो यह बताता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनीने कातने और बुननेके उद्योगोंको जानबूझकर नष्ट किया और अनेक प्रकारके संरक्षणोंको प्राप्त करके हमें विदेशी कपड़ा पहननेके लिए विवश कर दिया। मैंने इस इतिहासको अपने अज्ञानके कारण गढ़ नहीं लिया है बल्कि मैंने इसे रमेशचन्द्र दत्तके[1] ज्ञान-भंडारसे प्राप्त किया है। इन तथ्योंको स्वीकार करनेसे आजतक किसीने इनकार किया हो — यह मैंने नहीं देखा। यदि मेरी इस मान्यतामें कोई भूल हो तो मैं उसे अवश्य सुधार लूँगा।

१०. खादीकी शक्ति अतुलनीय है। उसे बढ़ानेके लिए खादीका मिलोंके कपड़ेसे होड़ करना जरूरी नहीं है। वह तो निरन्तर बढ़ ही रही है। जो व्यक्ति इस बातकी परीक्षा करना चाहे उसे चाहिए कि वह चार वर्ष पहले बननेवाली थोड़ी-सी खादीकी तुलना आज जो बारीक खादी मिलती है उससे करे। दो वर्षकी कैद भुगतनेके बाद जेलसे बाहर आनेपर खादीमें होनेवाला परिवर्तन मुझे आश्चर्यजनक लगा। आज खादी घर-घर तैयार होती है। उसके लिए बड़े-बड़े साधनोंकी भी जरूरत नहीं है और जबतक संसारमें सुरुचि और कलाप्रियता है तबतक खादीके प्रकारों और नमूनोंमें उन्नति होती ही रहेगी। मिलोंके कपड़ेका मोह ही उसके मार्गमें बाधक है। इस मोहको दूर करना असहयोगी-सहयोगी, स्वराज्यवादी-अस्वराज्यवादी, स्त्री-पुरुष और ज्ञानी-अज्ञानी — सभीका धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६९. टिप्पणियाँ

मुसाफिरोंकी गन्दी आदतें

रेलके तीसरे दरजेमें सफर करनेवाले एक महाशय लिखते हैं कि मुसाफिरोंकी बुरी आदतोंके कारण रेलके तीसरे दरजेकी मुसाफिरी असह्य हो गई है। इस दुःखसे बचनेके लिए एक छोटी-सी झाड़ू और एक ढक्कनदार थूकदानी साथ रखनी चाहिए। बुहारीसे डिब्बेको साफ करते रहें और यदि कोई अन्दर थूकने लगे तो उसके मुँहसे थूकदानी लगा दें। ऐसा करनेसे यह दुःख दूर हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि जिन्हें सफाई पसन्द है उन्हें तो ऐसी गन्दगी असह्य होती है। फिर भी तीसरे दर्जेमें सफर किये बिना हमारा छुटकारा नहीं। जब मैं तीसरे दर्जेमें ही सफर करता था तब मैंने पत्रिकाएँ प्रकाशित की थीं और उन्हें यात्रियोंमें बँटवाता भी था।[2] फिर मेरे काममें परिवर्तन हो गया; और मेरा पत्रि-

१. (१८४८-१९०९); भारतीय शासनके सदस्य, इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया सिन्स द एडवेन्ट ऑफ द ईस्ट इंडिया कम्पनीके लेखक; १८९९ की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. ये १९१६-१७ में गुजरातमें बांटी गई थीं; देखिए खण्ड १३, पृष्ठ २८७।

काएँ बाँटना बन्द हो गया। इसके बाद मेरा स्वास्थ्य गिर गया, अतः मेरा तीसरे दर्जेमें सफर करनेका सुख समाप्त हो गया और उसके साथ-साथ उसका दुःख भी। परन्तु उसकी मीठी याद मुझे अभी बनी हुई है और मैं उसे फिर ताजी करनेकी उम्मीद रखता हूँ।

यह आवश्यक है कि हरएक स्वयंसेवक पत्रिकाएँ बाँटे और पढ़कर सुनाये। उसके साथ ही झाड़ूका प्रयोग भी करना चाहिए। थूकदानीको मुँहसे लगा देनेका काम कठिन है। इसमें मार खानी पड़ सकती है और फिर भी सम्भव है कि मुसाफिर उसमें थूकनेसे इनकार कर दे। झाड़ूका प्रयोग आवश्यक है। स्वयंसेवक मुसाफिरोंको डिब्बेमें कूड़ा-कचरा न डालनेके लिए भी समझायें। यदि वहाँ फिर भी कूड़ा-कचरा हो जाये तो वे उसे झाड़ूसे प्रेमपूर्वक साफ कर दें। थूकदानीके इस्तेमालसे एक तरहकी गन्दगीकी जगह दूसरी तरहकी गन्दगी फैलनेका अन्देशा है। थूकदानी हर दफा थूकनेके बाद ठीक तरहसे साफ की जानी चाहिए। थूकदानी भी ऐसी हो जिसके भीतर जोड़ न हो, जो जंग न खाये और आकारमें बड़ी हो। मैं तो बहुत-सा कागज साथ रखता था। जहाँ किसीने थूका हो वहाँ कागजसे साफ करनेसे एक तो हाथ खराब नहीं होता और दूसरे उस जगहकी सफाई भी अच्छी तरह हो जाती है। फिर यदि हाथ धोना चाहें तो धो भी सकते हैं। ऐसा करनेसे दूसरे थूकनेवाले शर्मिन्दा होते हैं और कम थूकते हैं। खेदकी बात तो यह है कि स्वयंसेवक स्वयं सलीका नहीं बरतते और सदा सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते। हम लोगोंमें दूसरोंकी सुविधाका खयाल बहुत ही कम दिखाई देता है। इसीलिए रेलमें, जहाजमें, हम जहाँ भी जायें वहाँ, हमें बेहद गन्दगी दिखाई देती है। यह बात तो तभी सुधर सकती है जब हमें बचपनसे ही सफाई-सुथराईके नियमोंकी शिक्षा दी जाये और हम यह समझें कि उनका पालन किया ही जाना चाहिए। पाठकोंको शायद यह मालूम न होगा कि रेलके डिब्बोंमें इस तरह गन्दगी करना रेलके कानूनके अनुसार अपराध है। परन्तु इसके लिए किसीपर मुकदमा नहीं चलाया जाता, क्योंकि जुर्म करनेवालोंकी संख्या बहुत है और न करनेवालोंकी बहुत कम। इसीसे यह कहा जाता है कि जिस कानूनको बहुसंख्यक लोग मानें उसीको थोड़े लोगोंके विरोधके करनेपर भी मनवाया जा सकता है। इसका अर्थ यही है कि कानूनके लिए अनुकूल वातावरणकी आवश्यकता है। विशेष अर्थ यह हुआ कि बहुतेरे कानून निरर्थक होते हैं। वातावरण तैयार हो जानेके बाद अल्पसंख्यक खुद-ब-खुद रिवाजको देखकर उसके अनुसार चलने लगते हैं।

"लोकप्रिय"का अर्थ

एक शिक्षक पत्रमें लिखते हैं:[1]

"लोकप्रिय" का अर्थ तो जो लेखकने किया है वही मैंने अपने लेखमें[2] माना है। मैंने सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए अपना विचार प्रकट किया है और उसके अनुसार

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४०३-५।

तो जो गाँव पाठशालाकी सहायता न करे हम वहाँ पाठशाला न रखें और यदि रखें तो उसे "लोकप्रिय" न कहें। नवीन हलचलके उत्साहके कारण हमें ऐसा तो लग सकता है कि जगह-जगह पाठशालाएँ कायम करना उचित है; और समाज रुपया दे तो हम उन्हें क्यों न चलाएँ। फिर भी म ऐसी प्रवृत्तिको निर्दोष नहीं मानता। इसीलिए कितनी ही ईसाई पाठशालाएँ उनके उद्देश्यको देखते हुए निरर्थक मालूम होती हैं। हम देखते है कि एक जगह एकत्र किये गये धनका उपयोग किसी दूरस्थ स्थानपर किया जाता है और इसी कारण उसका दुरुपयोग भी होता है। फिर इस प्रकार हम जनताके जिस वर्गकी ऐसी सेवा करते हैं वह अपंग हो जाता है; अतः हम जिस हदतक पूर्वोक्त सिद्धान्तके अनुसार चलेंगे, मै मानता हूँ कि हम उसी हदतक ठीक रास्तेपर जायेंगे। इस न्यायके अनुसार स्वयं जिस गाँवके लोग अपने बाल-बच्चे न भेजें और रुपया भी न दें, उस गाँवमें पाठशाला खोलनेमें खर्च करना फिजूल हो सकता है।

लेकिन इसपर कोई यह कह उठेगा कि इस न्यायके अनुसार तो अन्त्यजोंके लिए एक भी पाठशाला नहीं खोली जा सकेगी, क्योंकि अभी तो अन्त्यजोंमें हमारा काम "लोकप्रिय" नहीं है। फिर कितने ही गाँवोंमें तो सारा हिन्दू-समाज इसका विरोधी है; यदि विरोधी नहीं तो उदासीन अवश्य है। इससे यही जाहिर होता है कि सिद्धान्त एकांगी नहीं होते। कितने ही सिद्धान्तोंका, जिनमें से कुछ तो परस्पर विरोधी भी होते हैं, एक साथ प्रयोग करना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि सभी सिद्धान्तोंको दृष्टिमें रखकर किया हुआ काम अधिकसे-अधिक फलदायी साबित होता है।

अन्त्यजोंके तो हमने पंख ही काट डाले हैं। हमने उनकी भावनाओंको कुचल दिया है। अतः उनके बीच बहुत-सा काम तो हमें प्रायश्चित्त रूपमें ही करना पड़ेगा। उनके लिए मदरसे, कुएँ और मन्दिर हमें ही बनाने हैं। यह हमारे ऊपर उनका कर्ज है। फिर यह काम लोकप्रिय नहीं हो सकता। जिन्हें यह प्रिय हो वे उसके लिए रुपया दें और फलकी आशा न रखकर काम करें। हमें यहाँ "लोकप्रिय" का अर्थ दूसरी तरह ही करना चाहिए और ऐसी उलझनके समय ही धर्म-संकट उपस्थित होता है। ऐसे अवसरोंपर ही भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका समन्वय करके कार्य करनेमें हमारी विवेक दृष्टिकी परीक्षा होती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

७०. नित्य कताई

एक जैन भाईने मुझे लिखा है कि उनके घरकी स्त्रियोंने चरखा चलाना छोड़ दिया है क्योंकि कुछ मुनियोंने जैन धर्ममें चरखा चलानेको निषिद्ध बताया है। उन्होंने कहा कि चरखा चलानेसे वायुमें विद्यमान सूक्ष्म कीटाणुओंकी हत्या होती है। यदि निम्न गीत[1] तीन सौ वर्ष पुराना हो तो यह गीत स्वतः इन मुनियोंको उनकी आपत्तिका उत्तर दे देता है। इसके अतिरिक्त सामान्य विवेक तो इन मुनियोंकी बातको स्वीकार ही नहीं करेगा। हिंसा तो प्रत्येक कार्यमें होती है। शरीरकी प्रत्येक क्रियामें हिंसा है। खाने, पीने और पहननेमें भी हिंसा है। फिर जो उद्योग कपड़ा पहननेके लिए आवश्यक है उसके किये बिना किस तरह काम चल सकता है। यदि दूसरे लोग पानी भरते, खाना पकाते, सूत कातते और कपड़ा बुनते हैं तथा हम उनके कार्योंके फलका उपभोग करते हैं तो हम भी उस पापके भागी बनते हैं। यह स्वाभाविक है। इसलिए यदि इन तीनों कार्योंको हम अपने हाथोंसे करें तो हम उसके विस्तारपर अंकुश रख सकते हैं और पापपुंजको कम कर सकते हैं। अपने हाथसे पानी भरनेवाला मनुष्य उसका उपयोग विचारपूर्वक ही करेगा। लेकिन नलके पानीको उपयोगमें लाते समय कौन संकोच करता है? यही बात समस्त उद्यमोंपर लागू होती है। मैं तो चरखा चलानेकी प्रवृत्तिको हर तरहसे अहिंसा-धर्मकी पोषक प्रवृत्ति मानता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

७१. विविध विषयोंपर

एक पारसी भाईने कलकत्तासे "भैया" शब्दके प्रयोगके सम्बन्धमें निम्न पत्र लिखा है:[2]

सौभाग्यसे एक करोड़ गुजरातियोंमें से सभी इस "भैया" शब्दका प्रयोग नहीं करते; मुख्यतः बम्बईमें रहनेवाले अथवा बम्बई-निवासी गुजराती ही इसका प्रयोग करते हैं। अतः उत्तर भारतके भाइयोंकी भावनाओंको ठेस न पहुँचानेके विचारसे इतनी छोटी-सी संख्याके ध्यानमें "भैया" शब्दके दुरुपयोगकी बात लाना कठिन नहीं होना चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें एक ऐसी स्त्रीकी कथा आती है जिसने अपने पतिके आजीविका अर्जित करनेमें असमर्थ होनेपर चरखा चलाकर अपने परिवारको सुखी और समृद्ध बनाया था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। नवजीवनके १७-५-१९२४ के अंकमें "भैया" शब्दके क्षोमकारक प्रयोगपर एक लेख था। यह पत्र इसी प्रयोगके स्पष्टीकरणमें लिखा गया था। देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६६।

खादीका विक्रय

"खादी समाचार विभाग" ने दूसरे वर्षका छठा अंक प्रकाशित कर दिया है। इसमें कुछ जानने योग्य बातें हैं। इसको पढ़नेसे पता चलता है कि उत्कल-बम्बई खादी समिति, केरल और मराठी मध्यप्रान्तमें "गांधी मास"[1] में कमसे-कम २,६०,७८९ रुपयेकी खादी बेची गई। इसमें लोगोंने निजी रूपसे जो खादी खरीदी उनके आँकड़े शामिल नहीं हैं। इसलिए कुल मिलाकर जितनी बिक्री हुई है उसके आँकड़े उक्त आँकड़ोंसे ज्यादा होने चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें उक्त आँकड़े प्रकाशित करनेके समयतक कुछ अन्य प्रान्तोंके आँकड़े नहीं मिले थे। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त हिन्दुस्तानमें खादीकी बहुत बिक्री हुई होगी। तथापि जहाँ हमारा उद्देश्य प्रतिवर्ष कमसे-कम साठ करोड़ रुपयेकी खादी पैदा करना है वहाँ केवल चार अथवा पाँच लाखकी खादीका उत्पादन क्या अर्थ रखता है?

रुईका निर्यात

इसी पत्रिकामें यह समाचार छपा है कि रुईकी २९,८१,३६१ गाँठें सन् १९२१-२२ में और ३३,६२,६०१ गाँठें सन् १९२२-२३ में विदेशोंको निर्यात की गई थीं। इतनी गाँठोंके मूल्यका अधिकांश भाग तो हिन्दुस्तानके किसानोंको मिला, लेकिन उनके पास समय और आवश्यक कला होनेके बावजूद रुईसे कपड़ा बनाये जानेकी स्थिति तक जितनी भी क्रियाएँ हैं, उनकी मजदूरी नहीं मिली, इतना ही नहीं बल्कि उस मजदूरीके बराबरकी रकम देशके बाहर चली गई। तात्पर्य यह है कि यदि उन्हें एक सेर रुईका एक रुपया मिला तो उन्होंने उतनी ही रुईको कपड़ेके रूपमें फिर खरीदते समय कदाचित् रुपयेमें से चौदह आने विदेशोंको वापस दे दिये। ऐसा उलटा व्यापार केवल हिन्दुस्तानके लोग ही करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

१. गांधीजीके जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें आयोजित।

७४. पत्र : वा० गो० देसाईको

वैशाख वदी १० [२८ मई, १९२४]

भाईश्री वालजी,

अभयचन्दभाईका पत्र आया। इसमें उन्होंने लिखा है कि वे जिस नौकरीके लिए इच्छुक हैं उसके मिलनेकी बहुत सम्भावना है। मैं देखता हूँ कि "रेंटियानुं संगीत[1]"में तुम्हारी टिप्पणी रह गई। इससे यह बात मेरी समझमें आ गई है कि प्रूफ स्वयं देखनेका तुम्हारा आग्रह कितना ठीक है। साथ ही साथ मुझे बेचारे स्वामी-के[2] कन्धोंपर कामका भारी बोझा देखकर तरस भी आता है। इस अवसरपर उनके पास उनकी सहायता करनेके लिए महादेव भी नहीं है। परन्तु तुम तो अशुद्धियोंकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते ही रहो। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम अशुद्धियोंकी सूची प्रति सप्ताह मेरे पास भेजो ताकि मैं उसे प्रकाशित कर सकूँ। परन्तु तुम्हें यदि ऐसा करना अच्छा न लगे तो उसे मेरे अवलोकनार्थ तो भेजो ही। आज "एक्साईटमेंट" के कारण मुझे ज्वर आ गया है। यहाँ "एक्साईटमेंट" के लिए गुजराती शब्द क्या होगा?

मोहनदासके वन्देमातरम्

वा० गो० देसाई
स्टलिंग कैसिल
शिमला

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. यह लेख २५-५-१९२४ के नवजीवनमें "रेंटियानो स्वाध्याय" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। देखिए "नित्य कताई", २५-५-१९२४।
२. स्वामी आनन्द।

७५. तार: सरलादेवी चौधरानीको[1]

[२९ मई, १९२४ के पूर्व]

नाबालिगोंको निश्चय ही सत्याग्रहमें शामिल नहीं होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, ३१-५-१९२४

७६. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

शनिवार [२९ मई, १९२४ के पूर्व][2]

भाई श्री ५ पण्डितजी,

आपका पत्र मिला।

ऐसी व्यवस्था करें जिससे रामभाऊ अवश्य ही जलवायु परिवर्तन करके स्वस्थ हो जाये।

स्त्रियोंका मासिक धर्मके दिनोंमें अलग बैठना आवश्यक और अनिवार्य धर्म नहीं है। कुमारिकाओंके लिए तो यह अनावश्यक ही है। हाँ, इससे स्वास्थ्यकी रक्षामें कुछ मदद जरूर मिलती है। विवाहित स्त्री उन दिनों विशेषरूपसे अलग रहती है ताकि वह अपने पतिकी पशुवृत्तिसे बच सके। मन्त्र-शक्तिकी दृष्टिसे रजस्वला स्त्रीके स्पर्शका क्या परिणाम होता है, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। इस सम्बन्धमें नाथजीकी[3] बताई विधिसे चलना चाहिए। मुझे किशोरलाल भाईसे[4] मालूम हुआ है कि मन्त्रवान मनुष्यके लिए रजस्वलाके स्पर्शमें दोष तभी होता है जब उसे यह ज्ञान हो कि वह रजस्वला है। अगर मन्त्रवान मनुष्य यह नहीं जानता कि कोई स्त्री रजस्वला है और उसका स्पर्श कर लेता है तो इसका मन्त्रपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २५५) से।
सौजन्य: लक्ष्मीबाई खरे

१. यह तार श्रीमती चौधरानीके उस कथित वक्तव्यके बारेमें भेजा गया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि तारकेश्वर सत्याग्रहमें उनका नाबालिग पुत्र दीपक एक स्वयंसेवककी तरह शामिल होना चाहता है। देखिए "सचिवको हिदायत", २३ मई, १९२४को या इसके पश्चात्।

२. पण्डित नारायण मोरेश्वर खरेने नाथजीसे, जो १९२४ में आश्रममें ठहरे हुए थे [सर्प-] मन्त्र सीखा था। ऐसा लगता है कि गांधीजीने यह पत्र २९ मई, १९२४ को बम्बईसे आश्रममें लौटनेसे पहले लिखा होगा।

३. केदारनाथ कुलकर्णी। एक साधक; ये आश्रममें प्रायः आते थे।

४. किशोरलाल मशरूवाला।

७७. हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार[1]

हिन्दुओंका आरोप

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीकी मार्फत टाँगानीकामें रहनेवाले एक हिन्दू सज्जनने मुझे इस आशयका सन्देश भेजा था कि "गांधीजीसे कह दीजिएगा कि मुलतानमें मुसलमानोंने जो बर्बरता[2] की उसकी जिम्मेवारी आपपर ही है।", मैंने पहले इस सन्देशका उल्लेख इसलिए किया क्योंकि तब मैं इस सबसे बड़े सवालपर लिखनेके लिए तैयार न था। परन्तु तबसे बहुत सारे पत्र मेरे पास आये हैं; जिनमें से कुछ तो विख्यात सज्जनों द्वारा लिखे हुए हैं। इनमें कहा गया है कि मोपलोंकी बर्बरताके लिए भी मैं ही जिम्मेवार हूँ। बल्कि सच तो यह है कि खिलाफत आन्दोलनके समयसे ऐसे जितने भी दंगे हुए जिनमें हिन्दुओंका नुकसान हुआ है या जिनसे उनका नुकसान होनेकी बात कही जाती है, उन सबके लिए मुझे ही जवाबदेह बताया गया है। इनकी दलील कुछ इस प्रकार की है: "आपने हिन्दुओंसे कहा कि खिलाफतके मामलेमें मुसलमानोंका साथ दो। इस मामलेको आपने अपना कहकर उठा लिया, इस कारण इसको इतना महत्व मिल गया जितना अन्यथा कदापि न मिलता। आपकी इस कार्रवाईसे ही मुसलमान जागे और संगठित हो गये। इससे मौलवियोंको ऐसी इज्जत मिली जैसी पहले कभी न मिली थी और अब चूंकि खिलाफतकी समस्या समाप्त हो गई है, इन जाग्रत मुसलमानोंने हिन्दुओंके खिलाफ एक तरहका जेहाद छेड़ दिया है।" मुझपर लगाये गये आरोपका आशय मैंने समझमें आने लायक सीधी-सादी जुबानमें यहाँ रख दिया है। कितने ही पत्रोंमें भद्दी-भद्दी गालियाँ भी दी गई हैं।

यह तो हुई हिन्दुओंके इलजामकी बात।

मुसलमानोंके इलजाम

एक मुसलमान दोस्त लिखते हैं:

> मुसलमान कौम बड़ी भोली-भाली और धर्मनिष्ठ कौम है। इसलिए वह इस भुलावेमें आ गई कि खिलाफत बहुत खतरेमें है और उसकी हिफाजत सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मिली-जुली कोशिशोंसे ही हो सकती है। ये भोले-भाले लोग आपके ओजपूर्ण भाषणोंसे जोशमें आकर सरकारी मदरसों, अदालतों, कौंसिलोंका बहिष्कार करनेमें सबसे पहले आगे आये। अलीगढ़की बहुत ही मशहूर संस्था, जिसे सर सैयद अहमदने अपने जीवन-भरके परिश्रमसे खड़ा किया और जो अपने ढंगकी पहली संस्था थी, बरबाद हो गई। क्या

१. यह लेख बादमें प्रचार-पुस्तिकाके रूपमें भी प्रकाशित हुआ था।

२. सन् १९२३ के मार्च-अप्रैलमें अमृतसर, मुल्तान तथा पंजाबके दूसरे इलाकोंमें जबरदस्त साम्प्रदायिक दंगे हुए थे।

आप हिन्दुओंकी कोई ऐसी संस्था दिखा सकेंगे जो इस कद्र बरबाद हुई हो? मैं ऐसे बीसियों लड़कोंको जानता हूँ जो विश्वविद्यालयकी उपाधि प्राप्त करके अपना और अपनी कौमका गौरव बढ़ा सकते थे; लेकिन उन्हें धर्मके नामपर अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़नेको प्रेरित किया गया। नतीजा यह हुआ कि वे बिलकुल बरबाद हो गये। इसके विपरीत, हिन्दू लड़कोंमें से बहुत कमने स्कूल-कालेज छोड़े और उन्होंने भी जब यह देखा कि आन्दोलन छिन्न-भिन्न हो रहा है तब वे फौरन वापस जाकर भरती हो गये। वकीलोंका भी यही हाल हुआ। उन दिनों आपने दोनों कौमोंमें एक तरहकी एकता कायम कर दी, और सारी दुनियामें शोहरत मचा दी कि यह एकता बहुत ठोस और पक्की है। बेचारे भोलेभाले मुसलमानोंने इस सचको भी सच मान लिया, फल यह हुआ कि अजमेर, लखनऊ, मेरठ, आगरा, सहारनपुर, लाहौर तथा दूसरी जगहोंमें उनके साथ बड़ा नृशंस व्यवहार किया गया। श्री मुहम्मद अली जैसे निहायत आला दरजेके पैदायशी अखबारनवीसको, जिनका गैर मामूली 'कामरेड' अखबार मुसलमान कौमकी इतनी अच्छी खिदमत कर रहा था, आपने अपने पक्षमें कर लिया और अब तो वे गोया हमारी कौमके ही नहीं रहे। आपके हिन्दू अगुआ लोग शुद्धि और संगठनके बहाने मुसलमान कौमको कमजोर बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। फिर आपकी इस अदूरदर्शितासे कि कौंसिलोंमें नहीं जाना चाहिए, मुसलमान कौमको बहुत नुकसान हुआ है; क्योंकि तथाकथित फतवेके कारण कौमके काबिल लोगोंमें से ज्यादातर कौंसिलोंमें नहीं गये। इन तमाम बातोंपर गौर करते हुए क्या आप सच्चे दिलसे यह नहीं महसूस करते कि आप मुसलमानोंको — बेशक चन्द मुसलमानोंको ही — अपने दलमें रखकर मुसलमान कौमका गहरा नुकसान कर रहे हैं?

मैंने यह पत्र पूरा नहीं दिया है लेकिन इस उद्धृत अंगमें मुझपर मुसलमानों द्वारा लगाये गये आरोपका सार आ जाता है।

मैं बेकसूर हूँ

इन दोनों आरोपोंके बारेमें मुझे कहना होगा कि मैं बेकसूर हूँ; इतना ही नहीं मुझे अपने कियेपर तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है। अगर मैं भविष्यद्रष्टा होता और जो-कुछ हुआ है, वह सब पहले ही जान लेता तो भी मैं खिलाफत आन्दोलनमें अवश्य कूदता। यद्यपि दोनों कौमोंके सम्बन्ध आज तनावपूर्ण हैं, फिर भी दोनोंको लाभ तो हुआ ही है। जन-जागरण हमारे प्रशिक्षणका एक आवश्यक अंग था। यह चीज अपने-आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। मैं ऐसी कोई बात न करूँगा जिससे जनतामें जागरणके बजाय फिरसे तन्द्रा आ जाये। अब हमारी बुद्धिमानी इस बातमें है कि हम इस जन-जागरणको उचित दिशा दें। हम आज जो कुछ देख रहे हैं वह दुःखद तो अवश्य है, लेकिन हमें अगर स्वयं अपनेपर भरोसा हो तो इसमें हिम्मत हारनेकी कोई बात

नहीं है। आजका यह तूफान कलकी शान्तिका अग्रदूत ही है और वह शान्ति थकावट और निराशाजनित तन्द्रासे उत्पन्न शान्ति नहीं होगी बल्कि ऐसी शान्ति होगी जो अपनी शक्तिकी प्रतीतिसे उत्पन्न होती है।

लोग मुझसे यह आशा तो नहीं करेंगे कि मैं विभिन्न स्थानोंमें हुए दंगोंके सम्बन्धमें निर्णय दूं। ऐसा निर्णय देनेकी मेरी इच्छा भी नहीं है; इच्छा हो भी तो मेरे पास तथ्य नहीं है।

मोपला लोग

दो शब्द इन तनावके कारणोंके बारेमें भी कहूँगा।

इसमें कोई शक नहीं कि मलाबारकी घटनासे हिन्दुओंका मन क्षुब्ध हो उठा है। तथ्य क्या है, यह कोई नहीं जानता। हिन्दुओंका कहना है कि मोपलोंकी बर्बरताका बयान नहीं किया जा सकता। डा० महमूदने मुझे बताया है कि उनकी ज्यादतियोंके बारेमें तिलका ताड़ बनाया गया है; मोपलोंके पास भी हिन्दुओंके खिलाफ शिकायतके कारण थे और उनका कहना है कि जबरन मुसलमान बनानेका कोई मामला पेश नहीं किया गया; एक पेश किया गया था किन्तु वह प्रमाणित तो नहीं हो सका। अपने निष्कर्षोंमें डा० महमूद कहते हैं कि मेरी बातकी पुष्टि स्वयं साक्षियोंसे होती है। मोपला-उपद्रवके बारेमें दोनों पक्षोंके कथनोंका उल्लेख करके मैंने केवल जनतासे यह कहना चाहा है कि वह भी मेरे इस निष्कर्षसे सहमत हो सके कि असलियतकी तह तक पहुँचना असम्भव है और भविष्यमें हम कैसा आचरण करें, यह तय करनेके लिए इसकी जरूरत भी है।

मुलतान, आदि

मुलतान, सहारनपुर, आगरा, अजमेर आदिके बारेमें यह स्वीकार किया जाता है कि इन स्थानोंमें हिन्दुओंके ही जान-मालका अधिक नुकसान हुआ है। कहते हैं कि पलवलमें वहाँके हिन्दुओंने एक कच्ची मसजिदको पक्का नहीं बनाने दिया। कहा जाता है कि उन्होंने पक्की दीवारका एक हिस्सा गिरा दिया और मुसलमानोंको गाँवके बाहर निकाल दिया। यह भी कहा जाता है कि जबतक मुसलमान यहाँ मसजिद न बनाने और अजान न देनेका वादा न करेंगे तबतक उन्हें गाँवमें नहीं रहने दिया जायेगा। कोई एक सालसे ज्यादा अरसा हो गया यही हालत बनी है। कहा जाता है कि जिन मुसलमानोंको उन्होंने निकाल दिया था वे रोहतकके आसपास झोंपड़ियाँ बनाकर पड़े हुए हैं।

मुझे यह भी बताया गया है कि ब्याड, जिला धारवाड़में मुसलमानोंने मसजिदके सामने बाजा बजानेपर ऐतराज किया, इसपर हिन्दुओंने मसजिदको भ्रष्ट किया, मुसलमानोंको पीटा और उनपर मुकदमे चलवाये।

ये दो मिसालें मैं सिद्ध तथ्योंके रूपमें पेश नहीं कर रहा हूँ; बल्कि महज यह दिखानेके लिए पेश कर रहा हूँ कि मुसलमानोंको भी यह शिकायत है कि हिन्दुओंने हमें बहुत सताया है।

इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि जहाँ मुसलमान लोग साफ तौरपर कमजोर थे और हिन्दुओंका ज्यादा जोर था (जैसा कि वर्षों पूर्व कटारपुर और आरामें था) वहाँ पड़ौसी हिन्दुओंने उनके साथ बड़ी बेरहमीका बरताव किया। बात यह है कि जब खून उबल उठता है और पूर्वग्रहोंका बोलबाला होता है, तब आदमी जानवर बन जाता है और वैसा ही व्यवहार करता है — फिर वह चाहे अपनेको हिन्दू कहता हो या ईसाई या और कुछ।

फसादोंका अड्डा

लेकिन इन फसादोंका अड्डा है पंजाब। मुसलमानोंकी शिकायत है कि फजल हुसेन साहबने डरते-डरते सरकारी नौकरियोंमें मुसलमानोंको भी वाजिब तादादमें रखने की कोशिश की और बस इसी बातपर हिन्दुओंने तूफान बरपा कर दिया। ऊपर मैंने जिस पत्रसे उद्धरण दिया है, उसके लेखक बड़ी कटुताके साथ शिकायत करते हैं कि जहाँ कहीं हिन्दू किसी सरकारी विभागका प्रधान होता है, वहां वह किसी भी मुसलमानको किसी पदपर नहीं आने देता।

इस तरह इस तनावके कारण सिर्फ धार्मिक ही नहीं हैं। मैंने जिन आरोपोंका उल्लेख किया है वे व्यक्तिगत हैं; लेकिन सर्वसाधारणका मानस व्यक्तिगत रायका ही प्रतिबिम्ब होता है।

अहिंसासे ऊब गये

लेकिन इस तनावका तात्कालिक कारण बहुत ही ज्यादा खतरनाक है। मालूम होता है कि सोचने-समझनेवाली जनता अहिंसासे ऊब गई है। वह अभीतक यह नहीं समझ पाई है कि मैंने अहमदाबाद और वीरमगाँवके काण्डोंके बाद, फिर बम्बईके उपद्रवोंके बाद और अन्तमें चौरीचौराके बर्बर कृत्योंके बाद सत्याग्रहको स्थगित क्यों कर दिया। चौरीचौराके बाद तो परिस्थिति असह्य हो गई और अक्लमन्दोंने यह मान लिया कि अब सत्याग्रहको और इसीलिए निकट भविष्यमें स्वराज्यकी भी कोई आशा नहीं बची। अहिंसामें उनका विश्वास सतही था। दो साल पहले एक मुसलमान भाईने मुझसे सच्चे दिलसे कहा था: "मैं आपकी अहिंसामें विश्वास नहीं रखता। मैं तो यही चाहता हूँ कि कमसे-कम मेरे मुसलमान भाई इसे न अपनायें। हिंसा जीवनका नियम है। अहिंसाकी जैसी परिभाषा आप करते हैं, वैसी अहिंसासे अगर स्वराज्य मिलता भी हो तो वह मुझे नहीं चाहिए। मैं तो अपने शत्रुसे अवश्य घृणा करूँगा।" ये भाई बहुत ईमानदार आदमी हैं। मैं इनकी बड़ी इज्जत करता हूँ। मेरे एक दूसरे बहुत बड़े मुसलमान दोस्तके बारेमें भी मुझे ऐसा ही बताया गया है। हो सकता है, वह बात झूठी हो; पर जिन्होंने मुझे बताया है वे तो झूठ नहीं बोलते।

हिन्दू भी विमुख

अहिंसाके प्रति विमुखताकी यह भावना अकेले मुसलमानोंमें ही देखी जाती हो सो बात नहीं। हिन्दू भाइयोंने भी ऐसी ही बातें कहीं हैं और शायद ज्यादा तीखेपनसे कही हैं। चूंकि मैं पूर्ण अहिंसामें विश्वास रखता हूँ और उसकी हिमायत करता हूँ इसलिए

कुछ लोगोंने तो मुझे हिन्दू माननेे तकसे इनकार कर दिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न ईसाई हूँ। मुझसे बड़े असंदिग्ध स्वरमें कहा गया है कि 'भगवद्गीता' का यह अर्थ करना कि उसमें विशुद्ध अहिंसा धर्मका उपदेश किया गया है, 'गीता' के अर्थका अनर्थ करना ही है। मेरे कुछ हिन्दू भाई मुझसे कहते हैं कि अमुक परिस्थितिमें 'भगवद्गीता' ने हिंसाको धर्म बताया है। अभी हालमें ही एक उद्भट विद्वान सज्जन-ने 'गीता' की मेरी व्याख्यापर नाक-भौंह सिकोड़ते हुए कहा कि 'गीता' के बारेमें कुछ टीकाकारोंके इस मतका कोई उचित आधार नही है कि 'गीता' में दैवी और आसुरी शक्तियोंके बीच होनेवाले सनातन संघर्षका चित्रण है और तनिक भी संकोच या दुर्बलता दिखाये बिना अपने आन्तरिक कश्मलको दूर कर देना हमारा कर्त्तव्य बताया गया है।

अहिंसाके खिलाफ इन तमाम विचारोंको इतने विस्तारसे देनेका प्रयोजन यह है कि साम्प्रदायिक समस्याका जो समाधान मैं बताने जा रहा हूँ, लोग अगर उसे समझना चाहते हैं तो इन विचारोंको हृदयंगम कर लेना जरूरी है।

मैं आज अपने चारों ओर जो कुछ देख रहा हूँ, वह तो अहिंसा-प्रसारके विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया ही है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिंसाकी एक जबरदस्त लहर उठी चली आ रही है। हिन्दू-मुस्लिम तनाव अहिंसाके प्रति अरुचिका उग्र रूप है।

इस सवालका विचार करते समय मेरा खयाल ही न रखा जाये। मेरा धर्म तो मेरे और मेरे सिरजनहारके बीचकी बात है। अगर मैं हिन्दू हूँ तो सारे हिन्दू समाजके द्वारा बहिष्कृत हो जानेपर भी मैं हिन्दू ही बना रहूँगा। इतना तो मैं कहता ही रहूँगा कि धर्मोंका पर्यवसान अहिंसामें है।

सीमित अहिंसा

परन्तु मैंने लोगोंके सामने अहिंसाके परमरूपको कभी रखा ही नही — भले ही इसका कारण केवल इतना ही हो कि मैं अपने-आपको इस योग्य नही मानता कि उस प्राचीन सन्देशको संसारके समक्ष रखूं। यद्यपि बुद्धिके धरातलपर मैंने अहिंसाके उस परम स्वरूपको पूरी तरह समझ लिया है और ग्रहण कर लिया है, लेकिन वह अभी मेरे रोम-रोममें भिदा नहीं है। मेरी शक्तिका आधार इतना ही है कि जिस बातको मैंने खुद अपने जीवनमें बार-बार आजमाकर नही देख लिया है उसपर आचरण करनेके लिए दूसरोंसे नही कहता। तो मैं आज अपने देश भाइयोसे अनुरोध करता हूँ कि वे सिर्फ दो उद्देश्योंके लिए अहिंसाको अपने अन्तिम धर्मके रूपमें अपना लें — एक तो विभिन्न जातियोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके नियमनके लिए और दूसरे, स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए। हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों और पारसियोंको अपने आपसी मतभेदोंके निबटारेके लिए हिंसाका सहारा नहीं लेना चाहिए; और हमें स्वराज्य अहिंसात्मक तरीकेसे प्राप्त करना चाहिए। इसे मैं भारतके सामने कमजोरोंके हथियारके तौरपर नहीं, बल्कि बलवानोंके हथियारके तौरपर पेश करनेकी हिम्मत करता हूँ। धर्मके मामलेमें जोर-जबरदस्ती न हो, इसके बारेमें हिन्दू और मुसलमान दोनों बातें तो बहुत करते हैं, लेकिन कोई हिन्दू एक गायकी जान बचानेके

लिए अगर किसी मुसलमानकी जान ले ले तो इसे जबरदस्ती नहीं तो और क्या कहेंगे? यह तो किसी मुसलमानको जबरन हिन्दू बनानेकी कोशिश करना ही हुआ। उसी तरह अगर मुसलमान हिन्दुओंको मसजिदके सामने गाने-बजानेसे जबरदस्ती रोकनेकी कोशिश करें तो यह भी जबरदस्ती नहीं तो और क्या है? खूबी तो इस बातमें है कि शोरगुलके बावजूद आदमी परमात्माकी प्रार्थनामें तल्लीन हो जाये। दूसरे लोग हमारी धार्मिक भावनाओंका खयाल रखें, इसके लिए अगर हम जोर-जबरदस्ती करेंगे तो भावी पीढ़ियाँ हमें अधर्मी और जंगली ही मानेंगी। फिर तीस करोड़ संख्यावाले राष्ट्रका सिर्फ एक लाख अंग्रेजोंको होशमें लानेके लिए हिंसा करनेपर मजबूर हो जाना शर्मकी बात है। उन लोगोंके हृदय-परिवर्तन करने या अगर आपकी मर्जी उन्हें इस देशसे निकाल देनेकी ही हो तो हमें इसके लिए शस्त्र बलकी नहीं, मनोबलकी जरूरत है। अगर हममें यह मनोबल नहीं होगा तो हम शस्त्रबल भी नहीं जुटा पायेंगे और जब हममें मनोबल आ जायेगा तो हम देखेंगे कि शस्त्रबलकी हमें जरूरत ही नहीं है।

इस तरह उपर्युक्त उद्देश्योंके लिए अहिंसा-धर्मको स्वीकार कर लेना हमारे राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए सबसे अधिक स्वाभाविक और परम आवश्यक शर्त है। इसके जरिये हम अपने समाजके संयुक्त शरीरबलको अपेक्षाकृत अच्छे कामोंमें लगाना सीखेंगे। आज तो हम उसे भाई-भाईकी निरर्थक लड़ाईमें, जिसमें दोनों ही दल बिल-कुल टूट जाते हैं, नष्ट किये जा रहे हैं। इसके अलावा, जबतक सम्पूर्ण राष्ट्रका समर्थन प्राप्त न हो, हर शस्त्र-विद्रोह पागलपन ही है और अगर राष्ट्रका पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हो तो असहयोग कार्यक्रमका कोई भी अंग एक बूंद खून बहाये बिना हमें अपने उद्देश्य तक पहुँचा सकता है।

मैं यह नहीं कहता कि चोरों, डाकुओं अथवा विदेशी आक्रमणकारियोंका मुकाबला करनेमें भी आप हिंसासे अलग रहें। परन्तु वहाँ भी हम हिंसासे काम लेनेके अधिक योग्य तभी बन सकते हैं जब आत्मसंयम करना सीखें। जरा-जरा-सी बातपर पिस्तौल तान लेना शक्तिका नहीं, दुर्बलताका लक्षण है। आपसमें लड़ने-झगड़नेसे हिंसा करनेकी शक्ति नहीं बढ़ती; बल्कि वह हमें पौरुषहीनताकी ओर ले जाता है। मेरा अहिंसाका तरीका अपनानेसे शक्तिका ह्रास तो हो ही नहीं सकता; उलटे यदि राष्ट्र चाहे तो उससे खतरेके समय अनुशासित और संगठित हिंसाका प्रयोग करनेमें सफलता मिल सकती है।

सच्चे अहिंसावादी नहीं

जो लोग यह मान रहे हैं कि अहिंसाके प्रशिक्षणसे हम प्रमादी और अकर्मण्य बने जा रहे थे, वे अगर एक क्षण सोचकर देखें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि अहिंसाका जो एकमात्र सच्चा अर्थ है, उस अर्थमें हम कभी अहिंसापरायण रहे ही नहीं। हमने प्रत्यक्ष शारीरिक हिंसा नहीं की है, मगर हमारे दिलोंमें तो हिंसाकी आग सुलगती ही रही है। बाह्यरूपसे हमने जो कुछ किया, यदि उसका सामंजस्य हमने ईमानदारीके साथ मन और वचनसे भी अहिंसाका पालन करनेमें बैठाया होता तो आज हमको जो थकान महसूस हो रही है वह हरगिज न होती। अगर हम

स्वयं अपने प्रति ईमानदारी बरतते रहते तो अबतक हमने अपने भीतर अनुपम मनोबल और संकल्पशक्तिका विकास कर लिया होता।

अहिंसाके बारेमें फैली हुई इस खाम-खयालीका लम्बा-चौड़ा जिक्र मैंने इसलिए किया कि मुझे यकीन है कि अगर हम उपर्युक्त दो उद्देश्योंको सफल बनानेके लिए ही अहिंसामें अपना विश्वास, अगर पहले कभी ऐसा विश्वास रहा हो तो, एक बार फिर जमा सकें तो दोनों सम्प्रदायोंके बीचका वर्तमान तनाव बहुत हद तक दूर हो जाये। कारण, मेरी रायमें, इस तनावको दूर करनेके उपायोंकी चर्चा करनेसे कोई लाभ केवल तभी हो सकता है जब आपसी सम्बन्धोंमें हमारा रुख अहिंसात्मक हो। दोनों सम्प्रदायोंके लोगोंका यह समान लक्ष्य होना चाहिए कि दोनोंमें से कोई भी पक्ष स्वेच्छा-चारितासे काम नहीं लेगा, बल्कि जहाँ और जब कोई झगड़ा उठ खड़ा होगा, उसका निबटारा या तो आपसी पंचायतमें अथवा अदालतमें जाना चाहें तो वहाँ कराया जायेगा। जहाँतक साम्प्रदायिक मामलोंका सम्बन्ध है, अहिंसाका अर्थ इतना ही है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो जिस तरह मामूली दुनियादारीकी बातोंमें हम एक-दूसरेके सिर फोड़नेपर आमादा नहीं हो जाते उसी तरह धार्मिक मामलोंमें भी बरतें। दोनों पक्षोंके बीच यही समझौता आवश्यक है और यह तत्काल हो जाना चाहिए। इतना हो जाये तो मुझे यकीन है कि बाकी तमाम बातें अपने-आप ठीक हो जायेंगी।

धींग और दब्बू

जबतक यह प्राथमिक शर्त पूरी नहीं की जाती, तबतक आपसी गलतफहमीको दूर करके किसी सम्मानीय और स्थायी समझौतेपर विचार करने योग्य वातावरण नहीं बन सकता। मान लीजिए कि दोनों कौमोंने इस प्राथमिक शर्तको दोनोंके हितकी बात मानकर स्वीकार कर लिया तो फिर हम उन बातोंपर विचार करें जिनके कारण दोनोंके बीच हमेशा तनातनी बनी रहती है। मुझे रत्ती-भर भी शक नहीं कि ज्यादातर झगड़ोंमें हिन्दू लोग ही पिटते है; मेरे निजी अनुभवसे भी इस मतकी पुष्टि होती है कि मुसलमान आमतौरपर धींगाधींगी करनेवाला और हिन्दू दब्बू होता है। रेलगाड़ियोंमें, रास्तोंपर तथा ऐसे झगड़ोंका निपटारा करनेके जो मौके मुझे मिले हैं उनमें मैंने यही देखा है। क्या अपने दब्बूपनके लिए हिन्दू मुसलमानोंको दोष दे सकते हैं? जहाँ कायर होंगे वहाँ जालिम भी होंगे ही। कहते हैं, सहारनपुरमें मुसलमानोंने घर लूटे, तिजोरियाँ तोड़ डालीं और एक जगह एक हिन्दू औरतको बेइज्जत भी किया। इसमें गलती किसकी थी? यह सच है कि मुसलमान अपने इस घृणित आचरणकी सफाई किसी तरह नहीं दे सकते। पर एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं तो मुसलमानोंकी गुंडागर्दीके लिए उनपर गुस्सा होनेसे कहीं अधिक हिन्दुओंकी नामर्दीपर शर्मिन्दा होता हूँ। जिनके घर लूटे गये, वे अपने माल-असबाबकी हिफाजतमें जूझते हुए वहीं क्यों नहीं मर मिटे? जिन बहनोंकी बेइज्जती हुई उनके नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहाँ गये थे? क्या उस समय उनका कुछ भी कर्त्तव्य नहीं था? मेरे अहिंसा-धर्ममें खतरेके वक्त अपने कुटुम्बियोंको अरक्षित छोड़कर भाग खड़े होनेकी गुंजाइश नहीं है। हिंसा और कायरतापूर्ण पलायनमें से यदि मुझे किसी एकको पसन्द करना पड़े

तो मैं हिंसाको ही पसन्द करूँगा। जैसे मैं किसी अन्धे व्यक्तिके मनमें सुखद दृश्योंके देखनेका उत्साह नहीं भर सकता, उसी प्रकार किसी कायरको अहिंसा-धर्म भी नहीं सिखा सकता। अहिंसा वीरताकी पराकाष्ठा है। यह मेरा निजी अनुभव है कि हिंसाकी तालीम पाये हुए लोगोंके बीच अहिंसाकी श्रेष्ठता साबित करनेमें मुझे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। पहले एक अरसे तक मेरे मनमें कायरताका निवास था और उस अवधिमें मनमें हिंसाके भाव उठा करते थे। लेकिन जैसे-जैसे मेरी कायरता दूर होने लगी, मैं अहिंसाकी भी कीमत समझने लगा। कर्त्तव्य-स्थलको खतरेसे भरा हुआ देखकर जो हिन्दू वहाँसे भाग खड़े हुए वे कुछ इसलिए नहीं भागे थे कि वे अहिंसा-परायण थे या वे मारनेसे डरते थे; वे इसलिए भागे कि वे मरने, यहाँतक कि किसी तरहकी चोट खानेको तैयार नहीं थे। खरगोश शिकारी कुत्तेसे डरकर भागता है सो अपने अहिंसक होनेकी वजहसे नहीं, वह बेचारा तो उसकी शक्ल देखकर ही घबरा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान बचाकर भागे वे अगर हँसते हुए अपनी छाती खोलकर अपने स्थानपर खड़े रहते और वहीं मर-मिटते तो वे सच्चे अहिंसापरायण कहे जाते, सर्वत्र उनका यश और गौरव छा जाता, उनके धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ती और उनपर हमला करनेवाले मुसलमान उनके दोस्त बन जाते। अगर वे अपनी जगहपर खड़े रहकर दो-दो हाथ ही कर लेते तो इतना अच्छा तो नहीं फिर भी अच्छा ही होता। अगर हिन्दू यह चाहते हैं कि मुलसमान आततायी उनकी कद्र करें और मित्रवत् व्यवहार करें तो उन्हें बड़ेसे-बड़े खतरेका सामना करते हुए मर-मिटना सीखना चाहिए।

उपाय

लेकिन अखाड़े इसका उपाय नहीं हैं; वैसे मैं अखाड़ोंको बुरा नहीं समझता। बल्कि मैं तो शरीर बनानेके लिए उन्हें जरूरी मानता हूँ। पर उस हालतमें वे सबके लिए खुले होने चाहिए। किन्तु अगर अखाड़े हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेमें आत्मरक्षाकी तैयारीके इरादेसे खोले जाते हैं तो उनसे काम नहीं चलनेका। मुसलमान भी ऐसा ही कर सकते हैं। ऐसी तैयारियोंसे चाहे वे छिपकर की जायें या खुले आम, शंका और चिढ़ पैदा होनेके अलावा और कुछ नहीं हो सकता। रोगका तत्काल शमन करनेमें ये असमर्थ हैं। यह तो समाजके इनेगिने विचारशील लोगोंका काम है कि पंच-फैसलेकी विधिको लोकप्रिय और अनिवार्य बनाकर ऐसे झगड़ोंको गैरमुमकिन बना दें।

बुजदिलीकी दवा शारीरिक प्रशिक्षण नहीं, बल्कि खतरोंको झेलनेकी आदत डालना है। जबतक मध्यमवर्गीय हिन्दू लोग, जो खुद ही बुजदिल होते हैं, अपने लड़के-बच्चोंको छुई-मुई बनाकर रखते रहेंगे और इस प्रकार उनमें भी अपनी बुजदिली भरते रहेंगे, तबतक खतरेसे दुम दबानेकी यह आदत और जोखिम सिरपर न लेनेकी ख्वाहिश बराबर बनी ही रहेगी। उन्हें हिम्मत बाँधकर अपने बच्चोंको अपने ही भरोसे रहनेका मौका देना चाहिए, जोखिममें पड़ने देना चाहिए; और यदि ऐसा करते हुए उन्हें प्राण गँवाना पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं। शरीरसे बिलकुल कमजोर आदमीका भी बहुत मजबूत दिल हो सकता है और बड़ा हट्टा-कट्टा जुलू भी अंग्रेज छोकरोंके

सामने बकरी बन जाता है। हरएक गाँवको चाहिए कि वह अपने शेरदिल व्यक्तियोंको खोज निकाले।

गुंडे

गुंडोंको दोष देना भूल है। गुंडे गुंडागर्दी तभी करते है जब हम उनके अनुकूल वातावरणका निर्माण कर देते है। १९२१ में[1] युवराजके आगमनके दिन बम्बईमें जो-कुछ हुआ, उसे मैंने खुद अपनी आँखोंसे देखा है। बीज हमने बोये थे, फसल गुंडोंने काटी। उनकी पीठपर हमारे आदमियोंका हाथ था। जिस प्रकार मैं कटारपुर और आराकी काली करतूतोंके लिए बेहिचक वहाँके प्रतिष्ठित हिन्दुओंको जिम्मेवार मानता हूँ, उसी प्रकार मुलतान, सहारनपुर और जिन दूसरी जगहोंमें काले कारनामे हुए, वहाँके प्रतिष्ठित मुसलमानोंको (किसी एक जगह सभीको नही) उनका जिम्मेदार माननेमें मुझे कोई संकोच नहीं है। अगर यह बात सच है कि पलवलमें हिन्दुओंने कच्ची मसजिदकी जगह पक्की मसजिद नही बनने दिया तो यह काम गुंडोंका नही है। वास्तवमें इसका उत्तरदायित्व प्रतिष्ठित हिन्दुओंपर ही है। प्रतिष्ठित लोगोंको दोषसे मुक्त कर देनेकी प्रवृत्तिको कदापि प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।

इसलिए मैं यह मानता हूँ कि अगर हिन्दू लोग अपनी हिफाजतके लिए गुंडों-को संगठित करेंगे तो यह बड़ी भारी भूल होगी। उनका यह आचरण खाईसे बचकर खन्दकमें गिरने-जैसा होगा। बनिये और ब्राह्मण अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीकेसे न कर सकते हों तो उन्हें हिंसात्मक तरीकेसे ही आत्मरक्षा करनी सीखनी चाहिए; अन्यथा उन्हें अपनी सम्पत्ति और बहू-बेटियोंको गुण्डोंके हाथों सौंप देना होगा। गुंडों-की एक अलहदा जाति ही समझिए, भले ही वे हिन्दू कहलाते हों चाहे मुसलमान। लोगोंको बड़ी शानके साथ कहते सुना गया है कि अभी हालमें एक जगह अछूतोंकी हिफाजतमें (क्योंकि उन अछूतोंको मौतका भय नहीं था) हिन्दुओंका एक जुलूस मसजिदके सामनेसे (धूमधामके साथ गाते-बजाते हुए) निकल गया और उसका कुछ नहीं बिगड़ा।

यह एक पवित्र उद्देश्यसे करने योग्य कामका लौकिक दृष्टिसे किया गया उपयोग है। अछूत भाइयोंसे इस तरहका नाजायज फायदा उठाना न तो आमतौरपर पूरे हिन्दू धर्मके हितमें है और न खास तौरसे अछूतोंके। इस तरहके संदिग्ध उपायोंका सहारा लेकर भले ही कुछ-एक जुलूस कुछ मसजिदोंके सामनेसे सही-सलामत निकल जायें; पर इसका नतीजा यह होगा कि बढ़ता हुआ तनाव ज्यादा बढ़ेगा और उससे हिन्दू धर्म-का पतन होगा। मध्यमवर्गीय लोगोंको, यदि वे विरोधके बावजूद मसजिदोंके सामनेसे बाजा बजाते निकलना चाहते हों तो, या तो वे पिटनेके लिए तैयार रहें या अपने आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए मुसलमानोंको दोस्त बना लें।

हिन्दुओंने अपने दलित भाइयोंपर अतीतमें जो निर्योग्यताएँ लाद रखी थी और आज भी जो निर्योग्यताएँ वे उनपर लादे हुए हैं, उनके लिए उन्हें प्रायश्चित्त करना है। स्थिति यह है कि हमपर उनका ऋण है और हमें उस ऋणको चुकाना है। ऐसी

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४८५-८९।

स्थितिमें बदलेमें उनसे कुछ अपेक्षा करनेका सवाल ही नहीं उठता। अगर हम अपनी नामर्दीको छिपानेके लिए उनका इस्तेमाल करेंगे तो हम उनके दिलमें ऐसी आशाएँ पैदा करेंगे जिन्हें हम कभी पूरा नहीं कर पायेंगे और तब अगर हमें प्रतिशोधका शिकार बनना पड़ा तो वह उनके साथ किये गये हमारे अमानुषिक व्यवहारका उचित दण्ड होगा। यदि हिन्दुओंके दिलोंमें मेरे लिए कोई स्थान है तो मैं उनसे सविनय अनुरोध करूँगा कि वे मुसलमानोंके सम्भावित हमलेसे बचनेके लिए अछूतोंको ढाल न बनायें।

बढ़ता हुआ मनोमालिन्य

इस बढ़ते हुए तनावका दूसरा सबल कारण यह है कि हमारे अच्छेसे-अच्छे लोगोंके भीतर भी अविश्वासकी भावना बढ़ती जा रही है। मुझे पण्डित मदनमोहन मालवीयजीसे सावधान रहनेकी चेतावनी दी गई है। कहा जाता है कि वे अपने मनसूबे जाहिर नहीं होने देते, वे मुसलमानोंके दोस्त नहीं हैं; यह भी कहा जाता है कि मेरे प्रभावके प्रति वे ईर्ष्यालु हैं। जब मैं १९१५ में भारत लौटा तभीसे उन्हें बहुत करीबसे जानता हूँ। उनसे मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। उन्हें मैं हिन्दू-संसारके श्रेष्ठ व्यक्तियोंमें से मानता हूँ। सनातनी होते हुए भी वे बड़े उदार विचार रखते हैं। वे मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। किसीके प्रति मनमें ईर्ष्या रखना उनके लिए असम्भव ही है। उनका हृदय इतना विशाल है कि उसमें शत्रुओंके लिए भी स्थान है। सत्ता प्राप्त करना उनका उद्देश्य रहा ही नहीं। आज जो शक्ति उन्हें प्राप्त है वह मातृ-भूमिकी दीर्घ और अखण्ड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममें से बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनका और मेरा स्वभाव अलग-अलग है; लेकिन हम दोनोंमें सगे भाइयों-जैसा प्रेम है। हमारे बीच और तो और कोई खटास तक पैदा नहीं हुई। हमारे रास्ते अलग-अलग हैं। इसलिए हमारे बीच प्रतिस्पर्धाका सवाल ही नहीं उठता और इसलिए ईर्ष्याकी गुंजाइश भी नहीं है।

दूसरे सज्जन, जिनपर अविश्वास किया जाता है, लाला लाजपतराय हैं। मैंने तो लालाजीको एक बच्चेकी तरह खुले दिलवाला पाया है। उनका त्याग लगभग बेमिसाल है। मेरी उनसे हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर एक बार नहीं, अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसलमानोंसे दुश्मनी नहीं रखते। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि वे यह नहीं मानते कि एकता तत्काल स्थापित हो सकेगी। वे मार्गदर्शनके लिए ईश्वरकी ओर देख रहे हैं। स्वयं शंकित रहते हुए भी वे हिन्दू-मुस्लिम एकतामें विश्वास रखते हैं; क्योंकि जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा, वे स्वराज्यमें विश्वास रखते हैं। वे मानते हैं कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। लेकिन वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा समाधान उन्हें पसन्द है; परन्तु उन्हें इस बातमें शक है कि हिन्दू लोग उस समाधानमें (लालाजीके अनुसार) जो उदात्त भाव है उसका मर्म और मूल्य समझ सकेंगे या नहीं। मैं यहाँ इतना जरूर कह दूँ कि मैं अपने समाधानको कोई उदात्त समाधान न मानकर सर्वथा न्यायोचित और एकमात्र व्यावहारिक समाधान मानता हूँ।

स्वामी श्रद्धानन्दजीपर भी अविश्वास किया जाता है। मैं जानता हूँ कि उनके भाषण अकसर चिढ़ पैदा करनेवाले होते हैं। परन्तु वे हिन्दू-मुस्लिम एकता भी चाहते हैं। दुर्भाग्यसे उनका खयाल है कि हरएक मुसलमानको आर्यसमाजी बनाया जा सकता है; वैसे ही जैसे शायद अधिकांश मुसलमान हरएक गैर-मुस्लिमका किसी-न-किसी दिन इस्लाम कुबूल करना सम्भव मानते हैं। श्रद्धानन्दजी निडर और बहादुर आदमी हैं। उन्होंने अकेले ही गंगाके किनारे एक वीरान इलाकेको शानदार गुरुकुलके रूपमें बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने काममें सच्चा विश्वास है। पर उनमें उतावलापन है और वे आसानीसे चिढ़ जाते हैं। आर्य समाजकी परम्परा उन्हें विरासतमें मिली है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीको मैं बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होंने हिन्दू धर्मकी भारी सेवा की है। उनकी बहादुरीके सम्बन्धमें कोई शंका ही नहीं हो सकती। पर उन्होंने अपने हिन्दू धर्मको संकुचित बना दिया। आर्य समाजकी 'बाइबिल' 'सत्यार्थ प्रकाश' को मैंने पढ़ा है। यरवदा जेलमें जहाँ मैं आराम कर रहा था, दोस्तोंने उसकी तीन प्रतियाँ मुझे भेजी थीं। किसी अन्य इतने बड़े सुधारककी इतनी निराशाजनक कोई कृति मैंने आजतक नहीं पढ़ी। उन्होंने सत्य और सिर्फ सत्यकी ही हिमायत करनेका दावा किया है। पर उन्होंने अनजाने ही जैन धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म और खुद हिन्दू धर्मको भी गलत रूपमें पेश किया है। जिन्हें इन महान धर्मोंकी थोड़ी भी जानकारी है, वे सहज ही देख सकते हैं कि इस महान् सुधारकसे कैसी-कैसी भूलें हो गई हैं। उन्होंने दुनियाके एक सबसे ज्यादा सहिष्णु और उदार धर्मको संकुचित बना डालनेकी कोशिश की है और यद्यपि वे खुद मूर्ति-पूजाके विरोधी थे, किन्तु उनके प्रयत्नोंका फल बहुत ही सूक्ष्म ढंगकी मूर्ति-पूजाकी प्रतिष्ठाके रूपमें ही प्रकट हुआ है। कारण, उन्होंने 'वेद'के एक-एक अक्षरको पूज्य बना दिया और यह साबित करनेकी कोशिश की कि ज्ञान-विज्ञान-की सारी बातें 'वेदों'में मौजूद हैं। मेरे तुच्छ विचारमें आर्य समाजके फूलने-फलनेका कारण 'सत्यार्थ प्रकाश'के उपदेशोंमें निहित गुण न होकर उस समाजके संस्थापकका उच्च और महान् चरित्र है। जहाँ-कहीं आप आर्य समाजियोंको देखेंगे वहाँ आपको जीवन और स्फूर्ति दृष्टिगोचर होगी। परन्तु संकुचित दृष्टिकोण और विवादप्रिय स्वभाव होनेके कारण वे या तो दूसरे धर्मोंके लोगोंके साथ या जब वे न मिलें तो आपसमें ही झगड़ते रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्दजीमें भी यह भावना पर्याप्त मात्रामें है। इन त्रुटियोंके होते हुए मैं इन्हें असाध्य नहीं मानता। मुमकिन है कि आर्य समाज तथा स्वामीजीका जो चित्र मैंने यहाँ खींचा है, उससे वे नाराज हों पर यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मेरी मंशा उनका दिल दुखाना नहीं है। आर्य समाजियोंसे मुझे प्रेम है, क्योंकि मेरे कितने ही साथी-कार्यकर्ता आर्य समाजी हैं। स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंसे चाहने लगा हूँ, जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था। हाँ, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ; पर इससे उनके प्रति मेरा प्रेम कम नहीं हुआ है। यहाँ भी मेरा प्रेम ही बोला है।

मुझे जिन हिन्दुओंके बारेमें चेतावनी दी गई है, उनमें सबसे अन्तमें आते हैं श्री जयरामदास और डा० चोइथराम। जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता

हूँ। इनसे ज्यादा सच्चा आदमी मुझे अपनी जिन्दगीमें अभी नहीं मिला। जेलमें उनका चलन हम लोगोंके लिए ईर्ष्याकी वस्तु थी। उनकी सत्यपरायणताको दोषतक कहा जा सकता था। वे मुसलमान-विरोधी नहीं हैं। डा० चोइथरामको यद्यपि मैं इनसे भी पहलेसे जानता हूँ; पर मैं इन्हें उतनी अच्छी तरह नहीं जानता। जितना जानता हूँ, उतने से मैं उनके हिन्दू-मुस्लिम एकताके हामी होनेके अलावा और कुछ होनेकी कल्पना नहीं कर सकता। जिन लोगोंके खिलाफ चेतावनी दी गई है, मैंने उन सबके नाम नहीं गिनाये हैं। मुझे तो ऐसा ही भासता है कि यदि आज भी इन तमाम हिन्दुओं और नमाजियोंको हिन्दू-मुस्लिम एकताके पक्षमें करना बाकी ही रह गया है तो फिर एकता शब्दका मेरे लिए कोई मतलब ही नहीं बनता; और ऐसी हालतमें मुझे अपनी इस जिन्दगीमें एकता स्थापित करनेकी आशा ही नहीं रखनी चाहिए।

बारी साहब[1]

पर इन भाइयोंके प्रति अविश्वास ही सवालका सबसे खराब पहलू नहीं है। मुसलमानोंके विषयमें भी मुझे वैसा ही सचेत किया गया है, जैसा हिन्दुओंके विषयमें। यहाँ मैं सिर्फ तीन ही नाम लूँगा। मौलाना अब्दुल बारी साहब एक धर्मोन्मत हिन्दू-द्वेष्टाके रूपमें पेश किये गये हैं। मुझे उनके कुछ लेख दिखाये गये, जिन्हें मैं नहीं समझ पाया। मैंने इस विषयमें उन्हें परेशान ही नहीं किया, क्योंकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बन्दे हैं। मैंने उनके अन्दर किसी तरहका छल-कपट नहीं देखा है। अकसर वे कोई बात बिना विचारे बोल जाते हैं, जिससे उनके अच्छेसे-अच्छे मित्र भी उलझनमें पड़ जाते हैं। पर वे क्षोभजनक बातें कह बैठनेमें जितनी जल्दी करते हैं, अपनी भूलकी माफी माँगनेको भी उतनी ही जल्दी तैयार रहते हैं। जिस वक्त जो बात वे बोलते हैं, उस वक्त उनका आशय भी सचमुच वही होता है। जिस तरह वे सच्चे दिलसे गुस्सा होते हैं उसी तरह वे सच्चे दिलसे माफी भी माँगते हैं। एक बार वे मौलाना मुहम्मद अलीपर बिना किसी उचित कारणके बिगड़ पड़े थे। मैं उस वक्त उनका मेहमान था। उनको लगा कि उन्होंने मुझे भी बहुत कुछ भला-बुरा कह डाला है। उस समय मौलाना मुहम्मद अली और मैं कानपुरकी गाड़ी पकड़नेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमें थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हें लगा कि उन्होंने हमारे साथ बेजा बरताव किया है। मौलाना मुहम्मद अलीके प्रति तो उन्होंने बेशक अन्याय किया था; मेरे प्रति नहीं। पर उन्होंने तो कानपुरमें हम दोनोंके पास अपनी तरफसे कुछ लोगोंको भेजकर हम दोनोंसे माफी माँगी। इस बातसे वे मेरी नजरोंमें बहुत ऊँचे उठ गये। लेकिन, मैं कबूल करता हूँ कि मौलाना साहब किसी भी वक्त एक खतरनाक दोस्त साबित हो सकते हैं। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे। उनके साथ "खानेके और दिखानेके और" यह बात नहीं। उनके मनमें कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। ऐसे दोस्तके हाथमें अपनी जिन्दगी सौंप देनेमें भी मुझे कोई हिचक नहीं होगी, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे कभी छिपकर वार नहीं करेंगे।

१. अब्दुल बारी।

अली-बन्धु

ऐसी ही चेतावनी मुझे अली-बन्धुओंके बारेमें भी दी गई है। मौलाना शौकत अली बड़ेसे-बड़े बहादुरोंमें से हैं। उनमें कुर्बानीका बड़ा माद्दा है। उसी तरह उनमें ईश्वरकी सृष्टिके मामूलीसे-मामूली जीवको भी प्यार करनेकी असीम क्षमता है। वे खुद इस्लामपर फिदा हैं; पर दूसरे मजहबोंसे वे नफरत नहीं करते। मौलाना मुहम्मद अली अपने भाईके प्रतिरूप ही हैं। मौलाना मुहम्मद अलीमें मैंने बड़े भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है, उतनी कहीं नहीं देखी। वे पूरे सोच-विचारके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके सिवा भारतके उद्धारका रास्ता नहीं है। उनका "अखिल इस्लामवाद" हिन्दू-विरोधी नहीं है। इस्लामको बाहरी हमलोंसे बचानेके लिए और उनकी आन्तरिक शुद्धिके लिए सारा इस्लामी संसार एक हो जाये, यह उनकी उत्कट अभिलाषा है, ऐसी अभिलाषापर भला किसको आपत्ति हो सकती है? उनके कोकनाडाके भाषणके एक हिस्सेको आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया। मैंने मौलाना साहबका ध्यान उस ओर दिलाया; उन्होंने उसी दम कबूल किया कि हाँ, वाकई यह भूल हुई। कुछ भाइयोंने मुझसे यह कहा है कि मौलाना शौकत अलीके खिलाफत सम्मेलनमें दिये गये भाषणमें भी कुछ आपत्तिजनक बातें हैं। यह भाषण मेरे पास है परन्तु उसे पढ़नेका समय मुझे नहीं मिल पाया है। मैं यह जानता हूँ कि यदि उसमें सचमुच किसीका दिल दुखानेवाली कोई बात होगी तो मौलाना शौकत अली उसे उसी क्षण दुरुस्त करनेको राजी हो जायेंगे। यह बात नहीं कि अली-बन्धुओंमें कोई दोष है ही नहीं। लेकिन मैं तो खुद भी दोषोंसे भरा हुआ हूँ। इसीलिए इन दोनोंको दोस्त बनाने और इसे अपनी एक बहुमूल्य निधि माननेमें मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। अगर उनमें कुछ दोष हैं तो गुण भी बहुत हैं और मेरा उनके प्रति स्नेहभाव है। जिस प्रकार ऊपर बताये हिन्दू मित्रोंका परित्याग करके मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए हिन्दुओंके बीच कोई पुख्ता काम नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं उक्त मुसलमान दोस्तोंके बिना एकताके लिए मुसलमानोंके बीच भी कोई काम करनेकी आशा नहीं रख सकता। यदि हममें से लोग पूर्णताको पहुँचे हुए होते तो हमारे बीच झगड़े होते ही क्यों? पर चूँकि बहुतेरे हम सब अपूर्ण प्राणी हैं, इसीसे हम सबको एक-दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर एक सामान्य ध्येयके लिए काम करते जाना चाहिए।

हमारे कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियोंके प्रति भी अविश्वासका जो वातावरण बन गया उसीको दूर करनेके खयालसे मुझे कतिपय चुने हुए लोगोंके बारेमें लिखना पड़ा है। मुमकिन है कि मैं पाठकोंको इन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें अपनी रायका कायल न कर पाया होऊँ तथापि जरूरी था कि वे मेरी रायसे अवगत हो जाते; भले ही उनकी राय मुझसे भिन्न हो।

सिन्धका वाकया

इस गहरे अविश्वासके कारण किसी मामलेके बारेमें सचाई जान सकना भी असम्भव-सा हो गया है।

सिन्धसे डा० चौइथरामने कुछ बातें लिख भेजी हैं। इन तथ्योंको वे एक ऐसे मामलेसे सम्बन्धित बताते हैं जिसमें एक हिन्दूको जबरदस्ती मुसलमान बनानेकी कोशिश की गई। कहते हैं, उस आदमीको उसके मुसलमान साथियोंने मार डाला, क्योंकि वह इस्लाम कबूल करनेको तैयार नहीं था। यदि यह सच हो तो यह बहुत ही भयंकर बात है। मैंने मामलेके सम्बन्धमें जानकारी भेजनेके लिए सीधे सेठ हाजी अब्दुल्ला हारूँको तार किया। जवाबमें उन्होंने तत्काल तार द्वारा सूचित किया कि लोग इसे आत्महत्याका मामला बताते हैं, लेकिन मैं आगे जाँच-पड़ताल कर रहा हूँ। आशा है, सचाई सामने आ जायेगी। इस मामलेका जिक्र मैंने सिर्फ यह बतानेके लिए कर दिया कि सन्देहके ऐसे वातावरणमें काम करना कितना कठिन है। सिन्धके एक और मामलेके बारेमें मालूम हुआ है, लेकिन जबतक उसके सम्बन्धमें पूरी और प्रामाणिक बातें मालूम नहीं हो जाती, मैं उसका विवरण नहीं देना चाहता। मेरा इतना ही निवेदन है कि यदि कोई ऐसी घटनाओंके बारेमें सुने, फिर चाहे वह हिन्दुओंके विरुद्ध हो या मुसलमानोंके, तो उसे चाहिए कि वह अपना मन शान्त रखे और सिर्फ ऐसे तथ्य मेरे पास भेजे जिन्हें साबित किया जा सकता हो। मैं वचन देता हूँ कि मैं मामूलीसे-मामूली मामलेकी भी जाँच करूँगा और एक व्यक्ति जितना कर सकता है, उतना सब करूँगा। आशा है, जल्दी ही हमारे पास ऐसे कार्यकर्त्ताओंकी पूरी एक टुकड़ी तैयार हो जायेगी, जिनका काम यही होगा कि ऐसी सभी शिकायतोंकी जाँच करें और न्याय कराने तथा भविष्यमें ऐसे झगड़े न हों, इसके लिए आवश्यक व्यवस्था करें।

बंगालकी खबरें

बंगालसे खबरें आ रही हैं कि वहाँ हिन्दू स्त्रियोंपर ज्यादती हो रही है। वे अगर थोड़ी भी सच हों तो भी बहुत ही अधिक क्षोभजनक हैं। यह जानना कठिन है कि इस समय ऐसे अपराधोंका विस्फोट-सा क्यों हुआ है। उसी तरह उन हिन्दुओंकी बुजदिलीके सम्बन्धमें भी संयमित भावसे कुछ कह सकना कठिन है, जो उन भ्रष्ट की गई बहनोंके नाते-रिश्तेदार और संरक्षक हैं। कामान्ध होकर बेकसूर स्त्रियोंपर हैवानकी तरह ज्यादती करनेवालोंकी पशुताके सम्बन्धमें तो क्या कहें? इन बदमाशोंको खोज निकालना स्थानीय मुसलमानों और आम तौरपर बंगालके सभी प्रमुख मुसलमानोंका कर्त्तव्य है। उनकी खोज सजा दिलानेके लिए ही नहीं, बल्कि ऐसे अपराधोंकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिए जरूरी है। बदमाशोंको वे जहाँ छिपे हैं वहाँसे खोजकर पुलिसके सुपुर्द कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु इससे समाजमें ऐसे अपराधोंका होना बन्द नहीं हो जाता। इसके लिए कारणोंका हटाया जाना जरूरी है और उनका हटाया जाना सर्वांगपूर्ण सुधारोंसे ही सम्भव है। हिन्दू और मुसलमान, दोनों समाजोंमें कुछ ऐसे लोगोंको आगे आना चाहिए जो स्वयं अपेक्षाकृत खरे चरित्रके हों और ऐसे अपराधियोंके बीच जाकर काम करें। यही बात काबुलियों और पठानोंके जुल्मके[1] बारेमें कही जा सकती है। हिन्दू-मुस्लिम सवालसे काबुलियोंके जुल्मका कोई

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ १५४-५७।

सम्बन्ध नहीं है। लेकिन अगर हम लाचार बनकर केवल पुलिसकी दयापर ही जिन्दा न रहना चाहते हों तो ऐसे मामलोंको भी हमें हाथमें लेना होगा और उन्हें सुलझाना होगा।

शुद्धि और तबलीग

परन्तु जो बात इस तनावको कायम रखे हुए है, वह है शुद्धि आन्दोलनका मौजूदा तरीका। धर्मान्तरणके लिए जिस अर्थमें ईसाई धर्ममें स्थान है और कुछ कम अंशोंमें इस्लाममें, मेरे विचारसे उस अर्थमें हिन्दू धर्ममें उसके लिए कोई स्थान नहीं है। मुझे तो लगता है कि अपने प्रचारकी योजना बनानेमें आर्य समाजियोंने ईसाइयोंकी नकल की है। अपने धर्मके प्रति विश्वास पैदा करानेका यह आधुनिक तरीका मुझे नहीं जँचता। उससे हितके बजाय हानि ही हुई है। धर्मान्तरण विशुद्ध रूपसे हृदयकी और व्यक्ति-विशेष तथा उसके स्रष्टाके बीचकी चीज मानी जाती है; किन्तु आज इसका ऐसा पतन हुआ है कि इसके लिए मनुष्यकी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियोंको उभारनेका तरीका अपनाया जाने लगा है। आर्य समाजी उपदेशकोंको जो मजा दूसरे धर्मोंपर कीचड़ उछालनेमें आता है, वह मजा और किसी बातमें नहीं आता। एक हिन्दूके नाते मेरी सहज बुद्धि तो यही कहती है कि सभी धर्म न्यूनाधिक सच्चे हैं। सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वरसे है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं; क्योंकि वे हमें मनुष्यके द्वारा प्राप्त हुए हैं; और मनुष्य तो कभी पूर्ण नहीं होता। सच्चा शुद्धि-कार्य तो मैं इसे मानूंगा कि हर व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अपने-अपने धर्ममें रहकर पूर्णत्व प्राप्त करनेकी कोशिश करे। ऐसी योजनामें चरित्र ही एकमात्र कसौटी होगा। एक धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको स्वीकार करनेसे अगर नैतिक उत्थान न होता हो तो ऐसे धर्म-परिवर्तनसे क्या लाभ? जब मेरे सहधर्मी लोग ही अपने आचरणमें रोज-रोज ईश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार कर रहे हों तब फिर ईश्वरकी सेवाके लिए, क्योंकि शुद्धि या तबलीगका मतलब यही मानना चाहिए, दूसरे धर्मके लोगोंको मैं अपने धर्मकी दीक्षा किस लिए दूं? 'रंगरेज पहले अपनी पगड़ी रंग' वाली कहावत लौकिक मामलोंसे धार्मिक मामलोंपर कहीं अधिक लागू होती है। परन्तु ये मेरे निजी विचार हैं। अगर आर्य समाजियोंको लगता हो कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें इस आन्दोलनके लिए प्रेरित कर रही है तो इसे चलानेका उन्हें पूरा हक है। यह उत्कट अन्तर्नाद समयकी मर्यादा या अनुभवके अंकुशको स्वीकार नहीं करता। यदि अन्तरात्माकी आवाजपर किसी आर्य समाजी या मुसलमानके अपने धर्मका प्रचार करनेके कारण ही हिन्दू-मुस्लिम एकता खतरेमें पड़ जाती है तो निश्चय ही वह एकता सतही है। हम ऐसे आन्दोलनोंसे इतना क्यों घबरायें? लेकिन तब इन आन्दोलनोंको शुद्ध भावसे प्रेरित होना चाहिए। अगर मलकाना लोग फिरसे हिन्दू धर्म अंगीकार करना चाहें तो वे जब चाहें तब उन्हें ऐसा करनेका पूरा-पूरा हक है। परन्तु अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए दूसरे धर्मोंकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नहीं चलने दी जा सकती; क्योंकि यह सहिष्णुताकी भावनाके नितान्त विपरीत है। इस ढंगके प्रचारका मुकाबला करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि खुले आम उसकी भर्त्सना की जाये। हरएक

आन्दोलन समादरणीय होनेका स्वांग रचता है; परन्तु जैसे ही उसकी पोल खुलती है वैसे ही उसके प्रति लोगोंकी आदर-भावना समाप्त हो जाती है और आन्दोलन निष्प्राण बन जाता है। सुना है, आर्य समाजी और मुसलमान दोनों सचमुच ही स्त्रियोंका अपहरण कर लेते हैं और तब उनके धर्मान्तरणकी चेष्टा करते हैं। मेरे सामने आगाखानी साहित्यका ढेर पड़ा हुआ है। उसे ध्यानसे पढ़नेकी फुरसत अभी मुझे नहीं मिल पाई है; किन्तु मुझसे कहा गया है कि सचमुच ही उसमें हिन्दू धर्मको बहुत विकृत रूपमें पेश किया गया है। उसमें महाविभव आगाखाँको हिन्दू अवतार बताया गया है। यही देखकर मैं समझ गया कि उसमें क्या-कुछ होगा। खुद महाविभव आगाखाँ इस साहित्यके बारेमें क्या सोचते हैं, मुझे यह जाननेकी उत्सुकता है। कितने ही खोजे मेरे दोस्त हैं। मैं उन्हें यह साहित्य पढ़नेको आमंत्रित करता हूँ। एक सज्जनने मुझे बताया है कि आगाखानी सम्प्रदायके कुछ एजेंट अनपढ़ गरीब हिन्दुओंको पैसा उधार देते हैं; और बादमें कहते हैं कि अगर तुम इस्लाम कबूल कर लो तो तुमसे पैसा वापस न लिया जायेगा। इसे मैं अवैध प्रलोभन देकर धर्मान्तरण करना कहूँगा। परन्तु सबसे ज्यादा बुरा तरीका तो दिल्लीके एक साहबका[1] है। इन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की है। उसे मैं शुरूसे आखिर तक देख गया हूँ। उसमें इस्लामके उपदेशकोंको इस बातकी विस्तृत हिदायतें दी गई हैं कि वे किस तरह इस्लामके प्रचारका काम करें। शुरूआत इस ऊँचे असूलको लेकर की गई है कि इस्लाम तो सिर्फ अद्वैतका ही प्रचार कर रहा है। लेखकके अनुसार इस महासिद्धान्तका प्रचार हर मुसलमानको करना चाहिए — चाहे उसका अपना चरित्र कैसा भी क्यों न हो। इसमें भेदियोंका एक छिपा महकमा खोलनेकी हिमायत की गई है। उस महकमेके लोगोंका काम गैर-मुस्लिम लोगोंके घरोंका भेद लेना होगा। इस उद्देश्यके लिए वेश्याओं, पेशेवर गायक-गायिकाओं, फकीरों, सरकारी नौकरों, वकीलों, डाक्टरों, कारीगरों आदिकी सेवाएँ प्राप्त करनेकी बात कही गई है। अगर प्रचारका यह तरीका फैल गया तो इस्लामके पैगम्बरके महान् पैगामका अर्थ करनेवाले (उन्हें मैं सच्चा धर्म-प्रचारक न कह सकूँगा) ऐसे छद्मवेषीकी छिपी निगहबानीसे एक भी हिन्दू घर बच नहीं पायेगा। प्रतिष्ठित हिन्दुओंके मुँहसे मैंने यह सुना है कि यह प्रचार-पुस्तिका निजामके राज्यमें बहुत पढ़ी जाती है और इसमें सुझाये गये तरीकोंके मुताबिक वहाँ काम भी खूब हो रहा है।

एक हिन्दूकी हैसियतसे मुझे इस बातपर अफसोस होता है कि उर्दूके एक नामी लेखक, जिनके पाठकोंकी संख्या बहुत बड़ी है, ऐसे तरीकोंको अपनानेकी जोरदार हिमायत कर रहे हैं जिनके नैतिक औचित्यमें सन्देह है। मेरे मुसलमान मित्रोंने मुझसे कहा है कि कोई भी प्रतिष्ठित मुसलमान उसमें बताये तरीकोंको पसन्द नहीं करता। लेकिन यहाँ सवाल तो यह है कि आम मुसलमानी जनताका एक बड़ा हिस्सा उन तरीकोंको मानता है और उनके मुताबिक चलता है या नहीं। पंजाबके अखबारोंका एक हिस्सा तो घोर अश्लीलतापर उतर आया है। कभी-कभी तो उनमें लिखे गये

१. आशय ख्वाजा हसन निजामीसे है।

लेख बहुत ही गन्दे होते हैं। ऐसे कितने ही अंशोंको पढ़ जानेकी व्यथा मैंने सहन की है। इन पत्रोंका संचालन एक तरफ आर्य समाजी या हिन्दू लोग करते हैं और दूसरी तरफ मुसलमान। दोनोंने एक-दूसरेको गालियाँ देने और एक-दूसरेके मजहबकी बुराई करनेकी मानो होड़ बद ली है। सुना है, इन अखबारोंके खरीदारोंकी तादाद भी खासी बड़ी है। अच्छे-अच्छे वाचनालयोंमें भी ये अखबार जाते हैं।

मैंने यह भी सुना है कि गाली-गलौज और निन्दा-आलोचनाके इस अभियानको सरकारी गुरगोंकी शह है। इस बातपर एकाएक विश्वास नहीं होता, किन्तु यदि थोड़ी देरके लिए यह मान लें कि बात सही है तो भी पंजाबकी जनताको चाहिए कि वह इस शर्मनाक परिस्थितिसे निपट ले।

मैं समझता हूँ कि मैं इन दो समुदायोंके बीचके तनावके मूल कारणों और इनको जारी रखनेवाले कारणोंपर विचार कर चुका हूँ। अब उन दो बातोंकी जाँच करें, जिनके कारण संघर्ष होता ही रहता है।

गो-हत्या

पहला है गो-वध। यद्यपि गो-रक्षाको मैं एक ऐसा तत्त्व मानता हूँ जो हिन्दू धर्मके केन्द्रमें स्थित है और यह इसलिए कि गो-रक्षाको अमीर-गरीब छोटे-बड़े सभी अपना धर्म मानते हैं; फिर भी इस मामलेमें मुसलमानोंके प्रति हमारा द्वेषभाव मेरी समझमें कभी नहीं आया। अंग्रेजोंके लिए रोज कितनी ही गायें कटती हैं, पर हम उसपर कुछ नहीं कहते। लेकिन जब गायको कोई मुसलमान कत्ल करता है तब हम आग-बबूला हो उठते हैं। गायके नामपर होनेवाले दंगोंमें सदा ही शक्तिका मूर्खतापूर्ण अपव्यय हुआ है। इनसे एक भी गायकी रक्षा नहीं हुई है उलटे मुसलमान ज्यादा हठीले बनते चले गये और फलत: गायें ज्यादा कटने लगी हैं। मुझे बखूबी मालूम है कि १९२१ में मुसलमानोंके द्वारा राजी-खुशी और उदारतासे कोशिश करनेके परिणाम-स्वरूप जितनी गायोंकी रक्षा हुई उतनी गायोंकी रक्षा तो शायद हिन्दू लोग पिछले बीस वर्षोंके प्रयत्नोंसे भी नहीं कर पाये हैं। गो-रक्षाकी शुरूआत तो हमसे ही होनी चाहिए। भारतमें मवेशियोंकी जैसी दुर्गति है वैसी शायद दुनियाके किसी हिस्सेमें नहीं है। हिन्दू गाड़ीवानोंको अपने जीर्ण-शीर्ण थके-माँदे बैलोंको बेरहमीसे आर चुभोते हुए देखकर कई बार मेरी आँखें भर आईं। हमारे ज्यादातर मवेशियोंको भरपेट खानेको नहीं दिया जाता है। यह हमारे लिए लज्जास्पद है। गायोंकी गरदनपर कसाईकी छुरी इसलिए चल पाती है कि हिन्दू खुद उन्हें बेच डालते हैं। ऐसी हालतमें एकमात्र कारगर और सम्माननीय उपाय यही है कि हम मुसलमानोंसे मैत्रीभाव बनायें और गायकी रक्षाकी जिम्मेवारी उनकी शराफतपर छोड़ दें। गो-रक्षा समितियोंको अपना ध्यान पशुओंको अच्छी तरह खिलाने-पिलाने, उनके साथ होनेवाले क्रूरतापूर्ण व्यवहारको बन्द कराने, तेजीसे होनेवाली चरागाहोंकी कमीको रोकने, मवेशियोंकी नस्ल सुधारने, गरीब ग्वालोंसे गायें खरीद लेने और पिंजरापोलोंको आदर्श स्वावलम्बी दुग्ध-शालाएँ बनानेकी ओर लगाना चाहिए। यदि हिन्दू ऊपर बताई गई बातोंमें से एकमें भी चूके तो वे ईश्वर और मनुष्यके सामने अपराधी ठहरेंगे। मुसलमानोंके

द्वारा होनेवाले गो-वधको न रोक सकनेसे वे पापके भागी नहीं बनते; किन्तु जब वे गायकी रक्षाके निमित्त मुसलमानोंके साथ लड़ बैठते हैं, तब वे पाप अवश्य करते हैं और वह भी भयंकर।

बाजा

मसजिदोंके सामने बाजे बजाने और अब तो, मन्दिरोंमें आरती करनेके मसलेपर भी मैंने प्रार्थना-पूर्वक सोचा-विचारा है। गो-हत्या जिस तरह हिन्दुओंके लिए क्षोभका कारण है, उसी तरह बाजे और आरती मुसलमानोंके लिए हैं और जिस तरह हिन्दू लोग मुसलमानोंसे जबरदस्ती गो-हत्या बन्द नहीं करा सकते उसी तरह मुसलमान भी, तलवारके बलपर भी, हिन्दुओंको बाजा बजाने या आरती करनेसे नहीं रोक सकते। उन्हें हिन्दुओंकी भलमनसाहतपर भरोसा रखना चाहिए। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं तो हिन्दू भाइयोंको बेशक ऐसी सलाह दूंगा कि सौदा करनेकी भावना न रखकर वे मुसलमान भाइयोंकी भावनाओंका खयाल रखें और जहाँतक हो सके, वहाँतक उन्हें निबाह लेनेकी कोशिश करें। मैंने सुना है कि कितनी ही जगह हिन्दू जान-बूझकर मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ठीक नमाजकी शुरूआतके ही वक्त आरती शुरू कर देते हैं। यह एक विवेकहीन और अमैत्रीपूर्ण कृत्य है। मित्रता तो यह मानकर ही चलती है कि मित्रकी भावनाओंका अधिकसे-अधिक खयाल रखा जायेगा। इसमें अलगसे सोचने-विचारनेकी जरूरत ही नहीं रहती। फिर भी मुसलमानोंको हिन्दुओंके बाजेको जोर-जबरदस्तीसे रोकनेकी उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। मारपीटकी धमकीसे अथवा सचमुच मारपीटके डरसे किसी कामको करना अपने आत्मसम्मान और धार्मिक विश्वासको तिलांजलि दे देने जैसा है। पर जो आदमी स्वयं कभी धमकीसे नहीं डरता वह अपना व्यवहार भी अपने-आप ऐसा रखेगा जिससे दूसरोंको चिढ़नेका मौका कमसे-कम आये और सम्भव हुआ तो वह ऐसा मौका आने ही नहीं दे।

समझौता

ऊपर कही हुई बातोंको देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि हम अभी ऐसी अवस्था तक नहीं पहुँच पाये हैं जहाँ दोनों जातियोंम किसी किस्मके समझौतेकी सम्भावना भी हो। मेरे सामने यह बात बिलकुल साफ है कि समझौतेमें गो-वध तथा बाजेके बारेमें सौदेबाजीका सवाल ही नहीं उठता। यह काम तो दोनों पक्षोंको अपनी-अपनी राजीखुशीसे करना चाहिए। इसे किसी समझौतेका आधार नहीं बनाया जा सकता।

निस्सन्देह राजनैतिक मामलोंके लिए किसी न किसी तरहका समझौता या सहमति आवश्यक है, परन्तु मेरे विचारसे तो कारगर समझौता तभी हो सकता है जब दोनों जातियोंके बीच मैत्री भावना पुनः स्थापित हो जाये। क्या आज दोनों पक्ष सच्चे दिलसे यह मानने के लिए तैयार हैं कि दोनों कौमोंके विवादोंको, चाहे वे मजहबी हों या गैर-मजहबी, निबटानेके लिए शरीर-बलका सहारा नहीं लिया जायेगा? मुझे तो यकीन हो चुका है कि अगर अगुआ लोग न चाहें तो सर्वसाधारण जनता कदापि लड़ना नहीं चाहती। इसलिए अगर अगुआ लोग इस बातपर सहमत हो जायें कि दूसरे तमाम सभ्य और उन्नत देशोंकी तरह हम भी आपसी मारकाटको अधार्मिक

और बर्बरतापूर्ण कृत्य मानकर अपने सार्वजनिक जीवनसे उसका नामोनिशान मिटा दें, तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि आम जनता तत्काल उनका अनुगमन करनेको तैयार हो जायेगी।

जहाँतक राजनीतिक मामलोंका सवाल है, एक असहयोगीकी हैसियतसे मुझे उनमें कोई दिलचस्पी नहीं है। पर भावी समझौतेके बारेमें मेरी राय यह है कि बहुसंख्यक पक्ष होनेके नाते हिन्दुओंको चाहिए कि वे किसी प्रकारकी सौदेबाजी न करें और हकीम अजमलखाँ-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमें कलम देकर कहें कि अब आप जो फैसला कर देंगे वह हमारे सिर-आँखोंपर होगा। सिखों, ईसाइयों, पारसियों आदिके साथ भी मैं ऐसा ही करना पसन्द करूँगा; वे अपनी इच्छासे हमें जो-कुछ दे देंगे, उसीमें सन्तुष्ट रहनेको कहूँगा। मेरे विचारसे यही एकमात्र उचित, न्यायसंगत, सम्मानजनक और शोभनीय समाधान है। यदि हिन्दू लोग विभिन्न जातियोंके बीच एकता चाहते हों तो उनमें अल्पसंख्यक जातियोंपर विश्वास करनेकी हिम्मत तो होनी ही चाहिए। दूसरी किसी भी बुनियादपर किया गया समझौता अरुचिकर सिद्ध होगा। लाखों करोड़ों आम लोगोंको कौंसिल और नगरपालिकाओंमें जानेकी इच्छा नहीं है और अगर हम सत्याग्रहका सही उपयोग समझ गये हैं तो हमें यह जान लेना चाहिए कि इसका उपयोग किसी भी अन्यायी शासकके खिलाफ किया जा सकता है और किया जाना चाहिए — फिर भले ही वह शासक हिन्दू हो या मुसलमान अथवा किसी और कौमका; और जो शासक अथवा प्रतिनिधि न्यायप्रिय होगा, वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों हालतोंमें अच्छा ही होगा। हम साम्प्रदायिक भावनाको समाप्त कर देना चाहते हैं। इसलिए बहुसंख्यक लोगोंको इस दिशामें पहल करनी चाहिए और अल्पसंख्यकोंमें अपनी सदाशयताके प्रति विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। समझौता तो तभी सम्भव है जब कि अधिक शक्तिशाली पक्ष कमजोर पक्षकी ओरसे अनुकूल प्रतिक्रियाकी प्रतीक्षा किये बिना कदम उठाये।

सरकारी विभागोंकी नौकरियोंके बारेमें मेरा खयाल यह है कि यदि इस क्षेत्रमें साम्प्रदायिक भावनाको दाखिल किया गया तो वह सुशासनके लिए घातक होगा। कोई भी प्रशासन दक्ष तभी हो सकता है जब उसकी बागडोर योग्यतम व्यक्तियोंके हाथोंमें हो। पक्षपात तो कतई नहीं होना चाहिए अर्थात् अगर हमें पाँच इंजीनियरोंकी जरूरत हो तो हर जातिमें से एक-एक इंजीनियर न लेकर सबसे ज्यादा पाँच योग्य व्यक्तियोंको चुना जाना चाहिए — भले ही वे पाँचों मुसलमान या पारसी ही हों। यदि आवश्यक समझा जाये तो सबसे नीचेकी जगहोंपर नियुक्ति परीक्षाके आधारपर की जानी चाहिए और यह परीक्षा विभिन्न जातियोंके लोगोंसे गठित निष्पक्ष निकाय द्वारा ली जानी चाहिए। परन्तु इन नौकरियोंका बँटवारा कौमोंकी तादादके अनुपातमें हरगिज नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय सरकारके अधीन शिक्षाके क्षेत्रमें पिछड़ी जातियोंके लोगोंको विशेष शैक्षणिक सुविधा प्राप्त करनेका अधिकार होगा और यह अधिकार उन्हें सुगमतासे प्राप्त हो सकता है। पर जिन लोगोंकी महत्वाकांक्षा सरकारमें उत्तरदायित्वपूर्ण पद पानेकी हो, उनके लिए तो इन निर्धारित परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य रहेगा।

विश्वासका प्रतिफल विश्वास

मेरे लेखे तो आज देशके सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निपटारा तुरन्त किया जाना चाहिए और वह है हिन्दू-मुस्लिम समस्या। मैं श्री जिन्नाकी रायसे सहमत हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका मतलब ही स्वराज्य है। जबतक इस अभागे देशमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच हार्दिक और स्थायी एकता कायम नही होती तबतक मुझे तो कोई रास्ता दिखाई नही देता। मैं यह भी मानता हूँ कि ऐसी एकता तत्काल स्थापित की जा सकती है; क्योंकि एक तो दोनों जातियोंके लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक और आवश्यक है, दूसरे मुझे मानव-स्वभावमें विश्वास है। हो सकता है, ज्यादातर बातोंके लिए मुसलमान जवाबदेह हों। मैं बहुतसे ऐसे मुसलमानोंके भी निकट सम्पर्कमें आया हूँ जिन्हें "बुरा" कहा जा सकता है। फिर भी, मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता, जिसमे मुझे उनके सम्पर्कमें आनेके कारण पछताना पड़ा हो। मुसलमान लोग बहादुर हैं, उदार हैं और जिस क्षण उनका शक रफा हो जाता है, उसी क्षणसे वे विश्वास भी करने लगते हैं। हिन्दुओंको काँचके महलमें बैठकर अपने मुसलमान पड़ौसियोंपर पत्थर फेंकनेका कोई अधिकार नहीं है। खुद हमने दलित जातियोंके प्रति क्या किया है, और आज भी कर रहे हैं इसकी ओर निगाह डालिए। अगर "काफिर" शब्द तिरस्कारका बोधक है तो "चाण्डाल" शब्दमें उससे कितनी अधिक कुत्सा है? दलित जातियोंके साथ हम जो व्यवहार कर रहे हैं उसकी मिसाल शायद दुनियाके किसी मजहबके इतिहासमें नहीं मिलती। अफसोस तो इस बातका है कि यह दुर्व्यवहार अब भी जारी है। वाइकोममें बिलकुल ही प्राथमिक मानवीय स्वत्वोंके लिए कैसा संघर्ष छिड़ा है।[१] ईश्वर प्रत्यक्ष रूपसे सजा नही देता। उसकी गति न्यारी है। कौन कह सकता है कि हमारे आजके तमाम दु:ख इस घोरतम पापके ही फल नहीं हैं? इस्लामकी तवारीखमें यद्यपि कहीं-कही नैतिक ऊँचाईसे गिरावट भी दिखाई देती है, फिर भी अनेक स्थलोंपर बहुत शानदार बातें भी हैं। अपने उत्कर्षके दिनोंमें उसमे असहिष्णुता नहीं थी। सारी दुनिया उसे प्रशंसाकी दृष्टिसे देखती थी। जब पाश्चात्य संसार अन्धकारमें डूबा हुआ था, पूर्वी आकाशमें एक दीप्तिमान नक्षत्रका उदय हुआ, जिसने व्यथित संसारको प्रकाश दिया, सान्त्वना दी। इस्लाम कोई झूठा धर्म नहीं है। हिन्दू लोग आदरके साथ उसका अध्ययन करके देखें, फिर तो जिस तरह उसे मैं चाहता हूँ, उसी तरह वे भी जरूर चाहने लगेंगे। यदि इस देशमें उसमें विकृति और कट्टरता आ गई है तो हमें स्वीकार करना चाहिए कि उसके लिए हम भी कुछ कम जिम्मेदार नही हैं। अगर हिन्दू अपना घर संभाल लें तो मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि इस्लाममें भी उसकी उदार परम्पराओंके योग्य प्रतिक्रिया अवश्य दिखाई देगी। समस्याका समाधान हिन्दुओंके हाथमें है। हमें अपना दब्बूपन अर्थात् कायरता छोड़नी होगी। हमें अपने भीतर इतनी बहादुरी पैदा करनी चाहिए कि हम दूसरोंका विश्वास कर सकें। फिर तो कल्याण ही कल्याण है।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २९०-९१।

'यंग इंडिया'का प्राय: यह सारा ही अंक हिन्दू-मुस्लिम एकताके सवालपर विचार करनेमें ही लगा देना पड़ा। पाठकगण इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अगर वे मेरे इस विचारसे सहमत हैं कि आज भारतके सामने इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक सवाल दूसरा नहीं है तो वे मुझे तुरन्त ही क्षमा कर देंगे। मेरे विचारसे इसी समस्याने ही हमारी प्रगतिका रास्ता रोक रखा है। इसलिए मैं पाठकोंसे निवेदन करता हूँ कि इस वक्तव्यको वे पूरे ध्यानसे पढ़कर ऐसे विचार और तथ्य (जरूरी नहीं कि प्रकाशनार्थ ही हों) लिख भेजें जिनमें इस समस्यापर कुछ अधिक प्रकाश पड़ता हो या जो इस बयानमें मुझसे हुई तथ्य अथवा विचार-सम्बन्धी भूलोंको सुधारनेमें सहायक हों।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-५-१९२४

७८. कांग्रेस-संगठन

मैंने कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर अखबारोंके लिए दिये गये अपने वक्तव्यमें[1] यह कहा था कि जबतक मैं अपने विचारोंके प्रकाशमें इस प्रश्नका विवेचन न कर लूं कि कांग्रेस-संगठनको अपना काम किस प्रकार करना है तबतक मेरा वक्तव्य पूरा नहीं माना जा सकता। मेरा और स्वराज्यवादियोंका मतभेद सच्चा और महत्वपूर्ण है। मेरा खयाल है कि इन सच्चे मतभेदोंको साफ-साफ स्वीकार कर लेनेसे देशकी प्रगति में तेजी आयेगी; जब कि सिर्फ इन मतभेदोंको छिपानेके लिए वस्तुस्थितिपर लीपा-पोती करके कोई समझौता कर लेनेसे देशकी प्रगतिके मार्गमें बाधा ही पड़ती। अब दोनों पक्षोंको अपने-अपने मतोंके प्रतिपादनकी पूरी-पूरी छूट है, अलबत्ता हमारे सामान्य उद्देश्यको आँच नहीं आनी चाहिए।

इसलिए कांग्रेस-संगठनका काम किस प्रकार चलाना है, इसपर विचार करना आवश्यक है। यह बात तो मेरे सामने बिलकुल स्पष्ट है कि जिस प्रकार परस्पर दो विरोधी मत रखनेवाले राजनीतिक दल एक साथ मिलकर किसी शासन-तन्त्रका संचालन कुशलतापूर्वक नहीं कर सकते, उसी प्रकार स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी मिलकर कांग्रेसका संगठन भी कुशलताके साथ नही चला सकते। खिताबों आदिके बहिष्कारको मैं कांग्रेस-कार्यक्रमका बिलकुल ही अभिन्न अंग मानता हूँ। बहिष्कारके दो लक्ष्य हैं: एक तो खिताब आदि प्राप्त लोगोंको समझा-बुझाकर उन्हें छोड़नेके लिए राजी करना; और दूसरे, कांग्रेसको बहिष्कृत संस्थाओंके प्रभावसे पूरी तरह मुक्त रखना। यदि पहला लक्ष्य तत्काल सफल हो गया होता तो हम अपने उद्देश्य तक तभी पहुँच गये होते। लेकिन अगर हमें कभी अहिंसात्मक असहयोगके कार्यक्रमके जरिये अपने उद्देश्य तक पहुँचना है तो दूसरा लक्ष्य भी उतना ही आवश्यक

१. देखिए "वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २२-५-१९२४।

है। मेरे लिए तो बहिष्कार तभीतक राष्ट्रीय है, जबतक राष्ट्रीय कांग्रेस अपने संगठनमें उसको लागू करती है। खिताबयाफ्ता लोग, वकील, शिक्षक और कौंसिलोंके सदस्य एक तरहसे सरकारके प्रशासन-तन्त्रकी स्वयंसेवी शाखाओंके प्रतिनिधि ही हैं। इसलिए यदि इन लोगोंको कांग्रेसके पदाधिकारियोंके रूपमें रखे बिना कांग्रेसको नहीं चलाया जा सकता तो कांग्रेस सरकारी संस्थाओंके प्रभाव और आकर्षण तथा प्रतिष्ठाको कम नहीं कर सकती। कांग्रेसके असहयोग कार्यक्रमके पीछे जो विचार काम कर रहा था, वह यह था कि यदि ऐसे तत्त्वोंके प्रभावके बिना, बल्कि उसके बावजूद, कांग्रेस संगठनका काम हम प्रामाणिक और अहिंसक ढंगसे सफलतापूर्वक चला सकें तो सिर्फ इतने-से ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा। हमारा संख्या-बल इतना जबरदस्त है कि अगर यह राष्ट्रीय संस्था बहिष्कार-आन्दोलनको कारगर ढंगसे चला सके तो यह एक दुर्दमनीय शक्ति बन जायेगी। इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि कोई भी खिताबयाफ्ता व्यक्ति, सरकारी स्कूलका शिक्षक, वकालत करनेवाला वकील, विधायक, विदेशी अथवा मिलोंका बना देशी कपड़ा भी पहननेवाला व्यक्ति या ऐसे कपड़ोंका व्यापार करनेवाला आदमी कांग्रेसकी कार्यकारिणीका सदस्य न हो। ऐसे लोग कांग्रेसके सदस्य तो बन सकते हैं, लेकिन उसकी कार्यकारिणी संस्थाओंके सदस्य उन्हें नहीं बनाया जाना चाहिए। वे कांग्रेसकी बैठकोंमें प्रतिनिधि बनकर जा सकते हैं और उसके प्रस्तावोंको प्रभावित करनेकी कोशिश कर सकते हैं, लेकिन जब एक बार किसी विषयपर कांग्रेस अपनी नीति निश्चित कर ले तो उस नीतिमें विश्वास न करनेवाले लोगोंके बारेमें मेरा विचार यही है कि वे कार्यकारिणीसे बाहर ही रहें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और तमाम स्थानीय कार्यकारिणी समितियाँ ऐसी ही कार्यकारिणी एँस्थाएँ हैं; और उनमें सिर्फ ऐसे ही लोग हों जो कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नीतिमें पूरा-पूरा विश्वास रखते हों और उसपर अमल करनेको तैयार हों। कांग्रेस संगठनमें एकल संक्रामणीय मत [सिंगिल ट्रान्सफरेबल वोट] के नियमकी शुरुआत मैंने ही कराई है। लेकिन अनुभवोंसे स्पष्ट हो गया है कि जहाँतक कार्यकारिणी संस्थाओं-का सम्बन्ध है, यह नियम काम नहीं कर सकता। यदि कार्यकारिणी समितियोंको ऐसी संस्थाएँ बनाना है, फिलहाल जिनके जरिये कांग्रेसकी नीतिको कार्यरूप दिया जाना है तो इस विचारको छोड़ ही देना चाहिए कि इन संस्थाओंमें सभी मतोंके लोगोंको प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

हमें पूरी सफलता न मिलनेका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण यह है कि इन कार्यकारिणी संस्थाओंके सदस्योंका कांग्रेसके सिद्धान्ततक में विश्वास नहीं रहा है। कार्यसमिति द्वारा बारडोली प्रस्ताव पास किये जानेके तुरन्त बाद दिल्लीमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके सम्बन्धमें मैंने जो अपने विचार लिखे थे[1] आज भी मैं उन्हींपर कायम हूँ। उस समय मैंने बिलकुल ही साफ समझ लिया था कि यदि अधिकांश नहीं तो काफी सदस्य कांग्रेस-धर्मके अभिन्न अंगके रूपमें अहिंसा और सत्यमें विश्वास नही रखते। वे यह माननेको तैयार नहीं थे कि "शान्तिपूर्ण" का

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३९९-४०३, ४९२-९३ और ५२५-२९ ।

मतलब "अहिंसापूर्ण" है और "उचित" का मतलब "सत्य" है और मैं जानता हूँ कि आज हममें फरवरी, १९२२ की अपेक्षा हिंसा और असत्यकी भावना कहीं अधिक है। इसलिए, मैं अनुरोध करता हूँ कि जो लोग पंचमुखी बहिष्कार तथा सत्य और अहिंसामें विश्वास नहीं रखते उन्हें कार्यकारिणी संस्थाओंको छोड़ देना चाहिए। इसीलिए मैंने कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी अपने वक्तव्यमें कहा है कि विभिन्न दल रचनात्मक कार्यक्रमको अपने-अपने संगठनोंके जरिये ही पूरा करें। यदि पंचमुखी बहिष्कार तथा सत्य और अहिंसामें पूर्ण विश्वास रखनेवाले लोग हों तो उनके लिए तो कांग्रेसके अलावा और कोई संगठन ही नहीं है। इसलिए मेरे विचारसे स्वराज्य-वादियोंके लिए सबसे स्वाभाविक रास्ता यही है कि वे अपने ही संगठनोंके जरिये रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करें। जहाँतक मैं देख पाता हूँ, उनके कामका तरीका बहिष्कारवादियोंके तरीकेसे भिन्न होगा। यदि वे कौंसिल-प्रवेशको सफल बनाना चाहते हैं तो उन्हें अपनी सारी शक्तिका उपयोग उसी काममें करना चाहिए और इसलिए उनके लिए रचनात्मक कार्यक्रममें सहायता देनेका भी तरीका यही है कि वे कौंसिलों और विधानसभाके जरिये उसे पूरा करनेकी कोशिश करें।

व्यक्तिशः मैं तो ऐसी किसी रस्साकशीमें शरीक नहीं होऊँगा जिसमें प्रत्येक पक्ष कांग्रेस कार्यकारिणीपर अपना-अपना आधिपत्य जमाना चाहता हो। अगर जरूरी ही हो तो वह संघर्ष आगामी दिसम्बरके कांग्रेस अधिवेशनमें बिना किसी गरमागरमी या कटुताके किया जा सकता है। कांग्रेस अधिवेशनका काम विचार-विमर्श करना और नियम बनाना है। लेकिन जो स्थायी संस्थाएँ हैं, वे विशुद्ध रूपसे कार्यकारिणी संस्थाएँ हैं, जिनका काम कांग्रेस अधिवेशनमें पास किये गये प्रस्तावोंपर अमल कराना है। मुझे बड़ी उतावली है। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत पूर्ण और विशुद्ध अहिंसात्मक असहयोग कार्य-क्रममें मेरा अटल विश्वास है और किसी कार्यक्रममे मेरा विश्वास है ही नही। यदि मुझे ऐसे अहिंसावादी और सत्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता मिल जायें, जो मेरी ही तरह बहिष्कारों, खद्दरकी क्षमता, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास करते हों तो फिर मुझे यही महसूस होने लगेगा कि हममें से अधिकांश लोग जितना सोचते हैं, उससे कहीं अधिक जल्दी ही स्वराज्य आ रहा है। लेकिन, यदि हम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें तू-तू, मैं-मैं करते चले जायें तो एक-दूसरेको बदनाम करने और एक-दूसरेके मार्गमें बाधा डालनेके अलावा और कुछ नही कर सकते। यदि दोनों दल बिना किसी द्वेषभावनाके ईमानदारीके साथ अलग-अलग (क्योंकि और कोई रास्ता नहीं है) अपना-अपना काम करते रहें तो वे एक-दूसरेको काफी सहायता पहुँचा सकते हैं।

मुझे यकीन है कि आगामी बैठकमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सभी सदस्य शामिल होंगे। यदि हम एक-दूसरेके इरादोंको खराब बताये बिना कार्यकी योजनापर शान्तिपूर्वक विचार कर सकें और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको समान विचारोंवाले लोगोंकी समिति बना सकें तो आगामी छः महीनोंमें हम बहुत ज्यादा काम कर सकते हैं। मैं हर पुरुष और स्त्री सदस्यसे सादर अनुरोध करूँगा कि वे खुद इस कार्यक्रमके सम्बन्धमें अपने मनको टटोलें। अगर इस कार्यक्रमके वर्तमान रूपमें उनका विश्वास न हो और वे मानते हों कि सिर्फ इसीके भरोसे स्वराज्य

प्राप्त नहीं हो सकता और अगर उनकी यह मान्यता सचमुच उनके निर्वाचकोंकी भावनाओंकी द्योतक हो तो मैं कमेटीको वेहिचक यह सलाह दूंगा कि वह इस कार्य-क्रमपर पुनः विचार करने और अगले वर्ष उसपर मोहर पानेकी आशासे उसमें आमूल परिवर्तन करनेतक का खतरा उठाये। निस्सन्देह इसे जनताका सच्चा समर्थन प्राप्त होना चाहिए। यदि ये दो शर्तें पूरी होती हों तो मुझे कोई सन्देह नहीं कि संविधानमें चाहे कुछ भी हो, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका यह कर्त्तव्य है कि वह निन्दा और आलोचनाका खतरा उठाकर भी कांग्रेसकी नीति वदल दे और वर्षके अन्ततक उपयोगी और ठोस काम करके दिखाये। गतिरोधसे तो हर हालतमें वचना ही है।

इतना सब लिख चुकनेके वाद मेरा ध्यान इस वातकी ओर आकर्षित किया गया कि मेरे इन विचारोंके कारण स्वराज्यवादी लोग जनताकी नजरोंमें अपरिवर्तन-वादियोंसे कमजोर और हीन दिखाई देने लगे हैं। मेरे मनमें ऐसा कोई विचार तो सपनेमें भी नहीं आ सकता। यहाँ योग्यताका तो कोई सवाल ही नहीं उठता, वात प्रकृति-भेदकी है। मेरे लिखनेका एकमात्र उद्देश्य इतना ही है कि कांग्रेस कार्यकारिणीका काम कारगर ढंगसे चलता रहे। यह तभी हो सकता है, जव सभी कार्यकारिणी संस्थाओंका संचालन एक ही दलके लोग करें। यदि स्वराज्यवादियोंके विचार ज्यादा लोकप्रिय हों तो कार्यकारिणी संस्थाएँ सिर्फ उन्हींके हाथोंमें रहनी चाहिए। कांग्रेसको तो वरावर जो विचार लोकप्रिय हो, उसीका प्रतिनिधित्व करना चाहिए, चाहे वह विचार अच्छा हो या नहीं। जो लोग लोकमतके विपरीत विचार रखते हैं — जरूरी नहीं है कि ऐसे लोग कमजोर और हीन ही हों — उनका कर्त्तव्य यही है कि वे वाहर रहकर ही जनमतको प्रभावित करनेकी कोशिश करें। यदि अपरिवर्तनवादी लोग परिवर्तनवादियोंको सिर्फ इस कारणसे कि वे उनसे भिन्न विचार रखते हैं, किसी भी तरह अपनेसे हीन समझेंगे तो वह अपने दायित्वके प्रति विश्वासघात होगा।

मेरा ध्यान इस वातकी ओर भी आकर्षित किया गया है कि कार्यकारिणी संस्थाओंपर किसी एक ही दलके नियन्त्रणकी वातकी मेरी हिमायत, दिल्लीमें पास किये गये और पुनः कोकनाडामें पुष्ट किये गये प्रस्तावकी भाषाके नहीं तो भावके विरुद्ध अवश्य है। मैंने दोनों प्रस्तावोंको ध्यानसे पढ़ा है। मेरे विचारसे दिल्लीके प्रस्तावमें और विशेषकर कोकनाडाके प्रस्तावमें कार्यकारिणी संस्थाओंके संयुक्त नियन्त्रणकी कोई वात नहीं कही गई है। कोकनाडा प्रस्तावमें सिर्फ दिल्लीके प्रस्तावकी पुष्टि ही नहीं की गई, वल्कि उसमें अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तपर जोर दिया गया है। अगर इन प्रस्तावोंका आशय समझनेमें मुझसे गलती भी हुई हो तो मेरी दलीलपर उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह तो सिर्फ मेरी राय है; सदस्यगण उसे स्वीकार करें, चाहे न करें; ऐसा करनेमें मेरा उद्देश्य यही है कि काम फुर्तीसे हो। मुझे लगता है कि दोनों दल एक-दूसरेको कारगर ढंगसे सहायता तभी पहुँचा सकते हैं जव वे अपने-अपने क्षेत्रोंमें रहकर ही काम करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-५-१९२४

७९. पत्र : मणिबहन पटेलको

[२९ मई, १९२४ के पश्चात्][1]

चि० मणि,

वाह! कल तुम सब आये और चले गये[2]। अब सन्देश भेजती हो। रोगी जितनी बार चाहे अपने वादेसे मुकर सकता है। उसे कोई भी वादा नहीं बाँधता। इसलिए अगर अब न आओ तो वह माफ रहेगा। फिर भी जब आना चाहो तब आ भी सकती हो। मैं तो एक ही बात जानता हूँ कि तुम किसी न किसी तरह चंगी हो जाओ।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन पटेल
खमासा चौकी
अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

८०. पत्र : अब्बास तैयबजीको

आश्रम
शुक्रवार [३० मई, १९२४][3]

बूढ़े जवान भाई साहब,

आप तो कमाल कर रहे हैं। मुझे आपके पत्र मिलते हैं। जब-जब आपके परिवारके लोग मुझसे मिलने आते हैं तब-तब मेरी आँखोंमें खुशीसे आँसू आ जाते हैं। मैं आपसे जिन कामोंकी आशा करता हूँ वे तो आप पूरे करते ही हैं; जब आशा नहीं करता तब भी आप कोई ऐसा काम उठा लेते हैं जो आप मानते हैं कि

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र साबरमतीसे भेजा गया था, जहाँ गांधीजी २९ मई, १९२४को पहुँचे थे।

२. मणिबहन पटेल आश्रममें आई थी और गांधीजीसे मिले बिना ही चली गई थी, क्योंकि वे उस समय सोये हुए थे।

३. अब्बास तैयबजीपर "जवान बूढ़ा" शीर्षकसे टिप्पणी १-६-१९२४के नवजीवनमें छपी थी। उससे पहलेका शुक्रवार ३०-५-१९२४को पड़ता है।

मुझे पसन्द आयेगा, मैंने तो मीठा विनोद ही किया था पर आपने गुजरातीमें एक अति सुन्दर पत्र ही लिख भेजा। उसे 'नवजीवन' के पाठकोंके सामने प्रस्तुत न करूँ, यह कैसे हो सकता है? आप 'नवजीवन' किसी दूसरेसे पढ़वाकर सुनते रहें।

अमीनाके[1] विवाहके निमन्त्रणपत्रोंपर पते कई लोगोंसे लिखवाये थे। मैंने आपका नाम भी सूचीमें डाला था; परन्तु बादमें काट दिया। आपको निमन्त्रणपत्र भेजनेका अर्थ यही होता कि कुछ रुपया आपसे भी लेना है। मैंने कुछ निमन्त्रणपत्र अपने गुजराती हिन्दू मित्रोंके नाम यह दिखानेके लिए अवश्य भेजे हैं कि एक मुसलमानकी पुत्री मेरी ही पुत्री है। परन्तु उन लोगोंके विवाहमें सम्मिलित होनेकी मुझे आशा नहीं है। वे अगर रुपया भेजेंगे तो वह लिया हरगिज नहीं जायेगा। मैंने जो थोड़ा-सा पैसा इस सम्बन्धमें खर्च किया है वह इसलिए किया है कि मुझे अपनी मुसलमान बेटी अमीनाका पाणिग्रहण-संस्कार स्वयं अपने हाथों कराना है और इमाम साहबकी ख्वाहिश भी यही है। अगर मुझे किसी हिन्दू लड़कीका विवाह-संस्कार करना हो तो मैं एक कौड़ी भी खर्च न करूँ। मैंने आपको निमन्त्रणपत्र केवल यह देखनेके लिए भेजा है कि वह कैसा है।

श्रीमती अब्बास, रेहाना और आपके कुटुम्बके अन्य लोग मुझसे मिलने प्रायः आते हैं।

यदि मेरी लिखावट आपसे पढ़ते न बने अथवा आपको गुजराती लिखनेमें अड़चन हो तो आप अपना पत्र अंग्रेजीमें ही लिखें और मुझे भी उत्तर अंग्रेजीमें देनेके लिए कहें।

मैं मीठे फल देनेवाले पेड़को जड़ समेत नहीं खा जाना चाहता।

आपका भाई,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च:]

मैं आपके पत्रकी बात इमाम साहबसे कहूँगा। आप रुपये कदापि न भेजें।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९५४६) की फोटो-नकलसे।

१. इमाम बावजीरकी बेटी, जिसका विवाह ३१ मई, १९२४को हुआ था।

८१. भेंट: 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे[1]

[साबरमती
३० मई, १९२४]

प्र०: महात्माजी, 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने एक लेखमें आपने डा० महमूदका वक्तव्य दिया है। वक्तव्यमें कहा गया है कि ऐसा एक भी मामला सिद्ध नहीं हो पाया है, जिसमें मोपलोंने जोर-जबर्दस्तीसे हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन किया हो, जैसा कि हिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यसे बिलकुल स्पष्ट देखा जा सकता है। क्या आप इस वक्तव्यसे सहमत हैं?

उ०: मैं चाहता हूँ कि आप मेरा लेख थोड़ी और सावधानीसे पढ़ते। मैंने सिर्फ डा० महमूदका विचार उसमें दिया है, अपना नहीं।

इसीलिए मैं पूछ रहा हूँ कि आपकी अपनी क्या राय है। आपने जब डा० महमूदका विचार प्रकाशित करना ठीक समझा तो साथ ही सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके डा० मुंजे और श्री देवधरके विचारोंको भी उसमें स्थान क्यों नहीं दिया?

मुझे नहीं मालूम, डा० मुंजेने मलाबारके बारेमें क्या लिखा है। डा० महमूदने खुद मुझे यकीन दिलाया था कि मलाबारके हिन्दुओंने उनके विचारकी पुष्टि की है। लेकिन मेरे लेखमें आपको सिर्फ यही एक बड़ी कमी क्यों दिखाई पड़ी? मैंने उसमें यह भी तो कहा था कि स्वभावसे ही हर मुसलमान आवारा है और मौलाना बारी साहब कभी बहुत ही खतरनाक दोस्त भी साबित हो सकते हैं। इससे जनतामें निश्चय ही एक सनसनी फैल जायेगी। आर्य समाजके बारेमें भी स्थिति ऐसी ही है। मैं तीन बार 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ चुका हूँ पर मुझे उससे घोर निराशा हुई है।

महात्माजी, मुझे आपसे और भी विषयोंपर बातें करनी हैं। अब वे किसी और अवसरपर करूँगा।[2]

बेशक, मैं चाहता हूँ कि जो भी बात आपके मनको बेचैन किये हो उसे आप निस्संकोच जैसीकी तैसी व्यक्त कर दें। मैं तो जो भी उचित लगेगा, लिखूंगा ही। आप प्रान्तीय स्वायत्त स्वशासनकी मंजूरीकी बाट बेसब्रीसे जोह रहे हैं। लेकिन मैं उससे अधिक चाहता हूँ, यदि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके इस सवालको लेकर भारत-भरका छः महीने तक दौरा करूँ तो सरकार अपना यह उपेक्षाका रुख बदल देगी और घबरा उठेगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-६-१९२४

१. नागपुरके हिन्दी दैनिक स्वातन्त्र्यका एक प्रतिनिधि ३० मई तथा ३ जूनको गांधीजीसे साबरमती आश्रममें मिला था। इस भेंटकी हिन्दी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए "भेंट: 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे", ३-६-१९२४।

८२. पत्र : महादेव देसाईको

[३१ मई, १९२४][1]

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है अब तुम्हारी बहनको आराम हो गया होगा। मैंने 'ब्रह्मचर्य'के[2] अनुवादको गाड़ीमें ही सुधार लिया था। इसमें गलती तो एक भी नहीं थी; कहीं-कहीं कुछ बदला है। इसे प्रकाशित करनेका विचार है। बीसनगर सम्बन्धी लेख अभी मेरे पास ही है। मैं उसमें संशोधन करना चाहता हूँ। क्या मुझे जगानेमें कोई दिक्कत आई थी।[3] यहाँ मुझे ठीक शान्ति प्राप्त है। मैं एक बजे तक तो मौन ही रखता हूँ इसलिए काम भी बहुत-सा निबटा लेता हूँ। 'नवजीवन' का जो अगला अंक निकालना है, मैंने उसकी सामग्री अभी छुई भी नहीं है। मैं प्रातः ६ बजेसे ७ बजे तक मौन रखता हूँ।

नरहरि कल यहाँ आ गये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]
शनिवार

अभी-अभी तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। यदि बच्चूको परमैंगनेटके पानीसे नहलाया जाये तो वह सम्भवतः अब भी बच सकती है। इस स्नानसे शीतला शान्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन तुम्हारे जानेके बाद तुम्हारे विचारोंके सम्बन्धमें . . .।[4]

भाई श्री महादेव देसाई
मार्फत, स्टेशन मास्टर, बलसाड

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८८४४) की फोटो-नकलसे।

१. डाक खानेकी मुहरके अनुसार।

२. देखिए पृष्ठ १२१-२४।

३. गांधीजी २८ मईको बम्बईसे अहमदाबाद जा रहे थे। जान पड़ता है तब महादेव भाई बलसाडपर उनसे मिलने गये होंगे।

४. यहाँ वाक्य अधूरा है।

८३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद
३१ मई, १९२४

श्री गांधीसे पूछा गया कि 'यंग इंडिया'में कांग्रेस-संगठनके सम्बन्धमें लिखे गये उनके लेखको[1] देखते हुए क्या कांग्रेसमें दरार पड़ना अवश्यम्भावी नहीं हो गया है। उन्होंने उत्तर दिया:

यह तो इस बातपर निर्भर करता है कि आप दरारका अर्थ क्या लगाते हैं। यदि आपका मतलब दो दलोंसे है तो कहूँगा कि हाँ, दो दल तो गया कांग्रेसमें[2] ही हो गये थे। कॉमन्स सभामें कई दल शामिल हैं, लेकिन आप उसे अंग्रेज-राष्ट्रमें दरार पड़ना तो नहीं कहते। अब कांग्रेसमें दो दल रहेंगे, लेकिन मुझे आशा है कि उसमें दरार तो नहीं पड़ेगी। जैसे कामन्स सभामें सबसे अधिक लोकप्रिय दल ही हमेशा सत्तारूढ़ रहता है उसी तरह कांग्रेसके भीतरके सबसे लोकप्रिय दलको ही इस राष्ट्रीय संगठनकी बागडोर सँभालनी चाहिए और जैसे कि लिबरल दलवाले कंजरवेटिव दल या लेबर दलवालोंको अपनेसे छोटा माननेकी धृष्टता नहीं कर सकते और न करते हैं उसी तरह अपरिवर्तनवादी भी अपने-आपको अन्य दलोंसे ऊँचा नहीं मान सकते और न अन्य दलवाले ही अपने-आपको उनसे ऊँचा मान सकते हैं। मेरे सुझावमें कमसे-कम यह कोशिश तो की ही गई है कि दरार न पड़ने पाये और यदि वह कार्यक्षमताकी पक्की गारंटी न भी देता हो तो भी उसके लिए अत्यन्त अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करता है। मेरा मिली-जुली सरकारमें कभी यकीन नहीं रहा और ऐसे समयमें तो हरगिज नहीं जब बहुत महत्वपूर्ण बातोंपर मतभेद मौजूद हों; या आप चाहें तो कह सकते हैं कि जब ऐसी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ मौजूद हों जिनके कारण एक-दूसरेके बिलकुल भिन्न और नितान्त विरुद्ध कार्य-प्रणालियाँ अपनाना आवश्यक हो जाये।

फिर श्री गांधीसे पूछा गया कि उनके खयालसे सरकारपर इसका क्या असर पड़ेगा और क्या इसके फलस्वरूप सुधारोंकी दिशामें जिस प्रगतिकी आशा की जा रही है, उसकी सभी सम्भावनाएँ समाप्त नहीं हो जायगी, इसपर उन्होंने कहा:

मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे मालूम है कि कुछ लोगोंका कहना है कि अगर मैं परिवर्तनवादी लोगोंके साथ मिलकर काम करने लगता तो सरकार थर्रा उठती। मेरा विचार इससे बिलकुल ही उलटा है। भारत सरकारकी बागडोर सँभालनेवाले अधिकारी मूर्ख नहीं हैं। वे काफी चालाक और सतर्क लोग हैं। वे जानते हैं कि

१. देखिए "कांग्रेस-संगठन", २९-५-१९२४।
२. सन् १९२२ में।

अगर कोई वास्तविक दवाव पड़ता है तो वह अपरिवर्तनवादियोंका ही पड़ता है, क्योंकि सविनय अवज्ञासे उनकी रूह काँपती है। सविनय अवज्ञाके लिए वे ही लोग संगठन कर सकते हैं जो उसीके लिए अपना सारा समय दें और उसीपर सारा ध्यान लगायें। अगर अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी एक-दूसरेकी राहमें रोड़ा अटकाते हैं तो सरकार अवश्य ही प्रसन्न होगी। मैं तो ऐसी किसी वातमें शामिल नहीं होऊँगा और मैं समझता हूँ कि ये दोनों दल भी इसमें शामिल नही होना चाहेंगे। दोनों ही स्वराज्य हासिल करना चाहते हैं और जल्दीसे-जल्दी। इसलिए दोनों उसके लिए अपने-अपने ढंगसे काम करेंगे। लिवरल लोग चाहे स्वीकार करें या न करें, तथ्य यही है कि असहयोगियोंके ही कार्योंके परिणामस्वरूप सरकारमें लिवरलोंकी पूछ होने लगी है। देशमें अगर कोई प्रगतिशील दल कौंसिलोंके वाहरसे सरकारपर दवाव डाले तो उससे सुधारोंके समर्थकोंको सदा ही सहायता मिलेगी। मैं तो यहाँतक कहता हूँ कि अगर पूर्ण वहिष्कारके सभी समर्थक खत्म हो जायें तो कौंसिलोंमें कौंसिलवालोंकी स्थिति वड़ी ही दयनीय हो जायेगी। इसमें मैं यह मानकर चल रहा हूँ कि सर्वसाधारण हिंसाका रास्ता कभी नहीं अपनायेगा। सभी निरंकुश सरकारें जरूरी तौरपर जनशक्तिके उभारसे डरती हैं, खासतौरसे तव जब जनशक्तिका उभार अनुशासनवद्ध और शान्तिपूर्ण हो। वर्तमान सरकार, हिन्दुओं और मुसलमानोंके वीच जो एकता वढ़ रही है, उससे डरती है और अगर खद्दरका कार्यक्रम कहीं सफल हो जाये, और जो जरूर ही होगा, तव तो उसके होश ही उड़ जायेंगे। इससे सरकार जनताके दृष्टिकोणको स्वीकार कर लेगी और एक ऐसी अत्यन्त शान्तिमय क्रान्ति घटित होगी जैसी संसारने कभी नहीं देखी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २-६-१९२४

८४. वीसनगरके हिन्दू और मुसलमान

इस वावत मुझे ढेरों पत्र प्राप्त हुए हैं। पत्र-लेखक भी इन सव पत्रोंके प्रकाशित किये जानेकी आशा नहीं करते। यह वात उनकी उदारताकी परिचायक है और इससे यह भी मालूम होता है कि मैंने 'नवजीवन' पत्रके संचालनमें जो मार्ग अपनाया है वे उस मार्गकी कद्र करते हैं। जिस पत्रमें किसीपर आक्रमण किया गया हो उसे मैं कदापि प्रकाशित नहीं करूँगा। जिससे कौमोंमें परस्पर द्वेष फैले, मैं ऐसी चीज भी नहीं छापूंगा। मैं द्वेषभावसे तो एक अक्षर भी नहीं लिख सकता। यदि मैंने वीसनगरके कौमी तनातनीको लेकर कुछ लिखा है तो वह सिर्फ दोनों कौमोंको शान्त करने, समझाने-बुझाने और उनका एक-दूसरेके प्रति क्या कर्त्तव्य हो सकता है—यह सब वतानेके लिए ही लिखा है।

इस दृष्टिसे विचार करनेपर मुझे जितने पत्र प्राप्त हुए है उनमें से एकको भी प्रकाशित करना जरूरी नहीं है। वहुत दिन पहले मेरे पास महासुखभाईका भी पत्र

आया था। इसे भी मैंने अनिच्छाके कारण प्रकाशित नहीं किया। तथापि यह सोचकर कि मुझसे जाने-अनजाने अन्याय होनेकी शंका भी लोगोंके मनमें न आये, मैंने उस पत्रको प्रकाशित करना ठीक समझा। इस बीच मेरे पास आये हुए कुछ पत्रोंसे तथा उनमें उक्त पत्रके कुछ मुद्दोंका जवाब देखकर मुझे मालूम हुआ कि महासुखभाईका पत्र अन्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है और अब उनके प्रति न्यायकी दृष्टिसे भी उसे छापना आवश्यक नहीं रहा।

जिस पत्र-लेखकने मुझे खबर दी है उसके प्रति न्याय करनेकी भावनासे मैं इतना तो कह दूं कि "गाय-बैल" के बजाय "पशु" शब्दका प्रयोग तो मैंने ही किया है। पत्र-लेखकने तो "गाय-बैल" शब्द ही लिखे थे। सम्भव है इसमें अतिशयोक्ति हो, इस आशंकासे मैंने विशेष शब्दको छोड़कर सामान्य शब्दका प्रयोग किया था। दलीलके खयालसे विशेष शब्दकी जरूरत न थी।

मेरे पास अन्य कुछ पत्र आये हैं जिनसे प्रकट होता है कि मुसलमान भाइयोंसे श्री महासुखभाईके सम्बन्ध अच्छे हैं। हम सब आशा करते हैं कि वे इन सम्बन्धोंका सदुपयोग करके दोनों कौमोंको एक दिल करेंगे तथा वीसनगरमें दोनोंके बीचकी कड़वाहटको मिटायेंगे। 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोंके अपने बचावमें लिखे गये पत्र भी मेरे सामने हैं और उनपर किये गये आक्षेपोंसे भरे हुए पत्र भी। 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोंको अथवा जिन्होंने कोई अयोग्य काम नहीं किया है उनको अपना बचाव करनेकी जरूरत ही नहीं है। व्यक्तिके काम ही उसे बचाते हैं। जिसकी करनीमें दोष नहीं होता वही आक्षेपोंको सहन करता है, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि सुकर्मके तेजको आरोपके बादल ज्यादा देरतक ढककर नहीं रख सकते। अतः यदि 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोंने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है तो वे निर्भय रहें और यदि उनसे कोई अनुचित काम बन पड़ा है तो उन्हें उसको शुद्ध हृदयसे स्वीकार कर लेना चाहिए तथा फिर कभी ऐसा काम न करना चाहिए। यही उनका पश्चात्ताप होगा। 'सफेद टोपी' पहननेवाले सभी लोग अच्छे होते हैं ऐसा तो मैंने कभी नहीं माना। फिर अभी लोगोंके दिलोंमें खादीके प्रति प्रेम-भाव दृढ़ नहीं हुआ है। लेकिन जब सर्वत्र खादीका प्रयोग होने लगेगा तथा मिलोंके कपड़े शायद ही दिखाई देंगे तब तो शाह और चोर दोनों ही सफेद टोपीधारी होंगे। खाना-पीना और कपड़ा पहनना तो साधु और असाधु दोनोंके सामान्य कर्म हैं। इसलिए यह वांछनीय है कि सफेद टोपी पहननेवाले तथा समाजके अन्य लोग यह समझना बन्द कर दें कि 'सफेद टोपी' सद्गुणोंके एकाधिकारकी सूचक है।

हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' में मैंने जो लेख लिखा था उसका अनुवाद 'नवजीवन' में प्रकाशित हो चुका है।[1] एकताके इच्छुक प्रत्येक हिन्दू और मुसलमानसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस लेखको ध्यानपूर्वक पढ़ जायें। ऊपर मैंने जिन पत्रोंका उल्लेख किया है उनमें से एक पत्र एक मुसलमान भाईका भी है। सम्भवतः उन्होंने भी वह लेख समस्त पत्रोंमें प्रकाशित करवानेके इरादेसे ही लिखा है।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६१-६५।

वह प्रकाशित हुआ हो या न हुआ हो, लेकिन मुझे कहना चाहिए कि मुझे उसमें तटस्थता नहीं दिखती। मुझे हिन्दुओंकी ओरसे जो पत्र प्राप्त हुए हैं उनमें शुद्ध सत्य ही है, सो मैं नहीं मानता। लेकिन इन मुसलमान भाईने तो तटस्थ होनेका दावा किया है और लिखा है कि खोज-बीन करनेके बाद उन्हें जो सत्य जान पड़ा है, उन्होंने केवल उसीका निरूपण किया है। इतना होनेपर भी या तो वे बहुत भोले हैं या वीसनगरके मुसलमान भाई उनसे सत्यको पूरी तरह छुपानेमें समर्थ हो गये। जबतक दोषी होनेके बावजूद हममें अपने-आपको निर्दोष सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति बनी रहेगी तबतक हमारे मनकी मलिनता कदापि दूर नहीं होगी। दोषको छिपानेमें ही दोषको बनाये रखनेकी इच्छा निहित है। इस स्थितिमें सच्चा समझौता नहीं हो सकता। जो भी हिन्दू अथवा मुसलमान अपने दोषको छिपाते हैं, वे अपने धर्मको बट्टा लगाते हैं। धार्मिक मनुष्य तो अत्यन्त शुद्ध भावसे अपने दोषको स्वीकार करता है और इसीलिए, ईश्वर अथवा खुदा उससे प्रसन्न रहता है। हम अपने दोषोंको बड़ा मानें और दूसरेके दोषोंको दरगुजर करें — यह हमारा स्वभाव होना चाहिए। यह कुलीनताकी निशानी है। किन्तु हमारा वर्तमान व्यवहार इससे विपरीत ही है। लोगोंके रजकणके समान दोषको हम पहाड़-जैसा देखते हैं और अपना पहाड़-जैसा दोष हमें रजकणसे भी छोटा दिखता है — इतना छोटा कि उसे देखनेके लिए हमें सूक्ष्मदर्शक यन्त्रकी जरूरत पड़ती है।

इस समय मैं वीसनगरके हिन्दुओं और मुसलमानोंसे इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता; लेकिन इतना तो उनसे अवश्य कहूँगा कि मैं वीसनगरके हिन्दुओं और मुसलमानोंके झगड़ेको पल-भरके लिए भी नहीं भूला हूँ। मैं स्वयं फिलहाल बाहर जा सकूँ ऐसी स्थितिमें नहीं हूँ; लेकिन मैं अन्य भाइयोंको भेजनेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। मौलाना मुहम्मद अलीने मुझसे कहा है कि बड़ौदा राज्यके हिन्दू और मुसलमान दोनों उनको अच्छी तरह जानते हैं और उनमें इतनी हिम्मत है कि वे इस झगड़ेको तो अकेले जाकर ही निपटा सकते हैं। इसलिए यदि आवश्यकता जान पड़ी तो मैं उनसे जानेका अनुरोध करूँगा। मुझे तो यह उम्मीद है कि वीसनगरके हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने झगड़ेको स्वयं ही शुद्ध भावसे निपटा लेंगे, जिससे किसीको मध्यस्थता करनेके लिए न जाना पड़े और इस तरह वे लोग अन्य प्रान्तोंमें जहाँ झगड़े हो रहे हैं वहाँके लोगोंके सामने आदर्श प्रस्तुत करेंगे। समस्त हिन्दुस्तानमें ऐसी भव्य स्थिति हो जानी चाहिए कि दुर्बल हिन्दूकी रक्षा मुसलमान करें और दुर्बल मुसलमानकी रक्षा हिन्दू करें। ऐसी स्थिति किसी न किसी दिन आयेगी भी अवश्य।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८५. टिप्पणियाँ

जवान बूढ़ा

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब्बास साहब मेरे मीठे उलाहनेको[1] सुनकर चुप रहनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। उन्हें गुजराती आती है। यह बात तो सभी गुजराती जानते हैं। अब उन्होंने मुझे गुजरातीमें पत्र लिखना शुरू किया है। मैं इसमें से कुछ अंश नमूनेके तौरपर पाठकोंके सामने प्रस्तुत करता हूँ।[2]

मैंने उनकी उस गुजरातीको सुधारे बिना ही पाठकोंके सामने पेश किया है: मैं स्वयं बहुत-सी भूलें करता हूँ, इस बातसे पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। "शिखर-निवासी"[3] मुझे बताते हैं कि मुझसे अभीतक भूलें होती हैं। मुझे कुछ भूलोंको देखकर शर्म आती है। लेकिन चूंकि मैं स्वयं भूलोंसे भरा हुआ हूँ इसलिए अब्बास साहबकी सदोष गुजराती मुझे उनकी निर्दोष अंग्रेजीसे कहीं अधिक प्रिय है। जिस तरह मैं अपनी भूलोंके बावजूद गुजराती लिखना छोड़नेवाला नहीं हूँ उसी तरह अब्बास साहबको भी भूलें सुधारनेकी इच्छा हो तो सुधारकर, नहीं तो वैसे ही लगातार गुजरातीमें ही लिखते रहकर अन्य गुजरातियोंके दिलोंमें स्वभाषाके प्रति अभिमान जाग्रत करना चाहिए। उनका 'पुष्ठक'[4] शब्द तो मुझे अत्यन्त मधुर लगता है। किन्तु यदि वे भविष्यमें अन्य गुजराती पुस्तकें न पढ़ें तो भी हमारी इच्छा है कि वे कमसे-कम 'नवजीवन' तो अवश्य पढ़ते रहें। 'शिखर निवासी' ने मेरी जिन भूलोंकी ओर संकेत किया है और जिनके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ, मैं भविष्यमें जल्दी ही 'नवजीवन'में उन भूलोंकी एक फेहरिस्त प्रकाशित करनेवाला हूँ। इससे अब्बास साहब अपनी भूलोंपर शर्मिन्दा नहीं होंगे तथा मेरी भूलोंको सुधारके 'नवजीवन' पढ़ेंगे तथा अपेक्षाकृत अच्छी गुजराती लिखेंगे। अब्बास साहबकी सेवामें निरत लोगोंको उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वे उनसे 'नवजीवन' पढ़वाकर सुनें।

अब्बास साहबने एक और ऐसी बात लिखी है जो गुजरातियों और हिन्दुस्तानके सभी लोगोंको प्रोत्साहन देगी। वे लिखते हैं: "भाई साहब, आपने तो मुझे एक 'बूढ़े'के रूपमें सारे हिन्दुस्तानमें मशहूर कर दिया, लेकिन मैं तो अपने-आपको जवान समझता हूँ।" यदि हम इस बूढ़ेको दर्पण भी दे दें तो भी वह अपने-आपको बूढ़ा न मानेगा, क्योंकि उसका दिल जवान है। उनके साथ स्थान-स्थानपर भटकनेवाले लोग मुझे बताते हैं कि वे स्वयं थक जाते हैं, लेकिन अब्बास साहब कभी नहीं थकते। सच है, जो जवानोंसे भी अधिक काम करता है वह बूढ़ा होते हुए भी

१. गुजरातीमें पत्र न लिखनेके सम्बन्धमें।

२. यहाँ नहीं दिये गये हैं।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५२७-३०।

४. पुस्तक।

जवान है। जिसका एक भी बाल सफेद नहीं हुआ, जिसके सब दाँत मौजूद हैं, ऐसा युवक अगर आलस्यवश देश-सेवा नहीं करता तो वह जवान होनेके बावजूद बूढ़ा है। हमारी कामना है कि हिन्दुस्तानमें अब्बास साहब-जैसे जवान-बूढ़े बहुतसे हों।

'कोई उत्साह नहीं'

भाई मोहनलाल पण्डयाने इस शीर्षकके अन्तर्गत प्रायश्चित्तके[1] रूपमें निम्न पत्र लिखा है।[2]

इस पत्रको पढ़कर अण्णा साहबका खून तो सेर-भर बढ़ जायेगा और सब लोग जहाँतक उनसे बन पड़ेगा राष्ट्रके काम-काजमें राष्ट्रभाषाका प्रयोग करने लगेंगे। मैं हिन्दी पढ़नेके अभिलाषी व्यक्तिको एक आसान रास्ता बताता हूँ। अगर उससे बन पड़े तो उसे व्याकरणकी एक सरल पुस्तक पढ़ लेनी चाहिए। जहाँतक मेरा खयाल है, अब तो 'हिन्दी गुजराती शिक्षक' नामक पुस्तक प्रकाशित हो गई है। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो वह उसे खरीद ले। वह 'हिन्दी नवजीवन' पढ़े। यदि किसीको 'हिन्दी नवजीवन' के सम्पादकके रूपमें मेरी दी हुई इस सलाहमें पक्षपातकी गंध आती हो तो वह चाहे तो कोई अन्य पुस्तक पढ़े। तीसरे, वह तुलसीदासजीकी सटीक 'रामायण' का पाठ करे। यदि वह 'रामायण' को सौ बार भी पढ़ेगा तो भी फायदा ही है। टीकाकी हिन्दी सरल होती है। यदि वह इसके अतिरिक्त हिन्दीकी कोई अन्य पुस्तक न भी पढ़े तो भी कोई हर्ज न होगा। यदि हिन्दी बोलनेमें भूलें हों तो भी उनकी कतई चिन्ता न करनी चाहिए। भूलें करते-करते भूलोंको सुधारनेका अभ्यास हो जायेगा। भूलोंकी चिन्ता न करनेकी सलाह आलसी लोगोंके लिए नहीं, वरन् मुझ-जैसे भाषा सीखनेके इच्छुक अध्यवसायी सेवकोंके लिए है। हिन्दी बोलते समय संस्कृत शब्दोंका उपयोग कम ही करना चाहिए तथा सरल हिन्दी और उर्दूके सम्मिश्रणसे बनी भाषाका उपयोग करना चाहिए, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समझ सकें। मैं ऐसी मिश्रित भाषाको हिन्दुस्तानीका नाम देता हूँ।

भाई मोहनलाल पण्डयाने एक प्रायश्चित्तमें दूसरे प्रायश्चित्तको भी मिला दिया है। मेरे लेखोंमें कभी-कभी निराशाके विचार दिखाई देते हैं; लेकिन निराशाके वे विचार आशा उपजानेके लिए होते हैं। किसी भी मजदूर अथवा कार्यकर्त्ताको ('भारत सेवक' शब्द तो बहुत बड़ा है, भाई मोहनलालके पत्रपर टीका करते समय 'मजदूर' और 'कार्यकर्त्ता' शब्द कलमसे खुद-ब-खुद निकलते हैं) अन्य लोगोंकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हमें संसार-भरका काजी नहीं बनना है। हमें यह विचार भी नहीं करना चाहिए कि हमारे आसपासके लोग तो कुछ नहीं कर रहे हैं। उत्साहका अर्थ है स्वयं हममें बाष्पका होना। हम जिस तरह यन्त्रमें भापको भरकर तथा उसे इच्छापूर्वक छोड़ अथवा रोककर रेलगाड़ीको मनचाही गति प्रदान कर सकते हैं उसी तरह यदि

१. अण्णा हरिहर शर्माको अंग्रेजीमें निमन्त्रणपत्र भेजनेका।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

हम इस शरीररूपी यन्त्रमें उत्पन्न-भापको संचित कर रखें तथा अवसर आनेपर प्रयुक्त करें तो हम अपने उचित भारको गतिके साथ वहन कर सकते हैं। यदि हम अपनी शक्तिके अनुसार तनिक भी आलस्य अथवा चोरी किये बिना काम करते रहें तो जनकने जिस तरह कहा था कि 'मिथिला नगरी आगमें जल जाये अथवा बच जाये इसका जनकपर क्या प्रभाव पड़ता है', उसी तरह हम भी कह सकते हैं। यदि गुजरातका प्रत्येक मजदूर या कार्यकर्त्ता अपने-अपने क्षेत्रमें रहकर एकाग्र मनसे अपना-अपना काम करें तो फिर स्वराज्य आया ही समझना चाहिए। तब मामा, अण्णा, काका अथवा इन-जैसे अन्य बूढ़े या जवान सम्बन्धी उनपर आक्षेप नहीं कर सकते तथा जो बहन अथवा भाई अपने बचे हुए समयमें चरखा ही चलायेंगे, एकसार — मोटा-पतला नहीं — और बलदार सूत तैयार करेंगे उन्हें लक्ष्मीदास[1] भी कुछ नहीं कहेंगे, इतना ही नहीं, अपितु नमस्कार करेंगे। सूत तो हिन्दुस्तानकी जीवन-डोरी है। "हरिने मुझे कच्चे धागेसे बाँध लिया है। वे जिधर खींचते हैं, मैं उधर ही खिंच जाती हूँ।"[2] मीराबाई इस धागेको अच्छी तरह जानती थी क्योंकि उसके मनमें उत्साह था। यदि मीराबाई कुशल कातनेवाली न होती तो हरिजीके प्रेमपाशकी धागेसे सुन्दर उपमा कैसे देती? भारत-माता भी हमें वैसे ही धागेसे बांधकर गुलामीके बन्धनोंसे मुक्त करना चाहती है।

मिलकी खादी

गुरुवारको बहुतसे भाई और बच्चे मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनके शरीरों-पर मिलके वस्त्र देखे। मैंने उनसे अपने स्वभावानुसार विनोद किया तथा पूछा कि वे खादी क्यों नहीं पहनते? उन्होंने मुझे इसका यह उत्तर दिया, "हम तो खादी ही पहने हुए हैं।" मैं शर्मिन्दा हो गया। मैंने उसे जरा और गौरसे देखा। मेरी शंका और भी दृढ़ हो गई। बादमें मैंने हाथसे कपड़ेकी जाँच की और कहा "यह खादी नहीं है।" मुझे इसका उत्तर मिला, "लेकिन भाई साहब! यह तो मिलकी खादी है।" मैं सावधान हुआ। खादी प्रचारमें जो मुश्किलें हैं, मैं उन्हें अच्छी तरह समझ गया तथा मैंने इन भाइयोंसे कहा, खादीका अर्थ है हाथ-कते सूतका, हाथसे बुना कपड़ा। तात्पर्य यह है कि "मिलकी खादी" नामकी तो कोई चीज हो ही नहीं सकती। इन भाइयोंने अपने अज्ञानको स्वीकार किया और प्रतिज्ञा की कि वे आगेसे हाथ-कते सूतका हाथ-बुना कपड़ा अर्थात् खद्दर ही पहनेंगे।

उसी दिन कुछ पंजाबी भाई मिलने आये। उनके पास मैंने "जीन" का थान देखा। मैंने पूछा, यह क्या है? उन्होंने थान मेरे आगे रख दिया। मैंने उसपर "स्वदेशी छाप" आसमानी रंगमें छाप देखी। ज्यादा पूछताछ करनेपर मुझे मालूम हुआ कि खादीके नामसे ऐसा कपड़ा बहुत बेचा जा रहा है। इस तरहकी धोखाधड़ीका मुकाबला कैसे किया जाये, यह एक बड़ा प्रश्न है। इसपर इस समय विचार नहीं किया जा

१. लक्ष्मीदास आसर, गांधीजीके एक अनुयायी।

२. "काचे तांतणे मने हरीजीए बांधी;
 जेम ताणे तेम तेमनी रे"

सकता। इस समय तो सिर्फ यही सुझाव दिया जा सकता है कि ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित की जानी चाहिए और जगह-जगह बेची जानी चाहिए, जिनमें खादी क्या है, यह बताया गया हो। जो लोग खादी न पहने हों उन्हें स्वयंसेवक अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह पत्रिका दें। लकड़ीकी बड़ी-बड़ी पट्टिकाओंपर खादीके परिचय-वाक्य लिख लेने चाहिए और भाड़ेके नौकरोंको नहीं वरन् बड़े-बड़े कार्यकर्त्ताओंको उन पट्टिकाओंको अपने गलेमें डालकर निकलना चाहिए। मैं जब बाहर निकलनेकी स्थितिमें होऊँगा तब मैं इन कार्यकर्त्ताओंमें अपना नाम दर्ज करवा दूंगा। मैं जबतक यहाँ हूँ तबतक अहमदाबादके बाजारोंमें इन पट्टिकाओंको लेकर रोज एक घंटे घूमनेके लिए तैयार हूँ। मैं इस कामको दो महीने बाद कर सकूँगा। इस बीच यह काम तो तत्काल शुरू किया जा सकता है। मैं यहाँ ऐसी पत्रिकाका मसविदा दे रहा हूँ। कोई अधिक अनुभवी प्रचारक, करना चाहे तो इसमें और भी सुधार कर सकता है।

भाइयो और बहनो, सावधान!

> खादीका अर्थ है हाथसे कते सूतका हाथसे बुना कपड़ा। कुछ व्यापारी मिलोंके सूतके कपड़ेको मिलकी खादी अथवा स्वदेशी खादी कहकर बेचते हैं। इससे हमारा मतलब पूरा नहीं होता। जो लोग सचमुच यह चाहते हैं कि गरीबोंका पेट भरे उन्हें असली खादी ही पहननी चाहिए।

यह पोस्टर अथवा इस तरहके अन्य पोस्टर भी दीवारोंपर चिपकाये जा सकते हैं। इस सम्बन्धमें यहाँकी नगरपालिका क्या कर सकती है, यह तो वल्लभभाई ही जानें।

केनियामें सत्याग्रह

मोम्बासासे एक संवाददाता लिखते हैं:[1]

पत्रमें दी गई यह अन्तिम सूचना सच नहीं हो सकती। यदि सरकार किसीको जेलमें रखती है तो उसका उसको भोजन देना लाजिमी है। किन्तु हवालातियोंको बाहरसे भोजन मंगानेकी अनुमति होती है। इस नियमके अन्तर्गत केनियाके सत्याग्रही भी अपने घरोंसे भोजन मँगाते हैं, यही इस सूचनाका अर्थ हो सकता है।

जब हम इन लोगोंके जेलमें जानेकी खबर पढ़ते हैं तब हमें खयाल आता है कि हम कितने आगे बढ़ गये हैं। हमारे भाई जेल गये हैं, हम दस वर्ष पहले ऐसा समाचार पढ़कर उत्तेजित हो जाते थे। किन्तु आज हम इस तरहकी कैदकी खबरका खयाल भी नहीं करते क्योंकि अब हम यहाँ जेलोंमें होनेवाले कष्टोंके अभ्यस्त हो गये हैं। हम समझ गये हैं कि स्वेच्छासे कष्ट सहे बिना सुख नहीं मिलता। मैं मानता हूँ कि केनियाके सत्याग्रहियोंके लिए कैद जेलोंके दु:खोंको सहनेकी तालीम है। इतने भरसे उनपर होनेवाले अत्याचारोंके बन्द होनेकी सम्भावना कम ही है। उन्हें अभी और भी ज्यादा दु:ख झेलने होंगे अथवा जबतक हिन्दुस्तान स्वराज्य प्राप्त

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

नहीं कर लेता तबतक बाट जोहनी पड़ेगी। उनमें जबतक सत्याग्रह करनेका उत्साह है तबतक निराश होनेकी कोई जरूरत नहीं है। यदि उम्मीद पूरी होनेमें देर लगती है तो उन्हें समझना चाहिए कि उनका सत्याग्रह कमजोर है। उनमें शक्ति हो तो "व्यक्तिकर" के अलावा ऐसे बहुतसे कानून हैं जिन्हें चाहें तो वे विनयपूर्वक भंग कर सकते हैं। जिनसे भूमिपर स्वामित्वसे सम्बन्धित, आत्मसम्मानकी रक्षासे सम्बन्धित तथा मताधिकारसे सम्बन्धित अधिकार छीन लिये जायें क्या उनके लिए मनुष्यकृत कानून बन्धनकारी हो सकते हैं? जहाँ राज्यतन्त्रका उद्देश्य समाज अथवा उसके किसी अंगको दबाना हो वहाँ उस तन्त्रके मानवकृत कानून क्या उस दबाये हुए समाज अथवा उस अंगके लिए बन्धनकारी हो सकते हैं? जहाँ कानूनका उद्देश्य उस समाजके विकासकी गतिको अवरुद्ध करना हो वहाँ उस समाजका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उस मानवकृत कानूनका उल्लंघन करे। इसलिए कोई भी बाह्यशक्ति केनियावासियोंको नहीं रोक सकती। वे जब चाहें तब बन्धन-मुक्त हो सकते हैं। लेकिन मुझे विश्वास है कि इस लेखको पढ़कर कोई भी केनियावासी बिना सोचे-समझे कोई कदम नहीं उठायेगा। सविनय अवज्ञाका अधिकार हरएकको नहीं होता। जो कानूनका पालन स्वेच्छासे करना जानते हैं केवल वे लोग ही स्वेच्छासे, और ऐसा प्रसंग उपस्थित होनेपर सविनय अवज्ञा भी कर सकते हैं। यह शस्त्र अनजानके हाथोंमें पड़कर उसीके लिए हानिकर हो जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८६. काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय

एक मित्रने मुझे मीठा उलाहना दिया है और कहा है कि मैं आजकल काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय कर रहा हूँ। मैं उनका परिचय बातूनी लोगोंके रूपमें दे रहा हूँ।[1] इन मित्रके विचारसे मेरे पत्रसे ऐसी ध्वनि निकलती है कि उनमें काम करनेवाला तो कोई भी नहीं है। इसके अलावा इनका कहना यह भी है कि मेरा अनुकरण करके अन्य लोग भी काठियावाड़ियोंके प्रति ऐसी ही राय बना लेते हैं और ऐसे ही विशेषणोंका प्रयोग करके उनकी भर्त्सना करते हैं। ये भाई आगे कहते हैं कि अन्तमें इसका परिणाम यह होगा कि हम काठियावाड़ी भी अपने सम्बन्धमें यह मानने लगेंगे कि हम ऐसे ही हैं और इस समय हममें जो लोग थोड़ा-बहुत काम करते हैं वे भी निठल्ले बन जायेंगे।

मेरी यह टीका सभी काठियावाड़ियोंपर लागू नहीं है। मैंने तो यह मात्र राज-नीतिज्ञोंके सम्बन्धमें कहा था और वे भी सबके सब वाचाल हैं, मेरे कहनेका यह अभिप्राय भी नहीं है।

१. देखिए "काठियावाड़ क्या करे?", १८-५-१९२४।

मैं स्वयं राजनीतिज्ञोंके वर्गमें पैदा हुआ हूँ; लेकिन मैं अपनेको वाचाल नहीं मानता। इसलिए सबसे पहले तो मैं ही अपनी आलोचनाका अपवाद हूँ। फिर मेरे साथियोंमें कितने ही ऐसे काठियावाड़ी हैं जो चुपचाप काम करते रहना ही जानते हैं। मेरा यह विशेषण उनपर भी लागू नहीं होता, इसलिए उसका व्यवहार तो केवल उन्हीं लोगोंके सम्बन्धमें किया गया है जिनपर वह लागू हो सकता है।

यह बात सच है कि यदि बातूनी लोग केवल अपवाद-रूप ही होते तो मेरी टीका अन्यायपूर्ण मानी जाती। मेरी इतनी शिकायत जरूर है कि प्रायः राजनीतिज्ञ वाचाल और झगड़ालू प्रवृत्तिके हैं। चुपचाप रहकर काम करनेवाले लोग अपवाद रूप ही हैं। मैं राजनीतिज्ञोंके परिवारमें पला-पुसा और बड़ा हुआ हूँ; मुझे इसका विपुल अनुभव है। मैं अपने पिताजीकी तो पूजा किया करता था। माता-पिताके प्रति मेरी भक्ति श्रवण-जैसी थी। यदि इसमें अतिशयोक्ति हो तो भी इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा आदर्श श्रवण था। लेकिन मुझमें विवेकका लोप कभी नहीं हुआ। इसीसे मैं तब भी जानता था एवं अब तो और भी ज्यादा जानता हूँ कि मेरे पिता-जीका अधिकांश समय केवल गुप्त योजनाओंमें ही जाता था। सबेरेसे ही बातें होने लगतीं और वे कचहरी जानेतक चलतीं। सभी लोग कानाफूसी करते रहते थे। बातोंका सार केवल इतना ही होता था कि बनिये किस तरह नीचे पदोंसे ऊँचे पदोंपर पहुँचें तथा नागरों और ब्राह्मणोंकी तुलनामें उनका प्रभाव किस तरह बढ़े। मेरे पिताका उद्देश्य यह था कि बनियोंमें भी किसी तरह हमारा परिवार सबसे आगे हो जाये। मैंने आपके सामने यह एक पहलू रखा है। यह सब कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि इसमें परहितकी भावना तनिक भी नहीं थी; लेकिन उसका स्थान गौण था। वे मानते थे कि परहित उसी हदतक करना चाहिए जिस हदतक वह स्वार्थकी पूर्ति करते हुए किया जा सके। मेरे पिता राजनीतिज्ञोंमें निकृष्टतम नहीं थे, बल्कि वे उत्कृष्टतम राजनीतिज्ञ माने जाते थे। ईमानदारीके लिए वे विख्यात थे। उस समय भी घूस देने और लेनेका चलन था; लेकिन वे इससे सर्वथा मुक्त थे। उनका हृदय विशाल था। उनकी उदारताकी कोई सीमा न थी। ऐसा अच्छा मनुष्य भी राजनीतिके विषाक्त वातावरणके प्रभावसे मुक्त नहीं रह सका था।

मेरा यह ज्ञान अनेक बार मुझे यह कहनेके लिए प्रेरित करता है कि मैं नागरों और अन्य लोगोंके साथ शुद्धतम मैत्रीभाव रखकर अपने परिवारके इस पक्षपात-पूर्ण रवैयेका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। मैं उस वर्गमें पलने और बड़ा होनेके बावजूद वाचालतासे निकलकर कर्मनिष्ठतामें प्रवेश करके राजनीतिज्ञोंके इस पापका परिमार्जन कर रहा हूँ।

राजनीतिज्ञोंके वर्गके सम्बन्धमें जो बात चालीस-पचास वर्ष पहले सच थी वही आज भी सच है। राजनीतिज्ञोंका धन्धा ही तिकड़म करते रहना है। इनके प्रति अरुचि ही मेरे देश-त्यागका एक कारण था। राजनीतिज्ञोंके वातावरणमें रहकर और मौन धारण करके केवल काम करते रहनेका अर्थ है, क्लर्कोंकी पंक्तिसे आगे न बढ़ना। प्रत्येक क्लर्कका उद्देश्य पदोन्नति रहता था तथापि यह पदोन्नति अच्छे कार्यका परिणाम नहीं

होती थी; बल्कि तिकड़मका परिणाम होती थी। फलतः रजवाड़ोंकी नौकरीमें दाखिल हुए नहीं कि राजनीतिक दाँव-पेचोंकी शिक्षा शुरू हो गई।

अब हमारे बीच नया वातावरण तैयार हो रहा है। हम वाचालता और गुप्त योजनाओंको छोड़ना चाहते हैं। इसलिए कुछ कर्मनिष्ठ काठियावाड़ी इस कृत्रिम वातावरणको दूर करनेके कार्यमें जुटते जा रहे हैं; तथापि सामान्य राजनीतिज्ञ तो अब भी पुराने वातावरणके गुलाम हैं।

इस सम्बन्धमें मेरे लिखनेका हेतु यही था कि काठियावाड़के राजनीतिज्ञ इस स्थितिको समझकर इसमें तुरन्त सुधार करें और मेरा यह हेतु आज भी है।

काठियावाड़ियोंके (अर्थात्) जिन राजनीतिज्ञोंपर यह लागू होती है उनकी आलोचना सत्याग्रही गालियोंका एक भाग है। इसलिए ऐसी टीका तो मुझ-जैसे लोग ही कर सकते हैं। जिनके मनमें काठियावाड़ियोंके प्रति द्वेषभाव हो वे ऐसा कर ही नहीं सकते। लेकिन यदि कोई काठियावाड़ियोंसे द्वेष रखनेवाला व्यक्ति मेरा अनुकरण करता हुआ यह सब कहे तो भी क्या हुआ? इससे जो तिकड़मबाज नहीं हैं वे शान्त रहेंगे और हँसेंगे किन्तु जो तिकड़मबाज हैं, बातूनी हैं, उन्हें भी सच्ची बात सुनकर क्रोध क्यों आना चाहिए? हमारा शत्रु हमारे जितने दोष देखता है उतने मित्र नहीं देख पाता। मित्रके दोषोंको देखते हुए भी उसपर पूर्ण प्रेमभाव रखना सत्याग्रहीका विशिष्ट लक्ष्य है और यह दुष्प्राप्य है। इसलिए सामान्य रूपसे यह कहा जा सकता है कि शत्रु हमारे दोषोंको जितनी अच्छी तरह बता सकता है उतनी अच्छी तरहसे मित्र नहीं बता सकता। इसलिए काठियावाड़ियोंको मेरी सलाह है कि वे शत्रुकी टीका विनयपूर्वक और सम्मानपूर्वक सुनें, उसपर विचार करें तथा उसमें जितना सत्य हो उसे ग्रहण करें।

मेरी आलोचनाका अनुकरण अन्य लोग करेंगे, मैं इस भयसे आलोचना करना बन्द कर दूं, मुझसे ऐसी अपेक्षा तो कोई नहीं करेगा। इसलिए काठियावाड़ियोंकी आलोचनाका निमित्त लेकर गुजराती मात्रसे मेरा निवेदन है कि वे वाचालता छोड़कर काममें निरत हो जायें। काठियावाड़ी यदि मुझे खास अपना आदमी मानते हैं तो वे मेरी बात सुनें और उसमें से सार ग्रहण करें। मेरे मनमें इस बातको लेकर अवश्य ही कुछ अभिमान है कि वे औरोंकी नहीं तो मेरी बात अवश्य सुनेंगे। लेकिन मैं काठियावाड़ और गुजरातमें कोई भेद नहीं मानता। दोनोंके निवासी गुजराती ही है। काठियावाड़ छोटा गुजरात है। गुजरातमें काठियावाड़ और कच्छ आदि मिला दें तो महा गुजरात बन जाता है। महा गुजरात हिन्दुस्तानका एक छोटा अंग है। इस अंगकी भाषा मैं ज्यादा जानता हूँ। यह अंग मुझे ज्यादा अच्छी तरहसे जानता है। इसलिए मुझे इसको कड़वी दवा पिलानेका अधिक अधिकार है। महा गुजरात यदि कड़वी दवा न पियेगा तो मैं इसे और किसे पिलाऊँगा? इसके अलावा मैं अपनी दवाकी परीक्षा करने किसके पास जाऊँगा?

अन्तमें मेरी इच्छा है कि काठियावाड़ी राजनीतिज्ञ वाचालतापर पूर्ण संयम रखते हुए चालबाजी छोड़कर तथा चुप रहकर काम करते हुए मेरी आलोचनाको

झूठा सिद्ध करें। मुझे आलोचना करनेमें सुख नहीं मिलता। मैं आलोचनाके द्वारा काठियावाड़से पूरा काम लेनेकी उम्मीद करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८७. मुझे क्षमा करें

मैं गुरुवारको[1] सुबह अहमदाबाद स्टेशनपर उतरूँगा, इस आशासे अहमदाबादके बहुतसे भाई और बहन स्टेशनपर एकत्रित हुए, लेकिन मैं उन्हें नहीं मिला। इससे उन्हें निराशा हुई। मैं इसके लिए उनसे क्षमा माँगता हूँ। वल्लभभाईने देखा कि मेरी प्रार्थना और उनके प्रयत्नोंके बावजूद लोग रुकेंगे नहीं, इसलिए उन्होंने गाड़ी रुकवाकर मुझे बीचमें ही[2] उतार लिया और शान्तिपूर्वक आश्रम पहुँचा दिया।

निराश हुए भाइयों और बहनोंने मुझे क्षमा कर दिया है, यह बात तो मैं तभी मानूंगा जब वे सब चरखा चलाने लगेंगे। वस्तुतः देखा जाये तो क्षमा उन्हींको माँगनी चाहिए। वे स्टेशनपर आये ही क्यों? मेरी प्रार्थनापर[3] ध्यान न देकर वे स्टेशन आये, इसमें दोष उनका ही है। इससे हाथ कते सूतके उत्पादनमें जितनी कमी हुई है, हिन्दुस्तानका उतना ही नुकसान हुआ है। इसलिए यदि ये निराश भाई और बहन कौतूहलवश नहीं वरन् प्रेमवश स्टेशन आये हों तो उनसे मेरी विनती है कि वे सूतकी इस कमीको पूरा करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८८. विद्यापीठ और आनन्दशंकरभाई

गुजरात विद्यापीठका एक विद्यार्थी और भक्त लिखता है।[4]

इस पत्रकी विषय-वस्तु, इसकी भाषा, इसके विचार और इससे झलकनेवाली देशभक्ति तथा विद्यापीठके प्रति अगाध प्रेमभाव मुझे इतने अच्छे लगे हैं कि मैंने पत्र लम्बा होनेके बावजूद उसे पाठकोंके सामने प्रस्तुत करना उचित समझा है। लेकिन आनन्दशंकरभाईसे मेरा परिचय इतना घनिष्ठ है कि उनके भाषणके जो अंश लेखकने उद्धृत किये हैं वे मुझे उनके योग्य नहीं लगे। मैंने सोचा कि पहले यह पत्र प्रकाशित

१. २९ मईको।

२. कांकरिया रेलवे यार्डमें।

३. देखिए "मेरी प्रार्थना", २५-५-१९२४, जिसमें गांधीजीने गुजरातके भाइयों और बहनोंसे अनुरोध किया था कि वे उन्हें देखने स्टेशनपर न आयें, बल्कि अपना समय सूत कातनेमें लगायें।

४. पत्र यहां नहीं दिया जा रहा है।

करूँ और तब आनन्दशंकरभाईका उत्तर मँगाऊँ। पर इससे अच्छा तो यह होगा कि पहले उन्हें पत्र लिखूं उनसे उत्तर मँगा लूं और तब पत्र और उत्तर साथ-साथ प्रकाशित करूँ। उस हालतमें ही कहा जा सकता है कि मैंने विषय-वस्तु, विद्यार्थी तथा आनन्दशंकरभाईके साथ पूरा न्याय किया। इसके अतिरिक्त आनन्दशंकरभाईके प्रति मेरे मित्रभाव अथवा बन्धुभावने भी मुझे इसी मार्गपर चलनेका संकेत दिया। परिणामतः पाठक भी देख सकेंगे कि मैंने आनन्दशंकरभाईके उत्तर और उक्त पत्रको साथ-साथ प्रकाशित करके ठीक ही किया है। हमारे संवाददाता तो — विशेषरूपसे जब भाषण गुजरातीमें होते हैं — हमारे भाषणोंका पूरा विवरण लिख ही नहीं पाते, यद्यपि ऐसा वे जान-बूझकर नहीं करते; और यदि लिख भी पाते हैं तो सम्पादक भाषणोंको पूरा छापनेके लिए जरूरी जगह नहीं निकाल पाता। इससे बहुत बार उनके विवरण अधूरे रह जाते हैं तथा कई बार तो उनमें भाषणकर्त्ताके अर्थका अनर्थ ही हो जाता है। ऐसी स्थितिमें किस विवरणको ठीक माने और किसको ठीक न माने यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसी कारण सर फीरोजशाह मेहता अपने सब भाषणोंको लिखते थे। गोखले अपने भाषणोंके विवरणोंको जहाँतक सम्भव होता था स्वयं ही सुधारनेका आग्रह रखते थे। उनके दक्षिण आफ्रिकाके सभी भाषणोंको, जो समाचारपत्रोंमें अक्षरशः प्रकाशित हुए थे, सुधारनेका अधिकार हम सेवकोंमें से किसीको भी प्राप्त न था। उन्होंने अस्वस्थ होनेके बावजूद उनको सुधारनेका सारा भार अपने ऊपर ही रख छोड़ा था। मेरे भाषणोंकी दुर्दशा होती है, इसका मुझे कड़वा अनुभव है। इसमें संवाददाताओंका दोष नहीं है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि इक्के-दुक्के संवाददाता ही शुद्ध विवरण दे पाते हैं।

इन अनुभवोंको ध्यानमें रखकर मैंने आनन्दशंकरभाईको उपर्युक्त पत्र भेजा था और उनसे उत्तर लिख भेजनेकी प्रार्थना की थी। उनका उत्तर निम्न है।[1]

इस उत्तरके बाद मेरे पास कदाचित् ही कहनेको कोई बात रह जाती है। जिस दूसरी संस्थाकी स्थापनाकी अभिलाषा आनन्दशंकरभाईकी है उसीकी स्थापनाकी अभिलाषा मेरी भी है। किन्तु उसके लिए उपयुक्त समय और अनुकूल अवसर कदाचित् अभी नहीं आया है। मेरे विचारसे विद्यार्थी-लेखककी भावना उत्तम प्रकारकी है, किन्तु मेरे शिक्षा-सम्बन्धी विचार तो उसके विचारोंसे बहुत आगे हैं। मेरी अल्पमतिसे तो शिक्षाका प्रयोग धनोपार्जनके लिए कभी नहीं किया जाना चाहिए। धनोपार्जनका साधन मात्र व्यापार ही होना चाहिए। आजीविकाका साधन मजूरी अर्थात् बुनाई, बढ़ईगिरी, दरजीगिरी या ऐसा ही कोई आवश्यक धन्धा होना चाहिए। वैद्य, वकील और शिक्षक तथा ऐसे ही अन्य लोग मुख्य रूपसे पैसा कमानेके इरादेसे अपना-अपना धन्धा सीखते हैं और इसी रूपमें उनको चलाते हैं। इसे मैं अपने राष्ट्रकी नैतिक अवनतिका एक बहुत बड़ा कारण मानता हूँ। यह तो आदर्शकी बात हुई। इस तक हम नहीं पहुँच सकते तथापि इसके समीप जितने अधिक जा सकेंगे उतना ही अच्छा है, इसमें मुझे कोई शंका नहीं है। विद्यापीठने यह आदर्श नहीं रखा है,

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

लेकिन उसने राष्ट्रीय भावनाको प्रधानता दी है। जहाँ यह आदर्श है कि शिक्षाका उपयोग देश-सेवामें किया जाये और धनोपार्जनको गौण स्थान दिया जाये वहाँ "व्यक्तिगत उत्कर्ष" के लिए अवकाश ही नहीं है। "व्यक्तिगत उत्कर्ष" की भावनाका त्याग करनेवाले मनुष्यको ही विद्यापीठका आश्रय लेना चाहिए। गुजरातमें अथवा समस्त हिन्दुस्तानमें इस भावनाने अभी गहरी जड़ नहीं पकड़ी है; इसलिए यदि विद्यापीठके प्रारम्भिक कालमें ऐसी भावनासे युक्त विद्यार्थी कम हों तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य और प्रसन्नताकी बात तो यह है कि विद्यापीठकी छत्रछायामें हजारों विद्यार्थी अक्षरज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तथा इसके साथ-साथ देश-सेवाकी भावनाको विकसित कर रहे हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८९. गुरुकुल कांगड़ीमें चरखा

इस गुरुकुलके विद्यार्थियोंको मैंने उनके वार्षिकोत्सवके समय एक खत भेजा था। उसके उत्तरमें एक खत कई दिन हुए मिला है। गुरुकुलके बालकोंका प्रेम चरखेपर कैसा है, यह जाहिर करनेके लिए मैं खतका थोड़ा हिस्सा पाठकोंके सामने पेश करता हूँ:

> यद्यपि आपके सन्देशके लिए यह उत्तर बहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते हैं — हम अपने काते हुए इस थोड़े-से सूतकी श्रद्धापूर्ण भेंट आपके पूज्य चरणोंमें रखना चाहते हैं। यह सूत इसी राष्ट्रीय सप्ताहमें (७ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक) सात दिनतक चौबीस घंटे अखण्ड सतचक्र चलाकर हमने इसी प्रयोजनके लिए कातकर तैयार किया है कि हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार हो। इसमें (चतुर्थ श्रेणीके) हममें से छोटे बालकोंका काता हुआ भी कुछ सूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखण्ड चरखा चलाकर नहीं काता गया है तथापि हम समझते हैं कि आपसे प्रेम रखनेवाले ये छोटे बालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र हैं। अतः इनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताहका सूत भी आपके चरणार्पित होनेके योग्य ही है।

हिन्दी नवजीवन, १-६-१९२४

९०. परिषदोंके नियोजकोंको इशारा

लोग कहते हैं : "बड़ी-बड़ी सभाओं, जलसों और व्याख्यानोंके दिन चले गये। अब चुपचाप काम करनेके दिन आ गये हैं।" लेकिन परिषदों अथवा जलसोंके संचालक हमेशा चाहते हैं कि खूब धूमधाम हो। इस मोहमें वे कई बार सत्यको भूल जाते हैं और भोली-भाली जनताको धोखा देकर परिषद्की तैयारी करते हैं। एक परिषदकी विज्ञप्तिमें लिखा है:

> बहुत हर्षकी बात है कि अधिवेशन बहुत बड़ी धूमधामसे होना निश्चित हुआ है। महात्मा गांधी, अली-बन्धु, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर किचलू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, देवदास गांधी, शंकरलाल बैंकर, राजगोपालाचारी, सेठ जमनालाल बजाज, मौलाना ज़० जफरखाँ, श्रीमती गांधी, बीअम्मा साहिबा, तपस्वी सुन्दरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्राकुमारी आदि-आदि प्रमुख नेताओंके पधारनेकी सम्भावना है।

सम्भव है कि स्वागतकारिणी सभाने ऐसे नेताओंको निमन्त्रणपत्र भेजा हो, लेकिन जबतक कमसे-कम उनकी तरफसे इस आशयका जवाब न मिले कि 'आनेकी कोशिश करूँगा' तबतक ऐसा लिखना कि उनके पधारनेकी सम्भावना है, अयथार्थ है। लोगोंके मनमें भ्रम पैदा करनेकी इच्छा कितनी ही अच्छी हो तो भी यह कार्य अनुचित ही है। लोग एक-दो बार धोखेमें आ सकते हैं, लेकिन थोड़े ही समयमें कार्यकर्त्तागण अपनी प्रतिष्ठा और लोगोंका विश्वास खो बैठते हैं। अब्राहम लिंकनने ठीक ही कहा है: "हम थोड़े लोगोंको हमेशा धोखा दे सकते हैं और सब लोगोंको कुछ समय धोखा दे सकते हैं, लेकिन सब लोगोंको हमेशा धोखा देना अशक्य है।"

हिन्दी नवजीवन, १-६-१९२४

९१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती

ज्येष्ठ सुदी १ [३ जून, १९२४][1]

भाई श्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका खत मीला है। मैंने अंत्यज मंडलके नेताको लीख भेजा है कि आपने रू० ३०,००० देनेकी प्रतिज्ञा नहिं की है।

१. यहाँ प्रेपीकी जातिमें दो फिरकोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र १३-५-१९२४ और २०-५-१९२४को गांधीजी द्वारा प्रेपीको लिखे गये पत्रोंके साथ ही लिखा गया होगा। १९२४ में ज्येष्ठ सुदी १, ३ जूनको पड़ी थी।

ज्ञातिमें दो फिरके हो गये हैं यह बात यदि बुरी है तो भी आपका फिरका दूसरेसे विनययुक्त रहनेसे झहर फैलता रुक जावेगा। यह तो है कि शांति और झगड़ा दोनों साथ-साथ नहिं चल सकते है। एकको ही ग्रहण करके उसीका सेवन करनेसे उसका फल मीलता है। झगड़ेका फल हम यूरोपमें देख रहे है। सच्ची महोबत है हि नहिं। शांतिका प्रयोग समाजोंमें अबतक ठीक ढंगसे हुआ नहि है।

आपका,

मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४७) से।

सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

९२. पत्र: परशुराम मेहरोत्राको

ज्येष्ठ सुदी १ [३ जून, १९२४][1]

चि० परसराम[2],

तुम्हारा पोस्टकार्ड मीला। 'रामायण'का अभ्यास खूब ध्यानसे करना। एक बार पढ़नेसे काफी नहिं होगा। मेरा विश्वास है कि 'रामायण' तुमको शांतिप्रद होगा। सब बीमार खेर तो रहे?

बापूके आशीर्वाद

परसराम मेहरोत्रा
यू० पी० खद्दर बोर्ड
कानपुर

मूल पत्र (सी० डबल्यू० ४९६०) से।

सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२. आश्रमवासी और गांधीजीके सचिव।

९३. भेंट: 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे

[साबरमती
३ जून, १९२४]

प्रश्न: क्या आपने यरवदा जेलसे अपनी रिहाईके बाद अपने लेखोंके स्वरमें कोई परिवर्तन महसूस किया है?

उत्तर: जी, हाँ; परिवर्तन आया है।

आपने अहिंसाको बिलकुल धर्म-जैसा मानकर उसपर इतना अधिक आग्रह किया है कि कांग्रेसको अपने स्वयंसेवकोंके सम्बन्धमें आत्मरक्षाका प्रस्ताव पास करना पड़ा।

इस तरहका प्रस्ताव पास करना कांग्रेसके लिए उचित नहीं था। अहिंसाकी मैंने जो परिभाषा दी थी, उनमें यह अर्थ शामिल था।

महात्माजी, क्या आप नहीं मानते कि कमसे-कम कांग्रेस नेताओंको आपकी परिभाषा अस्पष्ट मालूम पड़ी?

जी, हाँ, आप ठीक कहते हैं। हर धर्मके अनुयायीको स्वयं अपने धार्मिक ग्रन्थोंमें अहिंसाके समर्थनमें प्रमाण खोजने चाहिए। मैं अहिंसाका प्रचार इसी दृष्टिसे कर रहा हूँ कि लोगोंको अपने-अपने धर्म-ग्रन्थोंके अनुसार अहिंसाका वास्तविक अर्थ खोजनेकी प्रेरणा मिले।

प्रतिनिधिने इसके बाद महात्माजीसे चोर, डाकू या विदेशी आक्रमणकी पृष्ठ-भूमिमें अहिंसाकी मर्यादाएँ बतलानेके लिए कहा। गांधीजीने विख्यात सन्त, एकनाथ महाराजका किस्सा सुनाते हुए कहा कि एक बार उनके घरपर चोर घुस आये। महाराजने उस परिस्थितिमें ईश्वरसे प्रार्थना की कि ऐसा न हो कि चोरोंको उनके घरसे खाली हाथ लौटना पड़े।

महात्माओंके लिए तो यह सम्भव है; पर साधारण जनोंके लिए यह सम्भव नहीं है। आप ऐसी परिस्थितिमें साधारण जनोंको क्या करनेकी सलाह देते हैं।

हमें चोरों इत्यादिसे अपनी रक्षा करनी चाहिए। आपने जो अन्तर बतलाया है वह बिलकुल ठीक है।

क्या आपके विचारसे अंग्रेज भी इसी श्रेणीमें नहीं आते?

जी नहीं, आजकलके अंग्रेज इस श्रेणीमें नहीं आते। ईस्ट इंडिया कम्पनीको इस श्रेणीमें रखा जा सकता था। पर क्या डाकुओंकी सन्तानको भी आप डाकू ही कहेंगे?

अगर डाकुओंकी सन्तान अपने पूर्वजोंका ही पेशा करे तो क्या उनको डाकू ही नहीं कहा जायेगा?

नहीं; जी, नहीं। आजकलके अंग्रेज ऐसे नहीं हैं, इसलिए हमें अहिंसापूर्ण आचरण करना चाहिए। हमें अंग्रेजोंको सत्तासे च्युत करनेके लिए अपनी इच्छाशक्तिकी जरूरत है, हथियारकी नहीं और फिर जबतक कांग्रेस अहिंसाको नीति मानकर चलती है, तबतक तो हमारा आचरण अहिंसापूर्ण ही रहना चाहिए। मैंने 'मेरा जीवन-कार्य'[1] शीर्षक लेखमें अपने इस अर्थका खुलासा किया है। उसमें मैंने फांसी पाये एक बन्दी और जेलरका दृष्टान्त दिया है। मुझे कांग्रेसकी आगामी बैठकमें इस पूरे प्रश्नका अन्तिम रूपसे निबटारा कराना है।

महात्माजी, क्या आपने नागपुरके हिन्दू-मुस्लिम विवादोंके सम्बन्धमें सरकारी जांच-समितिके सामने मुसलमानों द्वारा प्रस्तुत गवाहियां पढ़ ली हैं? मुसलमान गवाहोंने कहा कि लोकमान्य तिलक हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐसे झगड़े करानेके लिए जिम्मेदार थे और हर मुसलमानको यह हक है कि वह कभी भी अपने घरको मसजिदमें बदल ले।[2]

नहीं, मैंने वे गवाहियाँ पढ़ी नहीं हैं। मैं उन्हें पढ़ूंगा अवश्य। लोकमान्यको ऐसे साम्प्रदायिक झगड़ोंके लिए जिम्मेदार ठहराना घोर कृतघ्नता है। लोकमान्यने स्वयं मुझसे कहा था कि यदि मुसलमानोंको सौ फीसदी प्रतिनिधित्व देकर भी स्वराज्य हासिल किया जा सके तो वे (लोकमान्य) ऐसे समझौतेपर हस्ताक्षर करनेके लिए तैयार हैं। डा० मुंजेने मुझसे खास तौरपर अनुरोध किया है कि मैं नागपुरके बारेमें कुछ भी न लिखूं।

महात्माजीने आगे कहा कि लोगोंको अपनी मुक्तिका मार्ग स्वयं ही खोजना चाहिए। उन्होंने इसपर खेद प्रकट किया कि देशके नेताओंने अहिंसापूर्ण असहयोगके उनके अपने तरीकेकी उपयोगिताके प्रश्नपर काफी गम्भीरतासे विचार नहीं किया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-६-१९२४

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३७०-७३।

२. प्रतिनिधिने इस प्रश्नके साथ ही गांधीजीको स्वातन्त्र्यकी प्रतियाँ दीं और अनुरोध किया कि वे उनको पढ़ जायें।

९४. टिप्पणियाँ

तारकेश्वरमें सत्याग्रह

तारकेश्वरकी स्थितिके सम्बन्धमें मेरे पास कितने ही तार आये हैं। दो तारोंमें मुझे वहाँ सलाह देनेके लिए बुलाया गया है। अभी मेरे वहाँ जानेका सवाल नहीं उठता; कारण और कुछ नहीं तो यह तो है ही कि शरीर लम्बी यात्राके श्रमको बरदाश्त करने लायक नहीं है। लेकिन वाइकोमके बारेमें मैंने जो-कुछ लिखा है, वही आम तौरसे तारकेश्वरपर भी घटता है। मन्दिरपर कब्जा करनेके लिए किसी तरहसे भी शरीर-बलका प्रयोग या प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिए। रेलवे मजदूरोंका दल बनाकर घुस जाने और रेलकी पटरीपर बैठकर ट्रेनको जानेसे रोकने वगैरहका जो समाचार आया है, वह अगर सच हो तो, यह सत्याग्रह नहीं है—बल्कि यदि कमसे-कम कहा जाये तो भी वह एक निन्दनीय काम अवश्य था। दुराचारी माने जानेवाले महन्तके कब्जेसे भी हम किसी सम्पत्तिको इस तरह एक बारगी और जबरदस्ती नहीं छीन सकते।

अपने हाथों अपनी कब्र

कांग्रेस-संगठनपर मैंने जो लेख 'यंग इंडिया' में लिखा है,[1] उसके बारेमें कहा गया है कि मैं अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा हूँ। यह कथन मुझे पसन्द आया। कारण सत्यकी कब्र खोदनेकी बनिस्बत खुद अपनी कब्र खोदनेसे बढ़कर खुशी मुझे और किसी बातसे नहीं होगी; मैं तो केवल सत्यके ही लिए जिन्दा रहना चाहता हूँ। मेरे एक बड़े सम्माननीय अंग्रेज मित्र हैं, जिन्होंने मुझे दक्षिण आफ्रिकामें बहुत सहायता दी थी। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि "आप जानते हैं, मैं क्यों आपके आन्दोलनमें दिलोजानसे सहायता कर रहा हूँ? इसलिए कि आप अल्पमतमें हैं। मैं मानता हूँ कि सत्य हमेशा अल्पमतकी ही ओर होता है। इसलिए अगर मैंने आपको बहुमतमें देखा और हमारी मित्रताके रहते हुए भी, मैंने आपका विरोध किया तो आप ताज्जुब न करें।" मैं अक्सर ऐसा सोचता रहा हूँ और आज तो और भी ज्यादा सोचता हूँ कि क्या उन मित्रकी बात सही नहीं थी; और क्या आज वे इस नतीजेपर तो न पहुँचे होते कि चूँकि इस समय मैं बहुमतवाला माना जाता हूँ, इसलिए इस वक्त मेरा ही पक्ष गलतीपर होगा। पर उन मित्रकी बात सही हो या गलत; मैं आशा करता हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी मुझे अल्पमतमें रखते हुए जरा भी नहीं हिचकिचायेगी और मैं यह आशा भी करता हूँ कि मैं अपने विश्वासके प्रति झूठा साबित न होऊँगा। मैं उन्हें यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं अपनी शिकस्त होनेपर भी उसी उत्साहके साथ काम करूँगा। शायद जैसा मैं उन दिनों करता

1. देखिए "कांग्रेस संगठन", २९-५-१९२४।

था जब परिस्थितियोंका प्रवाह मेरे अनुकूल था। अगर हमें भारतवर्षकी सेवा करनी है तो हमें अपने साधनको साधकोंसे ऊँचा समझना चाहिए। साधक तो आते-जाते रहते हैं; लेकिन उद्देश्य तो बड़ेसे-बड़े व्यक्तिके चले जानेके बाद भी कायम रहता है।

आर्य समाजी विरोध

आगराके आर्य समाजकी तरफसे मुझे निम्नलिखित तार मिला है:

> आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी, 'सत्यार्थ प्रकाश' और शुद्धि-आन्दोलनके बारेमें आपने जो कड़े शब्द कहे हैं[1] आगरा उनके प्रति अपना विरोध प्रकट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका पूरा परिचय न होनेके कारण आपने अनजानेमें वे सब बातें कही हैं। वह आपसे सादर प्रार्थना करता है कि आप अपने विचारोंपर फिरसे गौर करें और उनसे जो उद्वेग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है, उसे दूर करें।

मैं इस तारको इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि मुझे विश्वास है कि आगरा समाजका मत बहुत हदतक आर्य समाजका ही मत है। उसके उत्तरमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें एक भी शब्द गहरा विचार किये बिना नहीं लिखा है। मैं अपनी रायको आसानीसे दबा कर भी रख सकता था। लेकिन जब कि उसका प्रस्तुत प्रकरणसे सम्बन्ध है तब सत्यको देखते हुए मैं ऐसा नहीं कर सका। हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्यका दानव हमारे सामने खड़ा है। उसके नाशकी मुल्कको सख्त जरूरत है। इसे तथ्योंको दबाकर या उनकी ओरसे आँखें मूंदकर नहीं किया जा सकता। ऐसे मौकोंपर जो बात सच्ची दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है—फिर वह चाहे कितनी ही कड़वी क्यों न हो। लेकिन मैं इस बातका दावा नहीं करता कि मुझसे भूल नहीं हो सकती। अभीतक मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी है जिससे मैं अपने विचार बदल लूं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि इस विषयका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' को जरूर पढ़ा है। स्वामी श्रद्धानन्दजीसे मेरा गहरा परिचय है। इसलिए मैंने वे बातें सोच-समझकर ही लिखी हैं। अगर कोई आर्य समाजी मुझे यह समझा दे कि किसी भी बातमें मुझसे गलती हुई है तो मैं खुशीके साथ अपनी गलतीको कबूल करूँगा, उसके लिए माफी मागूंगा और अपने तमाम गलत बयान वापस ले लूंगा।

दण्ड या पुरस्कार?

थोरोने कहा है कि स्वेच्छाचारी शासनके अधीन खुशहाली अपराध है और गरीबी गुण। दूसरे शब्दोंमें, ऐसी सरकारका कोप-भाजन बनना खुशीकी बात है। ऐसी सरकारकी कृपादृष्टिके प्रति सतर्क रहना चाहिए। इस तरह विचार करें तो मद्राससे प्रकाशित 'स्वराज्य' को जो दण्ड दिया गया है, उसे उसकी सार्वजनिक सेवाओंके लिए पुरस्कार

१. तात्पर्य गांधीजीके "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४ लेखसे है।

स्वरूप गिनना चाहिए। इसलिए मैं तो श्री प्रकाशमको[1] इस बातके लिए बधाइयाँ ही दूँगा कि मद्रास सरकारकी काली-सूचीमें उनके अखबारका नाम सर्वप्रथम है। उन्हें यह पुरस्कार देनेके लिए उस सरकारके भारतीय सदस्य जिम्मेदार हैं, इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। वे और कुछ कर ही नहीं सकते या तो उन्हें सरकारको कायम रखनेके लिए यह सब करना होगा, या फिर पद-त्याग करना होगा। उनका विश्वास ऐसा ही है कि यह सरकार देशके कल्याणके लिए कायम है। अहिंसात्मक असहयोगका उद्देश्य इस भ्रमका पर्दा हटानेकी प्रक्रिया शीघ्रतासे सम्पन्न करना है। यह प्रक्रिया बहुत धीमी गतिसे चल रही है। कारण यह कि हम असहयोगमें बहुत थोड़ा ही विश्वास रखते हैं और अहिंसामें तो और भी कम।

ऐशो-आराम देगी, लेकिन शक्ति नहीं

शान्तिनिकेतनसे बड़ो दा[2] लिखते हैं:[3]

> . . . आप चाहते हैं कि हम जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन अपने ही हाथोंसे करें और इस तरह शक्ति सम्पादन करें।
>
> . . . यह अपेक्षा रखना मूर्खता ही है कि सरकार हमें सचमुच कोई ऐसी शक्ति हासिल करने देगी जो उसकी मनचाही करनेकी शक्तिको निष्फल बना सके।

क्या यह [illegible] बात गलत नहीं है कि नगरोंमें रहनेवाले लोग गरीबोंको पूरा पैसा न देकर अपने ऐशो-आरामकी चीजें प्राप्त करते हैं और उधर सारी शक्ति एक ऐसी सरकारके हाथोंमें है, जो इस जनताके प्रति तनिक भी जिम्मेदारी महसूस नहीं करती और उसके दुःख-दर्द और जरूरतोंका कोई खयाल नहीं करती?

पीड़ितोंका त्राता चरखा

बाबू भूपेन्द्र नारायण सेन द्वारा भेजा गया निम्नलिखित पत्र[4] पाठकोंको अवश्य ही रोचक लगेगा:

इस पत्रसे प्रकट होता है कि छोटे पैमानेपर किया हुआ संगठन क्या-कुछ कर सकता है और ठीक ढंगके चरखे दिये जानेपर लोग उन्हें कितनी आसानीसे अपना लेते हैं। आज जिन्हें पेटकी खातिर भीख माँगनी पड़ रही है, चरखा उन सबको आत्म-सम्मानी दस्तकार बना देगा। वह शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर सबको एकताके सूत्रमें इतनी अच्छी तरह बाँध देगा जितना और किसी तरीकेसे सम्भव नहीं है।

१. टी० प्रकाशम, आन्ध्रके कांग्रेसी नेता; संयुक्त मद्रास राज्यके प्रथम मुख्यमन्त्री।

२. द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, दार्शनिक, रवीन्द्रनाथ ठाकुरके भाई।

३. यहाँ अंशतः दिया जा रहा है।

४. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने जून, १९२२ को बाढ़ पीड़ितोंके बीच दुआडोंढा गाँव जिला हुगलीमें श्री प्रफुल्लचन्द्र सेनने चरखेकी सहायतासे जो सराहनीय काम किया था, उसका विस्तृत विवरण दिया था।

ब्रह्मचर्य या आत्मसंयम

२५ मई, १९२४के 'नवजीवन' में मैंने इस सूक्ष्म विषयपर एक लेख लिखा था, जिसका महादेव देसाई द्वारा प्रस्तुत अनुवाद इस अंकमें दिया जा रहा है।[1] इस अनुवादको 'यंग इंडिया' में छापते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि मेरे सामने इस विषयपर भारतके दूसरे स्थानोंसे भी आये बहुतसे पत्र मौजूद हैं। बिखरे हुए विचारोंको इस लेखमें सिलसिलेसे प्रस्तुत किया गया है; उससे पवित्र जीवन व्यतीत करनेके लिए हार्दिक प्रयत्न करनेवाले लोगोंको कुछ सहायता मिल सकती है। जिन लोगोंने इस विषयकी जिज्ञासा की थी, वे सबके-सब हिन्दू हैं और इसलिए स्वभावतः यह लेख उन्हींको लक्ष्य करके लिखा गया है। अन्तिम अनुच्छेद सबसे महत्वपूर्ण है और उसका सम्बन्ध उन बातोंसे है, जिन्हें व्यावहारिक जीवनमें उतारना है। ईश्वर और अल्लाह, दोनों शब्दोंका महत्त्व एक ही है। भावना यह है कि हम अपने भीतर ईश्वरके अस्तित्वका अनुभव करें। सभी पाप हम लुक-छिपकर करते हैं। जिस क्षण हम यह अनुभव कर लेंगे कि ईश्वर हमारे कामको तो क्या, विचारोंको भी देखता है, उसी क्षण हम मुक्त हो जायेंगे।

आचार्य गिडवानीके बारेमें

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने नाभाके प्रशासकके नाम इन शब्दोंमें एक पत्र भेजा है:

> मैंने अभी-अभी २२ तारीखके यंग इंडिया में, श्री गिडवानीके कारावासके सम्बन्धमें श्री मो० क० गांधीके नाम लिखा गया आपका १२ मईका पत्र पढ़ा[2]। इस पत्रमें कहा गया है कि आपने मुझको तथा आचार्य गिडवानी और श्री के० सन्तानम्को दी गई सजा इस शर्तपर रद की थी कि हम यह राज्य छोड़कर चले जायें और बिना अनुमतिके उसमें वापस न आयें। लेकिन मुझे तो इस घटनाके बारेमें जो-कुछ याद है, उसके अनुसार स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। मेरा खयाल था और अभी भी है कि हमारी सजा बिना किसी शर्तके रद की गई थी। जहाँतक मुझे याद आता है, दण्ड-प्रक्रिया संहिताकी धारा ४०७के अधीन जारी किये गये सजा रद करनेवाले आदेशमें, बल्कि जिसपर आदेश लिखा हुआ था, उसमें भी अलगसे किसी शर्तका अथवा बिना अनुमति-के या अनुमति लेकर नाभा राज्यमें हमारे वापस लौटनेका कोई उल्लेख नहीं था। यह प्रश्न जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट और पुलिसके प्रमुखके साथ — जो वहाँ मौजूद थे — हमारी बातचीतमें और भी साफ हो गया था। बादमें हमें एक दूसरे कागजपर लिखे एक अन्य आदेशकी सूचना मिली। इस आदेशको प्रशासनिक आदेश (एक्जीक्यूटिव आर्डर) कहा गया था। उसमें हमें राज्य

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पाठके लिए देखिए पृष्ठ १२१-२४।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", २२-५-२४, उप-शीर्षक 'आचार्य गिडवानी'।

छोड़कर चले जाने और बिना अनुमतिके वापस न आनेका हुक्म दिया गया था। इस दूसरे कागजमें हमारी सजाओंका अथवा उनके रद किये जानेका कोई उल्लेख नहीं था। आदेशोंकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनेके लिए मेरी प्रार्थना मंजूर नहीं की गई और न मुझे स्वतः उनकी प्रतिलिपि तैयार कर लेनेकी अनुमति दी गई। मुझसे कहा गया कि आपने प्रतिलिपि देनेकी साफ मनाही कर दी है। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि आप कृपया मुझे बतायें कि सजा रद करनेवाले आदेशके सम्बन्धमें मैंने जो तथ्य ऊपर लिखे हैं, वे सही हैं या नहीं। यदि आप मुझे सजा रद करनेके आदेश तथा 'प्रशासनिक आदेश'की प्रतिलिपियाँ भेज दें तो उसके लिए भी मैं आभार मानूँगा। मैं आशा करता हूँ, आप स्वीकार करेंगे कि ये प्रतिलिपियाँ मुझे दे देना, मेरे प्रति मात्र न्याय करना ही होगा, क्योंकि इन्हींको देखकर मैं जान सकता हूँ कि मेरी ठीक स्थिति क्या है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरूके पत्रसे सिद्ध होता है कि आचार्य गिडवानीकी पुरानी सजाको फिरसे लागू कर दिया जाना तथा उनको जेल भेज दिया जाना यदि अवैध नहीं तो सर्वथा अनुचित अवश्य है। निश्चय ही इन तीनों देशभक्तोंको अपनी रिहाईकी शर्तें देखनेका अधिकार था। जैसा कि पहले ही लिख चुका हूँ, आचार्य गिडवानीने अवज्ञाकी भावनासे प्रवेश नहीं किया था। उन्होंने मानवताके हितके लिए ही प्रवेश किया था। जनता भी यह जानना चाहेगी कि पण्डित जवाहरलाल नेहरूको प्रशासक क्या जवाब देता है:

विलासिता और आलस्य

खद्दरके प्रचार-कार्यमें जो कठिनाइयाँ हैं, उनके बारेमें एक सज्जनने मुझे एक लम्बा पत्र भेजा है। मैं यहाँ उस पत्रके सम्बद्ध अंशोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ:

> हमारे प्रान्तमें बहुत कताई होती है। अगर मैं कहूँ कि हमारे गाँवोंमें प्रत्येक महिला कातती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ भी इस कलाको जानती हैं और चरखा चलाती हैं। इस प्रान्तमें बुनकर भी बहुत बड़ी संख्यामें हैं। इस प्रान्तमें खद्दरका उत्पादन बहुत बड़े परिमाणमें किया जा सकता है। खद्दरके उत्पादनके लिए जब मैं यह विशाल क्षेत्र देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मुझे भी काम करना चाहिए और कसकर करना चाहिए। किन्तु जब मैं कांग्रेस कमेटीके खद्दर-भण्डारमें जाता हूँ तो देखता हूँ कि बहुत कम लोग हमारा कपड़ा खरीदते हैं। जिन लोगोंने खद्दर पहिनना शुरू किया था, उन्होंने भी मिलके सूतके कपड़े और कुछने तो विदेशी कपड़े भी पहनना शुरू कर दिया है।
>
> कांग्रेसने जनताकी भावनाओंको जगाया। जनताने विदेशी कपड़े छोड़ दिये, कुछने तो उन्हें जला भी दिया। उन्होंने खद्दर अपना लिया। किन्तु

उसके दोष साफ दिखाई देने लगे। नतीजा यह है कि अब वे उसे पहनना नहीं चाहते। दोष ये हैं:

१. खद्दर बहुत वजनी होता है; महिलाओंको वह पसन्द नहीं आता।

२. भारी होनेके कारण उसे धोना कठिन होता है।

३. खद्दर बच्चोंका कपड़ा नहीं है, क्योंकि बच्चोंके कपड़ोंको बार-बार धोना पड़ता है और खद्दरको बार-बार धोना मुश्किल होता है।

४. खद्दरमें विविधता नहीं है और उसपर पक्का रंग नहीं चढ़ाया जा सकता।

५. खद्दरपर धूल ज्यादा जमती है।

६. खद्दर मिलके कपड़ोंसे महँगा है। हम हाथका कता सूत एक रुपयेका एक पौंड खरीदते हैं, जब कि अमृतसरमें भारतीय मिलका कपड़ा उसी भावसे यानी एक रुपयेका एक पौंड बिकता है।

धनवान लोग उसे इसलिए नहीं पहनना चाहते क्योंकि यह उनकी रुचिके अनुकूल नहीं होता; और गरीब लोग इसे इसकी कीमत, धुलाईका खर्च और दूसरे खर्चोंके कारण नहीं पहन पाते।

गाँवोंमें कृषक वर्गके लोग ही इसका उपयोग करते हैं। उन्हें अपने खेतोंसे कपास मिलती है। उनकी स्त्रियाँ ओटने और कातनेका काम करती हैं। उन्हें पिंजाई और बुनाईका पैसा देना पड़ता है, जो बहुत नहीं होता क्योंकि गाँवोंमें मजदूरी बहुत कम देनी पड़ती है। खादी उनके लिए एक ऐसी चीज है जिसे वे अपने दूसरे काम करते हुए, बिना ज्यादा खर्च और मेहनतके तैयार कर लेते हैं। उसका उपयोग करके वे पैसा बचा लेते हैं, जो उन्हें उतनी आसानीसे नहीं मिलता, जितनी आसानीसे शहरके लोगोंको मिलता है।

पत्र-लेखक खद्दर आन्दोलनसे सम्बद्ध हैं और उसमें विश्वास भी करते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि उनका तर्क विलासिता और आलस्यका तर्क है। जहाँ इन दो दुर्गुणोंका राज्य है, वहाँ निश्चय ही खादीके प्रचारका कार्य सफल नहीं हो सकता। यदि हम स्वराज्यके इच्छुक हैं तो हमें काम करनेके लिए और कमसे-कम कुछ समयके लिए विलासितापूर्ण रुचियोंका त्याग करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। जो सैनिक सुविधाओंका त्याग करनेको तैयार नहीं है, वह लड़ नहीं सकता। यदि भारत खुरदरी खादीके लिए मुलायम और सस्ते केलिको वस्त्रको नहीं छोड़ सकता तो उसे निश्चय ही स्वराज्य नहीं मिलेगा। मिलके-सभी तरहके कपड़ोंको तत्काल त्याग देनेकी दृष्टिसे पंजाब सबसे उपयुक्त प्रान्त है। किन्तु पंजाबियोंकी ओरसे ही अड़चनें आ रही हैं, इससे पता चलता है कि हम कितने गिर गये हैं। यदि पंजाबी महीन और सुन्दर कपड़ा चाहते हैं तो उपाय यह नहीं है कि वे मिलका कपड़ा खरीदें, बल्कि यह है कि पंजाबी बहनें उतना ही महीन सूत कातें जितना आन्ध्रकी बहनें कातती हैं। आन्ध्र-पद्धतिकी कताईसे चाहे जितना बारीक कपड़ा मिल सकता है और यह काम

बहुत कठिन भी नहीं है। यदि हम पतली चपातियाँ चाहते हैं तो उन्हें पतला बेलते हैं, न कि उनकी खोजमें और कहीं जाते हैं। उसी प्रकार, यदि हमें महीन कपड़ा चाहिए तो हमें महीन सूत कातना चाहिए। यदि महिलाएँ इतनी आलसी हैं कि महीन सूत नहीं कात सकतीं तो उन्हें खद्दरके भारी होनेकी शिकायत करनेका कोई अधिकार नहीं है और अगर हम बच्चोंको दिखावेके लिए नहीं, बल्कि उनकी सुरक्षाके लिए कपड़े पहनाते हैं तो उनके लिए खद्दर बहुत ही उपयुक्त कपड़ा है। खद्दर उतनी ही विविधता दे सकती है, जितना मिलका कपड़ा। किन्तु इसके लिए आवश्यकता है अपने पूर्वजोंके मौलिक कौशलको पुनरुज्जीवित करनेकी। खद्दर आज मिलके कपड़ेसे महँगा है, क्योंकि अभी हमने इस राष्ट्रीय कुटीर उद्योगको दृढ़ आधारपर प्रतिष्ठित नहीं किया है। किन्तु यदि हम स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो निश्चय ही हमें मूल्यका विचार नहीं करना चाहिए। खद्दर पहननेवाले सैकड़ों लोगोंका यह अनुभव है कि यद्यपि प्रति गजके हिसाबसे खद्दर महँगा है, फिर भी चूँकि उसके प्रयोगसे उनकी रुचि सादी हो जानेके कारण उन्हें कम कपड़ेकी जरूरत पड़ती है, इसलिए खद्दर पहिनना सस्ता ही पड़ता है। गरीबोंके लिए वह महँगा नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं कपास पैदा करके उसकी ओटाई, धुनाई और कताई करके खुद ही कपड़ा भी बुन सकते हैं। यदि बारीकीसे देखें तो इस दलीलका जवाब यह है कि लोग पंजाबी बहनों-के बीच निरन्तर प्रचार-कार्य करें और उनसे कहें कि वे २० नम्बरसे कमका सूत न कातें। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो कताईके काममें सिद्धहस्त हो, उनके तकुओंको इस प्रकार बैठा सकता है, जिससे वे बहुत अधिक अतिरिक्त श्रम और समय लगाये बिना ऊँचे नम्बरका सूत कात सकती हैं।

कातनेवाला किसे कहते हैं?

लोग बहुधा मात्र धागा खींच सकनेके बलपर ही कहने लगते हैं कि वे कात लेते हैं। लेकिन यह खयाल गलत है। नानबाई वह है, जो सेंककर ऐसी रोटी तैयार करे जो खाई और पचाई जा सके। मगर उसका सिर्फ रोटी सेंकना-भर जानना काफी नहीं है। उसे उन सभी प्रक्रियाओंका ज्ञान होना चाहिए जिनके जरिये आटेसे रोटी बनाई जाती है और उसे आटेकी विविध किस्मोंकी भी जानकारी होनी चाहिए; और सचमुच हर नानबाईको इस सबका ज्ञान होता है। इसी प्रकार कातनेवाला वह है जो एक-सा और ठीक बटा हुआ ऐसा सूत काते, जो बिना कठिनाईके बुना जा सके। यदि धागा आवश्यकतासे कम या अधिक बटा हुआ हो तो वह बुनाईके कामका नहीं होगा और चूँकि बिना अच्छी पूनियोंके ठीक कातना सम्भव नहीं है, इसलिए कातनेवालेको पिंजाई करना और पूनी बनाना भी आना चाहिए। उसे विभिन्न किस्मकी कपासोंके रेशोंके बारेमें भी बता सकना चाहिए तथा जितने नम्बरका सूत कातनेके लिए उससे कहा जाये — मान लीजिए ३० नम्बरका सूत कातनेको कहा जाये तो — उतने नम्बरका सूत उसे कात सकना चाहिए। इसी प्रकार जो बढ़ई अपने औजारोंको तेज नहीं कर सकता अथवा उनकी मरम्मत नहीं कर सकता, वह किसी कामका बढ़ई नहीं है। उसी प्रकार वह कातनेवाला भी किसी कामका नहीं है, जो अपनी धुनकी या चरखेकी मरम्मत नहीं

कर सकता अथवा तकुएको सीधा नहीं कर सकता। कई लोग चरखा बिगड़ जानेके कारण ही कातना छोड़ देते हैं। इसलिए मेरी रायमें, कताईकी परीक्षामें, मैंने जो बातें कहीं हैं, वे सभी आ जानी चाहिए। इस प्रशिक्षण-क्रमसे सीखनेवालोंको डर नहीं जाना चाहिए। जो काममें मन लगायेंगे, उनके लिए यह काफी आसान है। असल बात यह है कि यह काम संजीदगीके साथ उठाया जाना चाहिए।[1]

जिसमें आस्थाका बल है, वह सब-कुछ कर सकता है और उसे सब-कुछ आसान ही लगता है। जिसमें आस्था नहीं है, उसे हर काम कठिन लगता है। कताई सीखनेका मतलब है सुस्ती छोड़कर मेहनतकश बनना। किसी बातका मौखिक उपदेश करनेके बजाय स्वयं ही उसे करके दिखाना चाहिए। स्वराज्य भाषणोंसे नहीं मिल सकता, उसे तो कर्मके बलपर ही प्राप्त किया जा सकता है। कताई ही एक ऐसा काम है, जिसे सब लोग अपना सकते हैं। जब लोग चरखेकी उपेक्षा करने लगे, तभी भारत परतन्त्र और दरिद्र हुआ; चरखेको फिरसे अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करनेमें ही उसकी समृद्धिका मार्ग है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९५. हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल भारतीय देशभक्तोंके सामने मौजूद सवालोंमें सबसे जबरदस्त है। पिछले हफ्ते उसपर मैं अपना लम्बा-चौड़ा बयान[2] दे चुका हूँ। अब यहाँ उसीका सार दे रहा हूँ। इन दोनों मजहबोंको माननेवाले लोग इस मामलेमें अपना-अपना फर्ज किस तरह अदा करते है, इसी आधारपर भावी पीढ़ियाँ इनके बारेमें अपना निर्णय देंगी। हिन्दू-धर्म और इस्लामके उसूल चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, दोनोंकी खूबियों और खामियोंका निर्णय सिर्फ इसी बातसे किया जा सकता है कि ये समष्टि-रूपमें अपने अनुयायियोंपर कैसा असर डालती है।

अब उस वक्तव्यका सार सुनिए :

कारण

१. इस तनावका दूरवर्ती कारण है मोपलोंकी बगावत।

२. श्री फजल हुसैन द्वारा पंजाबके शिक्षा विभागमें मुसलमानोंकी तादादके मुताबिक सरकारी नौकरियोंका बँटवारा करनेका प्रयत्न और फलतः हिन्दुओं द्वारा उसका विरोध।

१. इससे आगेका हिस्सा ९-६-१९२४ के 'नवजीवन' में प्रकाशित गांधीजीके एक लेखसे लिया गया है, जिसमें उन्होंने बहुत अंशोंतक इसी विषयकी चर्चा की थी। इस लेखका शीर्षक भी यही है लेकिन यहाँ जो अनुच्छेद जोड़ा जा रहा है, वह यंग इंडियामें नहीं है।

२. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

३. शुद्धि-आन्दोलन।

४. सबसे अधिक सबल कारण है अहिंसासे लोगोंका ऊब उठना और इस अन्देशेका होना कि ज्यादा दिनोंतक अहिंसाकी तालीम मिलनेसे दोनों कौमें प्रतिशोध और आत्मरक्षाके नियमको भूल जायेंगी।

५. मुसलमानोंका गो-वध और हिन्दुओंका बाजा।

६. हिन्दुओंकी कायरता और इस कारण मुसलमानोंके प्रति उनका अविश्वास।

७. मुसलमानोंका आततायीपन।

८. हिन्दुओंकी नेकनीयतीपर मुसलमानोंकी बेऐतबारी।

उपचार

१. इसके समाधानकी सबसे बढ़िया कुंजी है तलवारके नियमके बजाय पंच-फैसलेके नियमको अपनाना।

न्यायप्रिय लोगोंके मतको इतना प्रबल होना चाहिए कि पीड़ित पक्षोंके लिए कानूनको अपने हाथोंमें ले लेना असम्भव हो जाये। हरएक मामला या तो खानगी पंचायतोंमें पेश किया जाये, और अगर सम्बन्धित पक्ष असहयोगमें विश्वास न रखते हों तो मामलेको अदालतमें दायर किया जाये।

२. इस अज्ञान-जनित आशंकाको दूर किया जाये कि ऐसेमें हिंसाकी जगह भीरुतामूलक अहिंसा आ जायेगी — अहिंसाको भीरुतामूलक कहना भारी भूल है।

३. अगर कौमके अगुआ एकताके कायल हों तो वे परस्पर बढ़ते हुए अविश्वासके बदले विश्वासकी भावना जागृत करें।

४. हिन्दुओं और मुसलमानोंको आततायीसे डरना छोड़ देना चाहिए और मुसलमानोंको चाहिए कि वे अपने हिन्दू भाइयोंको आतंकित करना अपनी शानके खिलाफ समझें।

५. हिन्दुओंको यह न सोचना चाहिए कि हम मुसलमानोंसे जबरन गो-हत्या बन्द करा लेंगे। वे मुसलमानोंके साथ दोस्ती करके यह विश्वास रखें कि मुसलमान लोग अपने हिन्दू पड़ोसियोंका खयाल करके खुद ही अपनी खुशीसे गो-हत्या बन्द कर देंगे।

६. मुसलमानोंको भी यह नहीं सोचना चाहिए कि वे हिन्दुओंको मसजिदोंके सामने बाजा बजाने या आरती करनेसे जबरदस्ती रोक सकते हैं। उन्हें हिन्दुओंको अपना दोस्त बनाना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि वे मुसलमानोंकी उचित भावनाओंका खयाल जरूर करेंगे।

७. हिन्दुओंको चाहिए कि वे निर्वाचित संस्थाओंमें प्रतिनिधित्वके सवालको मुसलमानों तथा दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंपर छोड़ दें और ये निर्णायक जो निर्णय करें उसको सच्चे दिलसे और शोभनीय ढंगसे मंजूर करके उसपर अमल करें। अगर मेरा बस चले तो मैं हकीम अजमलखांको एकमात्र सरपंच नियुक्त कर दूं और उन्हें पूरी आजादी दे दूं कि उन्हें जो ठीक लगे उसके मुताबिक वे मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, पारसियों तथा दूसरी जातियोंसे सलाह-मशविरा करें।

८. राष्ट्रीय सरकारके अधीन नौकरियाँ योग्यताके अनुसार दी जायें। योग्यताका निर्णय सभी कौमोंके प्रतिनिधियोंका एक परीक्षा-बोर्ड करे।

९. शुद्धि या तबलीगके काममें जहाँतक यह शुद्धि या तबलीगका ही काम है, खलल नहीं डाला जा सकता; लेकिन दोनोंका काम सचाई और ईमानदारीके साथ होना चाहिए और वे लोग ही इस कामको करें जो चरित्रवान सिद्ध हो चुके हों। दूसरे मजहबपर कोई चोट न की जाये। छिपे तौरपर किसी किस्मका प्रचार-कार्य न किया जाये और पुरस्कारका प्रलोभन न दिया जाये।

१०. ऐसा लोकमत तैयार किया जाये कि अश्लील और गाली-गलौज भरे सभी लेखों, खासकर पंजाबके कुछ अखबारोंमें छपनेवाले ऐसे लेखोंका प्रकाशन बन्द हो जाये।

११. अगर हिन्दू अपनी कायरता नहीं छोड़ेंगे तो कुछ भी नहीं बनेगा। यह अधिकांशतः हिन्दुओंके ही हित-अहितका सवाल है। इसलिए उन्हींको सबसे ज्यादा त्याग करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

लेकिन यह उपचार अमलमें किस तरह लाया जाये? इन खब्ती हिन्दुओंको कौन समझाये कि गो-रक्षाका सबसे अच्छा तरीका है गायके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना। मुसलमान भाइयोंके पीछे पड़े रहनेसे कुछ भी नहीं बनेगा; और हठधर्मी मुसलमानोंको कौन समझाये कि जब कोई हिन्दू मसजिदके सामने बाजा बजाता है तो उसका सिर फोड़ना धर्म नहीं अधर्म है। या फिर हिन्दुओंके दिलमें यह बात कौन उतारे कि अगर लोकनिर्वाचित और धर्मनिरपेक्ष सरकारी संस्थाओंमें अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधि ज़्यादा भी रहें तो उससे उनका कोई नुकसान नहीं होगा? ये कुछ मुनासिब सवाल हैं, जिनसे इस समस्याके समाधानके मार्गकी कठिनाइयाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

किन्तु अगर उक्त उपचार ही एकमात्र सच्चा उपचार है तो सभी कठिनाइयों-पर विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। सच पूछिए तो जो कठिनाइयाँ हैं, वे ऊपरी ही हैं। अगर थोड़े-से हिन्दू और थोड़े-से मुसलमान भी ऐसे हों जिनका इस उपचारमें जीवन्त विश्वास हो तो बाकी सब काम आसान है। बल्कि सच तो यह है कि अगर दोनों कौमोंमें से किसी एकमें भी ऐसे जीवन्त विश्वासवाले कुछ लोग हों तो भी यह उपचार आसानीसे काममें लाया जा सकता है। बस वे एक हृदय होकर अपना काम करते जायें, दूसरे लोग तो अपने-आप उनका अनुगमन करने लगेंगे। सिर्फ एक ही पक्षका इस बातको मान लेना काफी है क्योंकि इस उपचारमें सौदेबाजीकी जरूरत नहीं है। उदा-हरणके लिए, हिन्दुओंको चाहिए कि वे गायोंके मामलेमें मुसलमानोंको परेशान करना छोड़ दें और सो भी ऐसी कोई आशा रखे बिना कि मुसलमान लोग अपने-आप इस सम्बन्धमें कोई मुरौवत दिखायेंगे। प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें भी मुसलमानोंकी जो-कुछ माँग हो उसे वे स्वीकार कर लें। इस मामलेमें भी वे बदलेकी कोई आशा न रखें और अगर मुसलमान लोग हिन्दुओंके बाजे या आरतीको जबरदस्ती बन्द करनेपर जिद करें तो भले ही एक-एक हिन्दूको वहीं मर मिटना पड़े, किन्तु वे प्रतिहिंसा-स्वरूप अपना हाथ उठाये बिना भजन-आरती जारी रखें। तब मुसलमान लोग शर्मिन्दा हो जायेंगे और बहुत ही थोड़े दिनोंमें सही रास्तेपर आ जायेंगे। चाहे तो मुसलमान भी ऐसा ही

कर सकते हैं और हिन्दुओंको शर्मिन्दा करके उन्हें सीधे रास्तेपर ला सकते हैं। जरूरत सिर्फ हिम्मत करके अपने भीतर विश्वास पैदा करने की है।

किन्तु इसपर इस रूपमें अमल नही किया जायेगा। इसके बजाय यदि कार्यकर्त्ता लोग खुद अपने प्रति ईमानदारी बरतने लगेंगे तो दोनों पक्ष एक साथ अपना-अपना कर्त्तव्य करने लगेंगे। दुर्भाग्यवश कार्यकर्त्तागण अपने प्रति ऐसी ईमानदारी नहीं बरतते। अधिकांशतः आवेश और पूर्वग्रहके वशीभूत रहा करते हैं। हर कार्यकर्त्ता अपने सहधर्मियोंके दोषको छिपानेकी कोशिश करता है और इससे अविश्वास और सन्देहका दायरा हमेशा बढ़ता चला जाता है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि हम लोग अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें काम करनेका ऐसा तरीका ढूंढ़ निकालेंगे जिससे यह तनाव जल्दी ही समाप्त हो जायेगा।

मुझे यह बताया गया है कि सरकार झगड़ेको भड़का रही है। मैं तो यही मानना चाहूँगा कि सरकार ऐसा कुछ नहीं करती तथापि मान लीजिए, वह ऐसा करे तो यह बात तो हमपर ही निर्भर करती है कि हम खुद अपनी तरफसे सचाई और ईमानदारीके साथ काम करके उसकी कोशिशोंको बेकार कर दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९६. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें यह तय किया जायेगा कि कांग्रेस अगले छः महीनोंतक अपना किस तरह काम करे। जो कौम अपने मंजिले मकसूदपर पहुँचनेके लिए तड़प रही हो उसके लिए छः महीने खोना गोया एक युगको खो देना है। उसका एक-एक लमहा कीमती है। इस कमेटीके सदस्य प्रतिनिधियोंके प्रतिनिधि हैं। वे कौमके सच्चे कार्यपालक अधिकारी है या उन्हें ऐसा होना चाहिए। अगर वे चाहें तो स्वराज्य बहुत जल्दी प्राप्त हो सकता है — स्त्री हों या पुरुष — पर वे ऐसे हों जो राष्ट्रीय कार्यक्रममें फिलहाल अटल विश्वास रखते हों। उन्हें खुद भी उसके मुताबिक चलना चाहिए और औरोंको भी प्रेरित करना चाहिए। अगर ये तीन सौ पचास प्रतिनिधि एकमत होकर काम करें तो मुल्कके ऊपर तत्काल उसकी छाप पड़े बिना नहीं रहेगी।

तो आइए, हम सब, स्त्री या पुरुष, अपने-अपने दिलसे पूछें :

(१) क्या स्वराज्य हासिल करनेके लिए मैं अहिंसा और सत्यमें विश्वास करता हूँ?

(२) क्या मैं सच्चे दिलसे हिन्दू-मुस्लिम एकताका कायल हूँ?

(३) क्या मैं चरखेकी इस ताकतका कायल हूँ कि उसके जरिये भारतके करोड़ों भूखसे पीड़ित लोगोंके आर्थिक कष्ट दूर हो जायेंगे? क्या मैं हाथ-कती खादीका घर-

घर प्रचार करनेके लिए, ऐसे दिनोंके सिवाय जब मैं चौबीसों घंटे यात्रापर होऊँ, कमसे-कम आध घंटा रोज निष्ठासे चरखा चलानेके लिए तैयार हूँ? क्या मैं सिर्फ खादीका ही इस्तेमाल करनेके लिए तैयार हूँ?

(४) क्या मैं सरकारी खिताबों, स्कूलों, अदालतों और कौसिलोंके बहिष्कारमें विश्वास रखता हूँ?

(५) अगर मैं हिन्दू हूँ तो क्या मैं इस बातको मानता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मके सिरपर एक कलंक है?

(६) क्या मैं शराबखोरी और नशेबाजीको पूरी तरह उठा देनेमें विश्वास रखता हूँ; हालाँकि इसके परिणामस्वरूप उनसे प्राप्त होनेवाला सारा राजस्व एक ही सपाटेमें खत्म हो जायेगा?

मेरी अपनी रायमें तो जो व्यक्ति कांग्रेस-कार्यक्रमकी इन बातोंको न मानता हो, उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें नहीं रहना चाहिए। इन तमाम बातोंकी ओर ध्यान दिलानेकी जरूरत इसलिए हुई कि मैं जानता हूँ कि बहुतेरे सदस्य अहिंसा और सत्यमें विश्वास नहीं रखते। मैंने यह भी सुना है कि कांग्रेसकी कार्यकारिणी संस्थाओं-में ऐसे वकील लोग हैं जिन्होंने वकालत नहीं छोड़ी है, ऐसे सदस्य हैं जो हमेशा केवल खादी ही नहीं पहनते; ऐसे असहयोगी हैं जो राष्ट्रीय पाठशालाओंकी प्रबन्ध-समितियोंमें हैं और जो खुद अपने लड़कोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजते हैं; और अन्तमें, ऐसे व्यापारी भी हैं जो विदेशी या मिलोंके बने कपड़ोंका व्यापार करते हैं और फिर भी कांग्रेसकी कार्यकारिणियोंके सदस्य हैं। जिन लोगोंपर कांग्रेसके कार्यक्रमको लागू करानेकी जिम्मेवारी है, यदि वे खुद ही उसके मुताबिक न चलें तो मैं यही कहूँगा कि उस कार्य-क्रमको सफल बनाना गैरमुमकिन है। जो वकील खुद वकालत करता है, वह अपने भाईसे किस तरह कह सकता है या कैसे उससे आशा रख सकता है कि वह वकालत छोड़ दे? या वह शख्स जो खुद चरखा नहीं चलाता, किस तरह दूसरेको उसे चलानेकी जरूरत समझा सकता है।

मैं समितिसे निवेदन करना चाहता हूँ कि वह प्रामाणिक कार्यक्रम बनाये। अगर किसी दूसरे कार्यक्रमके पक्षमें बहुमत हो तो मैं अल्पमतवालोंसे कहूँगा कि वे कांग्रेस कमेटीमें न रहें और उसके बाहर रहकर उस कार्यक्रमके अनुसार काम करें। कांग्रेसके प्रस्तावोंके आदेशोंकी बहुत अधिक अवहेलना होती रही है। इसलिए मैं यह सुझाव भी देना चाहता हूँ कि सदस्योंको चाहिए कि वे हर माहके अन्तमें कमसे-कम १० नम्बर-का, कमसे-कम १० तोला, अच्छा बँटा हुआ एक-सा सूत खुद कातकर भेज दिया करें। अगर रोज आध घंटा काता जाये तो एक महीनेमें दस तोला सूत आसानीसे काता जा सकता है। हर मासकी १५ तारीखके पहले-पहले यह सूत खादी बोर्डके मन्त्रीके पास पहुँच जाना चाहिए। जो इसमें गफलत करे, उसके बारेमें समझा जाये कि उसने इस्तीफा दे दिया। इसी तरह जो लोग अपने-अपने क्षेत्रोंसे हाथ-धुनाई, हाथ-कताई, हाथ-बुनाई और हाथसे कते सूतका हिसाब हर माह न भेजें, उनके बारेमें भी यही माना जाये कि उन्होंने इस्तीफा दे दिया। हिसाब हर माहकी १५ तारीखसे पहले मन्त्रीके पास पहुँच जाना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि ये शर्तें उन लोगोंके लिए मुश्किल हैं जो काम करना नहीं चाहते हैं, लेकिन उन लोगोंके लिए आसान हैं जो वाकई काम करना चाहते हैं। अगर कौमके चुनिन्दा प्रतिनिधि काम न करें तो कार्यक्रमको पूरा करनेका कोई तरीका नहीं है।

हमारे काम करनेके तरीकोंमें बड़ी ढिलाई रही है। अब वक्त आ गया है कि हम अपनी ढील-ढाल जरा कम करें। यह इल्जाम लगाया जाता है कि यह कार्यक्रम प्रेरणादायक नहीं है और सूत कातनेवालोंका मुल्क स्वराज्य नहीं पा सकता। इस इल्जामसे मैं डरता या घबराता नहीं हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि ठोस कामसे ज्यादा प्रेरणादायक और कोई चीज नहीं होती और अगर हमें इस देशसे फाकाकशीका नामोनिशान मिटाना हो और आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र होना हो तो हमारे लिए एक बार फिरसे धुनियों, कतैयों और बुनकरोंकी कौम बने बिना कोई चारा नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९७. जेलके अनुभव – ७

सत्याग्रही कैदियोंका आचरण

पिछले प्रकरणके अन्तमें मैंने कुछ मित्रों द्वारा पेश की जानेवाली जो दलील दी है, वह विचारणीय है। किसी अन्य कारणसे नहीं तो कमसे-कम इस कारणसे अवश्य कि बहुतसे लोग इस दलीलमें ईमानदारीसे विश्वास करते हैं और बहुतोंने १९२१ और १९२२ में, जब हजारों लोग जेल गये थे, इसके अनुसार आचरण भी किया था।

पहली बात तो यह है कि जेलसे बाहर भी हमारा उद्देश्य सरकारको परेशान करना नहीं है। जबतक हमारा आचरण सही है, हमें इस बातसे कोई मतलब नहीं कि सरकार परेशान होती है अथवा नहीं। हमारे असहयोगसे सरकारको जितनी परेशानी होती है, उतनी परेशानी तो और किसी चीजसे नहीं हो सकती। लेकिन, फिर भी हम वकीलों और विधायकोंके रूपमें असहयोग करते ही हैं, क्योंकि यह हमारा कर्त्तव्य है। मतलब यह कि अगर हमें यह मालूम हो कि असहयोगसे शासकोंको खुशी होती है तब भी हम असहयोग करेंगे ही। किसीको खुशी हो या नाराजगी, इस ओरसे हम इतने उदासीन इसलिए हैं कि हम मानते हैं, इससे अन्ततः हमारा अपना लाभ ही होगा। लेकिन जेलोंमें ऐसा असहयोग नहीं चल सकता। हम जेलोंमें अपने किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी पूर्ति करने नहीं जाते। वहाँ तो हमें सरकार अपराधी मानकर ले जाती है। इसलिए जिस प्रकार जेलोंसे बाहर हमारा यह काम है कि हम उदाहरणके लिए, सरकारके न्यायालयों या स्कूलों अथवा कौंसिलों या खिताबोंका बहिष्कार करके उसे यह दिखा दें कि हम इन संदिग्ध लाभोंके बिना भी अपना काम चलानेको तैयार हैं और इस तरह उसके मनका भ्रम दूर कर दें, उसी प्रकार जेलोंमें हमारा काम यह है कि

हम आदर्श (और सरकार द्वारा अपेक्षित) आचरण करके वहाँ भी उसके मनका भ्रम दूर कर दें।

पता नहीं हममें से सभीको इस बातकी प्रतीति है या नहीं कि असहयोग हुल्लड़-बाजी करके प्रतिपक्षीको भयभीत करनेकी नहीं, बल्कि उसके हृदयको छूने और उसकी बुद्धिको प्रभावित करनेकी प्रक्रिया है। अहिंसात्मक आन्दोलनमें हुल्लड़बाजी करके डर फैलानेके लिए कोई स्थान ही नहीं है।

मैंने सत्याग्रही बन्दियोंकी तुलना अकसर युद्धबन्दियोंसे की है। सिपाही जब शत्रु द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं तो वे शत्रुके साथ मित्रवत् व्यवहार करने लगते हैं। यदि कोई सिपाही युद्धबन्दीके रूपमें शत्रुके साथ धोखेबाजी करे तो यह उसके लिए कलंक-की बात होगी। मेरी दलीलमें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सरकार सत्याग्रही कैदियोंको युद्धबन्दी नहीं मानती। यदि हम युद्धबन्दियों-जैसा आचरण करें तो शीघ्र ही हमारे साथ सम्मानका व्यवहार किया जाने लगेगा। जेलोंको हमें ऐसी निष्पक्ष संस्था बना देनी चाहिए जिसमें हमारा सरकारके साथ सहयोग कर सकना उचित ही नहीं, कुछ हदतक धर्म बन जाता है।

यदि हम एक ओर जानबूझकर जेलके नियमोंको तोड़ें और साथ ही दूसरी ओर सजा देने और कड़ाई बरतनेकी शिकायत करें तो हमारा यह आचरण बहुत असंगत होगा और इसे शायद ही आत्मसम्मानपूर्ण माना जाये। उदाहरणके लिए, ऐसा नहीं हो सकता कि हम तलाशीका विरोध और उसकी शिकायत भी करें और साथ ही अपने कम्बलों और कपड़ोंमें निषिद्ध चीजें भी छिपाकर रखें। उस सत्याग्रहमें जिसे मैं जानता हूँ ऐसी कोई चीज नहीं है जिसकी आड़ लेकर हम किसी विशेष प्रसंगके आ जाने-पर झूठ बोल सकते हों अथवा कोई दूसरी धोखेबाजी कर सकते हों।

जब हम यह कहते हैं कि यदि हम जेल अधिकारियोंका चैनसे बैठना मुश्किल कर दें तो सरकार सुलहका हाथ बढ़ानेपर मजबूर हो जायेगी, तब इसमें दरअसल या तो सरकारकी सूक्ष्म प्रशंसा हो जाती है या फिर हम उसे बहुत भोली समझ बैठते हैं। जब हम ऐसा मान लेते हैं कि हम जेल अधिकारियोंका चैनसे बैठना मुश्किल कर देंगे तो भी सरकार चुपचाप बैठी देखती रहेगी और हमें बिलकुल पस्त कर देनेवाली कड़ी सजा देनेमें आगा-पीछा करेगी, तब यह सचमुच सरकारकी प्रकारान्तरसे प्रशंसा ही हो जाती है। वैसा माननेका, मतलब तो यह है कि हम प्रशासकोंको इतना शालीन और दयालु समझते हैं कि हमारे द्वारा दण्डके योग्य पर्याप्त कारण उपस्थित किये जाने पर भी वे हमें कड़ी सजा देंगे ही नहीं। सच तो यह है कि अवसर आनेपर वे मर्यादाके समस्त विचारको ताकपर रखकर सिर्फ नियम-विहित सजा ही नहीं, बल्कि नियम-विरुद्ध सजा देनेमें भी संकोच नहीं करेंगे और न आज कर ही रहे हैं।

यह मेरा सुविचारित दृढ़ मत है कि यदि हमने बराबर ऐसी ईमानदारी और मर्यादाके साथ काम किया होता जो सत्याग्रहियोंके लिए शोभनीय है तो सरकारका सारा विरोध समाप्त हो जाता और इतने अधिक कैदियों द्वारा ऐसा प्रामाणिक व्यवहार करनेका परिणाम कमसे-कम इतना तो अवश्य होता कि सरकार लज्जित

होकर यह स्वीकार कर लेती कि ऐसे खरे और निर्दोष लोगोंको इतनी बड़ी संख्यामें जेलमें बन्द करके उसने भूल की है। क्योंकि उसका क्या यही आरोप नहीं है कि अहिंसा तो हिंसा करनेके लिए एक आवरण-मात्र है? इसलिए क्या यह सच नहीं है कि जब कभी हम कोई हुल्लड़बाजी करते हैं तो दरअसल क्या सरकारके मनका काम ही नही कर जाते?

इसलिए मेरे विचारसे तो जेल जानेपर सत्याग्रहियोंके रूपमें हमारा कर्त्तव्य है कि:

१. हम नितान्त प्रामाणिक व्यवहार ही करें;

२. जेल अधिकारियोंके व्यवस्था कायम रखनेके कार्योंमें उनसे सहयोग करें;

३. सभी उचित अनुशासनोंका पालन करके अन्य कैदी भाइयोंके लिए उदाहरण पेश करें;

४. हम किसी भी प्रकारकी रियायत न माँगें; और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे नितान्त आवश्यक होनेकी परिस्थितिको छोड़कर ऐसी कोई विशेष सुविधा पानेका हक न जतायें जो मामूलीसे-मामूली कैदीको प्राप्त नहीं है;

५. जिस चीजकी हमें ऐसी जरूरत हो उसकी माँग करनेमें कभी न चूकें और अगर वह चीज न मिले तो क्षुब्ध न हों;

६. हमें जो काम दिया जाये उसे अपनी शक्ति-भर करें।

हमारे ऐसे ही व्यवहारसे सरकारकी स्थिति कठिन और विषम बन सकती है। उसके लिए ईमानदारीके बदले ईमानदारी बरतना कठिन होगा क्योंकि एक तो उसमें निष्ठाका अभाव है, दूसरे चूँकि उसने ऐसे अवसरकी कल्पना भी नहीं की। हमारी ओरसे वह हुल्लड़बाजीकी ही उम्मीद करती है और दुगुनी हुल्लड़बाजी करके उसे दबा देती है। अराजकतापूर्ण अपराधका सामना तो उसने सफलताके साथ कर लिया; लेकिन अहिंसाके सामने तो उसे अभीतक सिवा झुक जानेके कोई रास्ता सूझ नहीं रहा है।

सत्याग्रही इस विचारसे प्रेरित होकर जेल जाता है कि वह नम्रतापूर्वक कष्ट सहकर अपना ध्येय हस्तगत कर लेगा। वह ऐसा मानता है कि किसी न्यायसम्मत उद्देश्य-के लिए चुपचाप कष्ट सह लेनेका अपना एक खास गुण है, जो तलवारके मुकाबिले लाख दर्जे ऊँचा है। इसका मतलब यह नहीं है कि जब हमारे साथ हमारे आत्मसम्मान-को ठेस पहुँचानेवाला व्यवहार किया जाये तब भी हम विरोध न करें। उदाहरणके लिए, यदि कोई अधिकारी हमें गालियाँ दे या हमारा खाना ठीकसे परोसकर देनेके बजाय हमारी ओर फेंक दे, जैसा कि अकसर किया जाता है, तो हमें अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी उसका विरोध करना चाहिए। गालियाँ देना और अपमान करना अधिकारीके कर्त्तव्य-क्षेत्रमें नही आता। इसलिए, हमें ऐसे व्यवहारका विरोध करना ही चाहिए। लेकिन हम तलाशीका विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि यह तो जेलका एक नियम है।

मैंने मूक कष्ट-सहनके बारेमें जो बातें कही है, उनका कोई यह अर्थ भी न लगाये कि सत्याग्रहियों-जैसे निर्दोष कैदियोंको पक्के अपराधियोंकी श्रेणीमें रखनेके खिलाफ भी कोई आन्दोलन नहीं किया जाना चाहिए। हाँ, इतना अवश्य है कि कैदी होनेके

नाते हम किसी कृपाकी याचना नहीं कर सकते। हमें पक्के अपराधियोंके साथ रहनेमें ही सन्तोष मानना चाहिए; बल्कि इस तरह हमें उनमें नैतिक सुधार करनेका भी जो अवसर मिलता है, उसका स्वागत करना चाहिए। फिर भी, अपनेको सभ्य कहनेवाली सरकारसे यह आशा तो की ही जाती है कि वह अत्यन्त स्वाभाविक विभाजनोंकी आवश्यकता को समझेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९८. मणिलाल गांधीके पत्रपर टिप्पणी

मेरे पुत्र मणिलाल गांधीके एक पत्रका निम्नलिखित अनुवाद पाठकोंको पसन्द आयेगा। पत्रमें श्रीमती नायडूके दक्षिण आफ्रिकामें किये गये बहुत ही ठोस कामका वर्णन है।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९९. सी० एफ० एन्ड्रयूजके पत्रपर टिप्पणी

श्री एन्ड्रयूजने सीधे-सादे और सुन्दर-सुडौल भील बच्चोंको खद्दरके कुरते और टोपियाँ पहने देखा था। उसे देखकर उन्होंने अपने एक व्यक्तिगत पत्रमें मुझे आड़े हाथों लिया है। पूछा है कि "उनके लिए आप खद्दरकी लंगोटी ही क्यों काफी नहीं मानते?" इसका उत्तर देनेके लिए तो अमृतलाल ठक्कर ही सबसे अधिक उपयुक्त हैं। यदि मैं अपनी बात कहूँ तो मुझे लंगोटी ही ज्यादा अच्छी लगने लगी है, इतने सारे कैदियोंको सिर्फ जाँघिये पहने देखनेके बाद तो और भी ज्यादा। परन्तु श्री ठक्करके सामने समस्या इतनी सरल-सी नहीं है। वे किसी जेलके नहीं बल्कि एक स्कूलके सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं, जहाँ उनका काम बालकों और बालिकाओंमें निर्भीक पौरुष और नारीत्वकी भावना पैदा करना है। इन खुशदिल शरारती बच्चोंके दिमागमें

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें सरोजिनी नायडूको दक्षिण आफ्रिका-यात्राके अच्छे परिणामोंका उल्लेख था, जिनमें वर्ग क्षेत्र विधेयकका खतम किया जाना भी शामिल था। उसमें कहा गया था: "श्रीमती नायडूके सुझावपर डर्बनमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसकी बैठक हुई और श्रीमती नायडूकी अध्यक्षतामें बहुत अधिक काम किया गया और वह भी एक ऐसी पवित्रताकी भावनासे, जैसी पहले कभी नहीं देखी गई।... आपके जानेके बादसे यहाँके भारतीयोंकी दशा निराश्रित बालकों-जैसी हो रही है। पर श्रीमती नायडूने एक हद दर्जेकी निराशापूर्ण परिस्थितिको भी अत्यन्त ही आशाप्रद परिस्थितिमें बदल दिया है।"

बड़े आड़े-सीधे प्रश्न उठते रहते हैं। हमारा सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐसे तरह-तरहके कपड़े क्यों पहनता है, भले ही वे कितने भी असुविधाजनक लगें और हम सिर्फ लंगोटी बांधे ही क्यों फिरें? शिक्षक यदि ऐसे टेढ़े सवालोंका सन्तोषप्रद उत्तर देना चाहे तो उसे वही पहनना और खाना चाहिए जिसकी वह अपने शिष्योंसे अपेक्षा करता है। भारतके जलवायुमें जाँघिया जो असलमें लंगोटीका ही एक बड़ा रूप है, आरामदेह चीज है। उसे पहननेवाले लोग कुरता या बंडी लेकर क्या करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

१००. प्रेमका अभाव या अतिरेक

राम, शंकर, भरत इत्यादि अवतारोंके लिए मैंने एकवचनी प्रयोग किये हैं। इसपर वैष्णव भाई प्रेमसे उलहना देते हैं। उन्हें इस बातसे दुःख हुआ है कि मैंने 'राम' को 'श्रीरामचन्द्र प्रभु' और 'भरत' को श्री 'भरतसूरी' नहीं लिखा और विनयपूर्वक अनुरोध करते हैं कि मुझे अबसे इन पवित्र नामोंका उल्लेख आदरपूर्वक करना चाहिए। इन भाईको मैं खानगी खत लिखकर जवाब दे देता; परन्तु इस खयालसे कि इससे कदाचित् किसी अन्य वैष्णवके दिलको भी चोट पहुँची हो, मैं इस बातका विचार पाठकोंके सामने करता हूँ। पत्र-लेखक शायद इस बातको न जानते होंगे कि मैं खुद भी वैष्णव हूँ और मेरे कुटुम्बके इष्टदेव श्री रामचन्द्र प्रभु हैं। मैंने यहाँ एक बार रामको 'श्री रामचन्द्र प्रभु' केवल इन भाईको सन्तुष्ट करनेके लिए लिख दिया है, पर खुद मुझे तो 'राम' नाम ही प्रिय है।

'श्री रामचन्द्र प्रभु' मुझे अपनेसे बहुत दूरके मालूम होते हैं। इसके विपरीत 'राम' तो मेरे हृदयमें राज्य कर रहे हैं। जहाँ मैंने राम, भरत आदि पवित्र नामोंका प्रयोग किया है वहाँ मेरी दृष्टिमें तो मेरी भक्ति ही टपकती है। अगर ये वैष्णव भाई ऐसा दावा करें कि रामके प्रति उनका प्रेम मुझसे ज्यादा है तो मैं उनपर रामके दरबारमें दावा करूँगा और रामराज्यमें न्याय मेरे पक्षमें होगा।

हनुमानने जैसी प्रेमकी परीक्षा दी थी वैसी ही परीक्षा देनेकी इच्छा मेरी भी होती है। जो प्रियसे-प्रिय होता है वह निकटसे-निकट रहता है। उसे तो 'तू' ही कह सकते हैं। "तुम" या 'आप' से दूरी सूचित होती है। मैं अपनी माँको किसी दिन 'तुम' या 'आप' कह देता तो वह रोती; क्योंकि तब वह समझती कि उसका बेटा उससे दूर हो गया है।

मेरी जिन्दगीमें एक ऐसा समय था जब मैं रामको 'श्री रामचन्द्र' के रूपमें पहचानता था। परन्तु वह समय अब चला गया है। राम तो अब मेरे घर आ गये हैं। उन्हें अगर मैं 'तुम' या 'आप' कहूँ तो वे मुझपर रोष करेंगे। मेरे न माँ है, न बाप है और न भाई; ऐसा आश्रय विहीन हूँ मैं। मेरे तो अब राम ही सर्वस्व हैं। वही मेरी माँ, वही मेरा पिता, वही मेरा भाई और वही मेरा सर्वस्व है। मैं तो उसीके जिलाये जी

रहा हूँ। सारी स्त्री-जातिमें मुझे वही दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए मैं सभी स्त्रियों-को माँ या बहनके बराबर मानता हूँ। मैं सभी पुरुषोंमें भी उसीको देखता हूँ; इसलिए सबको अवस्थाके अनुसार पिता, भाई या पुत्रकी तरह मानता हूँ। मैं उसी रामको भंगी और ब्राह्मणमें देखता हूँ। इसलिए दोनोंका अभिवादन करता हूँ।

राम पास रहता हुआ अब भी शायद मुझसे दूर हो। इसीलिए मुझे उसको 'तू' कहकर पुकारना पड़ता है। जब उससे मेरा चौबीसों घंटे तादात्म्य रहेगा तब तो मुझे उसे 'तू' कहनेकी भी जरूरत न रहेगी। दूसरे लोग मेरी माँके लिए 'तू' का प्रयोग नहीं करते थे। वे तो अनेक आदरसूचक विशेषणोंका प्रयोग करते थे। इसी तरह अगर राम मेरा न होता तो मैं भी जरूर उसका अदब-लिहाज रखता। परन्तु वह अब मेरा है और मैं उसका गुलाम हूँ। इसलिए चाहता हूँ कि वैष्णव जन उससे जुदा होनेका बोझ मेरे सिरपर न रखें। जिस प्रेमके लिए शिष्टाचारकी जरूरत हो क्या वह प्रेम है? तमाम भाषाओंमें और तमाम धर्मोंमें ईश्वरको 'तू' सर्वनामसे ही सम्बोधित किया गया है।

द्राविड़ प्रान्तमें अव्वाई माई नामक मीराबाई-जैसी एक महा तेजस्विनी भक्त स्त्री थी। वह नित्य विष्णु मन्दिरमें बैठी रहती थी। वह कभी अपनी पीठ मूर्तिकी तरफ कर लेती और कभी अपने पैर उसके सामने फैलाकर बैठ जाती। एक दिन कोई भावुक किन्तु बाल-भक्त मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए आया। ईश्वरके साथ अव्वाई माईका कितना गहरा सम्बन्ध था, यह बात उसे मालूम न थी। उसने आँखें तरेरकर अव्वाई माईको कुछ सत्याग्रही गालियाँ सुनाईं। अव्वाई माई खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके हास्यसे सारा मन्दिर गूँज उठा। अव्वाई माई उस भक्तसे बोली — "बेटा! आ यहाँ बैठ जा। बच्चा! तू कहाँसे आया है? तूने मुझे तीखी बात कही; परन्तु तू एक बात बता। मैं बूढ़ी हो गई; परन्तु मुझे कोई जगह ऐसी नहीं मिली जहाँ भगवान् न हो। जहाँ-कहीं मैं पैर फैलाती हूँ वहीं वह सामने खड़ा दिखाई देता है। अब यदि तू कोई जगह बता दे जहाँ वह न हो तो मैं जरूर उसी ओर पैर फैलाऊँगी।"

वह बाल-भक्त था विनयी। अज्ञानके कारण अव्वाई माईको पहचान नहीं पाया था। इतना सुनते ही वह गद्‌गद् हो गया। उसकी आँखोंसे मोती-जैसे आँसू बह उठे और माईके अँगूठोंपर टपकने लगे। माईने अपने पैर खींचे; किन्तु उसने उसके पैर पकड़ लिये और कहने लगा; "माँ मुझसे भूल हुई। मुझे क्षमा करो, मेरा उद्धार करो।" माईने पैर खींच लिये और उसे अपनी छातीसे लगाकर चूमने लगी। फिर खिलखिलाई और कहने लगी — "जा, इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है? तू तो मेरा बेटा है। मेरे ऐसे कितने ही बेटे हैं। तू समझदार है। इससे तेरे मनमें ज्यों ही कुछ शंका उठी, तूने मुझसे कह दी। जा, श्रीरंग भगवान तेरी रक्षा करेंगे। परन्तु बेटा, इस माँको याद रखना।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-६-१९२४

१०१. टिप्पणियाँ

एक भूल

मैंने 'नवजीवन' में लिखा था कि मजदूरोंके बच्चोंके स्कूलोंके सब बच्चे खादीके ही कपड़े पहनते हैं। किन्तु 'मजूर सन्देश' में ऐसी कोई खबर नहीं छपी है। उसमें तो यही है कि इन बच्चोंमें से अधिकांश खादीके कपड़े पहनने लगे हैं। उक्त भूल मेरी भूल थी। उतावलीमें ऐसी भूलें हो जाती हैं, पाठक यह समझकर मुझे क्षमा करेंगे। 'मजूर सन्देश' के सम्पादक अतिशयोक्ति करके कोई विशेष लाभ उठानेकी इच्छा नहीं रखते। अतिशयोक्तिसे कार्य नहीं बढ़ता। वह वस्तुतः पिछड़ता है। जो स्थिति है नहीं, "मौजूद है", कहनेसे वह मौजूद नहीं हो जाती। हिन्दुस्तानकी भुखमरी एक तथ्य है। यह कोई करुण रस प्रधान नाटक नहीं है। हिन्दुस्तानके करोड़ों हड्डियोंके ढाँचे करुणाकी मूर्ति बने हुए हैं। हम उनमें नाटक खेलकर रक्त-मांस नहीं भर सकते। स्वराज्य भी सच्चा खेल है, इसलिए हम जितना करेंगे उतना ही फल मिलेगा। असली खादी एक गज बिकेगी तो उससे हिन्दुस्तानके गरीबोंकी जेबोंमें आठ दस आने पैसे जायेंगे।

उर्दूमें 'यंग इंडिया'

एक मुसलमान भाई कराचीसे लिखते हैं, "आप गुजरातियोंके लिए गुजराती 'नवजीवन', हिन्दी भाषियोंके लिए 'हिन्दी नवजीवन' और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंके लिए अंग्रेजीमें 'यंग इंडिया' निकालते हैं। मुसलमानोंकी सात करोड़की आबादी है; और उनमें से अधिकतर केवल उर्दू जानते हैं। क्या आप उनके लिए 'नई जिन्दगी' अर्थात् 'उर्दू नवजीवन' प्रकाशित करके उन्हें आभारी नहीं करेंगे? यदि ऐसा किया जा सके तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़े कम होंगे और दोनोंके बीच मैत्रीकी गाँठ मजबूत होगी। जबसे गुजराती 'नवजीवन' आरम्भ हुआ है तबसे मेरे मनमें ऐसी हविस अवश्य पैदा हुई है; लेकिन मुझे उसकी आवश्यकताके बारेमें सन्देह है। मैं ऐसा पत्र नहीं निकालना चाहता जिसका खर्च हमारे सिर पड़े। उर्दू नवजीवन पढ़नेवाले मुसलमान भाइयोंके अच्छी संख्यामें मिल जानेपर ही 'उर्दू नवजीवन' निकाला जा सकता है। मैंने मुसलमान भाइयोंसे बातचीत की है। उनका अभिमत 'उर्दू नवजीवनके' विरुद्ध है। मैं इसीलिए शान्त हो गया हूँ। उन्होंने मुझे बताया है कि उर्दूके अखबार 'यंग इंडिया' का खासा हिस्सा ले लेते हैं।

एक निमन्त्रण पत्र

एक भाई अकोलासे लिखते हैं कि यहाँसे लगभग २० मील दूर एक सज्जन रहते हैं। वे नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनके[1] बादसे खादीका ही इस्तेमाल करते हैं। जो मनुष्य पिछले दो सालसे खादी पहन रहा हो, वे उसीके हाथका बना और परोसा

१. दिसम्बर १९२० में।

भोजन करते हैं। अब उनकी लड़कीका विवाह होनेवाला है। उन्होंने शादीवाली सामानकी खोज की और वैसा सामान मिलनेपर ही सगाई की। उन्होंने जो कुंकुमपत्री भेजी है उसमें लिखा है, "कृपया विवाहमें खादी पहनकर ही आयें। यदि वैसा न कर सके और विवाहमें न आ सके तो मुझे यह बात बुरी नहीं लगेगी।" हम इस वीरता और दृढ़ताके लिए इन भाईको बधाई देते हैं। यदि हममें भी उन्हीं-जैसी दृढ़ता हो तो हमें इनका अनुकरण करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन ५-६-१९२४

१०२. भेंट: 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे

[साबरमती आश्रम अहमदाबाद
५ जून, १९२४]

श्री गांधीने आज दोपहर बाद साबरमती आश्रममें 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के विशेष प्रतिनिधिको मुलाकात देनेकी कृपा की। मुलाकात बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके उस विचित्र प्रस्तावके सम्बन्धमें थी, जिसमें श्री अर्नेस्ट डेके[1] हत्यारे गोपीनाथ साहाकी "देशभक्ति" के बारेमें प्रशंसा की गई थी। कहा जाता है कि श्री दास और उनके अनुयायियोंने उस प्रस्तावका समर्थन किया था। परन्तु श्री गांधीने निःसंकोच होकर कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें प्रस्तावके मुख्य आशयकी निन्दा की, पर उन्होंने श्री दासके विचारोंके सम्बन्धमें उनसे व्यक्तिगत तौरपर बात किये बिना उनके द्वारा उठाये गये कदमके बारेमें अपनी राय प्रकट करनेसे इनकार कर दिया।

श्री गांधीसे मेरा पहला प्रश्न यह था: "मैं समझता हूँ कि आपने श्री अर्नेस्ट डेकी हत्याके सम्बन्धमें श्री दास द्वारा अपनाये गये रुखके बारेमें बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनमें कलकत्तासे आया हुआ तार पढ़ लिया होगा। उसमें कहा गया है कि श्री दास और उनके अनुयायियोंने प्रस्ताव पास कराते समय श्री डेकी हत्याके लिए गोपीनाथ साहाकी निन्दा करनेके साथ ही उनकी देशभक्ति और उनके ध्येयकी सराहना करते हुए इस हत्याको उच्चादर्शपूर्ण और सराहनीय बतलाया है। क्या आपकी भी राय वही है जो श्री दासकी है?

श्री गांधीने उत्तरमें कहा:

मैं नहीं जानता कि इसके बारेमें श्री दासकी क्या राय है। आपने एसोसिएटेड प्रेसका जो तार मुझे दिखाया है, उसके अलावा मैंने इस सिलसिलेमें अन्य कोई

१. यह अंग्रेज तो पुलिससे किसी प्रकार भी सम्बन्धित नहीं था, पर किसी गलतीसे उसे कल पुलिस कमिश्नर समझकर उसको मार दिया गया था।

वस्तु नहीं देखी है जिससे मुझे श्री दासकी राय मालूम हो सके। इसलिए यदि आप कोई ऐसा काल्पनिक प्रश्न पूछें कि किसी व्यक्तिका उद्देश्य कितना ही भला क्यों न हो, उसके लिए किसीकी हत्या करना मैं ठीक मानूँगा या नहीं तो उसका उत्तर मैं अवश्य दूँगा। मेरा दो टूक उत्तर यही होगा : कदापि नहीं। आपके द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर मैं जान-बूझकर ही सीधे-सीधे नहीं दे रहा हूँ। कारण यह है कि ऐसे बड़े-बड़े सम्मेलनोंकी कार्यवाहियोंके जो संक्षिप्त विवरण तार द्वारा भेजे जाते हैं, उनको मैं भरोसेके लायक नहीं मानता, फिर चाहे वे समाचार पक्षपातरहित व्यक्ति द्वारा ही क्यों न भेजे गये हों। इसलिए जबतक मुझे पूरी तरहसे यह न मालूम हो जाये कि बंगाल-सम्मेलनमें क्या हुआ और श्री दासने उसमें ठीक-ठीक क्या कहा, तबतक मैं उनके रुखके बारेमें कोई मत प्रकट न करूँगा, और सच तो यह है कि मैं जब एक बार उनसे जुहू तटपर मिला था तो उन्होंने मुझे आगाह कर दिया था कि मैं उनके खिलाफ कही गई किसी भी बातपर यों ही यकीन न कर लूं, क्योंकि उन्होंने बताया था कि उनका प्रभाव कम करनेकी साजिश चल रही है।

क्या आपका खयाल है कि वह प्रस्ताव नैतिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे या आपके अहिंसा सिद्धान्तकी दृष्टिसे उचित ठहराया जा सकता है?

मेरी रायमें, अहिंसाके मेरे अपने सिद्धान्तसे किसी भी हत्याका मेल नहीं बैठ सकता और राजनीतिक हत्याको नैतिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे उचित ठहराया जा सकता है या नहीं, यह तो अलग-अलग व्यक्तिगत दृष्टिकोणों और मान्यताओंकी बात है। मैं ऐसे बहुत-से भारतीयों और यूरोपीयोंको भी जानता हूँ, जो मानते हैं कि राजनीतिक कारणोंसे की गई किसी हत्याको ऊँचेसे-ऊँचे नैतिक मानदण्डसे उचित ठहराया जा सकता है। स्पष्ट ही है कि मैं इस दृष्टिकोणसे कतई सहमत नहीं।

लोक-मानसपर और खासकर निरक्षर और अज्ञानी लोगोंके मनपर इस प्रस्ताव-का प्रभाव क्या पड़ेगा इसके बारेमें आपका क्या मत है?

श्री गांधीने कहा कि जबतक मैं इस मामलेमें श्री दासके विचारोंको खुद उन्हींसे बातचीत करके न जान लूं, तबतक मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कह सकता। हां, अगर प्रस्तावके शब्द ठीक वही हैं, जैसे मुझे दिखाये गये हैं तो मैं अवश्य ही उसे दुर्भाग्यपूर्ण और कांग्रेसके सिद्धान्तोंसे असंगत मानता हूँ। ऐसे प्रस्तावसे अपढ़ और बेसमझ लोग गुमराह हुए बिना न रहेंगे।

क्या आपका खयाल है कि बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन द्वारा पारित इस प्रस्तावमें निहित सिद्धान्तको यदि कोई राजनीतिक दल अपना ले तो वह भारतके हितकी दृष्टिसे लाभप्रद रहेगा?

मैं जानता ही नहीं कि प्रस्तावमें है क्या-क्या। आपने मुझे जो तार दिखलाया है, उसमें प्रस्तावका पूरा पाठ तो है नहीं। लेकिन फिर भी तारमें उसका जो आशय व्यक्त किया गया है, वह यदि सही हो तो उसका अर्थ लगाना मेरे लिए कठिन होगा और क्योंकि यदि गोपीनाथ साहाका कृत्य निन्दनीय था — और मेरी तुच्छ सम्मतिके

अनुसार वह निन्दनीय है ही तो उनके कृत्यमें ऐसी और कौन चीज थी जिसे उनकी देशभक्ति माना जा सकता और जिसकी हम प्रशंसा करते? इसीलिए मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि गोपीनाथ साहाको श्रद्धांजलि अर्पित करनेमें जो सिद्धान्त निहित है, वह किसी भी राजनीतिक दलके द्वारा अपनाये जाने योग्य है।

क्या आप मानते हैं कि कांग्रेसके वर्तमान गठन और सिद्धान्तको देखते हुए वह ऐसे किसी सिद्धान्तको मान्यता दे सकती है?

नहीं।

क्या आप गोपीनाथ साहा-जैसे हत्यारोंको देशभक्तोंकी श्रेणीमें रखेंगे?

गोपीनाथ साहा-जैसेको भी मैं देशभक्त अवश्य कहना चाहूँगा, लेकिन एक अनिवार्य विशेषणके साथ ही — अर्थात् मैं उन्हें "गुमराह करनेवाला" देशभक्त कहूँगा। उनके आत्मत्याग, मृत्युके प्रति उनका उपेक्षा भाव तथा उनके देश-प्रेमपर सन्देह किया ही नहीं जा सकता, लेकिन इसी कारण मैं जहाँ उनको गुमराह करनेवाला देशभक्त कहूँगा, वहाँ उनके कामकी निन्दा भी कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें करूँगा और मैं ऐसे किसी भी प्रस्तावका समर्थन नहीं करूँगा, जिसमें उनके इरादेकी तारीफ की गई हो। हम तो व्यक्तिके कामके बारेमें ही अपनी कोई धारणा बना सकते हैं और उसका काम यदि समाजके लिए बुरा और हानिप्रद हो तो हम उसके इरादेको ही देखकर उसकी तारीफ नहीं कर सकते। मेरी विनम्र सम्मतिमें संसारका सबसे अधिक अपकार वे ही लोग करते हैं जिनके इरादे तो नेक होते हैं लेकिन जो अपने इरादे पूरे करनेके लिए कुकृत्य करनेसे नहीं हिचकते। लोगोंके दिलोंमें युगोंसे एक अन्धविश्वास घर किये हुए है अर्थात् किसी भी साधनको उनके उद्देश्यके आधारपर ही भला या बुरा ठहराया जाना चाहिए। पर चूँकि मेरे नजदीक यह बात हाथ-कंगनकी तरह स्पष्ट है और प्रत्यक्ष है कि साधन और साध्यमें कोई भेद नहीं किया जा सकता और काममें लाये गये साधनोंका स्पष्ट और प्रत्यक्ष फल ही उसका उद्देश्य होता है, इसीलिए मैं सरकारकी वर्तमान शासन-प्रणालीका और उचित-अनुचितका विवेक किये बिना की गई उसकी प्रवृत्तियोंका भी अपनी सारी शक्ति लगाकर विरोध कर रहा हूँ।

क्या मैं अब आपको उन दिनोंकी याद दिला सकता हूँ जब बंगालमें राजनीतिक अपराधोंका दौर शुरू ही हुआ था? विदेशोंमें लोगोंका खयाल है कि यदि आपने अपना अहिंसक असहयोग आन्दोलन शुरू न किया होता तो बंगालमें अराजकतावादी गतिविधियाँ बन्द न होतीं। उनका यह भी कहना है कि अराजकतावादी गतिविधियाँ इसी आन्दोलनके कारण स्थगित हुई थीं, लेकिन आपके जेल चले जानेपर आन्दोलन-का प्रभाव कम हो जानेसे विप्लववादी लोगोंने अपनी गतिविधियाँ फिर शुरू कर दी हैं। क्या आप मेरे इस विश्लेषणसे सहमत हैं?

मैं ऐसा अवश्य मानता हूँ कि बंगालमें अराजकतावादियोंकी गतिविधियोंमें अहिंसात्मक आन्दोलनके कारण ही शिथिलता आई थी। इस आन्दोलनके लिए भी उतने ही आत्म-त्यागकी जरूरत थी जितना आत्म-त्याग दिखानेकी क्षमता विप्लवकारियोंमें हो सकती है। बंगालमें आज जो विप्लववादी प्रवृत्तियाँ फिर उभरती दिखाई पड़

रही हैं, इसके पीछे उनका यह विश्वास काम कर रहा है कि अहिंसाका तरीका असफल रहा है।

क्या आप बंगालमें राजनीतिक अपराधोंकी रोक-थाम करने तथा वहांके युवकोंको मन, वचन और कर्मसे अहिंसा सिद्धान्तका समर्थक बना डालनेका कोई अमली कदम उठानेकी सोच रहे हैं?

हां, मैं अपने इन गुमराह मित्रोंको सही राहपर लानेके उपाय जरूर सोच रहा हूँ। मैं जान-बूझकर "मित्र" शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए कि उनकी आत्म-त्यागकी भावनाके लिए मेरे हृदयमें किसीसे भी कम प्रशंसात्मक भावना नहीं है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि उनके कामसे देशका बड़ा अहित होता है। इसके फलस्वरूप अंग्रेजोंका इस देशपर अपना शासन कायम रखना नामुमकिन भले हो जाये, परन्तु भारतको इस रास्ते चलकर कभी भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। मेरा निश्चित मत है कि भारतकी आत्मा तत्वतः अहिंसामय और विनयशील है। इसलिए भारतमें हिंसाके पनपनेके लिए अनुकूल वातावरण नहीं है। ईश्वरकी कृपासे यदि मैं स्वस्थ रहा तो आशा है कि मैं अराजकतावादी गतिविधियोंका मुकाबला कर सकूँगा और अराजकतावादियोंको दिखा दूंगा कि स्वराज्य प्राप्त करनेके मेरे कार्यक्रममें विशुद्ध और कष्टसाध्य आत्मत्यागकी गुंजाइश कहीं अधिक है और यदि वे पूरे उत्साहसे मेरा समर्थन करें तो वे अपने इरादोंके लिए ही नहीं अपने कामोंके लिए भी लोगोंकी श्रद्धाके पात्र बन जायेंगे। तब अदनेसे-अदना भारतीय भी बिना किसी संकोचके, दूसरे किसीको जोखिममें डाले बगैर उनके कामोंका अनुकरण करने लगेगा।

इसके पश्चात् हमारे प्रतिनिधिने दूसरे विषयकी चर्चा छेड़ दी, मध्य प्रान्तके स्वराज्यवादियोंके विद्रोहकी चर्चा। उसने कहा कि डा० मुंजेने इस आशयका वक्तव्य दिया है कि स्वराज्यवादी लोग अब अपनी सारी शक्ति कांग्रेसपर से श्री गांधीका प्रभाव खत्म करनेमें लगायेंगे और यह करेंगे कि कांग्रेस दलमें भाई-भाईका संघर्ष अनिवार्य हो जाये। इस वक्तव्यसे तो यही लगता है कि स्वराज्यवादियोंने विद्रोहकी ठान ली है। क्या आपका खयाल है कि मध्य प्रान्तसे बाहरके स्वराज्यवादी भी डा० मुंजेके विचारोंसे कमोबेश सहमत हैं? क्या आपको ऐसी आशंका है कि स्वराज्यवादी लोग आपके सिद्धान्त और कार्यक्रमके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा उठायेंगे। उस हालतमें क्या आप उनके प्रति अपनी तटस्थता त्यागकर उनके विरुद्ध प्रचार शुरू करेंगे?

मैं नहीं जानता कि डा० मुंजेके विचारोंसे और भी बहुत-से स्वराज्यवादी लोग सहमत हैं या नहीं। वे सहमत हों या न हों, मुझे इससे कोई परेशानी नहीं, क्योंकि इससे किसी भी पक्षकी प्रतिष्ठाको हानि होने नहीं जा रही है, भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि मैं "भाई-भाई" की लड़ाईमें शामिल नहीं होऊँगा। इस तरहकी कोई भी लड़ाई तो तभी चल सकती है जब दो पक्ष लड़ाईपर आमादा हों, किसी एकके चाहनेसे नहीं। राजनीतिक कामका मेरा जो कार्यक्रम है, उसमें ऐसी हर सम्भावनासे बचकर चलनेकी कोशिश रहती है। मेरे कथनका अभिप्राय ठीक वही है जो

मेरे कथनका शाब्दिक अर्थ है। मतलब यह कि मैंने दोनों पक्षोंके हितका ध्यान रख-कर ही कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटियोंपर एकपक्षीय नियन्त्रणकी बात रखी है और यदि मैं देखूंगा कि स्वराज्यवादी लोग कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटियोंपर अपना अधिकार जमानेकी जरा भी कोशिश करते हैं तो मैं अपने तईं उनकी मुखालफत नहीं करूँगा, मैं उनको अधिकार कर लेने दूंगा। उसके बाद मैं कांग्रेसके बाहर एक दूसरा संगठन बनाऊँगा और कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास रखनेवाले लोगोंसे कांग्रेससे अलग रहकर इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए कहूँगा। इस तरह मैं स्वराज्यवादियोंसे कभी भी टक्कर नहीं लूंगा। मुझे उनके विरुद्ध प्रचार करनेकी कोई जरूरत ही नहीं रह जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ इंडिया, ६-६-१९२४

१०३. मथुरादास त्रिकमजीको[1] लिखे पत्रका अंश

[६ जून, १९२४][2]

मैंने तुम्हारा कृष्णदासके नाम लिखा पत्र पढ़ लिया है। लेख 'यंग इंडिया'में देखनेको मिलेगा। यदि कांग्रेसके सदस्य चरखेकी शक्तिमें विश्वास रखते हैं तो उन्हें चरखा अवश्य चलाना चाहिए। मैं बैठकमें[3] वाद-विवाद कदापि न होने दूंगा। यदि मेरे सुझाव सब लोगोंको स्वीकार नहीं हुए तो मैं वहाँ विवादमें नहीं पडूंगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१०४. पत्र : वसुमती पण्डितको

साबरमती

ज्येष्ठ सुदी ५ [७ जून, १९२४][4]

चि० वसुमती,

मैं तुम्हारे पत्रकी बाट ही जोह रहा था। अब तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई होगी। मुझे यहाँ गर्मी बिलकुल नहीं लगती। रातको तो अच्छी खासी ठंडक हो जाती है। अक्षर स्याहीसे लिखनेकी आदत डालो और सुन्दरसे-सुन्दर। किसी पुस्तक या दूसरी

१. मथुरादास त्रिकमजी, गांधीजीकी बहनके नाती।

२. प्रकाशित साधन-सूत्रके अनुसार।

३. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी २७ जूनसे ३० जून १९२४ तक अहमदाबादमें की गई बैठकमें।

४. पत्रमें मणि, राधा और कीकी बहनके स्वास्थ्यके जिक्रसे पता चलता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था, क्योंकि गांधीजीने मार्च और अप्रैल, १९२४ के दौरान जो पत्र लिखे थे उनमें इस बातका उल्लेख मिलता है। उस वर्षमें ज्येष्ठ सुदी पंचमी, ७ जूनको थी।

किसी चीजकी जरूरत हो तो मँगा लेना। स्वास्थ्य बिलकुल ठीक कर लेना। मणिकी तबीयत अच्छी है। राधाकी ज्योंकी-त्यों है। कीकी बहनकी तबीयत भी ठीक ही है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:] रामदास और प्रभुदास आबू गये हुए हैं। पाँच-छ: दिनोंमें वापस आयेंगे।

गंगास्वरूप वसुमतीबहन
लीलावती आरोग्यभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८३) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१०५. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्का ध्येय

एक मित्रने काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के सम्बन्धमें एक लम्बा पत्र लिखा है। मैं यहाँ उसका एक अंश[1] उद्धृत करता हूँ:

मेरी रायमें का० रा० परिषद्का ध्येय यह होना चाहिए:

(१) ऐसे काम करना जिनसे हरएक रियासतमें राजा और प्रजाका सम्बन्ध जनताके लिए कल्याणकारी बने।

(२) ऐसे उपाय करना जिनसे हरएक राज्य और उसकी प्रजाके बीचके निकटके सम्बन्ध बनें और वे एक-दूसरेको लाभ पहुँचायें।

(३) ऐसे उपाय करना जिनसे समस्त काठियावाड़की प्रजाकी आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उन्नति हो। परिषद्का प्रत्येक कार्य शान्ति और सत्यके ही रास्तेसे किया जाये।

परिषद् राजाओंको अंग्रेजी सरकारके कब्जेसे निकालनेकी जिम्मेदारी नहीं उठा सकती। यदि उसका ध्येय यह रखा गया तो राजा और प्रजा दोनोंकी हानि होगी।

राजा लोग सरकारके मातहत हैं। वे ऐसी परिषद् करनेकी बातसे सहमत नहीं हो सकते। यही नहीं, उन्हें अपनी आजादीकी हलचल पसन्द भी हो, फिर भी उसकी उन्हें मुखालफत ही करनी होगी। इसलिए जबतक राजा लोग खुद आजादीको अपना ध्येय बनाकर उसके लिए खुले तौरपर आन्दोलन न करें अथवा करनेके योग्य न बनें तबतक मैं इस दिशामें किये गये प्रजाके कामोंको फिजूल और हानिकर ही मानता हूँ।

राजाओंके अन्याय और जुल्मके खिलाफ लोकमत तैयार करना तो परिषद्का काम होना ही चाहिए। यह बात पहले नियममें आ जाती है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

हरएक राज्यकी प्रजा अपने-अपने स्थानीय सवालोंका निपटारा भले ही करे; परन्तु काठियावाड़में एक ही तरहके लोग रहते हैं; इसलिए उसे समस्त काठियावाड़की परिषद् करनेका अधिकार है और यह उसका फर्ज भी है। परिषद् सारी प्रजाके सामान्य सवालोंकी चर्चा तो कर ही सकती है, साथ ही वह विभिन्न स्थानोंके प्रश्नों-को भी हाथमें लेकर उनके विषयमें समस्त प्रजाका मत तैयार करके, उस मतके द्वारा मुकामी सवालोंके हलमें सहायता कर सकती है।

मैं "राजनीतिक" शब्दका व्यापक अर्थ एक पिछले अंकमें स्पष्ट कर चुका हूँ। मैं मानता हूँ कि इसका सच्चा अर्थ वही है। परिषद्को लोकप्रिय बनानेका काम अब किया जाना है। लोकप्रियताका अर्थ इतना ही नहीं है कि लोग उसकी सभाओंमें आने लगें; बल्कि इसका यह अर्थ है कि लोग परिषद्की मार्फत अपने दुःखोंको दूर करानेके उपाय खोजें और परिषद्की सलाहके अनुसार चलें। किन्तु इस कामसे पहले परिषद्के कार्यकर्त्ताओंको लोक-सेवा करनी चाहिए। उन्हें देहातके लोगोंमें जाकर काम करना चाहिए और उन्हींकी तरह गरीबी अपनाकर सादगीसे रहना चाहिए।

उन्हें राज्योंसे दुश्मनी नही ठाननी चाहिए। हमारा असहयोग राजाओंसे नहीं है। हमने अभी राजाओंसे आशा नहीं छोड़ी है और मैंने तो हरगिज नहीं छोड़ी है। ऐसा नहीं कि मैं राजाओंके जुल्मोंसे अनजान हूँ। मैं उनके अनियन्त्रित और बेजा खर्चसे बहुत व्यथित हूँ। उन्हें स्वदेशवासकी बनिस्बत यूरोपवास ज्यादा पसन्द है। यह खतरनाक बात है। परन्तु मैं उसके लिए उनको दोष नहीं देता। यह भी अंग्रेजी शासन-प्रणालीका ही एक फल है। राजा लोग लड़कपनसे बिलकुल पराधीन रहते हैं। अंग्रेजी शिक्षक उनके संरक्षक बनते हैं। उन्हें निर्देश होता है कि वे राजाओं-को अंग्रेजोंके समान बनायें, उनमें अंग्रेजी शासनका प्रेम पैदा करें और अंग्रेजोंकी तमाम बातोंमें उनकी रुचि उत्पन्न करायें। हम कितने ही धनी लोगोंमें भी यूरोपके प्रति ऐसा झुकाव देखते हैं। राजा लोगोंमें यह कुछ अधिक मात्रामें दिखाई देता है। दोनोंके इस विदेश-प्रेमका कारण एक ही है। मेरी पक्की राय है कि यदि काठियावाड़में अर्थात् देशी राज्योंमें लोकमत तैयार हो और वह जड़ पकड़ ले तथा लोग निर्भय बन जायें तो हमारे राजा जल्दी ही उसके आगे झुक जायें।

राजा लोगोंमें बहुतेरे ऐब हैं। फिर भी मैं उन्हें सरल मानता हूँ। वे ईश्वरसे डरते हैं। उनमें लोकमतका डर तो बहुत होता है। ये दोनों मेरे निजी अनुभव हैं। परन्तु जहाँ लोकमत हो ही नहीं अथवा जहाँ लोग महज खुशामदी हों, वहाँ राजा बेचारा क्या करे? जब राजाओंको उनका दोष बतानेवाला और कड़वी बातें कहनेवाला कोई नहीं मिलता तो वे निरंकुश बन जाते हैं; और फिर उन्हें सरकारकी मदद भी प्राप्त है। इस प्रकार परिस्थितियाँ उनकी शत्रु और अवनतिका कारण बन जाती हैं। हाँ, यह सच है कि राजा बड़े भोंडे ढंगसे जुल्म करते हैं। इसलिए वह हमें बहुत खलता है। इसके विपरीत सरकारका जुल्म सुधरे हुए ढंगसे चलता है। इसलिए वह असह्य नहीं लगता। फिर अंग्रेजी शासनमें तो कितने ही सहयोगी मिल जाते हैं और लोकमतकी सहायता भी उपलब्ध रहती है; देशी राज्योंमें अभी थोड़े ही साहसी

लोग हिम्मतवर निकलते हैं। इसलिए उन्हें दवा देना आसान होता है। ऐसा होते हुए भी मैं मानता हूँ कि यदि थोड़े से भी विनयी, नम्र, सुशील और विवेकवान् लोक-सेवक पैदा हो जायें तो राजा लोग उनके सामने झुकेंगे और उनका यह झुकना डरके कारण नहीं, कार्यकर्त्ताओंके गुणके कारण होगा।

यदि हम मनमें राजाओंके प्रति शंका रखकर काम शुरू करेंगे, उनकी बुराई ही करनेका इरादा रखेंगे और उनकी अच्छी बातोंकी ओर देखेंगे तक नहीं तो हम राजाके वहीखातेमें पहलेसे ही खर्चकी मदमें दर्ज कर लिए जायेंगे और फिर जमा-की मदमें दर्ज होनेके लिए बहुत मेहनत करनी होगी।

इससे कोई यह न समझे कि मैं भीरुतामें वृद्धि कर रहा हूँ। मैं उद्दण्डता और नम्र निर्भयताका भेद बता रहा हूँ। आमका पेड़ ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों झुकता है। उसी तरह बलवान्का बल ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यो वह नम्र होता जाता है और उसमें ईश्वरका डर बढ़ता जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०६. मेरे विचार

एक भाईने मेरे विचारोंपर किसी जैन मुनिकी राय लिख भेजी है और वे चाहते हैं कि मैं उसपर कुछ कहूँ। मुनिजीकी राय और उसपर मेरी टिप्पणी इस तरह है:

(१) अगर गांधीजीके खयालातके मुताबिक सोलहों आने काम होने लगे तो इससे जैन धर्मको नुकसान पहुँचेगा।

मुझे विश्वास है कि अगर मेरे विचार कार्यरूपमें परिणत हो जायें तो उससे संसारका कल्याण ही होगा। संसारका कल्याण जैन धर्म अथवा किसी दूसरे मजहबको नुकसान पहुँचा ही नहीं सकता। अहिंसाका मतलब है प्रेम। शुद्ध प्रेमके ही बलपर सुधार करनेके तरीकेसे नुकसान होना कैसे मुमकिन है?

(२) खादीसे अन्त्यजोंका फायदा है; मगर इससे जैनोंका तो बेहद नुकसान है।

यह राय मेरी समझमें नहीं आ सकती। अन्त्यज क्या कभी श्रावक हो ही नहीं सकता? फिर श्रावकोंको नुकसान पहुँचनेका अर्थ तो यही हो सकता है कि जैन लोग विदेशी कपड़ेकी जो तिजारत करते हैं उसके टूट जानेका अन्देशा हो सकता है। परन्तु अगर उनका यह व्यापार समाप्त भी हो जाये तो वे दूसरा व्यापार कर सकते हैं। वे खादीकी ही तिजारत क्यों न करें? जैनोंके अलावा दूसरे लोग भी विदेशी कपड़ेका व्यापार करते हैं। फिर दूषित व्यापारका बन्द होना तो अन्ततः धार्मिक दृष्टिसे वांछनीय ही माना जायेगा।

(३) व्यापारी चाहे कोई भी काम करे, उससे उसे पाप नहीं लगता।

यह बात जैन धर्मके मुताबिक नहीं हो सकती। मैंने किसी भी मजहबमें ऐसा विचार नहीं देखा।

(४) गांधीजीके स्तुति-स्तोत्रोंमें बहुत अतिशयोक्ति की जाती है। उनमें महावीरके समान गुणोंका आरोप करना नामुनासिब है।

मैं इस रायसे बिलकुल सहमत हूँ। यदि स्तुतिकार मेरी तारीफके पुल बांधना छोड़कर केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें ही लगे रहें तो यह मेरी बहुत बड़ी स्तुति होगी और उसमें न तो अत्युक्तिकी गुंजाइश रहेगी और न किसी अन्य दोषकी।

(५) अन्त्यज चाहे कितना ही पवित्र क्यों न हो जाये, फिर भी वह है तो आखिर अन्त्यज ही।

इस विचारमें न तो धर्म है और न विवेक।

(६) गांधीजी अपनेको कट्टर वैष्णव मानते हैं। परन्तु इससे उनका मतलब कुछ और ही है। यदि गांधीजीके तमाम विचार कार्यान्वित हो जायें तो तमाम धर्मोंका नाश हो जायेगा। गांधीजी ढोंगी हैं।

मेरा विश्वास तो यह है कि यदि मेरे सभी विचारोंके अनुसार काम होने लगे तो सभी मजहबोंकी बढ़ती हो और तमाम मजहबी झगड़े समाप्त हो जायें। अगर मैं कहूँ कि मैं ढोंगी नहीं हूँ तो इसे कौन मानने लगा? इसलिए ढोंगीपनके इल्जामका मुनासिब जवाब तो मेरी मौतके बाद ही मिलेगा।

उन्होंने मुझपर इसके अलावा दूसरे इल्जाम भी लगाये हैं। परन्तु मैंने ऊपर वे ही दिये हैं जो खास-खास हैं। जिन भाईने इन इल्जामोंको लिखकर मेरे पास भेजा है, उसको तथा दूसरे लोगोंको, जिन्हें मेरे विचार पसन्द हैं, मैं सलाह देता हूँ कि वे मेरे विचारोंकी शाब्दिक सफाई देनेके फेरमें हरगिज न पड़ें। यह भी एक तरहसे मेरे विचारोंपर अमल करना ही है। जो लोग मेरे विचारोंके अनुसार चलते हैं उन्हें तो यह देहाती कहावत याद रखनी चाहिए — "आम खानेसे मतलब, पेड़ गिननेसे क्या?" आरोपोंका उत्तर देनेसे द्वेष पैदा होता है, वक्त फिजूल जाता है और एक-दूसरेके प्रति मनमें दुर्भाव प्रबल होते हैं सो अलग। फिर हमें यह भी समझना चाहिए कि यह माननेकी कोई जरूरत नहीं कि सभी आरोप द्वेषसे प्रेरित होकर ही लगाये जाते हैं। मेरी त्रुटियोंको देखनेवाले कितने ही लोग सच्चे दिलसे इस बातको मानते हैं कि मेरे बहुत-से कामोंसे देशको नुकसान ही पहुँच रहा है। उचित तो यह है कि हमारे मित्रोंपर जो दोष लगाये जायें हम उनकी छानबीन करके देखें और अगर हमें उनमें से कोई दोषारोपण उचित मालूम पड़े तो हम उसे उस मित्रको बता दें। इन्सान अपने विरोधी पक्षकी बात सुननेके लिए तैयार नहीं रहता; परन्तु जब उनके मित्र उसे उसका दोष बताते हैं तब अगर उसमें जरा भी सरल भाव हो तो वह उससे तुरन्त चेत जाता है और विनयपूर्वक आत्म-निरीक्षण करने लगता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०७. महा गुजरातका कर्त्तव्य

यह समय सबकी कसौटीका है। यदि हम अपना सच्चा स्वरूप जगतके सामने रखें और खुद भी उसे समझें तो मेरा विश्वास है कि हम अपनी लड़ाई आधी जीत लेंगे। यदि हम अपना वास्तविक मूल्य जान लें और लोगोंको भी वही बतायें तो हम आगे बढ़ सकते हैं। लेकिन जो मनुष्य अथवा समुदाय जगतके सामने अपने असली स्वरूपको न रखकर कोई दूसरा ही स्वरूप रखता है वह जगतको और अपने आपको धोखा देता है। वह आगे तो बढ़ता ही नहीं है। जैसे मृग-मरीचिकाके जलसे प्यास नहीं बुझती और हम उसके पीछे भागकर व्यर्थ श्रम करते हैं, वैसे ही अपना सही स्वरूप छुपाकर दूसरा स्वरूप दिखाना समयका दुरुपयोग करना ही है।

मैंने जेल जाते समय[1] चारों ओर मिथ्या आडम्बर देखा और मुझे अब भी वही दिखाई दे रहा है। हम सबका इस मिथ्या आडम्बरसे छुटकारा पा जाना आवश्यक है। इस विचारसे मैं अ० भा० कां० क० की आगामी बैठकमें[2] कुछ बातोंका स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि कांग्रेस कमेटीके सदस्योंका चुनाव लोकतन्त्रीय पद्धतिसे किया जाता है। मैंने उसमें कोई परिवर्तन करनेका सुझाव नहीं दिया है। मैंने तो उस नियमको बदले बिना ऐसा मार्ग सुझाया है जिससे हम वस्तुतः जैसे हैं वैसे ही दिख सकें। मैंने इसीलिए यह सलाह भी दी है कि जबतक खिताबों, सरकारी स्कूलों, अदालतों, विधान-परिषदों और विदेशी कपड़ेके बहिष्कारका प्रस्ताव बना हुआ है तबतक इस समस्त कार्यक्रममें जिनकी श्रद्धा न हो उन सबको चाहिए कि वे कांग्रेस कमेटीसे हट जायें।

कांग्रेस क्या निर्णय करती है, यह हमें बादमें मालूम होगा। गुजरात क्या करना चाहता है यह तो हम आज भी जान सकते हैं। प्रत्येक प्रान्त अपनी स्थितिको साफ कर सकता है और ऐसा करना उनका कर्तव्य भी है।

मेरी दृष्टिसे सबसे बड़ा रचनात्मक कार्य चरखा चलाना है। उसकी स्वराज्य प्राप्तिकी शक्तिमें जिसका विश्वास न हो वह कांग्रेसमें रहकर क्या कर सकता है? हाँ, सदस्य कांग्रेसके उपर्युक्त प्रस्तावको बदल सकते हैं अथवा बदलवानेकी कोशिश कर सकते हैं। लेकिन जबतक यह प्रस्ताव मौजूद है तबतक उन्हें कांग्रेसकी कार्यकारिणी कमेटियोंसे अलग रहना चाहिए।

लेकिन यदि उनको चरखेकी शक्तिमें विश्वास हो तो उन्हें चरखेके शास्त्रको पूरी तरह समझ लेना चाहिए और अच्छेसे-अच्छा सूत कातनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इतना ही नहीं वरन् उन्हें थोड़ा बहुत सूत कांग्रेसको भेंट करना चाहिए। मेरी माँग तो प्रतिमास केवल दस तोले सूतकी है। इतना सूत प्रतिदिन आधा घंटा चरखा चलानेसे आसानीसे काता जा सकता है।

१. मार्च १९२२ में।

२. जो २७ जूनको अहमदाबादमें होनेवाली थी।

यदि यह काम जोर-जबरदस्तीसे कराया जाये तो फलदायी नहीं होगा। आनन्द आयेगा तो रुचि भी बढ़ेगी। जिसके पास ज्यादा समय रहेगा, वह आधे घंटेसे सन्तोष नहीं मानेगा। आधा घंटा तो कमसे-कम समय है, अधिकसे-अधिक नहीं। जितनी स्थायी समितियाँ हैं वे सब कार्यकारिणी समितियाँ हैं। यदि इनके सब सदस्य इस तरह सूत कातें तो उसका अर्थ क्या हुआ? यदि गुजरातके प्रत्येक नगर या कस्बेमें कार्यकारिणी समिति हो तो हमें प्रत्येक नगर या कस्बेमें अच्छे कातनेवाले मिल जायेंगे। परिणामस्वरूप प्रत्येक नगर या कस्बा थोड़े ही अर्सेमें खादीमय हो जायेगा। बुनकर तो जितने चाहिए उतने मिल जायेंगे; परन्तु एक-सार और पक्का मजबूत सूत ही नहीं मिलता। यदि हिन्दुस्तानका प्रत्येक गाँव सूत कातने और कपड़ा बुनने लगे तो कितना बड़ा लाभ हो? एक व्यक्ति द्वारा काते गये सूतसे भले ही न-कुछ पैसा मिले किन्तु समुदाय द्वारा तैयार किये गये सूतसे काफी पैसा मिल जायेगा। बूंद-बूंदसे सरोवर भरता है। यदि प्रत्येक भारतीयकी वार्षिक आयमें एक-एक रुपयेकी वृद्धि हो तो उसका प्रतिव्यक्ति बहुत कम असर होगा, यह समझा जा सकता है; लेकिन उसका कुल मिलाकर जो असर होगा उसमें भारी शक्ति निहित है। एक चींटी क्या कर सकती है? लेकिन चींटियोंका दल क्या नहीं कर सकता? दलकी शक्तिका मूल तो एक चींटी ही है। उसी तरह समुदायकी कताईकी शक्तिका मूल प्रत्येक कातनेवाला है। ऐसी है कातनेवालेकी महिमा।

लेकिन कहा जा सकता है, "यदि समुदाय काते तब तो निःसन्देह, प्रत्येकके परिश्रमकी कीमत है; लेकिन यदि केवल एक अथवा दो-चार लोग ही कातें तो उससे क्या लाभ होगा?" ऐसे प्रश्न वे ही लोग कर सकते है जो अभी भ्रममें पड़े हुए हैं। व्यक्ति शुरू नहीं करेगा तो समुदाय क्या करेगा? संसारमें आजतक समुदायने कोई सुधार नहीं किया है; उनका आरम्भ तो व्यक्ति ही करता है। सबका आरम्भ एकसे ही होता है। एकके बिना सब-कुछ महत्वहीन है। एकको लम्बी तपश्चर्या करनी पड़ती है, यह स्पष्ट है। जब समुदाय एकके अडिग विश्वासको देखता है तभी उसपर असर होता है और जो सुधार जितना ज्यादा मूल्यवान होगा उसे स्वीकार करनेमें समुदाय उतनी ही देर लगायेगा। स्वराज्य प्राप्ति-जैसा महान् कार्य अल्प तपश्चर्यासे पूरा नहीं किया जा सकता।

इस बातको समझनेवाले लोग निराश न हों। लेकिन समुदायकी ओरसे उत्तर मिलनेमें ज्यों-ज्यों देर होगी त्यों-त्यों उक्त एक व्यक्तिके उत्साहमें — उसके तपमें — वृद्धि होगी। ऐसी दृढ़ श्रद्धाके सामने समुदायकी उदासीनता कबतक टिक सकती है?

इस समय गुजरातसे मेरी माँग है कि वह मुझे चरखेके प्रति ऐसे श्रद्धावान लोग दे। मुझे उम्मीद है कि इस मासके अन्ततक प्रत्येक कार्यकर्त्ता अच्छा चरखा ले लेगा और सूत कातना भी शुरू कर देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०८. टिप्पणियाँ

आगाखानी भाई

मेरे हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी लेखपर[1] आलोचनाओंकी झड़ी लग गई है। वह लेख बहुत लोगोंको पसन्द आया है, किन्तु उससे लोगोंके मनमें बहुत क्रोध भी उत्पन्न हुआ है। मैं इन टीकाओंमें से कुछके अंग समय-समय पर 'नवजीवन' में प्रकाशित करता रहूँगा। मैंने अपने लेखमें खोजा भाइयोंकी प्रवृत्तिकी जो चर्चा की है, उनसे उन्हें खेद हुआ है और क्रोध भी। उन्होंने मुझे पत्र लिखनेकी अपेक्षा मेरे पास आना अधिक ठीक समझा है। इस बातसे मुझे तो बहुत खुशी हुई। इससे मैं उनके मनको भी समझ सका हूँ। वे यह अनुभव करते हैं कि मुझे उनसे मिले बिना कोई टीका करनी ही नहीं थी। मैंने उन्हें बताया कि मुझे सारे निवेदनमें दोनों पक्षोंको प्रस्तुत करना था। मैंने ऐसा ही किया भी है और जिस बातके बारेमें मुझे स्वयं जानकारी नहीं थी मैंने उसके बारेमें लिखा है कि अमुक प्रवृत्तिके सम्बन्धमें अमुक प्रकारके आरोप किये गये हैं। मैंने कहा है कि उनकी जो पुस्तकें मेरे पास आई हैं, मैं उन्हें अवश्य पढ़ूँगा और उनपर अपनी राय दूँगा। अगर मुझे ऐसा लगा कि गलत सूचना दी गई थी तो मैं यह बात भी स्वीकार करूँगा और क्षमा भी माँगूंगा। लेकिन यदि इन लेखोंसे मेरे मनपर जैसा खबर देनेवाले कहते हैं वैसी ही छाप पड़ी और मैं उनकी बातसे सहमत हुआ तो फिर खोजा भाई इससे दुःख नहीं मानेंगे। मैंने उनसे यह भी कहा है कि माननीय आगा खाँ, हिन्दू-धर्ममें अवतार-का जो अर्थ लिया गया है, उस अर्थमें अवतार हैं, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। फिर वे 'ओम्' शब्दका जैसा प्रयोग करते हैं और उसके जो रूप देते हैं वह भी मेरी दृष्टिमें हिन्दू धर्मकी मान्यताओंके विरुद्ध हैं।

लेकिन उनका कहना है कि यदि उनका वही मत है तो उन्हें क्या करना चाहिए? मैंने उनसे इसके उत्तरमें कहा है कि उन्हें उसपर दृढ़ रहना चाहिए और मुझे अपने मतानुसार बोलने और लिखनेका अधिकार दिया जाना चाहिए। वे फिर दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि किसीको भी सांसारिक प्रलोभन देकर खोजा नहीं बनाया जाता। मुझे यह बात सुनकर बहुत खुशी हुई है। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया है कि अपने पत्र-प्रेषकोंको मैं यह बात बता दूंगा और अगर वे अपने कथनके पक्षमें प्रमाण नहीं देंगे तो मैं 'नवजीवन' में इस बातको भी प्रकाशित कर दूंगा। अन्तमें उन्होंने यह भी कहा कि खोजा लोगोंकी पूर्णावतारकी कल्पना नई है। 'नवजीवन' के पाठकों-पर ऐसा प्रभाव भी पड़ सकता है, जब कि हकीकत यह है कि उनकी पूर्णावतार और 'ओम्' विषयक मान्यता बहुत पुरानी है और उनके पास इसके प्रमाण हैं।

१. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

स्वार्थपरता

एक भाई तीसरे दर्जेके बहुत-से मुसाफिरोंकी गन्दी आदतोंके सम्बन्धमें 'नवजीवन' में छपी टीकाको[1] पढ़कर लिखते हैं।[2]

इस भाईने सँकरे गलियारेमें पड़े रहकर असुविधा झेली और बादमें उन्हें अनुग्रहके रूपमें जो जगह दी गई उन्होंने उसे लेनेसे इनकार कर दिया। इसके लिए मैं उनको बधाई देता हूँ। जिन्होंने उन्हें जगह दी वे यदि तनिक भी शिष्टताका व्यवहार करना चाहते थे तो उचित यह था कि जब उक्त भाई डिब्बेमें आये थे, वे उन्हें तभी जगह दे देते। विवेक तो यही कहता है कि यदि तंगी होनेके बावजूद कोई सवारी डिब्बेमें चढ़ आये तो हम उसे जगह दे दें। सच बात तो यह है कि हम लोग अभी कौटुम्बिक भावनामें बहुत आगे नहीं बढ़ सके हैं। सगे-सम्बन्धियोंके लिए तंगी झेलनेका धर्म हमने सीख लिया है। हम जान-पहचानके लोगोंके लिए भी थोड़ी-बहुत तंगी झेल लेते हैं। किन्तु इन दोनोंके लिए कष्ट सहनेमें कोई विशेषता नहीं है। हम एक तीसरे वर्गके लोगोंके लिए भी असुविधा सहते हैं और वह वर्ग है बलवान लोगोंका। यह बात निस्सन्देह अनुचित है। किन्तु बेचारे गरीब मुसाफिरोंसे तो हम उनकी जगह छीन लेनेके लिए भी तैयार हो जाते हैं। यदि हम राष्ट्रीय भावना विकसित करना चाहते हैं तो हमारा धर्म है कि हम गरीबोंके लिए पहले जगह करें। हमारा पड़ौसी विशेषतः वह है जिसे हम जानते न हों; भूखा हो तो हम उसे खिलाकर खायें, प्यासा हो तो उसे पिलाकर खुद पानी पियें और अपनी सुविधाका ध्यान न करके उसको सुविधा दें। यदि हम अपने प्रत्येक देशवासीके लिए यही भावना रखें तो यह भावना राष्ट्रीयताकी भावना है और अगर मनुष्य-मात्रके प्रति रखें तो धर्म-भावना हुई। यदि हम धर्म-भावनाका विकास न भी करें तो हमें कमसे-कम राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास तो करना ही चाहिए।

चुंगीकी सीमा

धोलका ताल्लुका परिषद्[3] द्वारा पास किये प्रस्तावोंमें से दो प्रस्ताव विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं:

इनमें से एकसे पता चलता है कि शियाल, बगोदरा आदि गाँवोंके समीप चुंगीका समय बाँध दिया है। इसके अनुसार लोग शामसे सुबह तक चुंगी नाकेके इस तरफ नहीं आ सकते। ऐसा नियम बनानेवाले अधिकारी या तो किसानोंके जीवनसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं या उनकी भावना और सुविधाके प्रति लापरवाह हैं। इस देशमें किसान लोग अधिकतर रातको ही यात्रा करते हैं। किसान रातके दो बजेके बाद कभी नहीं सोते। वे सवेरे-सवेरे गाड़ी जोत देते हैं अथवा किसी दूसरे काममें लग जाते हैं। ऐसी आदतवाले लोगोंके लिए ऐसी हदें बाँधकर रोकनेका अर्थ हुआ उन्हें

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-५-१९२४।
२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।
३. यह परिषद् धोलका, उत्तर गुजरातमें मई, १९२४ को हुई थी।

लगभग भूखों मारना। इस प्रतिबन्धका निराकरण तुरन्त किया जाना चाहिए। ताल्लुका परिषद्ने प्रान्तीय कमेटीसे सलाह माँगी है। प्रान्तीय कमेटीका कोई प्रस्ताव पास करनेसे पहले कमिश्नर महोदयसे पत्र लिखकर स्थितिकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और ऐसा प्रतिबन्ध कबतक रहेगा यह भी जान लेना चाहिए। यदि किसानोंमें तनिक भी साहस है तो श्री वल्लभभाईने इसका उपाय अपने भाषणमें बता ही दिया है। लेकिन ऐसे उपाय तो अन्तिम ही हैं। इससे पहले तो बहुतसे कदम उठानेकी जरूरत है।

हम दूसरे प्रस्तावपर आगामी सप्ताह विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०९. पत्र: देवचन्द पारेखको

ज्येष्ठ सुदी ६ [८ जून, १९२४][1]

भाईश्री देवचन्दभाई,

किसी व्यक्तिने मुझे संलग्न अंश भेजा है। रेखांकित पंक्तियोंको पढ़ जाइये। क्या यह बात सच है? और यदि सच है तो यह काम किसका है?

वल्लभभाई, देवदास और बा सभी साथ निकलेंगे। बहुत करके दशमीकी सांझको।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ५७३२) की फोटो-नकलसे।

११०. भेंट: 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद

८ जून, १९२४

. . . महात्माजीने मुझे अपने पास बैठनेको कहा और मेरा आनेका उद्देश्य पूछा। मैंने श्रद्धापूर्वक उनके पास जाकर प्रणाम किया। उत्तरमें वे अपने स्वभावके अनुकूल झुके और मुसकुराये। मैंने उनको बताया कि मैं उनके दर्शन करने तथा उनसे भेंट करनेके लिए आया हूँ। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे भेंट देना स्वीकार किया। नीचे प्रश्नोत्तर दिये जा रहे हैं।

मैंने प्रारम्भमें उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछा। उन्होंने बताया कि वे अच्छे होते जा रहे हैं। फिर कुछ समय तक दूसरे मामलोंपर चर्चा होती रही और फिर बातचीत भेंटके मुख्य विषयपर आ गई।

१. बा और देवदास भावनगरके लिए ११ जून, १९२४को रवाना हुए थे। देखिए "पत्र: वसुमती पंडितको", ११-६-१९२४। इस वर्ष ज्येष्ठ सुदी ६, ८ जूनको पड़ी थी।

मैंने पूछा: आपने पहले तो "शान्तिपूर्ण और वैध" का "अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण" ऐसा सख्त अर्थ सूचित नहीं किया था जैसा कि आपने अ० भा० कां० क० की दिल्लीमें हुई बैठकके बाद दिया?

हो सकता है कि मैंने कलकत्ता कांग्रेसमें अपने अर्थको स्पष्ट न किया हो। क्यों कि मैं समझता था कि इनका इस अर्थके सिवा कोई दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता और प्रत्येक व्यक्तिने इनका यही अर्थ समझा है।

तब फिर आप अपने अर्थको दूसरोंपर क्यों लाद रहे हैं? उन्होंने कहा:

मैं 'शान्तिपूर्ण और वैध' शब्दोंका अर्थ अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण ही लगाता हूँ; किन्तु मैं उसे दूसरोंपर नहीं लादना चाहता। यदि मैं ऐसा करूँ तो वह मेरे धर्मसे असंगत बैठेगा। मुझे अपना अर्थ बादमें स्पष्ट अवश्य करना पड़ा, क्योंकि मैंने सोचा कि लोगोंने इसका अर्थ गलत लगाया है।

आपने अपने हालके वक्तव्यमें अधिक जोर प्राप्त-परिणामोंपर नहीं, मनोवृत्तिपर दिया है; किन्तु कलकत्ता कांग्रेसके अवसरपर आपने कहा था कि असहयोग आन्दोलन निश्चित उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए अर्थात् खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायके प्रतिकारके लिए शुरू किया गया है। आपने उस समय मनोवृत्तिपर इतना जोर नहीं दिया था। क्या इसमें कोई असंगति नहीं है?

मैं मनोवृत्तिको बहुत अधिक महत्व नहीं देता। मैं उसे केवल वहीं तक महत्व देता हूँ जहाँतक उसका प्रभाव विभिन्न समस्याओंको हल करनेपर पड़ता है।

आप जानते हैं कि कांग्रेस अपनी नीति निश्चित करती है और उस नीतिपर अमल कराने तथा उसके पर्यवेक्षण करनेके लिए अपनी कार्यकारी समितियाँ बनाती है। यदि कांग्रेस अपनेको दिये गये विवेकाधिकारके अनुसार अपनी नीतिपर अमल करनेके लिए स्वराज्यवादियोंको चुन ले तो क्या आप उस समय भी सोचेंगे कि स्वराज्यवादियोंकी स्थिति कांग्रेसकी नीतिसे मेल नहीं खाती; खासकर उस हालतमें जब किसी दूसरेकी अपेक्षा कांग्रेस ज्यादा अच्छी तरह इस बातको जानती है कि उनमें मतभेद है?

यह भी मेरे द्वारा ग्रहण की गई स्थितिके सम्बन्धमें फैली हुई गलतफहमी है। मैं जानता हूँ कि कांग्रेस-मतदाता जिसे चुनना चाहें चुन सकते हैं। इसके लिए वे स्वतन्त्र हैं। किन्तु मैं कांग्रेसका एक विनम्र कार्यकर्त्ता हूँ और साथ ही एक मतदाता भी हूँ। इसलिए मैं अपने स्वतन्त्र विचारके अधिकारका उपयोग कर रहा हूँ और मतदाताओंका पथ-प्रदर्शन इस तरह करनेके लिए प्रयत्नशील हूँ कि वे अपने कार्यक्रमके अनुकूल ऐसे ही प्रतिनिधियोंको चुनें, जिन्होंने उसपर पूर्ण रूपसे अमल करनेकी शपथ ली हो। मैं इसी प्रकारकी अपील मतदाताओंके वर्तमान प्रतिनिधियोंसे भी करता हूँ कि जहाँ उन्हें असहयोगके प्रस्तावका पालन करना है, वहाँ उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे या तो उस कार्यक्रमपर पूर्ण रूपसे अमल करें या अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दें और निर्वाचकोंसे उन्हीं लोगोंको चुननेके लिए कहें जो उस कार्यक्रमपर विश्वास करते हैं।

यदि स्वराज्यवादियोंका कार्यक्रम असहयोगके लिए अनिवार्य-मनोवृत्तिके नितान्त विपरीत है तो फिर आप उनके कार्यक्रमका अनुमोदन सफलताकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले परिणामके आधारपर कैसे करते हैं? इसपर महात्माजीको हँसी आ गई; उन्होंने कहा :

यदि स्वराज्यवादियोंका कार्यक्रम सफल हो जायेगा तो मैं सबसे पहले उस दलमें शामिल होने जाऊँगा और उसे बधाई दूँगा। तब मैं अपने अहम् और अपनी विचारधाराको एक किनारे रख दूँगा।

इसके बाद बातचीत हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर आ गई। मैंने पूछा: बहुतसे हिन्दुओंका खयाल है कि आपने अभी हालमें हिन्दू-मुस्लिम तनातनीपर जो लेख[1] लिखा है उसमें आपने मुसलमान भाइयोंकी अपेक्षा उनसे अधिक त्याग करनेकी माँग की है और यह अन्याय है।

पहली बात तो यह है कि मैंने हिन्दुओंसे पर्याप्त मात्रामें त्यागकी माँग नहीं की है; किन्तु यदि वे केवल अधिकसे-अधिक त्याग करें तो मैं एक दिनमें, न केवल स्वराज्य प्राप्त करनेका वादा करता हूँ बल्कि यह वादा भी करता हूँ कि हिन्दू सदैव प्रगति करेंगे और मुसलमान उनकी मुट्ठीमें रहेंगे।

किन्तु आप उन आर्यसमाजियोंसे क्या कहते हैं जिनका कहना है कि आपने अपने लेखमें उनके साथ भी अन्याय किया है। उनका खयाल है कि आपने मौलाना अब्दुल बारी और मौलाना मुहम्मद अलीकी पीठ ठोंकी है और उनका समर्थन किया है। आप वैसा ही स्वामी दयानन्द सरस्वती और श्रद्धानन्दजीके लिए भी कर सकते थे। जान-बूझकर आर्यसमाजकी निन्दा करनेमें क्या आपका कोई विशेष उद्देश्य है? क्या आप इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति स्पष्ट करेंगे?

जरूर। किन्तु मैंने दोनों मौलानाओंमें से किसीका जरा भी समर्थन नहीं किया है। मैंने तो स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मुहम्मद अलीने कांग्रेसमें भाषण देते हुए अछूतोंके विभाजनका जो उल्लेख किया है, वह अनुचित है और उन्होंने अपनी भूलको स्वीकार कर लिया है। मैं इसके लिए उनकी प्रशंसा करता हूँ। मैंने यह भी कहा है कि अब्दुल बारीके नामसे ऐसे वक्तव्य छपे हैं जिनकी कोई सफाई नहीं दी जा सकती। इसीलिए मैंने उन्हें खतरनाक मित्र बताया है। मैं इन दोनों मित्रोंके विरुद्ध इसलिए अधिक कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ, क्योंकि मैं इससे अधिक कुछ नहीं जानता। इसी प्रकार मैं आर्यसमाजियोंके ख्यातनामा संस्थापक [दयानन्दजी] तथा श्रद्धानन्दजी-को भी जानता हूँ। इसलिए मैंने उनका ध्यान उस बातकी ओर, जिसे मैं उनकी कमजोरी समझता हूँ, खींचनेमें संकोच नहीं किया है। मेरा उद्देश्य स्पष्ट है। यदि मैं इन मुख्य व्यक्तियों तथा परस्पर संघर्षरत मुख्य धर्मोंके बारेमें वह सब-कुछ न कहता जो मैंने अनुभव किया है तो मैं अपने प्रति और अपने उद्देश्यके प्रति झूठा साबित होता। मैं इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि आर्यसमाज और श्रद्धानन्दजी समाजकी

१. देखिए पृष्ठ १३९-५९।

जितनी सेवा कर चुके हैं, उससे अधिक करें। इसलिए मैंने एक आलोचकके नाते नहीं बल्कि एक मित्र और शुभेच्छुके नाते उनका ध्यान उनकी संकीर्णताओंकी ओर आकर्षित किया है। फिर भी मेरे कथनसे सारे भारतके आर्यसमाजी क्षेत्रोंमें क्षोभ फैल गया है। हम सभी इन दिनों बड़े भावुक हो गये हैं और इसीलिए हम आलोचनासे अधीर हो उठते हैं तथा उसे सहन नहीं कर सकते, यह बात मेरी समझमें आती है। हम अपने विरुद्ध की गई किसी भी आलोचनाको सहन नहीं करते, फिर चाहे वह बहुत ही मैत्रीपूर्ण ढंगसे भी क्यों न की गई हो। किन्तु मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यदि मैं स्वयं ठंडा रहूँ तो यह आंधी अपने-आप शान्त हो जायेगी, और चूँकि अभी फिलहाल तो मेरा मानसिक सन्तुलन बिगड़ता नहीं दिखता इसलिए अपने विरुद्ध की गई इस तमाम रोषपूर्ण नुक्ताचीनीका मुझपर कोई असर नहीं पड़ा है।

देरी हो रही थी, इसलिए मैंने महात्माजीसे कहा कि एक प्रश्न और पूछकर मैं अपना काम समाप्त मान लूँगा। मैंने प्रश्न किया: "आपके खद्दरके कार्यक्रमका उद्देश्य भारतको आर्थिक मुक्ति दिलाना है अथवा आप इसके जरिये लोगोंके मनोभावोंको राष्ट्रीयताकी ओर मोड़ना चाहते हैं? यदि पहली बात है तो फिर आप लोगोंमें राष्ट्रीयताकी भावना जगानेका सुगठित प्रयत्न किये बिना स्वराज्य ले लेनेकी आशा कैसे करते हैं? यदि दूसरी बात ठीक है तो क्या खद्दरका वर्तमान कार्यक्रम लोगोंमें उस भावनाको जागृत करनेके लिए पर्याप्त होगा?

यदि खद्दरके कार्यक्रमको सफलता मिल गई तो निःसन्देह उससे भारतको आर्थिक मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। मेरा विचार है कि जबतक जनता अपनी आर्थिक मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेती तबतक सुयोजित प्रयत्न करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त सुयोजित प्रयत्न किये बिना खद्दरके कार्यक्रमको कार्यरूपमें परिणत करना असम्भव है। फिर खद्दरके सफलीभूत कार्यक्रमका यही अर्थ तो है कि खुद अंग्रेज राष्ट्रवादी बन जायें या कमसे-कम ऐसे बन जायें कि वे भारतीय आन्दोलनको निष्पक्ष दर्शकके रूपमें देख सकें। अब वे भारतको उसका शोषण करनेके उद्देश्यसे अपना गुलाम बनाये रखनेमें सफल नहीं होंगे।

. . . महात्माजी, क्या आपको आशा है कि अ० भा० कां० क० का जो अधिवेशन निकट भविष्यमें यहाँ होने जा रहा है उसमें आपके इन दोनों वक्तव्योंमें व्यक्त किये गये विचारों और पदाधिकारियोंके लिए रखी गई कड़ी कसौटियोंका अनुमोदन होगा?

यह कहना मेरे लिए कठिन है कि कांग्रेस कमेटीके सदस्य उसके आगामी अधिवेशनमें क्या करेंगे। किन्तु यदि मेरी सुझाई गई सभी कठोर कसौटियोंको अत्यधिक बहुमतसे अस्वीकार कर दिया जायेगा तो मुझे इससे जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि मुझे या तो ऐसे लोगोंका स्पष्ट बहुमत मिले जो हृदयसे इस कार्यक्रममें विश्वास करते हों और जो हर हालतमें उसे कार्यरूप देनेके लिए कृतसंकल्प हैं, अथवा मैं बिलकुल ही अल्पमतमें रह जाऊँगा। इस समय हमारे दिमागोंमें जो जबरदस्त

अनिश्चितता भरी हुई है, वह मेरे लिए असह्य है। इसने हमारी वास्तविक प्रगतिको नितान्त असम्भव बना दिया है।

किन्तु यदि जनताके प्रतिनिधियोंके विचार आपके कार्यक्रमके पक्ष और विपक्षमें लगभग समान हों तो फिर आप क्या करना चाहेंगे?

एक तो दोनों तरफ मत लगभग बराबर हों इसे मैं सम्भव नहीं समझता। अमलमें तो कोई एक स्पष्ट समझौता हो जायेगा और मतदानकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। किन्तु यदि मत लेने ही पड़े और दोनों पक्षोंके मत लगभग बराबर रहे तो मेरा खयाल है कि ईश्वर हमें कुछ-न-कुछ ऐसी शक्ति देगा कि हम साफ-साफ दो दलोंमें विभक्त हो सकेंगे . . .।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-६-१९२४

१११. भाषण: गुजरात विद्यापीठमें[1]

१० जून, १९२४

भाई कृपलानी, विद्यार्थियो, भाइयो और बहनो,

आज सुबह मेरे सम्मुख तीन पत्र पढ़नेके लिए प्रस्तुत किये गये थे।[2] इनमें से एकमें कहा गया है कि आपसे हो सके तो आप विद्यापीठको दियासलाई लगा दें। विद्यापीठने अबतक कुछ भी अच्छा काम नहीं किया है। लेखक विद्यापीठमें शिक्षा पाये हुए व्यक्ति हैं। दूसरे पत्रमें कहा गया है कि विद्यार्थी विलासप्रिय हैं और अनेक प्रकारके रसास्वादन करते हैं। मैंने अपने लड़केको यह समझकर विद्यापीठमें भेजा था कि वहाँ विद्यार्थी सादगीसे रहते होंगे और उनका चरित्रबल बढ़ता होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए? तीसरा पत्र मद्राससे आया है। लेखकने इसमें लिखा है कि मेरा आजका भाषण ऐसा होना चाहिए जिससे सारे हिन्दुस्तानको मार्ग-दर्शन मिले।

ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या कहूँ? मैं इन तीनोंमें से कौन-सा कार्य करूँ? मैं तो इनमें से एक भी काम नहीं करना चाहता। जिस विद्यापीठको स्थापित करनेमें मेरा कुछ हिस्सा है उसे मैं क्यों जला डालूँ? एक अंग्रेज चित्रकारकी कथा है। उसने विनोदके खातिर अपना एक चित्र बाजारमें लटका दिया और उसके नीचे लिख दिया

१. गांधीजीने यह भाषण अहमदाबाद स्थित गुजरात विद्यापीठके सत्रारम्भके अवसरपर कुलपतिकी हैसियतसे दिया था।

२. १० जून, १९२४ के हिन्दूमें प्रकाशित भाषणके विवरणमें कहा गया है: "आज सुबहसे ही आप छात्रोंके सम्बन्धमें विचार कर रहा था; किन्तु मैं अपना विचार केवल आपपर ही केन्द्रित नहीं कर सका। मैं यह भी सोच रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम समस्याको हल करनेका सर्वोत्तम उपाय क्या है। इसी बीच देवदासने मुझे ये तीन पत्र लाकर दिये और कहा कि मुझे इनको छात्रोंके सम्मुख भाषण देनेसे पहले अवश्य पढ़ लेना चाहिए।"

कि इसमें जिसे जहाँ भी कोई ऐब दिखाई दे, इसमें वहीं एक चिह्न लगा दे। दूसरे दिन उस चित्रमें एक इंच जगह भी निशानोंसे खाली नहीं बची। किन्तु फिर भी उसने कहा — जबतक मुझे इस चित्रसे सन्तोष है, तबतक मैं इसे नहीं जलाऊँगा।

मुझे सुबह यही चित्रकार याद आया। मुझे उसकी दृष्टि ठीक मालूम हुई। यदि हम दोषोंकी खोज करने लगें तो उनका पार पाना कठिन होगा। ईश्वरने मनुष्यमें मोह-जैसी चीज रख दी है। हम उसके वशवर्ती होकर अपना काम करते रहते हैं। आप तो इन तीनों पत्रोंमें जो सार हो उसीको ग्रहण करें। पहले तीखे आलोचकने लिखा है कि न तो विद्यार्थियोंमें कुछ दम है और न अध्यापकोंमें। वे चाहते हैं कि मैं उनका वह पत्र 'नवजीवन' में छापूं और उसपर अपनी टिप्पणी भी दूं; किन्तु मैं न तो उसे छापूंगा और न टिप्पणी ही दूंगा। यह आरोप किया गया है कि विद्यार्थी सादगीसे नहीं रहते। इसमें कितना तथ्य है, इसपर आपको विचार करना चाहिए। मद्रासी भाईसे तो मैं निपट लूंगा। अगर मेरा यह भाषण प्रकाशित नहीं किया गया तो वे यही समझेंगे कि मैंने सचमुच कोई महत्वपूर्ण भाषण दिया होगा।

यह तो हुई प्रस्तावना। मुझे आपके सम्मुख क्या कहना है, इसपर मैंने विचार अवश्य ही किया है। विचार नहीं किया है, यह मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे झूठी आत्मनिन्दा करनेकी आदत नहीं है। मेरे पिछले विचार दो वर्ष तक यरवदा आश्रममें[1] शान्तिपूर्वक चिन्तन करनेसे और भी दृढ़ हो गये हैं। जो चीज मैंने देशके सामने रखी है मुझे उसपर जरा भी पश्चात्ताप नहीं है। हमने गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की, महाविद्यालय कायम किया, उसमें सिन्धियों और दक्षिणात्योंको लाकर भर दिया और गुजरातियोंके लिए स्थान नहीं रखा — मुझे इसका भी कोई पछतावा नहीं है। गुजरातका धर्म है कि वह दक्षिण और सिन्धसे अच्छी बातें ग्रहण करे। यदि श्री कृपलानी अपने आपको बिहारी मानते हों तो हमें उनको बिहारी मानकर ग्रहण करना चाहिए। उन्हें गुजरातमें भी कुछ ग्रहण करने योग्य मिलेगा। यदि वे बिहारमें बुनकर थे तो यहाँ कातना और पींजना सीखेंगे और तब कहेंगे कि वे जितने बिहारी हैं, उतने ही गुजराती हैं। किन्तु उनसे ऐसा कराना आपके ही हाथोंमें है। वे सिन्धसे आये हैं, इसलिए हमारे मेहमान हैं। हम गुजरातीको तो गालियाँ भी देते हैं। हमने इनको अपनी गरजसे रखा है, इसलिए वे हमें जो कुछ सिखायेंगे हम इनसे वही सीखेंगे। इसमें गुजरातकी कोई हानि नहीं है, लाभ ही है। मेरा वश चले तो मैं इस विद्यालयमें एक भी गुजरातीको न रखूं और दाक्षिणात्यों और सिन्धियोंको ही भर दूं। मैं उनसे कहूँ कि वे सभी काका और मामा-जैसे बनें। यदि हमें सब लोग काका और मामा-जैसे मिल जायें तो हमें और क्या चाहिए।

हमने विद्यापीठकी स्थापना किसलिए की है? असहयोगके लिए? असहयोग किससे? क्या सरकारी कालेजोंके विद्यार्थियों और अध्यापकोंसे? नहीं। हमारा असहयोग उनसे बिलकुल नहीं है। हमारा असहयोग तो पद्धतिसे है। हमारा यह असहयोग

१. यरवदा जेल जहाँ गांधीजी मार्च, १९२२ से फरवरी, १९२४ तक कैद रहे थे।

किस तरहका है और इस असहयोग द्वारा हम क्या करना चाहते हैं इसपर विचार करते हुए मुझे दो गाथाएँ याद आ गईं। एक है बाघ और बकरेकी। एक बाघ और बकरा साथ-साथ रखे गये। बाघ था पिंजड़ेमें और बकरा था बाहर। बकरेको अच्छा दाना-घास दिया जाता था। किन्तु बकरा फिर भी दिनपर-दिन सूखता जाता था। मेरे जैसे एक विचक्षण मनुष्यने समझ लिया कि बकरा बाघके पास होनेसे नहीं पनप रहा है। बाघकी नजरसे दूर हटाये जानेपर वह मामूली दाना-चारा खाकर भी उछलने-कूदने लगा और मोटा-ताजा हो गया।

दूसरी कहानी सर नारायण चन्दावरकरने लिखी है। वह मैंने जेलमें पढ़ी थी। सर नारायण एक दिन पूनामें घूमने जा रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया एक मेमनेको घर ले जा रही है। मेमना एक साहबके घरका था। वहाँ उसके लिए दाने-घासकी सुविधाका तो पूछना ही क्या? परन्तु उसे वहाँ चैन नहीं था। जब बुढ़िया उसे ले जा रही थी तब वह उछल-कूद रहा था और बुढ़ियाको खीचे डाल रहा था क्योंकि वह अपने घर जा रहा था। वह पराधीनतासे स्वतन्त्रतामें जा रहा था। कोई भी जीवधारी हो, वह स्वतन्त्रतामें ही फूल-फल सकता है, परतन्त्रतामें नहीं। इसी बातको तुलसीदासने अपनी अनुपम वाणीमें इस तरह कहा है — "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

सरकारी शिक्षण-संस्थाओंमें अच्छीसे-अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं, योग्य अध्यापक मिलते हैं और बड़ी-बड़ी इमारतें बनी होती हैं; किन्तु वहाँ फिर भी हमारे ललाटपर तो वही काला दाग लगा रहता है। हमारे भाग्यमें तो नौकरी — बाबूगिरी — के सिवा अन्य कुछ लिखा ही नहीं है। बहुत हुआ तो वकालत सूझ सकती है। किन्तु अब तो वकालत भी नहीं सूझती। हमें तो अब ग्रेजुएट होनेपर ३० रुपयेसे शुरू होनेवाली नौकरी ही सूझती है। ज्यादासे-ज्यादा आगे बढ़े तो गुजरात कालेजमें अध्यापक हो गये। बस, यही हमारी हद है। यहाँ महाविद्यालयमें तो जैसे-तैसे पढ़ाई होती है; अक्षर-ज्ञान जितना मिल जाये वही गनीमत। महाविद्यालयकी इमारतपर छप्पर हुआ तो हुआ वरना वह भी नदारद। मकान मालिक जब चाहे नोटिस देकर निकाल बाहर कर सकता है। विद्यापीठके लिए वल्लभभाई दर-दर भीख माँगते फिरते हैं और विद्यापीठ कल रहेगा या नहीं यह सवाल भी हमेशा बना रहता है। ऐसी हालत है। गुजरात कालेजपर तो सूर्य अस्त ही नहीं होता। विद्यापीठपर रोज सूर्य उगता है, और रोज अस्त होता है। दुनियाका कुदरती कानून यही है। हमें इस कानूनपर ही चलकर अपना उद्धार करना है।

हम अपना आदर्श ऊँचा ही रखेंगे। हम ऊँचे आदर्शतक पहुँच नहीं सकते और हमसे भूलें होती हैं, यह ठीक है। हमसे पाप हो जाता है, यह भी ठीक है; परन्तु हम पापको पुण्य रूप तो नहीं बताते।

"सा विद्या या विमुक्तये", यह हमारा आदर्श है। भाई किशोरलालने[1] मुझसे कहा कि क्या हम इस महान् सूत्रका संकुचित अर्थ करके उसका दुरुपयोग तो नहीं

१. किशोरलाल मशरूवाला।

कर रहे हैं? भाई किशोरलालकी बातपर मुझे बहुत विचार करना पड़ता है। मैं उनकी बातपर रुककर विचार किये बिना नहीं रह सकता। मैंने विचार करके देखा कि इस सूत्रका दुरुपयोग नहीं हो रहा है। जो इस मुक्तिको पा सकता है वही उस मुक्तिको पा सकता है। जो इतनी छोटी-सी मुक्तिको भी प्राप्त नहीं कर सकता उसे बड़ी मुक्ति कैसे मिल सकती है? अतएव मुक्तिके प्राकृत, वास्तविक दोनों अर्थोंको ध्यानमें रखते हुए हमारा आदर्श यही है।

मैंने इस विद्यापीठको जन्म दिया, इस कारण आज मेरे चित्तमें जरा भी अशान्ति अथवा जरा भी पश्चात्ताप नहीं है। यदि महाविद्यालयके तमाम लड़के चले जायें और सरकारी कालेजमें भरती हो जायें तो भी मैं तो प्रसन्न ही रहूँगा और कहूँगा कि ये कैसे नासमझ हैं और मैं कितना समझदार हूँ। हिन्दुस्तानके उद्धारका दूसरा उपाय ही नहीं है। हम सब लोग महामोहमें ग्रस्त हैं। इससे हमें यह बात दिखाई नहीं देती। मैं तो मरते दम तक यही कहूँगा कि मेरी दृष्टिमें बहिष्कारके सिवा कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। जब मैं देखूँगा कि स्थिति ऐसी आ गई है कि हम पूरा सहयोग कर सकते हैं तभी मैं मुँहसे दूसरी बात निकालूँगा। तबतक तो मैं, चाहे सारा हिन्दुस्तान मुझे छोड़ दे, बहिष्कारपर ही अटल रहूँगा। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैं एक अनुभवी मनुष्य हूँ और मैंने अपने इस विचारके पीछे बरसों दे डाले हैं। मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैंने इसके लिए तपश्चर्या की है। दूसरी बात मेरे मुँहसे निकल ही नहीं सकती। जिस मनुष्यको यह मालूम है कि पाँच बीसी सौ होते है, क्या वह यह कहेगा कि चार बीसी या छः बीसी सौ हो सकते हैं? यरवदा-आश्रममें मेरे विचार अधिक दृढ़ ही हुए हैं।

यह सवाल है कि पढ़ाई खत्म हो चुकनेके बाद लड़के क्या करें? कृपलानीजीने भावी जीवनके विषयमें मेरे कहनेके लिए कोई बात नहीं छोड़ी है। मुख्य बात यह है कि हम भयसे अपना उद्धार करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि आपको नौकरी करनी हो तो आप खुशीसे करें और अक्षरज्ञानको बेचना हो तो उसे भी बेचें। यहाँ तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि एक अंग्रेज युवक क्या करता है। मैं अंग्रेजोंका तिरस्कार नहीं करता। बहुत-से लोग शायद इस बातको न जानते हों कि मैं अंग्रेजोंपर मुग्ध हूँ। उनसे मैंने बहुतेरी बातें सीखी हैं। मैं अंग्रेजोंका अनुकरण त्याज्य नहीं मानता। मैं तो अपनी आजाद जमीन चाहता हूँ। फिर उसमें मैं रंग चाहे जहाँसे लाकर भरूँ। मेरे साथी अंग्रेज मित्रोंने मुझे कभी यह नहीं पूछा कि यदि वे मेरे साथ न रह सकेंगे तो उनका क्या होगा? वे अपनी आजीविका छोड़-छोड़कर मेरे साथ आये हैं। उनकी जरूरतोंके बारेमें मेरा अन्दाज गलत निकला। फिर भी उनमें से किसीने भी मुझे ऐसी कड़वी बात नहीं कही कि मैंने गलत अन्दाज क्यों लगाया? वे जानते थे कि मैंने शुद्ध भावसे अन्दाज लगाया था। फिर उनमें से हरएकके मनमें यह बात रही कि क्या मैं गांधीका जिलाया जीऊँगा? मुझे जिलानेवाला तो ईश्वर है। जिस पुरुषने — चैतन्यरूप प्रभुने — आपको पैदा किया है वही आपको रोटी भी देगा। क्या मुसलमान और क्या हिन्दू, सब इस बातको जानते हैं? परन्तु आज तो

मुसलमान 'कुरान' को भूल गये हैं और हिन्दू 'गीता' को। वे उसके बजाय निकम्मा अर्थशास्त्र लिये बैठे हैं। वे भूखों मरनेसे बचनेके लिए दुनिया-भरका संघर्ष कर रहे हैं। वे नहीं जानते कि जिन लोगोंने ऐसा संघर्ष नहीं किया वे भी भूखों नहीं मरे हैं। और ऐसा संघर्ष करें भी किसलिए? विद्यालयमें क्या सीखना है? अपने ध्येयके विषयमें दृढ़ता-मात्र। इंग्लैंडकी पाठशालाओंमें भी विद्यार्थियोंको आजीविकाकी चिन्ता नहीं करने दी जाती। वहाँके शिक्षक कहते हैं — "पढ़कर पुरुषार्थ करना और अपनी रोटी आप पैदा करना।" इसीसे आप देखते हैं कि लोग इस छोटेसे टापूमें से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते हैं। मेरे अनेक अंग्रेज मित्र आज दुनियामें घूम रहे हैं। इसपर कोई कहेगा — "परन्तु उनपर ब्रिटिश झंडेकी छाया जो है?" वे अपना पेट ब्रिटिश झंडेकी छायामें नहीं भरते। हाँ, उससे उनकी रक्षा जरूर होती है। अगर कोई उनको मारता है तो ब्रिटिश झण्डा फहर उठता है और तोपें चलने लगती हैं। हमें इस रक्षाकी जरूरत नहीं है। परन्तु आज प्रस्तुत विषय यह नहीं है। प्रस्तुत विषय तो यह है कि आप लोग इस बातका विचार ही न करें कि भविष्यमें आपकी आजीविकाका क्या होगा। आपके हृदयोंमें यह बात जम जानी चाहिए कि आप भंगी-के कामसे पुरुषार्थ करके रोजी कमा लेंगे। बुनकरका काम करके रोजी कमा लेंगे। परन्तु ऐसा काम कभी नहीं करेंगे जिससे आपका सिर नीचा हो जाये। आप किसीके दरवाजेपर भीख माँगने नहीं जायेंगे। फिर माँ-बाप या भाई-बहनकी चिन्ता किसलिए? अन्धेरेमें रोशनी करनेके लिए एक चिराग काफी होता है। इसी तरह अगर आप अपने कुटुम्बमें एक सपूत निकले तो भी काफी है। यदि आपके सिरपर माँ-बाप और भाई-बहनोंके पोषणका भार आ पड़े तो आप अपनी बहनसे कहें कि मैं तुम्हें खिलाकर ही खाऊँगा। परन्तु तुम्हें रबड़ी-मलाई नहीं, रोटी मिलेगी। बहन भी आपको मेहनत करते हुए देखकर बैठी नहीं रहेगी, बल्कि स्वयं भी जुट जायेगी और आजीविका कमानेमें आपकी मदद करेगी। इस तरह अगर आपमें हिम्मत होगी तो सब बातें ठीक हो जायेंगी।

अब रही बीचवालोंकी बात। आप पूछेंगे, फिर हमें अब क्या करना चाहिए? हमें क्या आशा करनी चाहिए? आपको कोई आशा नहीं करनी चाहिए। मैं आपसे कहता हूँ कि अगर आपका विश्वास अध्यापकोंपर से उठ जाये और आपको यह मालूम हो कि अध्यापक यहाँ धन कमाने आये हैं, ढोंग करने आये हैं और बड़े बनने आये हैं तो आप उन्हें छोड़कर चले जायें। एक मनुष्यने कहा, आपको धनका लोभ चाहे न हो, परन्तु आप आडम्बर तो करते हैं; क्योंकि आपको महात्मा जो बनना है? बात सच है। अतः अगर आपको यह मालूम हो कि अध्यापक बड़े बनना चाहते हैं तो आप उनको छोड़ दें। छोड़ें ही नहीं, बल्कि बाहर उनकी खूब निन्दा करें। अध्यापकों और विद्यार्थियोंमें कोई करार नहीं है। अगर अध्यापक चरित्रवान हों तो भी आप अपना सारा भार उनपर न डाल दें। विद्याका दान कौन दे सकता है? कोई नहीं। अध्यापकोंका काम है आपके भीतरके गुणोंको परखकर बाहर लाना। इनको उज्ज्वल और विकसित तो आप ही कर सकते हैं। "शिक्षा" शब्दका भी

अर्थ यही है — जो भीतर हो उसे बाहर लाना। अतः पढ़ाई क्या होगी, इस विषयमें आपको निश्चिन्त रहना चाहिए। आप अध्यापकोंपर विश्वास रखकर जो कुछ वे सिखायें उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करें।[1]

अपने सदाचारकी रक्षा करना खुद आपके हाथोंमें है। आपके सदाचारकी रक्षा अध्यापकोंके द्वारा नहीं हो सकती। आपको यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए। आप यहाँ रास-रंग और आमोद-प्रमोदके लिए नहीं आये हैं। आपका आमोद-प्रमोद है आपका अध्ययन, आपका बाहुबल और पुरुषार्थ। आप अपने हाथ-पैर हिलाना सीखें। विद्यार्थी पहले अपंग बन जाते हैं और फिर कहते हैं कि अब अखाड़ेमें जाकर हट्टे-कट्टे बनेंगे। आप अखाड़ेमें जानेसे हट्टे-कट्टे नहीं बनेंगे। आप पहले हृदय-बल प्राप्त करें। तब आपको शरीर-बल प्राप्त हो सकेगा।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ — ईश्वरसे तो प्रार्थना क्या करूँ, मैं उसके सम्मुख तो रहता ही हूँ, अतः मेरी प्रार्थना आपसे ही है। आप खुद अपनी तथा अध्यापकोंकी कीर्ति बढ़ायें। हमारा यह विद्यापीठ सारे देशके लिए एक नमूना है। गुजरातने शिक्षा-विषयक असहयोगको सफल कर दिखाया है। यह ठीक है या नहीं; अथवा ठीक है तो किस हदतक है, इसका निर्णय तो भविष्यमें होगा।

मैं अध्यापकोंसे भी विनय नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं भी उन्हींमें से हूँ। आज तो मैं यही विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि शिक्षा-विषयक यह असहयोग सफल होता है या नहीं, यह बात आपपर ही निर्भर है। मैं चाहता हूँ कि आज आप यही विचार लेकर घर जायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

११२. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ सुदी १० [११ जून, १९२४][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। जितने पत्र तुम लिखोगी, मुझसे भी केवल उतने ही पानेकी अपेक्षा करना। अभीतक तो ऐसा ही हो पाया है। मुझे तुम्हारा पत्र जिस दिन मिला था, उसी दिन उत्तर दे दिया था। मिल गया होगा। रामदास और अन्य लोग आबूसे लौट आये हैं। मालूम होता है, वहाँ उन्हें बहुत लाभ हुआ।

१. यहाँ हिन्दूमें छपे विवरणमें यह भी मिलता है; "आप उनमें श्रद्धा रखें, अपने कर्त्तव्यका पालन करें और अपने बीच स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयताकी भावनाको विकसित करें। आप इस प्रकार इस विद्यापीठकी, जिसमें आप शिक्षा पाते हैं, कीर्ति बढ़ायें।"

२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार। ११ जूनको ज्येष्ठ सुदी नवमी पड़ती थी, अतः ज्येष्ठ सुदी १० भूलसे दी गई जान पड़ती है।

तुम वहाँ जा सकती तो कितना अच्छा होता। अब देवलालीमें ही बनी रहो और अपनी तबीयत पूरी तरह सुधारो। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। प्रभुदास अभी आबूसे नहीं लौटा। देवदास और बा आज भावनगर गये हैं।[1]

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन
लीलावती आरोग्यभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४४) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

११३. सन्देश : सौराष्ट्र राजपूत परिषद्को

वरतेज
११ जून, १९२४

राजपूतोंकी पहली परिषद् होने जा रही है और मैं इस अवसरपर केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप परिषद्का प्रारम्भ धर्मके आधारभूत सत्योंका पालन करते हुए करें। आप वहाँ अपने अधिकारोंके सम्बन्धमें अनेक प्रस्ताव पास करेंगे; किन्तु मेरा निवेदन है कि आप अपने कर्त्तव्यको न भूलें। जो लोग अपने कर्त्तव्यका पालन निष्ठाके साथ करते हैं उन्हें ईश्वर सदैव अधिकार प्रदान करता है। आप गरीबोंके संरक्षक बननेका प्रयत्न करें; तब आप यह समझ जायेंगे कि चरखा उनका जीवन ही है। आप स्वयं चरखा चलाकर उनमें चरखेका प्रचार करें। मुझे आशा है, आप आज केवल हाथसे कती और बुनी खादी पहननेका व्रत लेंगे। इससे आपको गरीबोंका आशीर्वाद मिलेगा। मैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कह सकता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-६-१९२४

१. देखिए "पत्र : देवचन्द पारेखको", ८-६-१९२४।

११४. जेलके अनुभव — ८

जेलोंकी अर्थ-व्यवस्था

जिसे जेलोंका कुछ भी अनुभव है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि जेल सारे विभागोंमें सबसे ज्यादा दरिद्र विभाग है। जेलोंमें प्रत्येक वस्तु अत्यन्त मामूली किस्मकी और भद्दी होती है। वहाँ मानवीय श्रमके खर्चमें अपव्यय तथा पैसे और वस्तुओंके मामलेमें कंजूसी बरती जाती है। अस्पतालोंमें इससे बिलकुल उलटा होता है तथापि दोनों ही ऐसी संस्थाएँ हैं जो मानवीय रोगोंका उपचार करनेके उद्देश्यसे बनी हैं — जेल मानसिक रोगोंके लिए और अस्पताल शारीरिक रोगोंके लिए। मानसिक-रोग अपराध हैं और इसलिए दण्डनीय माने जाते हैं तथा शारीरिक रोग प्रकृतिके अनपेक्षित प्रकोप हैं और वे इसलिए दण्डनीय नहीं माने जाते बल्कि शरीर-रोगीके साथ तो स्नेहका व्यवहार किया जाता है। वास्तवमें, इस प्रकारका भेद करनेका कोई कारण नहीं है। मानसिक और शारीरिक, दोनों ही प्रकारके रोगोंका उद्भव एक ही कारणसे होता है। यदि मैं चोरी करता हूँ तो वह नियम भंग करता हूँ, जिससे कोई स्वस्थ समाज शासित होता है; और यदि मैं पेटके दर्दसे पीड़ित हूँ तो मैं उन्हीं नियमोंका भंग करता हूँ, जिनसे कोई स्वस्थ समाज शासित होता है। शारीरिक रोगोंके प्रति नरमीका व्यवहार करनेका एक कारण यह भी है कि तथाकथित उच्चवर्गीय लोग निम्नवर्गके लोगोंकी अपेक्षा, शारीरिक स्वास्थ्यके नियमोंका कदाचित् अधिक बहुतायतसे भंग करते हैं। उच्च वर्गके लोगोंको भोंडी चोरियाँ करनेकी कोई जरूरत नहीं पड़ती, इसलिए भी कि स्पष्ट चोरियाँ होते रहनेसे उनकी जीवनचर्यामें व्यवधान उत्पन्न हो सकता है और वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी ठगविद्या — जो समाजमें चल जाती है — भोंडी चोरियोंकी अपेक्षा समाजके लिए कहीं अधिक हानिकर होती है। यह भी एक विचित्र बात है कि गलत उपचारके कारण ही दोनों संस्थाएँ पनप रही हैं। अस्पताल इसलिए पनप रहे हैं कि रोगियोंको प्रश्रय दिया जाता है, तथा उनका मन रखा जाता है और जेल इसलिए पनप रही हैं कि कैदियोंको सुधारसे परे समझकर दण्ड दिया जाता है। यदि मानसिक या शारीरिक, प्रत्येक रोगको एक स्खलन माना जाता, फिर भी यदि प्रत्येक रोगी या कैदीके साथ दयालुता और सहानुभूतिके साथ बर्ताव किया जाता — न कि कठोरता अथवा अनुचित अनुग्रहका — तो अस्पताल और जेल, दोनोंकी संख्यामें कमी होते जानेकी प्रवृत्ति दिखाई देने लगती। स्वस्थ समाजके लिए न जेलकी जरूरत है, न अस्पतालोंकी। होना तो यह चाहिए कि प्रत्येक रोगी और प्रत्येक कैदी अस्पताल या जेलसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यका व्रती प्रचारक बनकर बाहर निकले।

किन्तु अब मुझे यह तुलनात्मक विवेचन समाप्त कर देना चाहिए। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जेलोंमें कंजूसी मितव्ययिताके नामपर की जाती है। यद्यपि सारा काम — उदाहरणके लिए, पानी खींचना, आटा पीसना, रास्ते और पाखाने साफ

करना, रसोई बनाना —— कैदियोंसे ही लिया जाता है, फिर भी कैदी आत्मनिर्भर होना तो दूर, अपने भोजनका पैसा भी नहीं निकाल पाते और अपने सारे परिश्रमके बावजूद, कैदियोंको रुचिकर भोजन भी नही मिलता और उसके बनानेका ढंग भी उपयुक्त नहीं होता। इसका कारण केवल इतना ही है कि उन कैदियोंकी जो रसोई बनाने इत्यादिका काम करते हैं, सामान्यत: अपने काममें दिलचस्पी नही होती। उन्हें यह काम ऐसे लोगोंकी देखरेखमें करना पड़ता है जो उनके प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं रखते। यह समझना बहुत आसान है कि कैदी यदि परोपकारी जीव होते और इसलिए उन्हें अन्य लोगोके हितकी चिन्ता होती तो वे जेलमें जाते ही क्यों! अत: यदि कोई अधिक युक्तिसंगत और अधिक नैतिक प्रशासन पद्धति अपनाई गई होती तो जेल आजकी तरह घोर अपराधियोंकी खर्चीली बस्तियाँ होनेके बजाय, बड़ी सरलताके साथ स्वावलम्बी सुधार संस्थाएँ बन जाती। यदि मेरा वश चले तो मैं पानी खींचने, आटा पीसने आदिमें होनेवाले श्रमके भयानक अपव्ययको बचा लेता। यदि बागडोर मेरे हाथमें होती तो मैं आटा बाहरसे खरीदता, पानी मशीनसे खिचवाता और कैदियोंको सभी प्रकारके फुटकर कामोके बजाय खेती, हाथकी कताई और हाथकी बुनाईके काममें लगाता। छोटी जेलोंमें तो कताई और बुनाईका काम ही रखा जाये। आज भी अधिकांश केन्द्रीय जेलोंमें बुनाई होती है। बस, इसमें पिंजाई और हाथकी कताईको ही जोड़नेकी जरूरत है। आवश्यकतानुसार सारी कपास जेलोंमें ही उत्पन्न की जा सकती है। यह पद्धति हमारे राष्ट्रीय कुटीर उद्योगको लोकप्रिय बनायेगी, और जेलोंको आत्मनिर्भर। इस प्रकार सभी कैदियोंके श्रमका उपयोग लाभदायक कामोंके लिए [सपारिश्रमिक] होते हुए भी प्रतिस्पर्द्धात्मक कामोंके लिए नहीं होगा — जैसा कि अभी कुछ हदतक है। यरवदा जेलके अन्तर्गत एक छापाखाना है। इस छापेखानेमें काम करनेवाले अधिकतर कैदी ही हैं। मैं इसे सामान्य छापाखानोके साथ अन्यायपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा मानता हूँ। यदि जेल उद्योगोंमें प्रतिस्पर्द्धा करें तो उनका सारा खर्च निकालकर बचत हुई दिखाई जा सकती है। किन्तु मेरा उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि प्रतिस्पर्द्धामें पड़े बिना भी जेलोंको आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है; साथ ही उसमें आनेवाले कैदियोंको कोई ऐसा घरेलू उद्योग सिखाया जा सकता है, जो उनकी रिहाईके बाद उन्हें स्वतन्त्र व्यवसाय दे सके और इस प्रकार उन्हें सम्माननीय नागरिकों-जैसा जीवन-यापन करनेकी दिशामें पूरा-पूरा प्रोत्साहन दे।

साथ ही मैं सामान्य सुरक्षाका खयाल रखते हुए कैदियोंके लिए यथासम्भव घर-जैसा वातावरण प्रस्तुत करूँगा। इस प्रकार मैं उन्हें अपने सम्बन्धियोंसे मिलने, पुस्तकें प्राप्त करने, यहाँतक कि शिक्षा पानेकी भी सब सुविधाएँ दूँगा। मैं अविश्वासके स्थान पर समुचित विश्वासकी स्थापना करूँगा। वे जो भी काम करेंगे मैं उन्हें उसका श्रेय दूँगा और पका हुआ भोजन या उसकी सामग्री उन्हें ही खरीदने दूँगा।

मैं अधिकांश सजाओंकी अवधि अनिश्चित रखूँगा, जिससे कि उन्हें समाजकी सुरक्षा और अपने खुदके सुधारके लिए जितना आवश्यक है उससे एक क्षण भी अधिक जेलमें न रोकना पड़े।

मैं जानता हूँ कि इसके लिए आमूल पुनर्गठनकी जरूरत है। आजकल फौजकी नौकरीसे निवृत्त लोगोंको वार्डर आदि रखा जाता है। इस पुनर्गठित व्यवस्थामें बिलकुल दूसरे ही ढंगके लोग आवश्यक होंगे। किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि यह सुधार बिना बहुत ज्यादा अतिरिक्त खर्चके किया जा सकता है।

फिलहाल जेल धूर्तोंके लिए आरामगाह और साधारण सीधे-सादे कैदियोंके लिए यन्त्रणा-गृह होते हैं। अधिकांश कैदी सीधे-सादे ही होते हैं। चलते-पुरजे कैदियोंको तो वे जो चाहते हैं मिल जाता है, किन्तु सीधे-सादे और कम हिकमती कैदियोंको, जो आवश्यक होता है, वह भी नहीं मिल पाता। उस योजनामें, जिसकी मात्र मोटी रूपरेखा खींचनेका प्रयत्न मैंने किया है, बदमाश कुटिलता त्यागे बिना चैनसे नहीं रह पायेंगे और सीधे-सादे निर्दोष कैदियोंको परिस्थिति विशेषमें जितना सम्भव है उतना अनुकूल वातावरण मिलेगा। ईमानदारी लाभका और बेईमानी घाटेका सौदा सिद्ध होगा।

यदि ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि कैदी अपने भोजनका मूल्य कामके रूपमें चुकायें तो वे निठल्ले नहीं बैठेंगे और केवल खेती तथा कपासके मालका उत्पादन और इनसे सम्बन्धित हस्तकलाएँ रखने-भरसे आपकी देखरेखपर होनेवाला भारी खर्च बहुत कम हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११५. अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गम्भीर भावसे लिखते हैं:

> यह "अस्पृश्यता" शब्द ही मुझे बिलकुल ऊटपटाँग लगता है; क्योंकि ऐसा कोई वर्ग विशेष तो है नहीं जिसे "स्पृश्य" कहा जाता हो। ऐसा तो बहुत कम ही होता है कि हम सचमुच किसीके पास जाकर उसे छूते हों — आवश्यकता ही आ पड़े तो बात दूसरी है। तथाकथित 'अस्पृश्यों'को छोड़कर अन्यके सम्बन्धमें तो आमतौरपर यही देखा जाता है कि वे परस्पर किसीके निकट आने या बगलसे होकर गुजर जानेका खयाल नहीं करते। स्थिति यही है; कोई भी किसीके पास न अदबदाकर जाता है, न उसके बदनको हाथ लगाता है। सभी लोग अगर इसी तरह अपने कामसे-काम रखें और "अस्पृश्यों"को भी अपनी राह चलने दें तो क्या इस पेचीदे मसलेका हल नहीं निकल आता?
>
> मुझे यकीन है, आप यह हरगिज नहीं चाहते कि लोग "अस्पृश्यता"के पापको धोनेकी खातिर किसी "अस्पृश्य"के पास जायें और उसके बदनको हाथ लगायें। अगर आप यह मानते हैं कि स्पर्श करना कोई जरूरी बात नहीं है तो आप इस कुप्रथाको "अस्पृश्यता"की संज्ञा क्यों देते हैं? आपके "अस्पृश्यता" शब्दका

प्रयोग करनेसे तो यही ध्वनि निकलती है कि इस बुराईको दूर करनेके लिए "अस्पृश्यों" का शरीरतः स्पर्श करना जरूरी है। मुझे तो लगता है कि कुछ हदतक इस आन्दोलनके प्रति कट्टरपंथियोंके विरोधका कारण यही है। मेरा खयाल है कि हम अपने भाईको भी रोज-रोज नहीं छूते और इसलिए यदि हम इस समस्याको हल करना भी चाहें तो भी हमारा किसी दूसरे व्यक्तिका स्पर्श करना न जरूरी है और न अन्यथा उपयोगी। इसलिए उस समुदायकी आज जो स्थिति है, उसको व्यक्त करनेके लिए "अनुपगम्यता" शब्द ज्यादा उपयुक्त होगा। बाहरसे हम उन्हें कितना भी गले क्यों न लगायें, हमारे दिलोंमें सहिष्णुताकी भावनाके बिना स्थितिमें सुधार सम्भव ही नहीं है।

और फिर मेरी समझमें यह बात भी नहीं आती कि इस कुप्रथाके अस्तित्व-का स्वराज्यकी स्थापनासे क्या सम्बन्ध है। कुछ भी कहिए, "अनुपगम्यता" हिन्दू समाजकी अनेक बुराइयोंमें से एक है। सम्भव है वह दूसरी बुराइयोंके मुकाबले कुछ बड़ी हो। किन्तु जहां समाज है वहां इससे मिलती-जुलती बुराइयां तो रहेंगी ही। क्योंकि ऐसा कौन-सा समाज है जिसमें बुराइयां न हों? इसे स्वराज्यके मार्गमें बाधक क्यों माना जा रहा है और इसके निवारणको आप स्वराज्य प्राप्त करनेकी योजनाकी पूर्व-शर्तकी तरह क्यों पेश करते हैं? क्या स्वराज्य-प्राप्तिके बाद इस समस्याका समाधान सम्भव नहीं है? तब अगर लोग राजी-खुशीसे इस कुप्रथाको न छोड़ सकें तो इसे कानून बनाकर तो दूर किया ही जा सकता है।

हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच स्थायी एकता स्थापित होना निहायत जरूरी है, यह बात मैं बखूबी समझ सकता हूँ; क्योंकि इन दो बड़े समुदायोंके आपसी झगड़ेसे सरकार फायदा उठा सकती है और उसकी आड़ लेकर हमारी मांगें अनिश्चित कालतक टालती जा सकती है। इस कुप्रथाके सामाजिक, धार्मिक और मानवीय पहलुओंको भी मैं समझ सकता हूँ, लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि इसे ऐसी राजनीतिक समस्या किस प्रकार माना जा सकता है, जिसका समाधान किये बिना स्वराज्यकी प्राप्ति असम्भव हो।

मेरा झगड़ा शब्दको लेकर नहीं है। लेकिन जिस प्रणालीकी बदौलत हिन्दू लोग एक बहुत बड़ी संख्यामें जानवरोंसे भी अधम स्थितिमें पहुँचा दिये गये हैं, उस प्रणालीको मैं अन्तरात्मासे घृणा करता हूँ। निस्सन्देह यदि इन बेचारे पंचमोंको — मैं अस्पृश्य शब्दका प्रयोग नहीं कर रहा हूँ — अपनी राह चलने दिया जाये तो यह कठिन समस्या अपने-आप हल हो जाये। लेकिन, दुर्भाग्यवश, न उनकी अपनी कोई राह है और न उसपर चलनेकी समझ। क्या किसी जानवरकी अपनी खुदकी कोई राह या समझ हुआ करती है — मालिककी राह ही उसकी राह और मालिकका मन ही उसका मन है। क्या पंचम लोग किसी भी स्थानको अपना स्थान कह सकते हैं? जिस सड़कको वह साफ करता है और जिसे स्वच्छ बनाये रखनेके लिए अपना पसीना बहाता है,

उस सड़कपर भी वह नहीं चल सकता। जिस प्रकारकी पोशाक दूसरे लोग पहनते हैं, वैसी पोशाक पहननेतक की आजादी उसे नहीं है। पत्र-लेखक महोदय सहिष्णुताकी बात करते हैं। यह कहना कि हम हिन्दू लोग अपने पंचम भाइयोंके प्रति तनिक भी सहिष्णुता दिखाते हैं — भाषाका दुरुपयोग करना है। हमने ही उन्हें पतनके गर्तमें गिराया है और फिर हम ही उनकी इस गिरावटको उनके पुनरुत्थानके खिलाफ एक कारण बतलानेकी धृष्टता करते हैं।

मेरे लेखे तो स्वराज्य वही है जिसमें साधारणसे-साधारण देशवासी भी आजाद हो। जब हम सबके-सब कष्ट भोग रहे हैं, अगर ऐसे समयमें भी हम पंचमोंकी हालत सुधारनेका विचार न करें तो स्वराज्यके मदमें चूर हो जानेपर इसकी सम्भावना नहीं रहेगी। यदि हमारे लिए स्वराज्यकी एक पूर्व शर्तके तौरपर कुछ देकर भी मुसलमानोंके साथ अमनसे रहना जरूरी है तो पंचमोंको भी शान्तिसे जीनेका अधिकार देना उतना ही जरूरी है। जबतक हम ऐसा नहीं करते तबतक हम न्यायपूर्वक और आत्म-सम्मानके साथ स्वराज्यकी बात नहीं कर सकते। मेरी दिलचस्पी भारतको सिर्फ अंग्रेजोंकी दासतासे ही मुक्त करनेमें नहीं है। मैं तो इस देशको हर तरहकी दासतासे मुक्त करनेपर तुला हुआ हूँ। मै किसी "साँपनाथ" की जगह "नागनाथ" को प्रतिष्ठित नहीं करना चाहता। अतः मेरे लिए स्वराज्य आन्दोलन आत्म-शुद्धिका आन्दोलन है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११६. आर्यसमाजी भाई

सारे हिन्दुस्तानके आर्यसमाजी भाई मुझपर बड़ा तीव्र रोष प्रगट कर रहे हैं। मेरे पास ऐसे पत्र आये पड़े हैं जिनमें आर्य समाज, उसके महान् संस्थापक तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके सम्बन्धमें हिन्दू-मुसलमानवाले वक्तव्यमें किये मेरे उल्लेखका आवेशपूर्ण विरोध किया गया है। ये खत और तार गाजियाबाद, मुलतान, दिल्ली, सक्खर, कराची, जगराँव, सिकन्दराबाद, लाहौर, सियालकोट, इलाहाबाद, इत्यादि जगहोंसे आये हैं। इनमें उन पत्रोंकी गिनती नहीं की गई है, जो लोगोंने निजी तौरपर मुझे लिखे हैं। इनमें लगभग सभी पत्र-प्रेषक यह अपेक्षा रखते हैं कि मैं उनके ऐतराजोंको प्रकाशित भी करूँ। कितने ही महाशयोंने तो मुझसे इसका आग्रह भी किया है। मैं इन सज्जनोंका मनोरथ पूरा न करपानेके लिए उनसे माफी चाहता हूँ। बहुतसे पत्रों और तारोंका मजमून पिछले हफ्तेमें प्रकाशित तारसे[1] मिलता-जुलता है। आर्यसमाज, 'सत्यार्थप्रकाश', ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी और शुद्धि आन्दोलनपर, उनके खयालमें मैंने जो हमला किया है, उसपर इन सबमें क्रोध प्रकट किया गया है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि मेरे विचार अभीतक ज्योंके-त्यों बने हुए हैं। सामान्य दलीलोंसे भरे हुए

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-६-१९२४।

इन सब तारों और पत्रोंको मैंने बड़े ध्यानसे पढा है। जिन लोगोने आर्यसमाज सम्बन्धी बातोंकी अनभिज्ञताको मेरे इस तरह लिखनेका कारण बतलाया है, उन्होंने यह शायद इसलिए किया है कि मैं इसका सहारा लेकर बच निकलूं। लेकिन मेरी बदनसीबी है कि मैंने अपने बच निकलनेकी कोई गुंजाइश नही छोडी। मै यह नही कह सकता कि मैं 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा आर्यसमाजके सामान्य सिद्धान्तोंसे ना-वाकिफ हूँ। मैं नही कह सकता कि आर्यसमाजके बारेमें मेरी राय पहलेसे अच्छी नही थी; बल्कि मैंने पूरी श्रद्धा और भक्तिके साथ उसका अध्ययन किया है। ऋषि दयानन्दके व्यक्तिगत चरित्रबलके प्रति मेरा हमेशा असीम आदरभाव था और आज भी है। उनके ब्रह्म-चर्यको मैंने अपने लिए हमेशा अनुकरणीय वस्तु माना है। उनकी निर्भयताका मैं प्रशंसक रहा हूँ। इसके अलावा, अगर मेरे अन्दर प्रान्तीयताका भी कोई भाव हो तो ऋषि दयानन्द मेरी ही तरह एक काठियावाड़ी थे, यह भी मेरे लिए कम फख्रकी बात नहीं है। पर मै लाचार था। मुझे अपनी इच्छाके खिलाफ उन नतीजोंपर पहुँचना पड़ा और मैंने उन्हे प्रकाशित भी तभी किया जब वह प्रसगानुकूल जान पड़ा। अगर इस मौकेपर मैं अपनी राय दबा जाता तो वह मेरी कायरता होती। समाजी भाइयोसे मेरी प्रार्थना है कि प्रामाणिक रूपसे प्रकट की गई मेरी रायसे क्रोधित होनेके बदले वे मेरी आलोचनाको सीधे अर्थमें ले। उसकी छान-बीन करें, मुझे यदि कर सकते हों तो अपनी बातका कायल करें और अगर मैं उनको बातका कायल न हो सकूं तो ईश्वरसे मेरे लिए दुआ मांगें। दो चिट्ठियोंमें चुनौतीके साथ कहा गया है कि मै अपने निर्णयोंके सबूत पेश करूँ। बात वाजिब है। आशा है मैं जल्दी ही अपने निर्णयोंकी पुष्टिमें 'सत्यार्थ प्रकाश' के कुछ अनुच्छेद प्रस्तुत कर सकूंगा। ये सज्जन कृपा करके मुझे धार्मिक वाद-विवादमें न घसीटें। मै तो सिर्फ वह सामग्री उनके सामने पेश कर दूंगा जिसके सहारे मैं उन धार्मिक नतीजोंपर पहुँचा हूँ। स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें मेरे लिए सबूत या दलील पेश करनेका कोई सवाल पैदा नही होता। उनसे अपनी मित्रताका दावा मैं पिछले लेखमें कर ही चुका हूँ। उसपर ध्यान देकर आलोचकगण यदि इस मामलेमें उनके और मेरे बीचमें न पड़ें तो मेहरबानी होगी। फिर उनके सम्बन्धमें मेरी राय कुछ भी हो, मैं उनके साथ नही झगडूंगा। उनकी आलोचना मैंने एक मित्रकी हैसियतसे की है। शुद्धिके बारेमें भी "जिस अर्थमें ईसाई धर्ममें उसका स्थान है या कुछ कम अंशोंमें इस्लाममें", यह कहकर मैने उसे जिस तरह सीमित किया है, मेरे आलोचक क्रोधान्ध होकर उसे नजर अन्दाज कर गये हैं। यह बात और है और यह कहना कि हिन्दू धर्ममें मत-परिवर्तन होता ही नही, बिलकुल दूसरी बात है। हिन्दू-धर्मके पास शुद्धिका अपना एक निराला ही ढंग है। परन्तु यदि आर्यसमाजी लोग मेरी रायसे सहमत न हों तो कमसे-कम मुझे अपनी रायपर कायम रहनेकी इजाजत दें। अगर आर्यसमाजी भाई मेरे निवेदनको फिरसे पढें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि मैंने यह कहा है कि अगर वे चाहते हों तो उन्हें अपनी हलचल जारी रखनेका पूरा-पूरा हक है। दो रायोंका मिल जाना सहिष्णुता नहीं है। सहिष्णुताके मानी तो यह है कि दो आदमियोंके मतमें पूर्व-पश्चिमका अन्तर हो तब भी दोनो एक-दूसरेको निबाह लें।

अन्तमें, मैंने अपने निवेदनमें यह भी नहीं कहा कि समाजी या मुसलमान औरतोंको उड़ाते ही हैं। मैंने तो यह लिखा है कि "मैं सुनता हूँ" कि वे ऐसा करते हैं। मैंने जो बात कानपर आई उसे कहकर दोनों पक्षोंको यह मौका दे दिया कि वे इस इल्जाम को झूठा साबित करें। जो कुछ कहा जा रहा था, वातावरणको निर्मल करनेकी दृष्टिसे। क्या उस सबको प्रकाशित कर देना ज्यादा अच्छा नहीं हुआ?

आर्यसमाजी मित्रोंसे मैं कहूँगा कि उनका यह विरोध उनमें सहिष्णुताकी कमी जाहिर करता है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और सार्वजनिक संस्थाओंके इतने तुनक-मिजाज होनेसे कैसे काम चल सकता है? उन्हें तो कठोरसे-कठोर टीका भी हँसकर सहन करनी चाहिए।

और अब मुझे उनसे एक प्रार्थना करनी है — आपमें से लगभग बहुतेरे भाई मेरी टीकापर अपना विरोध प्रकाशित कर चुके। इसका मुझे रंज नहीं है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आपके दुःखसे मै दुखी हुआ हूँ। मैंने वह टीका दुःखित हृदयसे ही लिखी थी और अब यह देखकर कि उससे बहुतोंके दिलको चोट पहुँची है, मैं दुःखित हुआ हूँ। मैं आपका दुश्मन नहीं हूँ, बल्कि मैं तो आपका मित्र होनेका दावा करता हूँ। समय आनेपर इसका सबूत आपको मिलेगा। आप किसी व्यक्ति या धर्मसे झगड़ना नहीं चाहते। आप लोगोंने लगभग अपने सभी पत्रोंमें यही कहा है। मैंने आर्यसमाजकी, उसके संस्थापककी और स्वामी श्रद्धानन्दजीकी जो प्रशंसा की है उसे हृदयंगम कीजिए। आर्य समाजने हिन्दू समाजकी बुराइयाँ दूर करनेका जो काम किया है उससे मै अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि आर्यसमाजने हिन्दू धर्मको कलंकित करनेवाली कितनी ही कुप्रथाओंको मिटानेकी कोशिश की है। परन्तु पिछली कमाईपर कोई कबतक जीवित रह सकता है? आप शब्दोंका अतिक्रमण करके धर्मकी भावनाको समझें और उसका प्रचार करें। आप शौकसे इनकार कीजिए; पर मैं फिर कहता हूँ कि आपके शुद्धि-आन्दोलनमें मुझे पादरियोंके धर्म-प्रचारकी पद्धतिकी बू आती है। मै चाहता हूँ कि आप इससे ऊँचे उठें। अगर आप अपने ही क्षेत्रको सुधारनेका आग्रह करें तो आपका पूरा समय और पूरी शक्ति उसीमें लग सकती है। मेरी तरह अगर आप भी मानते हों कि आर्यसमाज हिन्दू धर्मका एक अंग है तो हिन्दूको हिन्दू बनानेका प्रयत्न कीजिए। अगर आप आर्यसमाजको हिन्दू धर्मसे जुदा मानते हों तो मेरा खयाल है कि फिर आप उनकी राय नहीं बदल पायेंगे। पहले अपनी जगह जाननेकी कोशिश कीजिए। मैंने आपपर टीका इसलिए की है कि मैं वर्तमान राष्ट्रीय और धार्मिक आन्दोलनमें आपका सहयोग चाहता हूँ। अगर आर्यसमाज उस संकुचितताको छोड़कर, जो मुझे दिखाई दी है, व्यापक दृष्टि धारण कर ले तो उसका भविष्य उज्ज्वल है। अगर आप यह कहते हों कि आप पूरे विकसित हो चुके हैं तो मुझे जरूर रंज होगा और तब चूँकि मुझे आपमें उदारता नहीं दिखाई देती, आपका मुझपर गुस्सा करना मुनासिब नहीं है। बल्कि मुनासिब यह है कि कि आप अपनेको उदाराशय बनाकर, मेरे अज्ञानको नजरअन्दाज करें, और धीरजके साथ उसे दूर करनेका प्रयत्न करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११७. टिप्पणियाँ

समरथको नहिं दोष गुसाँई

मेरे एक घनिष्ठ यहूदी मित्र बात करते-करते अकसर एक मुहाविरेका प्रयोग किया करते थे — "रबी मे" इसका अर्थ यह निकलता है कि देशमें जो शख्स सबसे बड़ा हो वह चाहे जैसा भयंकर जुर्म निःशंक होकर कर सकता है, निःशंक होकर ही नहीं, "समरथको नहिं दोष गुसाँई" के न्यायके मुताबिक अपने कुकृत्योंके लिए वह लोगोंकी वाहवाही तक प्राप्त कर सकता है। यह बात आज ओ' डायर-नायरके मुकदमेपर मौजूं बैठती है। इस मुकदमेमें आरम्भसे ही जजने पक्षपात दिखाया। प्रतिदिन, अखबारोंमें इस मामलेके बारेमें जो खबरें छपती थीं, उनको पढ़कर जनताका मन व्यथित होता रहा। मुकदमेका फैसला क्या होगा, यह तो पूर्व निश्चित-सा था, पर निराशाके बीच भी लोगोंको यह आशा लगी हुई थी कि फैसला लिखते हुए अपने उपसंहारमें जज महोदय कुछ-न-कुछ न्याय तो करेंगे ही। लेकिन यह होता कैसे। जो बुरेसे-बुरा हो सकता था, वह होकर रहा। जिस कार्यको करनेमें किसी हिन्दुस्तानीको अपनी जानसे हाथ धोना पड़ सकता हो, वही काम एक अंग्रेज जज बेखटके कर डाल सकता है।

सर माइकेल ओ'डायरकी चुनौतीको मंजूर करके सर शंकरन् नायरने सारे ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश जनताको कसौटीपर रख दिया था; पर इस कसौटीपर वे खरे नहीं उतरे। ऐसे सीधे-से मामलेमें भी सर शंकरन् नायर-जैसे जानेमाने राजभक्तके साथ न्याय नहीं हुआ। यदि सर माइकेल ओ'डायर हार जाते तो उससे ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट न हो गया होता। उसकी झूठी प्रतिष्ठाको थोड़ा-सा धक्का जरूर लगता। ब्रिटिश जनता इस बातके लिए मानो वचनबद्ध है कि जबतक उसके निष्ठावान सेवक उस साम्राज्यके पक्षमें काम कर रहे हैं, जो उनकी समृद्धिका स्रोत है, तबतक वे लोग यदा-कदा गलती ही क्यों न कर बैठें, वह उनकी हिमायत करेगी। मैं जानता हूँ कि सर शंकरन् नायरकी इस हारमें प्रत्येक भारतवासीकी सहानुभूति उनके साथ है। मैं तो पहलेसे ही जानता था कि इस मुकदमेका अंजाम क्या होनेवाला है। शैतानकी आंतकी तरह बढ़ते जानेवाले इस निर्जीव मुकदमेको सर शंकरन् नायर जिस जीवटसे लड़ रहे थे, उसे देखकर मेरे मनमें उनके प्रति प्रशंसाका जो भाव था वह बढ़ता चला गया। इस मुकदमेसे इस शासनके विरुद्ध मौजूद आरोपोंमें एक और जबरदस्त आरोप जुड़ गया है। इस शासनतन्त्रका विनाश तो किया ही जाना चाहिए।

गलत रास्ता

लेकिन हम असहाय हैं — ऐसा मानकर हमें अपना धैर्य नहीं खो बैठना है। सिराजगज सम्मेलनने हमें एक गलत रास्ता दिखाया है। गोपीनाथ साहाके सम्बन्धमें सम्मेलनमें जो प्रस्ताव[1] पास किया गया उसका पाठ अब मुझे मिल गया है और इस समय वह

१. देखिए "भेंट : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे", ५-६-१९२४।

मेरे सामने है। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिने इस प्रस्तावका जो मजमून मुझे दिखाया था, यह पाठ तो उससे बहुत अधिक बुरा है। (४ जूनके) 'फॉरवर्ड' में प्रस्ताव छपा है। वह इस प्रकार है :

> यह सम्मेलन अहिंसाकी नीतिमें अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करता है, किन्तु साथ ही गोपीनाथ साहाने श्री डेकी हत्याके सिलसिलेमें फांसीकी सजा पाकर जिस देशभक्तिका परिचय दिया है, उसके लिए उनके प्रति सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

इस प्रस्तावको मैं अहिंसाके व्यंगके अलावा और कुछ नहीं मान सकता। अगर इसमें अहिंसा शब्दको न घसीटा गया होता तो प्रस्ताव कम अशोभन होता। अगर गोपीनाथ साहाके किसी कार्यको उनकी देशभक्तिका द्योतक माना जा सकता है तो वह उनका हत्या-कार्य ही है; न कि उसके परिणामस्वरूप मिलनेवाली फाँसीकी सजा। वे मरनेका संकल्प करके नहीं, बल्कि जिस व्यक्तिको घृणित मानते थे, उसे मारनेका संकल्प करके चले थे। वे जानते थे कि इसमें उनके फाँसीपर लटका दिये जानेका खतरा है। इससे उन्हें बहादुर तो माना जा सकता है; किन्तु लाजिमी तौरपर देशभक्त नहीं। कारण, हर हत्यारा जानता है कि वह जोखिमका काम कर रहा है और इसलिए उसे बहादुर कहा जा सकता है। इसलिए अगर उनके किसी कार्यमें देशभक्ति थी तो इतनी ही कि उन्होंने किसीके प्राण लिये। यदि हम अहिंसाको केवल व्यावहारिक नीति ही मानें, तो भी हत्याका उससे मेल नहीं बैठता। स्वयं अहिंसापर दृढ़ रहकर कष्ट झेलना और हिंसापूर्वक किसी दूसरेको चोट पहुँचाना, ये दोनों कार्य एक ही सांसमें देशभक्तिपूर्ण नहीं माने जा सकते। हर देशप्रेमीकी देशभक्तिका तकाजा है कि जबतक उसका देश अहिंसाकी नीतिपर चल रहा है, तबतक हत्या आदि कार्यों द्वारा वह उसमें व्यवधान न डाले और अगर कोई हत्या करता है तो अहिंसाकी नीतिपर चलनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध लोगोंके कर्त्तव्यकी इतिश्री इतनेसे ही नहीं हो जाती कि वे किसी भी तरह उस कार्यसे अपना नाम न जुड़ने दें; बल्कि उन्हें चाहिए कि वे उस कृत्यकी खूब डटकर भर्त्सना करें — क्योंकि और कुछ नहीं तो उनका इतना कर्त्तव्य तो है ही कि जनमत तैयार करके वे ऐसे कृत्योंकी रोक-थाम करें। यदि हत्यारेका प्रेरक-भाव विमलतम हो तो भी उसकी इस प्रकार भर्त्सना करना आवश्यक है। व्यावहारिक राजनीतिमें महत्व सिर्फ कार्यका होता है; न कि कार्य और परिणामोंसे स्वतन्त्र किसी उद्देश्य या मनोवृत्तिका। यदि प्रस्तावमें अहिंसाकी नीतिमें फिरसे विश्वास व्यक्त न किया गया होता तो निःसन्देह मेरी इन दलीलोंमें कोई बल न रहता। लेकिन मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि जिस घड़ीतक कांग्रेस उस सिद्धान्तको लेकर चलती रहेगी जिसको लेकर वह इस समय चल रही है, तबतक अपने सिद्धान्तके प्रति निष्ठा रखनेवाले हर कांग्रेस-जनका यह परम कर्त्तव्य है कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा राजनीतिक हिंसाके प्रत्येक कृत्यको धिक्कारे। इसलिए बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे मेरा नम्र निवेदन है कि वह या तो सम्मेलनके इस प्रस्तावसे अपनेको पूर्णरूपेण विच्छिन्न कर ले या अगर इस प्रस्तावका, जो बहुत बड़े मतसे पास हुआ प्रतीत होता है, कोई खुलासा उसके पास हो तो उसे जनताके सामने रखकर अपनी स्थिति स्पष्ट करे।

'महात्मा' से बचाइए

मेरे नामके साथ 'महात्मा' शब्द जोड़नेकी बातपर सिराजगंज सम्मेलनमें जो-कुछ हुआ, उससे मुझे बहुत कष्ट पहुँचा है। एक सज्जन बोलते समय मेरे नामके साथ यह शब्द नहीं लगा रहे थे। इसपर कुछ लोगोंने, जिन्हें मेरे नामके साथ 'महात्मा' शब्द जोड़नेका मोह-सा हो गया है, शोर-गुल मचाकर उन सज्जनका बोलना मुश्किल कर दिया और कुछने उनसे यह शब्द जोड़नेके लिए अनुनय-विनय की। मेरा कहना है कि इन दोनों ही प्रकारके लोगोंने इस प्रकार न तो मेरा और न हमारे उद्देश्यका ही कोई भला किया है। उन्होंने अहिंसाके ध्येयको हानि पहुँचाई और मुझे कष्ट दिया। उनकी जोर-जबरदस्तीसे उन सज्जनने यदि इस विशेषणका प्रयोग किया भी होता तो इससे उन्हें क्या आनन्द आ सकता था? लेकिन उन सज्जनको मैं इस बातके लिए बधाई देता हूँ कि उन्होंने दबावमें आकर उस शब्दका प्रयोग करनेके बजाय सम्मेलनसे अलग हो जानेका साहस दिखाया। मेरा विचार है कि मैं जिस उद्देश्यको लेकर चल रहा हूँ, उन सज्जनने मेरे अन्ध-प्रशंसकोंकी बनिस्बत उसे अधिक अच्छा समझा है। मैं अपने सभी प्रशंसकों और मित्रोंको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वे 'महात्मा' शब्दको भूलकर मुझे सिर्फ 'गांधीजी' के रूपमें याद करें, जैसा कि उन सज्जनने पूरी शिष्टताके साथ किया, अथवा वे मुझे सिर्फ गांधी ही कहें, तो उससे मुझे अधिक खुशी होगी। मेरा सबसे बड़ा सम्मान इसीमें है कि मित्रगण, मैं जिस कार्यक्रमको लेकर चल रहा हूँ उसे अपने जीवन और आचरणमें उतारें और अगर उस कार्यक्रममें उनका विश्वास न हो तो वे उसका जितना हो सकता है उतना विरोध करें। कर्मके इस युगमें अन्ध-श्रद्धाका कोई मूल्य ही नहीं है। श्रद्धा-पात्रको उससे अकसर परेशानी होती है और दुःख भी।

एक उपयुक्त प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं[1] —

> आपने स्वराज्यवादियोंसे लगभग यह कह दिया है कि वे कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितियोंसे तत्काल त्यागपत्र दे दें। इसमें यह बात मान ली गई है कि देशमें उनकी संख्या कम है और यदि सारे देशमें नहीं तो कमसे-कम कांग्रेसमें अपरिवर्तनवादियोंका बहुमत है। यह बात सच है कि गयामें साफ तौरपर उनका बहुमत था। परन्तु दिल्ली और कोकनाडाके अधिवेशनोंमें दोनों दलोंकी सदस्य-संख्या संदिग्ध रही। देशका वायुमण्डल तो निःसन्देह ही अपरिवर्तनवादियोंके पक्षमें रहा है; क्या इसका कारण यह नहीं था कि आपका यरवदा जेलमें रहना और लोगोंके हृदयमें आपके व्यक्तित्वके प्रति भक्ति-भावसे पूर्ण होना था। लेकिन क्या अब हमें इस बातका निश्चित तौरपर पता नहीं लगा लेना चाहिए कि हम लोग स्वतन्त्र रूपसे अपरिवर्तनवादियोंके पक्षमें या यों कहिए कि परिवर्तनवादियोंके विपक्षमें है या नहीं? . . .

१. अंशतः उद्धृत किया जा रहा है।

मैं मानता हूँ कि पत्र-लेखककी आपत्तिमें काफी जोर है। मुझे अन्देशा है कि यह बहुत मुमकिन है कि अपरिवर्तनवादियोंने मेरे प्रति वफादारी निभानेकी भावनासे ही प्रेरित होकर मूल कार्यक्रमके पक्षमें अपनी राय दी हो। अगर यही बात हो तो अब उन्हें इस अटपटी स्थितिसे मुक्त कर दिया जाना चाहिए। यह अच्छा हुआ कि पत्र-लेखकके पहले ही मैंने यह बात कह दी थी कि अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके वर्तमान सदस्य कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास न रखते हों तो वे मेरा साथ छोड़ देनेमें तनिक भी संकोच न करें। राष्ट्र-कार्य ही सर्वोपरि है। राष्ट्र-कार्यके सामने हमें अपने प्रिय-से-प्रिय व्यक्तियोंको उठाकर एक तरफ रख देना चाहिए। राष्ट्र-कार्यके प्रति हमारी वफादारीके सामने दूसरे तमाम विचार गौण होने चाहिए। मै सिर्फ इतना चाहता हूँ कि सभी ईमानदारीसे और कार्यक्षमता बढानेकी दृष्टिसे काम लें। पूरे कार्यक्रमपर जिन लोगोंका विश्वास न हो, उन्हें चाहिए कि वे उन लोगोंके लिए अपनी जगहें खाली कर दें जिनका उसपर विश्वास है। यदि सब लोग या बहु-संख्यक लोगोंका उसमें विश्वास न हो तो उन्हें नया कार्यक्रम बनाना चाहिए और उसे पूर्ण करना चाहिए। मैं तो कांग्रेसके प्रस्तावोंके पीछे भी आँख मूँदकर चलनेके पक्षमें नहीं हूँ। कांग्रेसका लक्ष्य है——स्वराज्य। अगर पिछले छः महीनोंके अनुभवने हमें इससे अच्छा उपाय सुझा दिया हो तो हमें सहर्ष उसका अवलम्बन करना चाहिए। कांग्रेसके जिन प्रस्तावोंमें कभी हमारा विश्वास ही नहीं रहा, जिनके प्रति अब हमारा विश्वास हिल चुका है, उनके अनुसरणका ढोंग करनेके बजाय यदि हम अपने-अपने विश्वासोंके अनुसार ही चलें तो यह कांग्रेसके प्रति अधिक ईमानदारीकी बात होगी। अगर इन छः महीनोंके अनुभवने हमारा झुकाव स्वराज्यवादियोंके मतकी तरफ कर दिया हो तो हमें स्पष्टरूपसे, साहसके साथ यह बात कह देनी चाहिए और निस्संकोच स्वराज्यवादियोंके साथ हो जाना चाहिए। मैं विरोध कर रहा हूँ केवल ढोंग और ढकोसलेका। उनसे हमारा काम चौपट हो जायेगा। अगर हम वकालत जारी रखनेवाले वकीलोंके बिना कांग्रेसके संगठनोंको न चला सकते हों तो हम बखुशी अदालतोंका बहिष्कार समाप्त कर दें। और अगर चरखेमें हमारा विश्वास न हो तो उसकी बात भी छोड़िए। चरखेके प्रति जबानी वफादारीसे तीस करोड़ लोगोंके लिए सूत मुहैया नहीं किया जा सकता, जिसकी हमें जरूरत है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो हमें वही करना चाहिए जो सभी सफल संस्थाओंने आजतक किया है अर्थात् उन संस्थाओंका काम ऐसे लोगोंके सुपुर्द कर देना चाहिए जिनका उन कामोंकी उपयोगितामें पूरा-पूरा विश्वास हो। जिस संस्थाका मुख्य काम लोगोंको कताईकी शिक्षा देना और उसे लोकप्रिय बनाना हो, उसका काम कोरे भाषणकर्त्ताओंसे नहीं चल सकता। और न कताई करनेवाले लोग उन वाद-विवाद सभाओंका संचालन कर सकते हैं जिनमें वक्तव्य-कलाको ही सर्वाधिक महत्त्वकी वस्तु माना जाता हो।

एक और मित्रने दूसरी आपत्ति उठाई है, जो ठीक है। उनका कहना है कि अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी विशुद्ध रूपसे कार्यकारिणी समिति होती तो आपकी बात सही हो सकती थी। पर वे कहते हैं कि यह सभी तरहके मसलोंपर विचार और बहस करनेवाली समिति भी है और चूँकि यह आगामी कांग्रेसके लिए

प्रस्ताव तैयार करती है, इसलिए वह व्यवहारतः विधायक समिति भी है। जबतक किसी कार्यकारिणी समितिके सदस्योंको यह मालूम नहीं हो कि उन्हें किन नियमोंका पालन करना है तबतक ऐसी कोई समिति कैसे चुनी जा सकती है। मेरी रायमें यह ऐतराज बिलकुल ठीक है। मगर यहाँ भी मेरी बात कटती नहीं है; क्योंकि मैंने तो सिर्फ इस बातपर अपनी राय ही दी है कि कांग्रेसके प्रस्तावोंपर अगले छः महीनोंमें किस तरह अमल किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। कांग्रेसके कार्यमें किसी जान्नेकी कठिनाईको आड़े नहीं आने देना चाहिए और अगर कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितियोंके सम्बन्धमें मेरा विचार कांग्रेसजनोंको ठीक लगता हो तो इन मित्र महोदयने जो कठिनाई बताई है उसे अगले सालके लिए तो आसानीसे दूर किया जा सकता है — यह व्यवस्था करके कि कार्यकारिणी समितियोंका चुनाव कांग्रेस-अधिवेशनके बाद दुबारा हो। मेरी रायको, अगर वह कुछ महत्त्व रखती हो तो सदस्यों और मतदाताओंके लिए सिर्फ दिग्दर्शनके रूपमें लेना चाहिए। मुझे यह राय इसलिए देनी पड़ी है कि उस कार्यक्रमको पूरा करनेकी जिम्मेदारी बहुत हदतक मुझपर ही है। इसलिए अपनी राय देने समय मैंने यह भी जतला दिया है कि कारगर ढंगसे मेरी सेवाका उपयोग किस तरह किया जा सकता है।

आगाखानी खोजे[1]

ऊपर जो-कुछ कहा है वह 'नवजीवन' के इसी अंकमें प्रकाशित दो अनुच्छेदोंका अविकल अनुवाद है। अब मैं पत्र-लेखकोंको आमन्त्रित करता हूँ कि वे अपने इस कथनके समर्थनमें अपनी दलीलें और तथ्य भी भेजें कि खोजा धर्मोपदेशकोंने लोगोंसे अपना धर्म स्वीकार करानेके लिए उन्हें सांसारिक सुख-सम्पदाका लोभ दिखाया है।

मुसलमानोंकी तरफदारी

अब फिर मुझपर मुसलमानोंकी तरफदारी करनेका आरोप पहलेसे दोगुने जोरके साथ लगाया जा रहा है। आलोचकोंकी बातोंका आशय यह है कि मैं हिन्दुओंके दोषोंको बहुत बढ़ाकर दिखाता हूँ और मुसलमानोंके दोषोंको घटाकर। एक तरहसे मैं इस आरोपको सहर्ष स्वीकार करता हूँ। यदि हम सही निर्णय देना चाहते हैं तो हमें इस सुन्दर सहज नियमके अनुसार चलना चाहिए कि चीजोंको उनके सही परिप्रेक्ष्यमें देखें। लेकिन हम तो उस नियमके खिलाफ चलनेके आदी हो गये हैं। हम अपने दोषोंको तो घटाकर आँकते हैं और अपने प्रतिपक्षके दोषोंको बहुत-चढ़ाकर। इससे असहिष्णुता की भावना बढ़ती है। अगर हममें उदारता और सहिष्णुता हो तो हम अपने प्रतिपक्षियोंको भी उसी तरह देखनेका प्रयत्न करेंगे जिस तरह वे खुद अपनेको देखते हैं। इस कोशिशमें हम पूरी तरह कामयाब तो नहीं होंगे, लेकिन उससे हमें सही परिप्रेक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। इसलिए जिस चीजको हिन्दुओंके दोषोंका अतिरंजन समझा जा

१. मूलमें इसके पहले गुजराती नवजीवनमें प्रकाशित एक टिप्पणीका अनुवाद दिया गया है देखिए "टिप्पणियाँ", ८-६-१९२४।

रहा है वह ऊपरसे ही अतिरंजना लगती है, वास्तवमें बात वैसी है नहीं। एक आलोचकका कथन है: "लेकिन क्या आप यह चाहते हैं कि मौलाना अब्दुल बारीको आपकी तरह हम भी खुदाका भोला-भाला बन्दा मान लें। हम संयुक्त प्रान्तके लोग तो उन्हें घमण्डी, मिथ्याभाषी और अविश्वसनीय व्यक्तिके रूपमें जानते हैं।" मैं उन्हें यह यकीन दिलाना चाहता हूँ कि अगर मौलाना साहब, जैसे उन लोगोंको लगते हैं मुझे भी वैसे ही लगते तो मैं कहनेमें कोई संकोच न करता। उनके खिलाफ मैं जो अधिकसे-अधिक जानता हूँ सो मैंने ही कह दिया है; अर्थात् यह कि वे एक खतरनाक दोस्त हैं। मुझको वे झूठे तो कभी नहीं मालूम पड़े। कुछ आलोचक समझते हैं कि मैं मुसलमानोंसे राजनैतिक मतलब गाँठनेके लिए उनकी चापलूसी कर रहा हूँ। वे ऐसा हरगिज न मानें। मेरे लिए यह गैर-मुमकिन बात है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि खुशामदसे एकता स्थापित नहीं हो सकती। हमें भूलसे भी शिष्टाचार और सौजन्यको चापलूसी और अशिष्टताको निर्भीकता नहीं मान बैठना चाहिए।

एक मुसलमानके दिलका गुबार

हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्यापर मेरे वक्तव्यके सम्बन्धमें एक मुसलमान भाईने पत्र लिखा है। उनके कुछ अंश नीचे दे रहा हूँ। वे कहते हैं:

> 'मुझे ज्यादा शर्म तो हिन्दुओंकी बुजदिलीपर आती है। जो घर लूटे गये उनमें रहनेवाले लोग अपनी सम्पत्तिकी रक्षा करते-करते मर क्यों नहीं गये?' आपके इन वाक्योंसे हिन्दुओंमें उत्तेजना फैलनेकी आशंका है। मुझे दुःख है कि आपने ऐसी बातें लिखीं। . . . आपकी इन बातोंका नतीजा क्या हो सकता है, यह सोचते भी डर लगता है।

मुझे तो अपने इस कथनमें कोई खतरनाक बात दिखाई नहीं देती। अगर मेरे वक्तव्यके परिणामस्वरूप हिन्दुओंमें ऐसी शक्तिका संचार हो जाये जिससे वे खतरा आ पड़नेपर अपनी रक्षा कर सकें तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। जबतक हम एक-दूसरेसे डरना न छोड़ देंगे, तबतक हमें एकताकी उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। पत्र-लेखकने कोई दूसरा तरीका भी तो नहीं सुझाया। जो हिन्दू अपने पड़ोसीसे दिन-रात डरा करता हो उसको मैं सिवा इसके क्या सलाह दे सकता हूँ कि या तो उसे अपने बचावमें अपना हाथ उठाये बिना अहिंसात्मक ढंगसे मर-मिटना चाहिए या हिंसात्मक ढंगसे घूंसेका जवाब घूंसेसे देकर अपनी रक्षा करनी चाहिए? वे आगे लिखते हैं:

> कोई भी समझदार हिन्दू या मुसलमान आपकी इस रायको नहीं मानेगा कि पण्डित मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। वे तो मुसलमानोंके खुल्लम-खुल्ला दुश्मन हैं; सूरजकी रोशनीकी तरह उनकी दुश्मनी साफ देखी जा सकती है। मैं तो कहता हूँ कि खुद हिन्दू भी आपकी इस बातको सच नहीं मानेंगे। लाला लाजपतराय भी पण्डित मालवीयजीकी श्रेणीके ही हैं। जयरामदास और चोइथरामके बारेमें तो आप खुद अपने ही साथ बेइन्साफी कर रहे हैं।

मुसलमानोंके साथ उनका सलूक हर अखबार पढ़नेवालेके सामने दिनके उजालेकी तरह साफ है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप इन हिन्दू-नेताओंकी तारीफ और मुसलमान नेताओंकी बुराई करके हिन्दू-मुस्लिम एकताको एक डग भी आगे नहीं बढ़ा पायेंगे।

इसी तरह हिन्दू मित्र मुझसे कहते हैं कि मैं जबतक अली भाइयों और मौलाना बारी साहबपर एतबार रखे रहूँगा तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता गैरमुमकिन है। इन सभी मित्रोंको समझ लेना चाहिए कि यदि वर्तमान हिन्दू और मुस्लिम नेताओंका विश्वास न किया जाये तब तो दोनों समुदायोंमें एकताकी आशा ही नहीं की जा सकती; और की भी जा सकती है तो इन नेताओंकी मृत्युके बाद ही। यही भाई आगे कहते हैं :

> आपको आगाखानी साहित्य और तबलीगका जिक्र करनेकी क्या जरूरत थी? उनके कारण हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनको कोई भी नुकसान नहीं पहुँचता। वे तो निहायत शान्तिपूर्ण ढंगसे तबलीगका काम चला रहे हैं। आप मुसलमानों-के प्रचारके निकृष्ट तरीकोंको सामने रखते हैं। पर जरा शुद्धि-आन्दोलनको तो देखिए। आपने यह लिखकर एक बड़ा खतरा मोल ले लिया है कि उस पुस्तिकामें लिखी तदबीरोंके मुताबिक निजामकी रियासतमें व्यापक रूपसे काम किया जा रहा है। यह लिखकर आपने अनजाने ही एक मुस्लिम रियासतपर चोट की है।

इन पत्र-लेखक महोदयका रुख उन कार्यकर्त्ताओंके रुख जैसा है जिनकी संख्या बढ़ती जा रही है और जो यह चाहते हैं कि हम जैसा सोचते हैं वैसा न कहें और चुप्पी साधे रहें। मैं इस बातको तो समझ सकता हूँ कि हर गन्दी चीज लोगोंके सामने न रखी जाये, पर जो बातें साफ तौरपर हमारी नजरोंके सामने आती हैं और जो हर शख्सके दिमागमें चक्कर काट रही हों, उनकी ओरसे आँखें बन्द नहीं की जा सकतीं। अपने जोशकी धुनमें लेखक इस बातपर ध्यान देना भूल गया है कि मैंने किसी भी मुस्लिम रियासतपर चोट नहीं की। मैंने तो इतना ही कहा है कि "सुना है", तबलीगका आपत्तिजनक काम निजामकी रियासतमें व्यापक रूपसे चल रहा है।

पत्र-लेखक महोदय आगे कहते हैं :

> मेरी समझमें नहीं आता कि गो-वध और बाजा एक ही श्रेणीमें कैसे आ सकते हैं। मुसलमानोंके लिए 'कुरान' में गायकी कुरबानीका हुक्म है मगर हिन्दुओंको ऐसी कोई धर्माज्ञा नहीं है कि वे मसजिदोंके सामने बाजा बजायें। हिन्दुओंको सरकारी अस्पतालों और दफ्तरोंके सामने बाजा बन्द करना पड़ता है, मगर उनकी हठवादिता उन्हें मसजिदके सामने बाजा बन्द करनेकी इजाजत नहीं देती।

लेखक इस बातको जान लें कि 'कुरान' में मुसलमानोंके लिए गायकी कुरबानी करना जरूरी नहीं बताया गया है। यह जरूर कहा जाता है कि 'कुरान' में कुछ

अवसरोंपर अमुक प्राणियोंकी कुरबानीका हुक्म है और इनमें गाय भी शामिल है। किन्तु गायकी कुरबानी कोई अनिवार्य बात नहीं है। तथापि यह देखते हुए कि उसकी अनुमति दी गई है, यह चीज अनिवार्य तब हो जाती है, जब कोई तीसरा पक्ष मुसलमानोंसे जबरदस्ती उसे बन्द कराना चाहे। इसी तरह हिन्दुओंके लिए भी मसजिदोंके सामने बाजा बजाना जरूरी नहीं है, किन्तु जैसे ही मुसलमान डंडेके जोरपर मसजिदके सामने हिन्दुओंके बाजेको बन्द कराना अपना हक मानने लगता है वैसे ही हिन्दुओंके लिए भी बाजा बजाना कर्त्तव्य बन जाता है। इसलिए दोनों पक्षोंको चाहिए कि वे इन दोनों मसलोंको आपसमें मिलजुलकर तय कर लें।

धर्म-परिवर्तनपर भोपाल राज्यका परिपत्र

एक महीनेसे ऊपर हो गया जब कुछ मित्रोंने मेरे पास धर्म-परिवर्तनके सम्बन्धमें भोपाल राज्यके कानूनकी एक प्रति भेजी थी। उसपर मैंने उस समय जान-बूझकर कुछ नहीं कहा, क्योंकि उस समय मैं हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकाशित करनेकी स्थितिमें नहीं था और मैं इस मामलेकी कुछ और जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता था। इस बीच मैंने इस विषयपर डा० अन्सारीके विचार पढ़े हैं।

परिपत्रका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है:

७ जुलाई, १९२० के जरीदेकी प्रति, ५ जुलाई, १९२० का प्रस्ताव संख्या १७

> भोपालकी महाविभव शासिकाने शाहजहानी दण्डसंहिता, नियम १, १९१२ के खण्ड ३०० अर्थात् भोपालकी संगृहीत दण्ड संहिताके खण्ड ३९३ के अनुसार आदेश दिया है कि खण्ड ३९३ (क) के बाद निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये; यह अंश प्रकाशन तिथिसे ही लागू हो जायेगा और अमलमें लाया जायेगा:
>
> **इस्लाम स्वीकार करनेके बाद उसका त्याग**
>
> खण्ड ३९३ (क): जो भी व्यक्ति एक बार इस्लामको स्वीकार कर लेनेके बाद अपना यह धर्म छोड़ेगा, वह तीन सालकी सख्त या सादी कैदकी सजा या जुर्मानेका अथवा दोनोंका भागी होगा।
>
> यह सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंके सूचनार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

कहा नहीं जा सकता कि इसमें जो तिथियाँ दी गई हैं वे सही हैं अथवा नहीं। अगर उन्हें सही मान लिया जाये तो इसका मतलब है कि यह कानून अभी हालका बना हुआ है। लेकिन इसके हालके बने हुए या बहुत पुराने होनेसे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल यह है कि विशुद्ध इस्लामकी दृष्टिसे यह कानून अच्छा है या बुरा। हमारे सामने आदर्श यह है कि दोनों — और दोनों ही क्यों, सभी — धर्मोंके सम्बन्ध परस्पर शान्तिपूर्ण हों और अगर लोग चाहें तो एक धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको स्वीकार कर लें। दूसरे शब्दोंमें, हमारा आदर्श यह है कि धर्मके मामलेमें कोई जोर-जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। हम हिन्दुओं और मुसलमानोंमें से कुछ लोग

इस आदर्शको व्यवहार-रूप देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यदि इस्लामके अनुसार इस धर्मको स्वीकार कर लेनेके बाद इसे छोड़कर पुनः अपना पहला धर्म अंगीकार कर लेना दण्डनीय न हो तो उक्त कानूनको इस्लामकी भावनाके विरुद्ध मानना चाहिए और इसीलिए उसे जल्दीसे-जल्दी रद कर दिया जाना चाहिए। यदि वस्तुस्थिति वैसी ही हो जैसा मैंने बताया है तो मुझे आशा है कि मुसलमान नेता भोपालकी महाविभव बेगम साहिबासे यह कानून रद कर देनेका अनुरोध करेंगे।

नरम दल और खादी

एक नरमदलीय मित्र लिखते हैं:

> मैं खादीके सवालपर बराबर सोचता रहा हूँ और अपने सहयोगियोंके साथ उसपर विचार-विमर्श भी करता रहा हूँ। मैंने पाया है कि खादीके गुणोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। परन्तु जब खादीके प्रचारके आन्दोलनका सम्बन्ध आपकी इस उक्तिके साथ जोड़ा जाता है कि खादी तो सविनय अवज्ञाकी एक तैयारी है तभी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। अगर खादी-आन्दोलनको अलग रखा जाये और वह असहयोग आन्दोलनका हिस्सा न हो तो मैं समझता हूँ कि खादी-आन्दोलन ज्यादा विस्तृत और व्यापक हो सकेगा।

पत्र-लेखकने जिस पूर्वग्रहका उल्लेख किया है वह उतना ही पुराना है जितना कि असहयोग आन्दोलन। मैंने असंख्य अवसरोंपर यह दिखानेकी कोशिश की है कि सिवा सत्याग्रहीके किसी भी शख्सको खादीके सम्बन्धमें सविनय अवज्ञाका खयाल न करना चाहिए। सविनय अवज्ञाका खादीके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। खादीकी पुनः प्रतिष्ठाके पूर्व मैंने सविनय अवज्ञाकी कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी हैं। उदाहरणके लिए खेड़ाके सत्याग्रही खादीके बारेमें कुछ नहीं जानते थे। यहाँतक कि बोरसदके संघर्षमें भी वल्लभभाईके नेतृत्वमें चलनेवाले कार्यकर्त्ताओंने खादीका व्रत नहीं लिया था। कांग्रेसके स्वयंसेवकोंके अलावा किसीके लिए यह लाजिमी नहीं था कि वह सत्याग्रहियोंमें अपना नाम लिखानेके पहले खादी पहने। कारण साफ था। वह स्वराज्य स्थापित करनेकी लड़ाई नहीं थी। स्वराज्यकी स्थापनाके निमित्त सविनय अवज्ञाके लिए मैंने खादीको जो अनिवार्य बताया है, उसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि जबतक यहाँ घर-घरमें खादीका प्रचार न हो जाये तबतक मैं स्वराज्यको असम्भव मानता हूँ। दूसरा यह कि सर्वसाधारणको अनुशासनबद्ध करनेमें यह बहुत सहायक होगी और यह तो निर्विवाद है कि अनुशासनके बिना सार्वजनिक सविनय अवज्ञा असम्भव है। नरम दलवालोंको तथा दूसरे लोगोंको भी यह समझना चाहिए कि सविनय अवज्ञाको टालनेका सबसे अच्छा रास्ता यही है कि हर आदमी कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको अपना ले — विशेषकर उसके तीन अंगोंको। अगर हम सब लोग एक मन होकर हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच एकता स्थापित करनेके लिए काम करें और घर-घरमें हाथ-कती खादीका प्रचार कर सकें और यदि हिन्दू लोग एक होकर अस्पृश्यताके अभिशापको मिटा दें तो स्वराज्य सामने दिखाई देने लगेगा। कुछ ऐसे

अंग्रेज भी हैं, जो खादी पहनते हैं; किन्तु सविनय अवज्ञा या असहयोगके साथ हमदर्दी रखनेके खयालतक का वे विरोध ही करेंगे।

नारायणवरम् और अस्पृश्यता

नीचे जो ममस्पर्शी विवरण दे रहा हूँ, उससे अस्पृश्यताके अभिशापके विरुद्ध एक जबरदस्त आन्दोलन छेड़नेकी आवश्यकता प्रकट हो जाती है:

> तीनको छोड़कर बाकी सभी सार्वजनिक गलियोंमें पंचमोंको आने-जाने दिया जाता था। ये तीनों गलियाँ कल्याण वेंकटेश्वर मन्दिरके उत्तर, दक्षिण तथा पूर्वमें पड़ती हैं। पूर्व दिशामें जो गली है वह मन्दिरके सामने पड़ती है। तीनों गलियोंमें अधिकांशतः ब्राह्मण ही रहते हैं। मन्दिरकी जमीनपर अधिकांशतया पंचम लोग खेती करते थे। पंचम लोग पहले धानको लाकर मन्दिरसे कुछ दूरीपर ही जमा कर देते थे किन्तु मन्दिरके अधिकारियोंके लिए उसे वहाँसे उठाकर ले जाना कठिन होता था। इसलिए उन्होंने पंचमोंको उक्त गलियोंसे धान ले आने और उसे मन्दिरके मुख्य फाटकपर रख देनेकी छूट दे रखी थी। इसके बाद गाँवमें एक अनौपचारिक ढंगकी पंचायतकी स्थापना हुई। पंचायतके ब्राह्मण-अध्यक्षका सफाईके लिए पंचम मेहतरोंके बिना काम नहीं चल सकता था। उसने उन्हें गाँवमें रहने, गाँवमें ही अपना खाना पकाने और रातमें सोनेकी भी इजाजत दे दी। एक ब्राह्मण सज्जनने दिन-रातमें दुश्मनोंसे अपनी सुरक्षाके लिए पंचम नौकर रख लिये। उन्हें इन ब्राह्मणोंकी गलियोंमें खाने और रातमें सोनेकी इजाजत दे दी गई। यह नई बात पुराणपंथी हिन्दुओंकी दृष्टिमें बहुत आपत्तिजनक है। फिर भी किसीने आपत्ति नहीं की।
>
> फिर श्री सी० वी० रंगम् चेट्टीने ताल्लुका बोर्ड स्कूलके पास मुख्य गलीमें ९-३-१९२४ को पंचमोंके लिए एक बुनाई स्कूल खोला। कृपापूर्वक और साहसके साथ श्री रंगा स्वामी आयंगारने स्कूलके लिए अपने मकानका उपयोग करनेकी अनुमति दे दी, इसलिए स्कूल उन्हींके घरमें खोला गया। विधान सभाके सदस्य श्री सी० दोराईस्वामी आयंगारने स्कूलका उद्घाटन किया। दो ब्राह्मणोंने, जिनकी श्री रंगम् चेट्टीसे निजी शत्रुता है, विरोध शुरू किया। उन्होंने कुछ दलाल जुटाये और ग्रामवासियोंकी एक सभा बुलाई। इसमें उन्होंने माँग की कि श्री रंगम् चेट्टी पंचम बुनाई स्कूलको गाँवसे हटा लें, क्योंकि पंचमोंका गाँवमें रहना शास्त्रोंके विरुद्ध है। जब उनसे पूछा गया कि यदि बात ऐसी है तो फिर पहले तीन अवसरोंपर पंचमोंको क्यों नहीं रोका गया, तब उन्होंने जवाब दिया कि उस समय तक शास्त्रोंकी यह व्यवस्था उनकी नजरोंसे नहीं गुजरी थी। श्री रंगम् चेट्टीने वहाँसे स्कूल हटानेसे इनकार कर दिया। इसपर अधिकांश ब्राह्मणोंने उनका तथा हनुमान पुस्तकालय और वाचनालयका बहिष्कार शुरू कर दिया। उन्होंने अन्य जातियोंके मुखियोंसे भी बहिष्कार करनेका अनुरोध

किया। उनका अनुरोध किसीने नहीं माना। इसपर ब्राह्मणोंने उन गलियोंसे भगवानका रथ निकालना बन्द कर दिया।

एक ब्राह्मण सज्जन, जो वार्षिक ब्राह्मण-उत्सवके लिए बहुत बड़ी रकम इकट्ठी करते हैं, चाहते थे कि कमसे-कम इस उत्सवके दौरान स्कूल बन्द रहे। श्री चेट्टी इस शर्तपर स्कूल बन्द करनेको तैयार थे कि ब्राह्मण लोग बहिष्कार उठा लें। ब्राह्मणोंके प्रवक्ताके रूपमें सभामें मन्दिरके अमीनने कहा कि अब बहिष्कार नहीं किया जायेगा। इसपर श्री चेट्टीने १७ दिनोंके लिए स्कूल बन्द करा दिया।

पंचम लोग त्यौहारोंके दिन भी खरीद-फरोख्त करने, सफाई करने और यदि मालिकोंके घर कोई छोटा-मोटा काम हुआ तो वह काम करनेके लिए निर्बाध रूपसे गाँवमें आते-जाते हैं। उनके इन मालिकोंमें ब्राह्मण भी हुआ करते हैं। एक दिन सुबह बुनाई स्कूलका एक पंचम विद्यार्थी गाँवमें आया और उसने पुस्तकालयके बगीचेमें कुछ काम किया। लगता है, दोपहर बाद बुनाई स्कूलमें वह कुछ सुस्ताने लगा। स्कूलमें पीछे खुलनेवाला कोई दरवाजा नहीं था। इसपर मन्दिरका अमीन कुछ लोगोंको साथ लेकर उसके पास गया और उन लोगोंने उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया। फिर वे सब पुस्तकालय गये और वहाँ उन्होंने श्री रंगम् चेट्टीपर आरोप लगाया कि उन्होंने अब भी स्कूल खोल रखा है और उन्हें गालियाँ दीं। रंगम् चेट्टी उन लोगोंको लेकर बुनाई स्कूल आये और दिखा दिया कि स्कूल सचमुच बन्द है। इसके बाद कुछ बदमाशोंको पैसा दिया गया और वे नशेमें चूर होकर श्री रंगम् चेट्टीके पास पहुँचे। लेकिन श्री चेट्टी किसी तरह उनके चंगुलसे बच निकले। इसके बाद मन्दिरके अमीनने एक सार्वजनिक सभा की, उसमें तथ्योंको गलत रूपमें पेश किया, सभी मुखियोंको पियक्कड़ोंके जरिये डराया-धमकाया और उन सबको श्री रंगम् चेट्टीका बहिष्कार करनेपर मजबूर किया। पंचम भी बुलाये गये। उन्हें डरा-धमकाकर यह कह दिया गया कि वे अपने बच्चोंको बुनाई स्कूलमें न भेजें। सभा खत्म होनेपर श्री रंगम् चेट्टीके घरपर पत्थर फेंके गये। मुझे विश्वस्त सूत्रोंसे ज्ञात हुआ है कि उनकी हत्याका षड्यन्त्र किया जा रहा है। पुठूरके पुलिस इन्स्पेक्टर नारायणवरम् आकर सही स्थिति देख गये हैं। सुना है, वे गिरोहके कुछ मुखियोंके खिलाफ कार्रवाई करनेकी बात सोच रहे हैं। हत्यारोंसे अपनी जान बचानेके लिए श्री रंगम् चेट्टीके मित्रोंने उन्हें गाँव छोड़ देनेपर विवश किया और अब वे अपने भाईके साथ २३, नारायण मुदाली स्ट्रीट, जी० टी०, मद्रासमें रह रहे हैं। यदि कोई उनकी रक्षाके लिए सामने आ जाये तो वे आज भी नारायणवरम् जाकर स्वयं खर्च उठाकर यह सेवा-कार्य फिर शुरू करनेको तैयार हैं।

हम श्री सी० वी० रंगम् चेट्टीसे आशा करते हैं कि वे किसी प्रकारकी सुरक्षाकी प्रतीक्षा किये बिना अपने कर्त्तव्य-स्थलपर वापस चले जानेका साहस दिखायेंगे। किसी भी सत्कार्यमें हमारा एकमात्र संरक्षक ईश्वर है। यदि उनकी हत्याकी नौबत आ जाये तो उन्हें खुशी-खुशी उसका भी सामना करना चाहिए। उससे यह अभिशाप तुरन्त मिट जायेगा। शर्त इतनी है कि उनका अपना आचरण बेदाग हो।

करघा: एक पैतृक सम्पत्ति

असमसे हाथ-कता कुछ बहुत ही अच्छा सूत भेजते हुए श्री एन्ड्रचूजने लिखा है:

> यह सूत एक आश्रमके छोटे-छोटे बच्चोंकी ओरसे भेजा जा रहा है। मैं अभी-अभी वहाँ गया हुआ था। इसका संचालन श्री फूकन और उनके सहयोगी कार्यकर्त्ता कर रहे हैं। आश्रम उन्हींके खूबसूरत मकानके पास है। आश्रमकी देखरेख उनकी बहन करती है और बच्चे ही वहाँके कुशल दस्तकार हैं। काश! आप अपनी आँखोंसे देखते कि वे सब वहाँ कितने प्रसन्न हैं।
>
> असममें एक चीज बहुत ध्यान देने लायक है; और उसे आप जानते हैं। हर विवाहित लड़कीसे अपने हाथों कपड़ा बुन सकनेकी अपेक्षा रखी जाती है। इसी कारण आपने इस प्रान्तको 'भव्य असम' कहा। हर घरमें एक करघा है। ये हैंडलूम (करघे) अकसर 'हेयरलूम' (पैतृक सम्पत्ति) हुआ करते हैं — यहाँ मैंने अंग्रेजीका उसके मूल अर्थमें प्रयोग किया है; और हमें इससे उस समयके इंग्लैंडकी याद आ जाती है जब वहाँ भी कताई और बुनाई सुन्दर कलाओंके रूपमें प्रचलित थी। अब तो ये कलाएँ वहाँ हिब्रू लोगोंके बीच ही जीवित रह गई हैं। वे अब भी अपने घरेलू करघोंपर 'लेविस ट्वीड' के नामसे प्रसिद्ध, मजबूत और टिकाऊ कपड़ा तैयार करते हैं; यह पाश्चात्य संसारमें और कहीं नहीं होता। वहाँ लोग चरखा पाँवसे चलाते हैं, क्योंकि कताईमें उनको हाथोंसे ऊन पकड़नेकी जरूरत होती है। कताई करनेवाला तीन पैरोंके स्टूलपर बैठता है। पिछली बार जब मैं इंग्लैंड गया तो वहाँ मैंने अपने ही नगर बर्मिंघमके सैली ओकमें चरखोंका उपयोग होते देखा, अन्तर इतना ही है कि यहाँ कातनेवाली कन्याएँ न होकर गृहिणियाँ थीं।...। मेरा खयाल है कि अब वह दिन आ रहा है जब ये विस्मृत कलाएँ पाश्चात्य संसारमें फिरसे अपना पुराना स्थान प्राप्त कर लेंगी। जैसे हाथके प्रेससे अब भी ऐसी सुन्दर छपाई की जाती है जैसी मशीनके प्रेससे असम्भव है, वैसे ही जब कभी सुन्दर और टिकाऊ चीजोंकी जरूरत होगी, हस्त कलाओंका पुनरुत्थान होगा।

अफीम

असममें अफीमकी स्थितिके बारेमें श्री एन्ड्रचूज लिखते हैं:

> यह सुन्दर प्रान्त अफीमके अभिशापसे बुरी तरह ग्रस्त है। मुझे विश्वास है कि कांग्रेस इसके दुष्परिणामोंको पूरी जाँच-पड़ताल करेगी, ताकि अफीमसे

प्राप्त राजस्वके सम्बन्धमें भारत सरकारकी नीति जेनेवा-सम्मेलनके सामने रखी जा सके। यहाँ पिछली रात जब मैंने एक सभामें श्रोताओंके सामने कहा: भारत सरकारने घोषणा की है कि यहाँके लोगोंको अफीम खानेका "अधिकार" है तो लोग तिरस्कारके साथ हँस पड़े। काश! उस तिरस्कारपूर्ण हँसीको जेनेवाके अफीम-सम्मेलनके लोग सुन पाते। इतनेसे ही सम्मेलनके प्रतिनिधियोंको इस विषयमें भारतके लोकमतका सही अन्दाज हो जाता। अब मुझे इस बातका यकीन हो गया है कि यहाँ असममें अफीम-बन्दीकी दिशामें पर्याप्त काम होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११८. 'छोप' या कताई-प्रतियोगिता

एक पंजाबी मित्र कताई-प्रतियोगिताओंके बारेमें, जो कभी पंजाबमें सभी जगह होती थी और जिनका रिवाज, हम आशा करते हैं, मिटने नहीं दिया जायेगा, इस प्रकार लिखते हैं। लेखके साथ इन सज्जनने ऐसी एक प्रतियोगितामें भाग लेनेवाली बहनोंका, जो अपना-अपना चर्खा चला रही हैं एक चित्र भी भेजा है। यह चित्र प्रेषकके हाथका ही है।

> बीस या पच्चीस वर्ष पहले, पंजाबके गाँवों तथा शहरोंमें भी, वहाँकी स्त्रियों द्वारा कताई-प्रतियोगिताओंके आयोजित किये जानेका — जिन्हें छोप कहते थे — रिवाज बहुत आम था। इस आम प्रतियोगितामें सभी उम्रकी स्त्रियाँ भाग लेती थीं। इन प्रतियोगिताओंमें छोटी-छोटी लड़कियाँ भी अपने छोटे-छोटे चरखे लिए हुए सहायक सेनाके रूपमें शामिल हुआ करती थीं। ये बहनें दो बजे रातसे ही उठ जाती थीं। सबके पास बराबर-बराबर तोलकी धुनी हुई रुई होती थी और वे स्त्रियाँ इस रुईकी पूनियाँ बनाकर नियत समयपर बड़ी लगन और तत्परताके साथ सूत कातना शुरू कर देती थीं। यह प्रतियोगिता बहुधा सात या आठ बजे समाप्त कर दी जाती थी, ताकि स्त्रियाँ अपने-अपने निजी और घरेलू कामकाज निबटा सकें। वे चरखा चलाती हुई राम-बनवास, गोपीचन्दके वैराग्य अथवा पूरन भगतके साधु जीवनसे सम्बन्धित पवित्र गीत आह्लादपूर्ण स्वरमें गाती जाती थीं और उनके चरखोंकी मधुर गूँज गुन-गुनाहट वाद्यका काम देती थी। इन छोपोंके स्वस्थ और शुद्ध वातावरणका अनुमान ही किया जा सकता है, वर्णन नहीं। दुःखकी बात है कि ऐसे आनन्दित कर देनेवाले दृश्य अब बहुत दुर्लभ हो गये हैं और उनको देखनेके अवसर कभी-कभी ही आते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११९. मु० रा० जयकरको लिखे पत्रका अंश

[१२ जून, १९२४]

. . .आपने रामदासके बारेमें मुझे पत्र लिखनेकी कृपा की, धन्यवाद। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि रामदासकी आवाज सुरीली है और वह इस आयुमें भी बहुत प्रगति कर सकता है; किन्तु वह बेचारा अभीतक अपना लक्ष्य स्थिर नहीं कर पाया है। यदि वह बम्बईमें ही बना रहता तो संगीतकी तालीम भी जारी रह सकती थी। वह विशेष रूपसे संगीतके लिए बम्बई नहीं जायेगा। कृपया मेरा तथा उसका धन्यवाद स्वीकार करें।

[अंग्रेजीसे]

स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

१२०. पत्र : के० माधवन नायरको

१२ जून, १९२४

प्रिय माधवन नायर,

आपने लिखा[1]; बड़ा अच्छा किया। उत्तरके लिए पत्र डा० महमूदके पास भेज दिया गया है। समितिने मेरे विचारोंको पसन्द किया, यह जानकर खुशी हुई।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५६७३) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

१२१. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ सुदी ११ [१३ जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा आजका पत्र सुन्दर है। अक्षर साफ और ठीक लिखे हुए हैं। इसपर मैं तुम्हें दसमें चार नम्बर अवश्य दे सकता हूँ। प्रभुदास आबूसे आ गया है। अब वहाँ कोई नहीं रहा। राधा पैदल चलकर यहाँ आई है। आशा है कि वह जहाँ ठहरी है वहाँ धीरे-धीरे स्वस्थ हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४५) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१२२. पत्र : वा० गो० देसाईको

ज्येष्ठ सुदी १२ [१४ जून, १९२४]

भाईश्री वालजी,

आपके दोनों पत्र मिल गये थे। आप दुवारा प्रूफ देखना चाहते थे यह मुझे मालूम नहीं पड़ा। आपका पहला लेख तो प्रकाशित हो चुका है। इसमें मेड़ताका[2] खेड़ता हो गया है। आपकी माताजी यहाँ आ गई हैं। आपके भाईको नौकरी मिलनेमें कुछ बाधा आ गई जान पड़ती है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१०)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वालजी गो० देसाई

१. डाकखानेकी मुहरसे ।

२. २५-५-१९२४ के नवजीवनमें चरखेके सम्बन्धमें प्रकाशित एक लेखमें किसी कविताका उद्धरण दिया गया था। उसमें मेड़ताके स्थानपर, जो राजस्थानका एक नगर है, खेड़ता छप गया था । देखिए "मेड़ताका खेड़ता", १५-६-१९२४ ।

१२३. सूरत जिला

दो वर्ष पहले सूरत जिला गुजरातमें सबसे आगे था। पैसा इकट्ठा करनेमें आगे, चरखा चलानेमें आगे, राष्ट्रीय स्कूल स्थापित करनेमें आगे। इसको देखते हुए उससे जितनी प्रगतिकी आशा की जा सकती थी उतनी प्रगति फिलहाल दिखाई नहीं देती। चन्दा उगाहनेका काम मन्द है; चरखा भी ढीला चलता है; राष्ट्रीय स्कूलोंकी नींव मजबूत नहीं हुई है।

इसका कारण स्पष्ट है। सारे देशमें मतभेदोंकी जो हवा फैली हुई है उसका असर सूरतपर भी हुआ है। बीती बातोंपर विचार करनेसे लाभ नहीं। आज क्या किया जाये, यही प्रश्न सामने है।

पहला कार्य तो सूरत नगरपालिकाके भूतपूर्व २२ पार्षदोंपर ४०,००० रुपयेकी जो डिगरी हुई है, उसके विरुद्ध कार्रवाई करना है। यह डिगरी २२ पार्षदोंपर नहीं वरन् पूरी भूतपूर्व नगरपालिकाके विरुद्ध हुई है। इसे नगरपालिकाके विरुद्ध भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि जो नागरिक इसका समर्थन करते थे और जिन मतदाताओंने सदस्योंको चुना था यह उनपर हुई है। इसीलिए इस पैसेको अदा करनेकी जवाबदेही सूरतके असहयोगी नागरिकोंपर है।

असहयोगियोंका उत्तरदायित्व पैसा देकर ही खत्म नहीं हो जाता। २२ प्रतिनिधियोंको अपनी ओरसे पैसा देना पड़े ऐसा तो सूरतके असहयोगी कभी न होने देंगे। लेकिन उनका उत्तरदायित्व तो यह है कि वे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दें जिससे सरकार इस डिगरीका इजराय ही न करा सके। इसका एकमात्र उपाय तो स्वयं इस डिगरीके विरुद्ध ही स्थानीय सत्याग्रह करना है। इसका अर्थ है नागरिक सरकारको विनयपूर्वक लिखें कि यदि वह इस डिगरीकी रकम वसूल करेगी तो नागरिक अपना विरोध प्रकट करनेके लिए दूसरे कर नहीं देंगे। किसीने भी चालीस हजार रुपयेका उपयोग निजी रूपसे नहीं किया है। इसलिए सरकार चाहे तो डिगरीका पैसा वसूल करे; परन्तु इसके साथ-साथ वह कर उगाहनेके भारको भी वहन करे। यदि सब करोंकी अदायगी बन्द करना मुश्किल हो तो जो कर बन्द करने योग्य जान पड़ें उनको लोग बन्द कर दें।

एक समय ऐसा था जब हम ऐसे कदम उठाना आसान काम समझते थे। अब लोगोंका उत्साह मन्द पड़ गया है, इसलिए ऐसे कदम उठाना मुश्किल जान पड़ता है। लेकिन गुजरातमें बोरसदका[1] उदाहरण ताजा है इसलिए यह कदम मुश्किल नहीं लगना चाहिए।

१. गुजरातमें खेड़ा जिलेके बोरसद ताल्लुकेमें सरकार द्वारा लगाये गये दण्ड-करके विरोधमें दिसम्बर १९२३ में सत्याग्रह किया गया था। फलस्वरूप सरकारको जनवरी, १९२४ में यह कर वापस ले लेना पड़ा था।

अब दो शब्द स्वराज्यवादियोंसे। जो स्वराज्यवादी विधान परिषदोंमें गये हैं वे सरकारको लिख सकते हैं कि यदि सरकारका विचार इस तरह डिगरीका पैसा वसूल करनेका हो तो वे लोग विधान परिषदोंमें नहीं रह सकते। कुछ लोग कह सकते हैं कि सरकारको तो यही चाहिए। ऐसा सम्भव है; लेकिन हमें तो अपने कर्त्तव्यका ही विचार करना है। यदि ऐसी छोटी-छोटी बातोंके लिए विधान परिषदोंके सदस्य निरुपाय हों तो वे विधान परिषदोंमें रहकर ही क्या करेंगे?

मेरा तो यह विश्वास है कि यदि पक्के असहयोगी और स्वराज्यवादी परस्पर फिर मिल जायें तो सूरत जैसा पहले था फिर वैसा ही हो जाये और अग्रस्थान ग्रहण कर ले। हाँ, इतना जरूर है कि ऐसा करनेके लिए आत्मविश्वासकी जरूरत होगी। यदि विधान परिषदोंमें पहुँचे हुए हमारे लोग उन सभाओंसे तंग आकर भी उनसे बाहर आ जानेकी बुद्धिमत्ता नहीं दिखाते तो उनका पहला तेज फिर नहीं लौटेगा। यदि असहयोगके समस्त अंगोंमें अन्धविश्वास नहीं, बल्कि ज्ञानमय विश्वास हो तभी हमारा कार्य चमकेगा। शान्तिमें, सत्यमें और पंच बहिष्कारोंमें हमारी श्रद्धा होनी चाहिए। यदि वह न हुई और लोकमतके या मेरे मतके अधीन होकर कार्य किया गया तो विफलता ही हाथ आयेगी।

असहयोग और अहिंसा (मर्यादित) प्रयोगकी अवस्थासे निकल चुके हैं। अब जो लोग उन्हें समझ गये हैं उनके लिए वे सिद्ध-प्रयोग अर्थात् सिद्धान्त बन चुके हैं। उनके लिए तो स्वराज्य आज मिले अथवा कल, उसे प्राप्त करनेका साधन केवल शान्तिमय असहयोग ही है।

इतना सूरत शहरपर आई हुई आपत्तिके सम्बन्धमें।

और बारडोलीका क्या कहना है? बारडोली तो ढाई वर्ष पहले तैयार मानी जाती थी।[1] आज क्या वह उससे अधिक तैयार है? वहाँ कितने कार्यकर्त्ता काम कर रहे हैं? मैंने बारडोलीके बारेमें बहुत-कुछ सुना है; लेकिन मैं इस समय अधिक नहीं कहूँगा।

वहाँसे मुझे आजतक जो खबरें मिली हैं वे आशाजनक नहीं हैं। वहाँ अभी अस्पृश्यता कायम है। कालीपरज[2] अभीतक उजली नहीं बनी। दुबले[3] सबल नहीं हुए। राष्ट्रीय स्कूल अब गये, तब गये। खादीका काम भी जैसे-तैसे चल रहा है। मेरी तीव्र इच्छा होती है कि मैं बारडोली जाकर लोगोंसे इन सब शिकायतोंका उत्तर माँगूँ। बारडोलीके प्रतिनिधियोंने ईश्वरको साक्षी मानकर मुझे जो वचन दिया था वह आज भी मेरे हृदयमें अंकित है। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे अस्पृश्यताका निवारण करेंगे, कालीपरज जातिको उजलीपरज बनायेंगे, दुबलोंके दुःखोंको हरेंगे और बारडोलीको खादीमय बनायेंगे। आज तो मैं यह आशा करता हूँ कि बारडोलीके लोग मुझसे कहें, "हम तो आपके जेल जानेके छः महीने बाद ही तैयार हो गये

१. २९ जनवरी, १९२२ को हुई बारडोली ताल्लुका परिषद्में गांधीजीका सविनय अवज्ञा आन्दोलनको आरम्भ करनेका सुझाव स्वीकार किया गया था।

२ और ३. दक्षिण गुजरातकी पिछड़ी जाति।

थे। हम तो आप जब कहें तब सविनय-अवज्ञा करनेके लिए तैयार हैं।" मैं जानता हूँ कि बारडोली इस सीमातक तैयार नहीं है। प्रश्न तो यह है क्या वह तैयार हो भी सकेगी? और अगर हो सकेगी तो कबतक? इस बारेमें कार्यकर्त्ता क्या कहते हैं?

अभी यह लिख ही रहा था कि प्रागजीकी[1] गिरफ्तारीका तार मिला। इनकी गिरफ्तारी अर्थपूर्ण है। वे तो मुक्त हो गये; लेकिन क्या इससे वहाँके लोग भी अपने कर्त्तव्यसे मुक्त हो गये? अब सूरत जिलेका क्या कर्त्तव्य है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२४. मेड़ताका खेड़ता

"रेंटियानो स्वाध्याय" नामक कविता प्रेषक "शिखरनिवासी" ने लिखा है कि उस लेखमें[2] एक "भयंकर भूल" रह गई है। एक भूल तो केवल हिज्जेकी है। दूसरी अनजानेमें हो गई है। मैंने जो कुछ टिप्पणीके रूपमें दिये जानेके लिए लिखा था वह प्रस्तावनाके रूपमें दे दिया गया और "शिखरनिवासी" ने जो सुन्दर प्रस्तावना भेजी थी वह रह गई। किन्तु "शिखरनिवासी" ने जिस भूलकी ओर मेरा ध्यान खींचा है वह इनके अलावा है। 'मेड़ता' की जगह 'खेड़ता' छप गया है। मेड़ता राजस्थानमें एक नगर है। मैं "शिखरनिवासी" की इस बातसे सहमत हूँ कि यह एक "भयंकर भूल" है। अन्य भूलोंकी सूची भी बनाई जा रही है। उन्हें "शिखर-निवासी" किसी-न-किसी दिन पाठकोंके सामने रखेंगे ही। मैं कई बार "लीन" शब्दके स्थानपर तल्लीन शब्दका प्रयोग करता हूँ, ऐसा "शिखरनिवासी" भाईका कहना है। "तल्लीन" का अर्थ "उसमें लीन" होनेके कारण मुझे "गानेमें तल्लीन" न कहकर "गानेमें लीन" कहना चाहिए था। पाठक इस भूलको सुधार लें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१. प्रागजी खण्डुभाई देसाई।

२. देखिए "नित्य कताई", २५-५-१९२४।

१२५. देशी रियासतोंमें सत्याग्रह

एक भाई लिखते हैं:[1]

यदि मेरे लेखोंसे ऐसी ध्वनि निकलती प्रतीत हुई हो तो मुझे उसके लिए खेद है। सत्याग्रहके लिए मर्यादा केवल सत्य और अहिंसाकी ही होती है। जहाँ ये दोनों हों वहाँ सत्याग्रह किया ही जा सकता है। इसी दृष्टिसे विचार करते हुए मेरी मान्यता है कि मेरे लेखोंमें कुछ विरोध नहीं होता।

हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य प्राप्तिकी खातिर देशी रियासतोंमें सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। वहाँ तो वह स्थानीय समस्याओंको लेकर ही किया जा सकता है। लेकिन यदि [आग्रहमें] असत्यका तनिक भी अंश हो तो देशी रियासतों अथवा अन्य किसी भी जगह सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। उद्देश्य सत्यपूर्ण हो तथापि यदि लोग शान्ति न बनाये रख सकें, क्रोध करें, सत्य-भाषण करनेमें संकोच करें और कष्ट-सहनके लिए तैयार न हों तो वे सत्याग्रह आरम्भ नहीं कर सकते।

सामान्य दृष्टिसे देखते हुए मुझे फिलहाल सारे देशका वातावरण सत्याग्रहके प्रतिकूल दिखाई देता है। यहाँ द्वेष, असत्य, और अशान्ति इत्यादिकी बहुत वृद्धि हुई है। सत्याग्रहका अर्थ विरोधीको परेशान करना ही हो गया है। लोग नाम तो सत्याग्रहका लेते हैं परन्तु दुराग्रह करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे अवसरोंपर जहाँ सत्याग्रहका कारण उपस्थित हो वहाँ भी सत्याग्रहीको सावधानीसे काम लेना चाहिए। लेकिन यदि सावधान रहते हुए भी यह जान पड़े कि ऐसा प्रसंग उपस्थित हो गया है कि जब सत्याग्रह करना अनिवार्य है तो वहाँ सत्याग्रही कदापि किसीके रोके नहीं रुकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-प्रेषकने लिखा था नवजीवनमें अभी हाल में ही प्रकाशित हुए आपके कुछ लेखोंसे सामान्य पाठक यह समझता है कि आप देशी रियासतोंमें सत्याग्रह करनेके विरुद्ध हैं।

१२६. आज बनाम कल

जिन भाईने देशी रियासतोंमें सत्याग्रह करनेके सम्बन्धमें प्रश्न किया है वे ही एक पत्रमें[1] लिखते हैं।

इस लेखपर विचार करते समय पाठक भावनगरकी परिषद्को भूल जायें। मैंने तो इस परिषद्का उल्लेख यहाँ उदाहरणके रूपमें ही किया है। मैं परिषद्के बारेमें अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। उसे भावनगरमें न करनेके जो कारण मैंने बताये हैं, वस्तुतः उसके वे ही कारण हैं; दूसरे नहीं। अगर हम इतना याद नहीं रखेंगे तो हम सम्भवतः एक मामलेको सुलझानेका प्रयत्न करते हुए दूसरेको उलझा लेंगे।

मुझे तो नहीं लगता कि सत्याग्रहके सम्बन्धमें मेरे पहलेके और हालके लेखोंमें कोई विरोध अथवा अन्तर हो सकता है। यह सच है कि जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती जाती है वैसे-वैसे हमें नई प्रतीत होनेवाली शर्तें दीखने लगती हैं, परन्तु विचारवान मनुष्य तुरन्त समझ सकता है कि ये शर्तें मूल सिद्धान्तमें ही समाविष्ट हैं। उदाहरणार्थ अहमदाबादकी कांग्रेसमें[2] तय किया गया था कि शान्ति मन, वचन और कर्मसे रखी जानी चाहिए। यह कोई नई शर्त नहीं थी। जब यह अनुभव हुआ कि लोग मनमें तो हिंसा पोषते रहते हैं केवल कर्म द्वारा करते नहीं, तब यह स्पष्ट करनेकी जरूरत हुई कि कोई भी मनुष्य तभी अहिंसानिष्ठ माना जायेगा जब वह मन, वचन और कर्मसे अहिंसक होगा अर्थात् यह कहा गया कि दिखावटी शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं है। यह तो कोई नई बात नहीं मानी जा सकती। सदाचारकी शर्त और अन्य शर्तें सत्याग्रहके संचालकोंके लिए हैं और वे पहले भी अवश्य ही थीं। हम सामान्य कार्योंमें भी सदाचारकी आवश्यकता महसूस करते हैं। तब फिर अगर सत्याग्रहमें वह आवश्यक जान पड़े तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। मैंने विशाल जनसमुदायोंसे ऐसी कड़ी शर्तोंके पालनकी आशा कभी नहीं की है। इस आशाके साथ तो बोरसदमें भी सत्याग्रह[3] नहीं किया जा सकता था। उसमें आम लोगोंके पालनके लिए केवल दो ही शर्तें थीं। उन्हें लड़ाईमें पशुबलका उपयोग नहीं करना होगा और जो नेता कहें, उन्हें वही करना होगा।

मैंने भावनगर और वाइकोमके सत्याग्रहियोंके सम्बन्धमें यह मान रखा है कि वे कांग्रेस कमेटियोंके सदस्य हैं। यदि कांग्रेसके कार्यकर्त्ता कांग्रेसके प्रस्तावोंको जानते हुए भी उसकी सामान्य और स्थायी शर्तोंका पालन तक नहीं करते तो वे सत्याग्रह करनेके योग्य कैसे माने जायेंगे? यदि वे एक कार्यके सम्बन्धमें ली गई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करते तो दूसरी प्रतिज्ञाका पालन किस तरह करेंगे? स्वराज्यका सत्याग्रह तथा खादीके साथ सीधा सम्बन्ध है। स्वराज्यवादीके लिए कोई दूसरा सत्याग्रह

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

२. दिसम्बर, १९२१ में।

३. यह १९२३-२४ में वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें किया गया था।

छेड़नेपर भी अपनेको स्वराज्यवादी सिद्ध करनेकी आवश्यकता बनी रहती है। बोरसदके लाखों लोगोंके लिए सत्याग्रह आरम्भ करनेसे पहले खादी पहननेकी अथवा दारू छोड़नेकी जरूरत न थी; लेकिन कार्यकर्त्ताओंके लिए तो थी ही। अब यदि बोरसदके धाराला[1] भाई और बहनें स्वराज्यके लिए सत्याग्रह करना चाहें तो उन्हें खादी अवश्य पहननी चाहिए, दारू पीना छोड़ना चाहिए और अस्पृश्यताके पापसे मुक्त होना चाहिए। मुझे तो यह बात स्वयंसिद्ध जान पड़ती है। यदि हम खादीको सर्वमान्य करवाये बिना सत्ता प्राप्त कर लें तो खादी-प्रचार इत्यादि काम लोगोंके साथ जबरदस्ती किये बिना सम्भव न होंगे। यदि ऐसा हुआ तो वह सच्चा स्वराज्य तो नहीं ही होगा; और फिर यदि बहुत-से लोग खादीके भक्त नहीं बनते तो हम खादीको सर्वमान्य बनानेका कानून भी नहीं बना सकते। इसलिए इतने उदाहरणोंसे यह देखा जा सकता है कि हम जिन शर्तोंको नई समझते हैं वे नई नहीं, पुरानी हैं। अब तो यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि सामुदायिक कानून-भंगकी एक भी शर्त इतनी कड़ी नहीं है जिसको पूरा न किया जा सके। लेकिन सत्याग्रहके संचालकोंके लिए तो कड़ी शर्तें आवश्यक हैं और हमेशा आवश्यक थीं। संगीतशास्त्री बननेके लिए वर्षोंकी तालीमकी जरूरत होती है। उसे सूक्ष्मसे-सूक्ष्म स्वरपर अधिकार होना चाहिए और भद्दे और बारीक स्वरोंकी परीक्षा करनेकी क्षमता होनी चाहिए, लेकिन समाजसे तो केवल इतनी ही अपेक्षा की जाती है कि वह संगीतशास्त्रीके स्वरोंको समझ-भर ले। सत्याग्रहके नेताको संगीतशास्त्री-जैसा होना चाहिए।

मैं यहाँ एक बात स्पष्ट किये देता हूँ। अखबारोंमें मुझपर ऐसा आरोप लगाया जाता है कि मैं सत्याग्रहमें हर बार कोई-न-कोई बारीकी निकालता रहता हूँ। इससे तो यही सिद्ध होता है कि प्रत्येक सत्याग्रहमें गांधीको उपस्थित रहना चाहिए।

यह कोरा वहम है। बोरसद, नागपुर और चिरला-पेरलामें[2] मैं नहीं था। हम कह सकते हैं कि मुझसे तो सलाह लेनेके लिए भी कोई नहीं आया था तथापि ये सत्याग्रह कैसे चल सके? लेकिन यदि मुझसे सलाह लिये बिना सत्याग्रह करनेवाला अनुभवी और संयमी न हो तो वह अवश्य घबरा जायेगा। लेकिन अब हम इस हदतक पहुँच गये हैं कि जिसकी इच्छा हो वह अपनी जवाबदेहीपर सत्याग्रह कर सकता है। यदि कोई मुझसे सलाह माँगे तो मैं उसे अपनी मतिके अनुसार सलाह अवश्य दूँगा। लेकिन मुझसे सलाह लिए बिना सत्याग्रह शुरू ही नहीं किया जा सकता, ऐसी कोई बात नहीं है। ऐसा हो तो सत्याग्रह शस्त्र निरर्थक ही माना जायेगा। मैं कहाँ-कहाँ जा सकता हूँ और मैं कबतक जीवित रहूँगा? यदि सत्याग्रहका शस्त्र नित्य है तो उसे चलानेवाले अनेक स्त्री-पुरुष होने चाहिए और हैं भी।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १५-६-१९२४

१. गुजरातकी एक योद्धा जाति।

२. यहाँ इन तीनों स्थानोंपर क्रमशः १९२३-२४ १९२३ तथा १९२१ में किये गये सत्याग्रह आन्दोलनोंकी ओर संकेत है।

१२७. गुजराती आर्यसमाजियोंके प्रति

मुझे हिन्दुस्तानके सभी हिस्सोंसे आर्यसमाजोंके तार और पत्र मिले हैं और मैं उनका जवाब 'यं० इं०'[1] में दे चुका हूँ। गुजरातके आर्यसमाजी भी क्रोधित हुए हैं। मैं यह आशा जरूर रखता था कि कमसे-कम वे तो मेरे अर्थका अनर्थ नहीं करेंगे; क्योंकि वे मुझे शायद ज्यादा समझते हैं। गुजराती [आर्यसमाजियों] के पाँच पत्र तो मैं पढ़ चुका हूँ — अभी और भी होंगे। उन्हें भी बहुत दुःख हुआ है। वे मुझे माफ करें। जो बात मुझे सच मालूम होती है उसे मैं सरल भावसे कहता हूँ। इसमें दुःख माननेकी क्या जरूरत है, यह बात मेरी समझमें नहीं आ रही है। यदि हमें किसीकी अप्रिय बातसे निरन्तर दुःख होता रहे तो हममें सहिष्णुता कब और किस तरह आयेगी?

इन पाँचों पत्रोंमें मुझे दलीलोंके द्वारा बात समझानेकी कोशिश बहुत कम की गई है। एक महाशय तो इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्होंने मुझे आत्महत्या करनेकी सलाह दी है। वे लिखते हैं:

> अब अगर आपके द्वारा लाभ पहुँचता हो तो भी देश उसे नहीं लेना चाहता; इसलिए यह पत्र लिखकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अब आप रामनाम भजें और स्वर्ग प्राप्त करनेकी कोशिश करें।

दूसरे लिखते हैं कि मैंने हमेशा मुसलमानोंको ही बढ़ावा दिया है। एक सज्जनने हिन्दुओंके दुःखोंकी कहानी अखबारोंसे निकाल-निकालकर भेजी है।

इन सब बातोंका बहुत-कुछ जवाब मेरे 'यं० इं०' में लिखे लेखमें आ जाता है। यहाँ इतनी बात और कहना चाहता हूँ कि यह सारा क्रोध असहिष्णुताका ही द्योतक है। अभी हममें एक दूसरेकी टीकाको सहन करनेकी शक्ति नहीं आई है। सार्वजनिक जीवनमें ऐसी शक्तिका आना बहुत जरूरी है। हिन्दुओंपर जो मुसीबतें गुजर रही हों उनकी जाँच करनेके लिए मैं तैयार हूँ; मैं अखबारोंमें छपनेवाली तमाम बातोंको माननेके लिए तैयार नहीं। मेरा सभी पाठकोंसे निवेदन है कि वे अखबारोंमें छपी बातोंका बहुत-सा हिस्सा झूठ ही समझें। यदि मेरे नाम पत्र भेजनेवाले भाई मुसलमानोंके अखबारोंको पढ़ेंगे तो वे देखेंगे कि उनमें हिन्दुओंपर कितने ही आक्षेप किये जाते हैं। हिन्दू लोग उनका क्या जवाब दे सकते हैं? किन्तु हिन्दू अखबारोंकी तरह उनके अखबारोंमें भी बहुत-सी बातें गढ़ी हुई रहती हैं। यदि हिन्दू किसी संगठनके द्वारा अपने डरको दूर कर सकते हों तो मैं उस संगठनमें शामिल हो सकता हूँ। किन्तु मैं 'संगठन' का अर्थ सिर्फ 'अखाड़ा' ही समझता हूँ। मैं उसमें नहीं पड़ता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि इससे तात्कालिक बचाव सम्भव नहीं है। उसके लिए तो स्वभावमें निर्भयता लानी चाहिए। यदि वह अखाड़ेके द्वारा आ सकती

१. देखिए "आर्यसमाजी भाई", १२-६-१९२४

हो तो हिन्दू खुशीसे अखाड़े वनायें। मैंने यह तो कभी नहीं लिखा कि अखाड़े वनाये ही न जायें। मैंने गुजरातके पुराणी वन्धुओंके अखाड़ोंका कभी विरोध नहीं किया, वल्कि उनके लिए मैंने अपनी पसंदगी व्यक्त की है। मेरे कहनेका मतलव सिर्फ इतना ही है कि हिन्दुओंके लिए मुसलमानोंके हमलेसे अपना वचाव करनेका उपाय संगठन नहीं है। ऐसे संगठनोंसे झगड़ा बढ़ता ही है, घटता नहीं।

यदि हम अपने आपसे इस तरहके सवाल पूछें तो इस प्रश्नका निपटारा हो सकता है: क्या हम हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य चाहते हैं? क्या उसकी जरूरत है? अगर हम उसे चाहते हैं और वह आवश्यक है तो हिन्दुओंको प्रतिकारकी तैयारी छोड़नी ही पड़ेगी; नहीं तो फिर शरीरवलके द्वारा सरकारका और उसी प्रकार मुसलमानोंका भी मुकावला करके खूनकी नदियाँ वहाकर शान्ति प्राप्तिके लिए खपना पड़ेगा। यह भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्वन्धमें तो असम्भव है। और जहाँतक सरकारका सम्वन्ध है, अंग्रेजोंके साथ दुश्मनी ठानकर उन्हें यहाँसे बाहर निकाल देनेका हेतु भी है, और कदाचित् वह सम्भव भी हो जाय; क्योंकि अंग्रेज लोग इस देशको अपना देश नहीं मानते। यदि वे यहाँसे ऊब उठें तो अपने देशको चले जा सकते हैं। परन्तु हिन्दुओं की तरह मुसलमानोंका देश तो यही है। मैं उन्हें हिन्दुस्तानसे भगा देना तो विलकुल असम्भव मानता हूँ। अतएव, एकमात्र उपाय यह है कि हम उनके साथ शान्तिपूर्वक रहें अन्यथा अपने जीवनकी वागडोर अंग्रेजी सरकारके हाथ सौंप दें।

अव हम इस वातका विचार करें कि हमें करना क्या है; मुसलमान लोग हमारी स्त्रियोंका जो अपहरण करते हैं, हमें उससे वचना है। इस तरहका वचाव कोई भी हिन्दू खुद अपनी जानको हथेलीपर रखकर ही कर सकता है। सभी मुसलमान तो स्त्रियोंका अपहरण करते नहीं हैं? फर्ज करें कि कुछ लोग धर्मके नामपर ऐसा करते हैं। परन्तु हिन्दू-स्त्रियोंका अपहरण क्या कुछ हिन्दू स्वयं नहीं करते? फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू अपहरणकर्त्ता अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए करता है। किन्तु यदि उनके समक्ष रक्षा करनेकी शक्ति हममें न हो तो वह शक्ति हममें कौन भर देगा? ऐसी व्याधियोंका स्थायी और तुरन्त फलदायी इलाज मैं बता चुका हूँ। वह है सत्याग्रह अर्थात् विना प्रहार किये वचाव करते हुए खुद मर मिटना। ऐसा सत्याग्रह तो स्त्री और वालक भी कर सकते हैं। इसका अभ्यास तमाम हिन्दू क्यों न करें? प्रहार करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए शरीरवल वढ़ानेकी जरूरत है और मरनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए आत्मवल वढ़ानेकी। यदि समझमें बैठ जाये तो आत्मवलका विकास अपेक्षाकृत ज्यादा आसान है। शरीरसे अपंग मनुष्य भला शरीरवल कैसे वढ़ा सकता है? किन्तु आत्मा तो किसीकी भी अपंग नहीं होती। हम स्थिर चित्तसे विचार करें तो इतना सीख ही सकते हैं कि यदि कोई हमारे स्वजनोंपर हमला करे तो हम उनकी हिफाजत करते हुए मर मिटें। परन्तु ऐसी तैयारी करनेके लिए हमें शान्त वने रहनेकी आदत डालनी चाहिए। हमें अपना गुस्सा रोककर उससे नवीन शक्ति पैदा करनी चाहिए। यदि हम ऐसी शक्ति पैदा करना चाहते हों तो हमें अखवारोंके लेखोंको पढ़कर आग-ववूला नहीं हो जाना

है। जिस जगह रक्षा करने जानेको हमारा मन कहे, हमें उसी जगह पहुँच जाना चाहिए और वहाँ मर मिटना चाहिए।

जिस प्रकार योद्धाओंकी सेना बन सकती है उसी प्रकार सत्याग्रहियोंका संघ बन सकता है। हजारों धारालाओंके लिए अकेले रविशंकर पर्याप्त हो रहे हैं। रविशंकर तो अभी जीवित हैं। सैकड़ों रविशंकर पैदा होकर निर्बल हिन्दुओंको हमलोंसे बचा सकते हैं और ऐसा करते हुए निर्बलको बलवान् भी बना सकते हैं।

यह तो हुई हमलोंकी बात। गायकी रक्षाके लिए तो हिन्दुओंको मुसलमानोंसे जबरदस्ती हरगिज नहीं करनी चाहिए; मुसलमानोंके दिलोंको जीतकर ही गायोंकी रक्षा की जानी चाहिए।

जहाँतक हो सके हिन्दू मस्जिदोंके सामने बाजे न बजायें; मुसलमानोंके साथ सलाह-मशविरा करें और अगर मुसलमान मानें ही नहीं और बेजा दबाव डालें तो फिर हिन्दू बिलकुल न दबें, बराबर बाजे बजाते रहें और ऐसा करते हुए मर जायें।

इसके अलावा दूसरी बातें भी हैं; परन्तु वे छोटी-छोटी हैं जैसे धारासभामें कितने मुसलमान जायें। मैं तो जितने जाना चाहें उतने जाने देना चाहता हूँ। मेरी रायमें अभी यह सवाल ही पैदा नहीं होता। जो लोग असहयोगका पालन कर रहे हैं, उनके लिए धारासभा या सरकारी नौकरियोंका विचार करनेकी बात ही नहीं उठती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२८. वल्लभभाईकी परेशानी

मैंने जबसे 'नवजीवन'का सम्पादन-कार्य हाथमें लिया है, वल्लभभाई तभीसे एक बड़ी कठिनाईमें पड़ गये हैं। वे मेरे नामपर दस लाख रुपया इकट्ठा करके गुजरातकी सेवा करना चाहते हैं। वे इस स्वार्थरहित कार्यमें 'नवजीवन' से मदद लेते थे। अब तो मैं सम्पादक हो गया हूँ, अतः मैं अपने लिए धन एकत्रित करनेकी बात अपने ही पत्रमें प्रकाशित करनेकी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ? इस संकोचके कारण वल्लभभाईकी विनयपत्रिकाओंका 'नवजीवन' में छपना बन्द हो गया है!

अब समस्या यह है: यदि वल्लभभाईको दस लाख रुपये न मिल पाये तो वे मेरे बहिष्कारका आदेश जारी कर देंगे और मुझसे सम्पादकका पद छीन लेंगे। लेकिन यदि मैं इस भयसे उनकी इन पत्रिकाओंको छापता रहूँ तो मैं निर्लज्ज और साथ ही कायर भी माना जाऊँगा। मुझे सम्पादक-पदका त्याग नहीं पुसायेगा और खुले तौरपर निर्लज्ज बननेकी बात भी नहीं पुसा सकती। इसलिए मैंने मध्यम मार्ग अपनानेका विचार किया है और वह यह है कि मुझे वल्लभभाईका भ्रम दूर कर देना चाहिए।

सीधी बात यह है कि यदि गुजरातको रचनात्मक कार्य पसन्द हो तो वल्लभभाईको पैसेकी जरूरत तो पड़ेगी ही। बहुत-से लोग रचनात्मक कार्यके निमित्त न

सही, मेरे नामसे पैसा देनेके लिए तैयार हो जायेंगे, इस लोभसे ही धन-याचनाके साथ मेरा नाम जोड़ा गया था। वल्लभभाईको पैसेसे काम है, फिर चाहे वह किसी भी नामसे क्यों न मिले? यदि गुजरात यह मानता हो कि वल्लभभाईने गुजरातकी अच्छी सेवा की है, उन्होंने गुजरातके लिए फकीरी ली है और लोगोंको लिवाई है; और यदि वह यह मानता हो कि उसके पैसेका दुरुपयोग नहीं होता, उसका हिसाब रखा जाता है और प्रकाशित भी किया जाता है, यदि उसे लगता हो कि विद्यापीठका काम कठिन होनेपर भी बहुत मूल्यवान है, उसके द्वारा हमारे हजारों बच्चे आजादीकी तालीम हासिल कर रहे हैं, खादीका प्रचार हो रहा है और अन्त्यजोंकी सेवा हो रही है — यदि सभी गुजरातियोंका ऐसा विश्वास हो तो गुजरात गांधीकी झोलीमें अर्थात् स्वराज्यकी थैलीमें अथवा गरीबोंकी थैलीमें दस लाख रुपया डाल दे। "नाच न जाने आंगन टेढ़ा" कहावतको चरितार्थ करते हुए, सभी व्यापारकी मन्दी आदिका बहाना बता सकते हैं; लेकिन यदि लोग व्यापारकी मन्दीके बावजूद खाते हैं, पीते हैं, विवाह और अन्य कार्य करते हैं तो वे देशके इस आवश्यक कार्यको भी करें। यदि प्रत्येक गुजराती यह मानता है कि गुजरातमें कांग्रेसकी नैया खेना उसका कर्त्तव्य है तो वह इसमें 'फूल नहीं तो पंखुड़ी' अवश्य डाल दे और वल्लभभाईकी परेशानी दूर कर दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२९. "चमड़ेके तस्मेके लिए भैंस"

एक भाईने मुझे "लक्ष्मीका विनाश" नामक चौपतिया भेजी है। उसमें न तो प्रकाशकका ही नाम है और न छापेखानेका ही। यह चौपतिया मुफ्त बाँटी जा रही है। इसमें लेखकका उद्देश्य अपनी पुस्तकें बेचकर पैसा कमाना है। लेकिन उसने इस तुच्छ उद्देश्यसे प्रेरित होकर मुसलमान समाजपर आक्रमण किया है। नमूनेके रूपमें कुछ पंक्तियाँ दे रहा हूँ। "मुसलमान यवन हैं।" "हम जिनको प्रोत्साहन देते हैं, वे कैसे लोग हैं? वे मुर्गों, बकरियों और गायोंकी गर्दनोंपर छुरी चलाते हैं।" "आप जिनके हाथका छुआ पानी तक नहीं पीते उनके प्रति दयाभाव कैसा?" "आप मुसलमानोंसे बही-खाते क्यों खरीदते हैं?" "आपका धर्म दयामय है और यवनोंका पापमय।" इसमें ऐसी और भी धर्मान्धतापूर्ण बातें भरी हैं। इसमें मेरे नामका भी दुरुपयोग किया गया है। मुझे उम्मीद है कि चौपतियाको कोई हिन्दू छुएगा भी नहीं। मुझे इससे भी अधिक उम्मीद इस बातकी है कि इसका लेखक स्वयं ही अपने दयाधर्मको भंगकर बैठनेके कारण पश्चात्ताप करेगा और पुस्तिकाकी प्रतियोंको जला डालेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३०. कार्यकर्त्ताओंसे

उपरोक्त अंश मैंने एक भाईके पत्रसे[1] उद्धृत किया है। मैंने इसे संक्षिप्त करनेके विचारसे कुछ विशेषण काट दिये हैं। प्रत्येक कार्यकर्त्ताको एकान्तमें बुलाकर बात करनेका मेरे पास समय ही नहीं है। लेकिन जिन लोगोंको कोई खास जानकारी हो, मैं उन्हें अपनी वह खास जानकारी अथवा अपने वे खास सुझाव भेजनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। बहुत-से लोग मुझसे भी ज्यादा खराब लिखावटमें पत्र भेजते हैं। उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझपर दया करें और साफ अक्षरोंमें लिखा करें। बहुत लोग लम्बी-लम्बी प्रस्तावनाएँ लिख मारते हैं। आधा पत्र पढ़नेके बाद ही उनके कथनका हेतु समझमें आता है। मेरा उनसे निवेदन है कि वे प्रस्तावना न लिखा करें। बहुतसे लोग अपने पत्रको विशेषणोंसे अलंकृत करते हैं अथवा यों कहें कि बिगाड़ते हैं। मैं उन्हें विशेषणोंको न प्रयुक्त करनेकी सलाह देता हूँ। मैं तो इस प्रकारके पत्र चाहता हूँ:

"आपकी १५-६-२४ के 'नवजीवन'में की गई माँगके सम्बन्धमें निवेदन है कि मैंने स्वयं कांग्रेसका काम छोड़ दिया है, क्योंकि अ, ब, अथवा स ने, जिनके साथ मेरा सम्बन्ध था, अमुक समय अमुक अनुचित कार्य किया था अथवा उनके और मेरे विचार परस्पर मिल नहीं रहे थे; अथवा उन्होंने मेरे प्रति अमुक आचरण किया था अथवा मेरे ही विचार अब बदल गये हैं। मेरा विश्वास अहिंसा, सत्य, चरखे अथवा बहिष्कारपर से उठ गया है। मेरी सलाह है कि कांग्रेस जब अमुक सुधार करेगी, अमुक कार्योंको त्याग देगी अथवा अमुक कार्यकर्त्ताओंको निकाल देगी कार्य तभी चल सकेगा।"

यदि मुझे ऐसे स्पष्ट तथ्योंसे युक्त पत्र प्राप्त हों तो मुझे मदद मिलेगी। सार्वजनिक जीवनमें कुछ निजी बातोंपर पर्दा डाले रखना मेरे विचारसे लोकहितके विरोधी बात है। लेकिन मुझसे परिचित लोग जानते हैं कि मैं नाम तो प्रकाशित ही नहीं करता। मैं पत्रोंको इकट्ठा नहीं करता और मैंने अमूल्य पत्रतक फाड़कर फेंक दिये हैं। मैं केवल सार्वजनिक उपयोगके पत्रोंको ही सँभालकर रखनेका यत्न करता हूँ लेकिन प्राप्त तथ्योंका कतई उपयोग न किया जाये, इस शर्तके साथ भेजा गया पत्र तो मुझे बिलकुल ही नहीं चाहिए, क्योंकि मुझे ऐसी किसी बातको जाननेकी इच्छा नहीं रहती जिसका सार्वजनिक रूपसे उपयोग न किया जा सके। मुझे कोई सज्जन गुमनाम पत्र भी न लिखें। मेरे पास ऐसे पत्र अब भी आते रहते हैं। उपर्युक्त पत्रसे पता चलता है कि हमारा सार्वजनिक जीवन अभी निर्मल नहीं हुआ है। इस हदतक हमारा असहयोग आन्दोलन निष्फल माना जायेगा अथवा वह कितना सफल हुआ है

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि गांधीजीको गुजरातमें फिर कार्य आरम्भ करनेसे पहले वास्तविक स्थितिकी पूरी जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए।

यह बात सार्वजनिक जीवनकी स्वच्छतासे ही आँकी जा सकती है। हम वर्तमान शासन-तन्त्रका विरोध कर रहे हैं क्योंकि हमें विश्वास हो गया है कि वर्तमान तन्त्र मलिन है। इसका अर्थ ही यह हुआ कि हम स्वयं अपेक्षाकृत स्वच्छ हैं और स्वच्छ तन्त्रकी स्थापना करना चाहते हैं। इसलिए हमारे सार्वजनिक जीवनमें स्वच्छता आनी चाहिए और वह भी इस हदतक कि हमारा विरोधी भी उसे देख सके और फिर स्वीकार करे। असहयोग आन्दोलनका मतलब ही शत्रुको मित्र बनाना है। जिसे इस सूत्रपर विश्वास न हो वह कभी शान्त असहयोगी नहीं बन सकता।

लेकिन हममें एक दोष है, उसपर भी विचार कर लेना आवश्यक है। हम दूसरोंमें और अपने साथियोंमें भी दोष देखनेके लिए तत्पर रहते हैं। हम उनके गुण तो देखते ही नहीं हैं। परिणामस्वरूप हम उनकी केवल निन्दा ही करते रहते हैं। एक लोकसेवक बहुत काम करता है तथापि यदि वह कहीं आँखें लाल करता है अथवा तीखी बात कहता है तो हम उसे बिलकुल निकम्मा मान लेते हैं। यदि उसने हमारी आवभगत नहीं की अथवा उसने हमारी बात नहीं समझी तो उसकी सारी सेवा मिट्टीमें मिल गई। मुझे ऐसे स्वभावका अनुभव बहुत हुआ है, इसीलिए मैं लोगोंको परनिन्दाकी इस आदतके विरुद्ध भी सावधान कर देना चाहता हूँ।

इस तरह पाठकोंके आगे दोनों पक्षोंको प्रस्तुत करनेका हेतु यह है कि जिसने उजला पक्ष अर्थात् केवल दूध ही देखा हो वह निरीक्षण करे और यदि उसे मैल दिखाई दे तो उसे स्वीकार करे तथा जिसकी नजरमें मैल-ही-मैल आया हो वह अच्छाइयाँ भी देखनेका प्रयत्न करे। यदि वह इसके बाद तटस्थ भावसे पत्र लिखेगा, तो उसके पत्रमें दिया गया समाचार हमारे लिए सहायक होगा।

अन्तमें मुझे यह भी कहना है कि मैं कर्णधार नहीं बनना चाहता। कर्णधार तो वल्लभभाई हैं ही। मेरा काम तो यथासम्भव सलाह देना ही है। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के सम्पादनका कार्य मेरे हाथमें है; यह कार्य मेरे लिए पर्याप्त है। यदि लोग इस कार्यको मुझसे ले लेंगे तो मेरे पास आश्रमका कार्य है। आज तो मैं आश्रमके कामके लायक भी नहीं रहा हूँ, क्योंकि मेरे पास इन दोनों पत्रोंके कार्यसे कोई समय ही नहीं बचता। इसलिए इस समय गुजरात और समस्त राष्ट्रके लिए मेरा उपयोग केवल सलाहकारके रूपमें ही हो सकता है। तथ्यपूर्ण पत्र मुझे अपने विचारोंको व्यवस्थित करनेमें बहुत सहायता देते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३१. टिप्पणी

मिथ्या भ्रम

एक सज्जन लिखते हैं कि कितने ही बूढ़े लोग अपने पौत्रोंको देखकर, उन बच्चोंके बापकी ओर मुँह करके यह कहते और उनके प्रति अपना स्नेह प्रकट करते हैं: "हम और तुम तो काफी पहन-ओढ़ चुके; और अब खादी पहनने लगे हैं। परन्तु यदि हमने इन कोमल बच्चोंको अभीसे खादी पहना दी तो इन बेचारोंका कुछ भी लाड़-प्यार न हुआ समझो।" उक्त सज्जन पूछते हैं कि ऐसे धर्म-संकटके समय क्या करना चाहिए? मुझे तो इसमें कुछ भी धर्म-संकट नहीं दिखाई देता। हम बड़े-बूढ़ोंके इस लाड़-प्यारकी भावनाका खयाल करके नन्हे-मुन्नोंका भविष्य कैसे बिगाड़ सकते हैं; अथवा हिन्दुस्तानकी फाकेकशी मिटानेके इस महान् संघर्षको धक्का कैसे पहुँचा सकते हैं? हम जिस चीजका इस्तेमाल करना अपना धर्म समझते हैं, उसे हम ऐसे प्रेमके वशीभूत होकर किस तरह छोड़ सकते हैं? फिर यह महज भ्रम है कि विदेशी या देशी मिलोंका कपड़ा ज्यादा महीन होनेके कारण ज्यादा अच्छा होता है। आज कितने ही बच्चे ऐसे हैं जो महीन कपड़ोंको नहीं छूयेंगे और खादी ही पहनेंगे। बच्चोंकी तो हम जैसी आदत डालते हैं वैसी ही पड़ जाती है। मेरी तो यही समझमें नहीं आता कि मिलके कपड़े पहनानेमें कौन-सा दुलार है? कुछ साल बाद जब सब लोग खादी पहनने लगेंगे, हम यह भी मानने लग जायेंगे कि खादी पहनानेमें ही प्यार है। निर्दोष बालकोंके छोटे-छोटे शरीरोंपर सफेद दूध-जैसी खादी जितनी फबती है उतने रंग-बिरंगे, शरीरसे चिपकनेवाले और मैलखोरे कपड़े कभी नहीं फबते। फिर हमारे देशकी आबोहवामें तो बालकोंको बहुत ही कम कपड़ा पहनाना ठीक है। हमारे बालकोंके लिए जूते, मौजे और ज्यादा कपड़े बीमारियोंके घर हैं। यह उन्हें नाजुक बनानेका रास्ता है और इसमें फ़जूलखर्ची होती है। हम बच्चोंको उनका झूठा दुलार करके शुरूसे ही बुरी आदत डाल देते हैं। यह कैसा अन्याय है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३२. पत्र : नवीनचन्द्रको

ज्येष्ठ सुदी १४, १९८० [१६ जून, १९२४]

तुमने पूछा है, जीवनके उच्चतम आदर्शको व्यवहारमें उतारनेके लिए क्या करना चाहिए? तनिक विचार करनेसे मालूम होगा कि इसका उत्तर प्रश्नमें ही निहित है। यदि कोई आपसे पूछे, मुझे जो वस्तु अच्छी लगती है उसे खानेके लिए मैं क्या करूँ तो आप उससे कहेंगे आप उसे खायें। इसी तरह आदर्शके अनुसार चलते-चलते हमें सत्यके आचरणका भान हो जायेगा। सच पूछो तो असली कठिनाई आदर्शके प्रति रुचि उत्पन्न करनेकी है। प्रायः ऐसा होता है कि जिस वस्तुके बारेमें हम यह मानते है कि वह हमें अच्छी लगती है, वह हमें वास्तवमें अच्छी नहीं लगती। यदि सत्य-पालन आदर्श हो तो हमें सत्यका आचरण करना चाहिए। यदि ब्रह्मचर्य आदर्श हो तो उसका पालन करते हुए हमें आनन्दका अनुभव होना चाहिए। यदि शरीर आदर्श हो तो हमें रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बुननेमें आनन्द आना चाहिए और यदि आपने सेवाका आदर्श बनाया हो तो आपको सेवा करते हुए कभी थकना नहीं चाहिए। यदि हम अध्यापन कार्य द्वारा सेवा करना चाहते हों तो हमें उसके लिए अपनी सामर्थ्य-भर प्रयत्न करना चाहिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २१७०) से।

१३३. जे० बी० पेटिटके पत्रपर टिप्पणी[1]

[१७ जून, १९२४ के पश्चात्]

इसे बनारसीदासको दिखा दें। उन्हींसे पूछिए कि यह उनसे किसने कहा था कि उनके द्वारा माँगी गई रकमका एक भाग श्री पेटिटने देनेका वचन दिया है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९७८) की फोटो-नकलसे।

१. उक्त टिप्पणी जे० बी० पेटिटसे प्राप्त उनके १७ अगस्त, १९२४ के निम्न पत्रकी पीठपर लिखी मिली है; "मुझे याद नहीं कि मैंने कभी पण्डित बनारसीदासके वेतन तथा उनके व्ययका एक अंश भी उन्हें देनेका वादा किया है। ऐसा खयाल पड़ता है कि इस प्रकारकी सहायताके लिए पण्डित बनारसीदासका एक पत्र एक वर्षसे भी अधिक पहले आया था और वह आई० आई० सी० ए० की समितिके सामने रखा गया था। समितिने उसे अस्वीकार कर दिया था। समिति चाहती थी कि श्री बनारसीदास संघके पूरा समय काम करनेवाले कर्मचारी बन जायें; किन्तु श्री बनारसीदासने ऐसा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की, इसलिए उनकी अर्जी नामंजूर कर दी गई। इसलिए मेरा खयाल है, समिति उनके खर्चके लिए कोई रकम

१३४. तार: गंगाहील छावनीवालाको[1]

[१८ जून, १९२४ या उससे पूर्व]

कर सकते हैं। यदि वे लोग कोशिश करें तो खद्दरका प्रचार अधिक प्रभावकारी ढंगसे होना सम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-६-१९२४

१३५. पत्र: वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ वदी १ [१८ जून, १९२४][2]

चि० वसुमती,

आजकी लिखावट ऐसी नहीं है कि दसमें चार अंक भी दिये जा सकें। इसमें नित्य सुधार किया जाना चाहिए। तुम्हें छपी हुई वर्णमाला सदा पास रखनी चाहिए। यदि तुमने कापी न खरीदी हो तो यहाँसे भेज दूंगा। बा और देवदास आ गये हैं। वे प्रागजीको उनकी जेल-यात्राके अवसरपर विदाई देने आज सूरत जा रहे हैं। तुमने उनकी गिरफ्तारीकी खबर तो पढ़ी ही होगी। यहाँ भी कुछ छींटें पड़े हैं। अब तो बरसात आये तभी चैन मिले। तुम्हारे अंग्रेजी अक्षर ठीक हैं; लेकिन उनमें भी सुधारकी गुंजाइश है। मैं जो यह सब लिख रहा हूँ उसका मंशा तुम्हें शर्मिन्दा करना नहीं है; बल्कि उत्साहित करना है।

बापूके आशीर्वाद

वसुमतीबहन
लीलावती आरोग्यभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४६) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

देना शायद ही स्वीकार करेगी। किन्तु यदि आप चाहते हैं कि मैं उनके प्रार्थनापत्रको फिरसे समितिके सामने रखूँ तो आपका पत्र पानेपर मैं ऐसा प्रसन्नतापूर्वक करूँगा। देखिए "पत्र: कामाक्षी नटराजनको", १५-८-१९२४।

१. यह तार उस तारके उत्तरमें किया गया था जिसमें गांधीजीसे पूछा गया था कि असहयोगियोंको छावनी क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहिए या नहीं।

२. डाकखानेकी मुहरसे।

१३६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

ज्येष्ठ वदी १ [१८ जून, १९२४][1]

सुज्ञ भाईश्री,

बाबू साहब (यशवन्त प्रसाद), वीरभाई और दिनकररावके बीच जो मुकदमा चल रहा है मैं यह पत्र उसके बारेमें ही लिख रहा हूँ। वीरभाई और मार्कण्डराय मेरे पास आये थे। उसके बाद ही मुझे इस मामलेकी थोड़ी-बहुत जानकारी मिल पाई है। वीरभाई और बाबू साहब तो यह मामला पंचोंको सौंपनेके लिए तैयार हैं; लेकिन दिनकररावके बारेमें कोई कुछ नहीं कह सकता। क्या आप सब पक्षोंको बुलाकर और उन्हें पंच निर्णयके लिए राजी करके इस पारिवारिक कलहको अदालत-में ले जाये जानेसे नहीं रोक सकते? एक मामलेकी सुनवाई तो २५ तारीखको भावनगरमें होनेवाली है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस सम्बन्धमें जो-कुछ करना चाहते हों उससे पहले ही करें। इस परिवारसे मेरी अपेक्षा आपकी घनिष्ठता अधिक है, इसलिए मैं आपको क्या सलाह दूं? चूँकि आप सरकारी अधिकारी हैं इसलिए कोई-न-कोई तो आपके पास आयेगा ही। आप ऐसा समझें कि मैं तीनों पक्षोंकी ओरसे आपके पास आया हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१८०) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१३७. पत्र : अब्बास तैयबजीको

१८ जून, १९२४

भाई साहब,

आप तो सचमुच कमाल करते हैं। आपके गुजराती पत्र अंग्रेजी पत्रोंसे बहुत बेहतर हुआ करते हैं। मुझे आपके गुजराती पत्रोंमें आपकी झलक मिलती है और आपके अंग्रेजीमें लिखे पत्रोंमें आपकी अंग्रेजीकी।

चरखेसे निकलता हुआ तार आज आपके और खुदाके बीच आता दिखता है; पर आगे चलकर आप इसी तारपर खुदाको नाचता हुआ देखेंगे। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ आप उसे हाजिर ही समझें।

१. गांधीजीने ३ जुलाई, १९२४ को प्रेषीको लिखे अपने पत्रमें भी दिनकररावका उल्लेख किया है; अतः सम्भवतः यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। उस वर्ष ज्येष्ठ वदी १, १८ जूनको पड़ी थी।

आपको बुढ़ापेमें भी वर्षाकी ठंड नहीं लगी इसका एक कारण तो है आपका निरन्तर बढ़ता हुआ युवकों जैसा-उत्साह और दूसरा है आपका सेवा-कार्य। जो लोग खुदाका नाम लेकर खुदाका ही काम करनेके लिए घरसे निकलते हैं, अगर उन्हें खुदा ही नहीं बचायेगा तो वह खुदा कैसा?

मैं चाहता हूँ कि आप ऐसा यत्न करें कि श्रीमती अब्बास, बेटी रेहाना तथा अन्य कुटुम्बियोंको भी चरखेकी धुन लग जाये।

आप चाहे जितने और जैसे पत्र लिखें मैं आपको उन सबके लिए पहले ही इकट्ठा क्षमादान किये देता हूँ।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९५४७) की फोटो-नकलसे।

१३८. टिप्पणियाँ

वाइकोम सत्याग्रह

कहा जाता है कि तियोंके[1] धर्मगुरु श्री नारायण महाराजने वाइकोम सत्याग्रहके मौजूदा तरीकोंको नापसन्द किया है। उनका कहना है कि स्वयंसेवकोंको बाड़ लगाये हुए रास्तोंसे लगकर चलना चाहिए और बाड़ोंको लाँघ जाना चाहिए। उनको मन्दिरोंमें जाना चाहिए और दूसरे लोगोंके साथ भोजन भी करना चाहिए। उन्होंने मुलाकातमें जो-कुछ कहा है, उसका सार ही मैंने यहाँ दिया है। फिर भी ये लगभग उन्हींके शब्द हैं। जो काम करनेकी सलाह दी गई है, वह सत्याग्रह नहीं है, क्योंकि बाड़ोंको लाँघना स्पष्ट हिंसा है। यदि बाड़ोंको तोड़ा जा सकता हो तो फिर मन्दिरोंके दरवाजे ही क्यों न तोड़ डाले जायें और उनकी दीवारोंमें ही छेद करके क्यों न घुसा जाये? शारीरिक बलका प्रयोग किये बिना स्वयंसेवकगण पुलिसकी कतारोंको चीरकर कैसे जा सकते हैं? मैं एक क्षणके लिए भी ऐसा नहीं कहता कि इन तरीकोंसे तिया लोग, यदि वे मजबूत हैं और काफी तादादमें मरनेके लिए तैयार हैं तो अपना मकसद हासिल नहीं कर सकते। मैं तो सिर्फ यह कहता हूँ कि यदि ऐसा हुआ तो उसका मतलब यह होगा कि उन्होंने अपना मकसद उन तरीकोंसे पूरा किया, जो सत्याग्रहके तरीकोंके खिलाफ हैं और फिर इससे वे एक भी पुराने खयालके हिन्दूको अपनी रायके मुआफिक न कर सकेंगे; यह तो अपनी राय लादना कहलायेगा। एक मित्र, जिन्होंने इस मुलाकातका हाल एक अखबारसे काटकर भेजा है, लिखते हैं कि मुझे चाहिए कि मैं इन गुरुके हिंसामूलक सुझावके कारण वहाँकी कांग्रेस कमेटीको यह सत्याग्रह बन्द करनेकी सलाह दूँ। मुझे लगता है कि ऐसा करना

१. केरलकी एक जाति-विशेष।

यह मान लेनेके बराबर है कि अपने तरीकोंमें हमारा विश्वास नहीं है और हम हिंसाकी गोदमें जा बैठे हैं। जबतक इस सत्याग्रहके संचालक अपने लिए निर्धारित मर्यादाका पूरा-पूरा पालन करते रहेंगे, तबतक सत्याग्रह बन्द करनेका कोई कारण नहीं है। इन महोदयने चौरी-चौरा काण्डका उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे प्रकट होता है कि या तो उनके विचार स्पष्ट नहीं हैं या वे वस्तु-स्थितिको ही नहीं जानते। बारडोलीका सत्याग्रह इसलिए स्थगित किया गया था कि चौरी-चौरा काण्डमें कांग्रेस और खिलाफतके लोग भी शामिल थे। जब वाइकोमके सत्याग्रहसे सम्बन्ध रखनेवाले कांग्रेसी लोग तियोंके उक्त गुरुकी रायको ठीक मानते हों, प्रायश्चित्तका, अर्थात् सत्याग्रहके बन्द करनेका सवाल तभी उठ सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए वाइकोम सत्याग्रहके संचालकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे दुगुने जोशसे अपने कामको आगे बढ़ायें और साथ ही जो लोग इस आन्दोलनमें शामिल हैं, उनके आचरणपर और कड़ी नजर रखें। कार्यसिद्धिमें वक्त चाहे ज्यादा लगे या कम, यही वह रास्ता है जिसपर चलकर आत्मशुद्धि और कष्ट-सहनके द्वारा पुराने ख्यालके लोगोंको शान्तिपूर्ण ढंगसे अपनी रायके मुआफिक किया जा सकता है। इसके सिवा कोई दूसरा उपाय है ही नहीं।

"झूठा" का मतलब

शिलांगसे एक स्वराज्यवादी मित्र मेरे अभी हालमें ही लिखे लेखोंमें आये हुए "हिंसामूलक" और "झूठा" विशेषणोंके बारेमें मुझे लिखते हैं:

> मैं समझता हूँ कि इन विशेषणोंका प्रयोग करते समय आपका मतलब उन लोगोंसे है जो त्रिविध बहिष्कारके प्रति "झूठे" साबित हुए हैं। मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी किसी टिप्पणीमें इसका खुलासा कर दें। जिस प्रकार यहाँके कितने ही प्रमुख व्यक्तियोंको इससे दुःख पहुँचा है, दूसरी जगहोंके लोगोंको भी इसी प्रकार जरूर दुःख हुआ होगा। मैंने तो आपकी बातका उक्त अर्थ ही समझा है। लेकिन मेरा खयाल है और विशेषकर इसलिए कि आप कदापि यह नहीं चाहते कि आपकी बातका कोई व्यक्ति गलत अर्थ लगा ले। इस विषयमें यदि आप अपनी टिप्पणियोंमें कुछ लिखनेकी कृपा करें तो व्यर्थ नहीं जायेगा।

यदि इस गलतफहमीकी ओर इन मित्रने मेरा ध्यान आकर्षित करनेकी कृपा न की होती तो मुझे मालूम भी नहीं पड़ता कि ऐसी कोई गलतफहमी हुई है। झूठका जो वातावरण-आज हमें चारों ओरसे घेरे हुए है, अपने हालके सभी लेखोंमें मैंने उसीके बारेमें लिखा है। मेरा आक्षेप सभीपर है। मैं ऐसे अपरिवर्तनवादी लोगोंको जानता हूँ जो अपने शरीरकी हदतक भी खादीके प्रस्तावका अमल नहीं करते। मेरी रायमें उनका यह कार्य निश्चय ही अप्रामाणिक है। अदालतोंके बहिष्कारमें जब हम विश्वास न करते हों और फिर भी उसके बहिष्कारमें विश्वास दिखानेका दम्भ करें, जैसा कि हमने किया है, तो हमारा यह ढंग अप्रामाणिक है। हममें बहुत-से लोग

ऐसे हैं जो मन, वचन और कर्मसे अहिंसाको नहीं मानते और फिर भी वे अहिंसा नीतिके हामी होनेका दावा करते हैं, अतः ऐसे हम सभी लोग, चाहे परिवर्तनवादी हों या अपरिवर्तनवादी, झूठे हैं।

विशेष अधिवेशन

मुझे मालूम हुआ है कि डा० पट्टाभि सीतारामैयाने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें एक विशेष अधिवेशनके लिए प्रस्ताव पेश करनेका अपना इरादा सूचित किया है। विशेष अधिवेशन बुलानेका कोई कारण दिखाई नहीं देता। कांग्रेसके प्रस्ताव मौजूद ही हैं। उनके अर्थके विषयमें कोई मतभेद नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा मतभेद हो तो भी दोनों पक्ष, एक-दूसरेसे मतभेद कायम रखते हुए भी, काममें जुट सकते हैं। जरूरत सिर्फ इस बातकी है कि सदस्यगण, अब आगामी छः महीनोंमें काम किस प्रकार करना चाहिए, इसका निर्णय कर लें। कांग्रेसके अधिवेशनमें उसकी नीतियाँ निश्चित की जा सकती हैं। विशेष अधिवेशन हमारी अनिश्चितता, उदासीनता और निष्क्रियता दूर करनेमें कुछ भी मदद न कर सकेगा। मेरा निश्चित मत है कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्षपर देशकी प्रगतिका बाधक होनेका आरोप लगाता रहेगा तबतक उक्त तीनों बुराइयाँ बनी ही रहेंगी। मेरी रायमें तो जो लोग अपनी विवेक-बुद्धिका पूरा उपयोग करते हुए कार्य करते रहते हैं, वे प्रगतिमें कभी बाधक नहीं होते। लेकिन वह व्यक्ति प्रगतिमें अवश्य ही बाधक होता है जो जड़तावश न तो खुद सोचता-विचारता है और न अपने मनसे ही काम करता है, अथवा न इस भयसे ही कुछ कर पाता है कि कहीं दूसरे उससे नाराज हो जायें। दूसरेके दिलको चोट लगे तब भी हममें जरूरत पड़नेपर "ना" कहनेकी हिम्मत होनी ही चाहिए।

आग भड़कानेवाला साहित्य

एक मित्रने मुझे "रंगीला रसूल" नामक एक पुस्तिका भेजी है, जो उर्दूमें लिखी गई है। लेखकका नाम नहीं दिया गया है। प्रकाशक हैं — आर्य पुस्तकालय लाहौरके प्रबन्धक। पुस्तिकाका नाम ही बहुत उद्वेगकारी है। उसकी विषय-वस्तु भी उसीके अनुरूप ही है। उसके कुछ अंश ऐसे हैं, जिनका अनुवाद प्रस्तुत करूँ तो उससे पाठकोंकी परिष्कृत भावनाको धक्का लगेगा। मैंने मनमें सोचा कि पुस्तिकाको लिखने या छापनेके पीछे लोगोंका रोष भड़कानेके अलावा और क्या उद्देश्य हो सकता है। पैगम्बर साहबके लिए अपशब्दोंका प्रयोग करने या उनका उपहास करनेसे कोई मुसलमान अपने धर्मसे विमुख नहीं हो सकता और न ऐसे हिन्दूको ही कुछ लाभ हो सकता है जिसके मनमें अपने धर्मके प्रति शंकाएँ हों। इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यकी दिशामें इस पुस्तिकाका कोई महत्व नहीं है और इससे जो हानि हो सकती है, वह तो स्पष्ट ही है।

एक दूसरे मित्रने "शैतान" शीर्षक एक पर्चा भेजा है। यह एक सफेका पर्चा है और इसका मुद्रण पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस, लाहौरमें हुआ है। इसमें भी मुसलमानोंको ऐसी गालियाँ दी गई हैं, जिनका अनुवाद करना उचित नहीं होगा। मैं जानता हूँ

कि मुसलमानोंने भी अपने पर्चोंमें हिन्दुओंको ऐसी ही गालियाँ दी हैं। लेकिन इससे हिन्दुओं या आर्यसमाजियों द्वारा दी गई गालियोंका औचित्य सिद्ध नहीं होता और न जवाबी कार्यवाहीकी दृष्टिसे इसे ठीक कहा जा सकता है। मैंने तो इन पुस्तिकाओं और पर्चोंकी ओर कोई ध्यान ही न दिया होता, यदि मुझे यह न बताया जाता कि इनकी पाठक-संख्या बहुत बड़ी है। स्थानीय नेताओंको चाहिए कि वे इनका प्रकाशन बन्द करानेका या कमसे-कम इनको निन्दित ठहरानेका उपाय खोज निकालें और इनके बजाय ऐसा स्वस्थ साहित्य प्रकाशित करें जिसमें दोनों पक्ष एक-दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुता बरतें।

एकके मुकाबले तीन

एक मुसलमान भाईने लिखा है कि भोपाल राज्यका धर्मत्याग सम्बन्धी कानून तो निस्सन्देह बुरा है ही, लेकिन उसके खिलाफ जो आन्दोलन चल रहा है उसमें भी कोई तत्त्व नहीं है। उनका कहना है कि यह कानून पुराना है और कभी अमलमें नहीं लाया गया। वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उस राज्यमें हिन्दुओंके साथ बहुत न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है और बहुतसे हिन्दू प्रायः राज्यके ऊँचेसे-ऊँचे पदोंपर रहे हैं। वे आगे कहते हैं:

> लेकिन क्या आपको मालूम है कि पलोल, रीवाँ और भरतपुरकी हिन्दू रियासतोंमें क्या-कुछ हो रहा है? पलोलकी चर्चा तो आपने स्वयं भी की थी। भरतपुरमें तीन मसजिदें गिराई जा चुकी हैं। कहते हैं, रीवाँ राज्यमें इस आशयका आदेश जारी है कि यदि कोई हिन्दू मुसलमान बनेगा तो उसे एक सालकी सजा दी जायेगी और उसे मुसलमान बनानेवाले व्यक्तिको दो सालकी।

यदि ये तथ्य सही हों तो हिन्दुओंको ऐसे कानूनके खिलाफ शिकायत करनेका कोई कारण नहीं रह जाता, जो किताबमें ही बन्द है। मेरी व्यक्तिगत राय तो यह है कि एक अन्यायके प्रति दूसरा अन्याय कर देनेसे न्याय हासिल नहीं होता। इस सिद्धान्तके अनुसार अन्याय जहाँ-कहीं दिखाई पड़े उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए। जहाँ-कहीं धर्म-परिवर्तन कानूनकी दृष्टिसे दण्डनीय है वहाँ असहिष्णुता है, ऐसा मानना चाहिए। उसे मिटा देना हमारा धर्म है। लेकिन हिन्दुओंको सबसे पहले अपना निवेदन रियासतोंके सामने रखना है।

केनियाके भारतीय

केनियाके भारतीय अत्यन्त ही कठिन परिस्थितियोंमें बहादुरीके साथ अपना संघर्ष चला रहे हैं। सर्वश्री गुलाम हुसेन, अलादीन, अहमदभाई करीम, वलीभाई इस्माइल, कासिम नूरमुहम्मद तथा अन्य बहुतसे लोग भी जेल जा चुके हैं। और अब समाचार मिला है कि श्री देसाईको भी वही इज्जत दी गई है। केनियाके भारतीय इस युद्धको जारी रखनेके लिए बधाईके पात्र हैं। लेकिन सविनय अवज्ञाके लिए जो कानून चुना गया है, उसका सम्बन्ध बहुत थोड़े ही भारतीयोंसे है और उस कानूनको

तोड़नेके लिए सजा भी थोड़ी ही दी जाती है। इसलिए अगर केनियाके भारतीय तबतक युद्धको जारी रखनेके लिए कटिबद्ध हैं जबतक कि उनके साथ न्याय नही किया जाता तो उन्हें सविनय अवज्ञाके लिए राज्य द्वारा बनाये गये नैतिकतासे सम्बन्ध न रखनेवाले कुछ ऐसे कानून खोज निकालने होंगे, जिनके विरोधमें लोग चाहें तो अपेक्षाकृत अधिक संख्यामें संघर्षरत हों और तीव्रतर कष्ट-सहनका अवसर प्राप्त करें। केनिया कमेटीसे, जिसकी बैठक लन्दनमें हो रही है, उन्हें कुछ दिनोंके लिए राहत मिल सकती है। यहाँ आन्दोलन करनेसे भी वहाँ उनको प्रोत्साहन मिल सकता है, लेकिन सच्चा उपाय तो उन्हींके हाथमें है। उन्हें अपने खिलाफ किसी भी सही शिकायतका कारण न रहने देना चाहिए और साथ ही सविनय अवज्ञा शुरू करके एक सर्वसामान्य उद्देश्यके लिए बहुत दिनोंतक कष्ट-सहन करनेकी हिम्मत दिखानी चाहिए। तब सफलता मिले बिना न रहेगी।

मूक साधनाका महत्त्व

बड़ोदादा (द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर)ने मुझे निम्नलिखित पत्र[1] भेजा है:

मेरी इच्छा है कि बड़ोदादाके पत्रमें निहित इस सुन्दर विचारको सभी कार्यकर्ता अपने मनमें संजोकर रखें और उन्हींकी तरह ऐसा मानें कि जब नाम मिट चुकेंगे, सभी सच्चे काम तब भी धरतीपर बने रहेंगे।

१८१४ और १९१४

खादी प्रतिष्ठानके बाबू क्षितीशचन्द्र दास गुप्ता कहते हैं कि सिर्फ कलकत्तेसे ही १८१४ में दो करोड़ (आजके १२ करोड़के बराबर) की खादी निर्यात की गई थी और १९१४ में भारतने ६६ करोड़ रुपयेके कपड़ेका आयात किया। फिर अगर हम एक दरिद्र राष्ट्र बनकर रह गये हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या। यदि हमने कताई और बुनाईके बदले कोई और उद्योग छोड़ दिया होता तो आज हमारी दशा इतनी बुरी न होती। हम वैसा नहीं कर सके क्योंकि हमारे राष्ट्रीय उद्योगकी हत्या जान-बूझकर की गई है और उसके हत्यारोंने उसके बदलेमें हमें कोई और उद्योग भी नहीं दिया।

त्रिवेन्द्रम जेलमें चरखा

त्रिवेन्द्रम सेंट्रल जेलके एक सत्याग्रही कैदी श्री के० कुमार लिखते हैं:

> आजका दिन मेरे जीवनके सबसे आनन्ददायक दिनोंमें से है, क्योंकि (एक मास पूर्व) आजके ही दिन मैं गिरफ्तार करके जेल भेजा गया था। . . . मौन रखकर कताई करते हुए जितना सूत तैयार किया है, उसे भेज रहा हूँ . . .। यहाँ लगभग ६ बजे सुबहसे लेकर ६ बजे शामतक हर रोज चरखा चलता है। . . .मैं हर रोज कमसे-कम तीन घंटे कताई करता हूँ . . .।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

हममें से कुछ लोग हिन्दी या उर्दू सीख रहे हैं, हम 'गीता' और 'पुराणों' का . . . भी पाठ करते हैं। . . . ६ बजे सुबह हम प्रार्थना करते हैं, जिसमें जाति या धर्मका खयाल किये बिना सभी लोग शामिल होते हैं . . . अधिकारी लोग हमारा बड़ा खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१३९. फिरसे आर्यसमाजियोंकी चर्चा

कितने ही आर्यसमाजी भाइयोंने आर्यसमाजके सिद्धान्तों और उनकी श्रेष्ठताके बारेमें मेरे अज्ञान (उनका ऐसा ही खयाल है) पर लम्बे-चौड़े लेख लिखकर भेजे हैं। मैं चाहता था कि उनमेंसे कमसे-कम एक पत्र तो अवश्य छाप सकूँ ताकि पाठकोंको यह मालूम हो जाये कि आर्यसमाजी मेरी टीकाको किस दृष्टिसे देखते हैं। अन्तमें मुझे एक ऐसा पत्र मिल गया और उसे मैं खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्रलेखक हैं गुरुकुल कांगड़ीके आचार्य रामदेवजी। उसमें से मैंने सिर्फ एक अनुच्छेद निकाल दिया है। मेरी रायमें यह अंश जल्दीमें लिखा गया होगा और वह उनकी योग्यताके अनुरूप भी नहीं था। उसके निकाल डालनेसे उनकी दलील कमजोर नहीं पड़ती और आर्यसमाजके संस्थापकके उत्साहपूर्ण गुणगानमें भी किसी तरहकी कोताही नहीं आती। आचार्य रामदेवजीका पत्र नीचे देता हूँ:[1]

मैं हमेशासे यह कहता आया हूँ कि मेरे जीवनमें धर्मका स्थान प्रमुख और राजनीति उसकी अनुवर्तिनी है। मेरे राजनीतिक क्षेत्रमें आनेका कारण यह हुआ कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात् सेवामय जीवनको उससे प्रभावित हुए बिना व्यतीत न कर सका। यदि उससे मेरे धार्मिक जीवनमें बाधा पड़े तो मैं उसे आज ही त्याग दूँ। इसलिए मैं इस सिद्धान्तसे सहमत नहीं हो सकता कि एक राजनीतिक नेता होनेके कारण मुझे धार्मिक बातोंके विषयमें नहीं बोलना चाहिए। मैंने आर्य-समाजके बारेमें इतना इसलिए लिखा कि मैंने देखा कि वह अपनी उपयोगिताको खोता जा रहा है और उसकी मौजूदा कार्रवाइयोंसे देशको हानि पहुँच रही है। चूँकि हम दोनोंके विचारोंका उद्‌गम स्थान एक ही है, इसलिए एक हितैषी और हिन्दू होनेके नाते मैं इन भाइयोंसे अपनी बात जोरसे कहनेका हक मानता था। यदि वहाँ मैं विभिन्न धर्मोंके गुण-दोषोंकी समीक्षा करता तो अवश्य ही मुझे इस्लामके बारेमें भी अपने विचार प्रकाशित करने पड़ते।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने मूल वेदोंको नहीं पढ़ा है। फिर भी मुझे उनका इतना ज्ञान अवश्य है कि मैं अपनी कोई राय बना सकूँ। आचार्य रामदेवका यह खयाल गलत है कि महर्षि दयानन्दके उपदेशोंके सम्बन्धमें मेरे खयाल पहले से ही

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। गांधीजीके उत्तरमें उक्त पत्रकी प्रायः सभी बातें आ जाती हैं।

खराब थे। आचार्य रामदेवने जिन बड़े-बड़े लोगोंका उल्लेख ऊपर किया है उनके द्वारा उस महान् सुधारककी की गई प्रशस्तिके ठीक-ठीक शब्द क्या हैं सो तो मुझे मालूम नहीं, पर उनके साथ प्रशस्तिमें शामिल होते हुए भी मैं अपनी इसी रायपर कायम रह सकता हूँ।[1] मैं अपनी पत्नीकी त्रुटियोंको जानता हूँ, पर इस कारण मैं उसे कम स्नेह नहीं करता। मेरी आलोचना करनेवाले लोगोंने यह मान लेनेकी गलती की है कि चूंकि मैंने उनके समाज-संस्थापकपर टीका-टिप्पणी की है, इसलिए मेरा उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। मैं आचार्य रामदेवको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तमाम समुल्लासोंको पढ़ा है। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी व्यक्तिके नैतिक उपदेशके उच्च होते हुए भी उसका दर्शन संकुचित हो सकता है। मेरे कितने ही मित्र जो नैतिक दृष्टिसे मुझे और मेरी नैतिक शिक्षाओंको बहुत ऊँचे दरजेका मानते हैं, मेरे जीवन-सम्बन्धी विचारोंको संकुचित और कट्टरतासे पूर्ण मानते हैं। मैं उनकी इस आलोचनाका बुरा नहीं मानता, हालांकि मैं मानता हूँ कि जीवन-विषयक मेरा दृष्टिबिन्दु विशाल है और मैं मनुष्य-जातिके अत्यन्त सहनशील लोगोंकी श्रेणीमें आ सकता हूँ। मैं अपने आर्यसमाजी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यदि मैंने उनकी आलोचना की है तो उसी दृष्टिसे जिस दृष्टिसे मेरी आलोचना उन्हें करनेका अधिकार है। इसलिए हम दोनोंका हिसाब चुकता हुआ। वे मुझे देशमें सबसे अधिक अज्ञानी और असहिष्णु समझना चाहें तो समझें, लेकिन मैंने जो सम्मति व्यक्त की है मुझे उसपर कायम रहनेकी स्वतन्त्रता दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४०. अग्नि-परीक्षा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी अगली बैठकमें मैं नीचे लिखे चार प्रस्ताव पेश करना चाहता हूँ:

१. इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि स्वराज्यकी स्थापनाके लिए चरखा और हाथकती खादीके आवश्यक माने जानेपर भी और कांग्रेसके द्वारा सविनय अवज्ञाके लिए पेशबन्दीके तौरपर उनकी स्वीकृति होते हुए भी देशके तमाम कांग्रेस संस्थाओंके सदस्य खुद ही अबतक हाथकताईकी उपेक्षा करते रहे हैं, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि विभिन्न प्रातिनिधिक कांग्रेस संगठनोंके सभी सदस्य बीमारी अथवा लगातार सफरकी हालतको छोड़कर, रोज कमसे-कम आध घंटा चरखा चलायेंगे और कमसे-कम १० नम्बरका १० तोला एक-सा और पक्का सूत अखिल भारतीय खादी बोर्डके मन्त्रीके पास भेज देंगे। यह हर महीनेकी १५ तारीखतक उन्हें मिल

[1] १. आचार्य रामदेवने इस सन्दर्भमें श्री अरविन्द, ह्यूम, सर सैयद अहमद, रानडे, तेलंग और विशन नारायण दर आदिके नामका उल्लेख किया था।

जायें; पहली किश्त १५ अगस्त, १९२४ तक उनके पास पहुँच जाये और किश्तें उसके बाद हर महीने बराबर भेजी जाती रहें। जो सदस्य नियत तारीख तक नियत तादादमें सूत नहीं भेजेगा उसका पद खाली समझा जायेगा और मामूलके मुताबिक उसकी जगह दूसरे सदस्यसे भर दी जायेगी। पदच्युत शख्स विभिन्न संगठनोंकी[1] सदस्यताके लिए होनेवाले अगले आम चुनावों तक फिरसे खड़े होनेका अधिकारी नहीं होगा।

२. चूँकि इस बातकी शिकायतें पहुँची हैं कि प्रान्तीय मन्त्री तथा कांग्रेस संगठनोंके दूसरे पदाधिकारी उन हिदायतोंकी तामील नहीं करते, जो कांग्रेसके विधिवत् नियुक्त अधिकारियोंकी तरफसे उनके नाम समय-समयपर भेजी जाती हैं; इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि उक्त बातोंके लिए जिम्मेदार जो पदाधिकारी विधिवत् नियुक्त अधिकारियोंके आदेशोंकी तामील नहीं करेगा वह अपनी जगहसे खारिज समझा जायेगा और उसकी जगहपर मामूलके मुताबिक दूसरा शख्स रख लिया जायेगा और वह पदच्युत व्यक्ति अगले साधारण चुनाव[2] तक फिरसे चुने जानेका पात्र नहीं समझा जायेगा।

३. अ० भा० कां० क० की रायमें यह वांछनीय है कि कांग्रेसके मतदातागण सिर्फ उन्हीं लोगोंको पदाधिकारी चुनें जो खुद कांग्रेसके ध्येयके अनुसार तथा उसके विविध असहयोग प्रस्तावोंके अनुसार, जिनमें पंचविध बहिष्कार अर्थात् मिलके कपड़ों, सरकारी अदालतों, स्कूलों, खिताबों और धारासभाओंके बहिष्कार शामिल हैं, चलते हों। अ० भा० कां० क० यह भी निश्चय करती है कि जो सभ्य इन पाँचों बहिष्कारों को न मानते हों और खुद उनके मुताबिक अमल न करते हों तो वे अपनी जगहोंसे इस्तीफा दे दें और उन जगहोंके लिए नया चुनाव किया जाये — इस्तीफा देनेवाले सज्जन चाहें तो चुनावके लिए फिरसे उम्मीदवार हो सकते हैं।[3]

४. कांग्रेस स्वर्गीय गोपीनाथ साहाके द्वारा श्री डेकी हत्यापर अपना अफसोस जाहिर करती है और मृतात्माके परिवारके प्रति अपनी समवेदना प्रकट करती है। कांग्रेसको इस बातकी गहरी प्रतीति है कि इस हत्याके पीछे भ्रमपूर्ण ही क्यों न हो देशप्रेम अवश्य था। फिर भी यह समिति इसकी और ऐसे तमाम राजनैतिक खूनोंकी सख्त निन्दा करती है और साथ ही अपना मत प्रबलताके साथ व्यक्त करती है कि ऐसे सभी कृत्य कांग्रेसके ध्येय और उसके शान्तिमय असहयोगके प्रस्तावोंसे असंगत हैं और उसकी यह राय भी है कि ऐसे कामोंसे स्वराज्यकी प्राप्तिमें बाधा उत्पन्न

१. यद्यपि यह दण्डात्मक धारा गांधीजी द्वारा पेश किये गये प्रस्तावमें शामिल थी, लेकिन बादमें स्वराज्यवादियोंके विरोधका खयाल करके उन्होंने इसे निकाल दिया; देखिए "भाषण और प्रस्ताव : दण्ड विषयक धारापर", २८-६-१९२४।

२. बादमें गांधीजीने इसे संशोधित रूपमें प्रस्तुत किया, देखिए "प्रस्ताव : अ० भा० कां० क० की बैठकमें", २९-६-१९२४।

३. इसमें दो बार संशोधन हुआ। पहले कार्यकारिणी समितिमें और फिर गांधीजी द्वारा अ० भा० कां० क० में प्रस्तुत किये जानेके थोड़े पहले।

होती है और वे उस सविनय अवज्ञाकी तैयारीमें बाधक होते हैं, जो अ० भा० कां० क० की रायमें, शुद्धसे-शुद्ध बलिदानको उत्साहित करती है और जो पूर्ण शान्तिमय वातावरणमें ही किया जा सकता है।[1]

दिखाई तो पड़ता है, इस मौकेपर तो मैं ठीक वही काम कर रहा हूँ जिससे बचनेकी इच्छा करनेका मैं दावा किया करता हूँ — अर्थात् कांग्रेसमें दल पैदा करना और देशमें विवाद खड़ा करना। फिर भी मैं पाठकोंको यकीन दिलाता हूँ कि यह हालत ज्यादह दिनोंतक न रहेगी। जहाँतक मेरे प्रयत्नका सवाल है मैं इसे ज्यादा दिनोंतक नहीं टिकने दूंगा। अनिश्चितताके वातावरणको समाप्त करनेकी जैसी व्यग्रता और आतुरता मेरे मनमें है वैसी ही दूसरोंके मनमें भी होनी चाहिए। अगर हमें अपनी ठीक स्थिति समझनी हो तो कुछ-न-कुछ वाद-विवाद लाजिमी होता है। मेरे सम्बन्धमें लोग ऐसा मानते हैं कि मैं कुछ चमत्कार करके दिखा दूंगा और देशको उसके लक्ष्यतक पहुँचा दूंगा। खुशकिस्मतीसे मेरे मनमें ऐसा कोई भ्रम नहीं है। हाँ, मैं एक क्षुद्र सैनिक होनेका दावा अवश्य करता हूँ और अगर पाठक मेरी बात पर हँसे नहीं तो मैं उनसे यह भी कह देना बुरा नहीं समझता कि मैं एक कुशल जनरल भी हो सकता हूँ — केवल उन्हीं शर्तोंपर जो सेनामें हुआ करती हैं। मेरे पास ऐसे सैनिक होने चाहिए जो आज्ञा पालन करते हों, जो अपनेतईं और अपने जनरलमें विश्वास रखते हों और जो आदेशोंका पालन खुशी-खुशी करते हों। मेरी कार्यविधि हमेशा खुली और तयशुदा होती है। कुछ निश्चित शर्तें रहती हैं। उनकी पूर्तिपर सफलता निश्चित होती है, पर ऐसी हालतमें बेचारा जनरल क्या कर सकता है जब उसके सैनिक उसकी शर्तोंको मानते तो हों, पर खुद उनका पालन न करते हों और हो सकता है कि उनका इन शर्तोंमें विश्वास भी न हो। इन प्रस्तावोंकी तजवीज इसलिए की गई कि इससे सैनिकोंके गुणोंकी परख हो जाये।

बल्कि इसे यों कहना अधिक ठीक होगा कि सैनिकोंकी हालत तो बड़ी अच्छी है क्योंकि वे अपना जनरल खुद चुनते हैं। उनके भावी जनरलके लिए सेवाकी शर्त जान लेना जरूरी है। मेरी हालत वही है जो १९२० में थी। पर जितने दिन बीते हैं उतना ही मेरा विश्वास बढ़ गया है। अगर मेरी सेवा चाहनेवालोंके बारेमें भी यही ठीक हो तो मेरा तन और मन — उनका ही है। दूसरी किसी तजवीजमें मेरा विश्वास नहीं है। इसलिए दूसरी किसी शर्तपर वे मुझे नहीं पा सकते। इसलिए नहीं कि मैं राजी नहीं हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं उपयुक्त नहीं हूँ। जहाँ किसी ३५ वर्षके हट्टे-कट्टे छः फुट नौजवानकी जरूरत हो वहाँ अगर कोई सफेद बालवाला ५५ बरसका बूढ़ा जिसके दाँत टूट गये हों और जिसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न हो, दरख्वास्त लेकर हाजिर हो तो कैसे काम चल सकता है?

इसलिए इन चार प्रस्तावोंको जनरलकी जगहके लिए मेरी दरख्वास्त ही समझिए। इसमें मेरी योग्यता और मर्यादाएँ दोनों आ जाती हैं। इसमें अपना कोई

१. यह प्रस्ताव ज्यों-का-त्यों पास किया गया था। देखिए "प्रस्ताव: अ० भा० कां० क० की बैठकमें", २९-६-१९२४।

प्रभुत्व लादने या किसी असम्भव माँगको पेश करनेकी बात नहीं है। अगर सदस्यगण यह समझें कि मैं गलतीपर हूँ तो उन्हें स्वयं अपने तथा देशके प्रति सच्चा बना रहनेकी खातिर मेरा जरा भी मुलाहिजा नहीं करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि कोई शख्स ऐसा नहीं है जिसके बिना देशका काम रुक सकता हो। हममें से हरएक अपनी जन्मभूमि और उसके द्वारा मानव-जातिका ऋणी है। जिस घड़ी वह अपना ऋण चुकाना छोड़ दे उसी घड़ी उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। मौजूदा सेवा-कार्योंका भार सौंपते समय किसीकी पिछली सेवाओंपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है — फिर वे कितनी ही उज्ज्वल क्यों न हों। एक आदमीके खयालसे तो क्या सौ आदमियोंके खयालसे भी देशहितकी बलि नहीं दी जा सकती; बल्कि देशहितपर उन्हींका या उन्हींकी कुरबानी कर दी जानी चाहिए। मैं अ० भा० कां० क० के सदस्योंसे निवेदन करता हूँ कि वे एक दृढ़ उद्देश्यको लेकर, बिना पक्षपात और मिथ्या भावुकता और भावनाओंके अधीन हुए, इस प्रस्तावपर विचार करें। मेरी आपसे विनय है कि आप आँख मूँदकर मेरे पीछे न चलें। मैं कहता हूँ, इसलिए किसी बातका ठीक होना लाजिमी नहीं है। आपको खुद ही निर्णय करना चाहिए और आपको स्वयं अपनी इच्छा और क्षमताका ठीक ज्ञान होना चाहिए। इतने दिनोंके सम्पर्कसे आप यह तो जान ही गये होंगे कि मैं एक बेढब साथी हूँ और एक कड़ाईसे काम लेनेवाला आदमी हूँ। पर अब आप मुझे और भी ज्यादा सख्त पायेंगे।

मैंने यह दलील पढ़ी है कि खादी से स्वराज्य नहीं मिल सकता। यह पुरानी दलील है। अगर हिन्दुस्तानको यूरोपके नफीस कपड़ोंकी — फिर वे चाहे मैनचेस्टरके बने हों, चाहे बम्बईकी मिलोंके — चाह हो तो उसे करोड़ों भाई-बहनोंके लिए स्वराज्यकी बातका खयाल ही छोड़ देना चाहिए। अगर हमारा विश्वास चरखेके पैगामपर हो तो हमें खुद चरखा कातना चाहिए। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें इससे बड़ी प्रेरणा मिलेगी। अगर हम शान्तिमय उपायोंसे और इसलिए शान्तिमय अवज्ञाके द्वारा स्वराज्य लेना चाहते हैं तो शान्तिमय वायुमण्डल तैयार किये बिना चारा नहीं। अगर हम हजारोंकी भीड़में व्याख्यान झाड़नेके बदले वहाँ लोगोंको चरखा कातकर दिखायें तो शान्तिमय वायुमण्डल तैयार हो सकेगा। अगर मुझसे हो सके तो मैं तो कांग्रेस संगठनोंके हरएक सदस्यका मुँह तबतक के लिए बन्द कर दूँ — स्वयं अपना और शायद शौकत अलीका छोड़कर — जबतक कि स्वराज्य न मिल जाये। मैं हरएकको चरखेपर बैठा दूँ या किसी कताई-केन्द्रकी व्यवस्था सौंप दूँ। अगर यह मूक चरखा किसीके मनमें श्रद्धा, साहस और आशा पैदा नहीं कर सकता तो उसे चाहिए कि वह साफ-साफ ऐसा कह दे।

दूसरे और तीसरे प्रस्तावको पहले प्रस्तावका पूरक समझिए।

चौथे प्रस्तावके द्वारा हमारी अहिंसात्मक नीतिकी जाँच होगी। मैं गोपीनाथ साहा सम्बन्धी प्रस्तावपर देशबन्धु दासका वक्तव्य पढ़ चुका हूँ। पर उससे पिछले सप्ताहमें कही गई मेरी बातमें कोई अन्तर नहीं आता। जबतक कांग्रेस अपने वर्तमान

ध्येयपर कायम है और उसे मानती है तबतक मेरे तजवीज किये इस प्रस्तावमें समझौतेकी कोई गुंजाइश नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४१. हिन्दू क्या करें?

हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी मेरे वक्तव्यके बारेमें मेरे पास बहुतेरे पत्र आये हैं। पर उनमें कोई बात नई या मार्केकी नहीं। अतएव मैंने उन्हें प्रकाशित नहीं किया। परन्तु बाबू भगवानदासने इस बारेमें एक पत्र लिखकर कुछ सवाल किये हैं। उस पत्रको[1] मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ और उसमें उठाये सवालोंके उत्तर भी दे रहा हूँ।

पहले दो सवालोंका जवाब तो खुद लेखकने ही दे दिया है। किन्तु वह मेरी रायमें आंशिक रूपसे ही सच है। यद्यपि हिन्दुस्तानके अधिकांश मुसलमान और हिन्दू एक ही 'नस्ल' के हैं तो भी धार्मिक वातावरणने उनको एक-दूसरेसे भिन्न बना दिया है। मैं इस बातको मानता हूँ और मैंने देखा भी है कि विचारोंके कारण मनुष्यका रूप और स्वभाव बदल जाया करता है। सिख लोग इस बातकी ताजा मिसाल हैं। मुसलमान बहुधा अल्पसंख्यक ही हैं और इसलिए समुदायके रूपमें वे आततायी बन गये हैं। फिर वे एक नई परम्पराके वारिस हैं। इससे उनमें जीवनकी इस अपेक्षाकृत नई प्रणालीके अनुरूप साहस दिखाई देता है। मेरी रायमें तो 'कुरान' में अहिंसाका मुख्य स्थान है; पर १,३०० सालसे साम्राज्य विस्तार करते आनेके कारण मुसलमान जाति लड़ाकू जाति हो गई है। इसलिए उन्हें धींगामस्तीकी आदत पड़ गई है। गुण्डापन धींगामस्तीका एक स्वाभाविक परिणाम है। हिन्दू लोगोंकी सभ्यता बहुत प्राचीन है और उनमें अहिंसा समायी हुई है। उनकी सभ्यता उन सारे अनुभवोंमें से कबकी गुजर चुकी है जिनमें से ये दो नई जातियाँ अभी गुजर ही रही हैं। अगर हिन्दू धर्ममें आजकलके अर्थमें कभी साम्राज्यवादिता रही भी हो तो एक तो वह जमाना बीत गया है इसलिए और दूसरे उसने या तो स्वयं सोच-विचारकर या कालचक्रकी गतिके अधीन होकर उसका त्याग कर दिया है। यहाँ अहिंसा भावकी प्रधानता होनेके कारण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग कुछ ही जातियों तक सीमित हो गया और इन जातियोंने उच्च कोटिके अध्यात्मवादी विद्वान और त्यागी लोगोंके अनुशासनमें चलना सदा अपना धर्म माना। इसलिए समाजके रूपमें हिन्दुओंके पास वे मानसिक उपकरण नहीं हैं जो लड़ने-भिड़नेके लिए आवश्यक होते हैं। परन्तु अपने आध्यात्मिक प्रशिक्षणको अक्षुण्ण न रख सकनेके कारण वे शस्त्रकी जगह किसी दूसरे कारगर साधनका प्रयोग करना भूल गये और शस्त्रकी उपयोग-विधिके न जानने तथा उसके प्रति झुकाव न

१. देखिए परिशिष्ट ३।

होनेके कारण उनमें इतनी नम्रता आ गई कि जिसे भीरुता और दब्बूपन भी कहा जा सकता है। इस तरह यह दुर्गुण उनके सौजन्यका एक स्वाभाविक परिणाम बन गया है।

ऐसा मत रखते हुए भी मेरी यह धारणा नहीं है कि हिन्दुओंकी हृदबन्दीकी खासियतका—जो कि बुरी तो है ही—उनकी भीरुतासे कोई खास सम्बन्ध है। आत्मरक्षाके लिए अखाड़ोंके उपयोगपर जो मेरा विश्वास नहीं है, उसका कारण भी यही है। शारीरिक बलको बढ़ानेके लिए मैं उनको उपयोगी मानता जरूर हूँ, मगर आत्मरक्षाके लिए तो मैं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षाको ही पुनरुज्जीवित करना पसन्द करूँगा। आत्मरक्षाका सबसे अच्छा और चिरस्थायी साधन है—आत्मशुद्धि। मैं इन मिथ्या भयोंसे डरनेवाला नहीं हूँ। अगर हिन्दू लोग सिर्फ आत्म-विश्वास रखें और अपनी परम्पराके अनुसार आचरण करते रहें तो उन्हें गुण्डेपनसे डरनेकी कोई जरूरत ही न रहे। वे जिस घड़ी वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षाको फिरसे अपना लेंगे, उसी दिनसे मुसलमानोंके दिलपर उसका असर पड़ने लगेगा और ऐसा हुए बिना रह नहीं सकता। अगर मेरे पास कुछ ऐसे हिन्दू युवकोंकी एक टोली हो, जो खुद अपनेमें भरोसा रखते हों और इसलिए मुसलमानोंमें भी जिनका भरोसा हो तो उनका यह दल कमजोर लोगोंके लिए ढाल बन जायेगा। वे (हिन्दू युवक) यह सिखा देंगे कि बिना मारे किस तरह मरा जा सकता है। मेरे विचारसे दूसरा रास्ता है ही नहीं। जब हमारे पूर्वज लोगोंपर संकट आ पड़ता था तब वे तपस्या—आत्म-शुद्धि करते थे। वे शरीरको असमर्थ समझकर दीनभावसे परमेश्वरसे प्रार्थना करते और तबतक प्रार्थना ही करते रहते जबतक वह उनकी पुकारपर दौड़नेके लिए मजबूर नहीं हो जाता था। लेकिन इसपर मेरे हिन्दू मित्र कहेंगे—हाँ, मगर ईश्वरने तो अवतारोंको धनुष-बाण या चक्र सुदर्शन लेकर ही भेजा। मैं इसकी यथार्थतासे इनकार नहीं करता। हिन्दुओंसे मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू होनेके नाते वे कारणकी अवहेलना करके फल प्राप्त नहीं कर सकते। जब हम काफी तपस्या कर चुकेंगे तब कहीं संग्रामके योग्य बन सकते हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या हम पर्याप्त मात्रामें शुद्ध बन गये हैं। व्यक्तिगत पवित्रताकी बात तो दूर रही, क्या अस्पृश्यता-सम्बन्धी अपने पापतक का प्रायश्चित्त हमने तत्पर भावसे किया है? क्या हमारे धर्माचार्य और धर्मगुरु ठीक वैसे ही हैं जैसा उन्हें होना चाहिए? जबतक हम मुसलमानोंके छिद्र ढूंढ़नेमें ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहेंगे तबतक मानो हम अपने हाथ-पैर अधरमें ही मारते रहेंगे। जो बात अंग्रेजोंके लिए है, वही मुसलमानोंके लिए भी। अगर हमारे दावे सच हैं तो अंग्रेजोंके हृदय जीतनेकी अपेक्षा मुसलमानोंके हृदयको जीतना बहुत ही कम कठिन है। लेकिन हिन्दू मेरे कानमें आकर कहते हैं कि हमें अंग्रेजोंसे तो कुछ उम्मीद है पर मुसलमानोंसे नहीं। मैं उनसे कहता हूँ कि अगर आपको मुसलमानोंसे कुछ आशा नहीं है तो अंग्रेजोंसे आप जो आशा रखते हैं, वह निराशामें परिणत हुए बिना नहीं रहेगी।

दूसरे सवालोंका जवाब संक्षेपमें दिया जा सकता है। समाजके अगुआ लोगोंको गुण्डोंकी जरूरत महसूस हुई, इसलिए उनकी बन आई। अगुआ लोग एक-दूसरेपर

अविश्वास रखते थे। जहाँ कारण स्पष्ट हों वहाँ अविश्वास कदापि उत्पन्न नहीं होता। जब बहुतसे ऐसे कारण इकट्ठे हो जाते हैं जिनमें वास्तविकता कम और कल्पना ही अधिक होती है तब अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। हम अभी इस बातको प्रत्यक्ष नहीं कर पाये हैं कि हमारे स्वार्थ एक हैं। प्रत्येक पक्ष धुंधले तौरपर यह मानता हुआ नजर आता है कि वह दूसरेको किसी-न-किसी तरकीबसे हटा सकता है। पर मुझे यह कबूल करते हुए जरा भी संकोच नहीं होता, जैसा बाबू भगवानदासने कहा है कि हमारा यह न जानना भी कि हम किस किस्मका स्वराज्य चाहते हैं, इस पारस्परिक अविश्वाससे बहुत-कुछ ताल्लुक रखता है। पहले मेरा खयाल ऐसा नहीं था। लेकिन उन्होंने मुझे यरवदा जेलमें सर जॉर्ज लॉयडके मेहमान होनेके पहले ही अपने मतका बहुत-कुछ कायल कर लिया था और अब तो मैं पूरी तरह उसी मतका हो गया हूँ।

वक्तव्यमें मैंने 'सहमतिके क्षेत्र' की बात कही है। उससे मेरा अभिप्राय दोनों सम्प्रदायोंके तमाम व्यक्तियों और समुदायोंके बीच सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक मामलों — जैसे धार्मिक बातोंमें मतभेदके मुद्दोंको उभारने — की अपेक्षा मुझे दोनों पक्षोंमें समान रूपसे विद्यमान अच्छी बातें खोजनेमें लग जाना चाहिए। अपने धार्मिक विचारों-पर कायम रहते हुए मैं जहाँ-जहाँ हो सकता है, सामाजिक बातोंमें दोनोंके बीचकी खाईको पाटनेका प्रयत्न करना पसन्द करूँगा। राजनैतिक क्षेत्रमें कार्यकी एकताके लिए अपने रास्तेसे कुछ हट जाना भी मुझे पसन्द होगा।

दोनोंके झगड़ोंका फैसला करनेके लिए मैंने पंचके रूपमें हकीम साहबका नाम बेशक लिया और वह इसलिए कि उनके प्रति सब लोग आदरभाव रखते हैं। पर मैं तो ऐसे मुसलमानोंके हाथोंमें भी कलम देते हुए न हिचकूँगा, जिनकी धर्मान्धता और हिन्दुओंके प्रति बुरे खयालात पहलेसे सर्वविदित हों; क्योंकि एक हिन्दू होनेके नाते मुझे जानना चाहिए कि अगर वह हर प्रान्तमें मुसलमानोंको ज्यादा जगहें दे देगा तो भी मेरी उससे कुछ हानि न होगी। निर्वाचन-संस्थाओंमें जगहोंके दे देने या ले लेनेसे सिद्धान्तकी हानि नहीं होती। इसके अलावा तजरुबेने मुझे यह सिखाया है कि जब सारी जिम्मेदारी एक ही व्यक्तिके सिरपर रख दी जाती है तब वह अपनी आन-बानका खयाल रखकर काम करता है और अपने स्वाभिमानका या ईश्वरका यह डर उसे गम्भीरता प्रदान कर देता है।

अन्तमें, किसी घोषणापत्र या अन्य किसी ऐसी चीजसे तबतक काम बननेवाला नहीं है, जबतक हममें से कुछ लोग — फिर वे कितने ही कम हों — उसके अनुसार चलने न लग जायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४२. पत्र : वसुमती पण्डितको

[२० जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने अक्षरोंको तो छापेके जैसे सुन्दर बना डालो। तुमने अभ्यास पुस्तिकाके बारेमें कुछ भी नहीं लिखा है। रामदास और बा कल सूरतसे लौट आये। प्रागजीका मुकदमा मुल्तवी हो गया है। वहाँ निश्चिंत रहकर अपना स्वास्थ्य सुधारो। राधाकी गाड़ी जैसे-तैसे चल रही है; मणि तेजीसे तरक्की कर रही है। यहाँ पानी अभी नहीं बरसा है; बूंदाबांदी हो जाया करती है।

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४७) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१४३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

ज्येष्ठ वदी ५ [२१ जून, १९२४][2]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

कार्य सिध्ध हो या न हो तो भी हमारे अहिंसक हि रहना चाहिये। यह सिद्धांतको प्राकृत रूपसे बतानेका है। ठीक कहना यह है कि अहिंसाका फल शुभ ही है। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है इसलीये फल आज मीलो वा वर्षोंके बाद उससे हमें कुछ वास्ता नहीं है। २०० वर्षके आगे जिनको जबरदस्तीसे इस्लाममें लाये[3] गये उससे इस्लामको लाभ हो हीं नहीं सकता क्योंकि इससे बलात्कारकी नीतिको स्थान मिला है। इसी तरह यदि किसीको बलात्कारसे या फरेबसे हिन्दु बनाया जाये तो उसमें हिंदी धर्मका नाशकी जड है। सामान्यतः तात्कालिक फल देखकर हमें धोखा खाना है। बडी समाजमें दो सो वर्ष कोई चीज नहि है।

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२. यह पत्र प्रेषीके ११ जून, १९२४ को लिखे पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। १९२४ में ज्येष्ठ वदी ५, २१ जूनको पड़ी थी।

३. मूलमें यहाँ लागे है।

कानूनके जरीयेसे किसीकी बुरी आदत छुड़ाना इतने ही से पशुबल नहीं कहा जाय — कानूनसे शरावका धंदा वंध करना और इसलिये शरावियोंका शरावका छोडना वलात्कार नहि है। यदि ऐसा कहा जाय कि शराब पीनेवालोंको वेत लगाये जायेंगे तो अवश्य पशुवल माना जाय। शराव वेचनेका इसका कर्तव्य नहीं है।

आपका,
मोहनदास

[पुनश्च:]

यं. इ. के वारेमें स्वामी आनन्द कहते हैं आपको वील भेजा गया है

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०११) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला।

१४४. पत्र: मु० रा० जयकरको

[२१ जून, १९२४]

प्रिय श्री जयकर,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। मित्रगण चाहें तो आपको लिखे गये मेरे पत्रका उपयोग कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमें हम दोनोंके बीच सम्पर्क बना रहे। उनका कार्य निष्कलंक रहे, इस वारेमें मैं केवल आपपर निर्भर हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि वे अपने चरित्रके वलपर ही धन एकत्र करें। कमी पड़नेपर हम वादमें हाथ बँटा सकते हैं। आपको मेरे स्वास्थ्यके विषयमें चिन्ता है, इसके लिए आभारी हूँ। वर्तमान परिस्थितिमें जितना विश्राम सम्भव है उतना ले रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

१४५. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

ज्येष्ठ वदी ५ [२१ जून, १९२४][1]

अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकके अवसरपर आना चाहो तो आ सकते हो लेकिन इस बैठकमें भाग लेनेका विचार या हठ त्याग देना चाहिए। प्रवेशपत्र देनेका काम जहाँतक मुझे मालूम है मौलाना मुहम्मद अलीके हाथमें ही होगा। प्रवेशपत्र जितने कम दिये जायें उतना ही अच्छा होगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१४६. पत्र : अब्बास तैयबजीको

२१ जून, १९२४

भाई साहब,

यह पत्र[2] पढ़कर वापस भेज दें। मेरा अनुमान सही निकला।

मोहनदास गांधीके
खुदा हाफिज

अब्बास तैयबजी
बड़ौदा शिविर

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० १०४६८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. उपलब्ध नहीं है।

१४७. टिप्पणियाँ

चरखेकी धुन

एक बूढ़े मित्र[1] अपने पत्रमें नौजवानोंकी त्रुटियाँ बताते-बताते आत्मनिरीक्षणमें लीन हो गये। वे लिखते हैं:[2]

इन मित्रने चरखा अभी-अभी चलाना शुरू किया है। ऐसी हालतमें यह भी कुछ कम बात नहीं है कि वे सूत कातते समय दुनियाको भूल जाते हैं। मुझे यकीन है कि जब सूतका तार आसानीसे और अच्छा निकलने लगेगा तब उन्हें अपने हृदयमें भगवानकी झलक दिखेगी और भगवान सूतके तारपर नाचते दिखाई देंगे। इस जगतमें ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसमें भगवान न हों? हम देखते हुए भी अन्धे हैं — इसीसे वे हमें नहीं दिखाई देते। चरखेसे भारतका संकट दूर होगा, भूखोंको रोटी मिलेगी, स्त्रियोंकी लाज बचेगी, काहिलोंकी सुस्ती मिटेगी, स्वराज्यवादीको स्वराज्य मिलेगा और संयम पालन करनेवालोंको सहायता मिलेगी। जब यह पवित्र भाव चरखेके साथ जुड़ जायेगा तब जरूर सूतपर भगवान नाचने लगेंगे और मेरे बुजुर्ग मित्रको चरखा चलाते हुए भगवानके भी दर्शन होंगे। जैसी जिसकी भावना होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

सोमाली देशमें चरखा

सोमाली देशके एक खोजा व्यापारी श्री मुहम्मद हासम चमन लिखते हैं कि सोमाली देशमें बहुत-सी औरतें बुनाईका काम करती हैं। अबतक वे मिलके सूतका कपड़ा बुनती थीं, किन्तु अब वहाँ चरखा भी चलने लगा है। अभी उसका प्रचार तो बहुत नहीं हुआ है, किन्तु काफी तेजीसे होता जा रहा है। सोमाली अरबोंपर हिन्दुस्तानके आन्दोलनका काफी असर हुआ है। भाई चमनका विश्वास है कि सोमाली देशमें चरखा बड़ी तेजीसे फैलेगा। उन्होंने यह भी लिखा है कि वहाँ पाठशालाएँ मुफ्त चलाई जाती हैं, ऐसा कहा जा सकता है। हर बच्चेको प्राथमिक शिक्षा केवल धार्मिक दी जाती है। तमाम बालकोंके लिए 'कुरान शरीफ' पढ़ना अनिवार्य है। यहाँ मकान बाँसके बने होते हैं और उनका खर्च नहींके बराबर होता है। हर बालक रोज एक मुट्ठी ज्वार लेकर पाठशाला जाता है और वही मास्टर साहबका वेतन है। अन्तमें भाई चमन यह भी बताते हैं कि यद्यपि सोमाली देशमें सिर्फ अरबोंकी आबादी है और हिन्दू व्यापारी इने-गिने हैं, फिर भी वहाँ हिन्दू व्यापारी आरामसे रहते हैं और अरब लोग उनके साथ मित्रभावसे बर्ताव करते हैं। हमारे देशमें हिन्दू और मुसलमान क्यों लड़ते हैं?

१. अब्बास तैयबजी; देखिए "पत्र: अब्बास तैयबजीको", १८-६-१९२४।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उन्होंने पत्रमें लिखा था कि वे चरखा चलाते-चलाते दुनियाको तो भूल गये किन्तु इतनेसे ही उनके हृदयमें ईश्वरीय दिव्य प्रकाश नहीं चमक पाया।

विवाहमें खादी

एक भाई वढ़वानसे लिखते हैं, झालावाड़ वीसा श्रीमाली स्थानकवासी शाखासे तीन सौ परिवार किसी कारणसे अलग हो गये हैं। उन्होंने कई बातोंमें होनेवाले अपने कई खर्च भी घटा लिये हैं। उनका एक निश्चय यह भी है कि विवाहमें कन्या खादीके वस्त्र और चन्दनका चूड़ा पहने। यदि दूसरे लोग भी इस प्रकारका नियम बना लें तो वे कई दिक्कतोंसे बच जायें और गरीबोंको बहुत मदद मिले। किन्तु उक्त भाईने साथ ही यह भी लिखा है कि इन परिवारोंमें अन्य अवसरोंपर अभी तक विलायती वस्त्र पहननेका ही चलन है और यह चलन सम्भवतः जारी भी रहे। यदि तीन सौ परिवारोंका यह छोटा-सा समुदाय चाहे तो सभी अवसरोंपर खादीके ही प्रयोगका व्रत ले सकता है। वढ़वानमें तैयार की हुई खादी भण्डारमें भरी पड़ी है। खादीके सम्बन्धमें इतना आन्दोलन किये जानेपर भी थोड़ी ही खादी तैयार हुई। यदि वह भी नहीं खपती तो इससे यही प्रकट होता है कि अभी खादी सार्वत्रिक नहीं हुई है; इतना ही नहीं, वह थोड़े-से लोगोंमें भी जड़ नहीं जमा पाई है। कितने दुःखकी बात है कि काठियावाड़की छब्बीस लाखकी आबादी हर वर्ष दस लाखकी खादी भी नहीं खरीद सकती।

एक पाठशालामें

एक शिक्षिका लिखती हैं:[1]

एक बहनकी भावनासे ही कितना कार्य हो सकता है, यह इस बातका एक अच्छा उदाहरण है। यदि किसान माँ-बापोंकी सभी पुत्रियाँ भी इस प्रकार अपने पीहरसे रुई मँगायें, बालकोंसे पिजवायें, उसका सूत कतवायें, और खादी बुनवायें और उसके कपड़े सिलवायें तो कितना लाभ हो, इसका हिसाब लोग स्वयं लगा कर देख सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन २२-६-१९२४

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें लिखा था कि मैं अपने पिताके खेतकी उगाई हुई कपाससे पाठशालामें काते हुए सूतका बना एक रूमाल गांधीजीके लिए भेज रही हूँ।

१४८. परदा और प्रतिज्ञा

मैंने उपर्युक्त शीर्षक इस खयालसे नहीं रखा कि दोनों बातोंमें किसी प्रकारका कुछ सम्बन्ध है। फिर भी मैं काठियावाड़ राजपूत-परिषद्के सिलसिलेमें इन्हीं दोनोंके विषयमें कुछ लिखना चाहता हूँ और इसीलिए मैंने इन दोनों शब्दोंको साथ-साथ ले लिया है। परिषद्के एक दर्शक लिखते हैं कि परिषद्में बेहद जोश था। लगभग पन्द्रह हजार राजपूत इकट्ठा हुए होंगे। स्त्रियोंकी संख्या भी अनुमानसे बहुत ज्यादा थी। वहाँ कमसे-कम एक हजार स्त्रियाँ आई होंगी। स्त्रियोंके लिए यह संख्या सचमुच बहुत भारी कही जा सकती है। परन्तु परदेका इन्तजाम इतना सख्त किया गया था कि अनजान लोगोंको तो मालूम भी नहीं हो सकता था कि परिषद्के पण्डालमें स्त्रियाँ भी बैठी हुई हैं। स्त्रियाँ ठहरनेके मुकामोंसे मण्डपतक इस खूबीके साथ लाई जाती थीं कि किसीको मालूम तक नहीं हो पाता था कि स्त्रियाँ जा रही हैं।

परिषद्के कार्यकर्त्ता ऐसे बढ़िया इन्तजामके लिए धन्यवादके पात्र अवश्य हैं; परन्तु परदेके इस अस्तित्वपर तो खेद ही प्रकट करना पड़ सकता है। कह सकते हैं कि अब परदेकी आवश्यकताका जमाना नहीं रहा। रामराज्यमें परदा था ऐसा प्रतीत नहीं होता है? हाँ, अभी रामराज्य आया नहीं है यह सच है; परन्तु अगर हम उसे लाना चाहते हों तो हमें आजसे ही वैसा आचरण प्रारम्भ कर देना चाहिए। हमें यह दिखा देना है कि हम परदेके न रहनेपर भी मर्यादाकी रक्षा कर सकते हैं। जिन लोगोंमें परदेका रिवाज नहीं हैं, कोई यह नहीं कह सकता कि उनमें मर्यादाका खयाल कम है। जब हम औरतोंको अपनी मिल्कियत समझते थे और उनका हरण किया जा सकता था, तब परदेकी जरूरत भले ही रही हो। यदि पुरुषोंका हरण होने लगे तो उन्हें भी परदेमें रहना पड़े। जहाँ ऐसी हालत है कि मनुष्य देखते ही बेगारमें पकड़ लिया जाता है वहाँ आज भी पुरुष परदेमें अर्थात् छिपकर रहते हैं। परन्तु पुरुषकी कुदृष्टिसे स्त्रियोंको बचानेका इलाज परदा नहीं, बल्कि पुरुषकी पवित्रता है।

पुरुषको पवित्र बनानेमें स्त्री बहुत सहायक हो सकती है। परदेमें रहनेवाली दबी हुई स्त्री पुरुषको भला कैसे पवित्र बना सकती है? यदि उसे शुरूसे ही पुरुषसे डरकर चलनेकी आदत डाली जाये तो वह पुरुषको कैसे सुधार सकती है? फिर स्त्रियोंको/ परदेमें रखना मानो उनमें एक बुराई पैदा करना है। मेरा मत है कि परदा सदाचारका पोषक नहीं, बल्कि घातक है। सदाचारके पोषणके लिए सदाचारकी शिक्षा, सदाचारके वातावरण और बड़े-बूढ़ोंके नीतियुक्त आचरणकी आवश्यकता है। मैंने परदेके सम्बन्धमें जो इतना लिखा है सो परिषद्का दोष दिखानेके लिए नहीं। पहले ही चरणमें परदा उठा देना कठिन काम था; परन्तु भविष्यके लिए कुछ राजपूतोंको इसके लिए तत्पर हो ही जाना चाहिए।

अब रही प्रतिज्ञा। मैंने सुना है कि लोगोंने प्रतिज्ञा भी अच्छी संख्यामें ली है। यह भी सुना है कि यह सच्चे दिलसे ली गई है। उसे लेते समय विधिका पालन समुचित रूपसे किया गया था। इसलिए हमें आशा रखनी चाहिए कि उसका पालन पूर्णरूपेण किया जायेगा; परन्तु मेरा अनुभव तो यह है कि बड़े-बड़े सम्मेलनोंमें ली गई प्रतिज्ञाएँ वहींकी-वहीं रह जाती हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रतिज्ञाएँ ली ही न जायें। मेरा मत और अनुभव तो यही है कि प्रतिज्ञाके बिना मनुष्य आगे बढ़ ही नहीं सकता। प्रतिज्ञाका अर्थ है मरते दमतक किसी बातपर दृढ़ रहनेका निश्चय। ऐसे निश्चयके बिना कोई काम नहीं हो सकता। 'यथाशक्ति' का कुछ अर्थ नहीं। प्रतिज्ञासे मनुष्यको अक्षय शक्ति मिलती है। 'यथाशक्ति' करनेकी इच्छा रखने-वाला कभी-न-कभी तो निर्बलताका परिचय देता ही है। उस समय वह निस्सहाय हो जाता है। परन्तु ऐसे समयमें प्रतिज्ञा मनुष्यको बचा लेती है। मनुष्य ईश्वरको साक्षी करके अनेक व्रत धारण करता है। जब उसकी शक्ति चली जाती है, तब अनाथोंका वह नाथ उसके पास आकर खड़ा हो जाता है।

हमने बदकिस्मतीसे प्रतिज्ञाका मान घटा रखा है। लोग प्रतिज्ञा लेते समय विचार नहीं करते; इसीसे वे उसका [समुचित] पालन नहीं कर पाते। हम प्रतिज्ञा-का पालन न करनेकी टेव पड़ जानेसे लगभग यह मानने लगे हैं कि उसका पालन करनेकी जरूरत ही नहीं है। हम आशा करते हैं कि जिन राजपूत भाई-बहनोंने प्रतिज्ञाएँ ली हैं, वे उनका पालन करेंगे।

परिषद्की सादगी कांग्रेसके अनुकरणके योग्य थी। इस बड़े जनसमूहको सिर्फ दाल-रोटीके सिवा और कोई भोजन नहीं दिया गया। बड़े समुदायोंमें इससे अधिक-की सम्भावना भी नहीं है; और वह शोभनीय भी नहीं है। सिख लोग भी अपने संघोंमें इसी तरहकी सादगी रखते हैं। सादगीका सबक अभी कांग्रेसको सीखना है। इससे खर्च और मेहनत दोनों बच जाते हैं, शरीरमें स्फूर्ति बनी रहती है और स्वास्थ्य भी नहीं बिगड़ने पाता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-६-१९२४

१४९. कपड़ा बुनवानेवालोंसे

जो सूत कातते हैं, उन्हें कपड़ा बुनवानेकी सुविधा नही मिलती, ऐसी शिकायतें अकसर सुननेमें आती हैं। बीजापुरमें (जहाँ कलोल होकर जाते हैं) श्री गंगास्वरूप गंगाबहन मजमूदार एक कार्यालय चलाती हैं। वहाँ निम्न दरोंपर खादी बुनाईकी व्यवस्था है:

पना इंचोंमें	लम्बाई	मोटा सूत दर	महीन सूत दर	विशेष लहरदार बुनावट, दर
२४	प्रति १५ गज	२.४ आना	२.८ आ०	२.१२ आ०
२८	" " "	२.१२ आ०	३.००	३.८ आ०
४२	" ८ "	२.१२ आ०	३.००	
४८	" " "	३.००	३.४ आ०	

बुनवानेके लिए सूत उपर्युक्त पतेपर भेजा जा सकता है। इस सम्बन्धमें अधिक जानकारी हासिल करनेके लिए इसी पतेपर पत्र लिखकर पूछ सकते हैं। इस उत्पादन केन्द्रने चुडगर पोल, अहमदाबादमें रीची रोडपर एक शुद्ध खादी भण्डार खोला है। जिसे जरूरत हो वह वहाँसे रुपया सेरकी दरसे पूनियाँ भी खरीद सकता है।

कपड़ा बुनवानेवालोंको याद रखना चाहिए कि अगर वे चाहे जैसा मोटा-झोटा और बिना नाप-जोखका सूत भेजेंगे तो कदाचित् उनकी इच्छा पूरी नहीं होगी। कमसे-कम एक तानेके लायक सूत तो भेजना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूत अच्छा और वटदार न होगा तो माल ठीक नहीं उतरेगा। पूनियाँ बेचनेकी व्यवस्था है, यह ठीक है; लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि सब अपनी-अपनी जरूरतकी रुई पींज लें, पींजनेकी क्रिया बहुत आसान है। रोज थोड़ा-सा कातनेवाले मनुष्यके लिए अपनी जरूरत-भरकी रुई धुन लेना बहुत ही सुगम है। जितनी रुई आध घंटेमें धुनी जा सकती है, उसका अच्छा सूत कातनेमें कमसे-कम चार घंटे लग जाते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-६-१९२४

१५०. बुनाईकी कमाई

मैंने बुनाईके कामसे होनेवाली आयके सम्बन्धमें अपने-अपने अनुभव भेजनेकी जो माँग की थी मुझे उसके फलस्वरूप कुछ पत्र मिले हैं। मैं उनमें से कुछ पठनीय पत्र इस अंकमें देता हूँ। खम्भातसे भावसार चन्दूलाल छगनलाल लिखते हैं।[1]

यह खेदकी बात है कि भाई चन्दूलाल ताने और बानेमें विदेशी सूतका उपयोग करते हैं। हम उम्मीद करते हैं कि वे कष्ट करके भी हाथके कते सूतका उपयोग करने लगेंगे। लेकिन उक्त तथ्यसे देखा जा सकता है कि यदि हाथका सूत मिले और खादीकी यथोचित खपत हो तो कोई भी बुनकर-कुटुम्ब अवश्य ही पर्याप्त कमाई कर सकेगा। भाई चन्दूलाल स्वयं और खम्भातके अन्य भावसार लोग खादी ही पहनते हैं। उस बातसे अन्य बुनकरोंको भी शिक्षा लेनी चाहिए। विदेशी कपड़ेका व्यापार करनेवाले लोग भी स्वयं खादी जरूर पहन सकते हैं।

उपाध्याय विजयशंकर काशीरामने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है:[2]

यह अनुभव केवल हाथ कते सूतका व्यवहार करनेवाले और नौसिखिया बुनकरका है। इसलिए यह हमारे लिए अधिक उपयोगी है। यह बात स्पष्ट है यदि हाथका कता सूत एकसार और बटदार हो तथा बुनकर अधिक अनुभवी हो तो वह अपनी आयमें वृद्धि कर सकता है।

तीसरा अनुभव भाई जीवनलाल चम्पानेरियाने भेजा है। वह निम्नलिखित है।[3]

जैसा जीवनलालने लिखा है, मैंने भी बुनकरकी नहीं वरन् बुनकर-परिवारकी आय दोसे-तीन रुपयेतक बताई है।

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था: असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेसे मेरी नौकरी चली गई थी, इसलिए मैंने कुछ ही महीनोंमें बुनाईका अपना पुराना पारिवारिक धन्धा सीख लिया और इससे मैं ८, ९ घंटे काम करके ५० रुपया मासिक कमा लेता हूँ। किन्तु उन्होंने हाथ कते सूतके अभावमें विदेशी सूतका उपयोग करनेकी बात लिखी थी।

२. यह भी यहाँ नहीं दिया गया है। लेखकने इसमें बताया था कि यदि कोई मनुष्य १० से १२ घंटे तक प्रतिदिन काम करे तो हाथ कते सूतसे ६ से ७ गज तक खादी बुनी जा सकती है। अन्य प्रक्रियाओंको पूरा करता हुआ भी वह चार दिनमें १६ गज खादी बुन सकता है और १५ रुपया प्रति माहकी आय कर सकता है। यह आय एक ग्रामीण अध्यापक या मुहर्रिरकी आयसे अधिक है। उनकी आय तो ८ से १० रुपये प्रतिमास तक ही होती है।

३. यह पत्र भी यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था, मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि गांधीजीने, एक बुनकर २ से ३ रुपये तक रोजाना कमा सकता है, यह हिसाब कैसे लगाया। बोरसदकी भावसार जातिका एक परिवार, जिसमें पति, पत्नी और एक लड़का या लड़की हों, १·३७ रुपये रोजसे अधिक नहीं कमाता और चूँकि पूरे परिवारको अपनी आजीविका चलानेके लिए काममें जुटा रहना पड़ता है, इसलिए बाकायदा पढ़ना-लिखना तो दूर, वे सभ्यता और संस्कृतिकी मोटी-मोटी बातें भी नहीं जान पाते। परिणामस्वरूप उनके जीवन शुष्क और नीरस हो गये हैं।

उक्त तीनों उदाहरणोंसे हम देखते हैं कि वुनकरका माल-भोक्ताके पास सीधा नहीं जाता, अपितु व्यापारीकी मार्फत जाता है। सामान्यतः तो ऐसा ही होता है। यदि वुनकर व्यापारीका काम भी करे और कताईपर अपना अंकुश रखे तो स्पष्ट है कि उसकी कमाईमें इजाफा होगा। यदि सभी जगह आन्ध्र-जैसा सूत काता जाये तो उससे बिक्रीके योग्य साड़ियाँ तैयार की जा सकती हैं और उनको वेचकर अवश्य ही अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

सामान्य वुनकरको नैतिक उन्नतिका अवकाश नहीं मिलता ऐसी शिकायत है और यह ठीक भी है। जो कारीगर परिवार युगोंसे वुनाईका धन्धा करते आते हैं उनमें अक्षरज्ञान और नीतिज्ञानका अभाव रहता है। यह स्थिति जाति-प्रथाके कठोर पालनका परिणाम है। शिक्षित लोगोंने आजकल मानो अपना एक अलग वर्ग ही वना लिया है। वे अन्य लोगोंकी ओर अर्थात् कारीगरों और किसानोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। हम सभी शिक्षित लोग कारीगरों और ऐसे ही अन्य वर्गोंकी पीठ-पर सवार हैं। मेरा तो दृढ़ मत है कि यदि शिक्षित वर्ग अशिक्षितोंकी पीठसे नीचे उतर जाये तो अशिक्षितोंके सामने जो समस्याएँ आती रहती हैं, न आयें। हमारी आजकी प्रवृत्तिका उद्देश्य यही है। शिक्षित वर्गके अनेक लोग श्रमका महत्व समझने लगे हैं और अशिक्षित वर्गके शोषणके पापको भी देखने लगे हैं। जवतक और कुछ नही होता, समझदार वुनकर अधिक नियमित होकर और अपनी कलाको अधिक व्यवस्थित करके थोड़ा अवकाश निकाल सकता है। ज्यों-ज्यों खादीकी प्रवृत्ति वढ़ती जायेगी त्यों-त्यों वुनाईका काम और सम्बन्धित धन्धे सुव्यवस्थित और सुदृढ़ होते जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-६-१९२४

१५१. तीन प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं:—

(१) क्या कताई-वुनाई करनेसे मनुष्य शूद्र नहीं वनता है?

(२) जो मनुष्य अपने वुद्धिवलसे ज्यादा कमाई करता है उसका भी कताई-वुनाई करके आजीविका पैदा करना क्या अर्थशास्त्रके प्रतिकूल नहीं है?

(३) क्या सबका कताई-वुनाई करना श्रम-विभाजनके सिद्धान्तको नष्ट नहीं करता है?

मेरे खयालसे शूद्र वह है जो नौकरी या दूसरोंकी मजदूरी करके आजीविका प्राप्त करता है। इस हिसाबसे जितने आदमी नौकरी करते हैं सब शूद्र होते हैं। जो मनुष्य स्वतन्त्र धन्धा करता है उसको शूद्र कैसे माना जाये? इसमें मैं वर्णाश्रमकी कुछ भी हानि नहीं देखता हूँ।

अब दूसरा प्रश्न। मेरी मति मुझे यह बताती है कि ईश्वरने हमें बुद्धि आत्म-दर्शनके लिए दी है। आजीविका कृषि इत्यादिसे प्राप्त करनी चाहिए। जगत्‌में जो अनीति होती है उसका बड़ा सबब बुद्धिका दुरुपयोग है। बुद्धिके ही दुरुपयोगसे जगतमें बड़ी असमानता फैल गई है। करोड़ों भीख माँगते हैं और सौ-दोसौ करोड़पति बनते हैं। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषको शारीरिक उद्यमसे आजीविका मिले। प्राचीनकालमें हमारे ऋषि लोग कृषि करते थे, गोशाला रखते थे। विद्यार्थी जंगलोंमें जाकर लकड़ियाँ लाते थे, इत्यादि।

अब रहा तीसरा प्रश्न। श्रम विभाजनकी कुछ भी हानि नहीं होती है। क्योंकि बढ़ई, सुनार इत्यादिको बुनाई करनेकी सलाह नहीं दी जाती। जो नौकरी करते हैं, वकालत करते हैं, जिनके पास कुछ भी धन्धा नहीं है, उनको बुनाईसे आजीविका पैदा करनेकी सलाह अवश्य दी जाती है। कताईको तो मैं आधुनिक कालमें और इस क्षेत्रमें यज्ञ समझता हूँ। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, धनिक, गरीब सबके लिए कताई आवश्यक यज्ञ है। भले लोग भूखों मरते हैं। वे कताई करके पेट भरें। परन्तु दूसरे सब उनके निमित्त प्रतिदिन ईश्वरके नामका स्मरण करते हुए कातें।

हिन्दी नवजीवन, २२-६-१९२४

१५२. पत्र : गंगाबहन वैद्यको[1]

ज्येष्ठ बदी ६ [२२ जून, १९२४][2]

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। आप एक महीनेमें यहाँ आ सकती हैं, मुझे यह जानकर हर्ष हुआ। जब हमारा मन दुःखी हो तब निश्चय ही दूसरोंके दोष देखनेकी अपेक्षा अपना ही दोष देखना अच्छा होता है।

आप अपनी पुत्रवधूको कदापि नहीं छोड़ सकती। आप अपने पुत्रसे सलाह करके काफी लम्बे अर्सेतक अलग रहें तो मैं समझता हूँ पुत्रवधू शान्त हो जायेगी। यदि इतने थोड़ेसे समयतक भी अलग रहना सम्भव न हो तो आप दुःखको अनिवार्य मानकर सह लें। कोई माता अपने सयाने पुत्रसे पृथक् रहे, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। पुत्र आज्ञाकारी है, इसलिए मेरे विचारसे आपको उससे अलग रहनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होगी। वह आपको जरूरतके मुआफिक पैसा देता रहे। यह जरूरी नहीं है कि बहूको यह बात बताई जाये। यदि पृथक् होनेपर भी सम्बन्ध मधुर

१. आश्रमकी प्रमुख महिलाओंमें से एक। सन् १९२५ में इन्होंने आश्रममें महिलाओंके लिए स्वतन्त्र हिन्दी वर्गकी माँग की थी और वह खोला भी गया था। इस वर्गको स्वयं गांधीजी हिन्दी पढ़ाने लगे थे।

२. गंगाबहन अपनी लड़कीके दो बच्चोंके साथ आश्रममें सन् १९२४ में पहुँची थीं। ज्येष्ठ बदी ६, २२ जूनको थी।

रहें तो किसी दिन मिलन अवश्य होगा। इसीका नाम कौटुम्बिक असहयोग है। जो असहयोग सहयोगकी खातिर किया जाता है वह धर्म है।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१२) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१५३. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ वदी ७, [२३ जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा सुन्दर अक्षरोंमें लिखा पत्र मिला। अब तो लगता है कि तुमको १० में से ५ नम्बर दिये जा सकते हैं। कापी भेज दूंगा।

यदि त्रुटियाँ अधिक हों तो उनमें से मुख्य-मुख्य चुन लो। पूरी शक्तिसे उन्हींको सुधारो। बाकी सुधार अपने-आप हो जायेंगे।

तुम्हें मानसिक चिन्ता करनेकी निश्चय ही मनाही है। मन ही हमारा मित्र है और मन ही शत्रु। इसपर अंकुश रखना तो हमारा ही काम है। इसके लिए किसी डाक्टरी दवाकी जरूरत नहीं। तुम अपने मानसिक दुःखमें मुझे पूरा साझेदार बनालो। जिस दिन तुम पहले-पहल मुझे मिली थीं मेरी दृष्टि उसी दिनसे तुमपर गड़ी हुई है। तभीसे मैंने तुम्हें अपनी सुशील बेटीके रूपमें माना है। मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हारे दुःखमें जितना भाग लेना चाहता था उतना नहीं ले सका हूँ क्योंकि मैं तुम्हें उतना समय नहीं दे सका। यह मेरे ही अपंगपनका द्योतक है। लेकिन तुम अपने मानसिक दुःखको अवश्य ही भुला दो। यही वास्तविक और सच कहें तो एकमात्र सुधार है।

रामदासको तुम्हारा पत्र दे दूंगा। अगर वह आना चाहेगा तो उसे रोकूंगा नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मैंने [पिछले पत्रमें] ज्येष्ठ वदी अमावस्या लिखा हो सो तो याद नहीं आ रहा है। यदि लिखा हो तो गलतीसे लिखा समझना।

प्रतिनिधिने मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५४७) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. वसुमती बहनको गांधीजीके १३, १६ और २० जून, १९२४ को लिखे पत्रोंसे प्रतीत होता है कि यह पत्र भी उन्होंने उसी वर्षमें लिखा होगा। इस वर्ष ज्येष्ठ बदी सप्तमी, २३ जूनको पड़ी थी।

१५४. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे[1]

[अहमदाबाद,
२४ जून, १९२४]

आपने जो कुछ देखा है, उसके बावजूद क्या आपको यह विश्वास है कि आप आपसी कलहको रोक सकेंगे? श्री गांधीने उत्तर दिया :

अवश्यमेव। मुझे तो ऐसी कोई बात नजर नहीं आती जिससे मैं आन्तरिक झगड़ोंको न होने देनेके बारेमें निराश हो जाऊँ। हो सकता है आपसी कलहका लोग अलग-अलग अर्थ लगायें किन्तु मुझे यकीन है कि कोई भद्दे झगड़े सामने नहीं आयेंगे। मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको चाहे वे स्वराज्यवादी हों या अपरिवर्तनवादी; इतना देशभक्तिपूर्ण अवश्य मानता हूँ कि वे किसी भी अन्य प्रश्नकी अपेक्षा देशके कल्याणका विचार पहले करेंगे। यह सर्वथा सत्य है कि स्वराज्यवादी अपने विचारोंके बारेमें उतने ही उत्कट हैं जितना मैं स्वयं अपने विचारोंके बारेमें हूँ। मैं उन्हें भी देशप्रेमके लिए उतना ही श्रेय देता हूँ जितना अपने-आपको देता हूँ। इस स्थितिमें मुझे ऐसा कोई भी कारण नजर नहीं आता जो दोनों पक्षोंके लिए एक समझौतेपर पहुँचना और अपने-अपने विचारके अनुसार कार्य करना असम्भव कर दे।

श्री गांधीसे दूसरा प्रश्न यह पूछा गया "क्या आप ऐसा नहीं मानते कि नवयुवक कार्यकर्ताओंके लिए चरखा चलाना बड़ा ही नीरस कार्य है?" उत्तरमें उन्होंने कहा :

यह केवल उन्हीं लोगोंको बहुत नीरस लग सकता है जिन्होंने उसे चलाया नहीं है और यह सोचनेका कष्ट नहीं किया कि वह आर्थिक उन्नति तथा एकताकी दृष्टिसे कितना उपयोगी है। जिन्होंने पश्चिमी परिस्थितियोंके अनुसार स्थिर किये गये पाश्चात्य लेखकोंके अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके आधारपर अपने विचार बनाये हैं उनका ध्यान भारतकी विशेष परिस्थितियोंकी ओर नहीं गया है। मैं बार-बार कह चुका हूँ कि भारतकी समस्या पूर्ण रूपसे उसकी अपनी विशिष्ट समस्या है। मैंने जिन बातोंकी वकालत की है लोग उनके बारेमें चाहे कुछ भी निर्णय दें, किन्तु इतिहास चरखेके सम्बन्धमें एक ही निर्णय देगा और वह यही है कि चरखा ही एकमात्र ऐसा साधन था जो भारतको अपने पैरोंपर खड़ा कर सकता था। मैं जानता हूँ कि इसमें कठिनाइयाँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं, किन्तु वे दुस्तर नहीं हैं और वे निश्चित रूपसे एवरेस्टकी चोटीपर पहुँचने जैसी कठिन भी नहीं है; और यदि किसी दिन कुछ बहादुर अंग्रेज इस साहसिक कार्यमें सफल हो गये तो इससे संसारको क्या लाभ होगा यह विशेषज्ञ ही जानें; किन्तु इतना तो एक साधारण व्यक्ति भी बता सकता है कि चरखेकी

१. गांधीजीसे यह भेंट साबरमती आश्रममें दोपहर बाद की थी।

सफलताका क्या अर्थ निकलेगा। मुझे विश्वास है कि ज्यों ही कांग्रेसके कार्यकर्त्ता इस साधारण-से आविष्कारकी सम्भावनाओंको महसूस करने लगेंगे त्यों ही चरखा बहुत ही थोड़े समयमें भारतीय घरोंमें स्थान प्राप्त कर लेगा और वह गाँवके सादे-से चूल्हेके बाद हमारे समाजकी दूसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु बन जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-६-१९२४

१५५. खुला पत्र: अ० भा० कां० कमेटीके सदस्योंके नाम

[२६ जून, १९२४ से पूर्व]

प्रिय मित्रो,

कांग्रेसको राष्ट्रकी सबसे बड़ी प्रातिनिधिक संस्था मानना ठीक ही है। यह बात अलग है कि वह देशकी उन्नति कर सकती है या नहीं। मेरी रायमें कांग्रेसका विधान प्रायः सर्वांगपूर्ण है और उसमें राष्ट्रके पूरे-पूरे प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था है। पर चूंकि खुद हममें ही खामियाँ हैं, हमने उसके अमलमें बड़ी लापरवाही दिखाई है। देशके कितने ही हिस्सोंमें हमारे मतदाताओंकी संख्या लगभग शून्यपर पहुँच गई है। पर फिर भी जो संस्था ४० सालसे चल रही है और जिसने अबतक कितने ही तूफानोंको झेल लिया है, वह अवश्य ही देशमें सबसे अधिक शक्तिशालिनी बनी रहेगी। हम अपनेको उसके चुने हुए प्रतिनिधि मानते हैं।

कांग्रेसने १९२० में एक प्रस्ताव[1] पास किया। यह एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी गरजसे रचा गया था। उक्त सालके खत्म होनेतक हम स्वराज्यसे थोड़ी ही दूर रह गये थे। पर चूंकि हम उस समय उसे न प्राप्त कर सके, इसलिए अब हमें यह नहीं मान बैठना चाहिए कि वह अनिश्चित कालके लिए मुल्तवी हो गया है। बल्कि इसके विपरीत हमें पिछले जैसा आशावादी बना रहना चाहिए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारे आसपासके निरुत्साहपूर्ण वायुमण्डलसे हमें जितनी अवधिमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी उम्मीद हो सकती है, उससे भी पहले स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए कृतसंकल्प हो जाना चाहिए।

इसी भावनासे प्रेरित होकर मैंने आपके विचारार्थ इन प्रस्तावोंकी रूपरेखा तैयार की है। कोई एक सप्ताहसे वे देशके सामने पेश हैं। उनपर जो टीका-टिप्पणी हुई है उसमें से थोड़ी-बहुत मैं पढ़ चुका हूँ। मै मानता हूँ कि मुझे अपने निश्चयोंका दुराग्रह नहीं है। पर इन टीका-टिप्पणियोंसे मेरा मत परिवर्तित हो नहीं पाया है। मेरे कोई खेत-खलिहान नहीं हैं; अगर चिन्ता कुछ है तो उस उपायकी खोज निकालनेकी है

१. देखिए खण्ड १९, परिशिष्ट १।

जिसके द्वारा हमारे स्वराज्य-प्राप्तिके रास्तेके तमाम विघ्नोंकी जड़पर कुठाराघात किया जा सके।

खादीपर मेरी श्रद्धा है। चरखेमें मेरा विश्वास है। इसके दो स्वरूप हैं — एक रुद्र दूसरा माँगलिक।

हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए जिस एकमात्र बहिष्कारकी आवश्यकता है वह है विदेशी कपड़ेका बहिष्कार। यह बहिष्कार खादीके रुद्र रूपके द्वारा सम्भव होगा। खादीका यह रुद्र रूप ही हमारी आत्माको हीन बनानेवाले ब्रिटिश स्वार्थका नाश कर सकता है। जब वह स्वार्थ नष्ट हो जायेगा केवल तभी हम इस लायक होंगे कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके साथ बराबरीसे बात कर सकें। आज तो वे अपने स्वार्थमें ऐसे अन्धे बने हुए हैं जैसा कि इस स्थितिमें कोई भी और हो सकता है।

माँगलिक रूपमें वह ग्रामवासियोंको एक नया जीवन और नई आशा प्रदान करता है। वह लाखों भूखे-पेट लोगोंको अन्न दे सकता है। खादीके द्वारा हम गाँववालोंके सम्पर्कमें आयेंगे और हमें उनके सुख-दुःख अपने सुख-दुःख लगेंगे। लाखों लोगोंके लिए यदि कोई सर्वोत्तम शिक्षा हो सकती है तो वह यही है। यह जीवनदायिनी है। अतएव मुझे इस बातमें जरा भी हिचकिचाहट न होगी कि स्वराज्य प्राप्त होनेतक मैं कांग्रेसको खादीका उत्पादन और खादीका ही प्रचार करनेवाली संस्थाके रूपमें बदल दूँ — ठीक उसी तरह जिस तरह मैं उसे, अगर शस्त्र-संचालनका कायल होता और उसके द्वारा इंग्लैंडसे युद्ध करनेके लिए तैयार होता तो केवल शस्त्रास्त्रोंकी शिक्षा देनेवाली संस्था बना डालता। कांग्रेस उसी अवस्थामें सच्ची राष्ट्रीय संस्था हो सकती है जब वह अपनी सारी शक्ति सिर्फ उसी काममें लगाये जिससे देशको जल्दीसे-जल्दी स्वराज्यके समीप लाया जा सकता है।

चूंकि मैं इस बातका कायल हूँ कि खादीमें हमें स्वराज्य दिला सकनेकी शक्ति है। इसीलिए मैंने खादीको अपने कार्यक्रममें सबसे प्रधान स्थान दिया है। अगर मेरी तरह आपका विश्वास उसपर न हो तो आप निस्संकोच उसे एकबारगी रद कर दीजिए। पर अगर आप भी उसके कायल हों तो आप भी मेरे द्वारा प्रस्तुत बातोंको ऐसा मानें कि कमसे-कम इतना तो किया ही जाना चाहिए। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि अगर मुझे ऐसी आशंका न होती कि आपपर अनुचित बोझ पड़ जायेगा तो मैं आपसे रोजाना ४ घण्टे चरखा चलानेकी प्रार्थना करता — बजाय आध घंटेके।

इस सिलसिलेमें मुझे स्वराज्यवादियोंके बारेमें अपना अविश्वास कबूल करना चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि औरोंकी बनिस्बत उनमें खादीका इस्तेमाल घटता जा रहा है। यह देखकर मेरे चित्तको बड़ी व्यथा हुई कि कितने ही स्वराज्यवादी लोगोंने खादीको आखिरी नमस्कार कर लिया है और अब वे विदेशी कपड़ा पहनने लगे हैं और कुछ लोगोंने धमकी दी है कि अगर आप हमारे पीछे इसी तरह पड़े रहेंगे तो हम खादी और चरखेको बिलकुल छोड़ देंगे। मैंने सुना है कि बहुतेरे अपरिवर्तनवादियोंकी भी लगभग ऐसी ही हालत है। अब भी वे प्रसंगोपात्त समारोहोंपर ही खादी पहनते हैं। वे घरपर तो विदेशी या मिलका कपड़ा पहननेमें संकोच नहीं मानते।

मुझे खुश करनेके लिए खादी पहनना एकदम निरर्थक है और खास-खास मौकोंपर पहनना कोरा ढकोसला। क्या आप इस बातसे सहमत नहीं हैं कि हमें अपने राष्ट्रीय जीवनसे सरपरस्ती जाहिर करने या पाखण्डपूर्ण आचरण करनेको निर्मूल कर दिया जाना चाहिए और यदि आप खादीकी सामर्थ्यके कायल हों तो आप उसे इसलिए न अपनायें कि मैं उसकी हिमायत करता हूँ, बल्कि इसलिए कि वह आपके जीवनका एक अंग हो गया है। बड़े लाटके यहाँ होनेवाले समारोहोंमें शामिल होनेके लिए एक खास पहनावेमें जाना पड़ता है। यह बात ठीक है। मगर मुमकिन है आगे चलकर किसी भी दिन खादी पहनकर आनेकी मुमानियत कर दी जाये और फिर एक कदम बढ़कर छोटी और बड़ी धारासभाओंमें भी खादी पहनकर न आनेका हुक्म जारी हो सकता है।

एक अन्य मुश्किल सवाल वकालत करनेवाले वकीलोंका है। मुझे तो यह साफ दिखाई देता है कि अगर हम उनके बिना कांग्रेसका काम नहीं चला सकते तो हमें साफ तौरपर यह बात कबूल करके उस बहिष्कारको समाप्त कर देना चाहिए। मैं मंजूर करता हूँ कि धारासभाके बहिष्कारके समाप्त कर दिये जानेके बाद अदालतोंका बहिष्कार भी स्वभावतः दूसरा कदम हो जाता है। अगर धारासभामें जानेसे कुछ सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं तो अदालतोंमें वकालत करनेसे भी कुछ सुविधा जरूर होगी। हम सब इस बातको जानते हैं कि स्वर्गीय मनमोहन घोषने अपनी वकालतकी सारी आमदनी गरीबोंकी सहायतामें लगाकर अनुपम सेवा की। अगर सरकारी संस्थाओंमें कोई बात आकर्षक और मोहक न होती तो उनकी हस्ती ही न रही होती। पर यह कोई नई बात नहीं है। हमारा युद्ध शुद्ध आत्मयज्ञका युद्ध है। हम देशके स्थायी लाभके लिए इन संस्थाओंमें सन्देहास्पद, अस्थायी और आंशिक लाभका त्याग करते हैं। अगर हमारे अन्दर इज्जत नामकी कोई चीज हो तो क्या हमें यह उचित नहीं है कि और किसी कारणसे नहीं तो सिर्फ इसी कारणसे कि हमारे आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा दूसरी जगहके जिन वकीलोंकी सनद रद कर दी गई है, हम उन्हीकी खातिर अदालतोंका बहिष्कार जारी रखें? हम प्रतिष्ठाकी परम्पराको तभी स्थापित कर सकेंगे जब हम समाजके अदनासे-अदना व्यक्तिकी भी प्रतिष्ठाका खयाल रखेंगे। इसलिए वकालत करनेवाले वकीलोंको सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रतिष्ठाके सामने कौटुम्बिक परिस्थितियोंका विचार नहीं किया जा सकता। यह सोचनेकी भूल हरगिज न करनी चाहिए कि हमारे भीतर आत्म-सम्मानकी भावनाका लोप हो जानेपर भी हम एक वर्षके अन्दर स्वराज्य पा सकेंगे। जबतक कांग्रेस स्वाभिमानी, पराक्रमी, मान-धनी, तेजस्वी, निःस्वार्थ और ऐसे बलिदानी देशभक्त पैदा न करेगी जो किसी भी बातका त्याग करनेसे मुँह न मोड़ें, तबतक हमारे इस दीन देशमें वह स्वराज्य दीर्घकालमें भी स्थापित नही हो सकता जिसमें गरीबसे-गरीब व्यक्ति भी भाग ले सकता हो। भले ही आप और मैं देशकी इस नोंच-खटोचमें कुछ ज्यादा फायदेमें रहें, पर यकीनन आप उसे स्वराज्य नहीं कहेंगे।

क्या अब स्कूलोंके बारेमें भी कुछ कहना आवश्यक है? अगर हम अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें पढ़ानेका मोह न रोक सकें तो फिर शिक्षा-प्रणालीके हमारे विरोधका

कोई अर्थ मेरी समझमें नहीं आता। यदि सरकारी पाठशालाएँ, अदालतें और धारा सभाएँ इतनी अच्छी चीजें हैं कि हम उनकी ओर खिंचे बिना नहीं रह सकते तो फिर हमारा विरोध वास्तवमें व्यक्तियोंके प्रति है, प्रणालीके साथ नहीं। असहयोगकी कल्पना तो ऊँचे उद्देश्यके लिए पैदा हुई है। अगर हमारी यही इच्छा हो कि प्रणाली ज्योंकी-त्यों रहे सिर्फ अंग्रेजोंके बजाय हम लोग वहाँ जा बैठें तो मैं मानता हूँ कि हमारा बहिष्कार केवल फिजूल ही नहीं, हानिकर भी है। सरकारकी इस नीतिका स्वाभाविक परिणाम होगा हिन्दुस्तानको यूरोपके साँचेमें ढालना और जहाँ हम यूरोपके रंगमें-रंग गये कि बस हमारे अंग्रेज प्रभु खुशी-खुशी सरकारकी बागडोर हमारे हाथोंमें दे देंगे। अपने रजामन्द कारिन्दोंके तौरपर वे हमारा स्वागत करेंगे। उस विनाशकारिणी पद्धतिमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। इतना अवश्य है कि मेरी जितनी थोड़ी-बहुत शक्ति है वह सबकी-सब मैं उसके खिलाफ लगा दूँगा। मेरा स्वराज्य तो हमारी संस्कृतिकी आत्माको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें है। मैं बहुत-से नये पाठ लिखना चाहता हूँ किन्तु वे निश्चय ही होंगे भारतीय पाटीपर। मैं खुशीसे पश्चिमसे भी कुछ बातें ले लूँगा, पर तब जबकि मैं उसका मूल उसे अच्छे-खासे सूद समेत लौटा सकूँ।

इस दृष्टिसे देखनेपर पाँचों बहिष्कार कांग्रेसके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। वे जनताके स्वराज्यके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

ऐसे भारी प्रश्नका निर्णय केवल हाथ ऊँचे उठाकर नहीं किया जा सकता। दलीलोंसे भी वह हल होनेवाला नहीं है। इसका निर्णय हम सबको अपनी अन्तरात्मा की पुकारपर ध्यान देकर करना चाहिए। इसमें से हर व्यक्तिको चाहिए कि हम एकान्तमें जाकर ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह हमें निश्चित राह दिखाये।

यह आजादीकी लड़ाई आपके और मेरे लिए कोई खिलवाड़ नहीं है। यह हमारे जीवनकी सबसे अधिक गम्भीर वस्तु है। इसलिए अगर मेरा बनाया कार्यक्रम आपको न जचे तो आपका कर्त्तव्य है कि आप चाहे जो हो, उसे तत्काल रद करें।

मातृभूमिकी सेवामें
आपका साथी,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५६. जेलके अनुभव — ९

कुछ कैदी वार्डर

कैदियोंको जेलके अधिकारी या वार्डर नियुक्त करनेकी पद्धतिपर मैं पहले ही विचार कर चुका हूँ। मैं इस पद्धतिको बिलकुल खराब और पतनकारी मानता हूँ। जेलके अधिकारी इस बातको जानते हैं। वे कहते हैं कि इसे मितव्ययिताके ध्यानसे अपनाया जाता है। उनका खयाल है कि जेलोंका प्रशासन, बिना कैदी अधिकारियोंकी सहायता लिये आज जितने वैतनिक कर्मचारी होते हैं उनके द्वारा दक्षतापूर्ण नहीं चलाया जा सकता। इसमें कोई सन्देह नही कि जबतक पिछले अध्यायमे मेरे द्वारा सुझाया गया सुधार प्रारम्भ नहीं किया जाता, तबतक जेलका खर्च बहुत ज्यादा बढ़ाये बिना उक्त पद्धतिको समाप्त कर देना सम्भव नहीं है।

जो हो, इस अध्यायमें जेलोंके सुधारपर और अधिक विचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। यहाँ तो मैं केवल उन कैदी अधिकारियोंसे सम्बन्धित अपने सुखद अनुभवोंका वर्णन करना चाहता हूँ, जो मेरी देखभाल करने और मुझपर नजर रखनेके लिए नियुक्त किये गये थे।

जब श्री बैंकर और मैं यरवदा सेन्ट्रल जेलमें स्थानान्तरित किये गये, तब वहाँ एक पहरेदार और एक 'बरदासी' था। बरदासी क्या होता है, यह उसके नामसे ही स्पष्ट है — मात्र एक टहलुआ। वह कैदी पहरेदार, जिससे पहले-पहल हमारी पहचान हुई, पंजाबकी तरफका एक हिन्दू था। उसका नाम था हरकरन। उसे खून करनेके अपराधमें सजा मिली थी। उसका कहना था कि खून पहलेसे सोच-विचार कर नहीं, बल्कि एकाएक गुस्सेमें आकर किया था। धन्धेसे वह अदना व्यापारी था। उसे चौदह सालकी सजा हुई थी, जिनमें से लगभग नौ साल वह काट चुका था। वह काफी बूढ़ा था। जेलके जीवनका उसपर बुरा असर पड़ा था। वह हमेशा कुछ सोचमें डूबा रहता था और रिहाईके लिए बेचैन रहता था। इसलिए वह उदास रहा करता था और चिड़चिड़ा हो गया था। उसे अपने इस ऊँचे ओहदेका खयाल बना ही रहता था। जो उसकी आज्ञा मानते और उसकी सेवा-करते उनपर वह मेहरबान रहता था, किन्तु जो उसके मार्गमें आड़े आते, उन्हें वह हर तरहसे परेशान करता रहता था। उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि उसने खून किया होगा। उर्दू वह धड़ल्लेसे पढ़ लेता था और वह धार्मिक वृत्तिका था। वह उर्दूमें भजन बाँचा करता था। यरवदाके पुस्तकालयमें हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, सिन्धी, कन्नड़, तमिल आदि कई भारतीय भाषाओंमें कैदियोंके लिए कुछ पुस्तकें हैं। हरकरनमें जेलके नियमोंकी अवज्ञा करके छोटी-मोटी चीजें छुपाकर अपने पास रखे रहनेका दोष था। बहुमत उसके साथ था। छोटी-मोटी चीजें भी न चुराना मिथ्या दम्भ और मूर्खता माना जाता। जो कैदी इस अलिखित कानूनका पालन न करता, उसके साथी उसका जीवन दूभर

कर देते। सामाजिक बहिष्कार उसके लिए छोटेसे-छोटा दण्ड होता। यदि जेलका प्रांगण बारह इंचकी गहराईतक खोदा जाये तो उसमें से चम्मचों, छुरियों, बर्तनों, सिगरेटों और इसी प्रकारकी अन्य चीजोंके रूपमें अनेक गुप्त भेद बाहर निकलेंगे। यरवदाका सबसे पुराना बाशिन्दा होनेके नाते हरकरन कैदियोंके लिए चौधरी ही बन गया था। यदि किसी कैदीको किसी चीजकी जरूरत होती तो वह उसे हरकरनसे मिल सकती थी। मुझे अपनी पाव रोटी और नीबू काटनेके लिए छुरीकी जरूरत थी, यदि मैं उसके जरिये छुरी लेना मंजूर करता तो हरकरन छुरी लाकर दे सकता था। इसके बाद भी अगर मैं अधीक्षकसे ही उसे माँगनेकी लम्बी-चौड़ी कार्रवाईमें पड़ना चाहूँ तो फिर यह मेरी मर्जी; और उसमें झिड़क दिये जानेकी सम्भावना भी थी। जब हम दोनों दोस्त हो गये तब उसने मुझे अपने हैरत अंगेज तमाम कारनामे सुनाये कि कैसे वह अधिकारियोंको चकमा देता था, कैसे वह अपने और दूसरोंके लिए स्वादिष्ट पकवान प्राप्त करता था, जो चाहिए उसे प्राप्त करनेके लिए कैदी कौन-कौनसी चतुर चालें चलते हैं; और क्यों (उसकी रायमें) उन चालोंका सहारा न लेना असम्भव है — यह सब वह मुझे बड़े विस्तार और बड़े तपाकके साथ सुनाया करता था। जब उसे यह अन्दाज लगा कि मेरी न तो उन कारनामोंमें रुचि है और न मैं उसके धन्धेमें शामिल होना चाहता हूँ तो वह बड़े अचरजमें पड़ गया। बादमें, अपना सारा भेद खोल देनेकी जो गलती वह कर बैठा था, उसको कुछ-न-कुछ दुरुस्त करनेकी कोशिश की और मुझे यह विश्वास दिलाना चाहा कि वह मेरी बात समझ गया है और आगे ऐसे काम नहीं करेगा। किन्तु मुझे इसमें शक है! उसका पश्चात्ताप दिखावा था। किन्तु इससे पाठकको यह धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि कारागारके अधिकारी ऐसी हरकतसे वाकिफ नहीं हैं। ये वे राज हैं जिन्हें हरएक जानता है। अधिकारी इनके बारेमें जानते हों इतना ही नहीं वरन् बहुधा वे उन कैदियोंसे सहानुभूति भी रखते हैं, जो अपने सुख और आरामके लिए इस तरहके काम करते रहते हैं। अधिकारी "जियो और जीने दो" के सिद्धान्तमें विश्वास करते हैं। जो कैदी, अपने वरिष्ठ अधिकारियोंकी उपस्थितिमें सही व्यवहार करता है, उनकी आज्ञाओंका पालन करता है, अपने साथियोंसे झगड़ता नहीं और अधिकारियोंको परेशानीमें नहीं डालता, वह अधिक आराम पानेके लिए लगभग किसी भी नियमको तोड़नेके लिए स्वतन्त्र है।

तो, हरकरनसे पहली मुलाकात कुछ खास अच्छी नहीं रही। वह जानता था कि हम लोग 'असाधारण' कैदी हैं। [किन्तु वह भी मानता है कि] एक प्रकारसे मैं भी तो 'असाधारण' ही हूँ। आखिर मैं भी तो जेलका एक अफसर हूँ और लम्बे अरसेतक सम्मानपूर्ण सेवा कर चुका हूँ। मेरे लिए तो आदमी-आदमी सब बराबर हैं। श्री बैंकर मुझसे दूसरे दिन सवेरे ही अलग कर दिये गये। अब हरकरनने मुझपर अपनी सत्ताका पूरा जोर आजमाना शुरू कर दिया। मुझे यह नहीं करना चाहिए, वह नहीं करना चाहिए। मुझे अमुक हदके अन्दर ही रहना चाहिए। इसका मैंने हकीमजीको लिखे गये अपने पत्रमें उल्लेख किया है। किन्तु वह जो-कुछ भी

कहता या करता था, उसके लिए उससे रुष्ट होने अथवा प्रतिशोध लेनेका तनिक भी विचार मेरे मनमें नहीं आया। मैं अपने काम और अध्ययनमें इतना व्यस्त था कि हरकरनके सीधे-सादे, वचकाने आदेशोंके बारेमें सोचता भी नहीं था। मैं क्षण-भर ऐसे आदेशोंका मजा-भर ले लेता। हरकरनको आखिर अपनी भूल मालूम हुई। उसने जब देखा कि मैं न तो उसकी बेमतलबकी अफसरीसे अप्रसन्न होता हूँ, न उसपर कोई ध्यान ही देता हूँ तो वह हतप्रभ हो गया। ऐसा हो सकता है, यह उसने सोचा भी नहीं था। अतः उसने वही मार्ग अपनाया, जो अब उसके लिए खुला रह गया था अर्थात् यह मान लेना कि औरोंमें और मुझमें कुछ अन्तर जरूर है। मेरी प्रतिक्रिया उसके ढंगकी नहीं हुई, वह मेरे ढंगकी प्रतिक्रियापर आ गया। मेरे इस अहिंसात्मक असहयोगका नतीजा निकला मुझसे उसका सहयोग। सब प्रकारका अहिंसात्मक असहयोग, चाहे वह व्यक्तियोंके बीच हो या समाजोंके, चाहे शासकों और शासितोंके बीच, अन्तमें अवश्य ही हार्दिक सहयोगको जन्म देता है। जो हो, मैं और हरकरन पक्के दोस्त हो गये। जब श्री बैंकर वापिस मेरे पास भेज दिये गये, तब रही-सही कसर भी पूरी हो गई। कारागारमें उनके अनेक कामोंमें से एक काम था मेरे यत्किंचित् गुणोंका ढोल पीटना। उनका खयाल था कि हरकरन और अन्य लोग मेरी महत्ताको समझते नहीं हैं, दो या तीन दिनमें ही मेरी इतनी सार-संभाल होने लगी मानो मैं ऊनके कपड़ोंमें लपेट रखने लायक कोई नन्हा-सा बच्चा होऊँ। मैं उसकी निगाहमें इतना महान् हो गया कि मुझे अपनी कोठरी स्वयं बुहारने या कम्बलोंको धूप दिखाने नहीं दी जा सकती थी। हरकरन पूरा खयाल तो रखने ही लगा था, किन्तु अब वह इतना अधिक खयाल रखने लगा कि मुझे परेशानी मालूम होने लगी। अब मेरा स्वयं कुछ करना, यहाँतक कि एक रूमाल धोना भी सम्भव नहीं रहा। हरकरन मेरे रूमाल धोनेकी आवाज सुनता तो गुसलखानेमें घुस आता और रूमाल मुझसे छीन लेता। अब चाहे अधिकारियोंको शक हो गया हो कि हरकरन हमारे लिए कुछ अवैध काम करता है या फिर चाहे वह बिलकुल आकस्मिक घटना हो, किन्तु हरकरनको हमारे पाससे दूर कर दिया गया, जिसका हमें अफसोस हुआ। कदाचित् यह बिछोह हमारी अपेक्षा उसे अधिक खला। हमारे साथ उसकी बड़े ही ठाठकी गुजरती थी। हमारी भोजन-सामग्री तथा मित्रोंके द्वारा बाहरसे भेजे गये फल आदिमें से उसे खूब खानेको मिलता और सो भी खुल्लमखुल्ला। और चूँकि जेलमें हमारी शोहरतका ढिंढोरा पिट गया था, हमारे सम्पर्कसे वह कैदियोंकी निगाहमें और ऊँचा चढ़ गया।

जब मुझे अपने कोठरीके बरामदेमें सोनेकी इजाजत मिल गई तो अधिकारियोंने सोचा कि अब मुझे एक ही पहरेदारके भरोसे छोड़ना जोखिमकी बात होगी। कदाचित् यह नियम भी रहा हो कि जिस कैदीकी कोठरी खुली रहती हो, उसकी देख-रेखके लिए दो पहरेदार रहें। यह भी हो सकता है कि एक और पहरेदार मेरी सुरक्षाके लिए बढ़ा दिया गया हो। कारण कुछ भी हो, रातके लिए एक और पहरेदार तैनात कर दिया गया। इसका नाम था शाबास खाँ। मैंने कारण कभी पूछा नहीं, किन्तु मुझे

लगा कि हरकरन हिन्दू है तो सन्तुलनके लिए दूसरा मुसलमान चुना गया। शावाश खाँ एक ताकतवर बलूची था। वह हरकरनका समकालीन था। दोनों एक दूसरेको अच्छी तरह जानते थे। शावास खांको भी खूनके अपराधमें सजा हुई थी। जिस कबीलेका वह था, उसमें झगड़ा हो जानेसे खून हुआ था। शावास खाँ जितना ऊँचा था उतना ही चौड़ा। उसके डीलडौलको देखकर मुझे हमेशा शौकत अलीकी याद आती। शावाश खाँने मुझे पहले ही दिन आश्वस्त कर दिया। उसने कहा, "मैं आपपर निगरानी बिल्कुल नहीं रखूंगा। मुझे अपना दोस्त समझिए और जो मर्जीमें आये कीजिए। मैं आपकी किसी बातमें दखल नहीं दूंगा, आप कोई काम कराना चाहें और मैं उसे कर सकूंगा तो मुझे बहुत खुशी होगी।" शावाश खाँने जो कहा, वही किया। वह हमेशा नम्रताका व्यवहार करता था। वह हमेशा कारागारके सुस्वादु मिष्टान्न खाता और मुझसे स्वीकार करनेको कहता और मेरे इनकार करनेपर उसे हार्दिक दुःख होता। वह कहा करता था, "आप नहीं जानते — अगर हम ये कुछ चीजें न हथियायें तो रोज-रोज वही चीजें खाते-खाते जिन्दगी दूभर हो जाये। आप लोगोंकी बात दूसरी है। आप ईमानकी खातिर आये हैं। यह बात आपको सहारा दिया करती है, जब कि हम जानते हैं कि हम गुनाह करके आये हैं। हम लोग तो बस जितनी जल्दी हो, बाहर जाना चाहते हैं।" शावाश खाँ जेलरका कृपापात्र था। उसकी तारीफ करते-करते जोशमें आकर एक दिन उन्होंने कहा था, "इसकी तरफ देखिए। मेरी नजरमें वह बड़ा ही शरीफ आदमी है। गुस्सेमें आकर वह खून कर बैठा, जिसके लिए सच्चे दिलसे पछताता है। यकीन मानिए कि [जेलके] बाहर भी, शावाश खाँसे ज्यादा अच्छे आदमी बहुत नहीं मिलेंगे। यह समझना गलत है कि सभी कैदी पक्के अपराधी होते हैं। शावाश खांको मैंने बहुत ही विश्वसनीय और शिष्ट पाया है। यदि मेरे हाथमें सत्ता होती तो मैं उसे आज ही मुक्त कर देता।" जेलरका खयाल गलत नहीं था। शावाश खाँ सचमुच अच्छा आदमी था। उस जेलमें केवल वही एक भला कैदी हो सो बात नहीं थी। यहाँ हम यह भी समझ लें कि नेक उसे जेलने नहीं बनाया था, वह पहलेसे ही नेक था।

जेलोंमें यह रिवाज है कि किसी भी कैदी-अधिकारीको बहुत समयतक एक ही कामपर न रखा जाये। हमेशा तबादले होते रहते हैं। यह एहतियात जरूरी है। वर्तमान पद्धतिके अधीन कैदियोंको घनिष्ठ सम्बन्ध बनानेका अवसर नहीं दिया जा सकता। अतः हमें कैदी-अधिकारियोंका अत्यन्त विविध अनुभव हुआ। लगभग दो महीने बाद शावाश खाँकी जगह आदन आ गया। इस वार्डरका परिचय मैं पाठकको आगामी अध्यायमें दूंगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५७. "तुमसे तो ऐसी आशा नहीं थी!"

एक प्रतिष्ठित मित्र लिखते हैं:

> यदि हम अवसर रहते कारगर प्रयत्न न करेंगे तो आज जो-कुछ पंजाब पर गुजर रही है, कल वही संयुक्त प्रान्तपर गुजरेगी। अवधमें हिन्दू-मुसलमानोंमें तनाजा बढ़ रहा है। नमूनेके तौरपर मैं बारावंकीके सम्बन्धमें नीचे कुछ तथ्य दे रहा हूँ। उस शहरके म्युनिसिपल बोर्डपर गहरे इलजाम लगाये गये हैं। उसके मुसलमान सदस्य जो पहले पक्के असहयोगी थे और अब भी हैं, वे इस्तीफा दे चुके हैं। इसलिए म्युनिसिपल बोर्डमें अब हिन्दू सदस्य ही रह गये हैं। उन इलजामोंके बारेमें विस्तारपूर्वक जाँच करनेका समय मुझे नहीं मिला, किन्तु एक बात लगभग सर्वविदित है और उससे मुसलमानोंके दिलमें कटुता पैदा हो रही है। इन हिन्दू सज्जनोंने कानून बना दिया है कि "बोर्डको जितनी दरख्वास्तें दी जायें, वे सब हिन्दी लिपिमें होनी चाहिए। किसी अन्य लिपिमें लिखी हुई दरख्वास्तें नहीं ली जायेंगी।

उक्त समाचार पाकर मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ क्योंकि बारावंकीपर, यदि मुझे ठीक याद है तो मौलाना शौकत अलीको गर्व था। वे बारावंकीके हिन्दू और मुसलमान, दोनोंकी बड़ी तारीफ किया करते थे। मैं अब भी उम्मीद करता हूँ कि मेरे संवाददाताको गलत खबर लगी होगी। मैं विश्वास नहीं करता कि हिन्दू सदस्योंके बारेमें जो कहा गया है, उन्होंने वैसी कोई विचारहीन कार्रवाई की होगी। यदि वे हिन्दी-लिपिको मुसलमानोंसे स्वीकार करानेके लिए जबरदस्ती करेंगे तो वे हिन्दीको हानि ही पहुँचायेंगे। हिन्दुस्तानमें जहाँ-कहीं हिन्दुस्तानी प्रान्तीय भाषा है वहाँ लोगोंको इस बातकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे अपनी दरख्वास्तें देवनागरीमें लिखें या उर्दूमें। अन्तमें कौन-सी लिपि मंजूर होगी यह तो दोनों लिपियोंके आन्तरिक गुणों-पर ही अवलम्बित है।

मैं यह नहीं समझ पाया कि मुसलमान सदस्योंने इस्तीफा क्यों दिया। मैं आशा करता हूँ कि बारावंकीसे कोई सज्जन पूरी बात लिख भेजेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५८. अकालियोंका संघर्ष

लोगोंको यह आशा हो गई थी कि अकाली नेताओं और पंजाब सरकारके बीच सुलहकी जो बातें हो रही हैं, वे फलीभूत हो जायेंगी और गुरुद्वारेका मसला सन्तोषजनक रीतिसे हल होगा तथा अकालियोंके कष्ट-सहनका अन्त आ जायेगा। पर अगर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिकी खबर सच हो तो कहना होगा कि सरकारका मनसूबा कुछ और ही था। कहते हैं, अकाली नेता सब तरहसे तैयार थे, पर सरकार उन कैदियोंको छोड़ देनेका वायदा करने तकके लिए तैयार नहीं हुई, जिन्हें उसने इसलिए नहीं कि उन्होंने हिंसा-कृत्य किये थे या करनेकी कोशिश की थी, बल्कि इसलिए कैद कर रखा है कि उन्होंने गुरुद्वारा आन्दोलनमें योग दिया था।

ऐसी हालतमें बहुत मुमकिन है अकालियोंका संघर्ष और भी जोर-शोरके साथ चलाया जाये। सम्भव है, सरकार भी ज्यादा दमन करे। खुशकिस्मतीसे अब हम दमनके आदी हो गये हैं। उसका डर हमारे दिलसे निकल गया है। अकालियोंने दिखा दिया है कि वे किस धातुके बने हैं।

हमें देखना यह है कि अकाली जिस सवालको एक अहम धार्मिक सवाल मानते हैं, उसके लिए उन्होंने अबतक कितना कष्ट सहा है। ननकाना-हत्याकाण्ड[1], कुंजी-प्रकरण[2], गुरुका बागके पाशविक अत्याचार या जैतोंके गोलीबारके[3] बारेमें मैं यहाँ कुछ न कहूँगा। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिको गैरकानूनी करार देनेके बारेमें भी मैं कुछ नहीं कहूँगा। कांग्रेसने इसे उन तमाम सार्वजनिक संस्थाओंके लिए जो कि सरकारकी मुखालिफत करती हैं, एक चुनौती ही माना है। जैतोंके गोलीबारके बादसे, अकाली लोग यह समझकर कि गिरफ्तारियोंके लिए किया गया हमारा सत्याग्रह कहीं हिंसात्मक न समझा जाये, प्रायः हर पन्द्रहवें दिन ५०० आदमियोंका एक शहीदी जत्था गिरफ्तारीके लिए जैतों भेजते रहे हैं और बिना किसी हुज्जत या विरोधके गिरफ्तार होते गये हैं। गिरफ्तारीके बाद वे एक खास रेलगाड़ीमें बिठाकर एक निर्जन स्थानमें भेज दिये जाते और वहाँ बिना मुकदमा चलाये तथा बिना किसी आरोपके रोक लिये जाते हैं। उन्हें सिर्फ रसद दे दी जाती है। उन्हें अपनी रसोई खुद पकानी होती है। वहाँकी आबोहवा फसली बुखारको लानेवाली मानी जाती है। और वहाँ इतनी घास खड़ी है कि वह जगह एक तरहका जेलखाना ही हो गया है। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग तो बुखार और सर्दी लग जानेसे मर भी गये हैं। इस तरह कोई तीन हजारसे ऊपर कैदी तकलीफ भोग रहे हैं। शहीदी जत्थेके अलावा पिछले ९ महीनोंसे २५ आदमियोंका एक छोटा जत्था भी रोज जैतोंकी हदमें जा रहा है। वे बावल नामके एक स्टेशनपर

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४०४-८।

२. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ १८१-८२।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २२५-२६।

ले जाकर छोड़ दिये जाते हैं। वे वहाँसे जहाँ चाहें जा सकते हैं। अपने मुकामपर पहुँचनेतक इन अकालियोंको अकसर बड़ी तकलीफोंका सामना करना पड़ता है। यह क्रूर पद्धति घड़ीके काँटोंकी तरह नियमसे जारी है और सत्ताधारियोंपर उसका कुछ असर हो रहा हो सो नजर नहीं आता।

तो ये जत्थे ऐसा कष्ट किसलिए सह रहे हैं? सिर्फ इसलिए कि वे अखण्ड पाठ कर सकें, जिसमें नाभाके अधिकारियोंने उद्दण्डताके साथ दस्तन्दाजी की और जो पाठ अब भी रोका जा रहा है। अकालियोंने बार-बार यह बात कही है कि एक ओर जहाँ हमारा दावा है कि हमें महाराजा नाभाके मामलेकी निष्पक्ष और खुले तौरपर तहकीकात चाहने और करानेका हक है वहाँ दूसरी ओर हम अखण्ड पाठकी ओटमें उनके पक्षमें आन्दोलन नहीं करना चाहते। अखण्ड पाठकी मुमानियतका खुलासा इसके सिवा कुछ हो ही नहीं सकता कि इसके द्वारा अकालियोंका वह दुर्दमनीय तेज कुचल डाला जाये, जिसने अकाली लोगोंके सुधार-आन्दोलनका संगठन किया और जो इसे चला भी रहा है।

अकालियोंकी माँगें बिलकुल सीधी-सादी हैं। जहाँतक मैं जानता हूँ, वे इस प्रकार हैं:

(१) ऐतिहासिक गुरुद्वारोंपर सिखों द्वारा निर्वाचित केन्द्रीय समितिका कब्जा।
(२) हर सिखको किसी भी आकारकी कृपाण रखनेका अधिकार, और
(३) जैतोंमें अखण्ड पाठ करनेका अधिकार।

स्पष्ट ही ये माँगें ऐसी हैं जिनपर कोई ऐतराज नहीं किया जा सकता और जिनकी पूर्ति तत्काल कर देनी चाहिए। ऐसी कोई दूसरी कौम नहीं है जिसने अकालियोंकी तरह अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए इतनी वीरता, त्याग और कौशलका परिचय दिया हो। उनकी तरह किसी जातिने इतनी खूबीके साथ निष्क्रिय प्रतिरोधकी भावना कायम नहीं रखी। भारतीय सरकारको छोड़कर और कोई भी सरकार होती तो उसने उन माँगोंको कबका नहीं मान लिया होता, उनकी कुरबानियोंकी कद्र की होती और उनको दुश्मनोंके बदले अपना स्वेच्छा-प्रेरित सहायक बना लिया होता। परन्तु भारतीय सरकार यदि लोकमतकी परवाह करती होती तो वह इतने व्यापक विरोधके भड़कनेका अवसर ही क्यों देती।

हिन्दू, मुसलमान तथा दूसरी जातियोंका कर्त्तव्य इस मामलेमें स्पष्ट है। उन्हें इन सिख सुधारकोंको अपना नैतिक समर्थन देकर उनकी सहायता करनी चाहिए और सरकारको स्पष्ट रूपसे यह जता देना चाहिए कि पूर्वोक्त मामलेमें अकालियोंको सारे भारतका नैतिक समर्थन प्राप्त है। मैं जानता हूँ कि जो अविश्वास आज भारतीय वायुमण्डलमें व्याप्त है उससे अकाली भी अछूते नहीं बचे। हिन्दुओं और शायद मुसलमानोंको भी उनकी बातोंपर यकीन नहीं है। वे उनकी गतिविधिको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। कहा जाता है कि इसके पीछे इरादा कुछ और ही है; उनकी महत्वाकांक्षा सिख-राज्य स्थापित करनेकी है। अकालियोंने कहा है कि हमारी ऐसी नीयत कदापि नहीं है। सच पूछिए तो इस खण्डनकी जरूरत भी नहीं है और भविष्यमें

अगर वे इसकी कोशिश करें तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता; क्योंकि अगर कभी उनके उत्तराधिकारी लोग ऐसी अयोग्य महत्वाकांक्षा रखें तो आजके तमाम सिखों द्वारा प्रकट घोषणाको वे आसानीसे रद्दीके ढेरमें फेंक सकते हैं। अतएव हमारी सुरक्षा केवल इसी बातमें है कि हम सब लोग सबकी आजादीके लिए मिलकर काम करनेका दृढ़ निश्चय करें। यह साफ है कि व्यावहारिक दृष्टिसे भी सिखोंके सुधार-आन्दोलनको देशका नैतिक समर्थन प्राप्त होनेसे, सिखोंके दिलमें ऐसी अयोग्य महत्वाकांक्षाके बसनेके अवसर कम हो जायेंगे। वास्तवमें देखा जाये तो यह पारस्परिक सन्देह हमारी स्वराज्यकी हलचलमें अवश्य ही बाधक होता है, क्योंकि इसकी बदौलत भिन्न-भिन्न जातियोंमें हार्दिक सहयोग नहीं होने पाता और इस तरह यह इस सुन्दर देशका शोषण करनेवाली शक्तियोंको सुदृढ़ बनाता है और शायद उस महत्वाकाक्षा-को भी सम्भाव्य बना देता है जो अभी स्पष्टतया असम्भव ही है। इसलिए हमें चाहिए कि हम हर जातीय हलचलको उसके गुण-दोषकी ही दृष्टिसे देखें और यदि वह अपने आपमें निर्दोष हो और उसके लिए प्रयुक्त साधन सम्मानपूर्ण, खुले और शान्तिमय हों तो हम उसका मुक्तकण्ठसे समर्थन करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५९. टिप्पणियाँ

जा-मीन बनाम आमीन

एक मित्र लिखते हैं :

> आपने भविष्यके लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम दिया है, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ, यह कोई नया कार्यक्रम नहीं है, आप पुराने कार्यक्रमको ही दोहरा रहे हैं; लेकिन वह हमें नया लगता है, उसे देखकर हम चौंक-से उठे हैं। इसका कारण यह है कि हम सही रास्तेसे भटक गये हैं। डेनिश भाषामें एक मुहावरा है — "जा-मीन," अर्थात् "हाँ, लेकिन —" यह उस भाषाके "आमीन" शब्दसे लगभग उलटा अर्थ देता है। आमीनका अर्थ सिर्फ "हाँ" है। हममें से अधिकांश लोग "जा-मीन"में ही विश्वास रखते जान पड़ते हैं। हम लोग यही कहते जान पड़ते हैं कि 'हाँ, हमने वायदा तो किया था कि हम सरकारी संस्थाओंका बहिष्कार करेंगे, अपने ऊपर जुल्म करनेवालोंकी गुलामी नहीं करेंगे; लेकिन इनके बिना हमारा काम कैसे चल सकता है?' यह "लेकिन" का चक्कर शैतानके दिमागकी उपज है।

दुर्भाग्यसे ये शैतान महोदय सदा हमारे साथ रहते हैं। वे हमारी कमजोरियोंको उभाड़ते हैं, उनके जरिये हमपर अपना असर डालते हैं और अपने माया-जालमें फँसा लेते हैं। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओंको शैतानके पंजेसे निकलना होगा और सब "लेकिनों" को

स्वाहा कर देना होगा। यदि उनका मतलब बिना किसी शर्तके "हाँ" हो, तभी वे बहिष्कारोंके लिए "हाँ" कहें। यदि वे बहिष्कारोंमें विश्वास करते हुए भी अपनी कमजोरीकी वजहसे "हाँ" नहीं कह सकते हों तो उन्हें यह बात खुले तौरपर मंजूर करनी चाहिए। इससे उनको और देशको असीम लाभ होगा।

डा० महमूद और बलात् धर्म-परिवर्तन

हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमें अपने वक्तव्यमें मैंने बलात् धर्म-परिवर्तनकी चर्चा की थी। उसके बारेमें मुझे बहुतसे पत्र प्राप्त हुए हैं — कुछ गुस्सेसे भरे हैं और कुछमें गालियाँतक दी गई हैं। एक पत्र ऐसा जरूर था जो शान्त चित्तसे और सोच-समझकर लिखा गया था। वह पत्र श्री माधवन नायरने लिखा था और उसमें, डा० महमूदपर मैंने जो-कुछ कहनेका आरोप लगाया था, उसका विरोध किया था। पत्रको मैंने डा० महमूदके पास भेज दिया और उन्हें उसका जवाब देनेको लिखा है ताकि पाठकोंके सामने स्वयं डा० महमूदका कथन प्रस्तुत कर सकूँ। लेकिन डा० महमूद मेरा पत्र पानेसे पहले ही उसी विषयपर मेरे नाम एक पत्र डाकमें डाल चुके थे। बात यह हुई थी कि स्वयं डा० महमूदके पास भी विरोधके बहुतसे पत्र पहुँचे थे। उनका मूल पत्र उर्दूमें है। मैं उसके सम्बन्धित अंशोंका अनुवाद नीचे दे रहा हूँ:

> मेरे पास बहुतसे हिन्दू दोस्तोंके खत आये हैं। वे मुझपर इलजाम लगाते हैं कि मैंने मलाबारके बारेमें आपको गलत खबरें दीं। बाज खतोंमें मुझे जी-भर कर सख्त गालियाँ भी दी गई हैं। मेरे खयालमें उन लोगोंका गुस्सा करना ठीक ही है। आपको कहीं गलतफहमी हुई है। मैंने आपसे अर्ज किया था कि खतना करके जबरदस्ती मुसलमान बनानेकी मिसाल नहीं मिलती। सिर्फ एक वाकिआका जिक्र किया गया, जो कि जनाब एन्ड्रयूजने देखा था — और उसकी ठीक तरहसे तहकीकात नहीं हो सकी थी। बाकी, सिरपर फैज टोपी पहनाकर, औरतोंको कुरती पहनाकर या चोटी काटकर मुसलमान बनानेकी तो बहुत-सी मिसालें हैं। जो नोट मेंने शुएबको लिखवाया था, उसमें भी यही था। मेहरबानी फरमाकर 'यंग इंडिया'में इसकी तरमीम कर दीजिए, नहीं तो कुछ असके बाद इसपर भी अखबारोंमें बहस शुरू हो जायेगी।

देखता हूँ, मेरे हाथों डा० महमूदके साथ अन्याय हो गया है। मैं तो खतना करके ही बलात् धर्म-परिवर्तन किये गये लोगोंकी बात सोच रहा था। इसी खयालसे हिन्दुओंके दिलको सबसे अधिक चोट पहुँची। जो हो, कमसे-कम मुझे तो सबसे ज्यादा इसी बातसे चोट पहुँची।

डा० महमूदने जिस वक्तव्यका जिक्र ऊपर किया है, वह इस प्रकार है:

बलात् धर्म-परिवर्तन

> (क) खतना करके। कोई चश्मदीद गवाह नहीं। कोई सीधा सबूत नहीं मिलता। कोई मिसाल नहीं दी गई। हिन्दुओंमें से विश्वसनीय लोग कहते हैं

तीन-चार मामले ऐसे हुए हैं। इस तरहकी एक घटनाका सीधा सबूत यही है कि कहते हैं, श्री एन्ड्रयूजने एक खतना किये हुए आदमीको देखा था। मैंने उसकी तसदीक नहीं कराई।

(ख) कलमा पढ़ाकर; (१) जबरदस्ती; (२) महज डरसे कलमा पढ़ना, जिसमें दरअसल जबरदस्ती न की गई हो।

(ग) चोटी काटकर।

(घ) हिन्दू मर्दोंको टोपी पहनाकर।

(ङ) हिन्दू औरतोंको कुरती पहनाकर।

(ख) से लेकर (ङ) तकमें तकरीबन १,८०० से २,००० लोगोंतक का (हिन्दुओंके अनुसार) धर्म-परिवर्तन किया गया। मुसलमान लोग इस संख्याको कुछ सौ बताते हैं।

मैंने सोचा कि मेरा वक्तव्य स्पष्ट है। यद्यपि मैंने श्री एन्ड्रयूजका नाम नहीं लिया था, लेकिन यह बात सबको मालूम थी कि उन्होंने खतनेके एक ऐसे मामलेका जिक्र किया है, जो उन्होंने खुद देखा था। इस बातपर ध्यान रखनेसे मेरा आशय समझनेमें कोई गलती नहीं हो सकती। पर अब मैं देखता हूँ कि मैंने जबरन् मुसलमान बनाये हुए आदमियोंकी तादाद कम बताकर लोगोंको, डा० महमूदपर पक्षपाती होनेका आरोप लगानेका अवसर दे दिया और इस तरह उन्हें बड़ी नाजुक स्थितिमें डाल दिया। अनजानेमें की गई अपनी इस गलतीपर मुझे अफसोस है। तनावके समय बहुत सावधानी रखना या बहुत तौलकर बात करना सम्भव नहीं होता। डा० महमूदके साथ न्याय करनेकी कोशिश करते हुए मुझसे उनके साथ अन्याय हो गया है। मैं पाठकोंको यकीन दिलाता हूँ कि हरएक मामलेमें मैंने वस्तुस्थितिके निकट ही रहनेकी कोशिश की है और मैंने कोई अतिरंजना नहीं की है। जो कागजात मेरे पास हैं उनके अनुसार तो सभी पक्ष बहुत अधिक और भयंकर रूपसे दोषी सिद्ध होते हैं। लेकिन हर मामलेमें मैंने इल्जामोंको बहुत ही नरम रूपमें रखा है और जहाँ मैं अपनी राय कायम नहीं कर सका, वहाँ मैंने उन्हें सिर्फ सम्बन्धित पक्षोंकी जबानी पेश कर दिया और इस प्रकार उन इल्जामोंको हलका बनाया।

निजामकी रियासतमें नहीं

हिन्दू-मुस्लिम तनाव सम्बन्धी अपने वक्तव्यमें मैंने कहा था कि मुझे यह बताया गया है उस खतरनाक प्रचार-पुस्तिकाके मुताबिक निजामकी रियासतमें कार्य हो रहा है।[1] उस वक्तव्यको पढ़नेपर ख्वाजा हसन निजामी साहबने मेरे पास नीचे लिखा तार भेजा है:

> मेरी जिस पुस्तिका 'दार-उ-इस्लाम' में लिखी बातोंके सम्बन्धमें आपने अपने वक्तव्यमें शिकायत की है, उसके बारेमें मैं इस्लाम और हिन्दू-मुस्लिम

१. देखिए "हिन्दू मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

एकता तथा आपके प्रिय व्यक्तित्वकी खातिर आपकी सलाह माननेको तैयार हूँ — बशर्ते कि उससे इस्लामके प्रचार, मुसलमानोंके सुधार और संगठन और आर्यसमाजके प्रकट तथा अप्रकट प्रयत्नोंका असर दूर करनेके उस काममें, जिसे करनेके लिए मैं धर्मतः बाध्य हूँ, कोई बाधा न पड़े। मैंने आपत्तिजनक बताई जानेवाली बातोंमें से बहुत-सी बातें तो उस पुस्तकके बादके संस्करणोंमें से पहले ही निकाल दी थीं और अब आपकी इच्छाका खयाल रखते हुए मैं अगले संस्करणोंमें और भी अधिक सुधार करनेको तैयार हूँ। आप जो-कुछ सुझाव भेजना चाहें, पुस्तिकाका ताजा उर्दू संस्करण पढ़कर भेजें। सुझाव हिन्दी अनुवाद पढ़कर न भेजें, क्योंकि जो हिन्दी अनुवाद छापे गये हैं, वे सिर्फ भ्रम उत्पन्न करने और सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए ही हैं।

तारके बाद ही इसी आशयका एक पत्र भी उन्होंने भेजा; और गत सप्ताह उन्होंने आकर मुझसे मिलने और खुद अपना मतलब समझानेकी इज्जत बख्शी। उन्होंने मुझसे कहा कि बच्चोंको भगा ले जाने वगैराके जितने इलजाम मुझपर लगाये जाते हैं वे सबके-सब बिलकुल बेबुनियाद हैं और उस पुस्तकको प्रकाशित करनेमें मेरा उद्देश्य वह नहीं था, जो आपने समझा है। बदकिस्मतीसे यह भेंट उस वक्त हुई जबकि मैं मौन रखे हुए था; इसलिए मैं उनकी पुस्तिकाके बारेमें उनपर अपनी राय जाहिर न कर सका। ख्वाजा साहब इस बातके लिए बहुत उत्सुक थे कि मैं निजाम साहबकी रियासतकी हदके भीतर प्रचारके बारेमें उनके द्वारा दिया हुआ आश्वासन प्रकाशित कर दूं। इसलिए मैंने उक्त तार और मुलाकातका सारांश खुशीसे प्रकाशित कर दिया है। फिर भी, यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि कथित प्रचारकी खबर मुझे विश्वसनीय व्यक्तियोंसे मिली थी। उस खबरकी ताईद करनेवाले पत्र भी मुझको मिले हैं और मेरे साथी मुझसे कहते हैं कि उस प्रकारकी शिकायतें देशी भाषाओंके अखबारोंमें अकसर छपा करती हैं। इसलिए निजाम साहबकी रियासतमें जो-कुछ हो रहा है, उसके बारेमें कोई प्रत्यक्ष जानकारी न होनेके कारण अपनी कोई राय कायम किये बिना दोनों तरफकी बातोंको प्रकाशित कर देनेके अलावा मैं और क्या कर सकता हूँ। इस मामलेमें निजाम साहबकी सरकार जो-कुछ कहना चाहे, उसको भी मैं खुशीसे अवश्य प्रकाशित कर दूंगा।

जहाँतक ख्वाजा साहबकी पुस्तिकाका सम्बन्ध है, यद्यपि यह एक प्रशंसनीय बात है कि वे उसमें ऐसे परिवर्तन करनेको तैयार हैं जो कि उनके धर्मसे संगत हों, फिर भी जिस बातकी जरूरत है वह कुछ विशेष और भिन्न प्रकारकी भी है। यद्यपि ख्वाजा साहबने उद्देश्यके कुत्सित होनेकी इस बातका प्रतिवाद किया है, फिर भी उस पुस्तिकासे, जिसको कि मैंने मूल उर्दूमें पढ़ा है, वह अर्थ भी निकाला जा सकता है, जो मैंने निकाला है। जिन मुसलमान मित्रोंको मैंने वह पुस्तिका दिखाई है, वे मेरे अर्थसे सहमत हैं। इसलिए यदि मैं सुझाव देनेका विचार भी करूँ तो यह काफी नहीं होगा कि मेरे सुझावके मुताबिक ख्वाजा साहब अपनी पुस्तिकामें परिवर्तन कर दें; जरूरी तो यह होगा कि वे खुद अपने विचारकी गलतीको देखें

और इस बातको समझें कि उन्होंने प्रचारके आपत्तिजनक तरीके सुझाकर वास्तवमें इस्लामको हानि पहुँचाई है। इसलिए इस्लामके प्रचारमें जो-कुछ जायज और प्रशंसनीय है उसकी दृष्टिसे उन्हें उस पुस्तिकामें आमूल परिवर्तन करना चाहिए। कहनेकी जरूरत नहीं कि जिस तत्परतासे ख्वाजा साहब अपना मतलब समझानेके लिए आगे आये हैं और जिस तरह उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अपनी आतुरता व्यक्त की है, उसकी मैं सराहना करता हूँ।

मेरे लिए नई बात!

एक सज्जन लिखते हैं कि खबर है, आपने ऐसा कहा कि "सात बकरोंकी अपेक्षा एक गायकी बलि चढ़ाना ज्यादा अच्छा है।" फिर वे मुझसे कहते हैं कि या तो इस बातसे इनकार कीजिए या उसे मंजूर कीजिए; और यदि मंजूर करते हैं तो उस हालतमें उसका कारण भी बताइए। पत्र-प्रेषकने जिस बातका उल्लेख किया है, मुझे याद नहीं पड़ता कि वैसी कोई बात मैंने कभी कही थी; और जिस-किसीने मुझे वैसी बात कहते सुना हो वे उस अवसरकी याद मुझे दिला दें तो मैं कृतज्ञ होऊँगा। पत्र-प्रेषकके अनुसार ऐसा माना जाता है कि मैंने वह बात 'यंग इंडिया' के सम्पादककी हैसियतसे कही है। उस हालतमें तो वह मुझे आसानीसे दिखा दी जा सकती है। परन्तु मैंने जो-कुछ कहा या लिखा होगा, वह तो इतना ही हो सकता है कि यदि मैं लोगोंको अहिंसापूर्वक राजी कर सकूँ तो मैं उनको इस बातपर राजी करना चाहूँगा कि वे बकरोंकी भी उसी प्रकार रक्षा करें जिस प्रकार मैं चाहूँगा कि वे गायकी करें। जैसा कि मैं इन पृष्ठोंमें पहले लिख चुका हूँ, मेरे लिए मनुष्यसे नीचेकी श्रेणीके प्राणियोंमें गाय सबसे श्रेष्ठ है। मनुष्यसे नीचेकी श्रेणीके सभी प्रकारके प्राणियोंकी ओरसे वह सबसे श्रेष्ठ प्राणी, मनुष्यसे उनके प्रति न्याय करनेकी मूक प्रार्थना कर रही है। ऐसा लगता है जैसे वह अपनी कातर आँखोंसे (पाठक उन आँखोंकी ओर उसी संवेदनासे देखें जिस संवेदनासे मैं देखता हूँ) कह रही हो कि "तुम हमें मार डालने और हमारा गोश्त खाने या दूसरी तरहसे हमारे साथ बुरा बरताव करनेके लिए नहीं, बल्कि हमारे मित्र और संरक्षक बननेके लिए हमारे ऊपर तैनात किये गये हो।"

शाबाश, दिल्ली!

तो आखिर हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमें दिल्लीने ही सबसे आगे बढ़कर पंच-फैसला बोर्ड संगठित किया। सिर्फ दो साल पहले हर आदमीको दिल्लीमें हिन्दू-मुस्लिम एकता पूरी तरह सुरक्षित दिखाई देती थी। हकीम साहब वहाँ बेताजके बादशाह थे और स्वामी श्रद्धानन्दकी स्थिति ऐसी थी कि वे जुम्मा मस्जिदमें मुसलमानोंके सामने खड़े होकर भाषण कर सकते थे। बेशक, यदि हिन्दू और मुसलमान मिल-जुलकर प्रयत्न करें तो उनमें इतनी क्षमता है कि वे दिल्लीमें दोनों जातियोंके बीच स्थायी रूपसे शान्ति स्थापित कर सकते हैं। यदि दिल्ली-जैसा केन्द्रस्थ स्थान में साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित कर ले तो मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं कि

दूसरे स्थान भी उसका अनुकरण करेंगे। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं कि पाठकोंके "ज्ञान-वर्धन"के लिए मैं दिल्लीसे प्राप्त उस सारे घातक साहित्यको प्रकाशित करूँ, जिसमें दोनों पक्षोंने एक-दूसरेका बहुत ही विकृत चित्र प्रस्तुत किया है। लेकिन पाठक इस बातके प्रति आश्वस्त रहें कि मैंने अपने वक्तव्यमें जो-कुछ कहा है, वह सब उस साहित्यमें मिल जायेगा। यदि सम्बन्धित पक्ष इतना-भर कर दें कि अपने-अपने आरोप बोर्डके सामने पेश कर दें और उनके बारेमें बोर्डका कोई अविकृत निर्णय प्राप्त कर लें तो यह एक बहुत बड़ी नियामत साबित होगी।

सिखोंका आत्मसंयम

बहुत ही गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद कलकत्तेके सिखोंने जिस आश्चर्यजनक आत्म-संयमका परिचय दिया, उसके लिए वे जनताकी हार्दिक बधाईके पात्र हैं। शोरगुल मचाती हुई शंकालु भीड़ने सर्वथा निराधार शंकाओंके वशीभूत होकर कलकत्तेमें कुछ सिखोंकी निर्मम हत्या भी कर दी थी। सभी स्थानोंके सिखोंमें इतनी क्षमता है कि वे अपनी रक्षा आप कर सकते हैं और अगर चाहें तो बदला भी ले सकते हैं। लेकिन इस अवसरपर वे बिलकुल शान्त रहे। वे बहादुर हैं, इसलिए उन्होंने महसूस कर लिया कि इस शरारतके पीछे कोई जातिगत विद्वेष नहीं है। आँख मूंदकर किसी बातका सहज ही विश्वास कर लेनेकी प्रवृत्तिसे ग्रस्त भीड़ने किसी और जाति-पर शंका हो जानेपर भी उतनी ही लापरवाहीसे उसके सदस्योंकी भी हत्या कर दी होती। परीक्षा और उत्तेजनाके अवसरपर कलकत्तेके सिखोंने सही आचरणका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अधिकारियोंकी ढील

पाठकोंको स्मरण होगा कि नाभा राज्यके प्रशासकने मुझे जो जवाब दिया था, उसको देखनेके बाद पण्डित जवाहरलाल नेहरूने उन्हें एक पत्र[1] लिखकर उनके इस कथनका खण्डन किया था कि उनकी तथा आचार्य गिडवानी आदि उनके साथियों-की रिहाई कुछ शर्तोंपर हुई थी। यह पत्र गत २४ मईको भेजा गया था। अब तक उसका जवाब न पाकर पण्डित नेहरूने १९ जूनको याददिहानीके तौरपर एक दूसरा पत्र लिखा है। वह नीचे दिया जा रहा है:

> २४ मईको मैंने आपको रजिस्ट्रीसे एक पत्र भेजा था, जिसमें मैंने आपसे यह अनुरोध किया था कि आचार्य गिडवानी और श्री के० सन्तानम् तथा मेरी सजाको रद्द करनेके आदेशकी और यदि उस समय हम लोगोंके बारेमें कोई और आदेश जारी किया गया हो तो उसकी भी प्रतियाँ मुझे भेज दी जायें। अबतक न मुझे पत्रका कोई उत्तर मिला है और न आदेशोंकी प्रतियाँ ही।
>
> मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि 'यंग इंडिया' के सम्पादक महोदय-को आपने अपना इस आशयका जो वक्तव्य भेजा है कि आचार्य गिडवानी,

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-६-१९२४, उपशीर्षक 'आचार्य गिडवानीके बारेमें'।

श्री सन्तानम् और मैं कुछ शर्तोंपर रिहा किये गये थे, वह बिलकुल गलत है और उन आदेशोंका तथा दूसरे कागज-पत्रोंका मुलाहिजा करनेसे आपको भी इस बातका यकीन हो गया होगा। मुझे भरोसा है कि इस बातका यकीन हो जानेसे आप पिछले वक्तव्यको शीघ्र दुरुस्त करेंगे और इस बातको साफ कर देंगे कि आचार्य गिडवानी और सन्तानम्की तथा मेरी रिहाई बिना किसी शर्तके हुई थी। इसलिए आचार्य गिडवानीको फिरसे मुकदमा चलाये बिना और सजा दिये बगैर कोई शर्त तोड़नेके कथित अपराधपर जेल नहीं भेजा जा सकता; क्योंकि शर्त रखी ही नहीं गई थी।

मैं आपसे फिर अनुरोध करता हूँ कि आप सजा रद्द करनेवाले आदेशकी एक नकल मुझे भेज दें। मैं आपसे यह भी साफ-साफ जान लेना चाहता हूँ कि क्या नाभा राज्यकी हदमें मुझे प्रवेश करनेकी मनाही है और अगर है तो किस आदेशके मुताबिक। अभी फिलहाल तो नाभा जानेका मेरा कोई इरादा नहीं है, पर अगर मेरी इच्छा वहाँ जानेकी हो गई तो मैं जानना चाहता हूँ कि मेरा स्वागत वहाँ किस तरह किया जायेगा।

हमें आशा करनी चाहिए कि पं० जवाहरलाल नेहरूके इस सीधे सवालका उत्तर मिलनेमें अब और देर न होगी। अमूमन अधिकारीगण लोगोंकी पूछताछका जवाब देनेमें बेजा देरी करते हैं — खासकर उस हालतमें जब ऐसी पूछताछ परेशानी पैदा करनेवाली होती है। अगर इसका जवाब न मिला या असन्तोषजनक ही मिला तो वैसी हालतमें सम्भव है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री सन्तानम् कार्यसमितिसे इस बातकी इजाजत चाहें कि उन्हें वहाँ जाकर गिरफ्तार होने दिया जाये। अपने एक साथीके प्रति कर्त्तव्यके खयालसे भी ऐसा करना आवश्यक हो सकता है। पण्डित नेहरूके पत्रके आखिरी हिस्सेमें तो स्पष्टतः उनकी तरफसे ऐसी चुनौतीकी झलक मिलती है। यह बात कुछ समझमें आने लायक नहीं है कि जब आचार्य गिडवानीके जैतो हत्या-काण्डके अवसरपर नाभा राज्यमें प्रवेश करते समय सविनय अवज्ञासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था तब उन्हें जेलमें क्यों रखा जाये। उन्होंने केवल मानव धर्मकी भावनासे प्रेरित होकर ऐसा किया था और इसके लिए श्री जिमंड-जैसे निष्पक्ष व्यक्तिकी गवाही मौजूद है।

नगरपालिकाएँ

एक स्थानीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री लिखते हैं:

आपने लोगोंसे इन (सरकारी) संस्थाओंसे अलग रहनेका आग्रह तो किया है किन्तु आपने उन लोगोंके बारेमें कुछ भी नहीं कहा जिन्होंने जिला बोर्डों और नगरपालिकाओंपर कब्जा कर रखा है। मैं जानता हूँ कि अपरिवर्तन-वादियोंमें भी बहुत-से ऐसे लोग हैं जो अब भी यही मानते हैं कि उनके जिला बोर्डों और अर्ध-सरकारी संस्थाओंमें जानेसे असहयोगके सिद्धान्तमें कोई

खलल नहीं पहुँचता। क्या उन्हें सरकारी नियन्त्रणमें काम नहीं करना पड़ता? क्या वे शिक्षा-प्रणाली या स्वास्थ्य-सफाईके क्षेत्रमें किसी प्रकारका कारगर परिवर्तन करा सकते हैं?

जहाँतक कांग्रेसके प्रस्तावोंका सम्बन्ध है, कांग्रेसके सदस्योंके लिए उन संस्थाओंमें जाने और पदाधिकारी बननेतक का मार्ग खुला हुआ है। सच तो यह है कि बादके एक प्रस्तावके अनुसार कांग्रेस जनोंसे इन संस्थाओंपर कब्जा करनेको भी कहा गया है। सरकारके नियन्त्रणमें होनेके कारण सिद्धान्ततः तो ये संस्थाएँ सरकारी संस्थाओंकी श्रेणीमें ही आती हैं। किन्तु हमारे असहयोगका स्वरूप विशिष्ट है और वह केवल उन खास संस्थाओंसे ही सम्बन्धित है जिनके पीछे हमारा नैतिक बल तोड़नेका उद्देश्य ही प्रधान है और जो सरकारकी प्रतिष्ठाको कायम रखनेमें सबसे ज्यादा सहायक हैं। इसलिए जिन सरकारी संस्थाओंका कांग्रेसने स्पष्ट रूपसे बहिष्कार नहीं किया है, उनके सम्बन्धमें सबसे अच्छी योजना उनको इस कसौटीपर कसना ही है कि उनसे रचनात्मक कार्यक्रममें कितनी सहायता मिलती है। यदि उनसे उस कार्यक्रममें बाधा पहुँचती है तो मेरी स्पष्ट राय है कि कांग्रेसजनोंको वे संस्थाएँ छोड़ देनी चाहिएँ। मेरे पास कई स्थानोंसे ऐसे पत्र आये हैं जिनमें शिकायत की गई है कि कांग्रेसजनोंके नगरपालिकाओं और जिला बोर्डोंमें प्रवेश करनेके कारण समस्त रचनात्मक कार्य ठप हो गये और कुछ स्थानोंमें तो कांग्रेसजन ही एक-दूसरेके खिलाफ उम्मीदवार बनकर खड़े हुए थे। इसमें शक नहीं कि जहाँ-कहीं ऐसी परिस्थिति हो, वहाँ कांग्रेसजनोंको अलग ही रहना चाहिए। कांग्रेसजनोंका आपसमें एक-दूसरेके खिलाफ उम्मीदवार होना तो मेरी समझमें ही नहीं आता। कांग्रेसजन एक अनुशासनमें बँधे हुए हैं और केवल वही कांग्रेसजन चुनावोंमें उम्मीदवार हो सकते हैं, जिन्हें सम्बन्धित कांग्रेस कमेटी उसके लिए चुने। जहाँतक (प्राथमिक) शिक्षा और स्वास्थ्य-सफाईपर नियन्त्रण कर सकनेका प्रश्न है, आम तौरसे यह कहा जा सकता है कि उन मामलोंमें नगर-पालिकाओंको बहुत-कुछ अधिकार है। बहरहाल, चूँकि नगरपालिकाएँ ज्यादातर चुने हुए प्रतिनिधियोंकी संस्थाएँ हैं, इसलिए उचित अवसर आनेपर उनके जरिये सविनय अवज्ञाकी काफी गुंजाइश है।

खतरनाक रिवाज

(१२ जूनके) 'हिन्दू'में मैंने अभी एक विवरण पढ़ा; उसे मेरे साथ हुई भेंटका विवरण बताया गया है। मुझे एक सज्जनके साथ बहुत देर तक बातचीत करनेकी बात याद पड़ती है; पर मुझे यह जरा भी खयाल नहीं था कि वे भेंटकर्ताके रूपमें आये हैं। मैंने समझा कि उनके मनमें कुछ वास्तविक शंकाएँ हैं और उनका वे समाधान कराना चाहते हैं। इसीलिए मैंने उनकी ओर बहुत ध्यान नहीं दिया और धीरजके साथ उनके तमाम सवालोंके जवाब दिये। चूँकि मेरे पास वक्त बहुत ही कम था, अतएव साधारणतया उन्हें भेंट देनेसे मैंने जरूर इनकार कर दिया होता और इतनी लम्बी भेंट तो कभी न देता। मेरे पास छिपानेकी कोई बात नहीं है। अगर लोगोंको मुझसे या मेरी निस्बत कोई बात मालूम हो जाये और वे उसे प्रकाशित करना चाहें

तो उसके लिए वे पूरी तरह आजाद हैं। लेकिन कोई मेरी बातोंको गलत रूपमें पेश करे, यह चीज निश्चय ही मुझे नापसन्द है। अगर वे छापनेके पहले मुझे दिखा दें तो मुझे कोई एतराज न हो। तथाकथित भेंटका छपा हुआ विवरण, मैंने जो-कुछ कहा उसका विकृत रूप है। मिसालके तौरपर उसमें कहा गया है कि मैंने "हर मुसलमान-को लफंगा" बताया है। मैंने तो कभी सपनेमें भी यह खयाल न किया होगा कि हर मुसलमान लफंगा है। मैं हकीम साहबको लफंगा नहीं मानता; और हकीम साहब ही क्यों, मैं अपने इतने सारे मुसलमान दोस्तोंमें से किसीको भी लफंगा नहीं मानता। मैं कितने ही उद्दण्ड मुसलमानोंको जानता हूँ, लेकिन ऐसा याद नहीं आता कि लफंगा शब्दका जो स्वीकृत अर्थ है उस अर्थको चरितार्थ करनेवाले किसी लफंगे मुसलमानसे मैं मिला होऊँ। और वैसे मैं हर मुसलमानको उद्दण्ड भी नहीं समझता। मुझपर यह कहनेका इल्जाम लगाया गया है कि "सरकार अभी तो मेरी उतनी परवाह नहीं कर रही है, पर ज्यों ही मैंने देशमें छः महीनेका एक दौरा किया कि उसकी रूह काँप उठेगी।" अब इसपर मेरा कहना यह है कि एक ओर जहाँ बड़े अभि-मानके साथ मैं यह मानता हूँ कि सरकार कभी मेरी बातों और कामोंको उदा-सीनताकी दृष्टिसे नहीं देखती और वहीं दूसरी ओर मुझमें इतनी विनम्रता है कि मैं ऐसा न मानूं कि मेरे किसी दौरेसे उसकी रूह काँप उठेगी। हाँ, अगर किसीकी भी कोशिशसे सच्ची हिन्दू-मुस्लिम-एकता कायम हो जाये तो उसकी रूह जरूर काँप उठेगी। मुलाकात करनेवाले सज्जनने एक गद्दार कार्यकर्ताकी धोखेबाजीकी भी चर्चा की है। यह तो किसीके सौजन्यका सरासर दुरुपयोग करना है। बात यह हुई कि मैंने उन्हें उस बातचीतके दौरान मौजूद रहने दिया जो मैं अपने कुछ साथी कार्यकर्ताओंसे कर रहा था। उस दौरान किसी कथित धोखेबाजीकी भी चर्चा हुई थी। मुझे अबतक पता नहीं चला है कि दरअसल ऐसी कोई धोखेबाजी कहीं की भी गई थी या नहीं। मैंने यहाँ कुछ जबरदस्त गलतबयानियोंके नमूने सामने रखे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि "मुलाकाती सज्जन" ने सदाशयतासे ही ये बातें लिखी हैं, लेकिन अपनी जिम्मेदारीको न समझकर काम करनेवाले ऐसे सदाशय मित्र दुराशय प्रतिपक्षियोंसे भी ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं। अतएव जो लोग मुझसे मिलने आते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि जबतक मैं एक जिम्मेदारी सँभाले हुआ हूँ, तबतक वे मुझपर मेहरबानी रखे रहें। मेरे इस जिम्मेदारीसे मुक्त हो जानेपर वे मेरे लेखों और कार्योंके सम्बन्धमें जैसा चाहें वैसा करें। मेरी मुलाकात या बातचीतका विवरण पढ़नेवाले लोगोंसे भी मेरा निवेदन है कि वे तबतक उन्हें विश्वसनीय न मानें जबतक उन्हें मैंने प्रमाणित न कर दिया हो।

मशीन-कताई बनाम हाथ-कताई

एक मित्रने जो किसी समय चरखेके बड़े भारी समर्थक थे नीचे लिखे आशयका पत्र भेजा है।

> आपकी यह [चरखा सम्बन्धी] हलचल फिजूल है। आप 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में पुरानी और बासी बातें भरनेमें अपने शरीर और मनको

शक्ति क्यों खर्च कर रहे हैं? मुझे उनको पढ़नेमें सार दिखाई नहीं देता? मैंने अनुभवसे देखा है कि चरखा किसी कामका नहीं है। लोगोंने उत्साहकी पहली लहरमें जो चरखे खरीदे, वे अब पड़े-पड़े सड़ रहे हैं। उनसे कोई काम नहीं बननेका।

मैं आपका ध्यान एक दूसरी बातकी ओर दिलाना चाहता हूँ, जो उससे बेहतर है। हाथ-कताईकी जगह मशीन-कताई शुरू कर दीजिए। हरएक ताल्लुकेमें एक कताई कारखाना खोल दिया जाये और उसका मुनाफा राष्ट्रकी सम्पत्ति माना जाये। कारखानोंको सिर्फ देशभक्त लोग ही चलायें; अपने लाभके लिए नहीं, बल्कि देश-प्रेमसे प्रेरित होकर। सूत सिर्फ मुकामी बुनकरोंमें ही बाँटा जाये। जो कपड़ा तैयार हो, वह उसी ताल्लुकेमें रहे। इससे समय और किरायेकी फिजूलखर्ची बच जायेगी। आप यदि पहले एक ताल्लुकेमें इसकी आजमाइश करें तो वह देशकी बड़ी सेवा होगी।

यह दलील ऊपरसे अच्छी दिखाई देती है और ऐसे आदमीकी तरफसे पेश की गई है, जिन्होंने अपने ढंगसे चरखेको आजमाकर देखा है; इसलिए मैं उन लोगोंके लिए, जो इसी किस्मके विचार रखते हों, इस दलीलकी जाँच करना चाहता हूँ। पाठकोंको यह बतलानेकी जरूरत नहीं है कि यह तजवीज उतनी ही पुरानी है जितना कि खादी-आन्दोलन। कहावतके खोटे सिक्केकी तरह वह फिर-फिर कर वापस आती है।

यह मित्र इस मूलभूत सत्यको भूल गये हैं कि चरखेके द्वारा उन करोड़ों लोगोंको एक काम और उसके जरिये कुछ आमदनी मिल जाती है, जिनको फाकाकशीसे बचनेके लिए अतिरिक्त आमदनीकी जरूरत है। हर घरमें करघा रखना नामुमकिन है। हर गाँवमें एक करघा और हर घरमें एक चरखा, यह नियम होना चाहिए। यदि हरएक ताल्लुकेमें एक कताईका कारखाना खड़ा करें तो इसका नतीजा यही होगा कि मुट्ठी-भर लोगों द्वारा बहुतसे लोगोंके शोषणको राष्ट्रीय रूप मिल जायेगा। ताल्लुका-मिलोंमें सब लोगोंको काम नहीं मिल सकता। इसके अलावा हमको कमसे-कम २,००० ताल्लुकोंके लिए मशीनें बाहरसे मँगानी होंगी। फिर, लोगोंको उनकी व्यवस्था और कामकी तालीम देकर विशेषज्ञ बनाना होगा। कल-कारखाने घास-पातकी तरह अपने-आप हर जगह नहीं फैल सकते, पर चरखे फैल सकते हैं। चरखेकी नाकामयाबीका असर किसीपर नहीं होता; परन्तु एक ताल्लुकेके कारखानेकी असफलतासे उस ताल्लुकेके लोगोंपर मुसीबत आ जायेगी। मेरी रायमें इन मित्रकी बात बिलकुल अव्यावहारिक है। फिर भी मैंने उनसे कहा है कि अगर इसपर उनकी श्रद्धा हो तो वे इसे आजमाकर देखें। मुझे तो अपनी ही नाव खेनी हैं; क्योंकि दूसरी कोई चीज मुझे आकर्षित नहीं करती। मेरे लिए तो चरखेका निराला ही जादू है।

हो सकता है कि मैं इतना जड़ होऊँ कि मुझे उसकी असफलता नजर ही नहीं आती। वैसे यह बात नहीं कि यदि कोई मुझे मेरी गलती दिखा सके तो मैं उसे देखनेको तैयार नहीं हूँ।

जिस दिन मुझे इन मित्रका पत्र मिला उसी दिन मुझे एक दूसरे मित्रका भी पत्र मिला, जिसमें वे कहते हैं कि उन्हें कल-कारखानेका अनुभव दस बरससे है। उन्होंने मशीन-कताई और हाथ-बुनाईको आजमाकर देखा है और अब वे हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके रोजगारमें लगे हुए हैं। वे कहते हैं कि यदि हमें अपने आर्थिक कष्टोंसे छुटकारा दिलानेकी शक्ति किसी चीजमें है तो वह हाथ-कताई और हाथ-बुनाईमें ही है। वे आखिर दम तक यह कहते रहनेके लिए तैयार हैं कि यही हमारी आर्थिक दुरवस्थाका हल है। मैं यह अनुभव यहाँ इसलिए दे रहा हूँ कि लोग इसे भी आजमाकर देखें। अभी तो सारा प्रयोग ही इतनी प्रारम्भिक अवस्थामें है कि उसपर कोई मुस्तकिल राय कायम नहीं की जा सकती; परन्तु इतनी बात तो साफ है कि चरखा ही आज बहुतेरे गरीब घरोंमें राहत देनेका जरिया बन रहा है और दूसरी कोई चीज उसकी जगह नहीं ले सकती। और निम्नलिखित उक्ति चरखेके लिए जितनी सचाईके साथ कही जा सकती है, उतनी किसी दूसरी चीजके लिए नहीं:

"इसपर किया हुआ श्रम व्यर्थ नहीं जाता और इसमें निराशाके लिए स्थान नहीं है। इसका स्वल्प भी महान् संकटोंसे बचा सकता है।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१६०. भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें[1]

अहमदाबाद
२७ जून, १९२४

अध्यक्षने पण्डित मोतीलाल नेहरू द्वारा नियमका प्रश्न उठाये जानेपर श्री गांधीसे उसका स्पष्टीकरण करनेके लिए कहा। श्री गांधी हिन्दीमें बोले।[2] उन्होंने

१. गांधीजीने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी २७ जूनसे लेकर २९ जून तककी बैठकमें चार प्रस्ताव पेश किये थे। उनके द्वारा पहला प्रस्ताव पेश किये जानेपर पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा श्री चितरंजन-दासने प्रस्तावका विचारार्थ पेश किया जाना ही नियमके विरुद्ध बतलाया। श्री दासका कहना था कि धारा २१ के अन्तर्गत केवल नये विषयपर ही विचार किया जा सकता है। जबतक कोई नया प्रश्न नहीं उठाया जाता तबतक कांग्रेस अपने नियम बनानेके अधिकारोंका उपयोग कर सकती है। धारा ३१ के अन्तर्गत कताईको अनिवार्य बनानेका यह प्रस्ताव वैध नहीं हो सकता, क्योंकि इससे निर्वाचकोंके अपना प्रतिनिधि चुननेके मूल अधिकारका उल्लंघन होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रस्तावसे पदेन सदस्योंपर, जैसे भूतपूर्व अध्यक्षोंपर, अनुचित प्रहार होता है और उन्हें जो संवैधानिक अधिकार इस समय उपलब्ध हैं, उनसे वे वंचित होते हैं। गांधीजीके भाषणके विवरण अ० प्रे० ऑफ इंडियाके संवाददाता तथा हिन्दूके विशेष संवाददाताने प्रस्तुत किये गये थे। यह विवरण उन दोनोंके आधारपर तैयार किया गया है। प्रस्तावके लिए देखिए, "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है। यहाँ अंग्रेजीसे अनुवाद दिया गया है।

कहा कि मैं अपना प्रस्ताव पेश करते हुए कांग्रेस संविधानसे बाहर नहीं जा रहा हूँ। धारा २१ और ३१में, जिनका आश्रय पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा श्री दास ले रहे हैं, कुछ शर्तें दी गई हैं। मेरे विचारमें इससे शर्तोंका उल्लंघन नहीं होता। मैं यह मानता हूँ कि जब कांग्रेसका अधिवेशन नहीं हो रहा होता तब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको पूरे अधिकार प्राप्त रहते हैं। मेरे प्रस्तावोंसे चुनावका अधिकार सीमित नहीं होता; उनमें तो निर्वाचकोंको केवल आवश्यक कार्रवाई करनेकी सलाह दी गई है।

उन्होंने आगे कहा कि इस तरहके नियम, जिनमें सदस्योंसे कांग्रेसके कार्यक्रम-पर सुचारु रूपमें अमल करानेकी व्यवस्था हो, बनानेका पूरा अधिकार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको ही है। निश्चय ही निर्वाचकोंको अपना प्रतिनिधि चुननेका निर्बाध और पूरा अधिकार है। किन्तु वे एक बार चुनाव हो जानेपर अपने प्रतिनिधियोंके आचरणपर किसी प्रकार भी नियन्त्रण नहीं रख सकते। केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ही ऐसा कर सकती है। निस्सन्देह इस कमेटीका यह कर्त्तव्य है कि वह कोकानाडामें पास किये गये कांग्रेसके प्रस्तावोंपर अमल करानेकी दिशामें आने-वाली सभी रुकावटोंको दूर करे। इन प्रस्तावोंमें असहयोग कार्यक्रमको पूर्णरूपसे स्वीकार किया गया है और उनसे कार्य करनेकी पद्धतिका सुचारु संचालन सुनिश्चित हो जाता है। यदि यह दलील दी जाये कि प्रान्तीय कमेटियोंको सदस्यताकी शर्तें लगानेके उद्देश्यसे अपने नियम स्वयं बनानेका अधिकार है तो इसीसे यह अर्थ निकलता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको भी, जो सारी सत्ताका मूल स्रोत है, अपनी सदस्यतापर शर्तें लगानेका वैसा ही अधिकार है।[1]

श्री गांधीने भाषण जारी रखते हुए कहा कि एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई है। कांग्रेसने कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। अब अ० भा० कांग्रेस कमेटीको उनपर अमल कराना है। भूतपूर्व अध्यक्षोंके बारेमें मेरा कहना है कि उन्हें भी सलाह तो दी जा सकती है। यदि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ अपने नियम आप बनायें तो अ० भा० कांग्रेस कमेटीको अपने नियम बनानेका और भी विशेष और विस्तृत अधिकार है। इसलिए मेरे प्रस्ताव किसी भी प्रकार नियम-विरुद्ध नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-६-१९२४

१. यह अनुच्छेद हिन्दूके विशेष संवाददाताकी रिपोर्टसे लिया गया है।

१६१. पत्र : एक शोकाकुल पिताको

२८ जून, १९२४

प्रिय मित्र,

मेरे पुत्रको लिखे गये जॉर्ज जोजेफके पत्रसे मालूम हुआ कि ऐसे समय जब आपका बहादुर बेटा कृष्णसामी जेलमें है, आपकी बेटी नहीं रही। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि आपका एक लड़का पागल है। चार पुत्रोंका पिता होनेके कारण मैं इस शोकावस्थामें आपकी दशाको समझ सकता हूँ। ईश्वरमें हमारा विश्वास केवल तभी सिद्ध होता है जब हम इस प्रकारका शोक सहन करनेमें समर्थ बनते हैं; शोकको मौन होकर सहना हमारे विश्वासका दृढ़तर प्रमाण प्रस्तुत करता है। ईश्वर आपको इसके लिए आवश्यक बल दे। जब मैं आफ्रिकी जेलोंमें तमिल सीख रहा था, तब मैंने तमिलकी यह सुन्दर लोकोक्ति पढ़ी थी, "जो असहाय हैं, उनका एकमात्र सहायक ईश्वर ही होता है।"[1] मैं तमिल लगभग भूल गया हूँ, किन्तु इस कहावतकी मधुर ध्वनि मेरे कानोंमें आज भी गूँज रही है। इससे मुझे अक्सर बल मिलता है। ईश्वर करे इससे आपको भी बल मिले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ६८३३) की फोटो-नकलसे।

१६२. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें

अहमदाबाद
२८ जून, १९२४

भाइयो,

मैंने अपने उत्तरदायित्वको भली भाँति समझकर ही इन प्रस्तावोंका मसविदा तैयार करके यहाँ आपके सामने उन्हें पेश करनेकी जिम्मेदारी ली है। सौभाग्यसे अथवा दुर्भाग्यसे मैं कार्यकारिणी समितिके[2] सदस्योंमेंसे अधिकांश लोगोंको इन प्रस्तावोंके पक्षमें तैयार कर सका हूँ, मुझे जो-कुछ कहना था उसके विषयमें मैं 'यंग इंडिया' में लगभग सभी कुछ लिख चुका हूँ। इसलिए अब इन प्रस्तावोंको पेश करते समय मेरे पास कहनेके लिए कुछ विशेष नहीं बचा है। यह बात मेरे ध्यानमें है कि मैं जिन प्रस्तावोंको पेश करने जा रहा हूँ उनके सम्बन्धमें लोगोंम भारी

१. गांधीजीने यहाँपर तमिल लिपिमें लिखा है: 'दिक्कट्रवर्कु देवमे तुणै'।
२. जिसकी बैठक २६ जूनको हुई थी।

मतभेद उठ खड़ा हुआ है और परस्पर बहुत अधिक कटुता उत्पन्न हो गई है। इतना ही नहीं इन मतभेदोंको लेकर आजतक के साथी हमसे बिछुड़ जायें, इस बातकी नौबत आ सकती है। और मैं इस सम्भावनासे बेखबर नहीं हूँ। मैंने यहाँ "साथी" शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया है, क्योंकि "मित्रता" एक ऐसी डोरी है जिसे चाहे जितना खींचें वह कभी टूटती नहीं। उसका यही स्वभाव है। और मैं यह बताये देता हूँ कि देशबन्धु[1], पण्डित मोतीलाल, मौलाना आजाद और अन्य अनेक लोग आज भले ही मेरे विरुद्ध खड़े हुए दिखाई देते हों; लेकिन इससे हमारे बीच मित्रताका जो सम्बन्ध है वह कभी टूटनेवाला नहीं है। जिस मनुष्यको सार्वजनिक जीवनमें भाग लेना है उसे समय आनेपर अपने निकटतम मित्रोंसे अलग होने और नये साथियोंकी तलाश करनी पड़ सकती है। ऐसा प्रसंग उपस्थित होनेपर उसका सामना नम्रतासे परन्तु दृढ़तापूर्वक करना चाहिए। मालवीयजी और मैं दोनों विरोधी दलोंमें हैं; लेकिन इससे कोई यह नहीं कह सकता कि हमारी मित्रतामें कभी कोई कमी आई है।

मतभेद होनेपर दो मित्रोंमें परस्पर मैत्री भी अवश्य टूट जानी चाहिए — ऐसा मानना तो गम्भीर भूल है। हाँ, इससे एक साथ मिलकर काम करनेका सुयोग अवश्य खतम हो जाता है, फिर भी हमारे साथके बारेमें चाहे कुछ भी कहा जाये, इतिहास इस बातकी साक्षी अवश्य देगा कि हमारी मित्रता जैसी थी वैसी ही अखण्डित रही है।

मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे इन प्रस्तावोंपर इस तरहकी भावना मनमें रखकर ही विचार करें। देशमें जैसी स्थिति है मुझे उसकी झाँकी कल मिली। मैंने कई वर्षोंतक वकालत की है और मेरा अनुभव है कि लोग जब एक बार किसी मुद्दे पर अपनी राय कायम कर लेते हैं तब उसके विरोध अथवा समर्थनमें तरह-तरहकी कानूनी बारीकियाँ ढूंढ़ निकालनेमें दिक्कत नहीं पड़ती और इसी कारण मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपने प्रस्तावोंके विधि-सम्मत होनेके पक्षमें जो दलीलें दी हैं यदि वे भी मेरे तत्सम्बन्धी दृष्टिकोणसे रंगी हुई हों तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात न होगी। मैं यह स्वीकार करनेके लिए भी तैयार हूँ कि मुझसे मतभेद रखनेवाले सज्जन, जो मेरे इन प्रस्तावोंको कांग्रेसके संविधानके नियमोंका उल्लंघन करनेवाला मानते हैं और इसलिए उन्हें अवैध कहते हैं, वे प्रामाणिक रूपसे ऐसा मानते हैं।

श्री श्रीनिवास आयंगार[2] और मेरे बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। हमारे बीच निकटतम मैत्रीका नाता है, ऐसा मैं कह सकता हूँ। उन्होंने आज सुबह मेरे पास आकर मुझसे पूछा, "आपने कहीं यह तो नहीं कहा है, यदि दोनों पक्षोंके मत समान आयें तो मैं कांग्रेससे निकल जाऊँगा?" मैंने यह बात कही तो है; तथापि मैं इन प्रस्तावोंको पेश करनेका आग्रह रखता हूँ। इसका कारण यह है कि मैं, आप और सारा देश इस समय कहाँ है — मैं यह बात जान लेनेके लिए उत्सुक हूँ। यदि मैं यह देखूँ कि इससे झगड़ा-फसाद ही बढ़ेगा और कड़वाहटके अलावा कुछ हाथ नहीं

१. चित्तरंजन दास।
२. मद्रासके वकील और कांग्रेसी कार्यकर्त्ता, १९२६ में गोहाटी कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष।

लगेगा और मेरे पक्षने भी मेरे प्रति व्यक्तिगत वफादारीके कारण ही मेरे पक्षमें मत दिये हैं तो मैं कांग्रेससे अपना सम्बन्ध तोड़ लूंगा।

मेरी स्थिति विषम है। आज देश मुझसे नेतृत्वकी आशा रखता है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं कुछ निश्चित शर्तोंपर ही नेतृत्व कर सकता हूँ। लेकिन इसके लिए मुझे अपनी जरूरतके साधनों और उपकरणोंकी खोज करनी होगी। इसीलिए मैंने आज देशमें मतभेद उत्पन्न होने और प्रियसे-प्रिय मित्रोंसे जुदा होनेकी जोखिम उठाकर भी इन प्रस्तावोंको पेश किया है।

लेकिन आज जो स्थिति है उसमें मेरी अक्ल काम नहीं करती। इसलिए आपको या तो किसी दूसरे नेताकी तलाश करनी होगी या नेतृत्वकी मेरी शर्तें स्वीकार करनी होंगी। मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। बिना किसी प्रयोजनके कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर विधि-सम्मत संविधानका उल्लंघन नहीं करना चाहता। मैंने तीसरे प्रस्ताव[1] में उल्लंघन किया है। मैंने कहा है कि कोई संविधान तभीतक अच्छा कहा जा सकता है जबतक वह हमें आगे बढ़नेमें मदद दे। जब वह हमें पीछे खींच रखने अथवा कायर बनानेमें कारणीभूत होता जान पड़े तब हमें ऐसा नहीं होने देना चाहिए। यह सच है कि यदि कांग्रेस प्राणवान् संस्था है तो वह आपको संविधानका ऐसा उल्लंघन करनेपर दण्ड देगी। मैं तो कहता हूँ कि यदि कांग्रेस दण्डित करे और हमें निकाल बाहर करे तो हममें वहाँसे निकल जाने और अधिक अच्छे सेवकोंके लिए जगह खाली करनेकी हिम्मत होनी चाहिए। लेकिन यदि हम यह मानते हों कि हम वर्तमान संविधानको रौंदे बिना और आगे बढ़े बिना स्वराज्यको निकट नहीं ला सकेंगे तो संविधानको ताकपर रखना और उसका उल्लंघन करना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है। ऐसा होनेपर भी जब मैंने देखा कि कार्यकारिणी समिति मेरे प्रस्तावोंको अपनी सिफारिशके रूपमें अ० भा० कां० कमेटीके आगे रखनेके लिए तैयार है तब मैंने अपने तीसरे प्रस्तावमें कुछ परिवर्तन कर दिये।

मैं आज सुबह तीन बजेसे अपने मनमें सोच रहा हूँ कि इस अवसरपर मेरा धर्म क्या है। मैंने चारों ओरसे विचार करके देखा। पण्डितजीके मेरे विरुद्ध कानूनी आपत्ति सम्बन्धी प्रस्तावपर प्राप्त मतोंसे पता चलता है कि बंगालको छोड़कर अधिकतर प्रान्त इस तरहके कार्यक्रमको स्वीकार करनेके पक्षमें हैं। वस्तुतः देखा जाये तो कलका मतदान परिस्थितिका सच्चा चित्र उपस्थित करता है। यदि यह अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी मनःस्थितिका सच्चा परिचायक हो तो मेरा इस निर्णयपर पहुँचना उचित ही हुआ है कि अधिकांश प्रान्त इन प्रस्तावोंके पक्षमें हैं। इसलिए मैंने सभी प्रान्तोंके एकमत होनेकी सम्भावनापर विचार किया। खादी कोई छोटी-मोटी चीज नहीं है। इसलिए नहीं कि हम खादी पहनने लगे हैं, बल्कि इसलिए कि खादीने हमारे जीवनमें एक ऐसी वस्तुके प्रतीकके रूपमें प्रवेश किया है जिसे हम किसी अन्य तरीकेसे नहीं पा सकते हैं। इस समय अकेली खादी ही हमें एक सूत्रमें बाँध सकती है। इसके द्वारा

१. प्रतिनिधियोंके चुनावसे सम्बन्धित।

ही हम देशके आम लोगोंके साथ निकटताका सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। आप विधान परिषदों अथवा अदालतोंमें जाकर देशको सूत्रबद्ध नहीं कर सकेंगे।

अभी कल ही एक देशी मजिस्ट्रेटने एक नौजवान असहयोगीको[1] जेल भेजा है। जो सरकार हमें कुचल डालना चाहती है मैं तो उसके दमनकी कुछ भी परवाह न करनेवाले हजारों नौजवानोंको कटिबद्ध खड़ा देखना चाहता हूँ। मैं तो मातृभूमिकी वेदीपर दस हजार प्रागजी-जैसे युवकोंकी आहुति देनेके लिए तैयार हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि सरकारकी अदालतोंकी ऐसी अवमानना करना हम लोगोंके लिए जरूरी हो गया है। मैं बिना किसी संकोचके कहना चाहता हूँ कि यदि हम ऐसा कर सकें तो इस नौकरशाहीके लिए लोगोंकी भावनाओंको इस प्रकार गर्वपूर्वक कुचलना असम्भव हो जाये। मुझे लगता है, हमें सरकारको यह दिखा देनेकी जरूरत है कि वह हमको कुचल नहीं सकती और कुचलनेकी हिम्मत भी नहीं कर सकती।

पण्डितजी[2] स्वयं भी जानते हैं कि अकेली विधान परिषदें स्वराज्य दिलानेके लिए पर्याप्त नहीं हैं। पण्डितजीके मतानुसार विधान परिषदें सब-कुछ नहीं हैं। वे भी चाहते हैं कि सारा देश उनके पीछे रहे। वे चाहते हैं कि सविनय अवज्ञाके उत्साहसे उद्वेलित जनसमुदाय उनके पीछे चले ताकि वे अपने विधान परिषदोंके कार्यको प्रभावकारी बना सकें। मैं कहता हूँ कि इस सम्बन्धमें उनका विधान परिषदोंमें किया गया कार्य कुछ अधिक लाभप्रद नहीं हो सकता। हममें से कुछ लोगोंके जीवनमें विधान परिषदें भले ही महत्वपूर्ण स्थान रखती हों; परन्तु तीस करोड़ लोगोंके जीवनकी दृष्टिसे इनका कोई महत्व नहीं है और मैं आपसे इन तीस करोड़ लोगोंके जीवनको ध्यानमें रखकर ही इन प्रस्तावोंपर विचार करनेकी प्रार्थना कर रहा हूँ। क्या आप अपने लाखों और करोड़ों देशी भाइयों और बहनोंके जीवनमें प्राण फूंकनेके लिए उत्सुक हैं? क्या आपको गाँवोंमें बसी हुई इस गरीब प्रजाके बीच जाकर उसे सुसंगठित नहीं करना चाहिए? आप उस स्थितिकी कल्पना करें जब ५,००० लोग बड़ी-बड़ी सभाओंका आयोजन करके उनमें लम्बे-लम्बे भाषण देनेके बजाय गाँव-गाँव कातने और पींजनेवालोंके रूपमें फेरी लगायेंगे और स्वयं धुनकर और कातकर लोगोंको हिन्दुस्तानकी खातिर सूत कातनेके लिए कहेंगे। श्रद्धा और बुद्धिकी प्रखरताके बिना यह चित्र आपके हृदयपर खिंच नहीं सकता। चरखा हिन्दुस्तानकी तीस करोड़ जनताके साथ आपको एक सूत्रमें बांधनेवाली कामधेनु है और यदि आप लोगोंके साथ इतना निकटताका नाता जोड़ना चाहते हों तो आपको इस कसौटीपर खरा उतरना ही होगा।

आप तनिक विचार करके देखें। एकमात्र चरखा ही निम्नसे-निम्न देशवासियोंसे हमारा नाता जोड़ता है। मैं चरखेको एक व्यर्थकी देवमूर्ति नहीं बना देना चाहता। यदि मुझे दिखाई दे कि यह स्वराज्य प्राप्तिके कार्यमें विघ्नरूप है तो मैं उसे तुरन्त जला दूंगा। मैं इस तरहसे मूर्तिभंजक भी हूँ और इस अर्थमें मुसलमान हूँ, तथापि

१. प्रागजी देसाई।
२. पं० मोतीलाल नेहरू।

मैं मूर्तिपूजक भी हूँ। यदि मुझे ऐसा जान पड़े कि नर्मदा नदीका एक पत्थर भी मुझे अपने इष्टदेवपर चित्त एकाग्र करनेमें मदद देगा तो मैं उसे अवश्य संजोकर रखूंगा और उसकी पूजा करूँगा। इस अर्थमें मैं हिन्दू हूँ।

मेरे एक अन्य मित्रका कहना है कि इस चरखेको इस तरह जपकी माला बना डालना ठीक नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे लिए तो चरखा जप-माला ही बन गया है और मैं इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि आप सबको भी मेरी इस चरखा सम्बन्धी श्रद्धाकी छूत लग जाये। यदि आप केवल मुझपर ही श्रद्धा करते हों और चरखेपर नहीं तो आप निश्चित जानें कि आप धुएँको मुट्ठीमें बाँधने-की कोशिश कर रहे हैं। आप २,००० गज सूत मेरे सिरपर मारेंगे तो इससे क्या बनेगा? मेरा समाधान इतना करनेसे ही नहीं होगा। मुझे फाँसीपर लटकानेके लिए तो एक ही व्यक्ति द्वारा भेजा हुआ सूत पर्याप्त है। लेकिन मैं इस तरहकी मौत तो नहीं चाहता। मैं तो देशकी खातिर जीना और देशकी खातिर ही एक निष्कलंक मनुष्यके रूपमें — देशके सबसे अधिक निष्कलंक मनुष्यके रूपमें — मरना चाहता हूँ। मैं आपको ऐसी श्रद्धासे ओतप्रोत देखना चाहता हूँ; और यदि आपमें ऐसी श्रद्धा हो तभी आप मेरे पक्षमें मत दें। याद रखें कि आपको मेरी श्रद्धा नहीं वरन् स्वयं अपनी श्रद्धाको देखना है। आपमें श्रद्धाका होना जरूरी है।

अब मैं जो मेरे विरुद्ध मत देना चाहते हैं उनसे दो शब्द कहता हूँ। कुछ लोगोंने मुझपर आरोप लगाया है कि मैंने प्रस्तुत प्रस्तावोंको पेश करनेमें ब्रिटिश नौकरशाहीका ढंग अख्तियार किया है। हम इस नौकरशाहीसे इसलिए नाराज हैं कि हमने इसकी स्थापना नहीं की है और इसके कर्मचारियोंकी नियुक्ति भी हमने नहीं की है। लेकिन यदि हम अनुशासनकी खातिर अपने व्यवहारके बारेमें जान-बूझकर कोई नियम बनायें और उसे अपने लिए बन्धनकारी मानें तो हमें उसके प्रति रोष प्रदर्शित क्यों करना चाहिए? इसके अतिरिक्त मैं आज आपके सामने जो-कुछ पेश कर रहा हूँ वह तो एक ऐसा सिद्धान्त है जो अनादिसे चला आ रहा है और वह यह है कि हम जो-कुछ कहें उसके अनुसार चलें। यदि हम दृढ़निश्चयी, साहसी और बलवान् राष्ट्रकी रचना करना चाहते हैं तो हमें स्वयं अपने ऊपर कड़ेसे-कड़े नियम लगाने होंगे। सैनिक शिविरमें जाकर देखिए। मैं तो सैनिक शिविरमें रहा भी हूँ और मैंने उसमें स्वयं काम भी किया है। उसमें आपको कई दिनोंतक फाका करना पड़ सकता है, जिसे मुँहसे भी न लगाया जा सकता हो, ऐसा पानी पीना पड़ सकता है और कभी-कभी अफसरोंकी ठोकरें भी खानी पड़ सकती हैं, और वह भी हँसते-हँसते। यह हालत तो उन शिविरोंकी है जिनमें पैसे लेकर दूसरोंके लिए लड़नेवाले सैनिक रहते हैं। हम तो स्वेच्छासे देशकी सेवा करनेके लिए निकले हुए स्वयंसेवक हैं और जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। हमारे सम्बन्धमें सैनिक शिविरकी उपर्युक्त शर्तें कितनी कड़ाईसे लागू होनी चाहिए? आप अनुशासनके नियम लागू करनेपर नाराज कैसे हो सकते हैं? यदि आप अन्तःकरणसे इस तरहके अनुशासनके विरुद्ध हैं तो आप खुशी-खुशी इसमें से निकल जायें और बाहर निकलकर देशके लोकमतको अपनी ओर करनेके कार्यमें जुट जायें; इसीमें आपकी शोभा है। लेकिन

आपको यह समझ लेना चाहिए कि आप जो प्रस्ताव एक बार पास कर दें उसपर पूरी तरहसे अमल करना आपका पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है। इस कर्त्तव्यके आगे हममें से सर्वश्रेष्ठ मनुष्यको भी झुकना चाहिए।

यदि हम तैयार न हों, यदि हममें फूट हो और यदि अंग्रेज हमें आज ही स्वराज्य दे दें तो भी हमारे पारस्परिक झगड़े-फसादोंकी कोई सीमा न होगी। मेरा कहना है कि यदि अंग्रेजोंके जानेके बाद उनके स्थानपर अफगान अथवा जापानी आनेको हों तो स्वराज्यकी योग्यता सम्बन्धी हमारी सारी बातें और कोशिशें निकम्मी हैं। मैं तो यह देखना चाहता हूँ कि आप अंग्रेजोंसे स्वराज्य अपने बलपर लें; मैं आपको भेंटके रूपमें स्वराज्य लेते हुए देखना नहीं चाहता। ब्रिटिश संसद हमारे सम्बन्धमें क्या कहती है, मुझे इसकी परवाह रत्ती-भर भी नहीं है। उसी तरह यूरोपके लोगोंकी हमारी प्रवृत्तिके बारेमें क्या राय है, मुझे इसकी भी कोई चिन्ता नहीं है, लेकिन एक सामान्य नागरिक हमारे सम्बन्धमें क्या कहता है, मैं यह जाननेके लिए अवश्य ही बेचैन हूँ।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम तनिक भी विचार करें तो हमें सहज ही यह दिखाई दे जायेगा कि इससे जल्दी पूरा होनेवाले कार्यक्रमकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस कार्यक्रमको अमलमें लाते ही स्वराज्य मिला समझिए। १९२०–२१ के प्रसिद्ध वर्षमें आपने कुछ अंशतक इस कार्यक्रमपर अमल किया था। उसका प्रभाव क्या हुआ था यह सभी जानते हैं। यह सब गांधीकी खातिर किया गया हो सो बात नहीं है। गांधीको तो अनेक बातें बेहद प्यारी हैं। यदि गांधीने उन सबको देशके आगे रखा होता तो लोग कदाचित् उसे दुत्कार कर हटा देते। लेकिन गांधी तो देशकी नाड़ी देख चुका है। वह अपने कार्यक्रमके लिए मर मिटनेको तैयार है। यदि आप मुझे आज त्याग देंगे तो आप मुझे बड़बड़ाते हुए अथवा मुँह बिगाड़कर नहीं बल्कि विनयपूर्वक और प्रसन्नतासे बाहर जाता हुआ देखेंगे। मैं बाहर रहकर स्वतन्त्र संघ अथवा मण्डलकी स्थापना करनेका प्रयत्न करूँगा। मैं आपके कार्यमें विघ्न नहीं डालूँगा। मैं अड़ंगा लगानेकी नीतिमें विश्वास नहीं रखता। मैं तो नितान्त शुद्ध और निर्मल असहयोगमें ही विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हूँ और आपके साथ भी असहयोग करूँगा।

यदि आप इन प्रस्तावोंको बहुमतसे पास करना चाहते हैं तो उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ेगी? आपको इसे समझ लेना है। आपको हर महीने खादी संघको कमसे-कम २,००० गज सूत देना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि आपको भी मेरी ही तरह चरखेके पीछे पागल होना पड़ेगा। यदि आपकी श्रद्धा इतनी प्रखर नहीं है तो आप इन प्रस्तावोंको अवश्य अस्वीकृत कर दें। यदि आपको ऐसा जान पड़े कि इस कदमको उठाना आत्मघात करना है तो आप इसके विरुद्ध मत दें और कांग्रेसके आगामी अधिवेशनमें लोगोंको अपनी ओर करनेका प्रयत्न करें। सच पूछिए तो कांग्रेस किसी एक व्यक्तिकी थाती नहीं है। जो व्यक्ति देशकी अधिकसे-अधिक सेवा करेगा, वह तो उसीके हाथमें रहेगी। ऐसा कहा जाता है कि इन प्रस्तावोंको पास करानेका मेरा उद्देश्य कांग्रेसपर अधिनायकत्व प्राप्त करना है। जबतक मेरा दिमाग दुरुस्त

है तबतक ऐसा कहा जाये तो मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मैं तो अपने आपको देशका एक अदना सेवक मानता हूँ। लेकिन सेवा करनेवाले लोगोंका एक ऐसा वर्ग भी है जो कुछ निश्चित शर्तोंपर ही सेवा करना स्वीकार करता है और ये शर्तें कभी-कभी किसी-किसी व्यक्तिको अधिनायकत्व स्थापित करनेकी इच्छा-जैसी जान पड़ती हैं।

मैं तो ईश्वरका नाम लेकर और उसे साक्षी मानकर अपनी शर्तें आपके सामने रखता हूँ और इतना ही कहता हूँ कि इसमें मेरी इच्छा आपकी सेवा करनेके अलावा और कुछ नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-७-१९२४

१६३. भाषण और प्रस्ताव : दण्ड विषयक धारापर[1]

अहमदाबाद
२८ जून, १९२४

अध्यक्षने कहा : मैंने जिस प्रस्तावका सुझाव रखा था वह केवल ३७के विरुद्ध ६७ मतोंसे पास हुआ है। जो स्वराज्यवादी बैठक छोड़कर चले गये और जिन्होंने मतदान नहीं किया — यदि उनके मत भी जोड़ लिये जायें तो मेरी जीत बहुत ही कम वोटोंसे होती है। इसलिए मैंने कमेटीको दण्ड विषयक धारा हटा देनेकी सलाह दी है। बैठकमें उपस्थित एक सदस्यने[2] कहा है कि ऐसा करना संविधानकी भावनाके अनुकूल नहीं होगा।

श्री गांधीने इसका उत्तर देते हुए कहा : मैं आपको एक पूर्वोदाहरण देता हूँ। अमृतसर कांग्रेसमें विषय-समितिमें रौलट अधिनियम विरोधी आन्दोलनके दिनोंमें पंजाबमें भीड़ द्वारा किये गये उपद्रवोंके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पास किया गया था; किन्तु वह बादमें मेरे कहनेपर लगभग तुरन्त ही रद कर दिया गया।[3]

१. देखिए पिछला शीर्षक, गांधीजीका भाषण समाप्त हो जानेपर दण्ड विषयक धाराको हटानेके लिए रखा गया संशोधन गिर गया और मूल प्रस्ताव पास कर दिया गया। इसके बाद कमेटीकी बैठक औपचारिक रूपसे स्थगित कर दी गई थी किन्तु उसके तुरन्त बाद ही उसकी बैठक अनौपचारिक रूपसे गांधीजीकी अध्यक्षतामें पुनः बुलाई गई।

२. शुएब कुरैशीने कहा : सदनके लिए यह उचित नहीं कि वह कुछ ही क्षण पहले पास किये गये अपने प्रस्तावको खुद ही रद कर दे। उनका विचार था कि गांधीजीकी सलाह मानकर सदन एक बुरा उदाहरण सामने रखेगा।

३. गांधीजीका समर्थन पट्टाभि सीतारामैयाने किया। इसके बाद बैठक औपचारिक बैठकके रूपमें परिवर्तित हो गई। उसकी अध्यक्षता पदेन अध्यक्ष होनेके कारण मुहम्मद अलीने की। तब गांधीजीने दूसरा प्रस्ताव रखा।

इस तथ्यको देखते हुए कि जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक जारी थी, कुछ सदस्योंने अनिवार्य कताई सम्बन्धी प्रस्तावकी दण्ड विषयक धाराके विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करनेके लिए बैठकमें से उठकर चला जाना आवश्यक समझा और इस बातको भी देखते हुए कि प्रस्ताव ३७ के विरुद्ध केवल ६७ मतोंसे पास हुआ है और साथ ही इस बातको भी देखते हुए कि यदि कुछ लोग बैठकमें से चले न जाते और अपना मत प्रस्तावके विरुद्ध देते तो प्रस्ताव गिर जाता, कमेटी यह उचित और श्रेयस्कर समझती है कि इस प्रस्तावसे दण्ड विषयक धारा, परिचयात्मक धारासहित निकाल दी जाये।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-६-१९२४

१६४. कुछ प्रश्न

यदि हमारे साथी हमसे जान-बूझकर दुर्व्यवहार करें, बिना कारण नाराज रहें और ईर्ष्यासे जलें तो हमें क्या करना चाहिए?

मेरे पास जो पत्र आते हैं उनमें यह और इस तरहके दूसरे प्रश्न होते हैं। मैं उनमें से कुछ सवालात दे रहा हूँ। हमें अयोग्य व्यवहार करनेवालेके साथ योग्य व्यवहार करना चाहिए, जो हमसे अप्रसन्न हो उससे प्रसन्न रहना चाहिए और ईर्ष्या करनेवालेपर प्रेमभाव रखना चाहिए — मैं तो इसके अलावा इस संसारमें शान्तिपूर्वक रहनेका कोई दूसरा रास्ता नहीं जानता। इस तरह व्यवहारका इरादा करनेके बाद ऐसा करना सुगम और स्वाभाविक हो जाता है। जब ऐसा सरल व्यवहार करना सम्भव न हो तब एक-दूसरेसे अलग हो जाना चाहिए।

२. साधारण बातोंके सम्बन्धमें मतभेद हों और लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार व्यवहार करना चाहें तो हम क्या करें?

इस बातसे तो सामाजिक जीवनके अनुभवकी कमी सूचित होती है। यदि सभी अलग-अलग रास्तोंपर चलें तो हमें जिसका रास्ता सबसे अच्छा लगे उसका साथ देना चाहिए। इस तरह अन्ततः दो साथी तो हो ही जायेंगे। यदि वे सच्चे, दृढ़ और नम्र होंगे तो अन्य लोग उनसे खुद-ब-खुद आ मिलेंगे। जो मनानेसे नहीं मानता वह अन्तमें विवश होनेपर हार मान जायेगा।

३. यदि किसी मनुष्यका विश्वास हो कि दूसरा कार्यकर्ता सचमुच संस्थाको हानि पहुँचा रहा है तो उसे क्या करना चाहिए?

उसे नम्रतापूर्वक हानि पहुँचानेवाले भाईको उसकी भूल बता देनी चाहिए। यदि वह स्वीकार न करे तो स्वयं उससे अलग हो जाना चाहिए ताकि हम उस

1. इस दूसरे प्रस्तावका समर्थन वल्लभभाई पटेलने किया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक दूसरे दिन ८-३० बजे सुबहके लिए स्थगित हो गई।

हानिके भागीदार बननेसे बच जायें। इस तरह सरल भावसे बरताव करनेसे संस्थाकी हानि करनेवाले मनुष्यको और हमको तीनोंको लाभ होगा।

४. यदि किसी स्थानपर मुख्य कार्यकर्ता व्यभिचारी देखनेमें आये तो हमें क्या करना चाहिए?

यह नाजुक और भयंकर प्रश्न है। सभीकी नजर नेताके आचरणपर रहा करती है और किसीके मनमें उसके प्रति द्वेष भी हो सकता है। दुर्बल लोगोंको दूसरोंके अवगुण देखनेके अलावा और कुछ नही सूझता। इसलिए आप ऐसी भयंकर अफवाहोंपर कदापि विश्वास न करें। सभी नेताओंके बारेमें जो-कुछ कहा जाता है, उस सभीको सच मान लें तो इस जगतमें एक भी मनुष्य साथ देनेके योग्य न बच रहे। दोष तो सभी मनुष्योंमें होते हैं। तुलसीदासका कहना है कि जड़-चेतन सब दोषमय हैं। सन्तरूपी हंस दोषरूपी वारि-विकारको तजकर गुणरूपी दूध ही ग्रहण करते हैं।[१] लेकिन हम आँखोंसे देखी हुई घटनाको अनदेखी नहीं कर सकते। हमने खुद न देखी हो; किन्तु हमारी इच्छा न रहते हुए भी हमें ऐसे प्रमाण मिल जायें मानो हमने वस्तुतः वह देखी है तब हम क्या करें? यदि हममें नम्रता और निर्भयता हो तो हम वह बात उस नेतासे अवश्य कहें और उससे नेतृत्व छोड़नेका अनुरोध करें। अगर वह वैसा न करे तो हम उसी कारणको बताकर स्वयं उसका त्याग कर दें।

इससे एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठता है। जबतक नेता सार्वजनिक जीवनमें और उससे सम्बन्धित कार्योंमें भूल न करे तबतक हम उसके व्यक्तिगत जीवनपर कैसे विचार कर सकते हैं? यदि हम ऐसा करने लगें तो हम सभी नेताओंके चरित्रके चौकीदार बन बैठेंगे और उनको अपना-अपना जीवन अत्यन्त कटु जान पड़ेगा। इसलिए यदि हम नेताके व्यक्तिगत जीवनको सार्वजनिक जीवनसे सर्वथा अलग मानकर उसके व्यक्तिगत जीवनके प्रति बिलकुल उदासीन रहें तो क्या काम नही चल सकता? सामान्य रूपसे ऐसी दलील कदाचित् उचित जान पड़े, लेकिन यह हमारे संघर्षके सम्बन्धमें बिलकुल लागू नहीं होती। हमने अपने संघर्षको आत्म-शुद्धिका संघर्ष माना है। हम आत्म-शुद्धिके द्वारा इस आसुरी राजनीतिको नष्ट करना चाहते हैं। इसलिए हमारे साधक और साधन दोनों पवित्र होने चाहिए। हम अपने संघर्षमें व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवनमें अन्तर नहीं कर सकते। लेकिन हम जानते हैं कि हमारे निजी जीवनका हमारे सार्वजनिक जीवनपर भारी असर पड़ता है। हम सुधारक हैं और सुधारकका व्यक्तिगत जीवन पवित्र होना चाहिए, ऐसी प्राचीन कालकी मान्यता है और यह यथार्थ है। हम यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं। हम भोले ग्रामीणोंके बीच काम करते हैं। गाँवकी अनेक जातियाँ नीति और अनीतिका अन्तर नहीं जानतीं। वे तो हमारा स्वागत विश्वासपूर्वक करती हैं। उनकी स्त्रियाँ, बहनें और बेटियाँ कार्यकर्ताओंके पास निःसंकोच आती रहती हैं। यदि हमारा एक भी कार्यकर्ता इनको

१. जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

कुदृष्टिसे देखता है तो फिर क्या होगा? स्पष्ट दिखाई देता है कि समाज-सुधारोंके काममें हमारी मुख्य पूंजी प्रत्येक कार्यकर्त्ताके निजी जीवनकी पवित्रता है। यदि हमारे कार्यकर्त्ताओंके जीवनमें अपवित्रता आ जाये तो हमारा काम कागजकी नावकी भाँति स्वयं डूब जायेगा, हमें भी डुबो देगा और जनता भयभीत हो उठेगी। हमारे कुछ कार्यकर्त्ताओंमें ऐसी सड़ाँध पैदा हो गई है, मुझे इस आशयके पत्र मिले हैं। उनमें सत्य कितना है और झूठ कितना है, यह तो मैं नहीं जानता।

कच्छमें एक कार्यकर्त्ताने भारी भूल की थी। वह खादी प्रचारका काम करता था। उसकी अपवित्रताकी बात सबको मालूम हुई। इससे वहाँके कार्यको बड़ी हानि पहुँची। उस कार्यकर्त्ताको वह स्थान छोड़कर जाना पड़ा। सुना है कि अब वह प्रायश्चित्त स्वरूप एकान्त सेवन कर रहा है। यदि उसे शुद्ध पश्चात्ताप हुआ होगा तो वह फिर कभी सेवा-क्षेत्रमें आ सकेगा, लेकिन उसकी अपवित्रतासे जो धक्का लगना था सो तो लग ही गया।

इसलिए प्रत्येक कार्यकर्त्ताके प्रति दीनभावसे मेरी यह विनती है कि आप सँभलकर चलें। आपका मन आपके वशमें न हो, आपकी दृष्टिमें मैल हो, श्रवणेन्द्रियमें मैल हो, आपके हाथमें मैल हो और आपके पाँव आपको अयोग्य स्थानपर ले जाते हों तो आप वहाँसे एकदम हट जायें, प्रायश्चित्त करें और सेवाकार्यको छोड़ दें। आप यह निश्चित मानें कि पवित्र बननेकी क्रियामें ही सच्ची सेवा है। आप बिना पवित्र हुए सार्वजनिक क्षेत्रमें बने रहकर दोषोंकी गठरी बड़ी न करें। निरन्तर याद रखें कि आप अग्निकुण्डमें बैठे हैं। यदि आप संयमरूपी अपने अभेद्य परिधानमें भी छिद्र हो जाने देंगे तो अग्नि उसी राह प्रविष्ट होकर आपको भस्म कर डालेगी। जिसका मन अपने वशमें नहीं है वह दूसरोंको अपने अनुशासनमें रखनेका विचार ही कैसे कर सकता है?

५. कार्यकर्त्ताओंमें शौकीनी बढ़ गई है। उन्हें हर समय सवारी चाहिए। घोड़ागाड़ी मिले तो उनका काम बैलगाड़ीसे नहीं चल सकता और उनके लिए मोटरके आगे तो घोड़ागाड़ी और बैलगाड़ी दोनों ही बेकार हैं।

मैं अब स्वयं अपंग हो गया हूँ इसलिए मेरी कलममें सवारीके बारेमें टीका करनेकी जो शक्ति पहले थी वह अब नहीं रही है। तिसपर भी मैं खेड़ाके संघर्षके पुराने पवित्र दिनोंका स्मरण दिलाते हुए कहना चाहता हूँ कि आग्रह तो उलटा रखना चाहिए। अपने दो पाँवों-जैसे घोड़े हैं कहाँ? जबतक पाँव चलते हैं तबतक सवारीका विचार ही नहीं करना चाहिए और बैलगाड़ी हो तो घोड़ागाड़ीका विचार न करें तथा घोड़ागाड़ी हो तो मोटरकी बात न सोचें। मोटरमें जाने योग्य जल्दीका प्रसंग हो तो हमारा प्रमुख स्वयं कहेगा और तब मोटरका उपयोग अवश्य किया जा सकता है। लेकिन स्वेच्छासे तो 'पैरगाड़ी' को ही मान दिया जाना चाहिए। हमें हजारों कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है। अगर हजारों कार्यकर्ताओंके लिए घोड़ागाड़ीकी व्यवस्था करनी पड़े 'तब तो हमारा संघ द्वारका कदापि नहीं पहुँचेगा'।[1]

१. गुजराती कहावत।

६. यदि कार्यकर्त्ताको जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ आतिथ्यकी अपेक्षा हो तो?

तब तो कार्यकर्त्ताको अपना पद छोड़ ही देना चाहिए। मैंने सुना है कि कुछ गाँवोंमें तो लोग स्वयंसेवक या कार्यकर्त्ताके नामसे ही काँपने लगे थे। कहते हैं कार्यकर्त्तागण मिष्टान्न, ठंडा पानी, नरम बिस्तर आदि अनेक प्रकारकी सुविधाएँ माँगते थे और इसलिए बेचारे ग्रामवासियोंको कार्यकर्त्तासे सेवा लेनेके बदले उसकी सेवा करनी पड़ती थी।

कार्यकर्त्ताकी स्थिति तो यह होनी चाहिए कि वह गाँवके लिए भार-स्वरूप कदापि न बने। वह अपना खाना अपने साथ बाँधकर ले जाये। गाँववालोंसे मात्र निर्मल जलकी अपेक्षा करे। उसके साथ लोटा तो होना ही चाहिए, ताकि तालाब, नदी अथवा कुँआ दीख पड़नेपर वहाँ जाकर स्वयं ही पानी भर ले। जहाँ स्वच्छ भूमि मिले वहीं विश्राम कर ले। उसे पलंग और गद्दे शोभा नहीं देते। वह सेवाकी अपेक्षा नहीं रखता। क्योंकि वह तो स्वयं ही लोगोंकी सेवा करनेके लिए निकला है। इसलिए वह आतिथ्यके अभावमें निराश नहीं होता। वह हुक्म देने नहीं, हुक्म बजानेके लिए जाता है। इसलिए उसे सबसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोलना चाहिए। उसे सेवाका काम भाता है और वह उसकी आत्माका आहार बन जाता है। अतः यदि उसे बदलेमें गालियाँ मिलती हैं तो भी वह सेवा करता रहे। "अवगुण बदले गुण करे, सो नर ज्ञानी जान" — यह अनुभवी और व्यवहारकुशल कविकी वाणी है। प्रत्येक कार्यकर्त्ताको ऐसा ज्ञानी होना चाहिए। हमें गुजरातमें और कई अन्य भागोंमें सफलता नहीं मिली है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हम स्वयं अपनेको सेवक कहते हैं, किन्तु दूसरोंसे आशा यह रखते हैं कि वे हमें स्वामी मानें, हम अपना नाम कार्यकर्त्ताओंमें लिखते हैं और अपना काम दूसरोंसे करवाते हैं।

हम ग्रामीणोंपर भार-स्वरूप न हों, मैं ऐसा बराबर लिखता आ रहा हूँ; किन्तु इससे कोई यह न समझे कि हमें गन्दगी सहन करनी है। मैं ऐसे कुछ आलसी कार्यकर्त्ताओंको जानता हूँ जो स्वयं बहुत मैले रहते हैं और यदि साफ स्थानोंपर जाते हैं तो उन्हें भी गन्दा कर देते हैं। सेवकके लिए जिस तरह मरते दमतक अपनी स्वच्छता बनाये रखना जरूरी है उसके लिए उसी तरह बाह्य स्वच्छताको बनाये रखना भी जरूरी है। हमारे कपड़ोंमें भले ही पचास पैवन्द लगे हों, परन्तु वे साफ अवश्य हों। हमारा लोटा दर्पणके समान स्वच्छ होना चाहिए। यदि कार्यकर्त्ता जिस स्थानपर जाये वह मलिन हो तो उसे उसको स्वच्छ करके लोगोंको स्वच्छताका पदार्थपाठ पढ़ाना चाहिए। पाखाना गन्दा हो तो वह उसे अपने हाथोंसे साफ करे। यदि वह जंगलमें जाये तो अपने साथ छोटी कुदाली ले जाये और शौचसे पहले और बादमें उसका उपयोग करे। यदि हम मैलेको साफ मिट्टीसे ढँक दिया करें तो मक्खियों और अन्य जीवोंका उपद्रव कम हो जाये और लोगोंके शरीर-स्वास्थ्यमें वृद्धि हो। कार्यकर्त्ताओंको आरोग्यके नियमोंका ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६५. डाका पड़नेपर

जब घाटकोपरमें[१] डाके ज्यादा पड़ने लगे तब वहाँके निवासी घबरा गये। ऐसी स्थितिमें सभी घबरा जाते हैं। अब नगरपालिकाने उचित उपाय किये हैं। इस कारण तथा बरसातमें डाकुओंके लिए भागनेकी सुविधा कम हो जानेके कारण डाके पड़नेका भय बहुत कम हो गया है। इसलिए घाटकोपरके वासियोंको तात्कालिक उपाय क्या करने चाहिए, इसपर विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती।

लेकिन अतिरिक्त पुलिसकी व्यवस्था करना कोई सही उपाय नहीं है। ऐसे उपाय तो हमेशा किये गये हैं; लेकिन उनसे डाके बन्द तो नहीं हुए। अमेरिका-जैसे बहुत ही उन्नत देशमें चलती गाड़ियोंमें डाके डाले जाते हैं। साहसिक लुटेरे दिन-दहाड़े राहगीरोंको सार्वजनिक मार्गोंपर लूट सकते हैं। चोरियाँ तो होती ही रहती हैं। अनेक अनुभवी पर्यवेक्षकोंकी मान्यता है कि सभ्यताकी प्रगतिके साथ-साथ अपराध भी बढ़े हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि अपराधका स्वरूप बदल गया है। लोगोंके परिष्कारके साथ-साथ अपराध करनेके तरीके भी परिष्कृत हो गये हैं। अपराधोंको खोज निकालनेकी शक्तिके साथ-साथ अपराध छिपानेकी शक्तिमें भी वृद्धि हुई है; अर्थात् हम जहाँके तहाँ बने हुए हैं।

अब हम यह देखें कि लोग डाकू कब और किन परिस्थितियोंमें बनते हैं। जंगलोंमें बसनेवाले अपरिग्रही साधुओंको कोई नहीं लूटता। उन्हें लूटनेवालेको मिलेगा भी क्या? डाकू पैसेके लोभसे ही डाका डालता है। यदि लोग पैसेके लोभकी सीमा निर्धारित कर लें तो लूटपाट भी अपेक्षाकृत कम हो जायेगी। यदि सबके पास एक-सा पैसा हो तो लूटपाटका धन्धा ही बन्द हो जायेगा। लेकिन हमें समझ लेना चाहिए कि ऐसी शुभ स्थिति कमसे-कम आजके जमानेमें तो अवश्य ही नहीं आ सकेगी।

फिर भी हमें उपर्युक्त सिद्धान्तको ध्यानमें रखनेकी जरूरत है। हम भले ही धनके लोभकी सीमा निर्धारित न करें; परन्तु हमें डाकुओंकी स्थितिको समझनेका प्रयत्न तो करना ही चाहिए। यदि वे भूखों मर रहे हों तो हम उन्हें कोई उद्योग करना सिखायें और यदि उन्होंने लूटमारको ही आजीविका कमानेका साधन बना लिया हो तो हम उन्हें उस अनीतिके अनौचित्यसे अवगत करायें। यह काम सुधारकका है। इसलिए इसके लिए साधु सबसे उपयुक्त होंगे। साधु वह नहीं है जो भगवा पहन कर भीख माँगता है बल्कि साधु वह है जिसका हृदय भगवे रंगमें रंग गया है और जो सेवा-धर्मपरायण है।

डाकुओंके सुधारका कार्य जब डाकू डाका डाल रहे हों तब आरम्भ नहीं किया जा सकता। ऐसा काम तो आज ही शुरू कर दिया जाना चाहिए। उसमें धनकी बहुत ज्यादा अथवा तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। उसके लिए बहुतसे लोगोंकी

१. बम्बईका एक उपनगर।

जरूरत भी नहीं है। यदि यह परम्परा आरम्भ हो जायेगी तो वह आगे चलती रह सकती है। आधुनिक कालके सुधारकोंने यह भी किया है। सहजानन्द, चैतन्य, और रामकृष्ण आदिने इस दिशामें बहुत-कुछ किया था। वह सुधार स्थायी नहीं हो सका, अथवा उससे लूटमार बन्द नहीं हो पाई — ऐसा कहकर अथवा इस मान्यताके आधार-पर कोई उनके प्रयत्नोंकी अवगणना न करे। ऐसे सुधार व्यापक नहीं होते, क्योंकि वे प्रायः एकपक्षीय होते हैं।

हम ऐसा मानते हैं कि धनिक वर्गमें ऐसे सुधार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। सच तो यह है कि लूटमारका धन्धा धनिक वर्गकी लूटका ही प्रतिबिम्ब है। धनिक वर्गकी सूक्ष्म लूट-खसोट ही डाकुओंमें स्थूल रूप धारण करती है। इसलिए सुधारकको धनिक वर्गकी सूक्ष्म लूट और गरीबोंकी स्थूल लूटमार दोनोंको मेटनेका काम हाथमें लेना होगा; तभी बात बनेगी। यह कार्य आचार्यों, फकीरों और संन्यासियों इत्यादिका है। वे लोग ही समाजकी नीतिके सच्चे रक्षक और चौकीदार हो सकते हैं और इसी कारण लूटमारको दूर करनेका कार्य भी उन्हींका है।

यह काम चलता रहेगा और डाके तो पड़ते रहेंगे। ऐसे कामोंमें "हथेलीपर सरसों" नहीं जम सकती। ये तो धीरे-धीरे ही होते हैं। इस बीच धनिक वर्ग अपनी सम्पत्तिकी रक्षा कैसे करें?

पुलिसकी मददसे एक हदतक रक्षा हो सकती है। सब खामियोंके लिए, सब दोषोंके लिए सरकार उत्तरदायी है — ऐसा कहनेका रिवाज पड़ गया है। यह अच्छा है और बहुत हदतक सही भी है। आज तो विदेशी राज्य है, इसलिए उसे दोष देना सुगम है। कल जब स्वराज्य होगा तब भी हम अपूर्ण रहेंगे और स्वराज्य सर-कारको गालियाँ देंगे। लेकिन तब सरकार हम स्वयं होंगे इसलिए वर्तमान सरकार-पर दोषारोपण करनेके स्वभावका त्याग करना भी स्वराज्यका शिक्षण कहा जायेगा। लूटपाटका सारा दोष सरकारके मत्थे मढ़ना अपनी दुर्बलताको स्वीकार करना है। जंगलोंमें रहनेवाले लोगोंकी रक्षाके लिए सरकार कहाँतक पुलिस रख सकती है। जिन लोगोंमें आत्मरक्षा करनेकी सामर्थ्य ही नहीं, वे स्वराज्यका उपभोग कैसे कर सकते हैं? अपंग लोगोंके भाग्यमें गुलामी लाजिमी है। इसलिए लोगोंको सभी स्थानों-पर आत्मरक्षाकी तैयारी कर रखनी चाहिए। इस दृष्टिसे विचार करें तो घाटकोपर-जैसे उपनगरोंके निवासियोंको और अन्य सभी जगहोंके भारतीयोंको अपना बचाव करना सीख लेना चाहिए। घर-घरके नवयुवकोंको आत्मरक्षाकी तालीम लेना जरूरी है। भाड़ेके लोगोंसे यह काम कराया जा सकता है; लेकिन उसमें जोखिम बहुत है। यदि मध्यम वर्गके लोग अपनी रक्षा अपने-आप करनेके बजाय पैसे देकर अन्य लोगोंसे करायेंगे तो वे इस तरह पैसे देकर भी केवल अपने सरदार ही तैयार करेंगे। जिन्हें परिग्रह करना है उन्हें अपना बचाव करनेके लिए तैयार रहना ही होगा।

यहाँतक तो मेरी टीका हिन्दू-मुसलमान सभीपर लागू होती है। हिन्दुओंके मार्गमें वर्णाश्रम-प्रथासे उत्पन्न कठिनाइयाँ बाधक होती हैं, यह विचार भ्रामक है। मनुष्य-मात्रमें ये चारों गुण होने चाहिए — ज्ञान, शौर्य, वाणिज्य और सेवाभाव; वर्ण-विशेषमें उसका विशेष गुण प्रधान रहे, वर्णाश्रमका केवल इतना ही अर्थ हो

सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्णका धन्धा — आजीविकाका साधन — उसका विशेष गुण होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मणको ज्ञान देकर, क्षत्रियको रक्षा करके, वैश्यको व्यापार करके तथा शूद्रको सेवा करके मुट्ठी-भर बाजरा लेनेका अधिकार है। लेकिन जो मनुष्य संकट आनेपर अपनी रक्षा नहीं कर सकता वह अधूरा है और समाजपर बोझ है। अपनी रक्षा आत्मबल अथवा शरीरबल द्वारा की जा सकती है। जिसने आत्मबलका विकास नहीं किया वह अपनी तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंकी रक्षा शरीरबलसे करनेके लिए बँधा हुआ है। दोनोंको अपनी जान देनेकी तालीम हासिल करनी है। आत्मबलसे युक्त मनुष्य शरीरको तुच्छ जानकर डाकुओंको दण्ड दिये बिना मरेगा जब कि शरीरबलसे युक्त मनुष्य उनको मारता हुआ मरेगा। सब आत्मबलका विकास करनेके लिए तैयार नहीं हो सकते। फिर द्रव्यार्थी और आत्मार्थी ये दो परस्पर विरोधी अर्थवाले भी हैं। जबतक द्रव्यार्थी द्रव्यकी लोलुपता नहीं छोड़ता तबतक वह पूरा आत्मार्थी नहीं बन सकता। लेकिन यदि आज दोनोंमें से एक भी भय देखकर भाग निकले तो वह कापुरुष ठहरता है। इसलिए दोनोंको ही अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार आत्मरक्षाकी शक्तिका विकास करना है। घाटकोपर-जैसे उपनगरोंमें रहनेवाले लोगोंका स्पष्ट धर्म है कि वे स्वयं अर्थात् प्रत्येक परिवारमें से कुछ लोग डाकुओंका सामना करनेके लिए प्रशिक्षण प्राप्त करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६६. मैं हारा

कभी-कभी कुछ सज्जन मेरे पास आकर मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। एक स्वामीजीने मेरे पास आकर इस आशयकी बातें कीं: "दूसरे लोग अस्पृश्यताके बारेमें चाहे कुछ कहते रहें, परन्तु आपको तो इसका नामतक मुँहसे न निकालना चाहिए, क्योंकि आप धर्मका नाम लेकर बातें करते हैं। इससे लोगोंको धोखा होता है। अगर धर्म-शास्त्रोंमें अस्पृश्यताको पाप माना गया हो तो, या तो उन वचनोंको पेश करके आप साबित कर दीजिए, नहीं तो मैं वेदोंके प्रमाणोंसे यह दिखला सकता हूँ कि उनमें अस्पृश्यताका पूर्ण समर्थन है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जायेगी तो सनातन धर्मका लोप हो जायेगा।"

मैं उनकी बात सुनकर परेशान हो गया। मैंने तो सिर्फ यही उत्तर दिया, "मैं तो वाद-विवाद करनेमें हमेशा अपनेको हारा हुआ समझता हूँ। मैं आपसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मैं पहलेसे ही यह बात कबूल कर लेता हूँ कि मैं आपसे बहसमें हार जाऊँगा किन्तु मैं फिर भी यह जरूर कहता रहूँगा कि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यताका होना महापाप है।" परन्तु मैं इससे स्वामीजीको सन्तोष नही दे सका। मैंने अपने मनमें पूरा सन्तोष अवश्य माना। मुझे लगा कि मैं तो यह मुख्तसिर जवाब देकर बच गया हूँ। जब स्वामीजी आये तब मैं 'यं० इं०' और 'नवजीवन' के पाठकोंकी

मनस्तुष्टिके नित्यकर्ममें लीन था। मैं बातचीतमें एक क्षण भी गँवानेके लिए तैयार नहीं था। इसलिए मुझे तो 'नन्ना' रामबाण दवा मालूम हुई। हमारे बड़े-बूढोंने हमें अनुभवके कुछ सूत्र बता रखे हैं। मेरे लिए इतना पर्याप्त था। "एक नन्ना छत्तीस रोग हरे" इस कहावतका लाभ मुझे बहुत बार मिला है। मैंने तो यह समझा है कि एक नन्ना छत्तीस ही नहीं बल्कि छत्तीस सौ रोगोंकी दवा है।

शास्त्रार्थका पेशा वकीलके पेशेकी तरह है। शास्त्रार्थ स्याहका सफेद और सफेद-का स्याह करके दिखा सकता है। इस बातका अनुभव किसे नहीं है? बहुतसे वेद-वादरत मनुष्य वेदसे अनेक बातोंके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और अन्य लोग उन्हीं वेदोंसे उन्हीं बातोंके बारेमें विरुद्ध बात उतने ही जोरसे सिद्ध कर देते हैं।

मैं अपने-जैसे प्राकृत मनुष्योंको एक ऐसा आसान तरीका बताता हूँ जिसको मैंने काममें लाकर देख लिया है। मैंने हरएक धर्मका विचार करके उसका महत्तम समापवर्तक निकाल रखा है। कुछ सिद्धान्त अटलसे मालूम होते हैं। वे अनुभवसे भी गलत सिद्ध नहीं हुए हैं। भक्त तुलसीदासने दोहेके एक पदमें कहा है 'दया धर्मका मूल है।' 'सत्यके सिवा दूसरा धर्म ही नहीं है', यह सनातन वचन है। किसी भी धर्ममें इन सूत्रोंका खण्डन नहीं किया गया। ऐसे हरएक वचनको, जिसके लिए धर्म-शास्त्रका वचन होनेका दावा किया गया हो, सत्यकी निहाईपर दयारूपी हथोड़ेसे पीटकर देखना चाहिए। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाये तो उसे ठीक समझना चाहिए अन्यथा हजारों शास्त्रार्थियोंके रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' ही कहना चाहिए। अखाकी अनुभव-वाणीमें शास्त्रार्थ एक "अन्धा कुँआ" है। जो उसमें गिरता है वह गोते ही खाता रहता है। आत्मा एक है। शरीर-मात्रमें उसीका निवास है। ऐसी दशामें अस्पृश्य कौन हो सकता है?

यहाँ हमें अस्पृश्यताका अर्थ भी समझ लेना चाहिए। रजस्वला स्त्री अस्पृश्य है। श्मशानसे लौटा हुआ मनुष्य अस्पृश्य है। मैला उठानेपर जबतक स्वच्छ न हो तबतक हर आदमी अस्पृश्य है। इस अस्पृश्यताको तो हम अपने माता-पिताके प्रति भी पालते हैं। परन्तु यदि रजस्वला माता बीमार हो और उस समय उसका लड़का अस्पृश्यताका विचार करके उसकी सेवा न करे तो वह नरकवासी होगा। सम्भव है उस सेवासे वह थोड़ी देरके लिए अस्पृश्य हो जाये। मैला उठानेवाले सब अन्त्यज हैं। वे मैला उठाकर न नहायें और हम उनको छूकर नहाना चाहें तो नहा लें। परन्तु ऐसे मामूली और व्यावहारिक विचारसे अन्त्यजोंकी पृथक जाति बना देना, उन्हें गाँवके एक अलग मुहल्लेमें बसा देना, उनको जानवरोंसे भी अधिक त्याज्य मानना, वे चाहे मरें या जियें उनका खयालतक न करना, उनको जूठा और सड़ा-गला खाना देना, उनके बाल-बच्चोंको न पढ़ाना, वे बीमार हो जायें तो उनको दवा-दारूकी मदद न देना, उन्हें मन्दिरोंमें न पैठने देना और कुँओंपर पानी न भरने देना — यह धर्म नहीं, अधर्म है। हम इसे हिन्दू धर्मका अंग मानकर हिन्दू धर्मकी जड़ उखाड़नेकी तैयारी कर रहे हैं।

ऐसी अस्पृश्यता आत्मघाती है। यह असहिष्णुताकी पराकाष्ठा है। इसे दूर करनेका प्रयत्न करना और इस प्रयत्नमें अपने प्राण देना हरएक हिन्दूका परम धर्म है। मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं रह गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६७. प्रागजी और सूरत

"हुई तेरी सूरत बेहाल, आज सूरत तू रोता है।"

सूरतके मजिस्ट्रेटने प्रागजी खण्डुभाई देसाईको दो वर्ष, तीन महीनेकी कैद दे कर उन्हें सरकारी मेहमानके रूपमें आमन्त्रित किया है। वे अब मेरे पड़ोसी हो गये हैं।[1] वे साबरमती जेलमें कबतक सरकारके अतिथि बने रहेंगे सो तो सरकार जाने।

यदि प्रागजी शुद्ध सत्याग्रही हैं तो उन्होंने खोया कुछ नहीं है; वे झंझटोंसे छूट गये हैं, और फिर भी देशकी पर्याप्त सेवा कर सकते हैं। ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। इसलिए उन्हें तो मैं बधाई ही देता हूँ।

जिस लेखपर उन्हें कैदकी सजा दी गई है वह लेख इस समय मेरे पास नहीं है, इसलिए मैं उसपर अपनी निश्चित राय नहीं दे सकता। सच्ची बधाईके पात्र तो केवल वे लोग ही हैं जो शुद्ध स्फटिक मणिकी भाँति निर्दोष होते हुए भी जेल जाते हैं। इसमें भ्रमकी कोई गुंजाइश नहीं है।

तथापि मैं इतना तो जानता हूँ कि प्रागजीको कैदकी सजा देनेवाली सरकार निष्पक्ष नहीं है। यदि प्रागजीका लेख मैं लिखता तो मैं अभिमानपूर्वक कह सकता हूँ कि सरकार मुझे जेल न भेजती। लेकिन मैं निरभिमान रहकर इतना तो कह ही सकता हूँ कि उसी लेखपर वह श्री शास्त्रियरको[2] भी जेल नहीं भेजेगी। और यदि कोई अंग्रेज इससे भी कड़ा लेख लिखे तो उसे तो सरकारकी ओरसे बधाई ही मिलेगी। अतः सामान्य दृष्टिसे देखें तो प्रागजी बिलकुल निर्दोष हैं। उनके मनमें लोगोंको टेढ़े रास्तेपर चलनेके लिए उकसानेका खयालतक भी न था, यह मैं जानता हूँ। इसलिए यह अन्ततः प्रागजीके लिए श्रेयस्कर ही है। प्रागजीको जेलका अनुभव है। वे दक्षिण आफ्रिकामें जेलोंका काफी अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। वे कष्टोंसे डरनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। उनका स्वदेशाभिमान उच्च कोटिका है।

फिर भी मैंने सूरतके सम्बन्धमें कवि नर्मदाशंकरकी[3] उपर्युक्त कड़ी क्यों उद्धृत की है? इसका कारण यह है कि सूरत आज मुझे निस्तेज-सा जान पड़ता है। प्रागजी सूरतके प्रख्यात सेवकोंमें से हैं। उनसे सूरत अपरिचित नहीं है। प्रागजी-जैसे

१. साबरमती जेल, आश्रमके समीप ही है।

२. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।

३. १९ वीं शताब्दीके गुजराती कवि जो अपनी देशभक्तिपूर्ण रचनाओंके लिए प्रसिद्ध थे।

व्यक्तिके जेल जानेसे इन दो स्थितियोंमें से एक स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए थी — या तो उनके पीछे बहुतसे लोग जेल जानेकी बात सोचें और जेल जायें या सूरतके लोग रचनात्मक कार्यमें जुट जायें। लेकिन आज तो सूरत सोया हुआ जान पड़ता है। सूरतपर ४०,००० रुपयेका जुर्माना किया गया है।[1] सूरत इसे अभीतक पिये बैठा है। सूरतके राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थिति त्रिशंकु-जैसी है। सूरतकी कांग्रेसकी तिजौरीमें पैसा नहीं है।

मेरी प्रार्थना है कि सूरतके कार्यकर्त्ता स्वयं जागें और सूरतको जगायें। सूरतके निस्तेज हो जानेका विचारतक असह्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६८. खुदाका गुनाह या कुदरतका?

एक भाई अपने पत्रमें[2] इस प्रकार लिखते हैं:

ये भाई कुदरत शब्दका जो अर्थ करते हैं यदि हम इस शब्दका यही अर्थ करें तो मेरा मौलाना मुहम्मद अलीसे हुई बातचीतके उक्त प्रसंगमें "खुदा" शब्दको रखना ही उचित था। यदि कोई मोटर-दुर्घटना हो जाये तो सभी लोग अपनी हाजतको भी रोककर घायलोंकी मददके लिए दौड़ पड़ेंगे। उसमें मेरे-जैसे क्षुद्र "महात्मा"की जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं यह भी मानता हूँ कि उस समय हाजतको रोककर भाग पड़नेका परिणाम बुरा नहीं होगा, क्योंकि दयाभावके प्रभावसे शरीरमें जो परिवर्तन होता है वह हाजतको रोकनेके दुष्परिणामोंका शमन कर देता है। इसके अतिरिक्त कुदरतके कायदोंको जाननेवाला आदमी ऐसे समयमें उपवास करके हाजत रोकनेसे होनेवाले दुष्परिणामोंको दूर कर सकता है।

इसलिए इन भाईने "कुदरत" शब्दका प्रयोग जिस अर्थमें किया है उससे मेरे कथनका अभिप्राय प्रकट नहीं होता।

मैं अपने "महत्त्व" की खातिर भी अपने दोषोंको नहीं छिपा सकता। मैं अपने आपको अति प्राकृत मनुष्य मानता हूँ। यदि मुझमें कोई चमत्कार है तो वह सत्य और अहिंसाकी अनन्य सेवा करनेकी महती आकांक्षाका होना ही है। पत्रलेखकका यह कहना कि 'यदि मेरे-जैसा आदमी खुदाका ऐसा गुनाह कर सकता है जिससे कि उसे ऐसी भयंकर बीमारीका शिकार होना पड़े तब तो सामान्य मनुष्य खुदाके गुनाहसे बचे रहनेकी आशा ही नहीं कर सकता', उचित नहीं है। मैं स्वयं पामर हूँ, इस

१. देखिए "सूरत जिला", १५-६-१९२४।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र प्रेषकने कहा था कि पूना अस्पतालमें मौलाना मुहम्मद अलीके इस प्रश्नके उत्तरमें कि "आप-जैसे व्यक्तिको यह बीमारी कैसी?" आपने कहा था, "मैंने खुदाका कोई गुनाह किया होगा" — आपको खुदाकी जगह कुदरत कहना था।

कारण किसीको पस्तहिम्मत होनेकी जरूरत नहीं है। अन्तस्ताप ही वस्तुतः भयंकर बीमारी है। एपेन्डिक्स अर्थात् अनावश्यक अवयवकी इस सूजनको एपेन्डिसाइटिस कहते हैं। मैं इसे भयंकर बीमारी नहीं मानता। बल्कि मैं तो बुरा बोलने और बुरा काम करनेको ही भयंकर बीमारी मानता हूँ। ईश्वरीय नियम इतने सूक्ष्म हैं और उनका पालन करना इतना कठिन है कि हमसे अनजानमें भी भूलें हो जाती हैं। उन भूलोंसे बचनेमें ही आत्माका आरोग्य अथवा कल्याण निहित है। यदि इस तरह बचकर चलनेवाले मनुष्यको कोई शारीरिक व्याधि हो जाये तो उससे निराश होनेका कोई कारण नहीं है।

अब मैं अपनी मतिके अनुसार खुदाके गुनाहका रूप समझाता हूँ। मैं पहले भोजनके विषयको लेता हूँ। मैं मिताहारके महत्वको तो बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। मैंने मिताहारके नियमका यथाशक्ति पालन भी किया है। लेकिन जिसका बहुत ज्यादा समय विचारमें जाता हो और जिसे हृदयकी गहराईमें पैठकर नित्य नई खोज करनी हो, उसे अल्पाहारी होना ही चाहिए। उसे शरीरकी क्षीणतासे नहीं डरना चाहिए। मैं इस अर्थमें अल्पाहारी नहीं था, कभी रहा नहीं और आज भी नहीं हूँ। मैं शरीरकी क्षीणताके सम्बन्धमें उदासीन नहीं हुआ हूँ। मैं अपना स्वास्थ्य बनाये रखना चाहता हूँ और सोचना तथा विचारना भी चाहता हूँ। मैं इसी द्वन्द्वमें पड़ा हूँ। मेरे प्रयोग जारी हैं; लेकिन अभी मुझे अपने अल्पाहारका माप नहीं मिला है। यह बात जादूसे सिद्ध नहीं हो सकती। स्वाभाविक रूपसे किये गये परिवर्तन ही टिके रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त अल्पाहारी होनेके बावजूद मनुष्यको रसोंपर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मैं अस्वाद-व्रतके पालनका आग्रह रखता हूँ तथापि मैं अभी इसकी सिद्धिसे बहुत दूर हूँ। मैंने अपने आहारमें केवल बकरीका दूध रखा है। किन्तु मैंने इसमें से भी अपने मनको स्वाद लेते हुए पकड़ा है। जबतक वह स्वाद बना हुआ है तबतक मुझे बीमारीका भय बना है। स्वादको न जीतना ही "खुदाका गुनाह" है।

लेकिन मैं अपने विकारोंपर भी काबू कहाँ पा सका हूँ? जिन्होंने मेरे जेलके अनुभव पढ़े हैं वे जानते होंगे कि मेरी किस्मतमें जेलमें भी लड़ाइयाँ ही लिखी थीं। मैंने अपने पूरे अनुभव तो दिये ही नहीं हैं। मैंने घरेलू लड़ाइयोंकी ओर भी इशारा तक नहीं किया है। जो लोग धार्मिक दृष्टिसे इन लड़ाइयोंको लड़ते हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि इनमें कितना सन्ताप सहन करना पड़ता है। यदि हम इन लड़ाइयोंको राग-द्वेषसे मुक्त होकर लड़ सकें तो हमें शारीरिक व्याधियाँ कदापि न सतायें। मैं तो क्रोधके वशमें हूँ। मुझे अच्छा, अच्छा लगता है और बुरा, बुरा लगता है। मैं इसे प्रकट नहीं होने देता तो इससे क्या होता? किन्तु इसे प्रकट न होने देनेके लिए कितना प्रयत्न करना पड़ता है सो तो मैं ही जानता हूँ। राग-द्वेषको वशमें करनेमें जितना प्रयत्न करना पड़ता है, बिजली-जैसा बड़ा आविष्कार करनेमें उसका सौवाँ हिस्सा भी नहीं करना पड़ता और इस विजयको प्राप्त करनेके बाद जो सुख मिलता है, वह न्यूटनको गुरुत्वाकर्षणकी शोध करनेसे जितना आनन्द मिला होगा, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक होता है। जेलमें क्रोध करनेके अनेक प्रसंग आते थे। इन सभी अवसरोंपर

मनको वशमें रखना कठिन होता था। जेलके वातावरणके विरुद्ध लड़ाई करनेमें बहुत प्रयत्न करनेकी जरूरत पड़ती है। ऐसे समय क्रोधादिसे उत्पन्न विकार शरीरपर अपना असर डाले बिना नहीं रहते। और आखिरमें स्वप्न-विकारके बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूँ। जबतक विचार सम्बन्धी विकार जीत नहीं लिये जाते तबतक शरीरको भयंकर व्याधियोंका भय बना रहेगा।

सच बात तो यह है कि हमने अभी मनोविज्ञानमें चंचु प्रवेश ही किया है। वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंने शरीरको तो बहुत चीथा है। किन्तु उन्होंने मनका विश्लेषण ही नहीं किया; उन्होंने स्वयं विकारवश होकर केवल शरीर सम्बन्धी परिवर्तनोंको देखकर व्याधियोंके निवारणके उपाय खोजनेमें अपना कालक्षेप किया है।

शरीरपर मनोविकारोंका असर कितना भयंकर होता है, उन्होंने इस बातकी सूक्ष्म जांच ही नहीं की है। बाह्य औषधिकी सहायताके बिना इन्द्रियदमन द्वारा किस तरह व्याधियोंसे बचा जा सकता है, इसकी खोज तो अभी होनी ही है। यह भी कहा जा सकता है कि ऐसी खोजें हुई तो थीं; लेकिन हमने उन्हें भुला दिया है। यदि आधुनिक हकीम और वैद्य आत्माको ध्यानमें रखकर व्याधियोंपर विचार करें तो वे बाह्योपचारके बजाय अवश्य ही आन्तरिक उपचारका पुनरुद्धार करेंगे। वे अनेक प्रकारकी सीरम — रक्तोदकी पिचकारियाँ देकर शरीरको दूषित करनेके बजाय आरोग्य-पालन करनेके प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय नियमोंका निरूपण कर सकते हैं। मैंने कुछ इसी विचारको ध्यानमें रखकर आरोग्यकी पुस्तक लिखी थी।[1] मुझे तो उसी दिशामें बहुत सारे प्रयोग करने थे। मैं इन प्रयोगोंको करते-करते बीमार पड़ गया। मैं इससे आत्म-विश्वास खो बैठा हूँ और मुझपर सत्याग्रहकी लड़ाइयोंका उत्तरदायित्व आ पड़ा है, यह मेरे रास्तेमें दूसरी रुकावट है। अगर मुझे इससे मुक्ति मिले तो मैं अपने प्रयासोंको फिर आरम्भ करूँ।

इस बीच अब पाठक यह अच्छी तरह समझ लें कि मुझे तो जो-जो व्याधियाँ हुई हैं उनका मुख्य कारण मैं स्वयं ही हूँ — ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यदि मैं अब भी अपने विचारोंमें निर्विकार हो सकूँ तो मेरा शरीर इस जन्ममें ही नीरोगी हो जाये, क्षीण होनेके बावजूद वज्रवत् बन जाये और छूत आदिके भयसे मुक्त हो जाये।

इस लेखसे पाठकोंको यही सार निकालना चाहिए कि वे मनोविकारोंको, जीतकर ही आरोग्यवान हो सकते हैं। यदि वे विकारोंको जीतनेका प्रयत्न करते हुए बीमार पड़ जायें तो वे इससे घबरायें नहीं, अपितु अपना प्रयत्न· जारी रखें। वे इष्ट फलकी प्राप्ति न होनेपर हताश न हों, वरन् श्रद्धा रखकर निरन्तर प्रयत्नशील बने रहें। शरीर तो लाड़-दुलारके बावजूद एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। वह कब नष्ट होगा हमें इसकी कोई खबर नहीं है। अतः कांचकी चूड़ियोंसे भी नाजुक इस वस्तुका अति मोह न रखा जाये और अपने मनको छलनेकी अपेक्षा हम यह मानें

१. गुजरातीमें इस पुस्तकके अध्याय सबसे पहले १९१३ में 'इंडियन ओपिनियन' में लेखमालाके रूपमें प्रकाशित हुए थे। देखिए "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान", खण्ड ११ और १२।

कि उसे जो थोड़ी-बहुत व्याधियाँ सताती हैं उसका कारण ईश्वरके सामान्य नियमोंका उल्लंघन है।

ये नियम अत्यन्त कठिन हैं, हमें यह माननेकी झूठी आदत पड़ गई है। सभी कहते हैं, इसलिए यही ठीक है, ऐसा हम आलस्यवश मान लेते हैं। हम उत्साहपूर्वक प्रयत्न करनेसे यह अनुभव कर सकते हैं कि विकारोंके अधीन होना मनुष्यका स्वभाव नहीं, अपितु उनपर विजय प्राप्त करना उसका स्वभाव है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६९. टिप्पणियाँ

खादी बनाम मिलका कपड़ा

धारवाड़ जिलेसे एक भाई लिखते हैं:[1]

मेरे पास ऐसे पत्र कई बार आते हैं। इनसे पता चलता है कि खादी भले ही टिकाऊ न हो, वह प्रति गज मिलके कपड़ेसे भले ही महँगी हो और सूत कच्चा होनेसे उसकी बनी खादी भले ही तुरन्त फट जाये, लेकिन यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि खादीसे जो सादगी आती है, इससे वह सस्ती पड़ती है। खादीके कपड़े चार या पाँच पहननेकी इच्छा ही नहीं होती। मलमलके वस्त्र-मात्रसे सन्तोष नहीं होता। ऐसा कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि खादीका जो प्रभाव उपर्युक्त सज्जन-पर हुआ है, वही प्रभाव सब लोगोंपर होता है अथवा इस प्रभावका कारण स्वतः खादीमें निहित है। इसका कारण खादीके आसपासका वातावरण और उसमें निहित भावना है। खादीसे सैकड़ों लोगोंके जीवनमें महान परिवर्तन हुआ है। यह तो ऐसी बात है, जिसे कोई भी मनुष्य थोड़ा ध्यान दे तो देख सकता है।

मृतक-भोज अथवा कारज

इन्हीं सज्जनने अपने ऊपर आये हुए एक धर्म-संकटकी बात भी लिखी है। उनकी जाति-बिरादरीके लोग उनकी माताका स्वर्गवास होनेपर उनसे जाति-भोज देनेका आग्रह कर रहे हैं। उन्हें स्वयं इसपर कोई श्रद्धा नहीं है। प्रत्युत उनकी मान्यता है कि ऐसे भोजोंसे नुकसान होता है। दूसरी ओर यदि वे कारज नहीं करते तो जाति-बिरादरीके लोगोंका मन दुःखता है। ऐसे संकटके समय क्या करना चाहिए, यह सवाल है। यदि समाजकी पुरानी कुरीतियाँ दूर करनी हों तो इस मामलेमें पहल करनेवाले लोगोंके सामने ऐसे धर्म-संकट आयेंगे ही। ऐसे समयमें विनय और दृढ़ता, ये दो गुण ही काम देते हैं। उन्हें विरोधियोंके विरोधको विनयपूर्वक सहन करना

१. यहाँ पत्रका अनुवाद नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने पत्रमें लिखा था कि उन्हें विदेशी कपड़ेकी बनिस्बत खादी बहुत सस्ती जान पड़ी है; और जबसे उन्होंने उसे पहनना शुरू किया है तबसे उन्हें सामान्य कार्य करनेमें कोई अप्रतिष्ठा अनुभव नहीं होती।

चाहिए और अपने निश्चयपर दृढ़तापूर्वक डटा रहना चाहिए। हमें जाति-बिरादरीके लोगोंको खुश रखनेके लिए भी अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिए। मृत्यु-भोज देनेमें किसीको पुण्य-लाभ होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। मृत्युके बाद दान देनेकी प्रथा सभी जगह प्रचलित जान पड़ती है — दानके इरादेसे नहीं प्रत्युत इस खयालसे कि कोई हमें कंजूस या बिरादरीके मतकी उपेक्षा करनेवाला न मान बैठे। इस प्रकारके भोजमें जितना रुपया लगनेकी सम्भावना हो उतना रुपया जातिके बालक-बालिकाओंकी शिक्षा-दीक्षाके निमित्त दे दें तो यह उद्देश्य पूरा हो जाता है। हम मिथ्याभिमानसे अथवा भयवश जो पैसा विवाह अथवा मृत्यु-जैसे प्रसंगोंपर खर्च करते हैं यदि उतना पूराका-पूरा अथवा उसमें से अधिकांश बचाना सीख जायें तो हमारे सामने पैसेकी जो दिक्कत सदा बनी रहती है वह न रहे। लेकिन भगवान जाने यह कैसी माया है कि ऐसे समयमें ज्ञानी मनुष्य भी ज्ञान खोकर, मूढ़ बनकर कर्ज लेता और कारज करता है। लेकिन हम सभी खादीके इस सादगीके युगमें इन खर्चोंसे बच सकते हैं।

अनुकरणीय

कराड़में[1] हिन्दू और मुसलमानोंके बीच कटुता उत्पन्न हो गई थी। कुछ मुसलमानोंने हिन्दू-मूर्तियाँ तोड़ दी थीं और इस विषयमें कुछ मुसलमान गिरफ्तार किये गये थे और उनपर अदालतमें मुकदमा शुरू कर दिया गया था। अब कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीने तार द्वारा सूचित किया है कि कराड़में हिन्दू-मुसलमानोंकी सार्वजनिक सभा हुई। सार्वजनिक सभामें मुसलमानोंने क्षमा मांगी और पछतावा भी जाहिर किया। उन्होंने मूर्तियाँ तोड़नेवालोंका पता लगानेकी जिम्मेदारी भी स्वीकार की और यह भी कबूल किया कि वे इस बातकी जमानत लेंगे कि आगे कभी मूर्तियाँ नहीं तोड़ी जायेंगी। हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर भविष्यमें आपसी व्यवहारके लिए नियम बनायेंगे और मूर्ति तोड़नेसे जो नुकसान हुआ है, उसकी भरपाई मुसलमान कर देंगे।

समझौतेके बाद उन्होंने कलक्टरको मुकदमा वापस लेनेकी अरजी दी। उपर्युक्त समझौता हो गया, इसकी जाँच कर लेनेके बाद कलक्टरने मुकदमा वापस लेनेकी स्वीकृति दी। लगता है, समझौता सच्चे मनसे किया गया है। दिल्लीमें पंचोंके चुनावकी प्रथा शुरू हो गई है और कराड़ने उसका प्रशंसनीय अनुकरण किया है। हम आशा करते हैं कि जहाँ-जहाँ हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कटुता है, वहाँ दोनों परस्पर मिलकर समझौता कर लेंगे; और इसीमें दोनोंका हित है, ऐसा मानकर वे मिलकर रहेंगे और एक-दूसरेकी मदद करेंगे। यदि दोनों कौमें बात समझ लें और सच्चे दिलसे मिल जायें तो फिर आगे चलकर गलतफहमी पैदा नहीं होगी। बुरहानपुरमें[2] कराड़-जैसा ही प्रसंग उत्पन्न हो गया है, ऐसा सुननेमें आया है। क्या वहाँके हिन्दू-मुसलमान भी परस्पर मिलकर समझौता नहीं कर लेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २९-६-१९२४

१. महाराष्ट्रका एक नगर।
२. महाराष्ट्रका एक नगर।

१७०. सुन्दर सुधार

एक भाई लिखते हैं, "प्रेमका अभाव या अतिरेक" लेखमें[1] आपने 'तू' शब्दके प्रयोगको बहुत अच्छी तरह समझाया है। लेकिन उसमें एक वाक्य ऐसा है जिससे फिर वही "आप" का सम्बन्ध ध्वनित होता है। आपने लिखा है, "राम मेरा है और मैं उसका गुलाम हूँ।" इसके बजाय यदि आप यह लिखते, "राम मेरा है और मैं रामका हूँ", तो इससे "तू" की व्याख्या निखर उठती। उनका यह कहना बिलकुल सच्चा जान पड़ता है। "मैं उनका गुलाम हूँ", यह अलगावका सूचक है और "मैं रामका हूँ" यह तन्मयताका। लेकिन यदि यह भाव मनमें न हो तो भाषामें कहाँसे आये? अभी सम्भवतः मुझे गुलामी ही अधिक प्रिय है। शायद, अभी मुझे अलगाव भाता है। तभी मुझे गुलाम होनेकी बात याद आई। अब्बाई माई होना सहल नहीं है, यह विचार प्रतिक्षण मनमें उठा करता है। यदि हम भाषाका प्रयोग अपने अन्तरके विचारोंको व्यक्त करनेके लिए ही करें तो जो ध्वनि मनमें होगी वही निकलेगी। मुझे अभी भगवानका साक्षात्कार नहीं हुआ है, तब मैं उस साक्षात्कारकी भाषा कहाँसे लाऊँ? लेकिन मैं प्रयत्न तो अवश्य करूँगा। पाठकगण भी करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१७१. प्रस्ताव: अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें[2]

अहमदाबाद

२९ जून, १९२४

इसके बाद श्री गांधी बोले। उन्होंने स्वराज्यवादियोंसे कहा कि वे चरखेके कार्यक्रमपर अमल करें। उन्होंने यह आशा भी प्रकट की कि लोग इसपर सद्भावसे अमल करेंगे। इसके बाद श्री गांधीने अपना दूसरा प्रस्ताव पेश किया:

प्रस्ताव २: चूंकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने यह बात लाई गई है कि यथोचित अधिकार प्राप्त अधिकारियों तथा संगठनों द्वारा समय-समयपर जारी की गई हिदायतोंका कभी-कभी उचित पालन नहीं किया गया है, इसलिए यह निश्चित किया जाता है कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारी समितियोंको इसके

१. देखिए पृष्ठ २०१-०२।

२. २९ जूनकी रातको आश्रममें मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास तथा अबुल कलाम आजादके साथ बातचीत करनेके बाद गांधीजीने यह दूसरा प्रस्ताव पेश किया था। इसमें किये गये संशोधन उन्हींके थे। इस प्रस्ताव तथा अन्य प्रस्तावोंके मसविदोंके लिए देखिए "अग्नि-परीक्षा", १९-६-१९२४।

विरुद्ध उचित अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेका अधिकार होगा जिसमें पदच्युत करना भी शामिल है। ऐसे मामलोंमें, जहाँ प्रान्तीय अधिकारियोंकी गलती हो, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणी समितिको ऐसी अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेका अधिकार होगा जिसे प्रान्तीय कमेटियोंकी सम्बन्धित समितियाँ उपयुक्त समझें। इस कार्रवाईमें पदच्युत करना भी शामिल है।

प्रस्ताव पेश करते हुए श्री गांधीने कहा कि कल रात पण्डित मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजनदास तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद मेरे पास आये थे और उन्होंने मुझसे पूछा था कि कल पास किये गये प्रस्तावमें से मैंने दण्ड-विषयक धारा क्यों निकाल दी है। उन्होंने मुझसे यह भी पूछा था कि उस समय मेरे मनकी वृत्ति क्या थी। मैंने उन्हें वही बात बताई जो कल बैठकमें बताई थी और वह यही कि उस धाराके पक्षमें वास्तविक बहुमत नहीं था। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने प्रतिष्ठापूर्ण मार्ग यही था कि वह उस धाराको रद कर दे। श्री दासकी दण्ड-विषयक धाराके विरुद्ध उठाई गई आपत्तियोंको विस्तारपूर्वक समझाते हुए श्री गांधीने कहा कि श्री दास उन लोगोंके सामने रखे गये समझौतेसे सहमत हो गये हैं और साथ ही इस बातसे भी सहमत हो गये हैं कि वे रचनात्मक कार्यक्रमपर अपनी पूरी शक्तिसे अमल करेंगे और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणी समितिमें भी शामिल होंगे। इसका मसविदा तैयार करते हुए मैंने किसीकी भी सलाह नहीं ली है। मैंने स्वराज्यवादियोंको सन्तुष्ट करनेकी पूरी कोशिश की है। इस प्रकार मैंने अपना समझौता समितिके सामने रखा है। मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि आप इस प्रस्तावपर विचार करते समय एक क्षणके लिए मुझे अपने मनसे निकाल दें।

उन्होंने आगे कहा :

यदि आप प्रस्तावको अस्वीकार करना चाहते हैं तो इसे अस्वीकार कर दें किन्तु यदि आप इसे पास करना चाहते हों तो इसके उत्तरदायित्वोंको अपने कन्धों-पर लें।[1]

प्रस्ताव ३ : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेसके मतदाताओंका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचती है कि पाँचों बहिष्कार अर्थात् मिलके बने वस्त्रों, सरकारी न्यायालयों, शैक्षणिक संस्थाओं, पदवियों तथा विधान मण्डलोंका बहिष्कार अब भी कांग्रेस कार्यक्रमके अंग हैं, बहिष्कार केवल कोकोनाडा प्रस्तावसे प्रभावित अंशोंपर लागू नहीं होता। इसलिए समिति यह वांछनीय समझती है कि जो कांग्रेसी मतदाता कांग्रेसके कार्यक्रमपर विश्वास करते हैं वे उन लोगोंको विभिन्न कांग्रेस संगठनोंमें निर्वाचित न करें जो कोकोनाडा प्रस्तावके प्रभावित अंशोंके अतिरिक्त उक्त पाँच बहिष्कारोंपर स्वयं अमल करनेमें विश्वास नहीं करते। इसलिए अखिल भारतीय

१. वल्लभभाई पटेलने प्रस्तावका समर्थन किया और जो बिना बहसके सर्वसम्मतिसे पास कर दिया गया।

कांग्रेस कमेटी ऐसे लोगोंसे जो इस कांग्रेसके निर्वाचित संगठनोंके सदस्य हैं, प्रार्थना करती है कि वे अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दें।[1]

श्री गांधीने इसके बाद संक्षेपमें उत्तर दिया।[2] उन्होंने कहा, मेरे प्रति आपकी निष्ठा एक बात है और प्रस्तुत प्रश्नोंपर विचार करना दूसरी। एकका दूसरेपर असर पड़ने देना ठीक नहीं है। यदि मैं कल मर जाऊँ तो आप क्या करेंगे? यदि मैं अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाऊँ तो आप क्या करेंगे? मेरे चारों ओर सब-कुछ केन्द्रित करनेकी प्रवृत्ति निन्दनीय है। यदि समिति समझती है कि इस मार्गका अनुसरण करना ही ठीक है तो मैं उससे अनुरोध करता हूँ कि वह मेरे प्रस्तावको पास कर दे, अन्यथा उसे अस्वीकार कर दे; और यदि वह श्री वरदाचारीके संशोधनोंको हितकर समझती है तो उन्हें स्वीकार कर ले।

संशोधन गिर गये और मूल प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमतसे पास हो गया।[3]

इसके (९ बजेके) बाद श्री गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया।[4]

श्री गांधीने एक संशोधनमें उत्तर देनेसे इनकार करते हुए कहा कि यदि संघर्षकी इस स्थितिमें भी देश अपने उद्देश्यको नहीं पा रहा है तो फिर मेरा कुछ भी कहना व्यर्थ है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०-६-१९२४

१. गांधीजीने इस प्रस्तावपर कोई भाषण नहीं दिया। समर्थन वल्लभभाई पटेलने किया था। प्रस्तावका मूल रूप जो कार्यकारिणी समिति द्वारा स्वीकार किया गया था, इस प्रकार है: "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके विचारमें यह वांछनीय है कि कांग्रेसी मतदाता विभिन्न कांग्रेस संगठनोंमें वकालत करनेवाले वकीलोंको, मिलके कपड़े पहननेवालों तथा उनका व्यापार करनेवाले लोगोंको, अपने छोटे बच्चोंको सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलोंमें भेजनेवाले माता-पिताओंको, सरकारी पदवियां धारण करनेवाले सज्जनोंको और विधान मण्डलोंके सदस्योंको निर्वाचित न करें और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ऐसे लोगोंसे जो अभी विभिन्न कांग्रेस निर्वाचित संगठनोंके सदस्य हों, प्रार्थना करती है कि वे अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दें।

२. पेश किये गये कुछ संशोधनोंके सम्बन्धमें।

३. इसके बाद समिति ९ बजे शामतकके लिए उठ गई। उसे शामको गोपीनाथ साहासे सम्बन्धित प्रस्तावपर विचार करना था।

४. यहाँ नहीं दिया गया है। चौथा प्रस्ताव बिना किसी परिवर्तनके पास कर दिया गया था, देखिए "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

१७२. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी अनौपचारिक बैठकमें[1]

३० जून, १९२४

गोपीनाथ साहाके सम्बन्धमें प्रस्ताव पारित होनेके पश्चात् मैंने जो-कुछ देखा उससे मुझे कुछ हँसी आई और दुःख भी हुआ। मैंने मनमें सोचा कि मैं आप लोगोंसे क्या कहूँ। बादमें मैं अपने 'यंग इंडिया' के द्वारा ही कुछ कहूँगा। मुझे इससे बहुत दुःख हुआ, उसका क्या कारण था? कारण यह था कि यहाँ जितने भी लोग इकट्ठा हुए हैं वे सब स्वराज्य प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं और अहिंसामय असहयोगके उपायको ही काममें लानेकी बात कबूल कर चुके हैं। तथापि हमने केवल हिंसाकी ही बात की। मेरी समझमें नहीं आता कि हम अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें हिंसाकी बात कर ही कैसे सकते हैं? कांग्रेसका जो ध्येय और संकल्प है यदि वही ध्येय और संकल्प हमारा भी है तो ऐसी बात हमारी जुबानपर आ ही नहीं सकती। अन्तिम प्रस्तावपर[2] मेरी जीत केवल आठ मतोंसे हुई थी, जीत जैसी वस्तु मैंने संसारमें जानी ही नहीं . . . [3]डा० परांजपेने कोई नई बात नहीं की है; बल्कि उन्होंने तो मेरे सिद्धान्तको सरल रूपमें आपके सम्मुख प्रस्तुत ही किया है। मैंने 'शठं प्रत्यपि सत्यं' ऐसा कहा है। मैंने तो कहा है कि जो शत्रु अपनी बहनोंकी लाज लूटे और आपको आहत करे, आप उसके भी पाँव चूमें। मैं तो संसारका राज्य मिलनेपर भी अपनी बातको नहीं छोड़ूँगा, लेकिन हिंसाका मार्ग भी एक मार्ग है, इस बातको मैं स्वीकार करता हूँ। इसीलिए मैंने दिल्लीमें कहा था कि हमें वही बात मुँहसे निकालनी चाहिए जो हमारे अन्तरमें है। लेकिन हमने तो आज ढोंग किया है। यदि आपको तलवार चलानी हो तो चलायें, लेकिन यदि आप सचाईसे तलवार चलायेंगे तो मैं हिमालयमें चला जाऊँगा और आपको वहाँसे बधाई भेजूँगा। लेकिन मैं ढोंगसे घबराता हूँ। मुझे गोपीनाथ सम्बन्धी प्रस्तावपर बोलनेकी जरूरत ही क्यों पड़े? अन्य प्रस्तावोंके बारेमें अवश्य बोलूँगा, तर्क करूँगा और समझाऊँगा भी; लेकिन जो सिद्धान्त कांग्रेसकी आधार-शिला है उसपर भी यदि मुझे आज भाषण देना पड़े तब तो हमें यह संघर्ष छोड़ देना चाहिए।

और हिंसाका यह कार्य करनेके बाद हमें इतराना[4] सूझा। गंगाधररावने मुझसे पूछा कि अब क्या किया जाना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि वे तुरन्त त्यागपत्र दे दें।

१. औपचारिक बैठकके बाद।

२. गांधीजीका चौथा प्रस्ताव जिसमें गोपीनाथ साहा द्वारा की गई अर्नेस्ट डेकी हत्याकी निन्दा की गई थी।

३. साधन-सूत्रमें ऐसा ही है।

४. यह संकेत सम्भवतः गांधीजीके प्रस्ताव संख्या ४ पर अ० भा० कां० कमेटीके सदस्यों द्वारा दिये गये भाषणोंकी ओर है।

मैं तो उनसे अपनी सारी माल-मिल्कियतको जला डालनेको कहना चाहूँगा। आसफअली आये, उन्होंने भी यही बात कही। उन्होंने पूछा, "वकीलोंने ही क्या बिगाड़ा है?" मैंने अपना प्रस्ताव[1] इन परिस्थितियोंमें तैयार किया। इस प्रस्तावके सम्बन्धमें आपने जो रुख अख्तियार किया मैंने वह भी देखा। आपने इसका विरोध किया, यह बात तो मुझे ठीक लगी, क्योंकि इसे पेश करना मेरे लिए बदनामीकी बात थी। यह तो विषका प्याला पीनेके समान था। लेकिन मैंने उसे पी लिया, क्योंकि मैंने ३० वर्षोंसे जिस जनताको समझनेका ही धन्धा किया है, मैंने उसका रुख जान लिया है। मैंने हम सभीकी शक्ति देखी और मुझे लगा कि ऐसे प्रस्तावकी रचना किये बिना काम नहीं चल सकता। लेकिन मेरे विरुद्ध नियमकी बारीकीका प्रश्न (लॉ-पॉइंट) उठाया गया, इससे मैं चौंका; मैंने अपने मनमें कहा: अरे मूर्ख! तू ईश्वरकी अर्चना कर रहा है या शैतानकी? तू किस फेरमें पड़ गया[2]?

मैं तो निश्छल लोगोंसे ही काम लेना चाहता हूँ। आप सभी टेढ़े निकले। कांग्रेस क्या चीज है? इसे आप जैसा बनायेंगे, वैसी ही यह बनेगी। आप इसे एक सच्ची संस्था बनाना चाहते हैं तो आप कांग्रेससे निकल जायें, और गाँवोंमें जाकर काम करें। आप मुझसे एक गधेके जितना काम ले सकते हैं लेकिन सीधे ढंगसे, टेढ़े ढंगसे नहीं। आप मुझे फुसला और बहका अवश्य सकते हैं; लेकिन जब मुझे यह मालूम हो जायेगा कि आप मुझे ठग रहे हैं तब मैं भगवानका सहारा लूँगा और आपके पास खड़ा नहीं रहूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-७-१९२४

१७३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे[3]

अहमदाबाद
१ जुलाई, १९२४

अधिवेशन सम्बन्धी जो विचार मेरे मनमें हैं उन्हें इस समय व्यक्त करना बहुत कठिन है। यह इसलिए नहीं कि मेरे पास कहनेको कुछ नहीं है, बल्कि इसलिए कि कहना बहुत-कुछ है। जिस प्रकार अत्यधिक खानेवाला मनुष्य अपना कोई हित

१. गांधीजीका प्रस्ताव संख्या ५ जो अ० भा० कां० कमेटीने स्वीकार नहीं किया था। प्रस्तावका उद्देश्य, अ० भा० कां० कमेटी द्वारा पारित गांधीजीके प्रस्ताव संख्या ३ के प्रभावसे मुकदमोंमें फँसे लोगोंकी रक्षा करना था, इसमें उन सदस्योंको त्यागपत्र देनेका सुझाव दिया गया था जो अदालतोंके बहिष्कार समेत पाँच प्रकारके बहिष्कारोंमें विश्वास नहीं करते और उनपर अमल नहीं करते।

२. इसपर गांधीजी कुछ देरतक बोल नहीं सके और उनकी आँखोंसे आँसू बह चले। उन्होंने तुरन्त ही अपनेको संयत कर लिया और फिर बोलने लगे।

३. गांधीजीसे उसी समय समाप्त होनेवाले अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनके बारेमें अपने विचार व्यक्त करनेकी प्रार्थना की गई थी।

नहीं करता केवल अपनी पाचन-शक्ति ही बिगाड़ता है, उसी प्रकार ये विचार भी पचा न सकनेके कारण मस्तिष्कमें बेतरतीब पड़े हैं इसलिए मैं उनका विवरण इस ढंगसे नहीं दे सकता कि वह सुपाठ्य हो सके। इस कारण फिलहाल मैं जिज्ञासुओंसे यही कहूँगा कि वे दर्शकोंके सच्चे विचारोंसे अथवा संवाददाताओंके काल्पनिक चित्रोंसे ही सन्तोष करें। दर्शक पात्रोंकी अपेक्षा नाटकको अधिक अच्छी तरह देखते हैं, इस सिद्धान्तके अनुसार यदि दर्शकोंके विचारोंके साथ संवाददाताओंकी साहसिक कल्पनाका भी समन्वय कर लिया जाये तो उनसे सम्भवतः अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी महत्त्वपूर्ण कार्रवाईका एक खाका जनताके सामने आ जायेगा।

फिर भी मैं अपना एक निश्चित मत व्यक्त कर सकता हूँ। यद्यपि मुझे अपने द्वारा प्रस्तुत किये गये चारों प्रस्तावोंपर बहुमत मिला है, फिर भी मुझे यह स्वीकार करना ही होगा कि अपनी समझमें तो मेरी हार ही हुई है। अ० भा० कां० कमेटीकी कार्रवाईने मेरी आँखें खोल दी हैं और अब मैं बड़ी आतुरताके साथ अपना हृदय टटोल रहा हूँ। किन्तु मैं अभीतक कुछ पा नहीं सका हूँ।

मैं कलके समाचारपत्रोंके विवरणों तथा उन्हींके सम्बन्धमें आये हुए किसी सज्जनके तारको पढ़कर दुविधामें पड़ गया हूँ और सोच रहा हूँ कि मेरा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें वाइकोम सम्बन्धी प्रस्तावपर जोर देकर केरलके सदस्योंको निरुत्साहित करना ठीक हुआ है या नहीं। साधारणतया तो मैं यही मानता हूँ कि इस प्रकारके सभी स्थानीय संघर्षोंको अपने ही बलपर निर्भर करना चाहिए, केन्द्रीय संस्थानसे प्राप्त सहायतापर नहीं। किन्तु वहाँ घटनाओंमें जो नया मोड़ आया है, शायद उनसे अ० भा० कां० कमेटीकी जोरदार घोषणाका औचित्य सिद्ध होता है। मैं कार्यकारिणी समितिसे इस विषयमें कोई प्रस्ताव पास करनेकी सिफारिश अवश्य करूँगा। यदि ये समाचार विश्वसनीय हैं तो उसका यह अर्थ है कि त्रावणकोर राज्यके अधिकारियोंने निर्दोष सत्याग्रहियोंको गुण्डोंके हाथों सौंप दिया है। कहा जाता है कि ये गुण्डे उन सुधारकोंके विरोधी कट्टरपन्थियोंने नियुक्त किये हैं, जिसके लिए सत्याग्रही संघर्ष कर रहे हैं। त्रावणकोर भारतमें एक अत्यन्त प्रबुद्ध राज्य बताया जाता है। यदि मनुष्यताके लिए नहीं तो उसकी कीर्तिकी खातिर ही सही, मैं इन समाचारोंके निराधार साबित होनेकी आशा करता हूँ। यदि सत्याग्रहियोंको गुण्डे निर्दयतापूर्वक पीट रहे हैं तो यह स्थिति बड़ी ही गम्भीर है। उनकी आँखोंमें नींबू निचोड़ा जाता है और उनकी खद्दरकी कमीजें फाड़कर जला दी जाती हैं। मेरी समझमें नहीं आता कि अधिकारी सत्याग्रहियोंसे उनके निर्दोष चरखोंको कैसे छीन सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि त्रावणकोर दरबारकी ओरसे यह स्थिति तुरन्त सुधार ली जायेगी और वे सुधारकों तथा कट्टरपंथियोंके बीच केवल शान्ति बनाये रखनेकी पहले-जैसी अपनी प्रशंसनीय नीतिको फिर अपना लेंगे।

मुझे यह भी आशा है कि सत्याग्रही शान्ति और उद्वेगहीन बने रहेंगे तथा अहिंसा-का पालन खास तौरपर करेंगे। यह उनकी अग्नि-परीक्षाका अवसर है। यदि वे उन सारे कष्टोंको, जो उन्हें दिये जा रहे हैं, अपनी मर्यादाका ध्यान रखकर तथा बिना बदला लिये झेल सकेंगे तो सफलता निश्चित है। उनके मौन कष्ट-सहनसे गुण्डोंके हृदय

भी पिघल जायेंगे और कट्टरपंथी विरोधी भी अनुभव करेंगे कि उन्हें अपने अमानवीय व्यवहारके बदलेमें अपयशके सिवा और कुछ नहीं मिलेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २-७-१९२४

१७४. सन्देश : वाइकोमके सत्याग्रहियोंको

साबरमती
२ जुलाई, १९२४

वाइकोमकी परिस्थितिने अप्रत्याशित रूपसे जैसी करवट ली है उससे सत्याग्रहियोंको बहुत बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। पर सफलताके लिए दो बातें आवश्यक होती हैं — असीम धैर्य और अटूट साहस। धैर्यका अर्थ है अहिंसा। सनातनी भले ही आन्दोलनको विफल करनेमें कोई कसर बाकी न रखें लेकिन सुधारकोंको तो यह चाहिए कि वे बदला लिये बिना भीषणसे-भीषण प्रहार सहते रहें। साहसका अर्थ है कष्ट सहनेकी क्षमता। ऐसे सत्याग्रही पर्याप्त संख्यामें होने चाहिए जो अत्यन्त परिष्कृत और सूक्ष्मातिसूक्ष्म यन्त्रणाएँ भी सहनेको तत्पर हों। मेरा अनुभव है कि जो लोग न्याययुक्त कार्यके लिए और ईश्वरके नामपर लड़ते हैं उनमें कष्टसहनकी पर्याप्त क्षमता आ जाती है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २-७-१९२४

१७५. पराजित और नतमस्तक

संवाददाताओंकी बातोंमें मुझे बहुत कम दिलचस्पी हुआ करती है; परन्तु उस दिन एक संवाददाताकी बातोंने मुझे आकर्षित कर लिया। इसलिए मैंने मुलाकातके अन्तमें उसे उसकी आशासे अधिक दे डाला। उसका प्रश्न था कि अगर कांग्रेस अधिवेशनमें दोनों दलके लोग बराबर-बराबर रहें तो आप क्या करेंगे? मैंने इस आशयका जवाब दिया कि ईश्वर ऐसी विपत्ति टालनेका कोई-न-कोई रास्ता दिखा ही देगा। मैंने यह बात सहज ही और कुछ-कुछ विनोदमें कही थी। मुझे यह कल्पना नहीं थी कि बात सच हो जायेगी।

इस अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी कार्यवाही देखकर मुझे दिल्लीवाली उस महासमितिकी बैठककी याद आ गई जो मेरे जेल जानेके जरा ही पहले हुई थी। जो भ्रम दिल्लीमें दूर हो जाना था, वह अहमदाबादमें दूर हुआ।

मेरे चारों प्रस्ताव बहुत थोड़े बहुमतसे पास हुए परन्तु ऐसे पास होनेको अल्पमत ही मानना चाहिए।[1] 'दोनों दलोंमें लोग प्रायः बराबर-बराबर ही थे। गोपीनाथ साहा वाले प्रस्तावने इस परिस्थितिको और भी साफ कर दिया। उसपर हुए भाषण, उसका नतीजा और उसके बाद जो दृश्य मैंने देखा, उस सबने मेरी आँखें खोल दी। जो मतदान हुआ उसे मैं निःसन्देह श्री दासकी ही विजय मानता हूँ, हालांकि ऊपरसे देखनेपर ८ मतोंसे उनकी शिकस्त हो गई थी। यह बात कि १४८ मतोंमें से उन्हें अपने हकमें ७० मत मिल गये, मेरे लिए गहरा महत्त्व रखती है। उसने अँधेरेको चीर दिया। लेकिन धुंधलापन तो अभीतक बना ही हुआ है।

मतदानका नतीजा घोषित होने तक मैं उस सारे मामलेको मजेमें ले रहा था—हालांकि यह खयाल भी मुझे बराबर था कि यह मामला गम्भीर होनेके साथ-साथ एक बड़ा मामला भी है। अब मैं देखता हूँ कि मेरा यह रुख सतही था। उसमें एक ऐसी व्यथा छिपी थी जो मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर विदीर्ण कर रही थी।

नतीजा प्रकट हो जानेपर मुख्य पात्र रंगमंचसे चले गये और सदस्योंने शिष्टता और मर्यादाका परित्याग कर दिया। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी इस तरह पास होने लगे मानों उनसे किसीका कुछ वास्ता ही न था। इन प्रस्तावोंके बीच-बीचमें व्यंग-विनोदके फुहारे भी छूट रहे थे। हर कोई औचित्य-प्रश्न (पाइंट ऑफ आर्डर) और सूचनार्थ-प्रश्न (पाइंट ऑफ इनफरमेशन) की आड़ लेकर उठ खड़ा होता और बोलने लगता। कोई भी सभापति ऐसी बैठक चलानेकी इस कठिन परीक्षामें अपना धैर्य खोये बिना नहीं रह सकता था। पर मौलाना मुहम्मद अली इस परीक्षामें से बेदाग निकल आये। उन्होंने काफी अच्छी तरहसे अपनेको सँभालकर रखा। 'पाइंट ऑफ इनफरमेशन' की अनुमति देनेसे मौलाना मुहम्मद अली इनकार कर देते थे और यह ठीक भी था। हाँ, मुझे यह बात जरूर कबूल करनी चाहिए कि ये कीर्ति लोलुप सज्जन सभापतिके आनन-फानन दिये गये आदेशोंको भी खुशी-खुशी मंजूर कर लेते थे। किन्तु इससे यह नतीजा न निकाल लें कि तब समितिकी इस कार्रवाईके दौरान थोड़ी बहुत अनुशासनहीनता तो अवश्य आ गई होगी। मैंने ऐसी बहुत बैठकें नहीं देखी है जहाँ चर्चामें इतने कम व्यक्तिगत आक्षेप और इतनी कम कटुतापूर्ण उक्तियोंका प्रयोग हुआ हो जितना कि इस बैठकमें हुआ, हालांकि लोग उत्तेजित थे और मतभेद तीव्र और गहरे थे। मैंने ऐसी सभाएँ अवश्य देखी है जहाँ ऐसी ही परिस्थितिमें सभापतिको व्यवस्था कायम रखना मुश्किल हो गया है। यहाँ तो सभापतिके आदेशोंका खुशी-खुशी पालन होता रहा।

अलबत्ता गोपीनाथ साहाके प्रस्तावके बाद सभासे मर्यादाका लोप ही हो गया। मुझे सभाके इस माहौलमें अपना आखिरी प्रस्ताव पेश करना था। कार्रवाईके आगे बढ़नेके साथ-साथ मैं अधिकाधिक गम्भीर होता चला गया होऊँगा। कई बार तो ऐसा लगा कि बेचैन बना देनेवाले इस वातावरणको छोड़कर मैं चल दूं। उस सभाके सामने अपना प्रस्ताव पेश करनेकी लाचारीके विचारसे मुझे विकलता हो रही थी। मैं तो

१. देखिए "अग्नि-परीक्षा" १९-६-१९२४।

उस प्रस्तावको स्थगित करनेकी दरख्वास्त करता, परन्तु मैंने सभासे यह वादा किया था कि दीवानीके मामले-मुकदमे करनेवाले लोगोंको तीसरे प्रस्तावके असरसे बचानेके लिए मैं कोई इलाज ढूंढ़ निकालूँगा या ऐसा न होनेपर कोई अन्य प्रस्ताव पेश करूँगा। इस तीसरे प्रस्तावके अनुसार उन लोगोंको इस्तीफा पेश करना लाजिमी है जो अदालतोंके बहिष्कार सहित पाँचों बहिष्कारोंके सिद्धान्तको न मानते हों और जो खुद उसका अमल न कर सकते हों। यह बचावकी सूरत उन लोगोंके लिए की गई थी जिन्हें सम्भव है कि मुद्दई या मुद्दालेह बनकर अदालतोंमें जानेपर मजबूर होना पड़े। इस विषयपर, जो प्रस्ताव पहले कार्यसमितिमें स्वीकृत होकर सदस्योंमें बाँटा गया था उसमें उनके बचावकी सूरत थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने उसके स्थानपर ऐसा एक प्रस्ताव दरअसल स्वीकृत कर दिया था। पाठक इस बातको जानते ही हैं कि इससे वे लोग मुक्त हैं जो कोकोनाडा प्रस्तावसे प्रभावित होते हों। इस संशोधनका मसविदा बनाते समय मैंने दीवानी दावा करनेवालोंके बचावकी सूरत नहीं रखी थी। मैंने एक अलहदा प्रस्तावके द्वारा ऐसा करनेकी बात सोच रखी थी और प्रस्तावको पेश करते समय ही यह बात प्रकट कर दी थी और इसी प्रतिश्रुत प्रस्तावने मेरे लिए 'घोर अन्धकार' से निकलनेका रास्ता खोल दिया। मैंने इस प्रस्तावनाके साथ उसे पेश किया कि यह मेरे सुबह दिये गये वचनके अनुसार पेश किया जा रहा है। मैंने यह भी कहा कि श्री गंगाधरराव देशपाण्डे इसकी मिसाल हैं। मैं नियममें अपवाद रखने या उनका यथाशक्ति पालन करनेकी छूट देने आदिमें विश्वास नहीं रखता। पर मैं जानता हूँ कि कुछ कट्टर असहयोगियोंको भी अदालतोंसे बचना कठिन होता रहा है। ऐसे कर्जदार लोग, जिन्हें धर्माधर्मकी परवाह नहीं रहती, असहयोगियोंको कर्ज अदा करनेसे इनकार कर देते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि ये नालिश तो करेंगे नहीं। इसी तरह, मैं ऐसे लोगोंको भी जानता हूँ जिन्होंने असहयोगियोंपर दावे दायर किये हैं — यह सोचकर कि ये अदालतमें जाकर सफाई तो देंगे नहीं। इसपर भी किसीको उत्सुकता हो और वे तलाश करें तो उन्हें यह जानकर ताज्जुब और खुशी होगी कि सैकड़ों मामलोंमें छोटे-बड़े असहयोगियोंने अदालतोंमें जाकर दावोंकी सफाई नहीं दी या नालिशें नहीं कीं और हानि सहना क़बूल किया। फिर भी, यह बात बिलकुल सच है कि प्रतिनिधिगण सदा निषेधके नियमपर कायम न रह पाये, इसलिए दावा दायर करनेकी ओर आँखें मूँदनेका रिवाज-सा पड़ गया और सफाई देनेकी ओर तो और भी ज्यादा। इस समितिने भी समय-समयपर ऐसे नियम बनाये हैं जिससे यह रवैया कुछ हदतक वैध भी हो जाता है। मैंने सोचा कि अब जबकि इन बहिष्कारोंके पालनके बारेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी सख्तीसे काम लेना चाहती है, मुकदमेबाजोंकी स्थितिको साफ कर दिया जाना चाहिए। मुझे इससे बढ़कर खुशी और किसी बातसे नहीं हो सकती कि कांग्रेस अपने पदोंपर सिर्फ उन्हीं लोगोंको रखे जो खुद पाँचों, बहिष्कारोंपर पूरा-पूरा अमल करते हों परन्तु आजकी हालतमें अदालतोंके बहिष्कारका यथावत् पालन बहुतोंके लिए प्रायः असम्भव हो गया है। इसके लिए स्वेच्छापूर्वक गरीबीका व्रत धारण करना परम आवश्यक है। कांग्रेस संगठनोंमें

ऐसे ही स्त्री-पुरुषोंको स्थान देने और उनका काम सुचारु रूपसे चलानेके लिए अभी कुछ समय लगेगा। इस कठिन वस्तुस्थितिको समझकर मैं विमुक्ति सम्बन्धी उस प्रस्तावका सारा कलंक अपने सिर लेनेके लिए तैयार हुआ था। मैंने अभी उसका पढ़ना खत्म किया ही था कि आन्ध्रके वीर हरिसर्वोत्तम राव साहब उठ खड़े हुए और उन्होंने उसका विरोध करते हुए एक तर्कसंगत और प्रभावशाली वक्तृता दे डाली। उन्होंने कहा कि मुझे आपके प्रस्तावका विरोध करनेका अपना कर्त्तव्य बड़े दुःखके साथ पालन करना पड़ रहा है। मैंने कहा कि दुःख तो मुझे होना चाहिए कि मुझे ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता है, जिसकी सफाई मैं नहीं दे सकता। ऐसे प्रस्तावका विरोध करने और कांग्रेसको हर हालतमें ऐसे लोगोंसे अलग रखनेमें आपको तो खुशी होनी चाहिए। मैंने इस विरोधको पसन्द किया और मतदानकी राह देखने लगा। लेकिन इसके बाद ही स्वामी गोविन्दानन्द खड़े हुए और उन्होंने यह जाब्तेका एतराज खड़ा किया कि ऐसा कोई प्रस्ताव उसी सभामें पेश नहीं किया जा सकता जिससे उसके पहले पास किये गये किसी प्रस्तावपर आँच आती हो। परन्तु सभापति महाशयने इस आपत्तिको नामंजूर कर दिया, जो उचित ही था। अगर और किसी वजहसे नहीं तो सिर्फ इसी कारणसे कि इसके एक दिन पहले ही सबसे पहले प्रस्तावको बहुमतसे स्वीकृत करनेके बाद उसमें संशोधन कर दिया गया था। परन्तु डाक्टर चोइथराम अनजानेमें ही मेरा धैर्य बिल्कुल खत्म कर देनेके निमित्त बन गये। मैं समझता हूँ कि वे एक जिम्मेदार आदमी हैं। उन्होंने लम्बे अर्सेतक देशकी अनवरत सेवा की है। उन्होंने देशके लिए फकीरी अख्तियार की है। पहले यही कांग्रेस इसी विषयके सम्बन्धमें कितने ही प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है जो बहिष्कारके प्रस्तावको थोड़ा नरम बनाते थे। फिर ऐसा होते हुए भी इस विषयमें डा० चोइथरामने संवैधानिक आपत्ति उठाई, यह देखकर मैं दंग रह गया। वे बिना विचारे ही पूछ बैठे कि क्या यह प्रस्ताव कांग्रेसके बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्तावको भंग नहीं करता है? मौलाना मुहम्मद अलीने मुझसे पूछा: क्या यह ऐतराज ठीक नहीं है? मैंने कहा बेशक ठीक है। तब वे लाचार हो मेरे प्रस्तावको असंवैधानिक करार देनेपर विवश हो गये। मैं बिल्कुल हताश हो गया। किसीके भाषणमें या व्यवहारमें कोई बात अनुचित हो सो नहीं। सबके भाषण संक्षिप्त थे। उनमें विनयकी भी कमी नहीं थी और बड़ी बात तो यह कि जाहिरमें उनकी बात ठीक लगती भी थी। फिर भी यह सब कोरा स्वाँग ही था। जो ऐतराज किये गये वे ऐसे लगते थे जैसे कंकाल-मात्र रह गये किसी भूखे व्यक्तिको संयमके गुणोंका उपदेश दिया जा रहा हो। हर शख्स जान-बूझकर नहीं, बल्कि अनजाने ही ऐसा किये जा रहा था। मेरे मनमें आया कि उनके द्वारा ईश्वर मुझसे यह कह रहा है—"अरे मूर्ख, तू समझता नहीं कि तेरी कोई नहीं सुनता। तेरे दिन पूरे हो गये।" श्री गंगाधरराववने मुझसे पूछा, "मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए न?" मैंने कहा—"हाँ, तुरन्त दे दीजिए।" और उन्होंने फौरन इस्तीफा लिखकर दे दिया। सभापतिजीने उसे पढ़कर सुनाया। प्रायः सर्वसम्मतिसे वह स्वीकृत हो गया। इससे गंगाधररावको लाभ ही हुआ।

शौकतअली मुझसे लगभग छः गजकी दूरीपर सामने ही बैठे थे। उनकी उपस्थिति वहांसे मेरे भाग जानेमें बाधक रही। मेरे दिलमें यह सवाल बराबर उठता रहा कि क्या असत्यका परिणाम कभी सत्य भी हो सकता है? क्या मैं बुराईके साथ सहयोग नहीं कर रहा हूँ? शौकतअली मानों अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंसे कह रहे थे: "बिगड़ा कुछ नहीं है, सब ठीक हो जायेगा।" मैं उनके जादूसे अपनेको मुक्त करनेके लिए अत्यन्त अधीर हो रहा था, पर कामयाब न हो सका।

सभापतिने पूछा — "अब सभाका काम खतम किया जाये?" मैंने कहा 'जरूर'। परन्तु मौलाना अबुल कलाम आजाद मेरे चेहरेपर बदलनेवाले भावोंको गौरसे पढ़ रहे थे। उन्होंने तुरन्त आगे आकर कहा — आपने पैगाम सुनानेका जो वादा किया था, उसके बिना सभा बरखास्त कैसे हो सकती है? मैंने कहा — "मौलाना साहब, आपका कहना ठीक है। आगेके कामके बारेमें मैं कुछ कहना तो चाहता था। परन्तु गोपीनाथके प्रस्तावके बाद, पिछले एक घंटेमें यहां जो-कुछ हो रहा है उसे देखकर मुझे बड़ा सदमा पहुँचा है। अब मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरी स्थिति क्या है और मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने कहा — "अच्छा आप यही कह दीजिए।" मैंने मंजूर किया और हिन्दुस्तानीमें एक छोटा-सा भाषण देकर अपना हृदय चीरकर उससे टपकता हुआ लहू दिखाया। मेरे आंसू हर किसी बातपर नहीं निकल पड़ते। आंसू बहानेके मौकोंपर भी मैं आंसुओंको पी जानेकी कोशिश करता हूँ। परन्तु इस मौकेपर तो दिलको मजबूत बनानेका पूरा प्रयत्न करते हुए भी मेरे आंसू बह निकले। सभामें उपस्थित सभी लोग विचलित हो गये। यह साफ दीख पड़ा। मैंने अपनी सभी मनोदशाओंका वर्णन उनके सामने कर दिया और कहा कि यदि शौकत अली आड़े न आये होते तो मैं सभासे कभीका चला गया होता; क्योंकि जिस प्रकार मैं इस बातका अभिमान करता हूँ कि मुसलमानोंकी इज्जत मेरे हाथमें सुरक्षित है, उसी प्रकार मैं यह मानता हूँ कि हिन्दुओंकी आबरू उनके हाथोंमें महफूज है और फिर, मैंने कहा कि अपने भावी कार्यक्रमके विषयमें मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। मैं उनसे और अपने साथ काम करनेवाले नजदीकी साथियोंसे सलाह-मशविरा करूँगा। इतने दुःखी मनसे मैंने कभी भाषण नहीं किया था। उसे खत्म करके मैं तुरन्त ही मौ० अबुल कलाम आजादको खोजने लगा। वे चुपकेसे खिसककर बहुत दूर सामने एक किनारेपर जाकर खड़े हो गये थे। मैंने पास जाकर कहा, मैं अब रुखसत चाहता हूँ। उन्होंने कहा, "नही, जरा और ठहर जाइए। हमें भी कुछ कहना है।" यह कहकर उन्होंने श्रोताओंसे कुछ कहनेकी दरख्वास्त की। सब लोग बोलते हुए सिसक रहे थे। एक बूढ़े सिख सज्जन बोलने खड़े हुए और बोलते-बोलते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। यह देखकर मेरा दिल हिल गया। शौकतअली भी बोले और दूसरे भी सब लोगोंने क्षमा याचना की और अपने अविचल सहयोग और समर्थनका यकीन दिलाया। मुहम्मदअली बोलते-बोलते दो बार रो पड़े। मैंने उन्हें दिलासा देनेकी कोशिश की।

मुझे किसी बातकी माफी नहीं देनी थी, क्योंकि किसीने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं था। उलटा व्यक्तिगत तौरपर सब मुझपर कृपालु ही बने थे। मुझे दुःख इसलिए

हुआ कि अपनी ही बनाई तराजूके पलड़ेपर चढ़कर अर्थात् कांग्रेस द्वारा तय किये हुए सिद्धान्तकी कसौटीपर हम लोग हलके बैठे। हम देशके कितने अयोग्य प्रतिनिधि निकले। मुझे लगा कि वहाँ मेरी उपस्थितिका कोई औचित्य ही नहीं था। जिन्हें मेरा सन्देश स्वीकार करनेकी कुछ पड़ी नहीं थी उनका नेतृत्व करनेकी अपनी योग्यताके विषयमें मुझे सन्देह हुआ और उसीका मुझे दुःख हुआ।

मैंने देखा कि मेरी पूरी पराजय हुई है। मेरा गर्व चूर-चूर हो गया। मेरा सिर झुक गया। किन्तु पराजय मुझे हताश नहीं कर सकती। वह सिर्फ मुझे संयत ही बना सकती है। अपने सिद्धान्तपर तो मेरी श्रद्धा अटल है। मुझे विश्वास है कि ईश्वर मुझे रास्ता दिखायेगा। सत्य मनुष्यके बुद्धिबलसे ऊपर है।

मो० क० गांधी

ऊपर लिखा मजमून ३० जून सोमवारको लिखा गया था। मैंने उसे लिखा तो; पर मुझे न तो उस समय सन्तोष हुआ था, न अब ही है। उसे पढ़नेपर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मुझसे न तो कमेटीके प्रति न्याय हुआ है और न अपने प्रति। कमेटीकी बैठक पूरी हो जानेके बाद जिस अनौपचारिक बैठकमें मैंने पूर्वोक्त हृदयकी बात कही थी वह महत्त्वपूर्ण थी, परन्तु उसके पहले हुई कमेटीकी बैठक भी जिसके कामकाजसे मुझे मार्मिक आघात पहुँचा था, कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी। पता नहीं, मैं इस बातको स्पष्ट कर सका या नहीं कि किसी वक्ताके मनमें कोई दुर्भाव नहीं था। मेरा मन जिस बातसे दुःखी हो रहा था वह तो था लोगोंका अनजानेमें गैर-जिम्मेदाराना आचरण और कांग्रेसके ध्येय और अहिंसा-नीतिकी अवहेलना।

उस अनौपचारिक बैठकमें हमने अपने हृदय टटोलकर देखे। उससे वातावरण स्वच्छ हो गया। मंगलवारके सारे दिन-भर मैं अपने साथी कार्यकर्त्ताओंसे अपनी स्थितिके बारेमें विचार-विमर्श करता रहा। मेरी आन्तरिक अभिलाषा थी और अब भी है कि मैं कांग्रेससे अलग हो जाऊँ और सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकता, खादी और अस्पृश्यताका काम करता रहूँ, पर उन्होंने इसे न माना। उन्होंने कहा — देशके इतिहासके ऐसे संकटके अवसरपर आपको हट जानेका कोई अख्तियार नहीं है। आपके अलहदा हो जाने से समस्याएँ हल नहीं हो जायेंगी। इससे अवसाद उत्पन्न होगा और कांग्रेसकी बैठकें सजीव अंकुश रखनेवाली एक शक्तिसे वंचित हो जायेंगी। यह आपका बनाया हुआ कार्यक्रम है और आपको ही उसके लिए सरगर्मीके साथ तबतक काम करना चाहिए जबतक बहुमत कार्यक्रमके पक्षमें है। अ० भा० कां० कमेटीमें प्राप्त मतोंकी संख्यासे बहुत ज्यादा मत इस कार्यक्रमके पक्षमें है। आपको देशमें घूमना चाहिए और स्वयं देखना चाहिए कि हकीकत क्या है? मेरा दूसरा प्रस्ताव यह था कि वे सब लोग जो कांग्रेसके सिद्धान्तको पूरा-पूरा मानते हों, कांग्रेससे हट जायें और सारा कामकाज स्वराज्यवादियोंको सौंप दें। आगे चलकर जब इसके विपक्षमें दलीलें पेश होने लगीं तब मैंने खुद ही इसे अविचारपूर्ण समझकर छोड़ दिया। स्वराज्यवादी यही तो नहीं चाहते थे। उनके लिए यह असम्भव है और उनसे किसी असम्भव बातको करनेकी अपेक्षा रखना उनके साथ ज्यादती करना होगा। मैं जानता हूँ कि वे तो

पहला प्रस्ताव भी कबूल नहीं करेंगे। मैंने जुहूमें उनसे यह कहा था और फिर अहमदाबादमें भी। इसलिए इच्छा न होते हुए भी इस कड़वे घूंटको पीकर मैंने कांग्रेसमें तबतक बने रहने और कार्यक्रमके संचालनका उत्तरदायित्व निभानेकी बात स्वीकार कर ली जबतक वहाँ इनेगिने लोग ही मेरे पक्षमें नहीं रह जाते।

मैं कोई छोटा रास्ता नहीं अपनाऊँगा। मुझे तो रास्ता बड़ी ही मन्द गतिसे चलना है। मुझे अपने गर्वको अपनी जेबमें रखकर उस दिनतक काम करना होगा जबतक कि मुझे निकाल ही न दिया जाये।

मुझे ऊपरसे तो दलका कार्यकर्त्ता बनकर रहना होगा — और फिर भी यह दिखला देना होगा कि मैं आज भी निर्दलीय कार्यकर्त्ताकी तरह काम कर रहा हूँ। मुझे अगली सभामें बहुमत प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना होगा और जहाँतक बने निष्पक्ष रहकर काम करनेकी कोशिश करनी होगी। यह बात सत्याग्रहीकी क्षमताके बाहर नहीं है।

इसके उपाय बहुत ही आसान हैं। ठोस काम ही बहुमत प्राप्त करनेके प्रयत्नके आधार हैं।

१. आधा घंटा चरखा कातनेके बाद भी जितना समय और कामोंसे बच रहे वह चरखा कातनेमें ही लगाया जाये।

२. खादी-प्रचार करनेकी दशामें अतिरिक्त कताईका यह काम बन्द किया जा सकता है।

३. कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या अधिकसे-अधिक बढ़ाई जाये।

४. मतपत्रोंमें किसी तरह गड़बड़ न होने पाये।

५. वोट हासिल करनेके लिए जोड़-तोड़का रास्ता न अपनाया जाये।

६. मुखालिफ दलकी नुक्ताचीनी न की जाये, हाँ, उनकी नीतिकी आलोचना दूसरी बात है।

७. मतदाताओंपर बेजा दबाव न डाला जाये।

प्रतिनिधियों और मातहत समितियोंके सदस्योंके चुनावमें, सुना गया है कि पिछले दिनोंमें दोनों दलवालोंकी ओरसे अनैतिक साधन अख्तियार किये गये थे। भ्रष्टाचारसे बचनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम मतदाताओंको समझाने-बुझानेके सीधे-सही रास्तेसे काम लेनेके बाद उसके फलाफलके विषयमें तटस्थ रहें।

अपरिवर्तनवादियोंका कार्यक्रम ऐसा ही होना चाहिए जिसे वे सचमुच कार्यान्वित करना चाहते हों। कांग्रेसकी कार्रवाईसे मेरी यही राय और पक्की हो जाती है कि दोनों तरीके एक संस्थाके अधीन काम नहीं दे सकते। स्वराज्यवादियोंका तरीका अंग्रेजोंकी रायको अपने पक्षमें लाना है; यह दल स्वराज्यके लिए ब्रिटिश संसदका मुँह ताकता है; पर अपरिवर्तनवादियोंका तरीका उसके लिए जनताकी ओर देखता है। दोनों तरीके दो परस्पर विरुद्ध मनोवृत्तियोंको प्रदर्शित करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि एक सही है और दूसरा गलत। दोनों अपनी-अपनी जगहपर ठीक हो सकते हैं। लेकिन एक संस्थाकी मार्फत दोनोंका अमलमें लाया जाना गोया दोनोंको कमजोर

बनाना है और इस तरह मुल्कके कामको नुकसान पहुँचाना है। एक दलके लोग धारा सभाओंके द्वारा राजनीतिक शिक्षण देनेका दावा करते हैं और दूसरा दल यही दावा केवल जनताके बीच काम करने और उसीके द्वारा अपनी संगठन तथा शासन-क्षमताको विकसित करनेकी पद्धतिके द्वारा करता है। एक हमें प्रजाकी उन्नतिके लिए सरकारका मुँह ताकनेको कहता है और दूसरा यह दिखानेकी कोशिश करता है कि स्वशासित देशमें राष्ट्रकी उन्नति और विकासमें निहायत आदर्श सरकारकी सहायताकी भी बहुत कम आवश्यकता होती है। एक जनताको यह सिखाता है कि अकेले रचनात्मक कार्यक्रमसे स्वराज्य नहीं मिल सकता, दूसरा लोगोंको सिखाता है कि अकेले उसीके बलपर स्वराज्य मिल सकता है।

बदकिस्मतीसे मैं स्वराज्यवादियोंको इस प्रत्यक्ष सत्यका कायल नहीं कर सका। और मैंने देखा कि कांग्रेसको समान विचार रखनेवाले व्यक्तियोंकी संस्था बनानेके मार्गमें संवैधानिक कठिनाइयाँ आड़े आती हैं। इसलिए अब इस प्रयत्नको छोड़कर जो अन्य उत्तम बात हो सकती है, वही करें। इस बातका खयालतक न करते हुए कि दिसम्बरमें क्या होगा, हम बिना किसी शोरगुलके रचनात्मक कार्यक्रममें जुट जायें —और इस बातपर पूरा विश्वास रखें कि कांग्रेस चाहे इस कार्यक्रमको मंजूर करे या नामंजूर, हमारे लिए तो दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नहीं। मैं उन अखबारोंसे, जो अपरिवर्तनवादी कहलाते हैं, कहूँगा कि वे स्वराज्यवादियोंकी किसी तरहकी कोई आलोचना न करें। मुझे इस बातका यकीन हो चुका है कि जनताके लिए किसी नीति या कार्यक्रमको बनानेमें अखबारोंसे बहुत कम मदद मिलती है। वे अखबारोंको जानते ही नहीं। अपरिवर्तनवादियोंको उन लोगोंतक पहुँचना है और उनके प्रतिनिधि बनना है जिन्हें किसी भी किस्मकी राजनीतिक शिक्षा नहीं मिली है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-७-१९२४

१७६. बम्बई सरोजिनीको याद रखे

श्रीमती सरोजिनी नायडू १२ तारीखको बम्बई लौट रही हैं। मुझे यकीन है कि बम्बई उनका स्वागत उत्साहसे करेगी। कांग्रेसने पूर्वी और दक्षिण आफ्रिकाके सुदूर देशोंमें बसे हुए अपने बेटे-बेटियोंके हितोंकी वकालत करनेके लिए दूतके रूपमें उन्हें भेजा। इस कामके लिए उनसे अच्छा व्यक्ति मिल ही नहीं सकता था। सरोजिनी भारतके इन बेटे-बेटियोंके लिए सच्ची माँ सिद्ध हुई हैं और उनकी सेवा करते हुए अथक परिश्रम किया है। मैं उनका अभी बिलकुल हालमें ही प्राप्त एक पत्र बम्बई निवासियोंके सामने रख रहा हूँ। उद्देश्य यह है कि भारतकी यह कोकिला जब अपने मधुर संगीतसे भारतीयोंके श्रवणोंको आनन्दित करनेके लिए वहाँ पहुँचे तो बम्बईके लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करना न भूलें। पत्र इस प्रकार है:[1]

१. आंशिक रूपसे उद्धृत।

मैं बहुत दुःखके साथ स्वीकार करती हूँ कि आखिरकार दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए आपके असंख्य बच्चोंके स्नेह बन्धनोंको तोड़कर मैं वापस आ रही हूँ यद्यपि वे मुझे अपनेसे अलग होने देनेके लिए तैयार नहीं थे।

तीन महीनेतक अनवरत व्यस्त रहने और यात्रा करनेके बाद जब मैं 'कारागोला' जहाजमें पहुँची तो मुझे लगा कि मैं जी-भरकर सोऊँ। मेरी नस-नसमें थकान भर गई थी और मैं शुरूमें कुछ दिनतक तो कुर्सीपर किसी निष्क्रिय-पिंडकी तरह पड़ी रही, किन्तु अब बुखारके बावजूद (जो मेरा सच्चा साथी है) पूर्वी आफ्रिकामें एक महीना और काम करनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ। मैं कल दारेसलाम में उतरूँगी, और टांगानिकाका दौरा समाप्त करके केनिया जाऊँगी। मैं केनियासे २ जुलाईको जहाजमें सवार होकर १२ जुलाईको बम्बई पहुँचूँगी। मैं जानती हूँ कि मुझे इसके बाद भी रोकनेकी कोशिश की जायेगी; किन्तु एक निजी कारणसे मैं अब निश्चयसे डिगूँगी नहीं। मेरी छोटी लड़की लम्बी छुट्टियोंमें ऑक्सफोर्डसे घर लौट रही है। मैंने उसे तीन सालसे नहीं देखा है; और आप तो मुझपर अच्छी माँ होनेका आरोप लगा चुके हैं?[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-७-१९२४

१७७. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सभी प्रस्ताव अन्यत्र दिये गये हैं। पहले प्रस्तावमें से सजा-सम्बन्धी अंश हट गया है। शिकस्तोंमें यह मेरी पहली शिकस्त थी। बहुमतसे मैं धोखा नहीं खा सकता। बाहर चले जानेवाले स्वराज्यवादी सदस्योंका भी विचार करें तो निश्चयपूर्वक मेरी शिकस्त हो जाती है; इसे देखते हुए किसी नाम-मात्रके बहुमतसे मैं सन्तुष्ट कैसे हो सकता था? इसीलिए मैंने कमेटीसे निवेदन किया कि कमेटीसे उठ जानेवाले सज्जनोंकी रायें भी गिन ली जायें और दण्ड-सम्बन्धी अंश प्रस्तावसे निकाल दिया जाये।

दूसरा प्रस्ताव भी अपने असली रूपमें नहीं रहा; लेकिन तत्त्वतः वह जैसाका तैसा है। उसमें अनुशासनकी कार्रवाई करनेका सिद्धान्त पूर्ववत् है।

तीसरे प्रस्तावमें जो हुआ वह तो वास्तविक हार ही थी। मेरा अभीतक यही खयाल है कि कांग्रेसकी निर्वाचित-समितियाँ ही कार्यकारिणी समितियाँ हैं और इसलिए उनके सदस्य वे ही व्यक्ति होने चाहिए जो पूरे मनसे कांग्रेसके मौजूदा कार्यक्रमका समर्थन करते हों और जो उसमें बाधा डालने या उसे कमजोर बनानेके बजाय उसे पूरी तरह कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए तैयार हों। लेकिन संवैधानिक

१. इसके बाद पत्रमें उनके अपने सामान और दक्षिण आफ्रिकामें मिले उपहारों और सहयात्रियोंका दिलचस्प वर्णन था।

कठिनाइयोंसे पार पाना मुमकिन न था। कोकोनाडाके कार्यक्रमपर किसी प्रकारका बन्धन लगाना गोया कांग्रेस विधानको तोड़ना माना जाता। मैंने उसका जो अर्थ किया था, और अब भी करता हूँ, उसके मुताबिक तो उससे नियम भंग नहीं होता था। पर कहा गया कि मुझे कोई अपनी अलग व्याख्या करनेका हक न था और स्वराज्यवादियों-को यह कहनेका हक था कि जो लोग धारासभाओंमें गये हैं वे पदाधिकारी बननेसे वंचित नहीं रखे जा सकते। उन्होंने कहा कि सच पूछिए तो स्वराज्यवादी तो कार्य-समितिमें मौजूद ही हैं। इस दलीलमें मैंने बहुत-कुछ बल पाया और चूंकि यह तो मैं देख ही रहा था कि वह असली प्रस्ताव जो स्वराज्यवादियोंके पदाधिकारी बननेमें बाधक था, एक नगण्य बहुमतसे ही पास हो सकता है, इसलिए मैंने प्रस्तावके वर्तमान रूपमें पास हो जानेकी बात मान ली। इससे मुझे खुशी नहीं हुई, पर पूरे प्रस्तावसे हाथ धो लेनेकी जगह यही एक रास्ता खुला हुआ था। यह इसलिए जरूरी था कि देशके सामने यह खयाल रहे कि संगठनोंको एक विचारके लोगोंसे गठित होना चाहिए और राजनैतिक कामोंमें स्वच्छताका आग्रह रखा जाना चाहिए। जो नियम और मानदण्ड औरोंके लिए बनाये जायें उनके अनुसार चलनेकी आशा प्रतिनिधियोंसे जरूर रखी जाये। तरह-तरहसे यह दिखाया जाना चाहिए कि अब कांग्रेस कोई भिक्षा माँगनेवाली संस्थाके रूपमें नहीं रह गई है; बल्कि वह एक आत्मशुद्धिकी संस्था है जिसका निर्माण अपनी आन्तरिक शक्तिको बढ़ाकर अपना ध्येय सिद्ध करनेके हेतु किया गया है। इसलिए राष्ट्रीय जीवनके लिए जिन बातोंकी आवश्यकता है उनके अनुकूल लोकमत जरूर तैयार किया जाना चाहिए और इसका सबसे अच्छा तरीका यही है कि प्रस्ताव पेश किये जायें और उनके समर्थकोंकी संख्या बढ़ाई जाये। ऐसी हालतमें यद्यपि मैंने भिन्न-भिन्न मतके लोगोंके पदाधिकारी होनेकी सम्भावनाको कुछ समयके लिए मान लिया है तथापि मैं दोनों दलोंके लोगोंसे जोर देकर कहूँगा कि वे एक-दूसरेके रास्तेमें बाधक न बनें।

फिर भी चौथे प्रस्तावने तो मेरी हारमें जो कसर रह गई थी सो पूरी कर दी। यह सच है कि गोपीनाथवाला प्रस्ताव पास हुआ; किन्तु मत-संख्याका अन्तर बहुत ही कम था। एक छोटे बहुमतमें होनेकी अपेक्षा साफ-साफ अल्पमतमें होना मेरे लिए ज्यादा खुशीका बायस हो सकता था। मैं इस बातको नहीं भूल सकता कि बहुतेरे लोगोंने तो श्री दासके संशोधनके पक्षमें मत इसलिए दिया था कि गिरफ्तारियोंकी अफवाह फैल रही थी। बहुतसे लोगोंने स्वभावत. इस बातमें अपना गौरव माना कि वे अपने ऐसे सरदार और साथीका समर्थन करें, जिसकी देश-सेवा विख्यात है और जिसने महान् आत्मत्याग किया है। इस प्रकार अक्सर नैतिक विचारोंके आगे भावनाको प्रमुखता दी जाती है और मुझे इसमें सन्देह नहीं कि अगर बंगाल-सरकार देशबन्धु और उनके समर्थकोंको गिरफ्तार करेगी तो यह एक बड़ी गलती होगी। वह जमाना लद गया जब लोगोंको उनके विचारोंके लिए सजाएँ दी जा सकती थीं। यदि श्री दासके संशोधनके खिलाफ मेरे मनमें नैतिक कारण न होते तो मुझे उनका समर्थन करनेमें जरा भी हिचकिचाहट न होती। पर मैं उसका समर्थन न कर सका, कोई भी कांग्रेसी ऐसा नहीं कर सकता था। श्री दासको मेरे और उनके अपने प्रस्तावमें कोई अन्तर नहीं

क्षमा-याचना

मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ नीचे दिया हुआ पत्र[1] छाप रहा हूँ। बाराबंकीपर लिखी अपनी टिप्पणीमें मैंने जानकारी देनेवालेका नाम नहीं दिया था, लेकिन अब मैं नामको और अधिक नहीं छिपा सकता। मैं चाहता हूँ कि श्री शुएबकी तरह सब अपनी भूल स्वीकार करनेको तैयार रहें और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी बुरी करतूतोंकी अफवाहोंपर विश्वास करनेमें जल्दी न करें। मेरी ही तरह पाठकोंको भी यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बाराबंकी-नगरपालिकाके हिन्दू-सदस्योंपर जो आरोप लगाया गया था, वह झूठा था। उनके साथ अन्याय करनेमें अनजाने ही मैं भी एक साधन बन गया, इसके लिए मैं उनसे माफी माँगता हूँ:

सेवामें
सम्पादक, 'यंग इंडिया'
महोदय,

बाराबंकीकी हालतके बारेमें मैंने आपको लिखा था। लेकिन उसके बाद बाराबंकीकी जिला कांग्रेस कमेटीके एक मुसलमान सदस्यने, जो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके भी सदस्य हैं, मुझे खबर दी कि जो खबरें मुझे दी गई थीं, वे सच न थीं। जो कुछ हुआ वह यह था: बाराबंकीके म्युनिसिपल बोर्डके पुराने कानूनके अनुसार अर्जियाँ उर्दू लिपिमें ही दी जाती थीं। बोर्डने अब यह कानून बनाया है कि अर्जियाँ देवनागरी और उर्दू दोनोंमें से किसी भी एक लिपिमें लिखी जा सकती हैं। यह कानून स्वयं मेरी रायमें तो ठीक और न्यायानुकूल ही है। मुझे बड़ा अफसोस है कि मैंने आपको वे खबरें पहुँचाईं, जो गलत साबित हुईं। उस गलत खबरको भेजनेका मैं सिर्फ एक ही कारण दे सकता हूँ कि जिन्होंने मुझे यह खबर दी, वे बड़े विश्वसनीय लोग हैं। . . . मैं यहाँ यह बता देना हूँ कि स्वयं उन्हें भी उस बातके सच होनेका पूरा विश्वास था। गलती तो मेरी ही है। . . . भविष्यके लिए मैंने एक सबक सीखा।

आपका,
शुएब कुरैशी

सद्भावपूर्ण सम्बन्ध

आजकल हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़ों और तनावोंकी ही खबरें बराबर मिलती रहती हैं। ऐसी स्थितिमें तिरुपति-निवासी श्री के० राजगोपालाचारीने जो-कुछ लिख भेजा है, वह तसवीरका एक खुशगवार पहलू सामने रखता है। वे लिखते हैं:[2]

1. अंशतः उद्धृत।
2. अंशतः उद्धृत।

लगता है, आपके सामने हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धोंका सिर्फ वही पहलू पेश किया गया है जो अच्छा नहीं है; मैं आपके सामने उसके उज्ज्वल पक्षका एक उदाहरण पेश करना चाहता हूँ।

तिरुपति एक छोटी-सी जगह है, जिसकी आबादी सिर्फ १८,००० है। इसमें से सिर्फ ५०० मुसलमान हैं और शेष सब हिन्दू। आप जानते ही होंगे कि यह हिन्दुओंका तीर्थ है और भारतके सभी भागोंसे हजारों लोग प्रतिदिन यहाँ आते-जाते रहते हैं। स्वभावतः यहाँ हिन्दू लोग बड़े प्रभावशाली हैं। मन्दिरका महन्त उत्तर भारतका एक बैरागी है और सरकारपर भी उसका बड़ा प्रभाव है। . . . पिछले सितम्बर मासमें एक प्रमुख मुसलमानने रमजानका महीना मनानेके लिए शहरके (एकमात्र मुख्य) आम रास्तेके आरपार कागजकी झण्डियाँ लगाई थीं और उसमें एक लाल कपड़ा लगा दिया, जिसके एक ओर लिखा था 'जश्ने रमजान' और दूसरी ओर था "पैगम्बरोंके पैगम्बर"। . . . मन्दिरके अधिकारियोंने, उधरसे होकर हिन्दू देवताकी जो बहुत-सी झाँकियाँ निकलती थी, उन्हें बन्द करवा दिया। उन्हें डर था कि उधरसे झाँकी ले जानेसे कहीं कोई फसाद खड़ा न हो जाये, लेकिन इसमें भी लगता है, उन्हें ज्यादा खयाल मुसलमानोंकी भावनाओंका ही था। लेकिन एक दिन झाँकीको रोका नहीं जा सका और वह उधरसे होकर निकाली गई। . . . जब झाँकी दूकानके पास आई तो एक ओर हिन्दुओंने झण्डियोंको हटवा देना चाहा, लेकिन दूसरी ओर मुसलमान भाइयोंने कपड़ा हटानेसे भी इनकार कर दिया। संयोगसे उस समय मैं भी उधरसे गुजरा . . . जरूरत पड़नेपर जूझ पड़नेके लिए सौ-एक मुसलमानोंको फिर भी एकत्रित देखा। जब मैंने अपेक्षाकृत शान्त और समझदार दिखनेवाले हिन्दुओंसे कहा कि झण्डियोंके नीचेसे झाँकी ले जानेमें हिन्दू धर्मकी कोई अप्रतिष्ठा नहीं होगी तो उन्होंने कहा कि मैं मुसलमानोंका पक्षपाती हूँ। इतना ही नहीं, वे मुझे पीटनेके लिए भी आपसमें कानाफूसी करने लगे। इसी बीच मन्दिरके दो-तीन अधिकारियोंने वहाँ पहुँचकर बड़े ही नाटकीय ढंगसे घोषित किया कि झाँकी वन्दनवारके नीचेसे ही जायेगी। हिन्दुओंको अपने लिए पुलिसकी मददकी कोई जरूरत नहीं। यह घोषणा करते ही मुसलमानोंका रुख तुरन्त बदल गया। उन्होंने कहा कि उन्हींके आदमी ऊपर चढ़कर कागजकी झण्डियाँ ऊँची उठा दें, ताकि देवताकी प्रतिमा अथवा उससे किसी भी अलंकरणका स्पर्श न हो पाये और कपड़ेको तो उन्होंने तत्काल हटा देनेको कहा। . . .

. . . हकीम साहबने दो-तीन दिन बाद मुझे बुला भेजा। मिलनेपर उन्होंने कहा कि मुसलमानोंने हिन्दुओंकी तुलनामें जो विवेकहीनता दिखाई, उसके बावजूद हिन्दुओंने जैसा उदार व्यवहार किया उसके कारण मुझे तो किसी हिन्दूसे

आँखें मिलाते हुए लज्जाका अनुभव होता है। कुछ दिन बाद एक रोज हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंने अपनी-अपनी दूकानें बन्द रखीं। इसमें हिन्दुओंका उद्देश्य रमजानके अवसरपर मुसलमानोंके साथ सहानुभूति दिखाना था। दूसरी बार गुड़ी पड़वापर हिन्दुओंको प्रसन्न करनेके लिए हिन्दुओंके साथ-साथ मुसलमानोंने भी अपनी दूकानें बन्द रखीं। दोनों सम्प्रदायोंके बीच अब भी सद्भावना बनी हुई है और मुझे विश्वास है कि वह सदा बनी रहेगी। बहुत दिनोंसे इस शहरमें एक ही मस्जिद थी, लेकिन अब दूसरी भी तैयार हो गई है। हिन्दू लोग नई मस्जिदके सामने भी आजतक गाते-बजाते नहीं हैं। मुसलमानोंकी तुलनामें यहाँ हिन्दू लोग इतने अधिक शक्तिशाली हैं कि यदि वे चाहें तो आसानीसे उनकी उपेक्षा करके मनचाही कर सकते हैं, लेकिन वे मुसलमानोंका बहुत ज्यादा खयाल रखकर चलते हैं और जहाँ जरूरी होता है, उनके सामने झुक भी जाते हैं।

हाँ, तो अब हम यही आशा करें कि दोनों समुदायोंके बीच यह सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध सदा बने रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-७-१९२४

१७९. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

३ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

आज मैंने एक पत्र[1] पढ़ा है। मैं उससे बहुत क्षुब्ध हुआ हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि इसके बारेमें कुछ लिखूँ तो मित्रताके अधिकारका दुरुपयोग तो नहीं होगा? मेरी अन्तरात्माकी आवाज कहती है कि मुझे इस प्रश्नका निर्णय स्वयं न करके इसे आपपर छोड़ देना चाहिए। यदि आप इसे दुरुपयोग समझें तो इस अपराधके लिए मुझे क्षमा कर दें और इस पत्रपर कोई विचार न करें।[2]

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है। इसमें स्पष्टरूपसे यह कहा गया था कि मोतीलाल नेहरूने शिमलामें एक सान्ध्य भोजमें मद्यपान किया। इस भोजमें वे मुख्य अतिथि थे। देखिए मुकुन्दराव जयकरकी **द स्टोरी ऑफ माई लाइफ**, खण्ड २।

२. मोतीलाल नेहरूने १० जुलाईको इसका लम्बा उत्तर देते हुए लिखा था : "मैं प्रारम्भमें ही आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपके उक्त पत्रको मैं मित्रताके अधिकारका दुरुपयोग नहीं समझता; बल्कि यह जानना आपका अधिकार और कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपके द्वारा अपने प्रति सार्वजनिक रूपसे अविश्वास प्रकट किये जानेपर भी जो आपके साथ और आपके अधीन काम करनेका यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं, उनका आपके प्रति क्या भाव है।"

लेखकने पत्रके साथ (लीडरकी) एक कतरन भी नत्थी करके भेजी है।[1] इसे मैंने पहले नहीं पढ़ा था। उसका कहना है कि किसी अन्य सान्ध्य भोजमें आपने यह कहा बताते हैं: "पानी शुद्ध बताया गया है, किन्तु शराब भबकेसे तीन बार खींची जानेपर बनती है, इसलिए वह पानीसे भी अधिक शुद्ध है।[2]" कृपया मेरी बातका गलत अर्थ न लगाइयेगा। यदि आपने फिर शराब पीना शुरू कर दिया हो तो इस बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है। यदि यह समाचार विश्वस्त है तो मुझे इससे दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। आपका मद्यपान-विरोधी आन्दोलन चलाते हुए खुलेआम शराब पीना बुरा है और शराबबन्दीका मजाक उड़ाना तो इससे भी बुरा है।

मुझे विशेष कुछ नही कहना है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मैं पत्रकी प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रतासे करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च:]

मैं जानता हूँ कि यदि कोई आदमी अपने घर शराब पीता है तो वह खुले आम भी पी सकता है। फिर भी यदि खुले आम शराब पीनेसे लोगोंकी भावनाको ठेस लगनेकी सम्भावना हो तो एक लोकसेवकको खुले आम शराब नहीं पीनी चाहिए। मैं अपने घर शराब पीने और छिपकर शराब पीनेमें भेद करता[3] हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

१. लीडरमें छपी इस खबरमें जिसको जयकरने उद्धृत किया है, इस घटनापर व्यंगपूर्ण टिप्पणी की गई थी।

२. इस सम्बन्धमें मोतीलालजीने लिखा था कि यह शराबसे सम्बन्धित एक फारसी शेरका अभिप्राय-भर था।

३. मोतीलालजीने इसका उत्तर यह दिया था: "मेरी दृष्टिमें यह बात स्पष्ट है कि झूठा दिखावा करके लोगोंको धोखा देनेसे उनकी भावनाको ठेस पहुँचाना अधिक अच्छा है। मैं यह बात समझनेमें बिल्कुल असमर्थ हूँ कि यदि मुझे शराब पीनी हो तो अपने घरमें पीऊँ; आपके ऐसे सुझावका आपके स्वभावसे कैसे मेल बैठ सकता है। आप घरमें शराब पीने और छुपकर शराब पीनेमें जो अन्तर करते हैं, मैं उससे भी सादर मतभेद प्रकट करूँगा।"

१८०. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

ज्येष्ठ वदी अमावस्या, गुरुवार [३ जुलाई, १९२४][1]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। सरदार मंगलसिंह[2] यहाँ लगभग एक सप्ताह रहे। वे यहाँसे परसों चले गये। आपका पत्र मुझे उनके जानेके बाद मिला; नहीं तो वे वहाँ अवश्य पहुँच जाते।

इस समय बातचीत टूटनेका मुख्य कारण स्वयं लॉर्ड रीडिंग[3] थे। करीब-करीब सब बातें तय हो गई थीं। मुझे अब भी आशा है कि आन्दोलनमें[4] खून-खराबी नहीं होगी। लेकिन भविष्यकी कौन कह सकता है?[5]

लगता है कि दिनकरराव फिर कहीं चले गये हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१७९) से।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[अहमदाबाद]
[३ जुलाई, १९२४ के पश्चात्][6]

भाईश्री ५ घनश्यामदास,

आपके दोनों पत्र मिले हैं। मैं जब दिल्ली जाऊंगा तो आपको तार भेजुंगा।

श्री सरोजीनी नायडूकी प्रशंसामें मेरे ख्यालसे अतिशयोक्ति नहिं है। मैं उनको आदर्श भारत महिला नहिं मानता हुं परन्तु द० आ० के कार्यके लीये वह आदर्श एलची थी।[7] इतना कहते हुए भी मैं कबुल कर लेना चाहता हुं कि मै लोगोंका

१. १९२४में ज्येष्ठमें अमावस्या दो दिन, १ और २ जुलाईको पड़ी थी। गुरुवारको ३ जुलाई थी। परन्तु उस दिन अमावस्या न थी।

२. सिख अकाली आन्दोलनके एक नेता।

३. भारतके तत्कालीन वाइसराय और गवर्नर जनरल।

४. अकाली आन्दोलन।

५. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", १-७-१९२४।

६. सम्भवतः यह पत्र ३ जुलाई १९२४को प्रकाशित गांधीजीके लेख 'बम्बई सरोजिनीको याद रखे' के बाद लिखा गया।

७. १९२४के मध्यमें वे पूर्वी आफ्रिकाके दौरेपर गई थीं।

गुणको देखता हूँ और दोषोंको भूलना चाहता हूँ। ऐसा करनेसे न मुझे कुछ हानि हुई है और न उन व्यक्तियोंको जिनकी मैंने प्रशंसा की हो।

यदि मुझको मौलाना महमद अली जल्दी नही बुलायेंगे तो मैं सप्टेम्बरके पहले दिल्ली नहि पहोंचुंगा।[1]

आपका,
मोहनदास गांधी

बिड़ला हाउस
हरिद्वार

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२८) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१८२. पत्र : लाला लाजपतरायको[2]

४ जुलाई, १९२४

प्रिय लालाजी,

मुझे हर्ष है कि आप आखिरकार वहाँ पहुँच गये हैं, जहाँ आपको होना चाहिए। आशा है कि पूर्ण स्वास्थ्य-प्राप्तितक आप वहाँसे नही हिलेंगे।

आशा है, यहाँकी घटनाओंसे आप क्षुब्ध न होंगे। एक ही मंचपर स्वराज्यवादियोंका तथा मेरा सहयोग सम्भव नहीं है। हाँ, सहयोग सम्भव हो सकता है — यदि दोनोंका पृथक-पृथक संगठन हो। कांग्रेसको एक समयमें केवल एक ही संस्थाको अपनाना चाहिए, एक ही समयमें सरकार तथा जनता दोनोंकी ओर कैसे ध्यान दिया जा सकता है?

भवदीय शुभाकांक्षी,
गांधी

लाला लाजपतराय : जीवनी

१. मुहम्मद अलीके निमन्त्रणपर गांधीजी १६ अगस्त १९२४ को दिल्ली पहुँचे थे।
२. मूल अंग्रेजी पत्र उपलब्ध नहीं है।

१८३. पत्र : वसुमती पण्डितको

[साबरमती]
आषाढ़ सुदी २ [४ जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा लिफाफा और पोस्टकार्ड एक साथ मिले।

तुम वहाँ एक मास ज्यादा रहीं, सो अच्छा ही हुआ। जैसे-जैसे ईश्वरमें हमारा विश्वास बढ़ता जाता है और हमें अपनी लघुताका भान होता जाता है वैसे-वैसे हम निश्चिन्त होते जाते हैं। चिन्ता करनेसे क्या दुःख कम हो जाता है?

बापूके आशीर्वाद

बहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४८) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१८४. सन्देश : अपरिवर्तनवादियोंको[2]

४ जुलाई, १९२४

मुझे अपरिवर्तनवादियोंसे केवल दो शब्द कहने हैं। हम काम करना चाहें तो हमें काम करनेसे कोई नहीं रोक सकता। हमारे सम्मुख सूत कातने और खादीको तैयार करने तथा वितरित करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई क्रियात्मक कार्यक्रम नहीं है। इसलिए जवान और बूढ़े, स्त्री और पुरुष सभी इस कार्यमें संलग्न हो जायें। यदि हमारे पड़ोसी हमारी बात नहीं सुनते तो इससे हमें सूत कातनेके लिए और भी अधिक समय मिलेगा। इसलिए कोई भी सच्चा कार्यकर्त्ता यह शिकायत नहीं कर सकता कि उसके पास कोई काम नहीं है। मैं राष्ट्रीय स्कूलोंको खद्दर कार्यक्रममें सहायक समझता हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, ८-७-१९२४

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२. यह सन्देश एक प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता, श्री हरदयाल नागके जरिये बंगालके अपरिवर्तनवादियोंको भेजा गया था।

१८५. तार : जी० नलगोलाको

[सावरमती
५ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

कालेज बन्द नही होना चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९८८)की फोटो-नकलसे।

१८६. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ़ सुदी ५ [७ जुलाई, १९२४][2]

पू० गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। भविष्यपर हमारा कोई वश नही है; भविष्यके बारेमें हम कुछ नहीं जानते। जब हम छोटीसे-छोटी बातमें भी निमित्त-मात्र होते हैं तब दु:ख किसलिए मानें? जो घटित हो, उसे देखते रहें। जो अपना कर्त्तव्य जान पड़े, उसे पूरा करें और प्रसन्न रहें। इसमें समस्त धर्म आ जाता है। आप जिसे दु:ख मानती है, उसीको सुख क्यों नहीं समझती? सहिष्णुता आपमें कष्ट-सहनसे आई है। सन्तोषमें सुख है। सुख ढूंढ़नेवालेके पल्ले दु:ख ही पड़ता है और दु:ख सहन करते-करते सुख मिलता है। हम मजदूर जन्मे हैं। यदि चाकरी बजाते — सेवा कार्य करते — हुए हमारी आंखें मुंदें तो समझना चाहिए कि हमारा जीवन सफल हो गया।

आप जब आश्रममें आयें तब मुझे सूचित करें। आशा है जच्चा और बच्चा दोनों स्वस्थ होंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१३) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१. यह जी० नलगोलाके ५ जुलाई, १९२४के तारके उत्तरमें दिया गया था। तार इस प्रकार है: "आपको ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके बारेमें प्रफुल्ल घोषसे जानकारी मिल चुकी है। तार दें, हमें क्या करना है। छात्र।" देखिए "तार: ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंको", ९-७-१९२४ या उसके पश्चात्।

२. पत्रमें गंगाबहनके आश्रममें आनेके जिक्रसे लगता है कि पत्र २२ जुलाई, १९२४से पहले लिखा गया था। देखिए "पत्र: गंगाबहन वैद्यको", २२-७-१९२४। आषाढ़ सुदी ५, इस वर्ष ७ जुलाई, १९२४ को पड़ी थी।

१८७. तार : मथुरादास त्रिकमजीको

[७ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्]

कोई खराबी नहीं, केवल कमजोरी।[1]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९९०) की फोटो-नकलसे।

१८८. तार : ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंको

[९ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

यदि कोई सहायता नहीं मिलती तो छात्र संगठित हों। आपसमें मिलकर अध्ययन और कार्य करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९९३) की फोटो-नकलसे।

१८९. टिप्पणियाँ

कौंसिल-प्रवेश

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन समाप्त होनेपर पण्डित मोतीलालजी एक पारिवारिक मुलाकातके लिए राजकोट गये और वहाँसे बम्बई जाते वक्त अहमदाबाद रुके। वहीं हम दोनोंकी मुलाकात हुई। बातचीतमें मेरे मुँहसे यह बात निकल पड़ी कि अब आजकी हालतमें स्वराज्यवादियोंका कौंसिलें छोड़ना बहुत ही घातक होगा। उन्होंने मुझे फौरन याद दिलाई कि पहले तो आपने लिखा था कि यदि आप स्वराज्यवादियोंको कायल कर सकते तो उनसे कौंसिलोंमें से निकल

१. यह तार मथुरादासके उस तारके उत्तरमें दिया गया था जो उन्होंने गांधीजीके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछके लिए कृष्णदासको भेजा था। यह ७ जुलाई, १९२४ को प्राप्त हुआ था।

२. यह ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंके उस तारके उत्तरमें दिया गया था जो उन्होंने ९ जुलाई, १९२४ को भेजा था। तार इस प्रकार है : "महाविद्यालयके अधिकारियोंने तार दबा दिया। स्कूलोंके बहिष्कारमें आचार्य और प्राध्यापकोंका अविश्वास। उनके अधीन कैसे पढ़ें। स्पष्ट तार दें। जिलानी तीस जिन्दाबहार ढाका"। देखिए "तार : जी० नलगोलाको", ५-७-१९२४ या उसके पश्चात्।

आनेके लिए कहते। मैंने कहा कि मुझे इन दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं मालूम होता। पहले जो-कुछ कहा, वह एक स्थायी बात है और सिद्धान्तपर आधारित है और अब जो-कुछ कह रहा हूँ, वह अवसरको ध्यानमें रखकर कह रहा हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि स्वराज्यवादियोंने सरकारी हलकोंमें बड़ी हलचल पैदा कर दी है और इसमें भी कोई शक नहीं है कि यदि इस समय वे कौंसिलोंसे निकल आते हैं तो उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा — यह समझा जायेगा कि उनके पैर उखड़ गये हैं और वे कमजोर हो गये हैं। दरअसल, जहाँतक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका सम्बन्ध है, स्वराज्यवादियोंकी स्थिति कभी इतनी मजबूत नहीं थी, जितनी कि आज है। वे नैतिक जीतका दावा कर सकते हैं। वे तो विधानसभा और विधान परिषदोंमें जाकर सरकारके साथ लड़नेमें विश्वास रखते हैं; फिर कोई भी कारण नहीं है कि वे इस समय इन विधायक संस्थाओंको छोड़ें। इस मौकेपर यदि वे सदस्यता छोड़ते हैं तो उससे देशमें निराशा और भी बढ़ जायेगी और सरकारके हाथ मजबूत होंगे — यह ऐसी सरकार है जो न्यायके नामपर कुछ भी देना नहीं जानती और जो झुकती है तो सिर्फ दबाव पड़नेपर बेमनसे; और उसमें कोई लज्जत नहीं रह जाती।

स्वराज्यवादियोंके लिए कौंसिलोंका त्याग करनेका एकमात्र उपयुक्त अवसर वह होगा जब हम कट्टर असहयोगी, जिसे स्वराज्य दिलानेवाला एकमात्र कार्यक्रम मानते हैं, उसको पूरा करनेके लिए सक्रिय रूपसे जुट जायेंगे और उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रगतिका परिचय देंगे या जब स्वराज्यवादियोंको स्वयं अपने कड़वे अनुभवोंसे यह विश्वास हो जायेगा कि परिषदें मिर्च-मसाला तो दे सकती हैं, लेकिन रोटी नहीं; और इसलिए हमें अपना सारा समय और ध्यान रचनात्मक कार्यक्रममें ही लगाना चाहिए।

इन तमाम परिस्थितियोंकी कुंजी तो हम पूर्ण असहयोगवादियोंके हाथमें ही है। हमारा दावा है कि सर्वसाधारण हमारे साथ हैं। कमसे-कम मैं तो ऐसा ही महसूस करता हूँ। अगर वे हमारे साथ हैं तो यह बात हमें ठोस काम करके सिद्ध कर देनी चाहिए — कांग्रेसमें सिर्फ बहुमत प्राप्त करके नहीं। अपरिवर्तनवादी सभी प्रान्तोंमें पर्याप्त काम करके नहीं दिखा सकते। शायद इसमें उनका दोष नहीं। हम कार्यक्रमको तो पसन्द करते हैं, लेकिन उसके मुताबिक काम करनेकी शक्ति हमने विकसित नहीं की है। यदि यह निदान सही है तो हमें काम करना चाहिए; क्योंकि शब्दोंसे नहीं, बल्कि कामसे ही हमें अपने कार्यक्रमके मुताबिक चलनेकी शक्ति प्राप्त होगी। जब हम ठोस काम करके दिखा देंगे, केवल तभी स्वराज्यवादी अपने-आप कौंसिलोंसे निकल आयेंगे।

मेरे खयालमें अब मध्यवर्ती दलके लिए कोई स्थान नहीं है। मध्यवर्ती दल डाँवाडोल स्थितिवाला दल होता है। वह अवसरके ज्वारके साथ बहता रहता है, लेकिन समय ऐसा आ गया है जब हम सबको दोमें से एक रास्ता निश्चित कर ही लेना चाहिए। जो लोग कौंसिलोंमें विश्वास रखते हैं, उन्हें वहीं रहना चाहिए या अगर वे बाहर हैं तो उन्हें कौंसिलोंमें प्रवेश करना चाहिए या उनके लिए काम

करना चाहिए। अगर वे कौंसिलोंमें विश्वास रखते हुए भी लोकमतके डरसे कौंसिलोंसे निकल आयेंगे तो यह उनके लिए और देशके लिए भी घातक होगा। जो स्वराज्य चाहते हैं, वे अपना वक्त बरबाद नहीं कर सकते।

मेरी स्थिति

मैं कांग्रेसपर अपना नियन्त्रण कायम रखना चाहूँगा — लेकिन ख्याली या बनावटी बहुमतके बलपर नहीं — महज इसलिए नहीं कि मेरे हाथ खींच लेनेपर संगठनके ढीले हो जाने और लोगोंमें निराशाका भाव आ जानेका डर है। यदि मैं अपना कार्यक्रम मंजूर नहीं करा सकता तो फिर इस स्थितिको भी स्वीकार करना पड़ेगा। शैथिल्यके बाद नवजीवनका संचार होता ही है। १९२०–२१ में कांग्रेस एक जीती-जागती संस्था बन गई थी लेकिन अब अन्देशा है कि वह १९२०के पहलेसे भी ज्यादा नाचीज बन जायेगी। १९२०में उसमें संगठित ढंगकी बेईमानी नहीं थी। उस वक्त तक प्रतिनिधियोंकी तादाद मर्यादित न थी। कांग्रेस-जनोंको लगातार काम करनेकी कोई मजबूरी न थी, और न कांग्रेसका कोई कोष था। अब कांग्रेसके प्रतिनिधियोंकी संख्या मर्यादित है। सभी प्रस्ताव उन्हींको लक्ष्य करके पास किये जाते हैं और अब उसके पास इतना पैसा है, जैसा कि १९२०के पहले कभी था ही नहीं।

इसलिए अगर हम बराबर सतर्क नहीं रहेंगे तो इसका स्वाभाविक परिणाम यही होगा कि बेईमानी फैलती चली जायेगी। स्वराज्यवादी मुझसे कहते हैं कि अपरिवर्तनवादियोंने कांग्रेसके विधानपर अमल करनेमें बेईमानीसे काम लिया है। अपरिवर्तनवादी भी स्वराज्यवादियोंके मत्थे यही दोष मढ़ते हैं। सच क्या है, मैं नहीं जानता। लेकिन मैं यह जरूर जानता हूँ कि अगर हम कांग्रेसके विधानपर ज्यादासे-ज्यादा ईमानदारीके साथ अमल नहीं करते या कर नहीं सकते तो यह स्वराज्यके लिए अपशकुन होगा।

मैं चाहता हूँ कि कांग्रेसकी लोकप्रियता दिनपर-दिन बढ़ती जाये। इसलिए मैं उसमें व्यापारियों, कारीगरों और किसानोंको शामिल करना चाहूँगा। मैं इसी उद्देश्य-को ध्यानमें रखकर बहिष्कारके सभी कार्यक्रमोंको भी यथावत् रखना चाहूँगा और कार्यकारिणीमें सिर्फ ऐसे लोगोंको ही रखना पसन्द करूँगा, जिन्होंने खुद उनपर अमल किया हो। जो लोग आज उनपर अमल नहीं कर सकते, पर फिर भी उनमें विश्वास रखते हैं, वे उन लोगोंकी मदद कर सकते हैं जो तदनुसार आचरण करते हों; लेकिन जिनको संस्थाकी व्यवस्था करनेका अनुभव नहीं है या जो कार्यकर्त्ताके रूपमें लोगोंके लिए जाने-पहचाने नहीं हैं। और जो लोग अभीतक अलग रहे हैं, उनके पीछे रहकर उनको सार्वजनिक जीवनमें आगे लानेका खास काम शिक्षित वर्गका ही होना चाहिए।

ऐसी संस्थामें विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गोंके लोगोंके लिए कार्यकारिणीमें कोई स्थान नहीं है। वे सब वार्षिक विचार गोष्ठीमें तो शामिल हो सकते हैं। पण्डित मोतीलालजी एक छोटी स्थायी विचार-समिति बनानेका सुझाव देते हैं। मुझे उसमें कोई उज्र नहीं। महाधिवेशनके सभी अधिकार रखनेवाली एक ऐसी समितिसे शायद लाभ ही होगा।

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इस विधानमें भारी रद्दोबदलकी जरूरत है। हमें काममें कुशलता और तत्परता लानी चाहिए और यदि हम लोग, जिन्हें इस संस्थाके संविधानपर अमल करना है, ईमानदार नहीं हैं या कुशलता तथा तत्परताके इच्छुक नहीं हैं तो संविधानके सर्वांगपूर्ण रहनेपर भी काममें कुशलता और तत्परताकी पक्की आशा नहीं की जा सकती।

उचित फटकार

पंजाब सरकारने अपनी एक विज्ञप्तिमें जनताको फटकार बताई है, जो बहुत उचित है। विज्ञप्तिमें उसने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों, जातियों द्वारा प्रकाशित उन अखबारोंके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनेका इरादा जाहिर किया है, जिन्होंने एक दूसरेके धर्मपर कीचड़ उछालना ही अपना धन्धा बना रखा है। विज्ञप्ति इस प्रकार है:

> पिछले कुछ समयसे पंजाब सरकार देख रही है कि इस प्रान्तमें हिन्दू और मुसलमान, दोनों कुछ ऐसे अखबार प्रकाशित कर रहे हैं जिनमें एक-दूसरेके बारेमें और एक दूसरेके धर्मके बारेमें उत्तेजनात्मक और गाली-गलौज भरी सामग्री छपती रहती है। इस कुत्सित प्रचारको सरकार बड़ी चिन्ताकी दृष्टिसे देखती रही है। इसमें बहुत ही गन्दी भाषाका प्रयोग किया जाता है और कभी-कभी तो भाषा अश्लील तक होती है। सरकारको आशा थी कि इस गन्दगी और अश्लीलतासे दोनों जातियोंके प्रतिष्ठित लोग क्षुब्ध हो उठेंगे और ये अखबारवाले भी समझ जायेंगे कि जनताके किसी भी हिस्सेपर उनके लेखोंका कोई असर नहीं पड़ रहा है। लेकिन, दुर्भाग्यकी बात है कि सरकारकी यह आशा पूरी नहीं हुई और सरकारको मजबूर होकर दो अपराधी अखबारोंके खिलाफ मुकदमे चलाने पड़े हैं। सरकारको दोनों जातियोंके नेताओंकी समझदारीपर भरोसा है और उसे आशा है कि धार्मिक विद्वेषकी इस अत्यन्त आपत्तिजनक अभिव्यक्तिको दबानेमें वे हर तरहसे अपनी सामर्थ्य-भर उसकी सहायता करेंगे। ऐसे प्रचारसे दो महान जातियोंके सद्भावनापूर्ण सम्बन्धोंको बहुत बड़ा खतरा पैदा हो गया है।

खेदके साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि जनताने इन अखबारोंके खिलाफ जुटकर काम किया होता तो यह बन्द किये जा सकते थे। अब भी ऐसी ही आशा करनी चाहिए कि सम्बन्धित प्रकाशक अपने धर्म-विरुद्ध आचरणके लिए क्षमा-याचना करेंगे और इन अखबारोंका प्रकाशन बन्द कर देंगे।

स्वराज्यके अन्तर्गत सरकारी नौकरियाँ

पटना निवासी श्री अली हसनने मेरे इस सुझावपर आपत्ति की है कि स्वराज्य सरकारमें लोगोंको जातीय अनुपातके अनुसार नहीं, बल्कि विशुद्ध रूपसे योग्यताके आधारपर नौकरियाँ दी जानी चाहिए। वे एक सामान्य रूपसे प्रचारित कथनको

उदाहरणस्वरूप पेश करते हुए कहते हैं कि आज अधिकांश अच्छे-अच्छे पदोंपर हिन्दू लोग ही आसीन हैं। मेरे पास कोई आँकड़े नहीं जिनके आधारपर मैं इस कथनके सत्यासत्यपर विचार करूँ। लेकिन, अगर उनकी बात सच हो, तब भी मेरे विचारमें कोई फर्क नहीं आयेगा। वर्तमान सरकारको मुख्यतः अपनी स्थिति सुदृढ़ रखनेकी ही चिन्ता है और इसलिए जो पक्ष सबसे ज्यादा शोरगुल मचाता है, उसे सन्तुष्ट करके वह अपनी स्थिति सुरक्षित रखना चाहती है। इस सरकारके अधीन हम जो वस्तुस्थिति देखते हैं, उसे देखकर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। न्याय करनेका एकमात्र रास्ता यही है कि जो जातियाँ शिक्षाके क्षेत्रमें पिछड़ी हुई हैं, उन्हें शिक्षाकी विशेष सुविधा दी जाये। पिछड़े हुए लोगोंका स्तर ऊँचा उठाना सरकारका कर्त्तव्य है, लेकिन उसका उतना ही महत्वपूर्ण कर्त्तव्य यह भी है नियुक्तिके मामलेमें वह कार्यक्षमता और चरित्रको ही एकमात्र कसौटी बनाये। नियुक्ति करते समय अधिकसे-अधिक निष्पक्षता बरतनेकी व्यवस्था अवश्य रखनी चाहिए, लेकिन इस मामलेमें जातीय अनुपातके आधारपर कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता।

हिन्दू कौन हैं?

इस सिलसिलेमें श्री अलीहसनने एक अजीब बात कही है। वे कहते हैं:

> आज तो हिन्दूका मतलब सिर्फ ब्राह्मण और कायस्थ रह गया है। उन्हें अछूतोंको अपने अन्दर शामिल करके उनसे फायदा उठानेका कोई हक नहीं है, जब कि वे उनके साथ बराबरीका व्यवहार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। नीची जातिवाले बिलकुल अलग किस्मके लोग हैं और उनके साथ अच्छा सलूक होना चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंको उनका तथा दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंका भी लिहाज करना चाहिए।

अगर मुझे यह न मालूम होता कि बहुतसे मुसलमानोंका ऐसा खयाल है तो मैं इस बातपर ध्यान भी न देता। श्री अलीहसन तो अन्य लोगोंसे एक कदम और आगे बढ़कर मानते हैं कि तमाम नीची जातियाँ हिन्दुओंसे अलग हैं। किसी भी मुसलमानके लिए ऐसा मानना एक खतरनाक बात है; क्योंकि इसका मतलब इस बातका फैसला करनेकी कोशिश करना है कि कौन हिन्दू है और कौन नहीं। अच्छा, तो इनकी रायमें अकेले ब्राह्मण और कायस्थ ही हिन्दू हैं—क्षत्रिय लोग हिन्दू नहीं हैं। तब तो हिन्दुओंकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। सच तो यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेके बारेमें इस बातका फैसला नहीं कर सकता कि वह कौन है। अछूतोंने इस बातका फैसला स्वयं ही किया है कि वे कौन हैं। मुझे अभीतक एक भी ऐसा अछूत नहीं मिला, जिसने अपनेको हिन्दू न बताया हो। हाँ, धर्म-परिवर्तन करनेवाले लोग अवश्य ही इसमें शामिल नहीं हैं।

बेहतर प्रशासक कौन है?

श्री अलीहसन आगे लिखते हैं कि आपने इस बातको तो क़बूल किया ही है कि मुसलमान लोग हिन्दुओंसे बेहतर प्रशासक होते हैं; इसलिए आपके लिए इस

बातको मान लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि मुसलमानोंको प्रशासनमें समान अनुपातसे जगहें दी जायें। मैंने ऐसी कोई बात क़बूल नहीं की है। उनके पास मेरा एक पोस्टकार्ड है जिसमें नहीं (नाट) शब्द भूलसे लिखना रह गया है।[1] ज्यों ही मैंने वह पोस्टकार्ड अखबारोंमें छपा देखा, मैंने तुरन्त उस भूलकी सूचना उन्हें दे दी। मुसलमान हिन्दुओंसे कितनी ही बातोंमें बेहतर हैं; पर मैंने उन्हें बेहतर प्रशासक कभी नहीं माना। अगर बन सके तो मैं हर क्षेत्रमें उन्हें श्रेय देना चाहूँगा। उस अवस्थामें न तो झगड़ोंके लिए और न ईर्ष्या-द्वेषके लिए कोई कारण रहेगा। एक ही काममें लगे बराबरीके लोगोंमें ईर्ष्या-द्वेष आम तौरपर होता ही है। वकील लोग एक-दूसरेसे ईर्ष्या-द्वेष करते हुए देखे जाते हैं, पर मैंने उन्हें डाक्टरोंसे ईर्ष्या करते हुए कभी नहीं देखा। पर फर्ज कीजिए कि मुसलमान लोग बेहतर प्रशासक हैं; तो फिर उस हालतमें एक निष्पक्ष और खुली प्रतियोगितामें उन्हें केवल पचास प्रतिशत ही क्यों, शत-प्रतिशत स्थान पा जानेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए और हिन्दुओंकी इस हारपर मेरी आँखोंसे एक भी आँसू न गिरेगा। मौलाना शौकत अलीको मैंने पहले ही कह रखा है कि यदि भारतीय गणतन्त्रका या ऐसी ही किसी चीजका मैं प्रथम अध्यक्ष हुआ तो उन्हें पहला सेनाध्यक्ष और उनके भाईको शिक्षा-मन्त्रीके पदपर नियुक्त करूँगा। हो सकता है यह रिश्वत ही हमारी मित्रताका कारण हो, पर मुसलमानोंको मैं सावधान कर देता हूँ कि इससे वे कहीं यह अनुमान न निकालें कि मैं मुसलमानोंको अन्य जातियोंकी तुलनामें आम तौरपर बेहतर सैनिक और शिक्षा-शास्त्री मानता हूँ। मेरी अपनी राय तो यह है कि कुल मिलाकर हम सब प्रायः समान योग्यतावाले लोग हैं और यदि निष्पक्षता बरती जाये तो कोशिश करनेपर किसी भी खुले मुकाबलेमें हम एक-दूसरेको हरा सकते हैं।

भूल-सुधार

'यंग इंडिया' में अपनी टिप्पणियोंमें मैंने यह सूचना दी थी कि रीवाँ राज्यमें भी भोपाल-जैसा एक कानून है। उसके सम्बन्धमें एक सज्जन लिखते हैं :

> रीवाँ राज्यमें ऐसा कोई कानून लागू नहीं है जिसके अनुसार हिन्दुओंके मुसलमान बनाये जानेपर रोक हो और न अपना धर्म बदलनेवाले अथवा किसीका धर्म बदलवानेवालेके लिए ही किसी सजाका विधान है।
>
> हाँ, यह सच है कि किसी भी हिन्दूके लिए अपना धर्म बदलनेसे पहले दरबारकी मंजूरी लेना जरूरी है। इस आदेशका उल्लंघन करनेवालेपर आदेश-उल्लंघनके लिए विहित साधारण तरीकेसे मुकदमा चलाया जा सकता है और उसे सजा दी जा सकती है। कुछ लोग आर्थिक लाभकी आशासे या वेश्यावृत्ति या अन्य गैरकानूनी उद्देश्य साधनेके लिए धर्म-परिवर्तन करते हैं। इस आदेशका उद्देश्य धर्म-परिवर्तनके ऐसे मामलोंपर समाजकी स्वच्छता और कल्याणकी दृष्टिसे स्वस्थ और हितकर अंकुश रखना है।

१. देखिए "पत्र : अलीहसनको", २४-५-१९२४।

इस आदेशके फलस्वरूप राज्य धर्म-परिवर्तन करनेवालोंकी संख्याकी भी अद्यावधि जानकारी रख पाता है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह आदेश सच्चे दिलसे हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम कबूल करनेपर रोक लगाता है या उसे किसी और तरहसे ही प्रभावित करता है।

इस भूल-सुधारको प्रकाशित करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। पत्रलेखकका कहना है कि उन्होंने जो-कुछ लिखा है, वह सर्वथा प्रामाणिक है। लेकिन मुझे लगता है कि दरबारसे पूर्वस्वीकृति लेनेकी शर्त समाजकी स्वच्छता और कल्याणकी दृष्टिसे लगाया गया शुभ अंकुश ही नहीं है; इससे कुछ अधिक है। किसी वयस्क व्यक्तिपर, जिसमें पूरी समझदारी हो, दरबारसे पूर्वस्वीकृति लेनेका बन्धन क्यों लगाया जाये? ऐसे धर्म-परिवर्तनकी प्रामाणिकताका निर्णय कौन करेगा? हिन्दुओंको तो अपना धर्म छोड़कर कोई और धर्म स्वीकार करनेका हर मामला पतनकी ही निशानी दिखेगा; इसलिए ऐसे धर्म-परिवर्तनके हर मामलेके प्रति उसका दृष्टिकोण पूर्वग्रहसे ग्रसित रहेगा। इसलिए मैं दरबारसे नम्र निवेदन करूँगा कि वह पूर्व सहमतिवाली धारा हटा दें। धर्म-परिवर्तनके मामलोंका पंजीयन करनेकी व्यवस्था अप्रामाणिक धर्म-परिवर्तनके विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा प्रदान कर सकती है और इस सिलसिलेमें इस बातकी जानकारी भी दिलचस्प होगी कि उस राज्यमें इसपर किस ढंगसे अमल किया गया है। हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि सभी हिन्दू राज्य अपने-आपको आदर्श राज्य बनायें और हिन्दू धर्ममें जो बुराइयाँ आ गई हैं, उन्हें दूर करें। तो रीवां राज्यसे मैं इस बातकी अपेक्षा करूँगा कि वह अस्पृश्यताके विरुद्ध एक कानून बनाकर दिखाये। जो व्यवस्था अपनी आन्तरिक बुराइयोंके कारण दम तोड़ रही हो, उसे बाहरी सुरक्षाका कोई भी उपाय जीवित नहीं रख सकता।

मिथ्याभिमान?

खादी बोर्डने बहुतसे नौजवानोंको खादीके काममें लगा रखा है, लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि उसे सही किस्मके ऐसे लोग नहीं मिल रहे हैं जो अपना सारा समय इस काममें लगायें। वे अपना जीविकोपार्जन किसी और साधनसे करना चाहते हैं। मेरे विचारसे, कामके बदले वेतन न स्वीकार करनेकी यह प्रवृत्ति शुभ नहीं है। हमें पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी एक पूरी फौज ही चाहिए। भारत-जैसे गरीब देशमें बिना वेतनके ऐसे कार्यकर्त्ता मिलना सम्भव नहीं है। ईमानदारीके साथ अच्छा राष्ट्रीय काम करनेके लिए वेतन स्वीकार करनेमें मुझे लज्जा की तो कोई बात ही नहीं दिखाई देती; बल्कि मुझे इसमें श्रेय ही दृष्टिगोचर होता है। स्वराज्य-की स्थापनाके बाद भी तो हमें ऐसे बहुतसे कार्यकर्त्ताओंको कामपर लगाना होगा जो वेतन लेकर पूरे समय तक काम करें। तब क्या हमें आज स्वराज्य सेवामें शरीक होनेमें भारतीय असैनिक-सेवा (आई० सी० एस०) में काम करनेवाले अंग्रेजोंसे कम गौरवका अनुभव होगा? तब फिर आज जब किसीको भी पेंशन देना तो दूर पूरे स्थायित्व तककी कोई गारंटी नहीं दी जा सकती, वेतन स्वीकार न करनेका क्या औचित्य रह जाता है? क्या यह भी एक भारी विडम्बना नहीं है कि एक ओर जहाँ

यह कहा जाता है कि वकीलोंने जीविकोपार्जनकी कोई व्यवस्था न हो पानेके कारण पुनः वकालत शुरू कर दी, वहाँ दूसरी ओर खादी बोर्डको वेतन लेकर काम करनेवाले अच्छे कार्यकर्त्ता मिलना मुश्किल हो रहा है?

एक और भी बात है, जिसकी ओर ध्यान देना जरूरी है। जब कोई आदमी राष्ट्रकार्यके लिए चाहे वेतन लेकर या बिना वेतनके — स्वेच्छासे अपनी सेवाएँ प्रदान करता है तो वह किसी भी साधारण कर्मचारीपर लागू होनेवाले सभी अनुशासनों और नियमोंके अधीन हो जाता है। स्वयंसेवकोंपर तो अनुशासन और भी कड़ाईके साथ लागू होता है। इसलिए उसे छुट्टी लिये बिना कामपर गैरहाजिर नहीं होना चाहिए; बल्कि उसे अनुमति लिये बिना जेल जानेके लिए भी कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। सविनय अवज्ञा एकाधिक अर्थोंमें विनयपूर्ण होनी चाहिए। उसमें मिथ्या साहस प्रदर्शन और आवेश-आवेगके लिए स्थान नहीं है। सविनय अवज्ञाका मतलब है अनुशासनबद्ध विवेकपूर्ण, विनम्र बलिदान।

स्त्रियाँ आगे बढ़ें

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी एक सदस्या श्रीमती हेमप्रभा मजुमदार मेरे नाम एक पुर्जा छोड़ गई हैं; उसमें लिखा है :

> मेरा खयाल है कि जबतक हमारे देशकी महिलाएँ कताईका काम खास तौरपर अपने जिम्मे नहीं लेंगी, तबतक यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इसलिए प्रार्थना है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंसे खास तौर पर यह अनुरोध किया जाये कि वे स्त्रियोंकी कताईकी तालीमका विशेष प्रबन्ध करें।

मैं दिलसे इसकी ताईद करता हूँ और अपनी तरफसे इतना और कहना चाहता हूँ कि और भी बहुत-सी बातें भारतकी महिलाओंकी सहायताके बिना असम्भव हैं। सवाल सिर्फ यही है कि इस कामको कौन और किस तरह करें। बहुत-सी बहनें काम कर रही हैं पर अभी और भी बहनोंकी आवश्यकता है। पुरुष कार्यकर्त्ताओंकी तरह अपना पूरा समय देनेवाली स्त्री कार्यकर्त्रियाँ भी होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसी स्त्रियाँ इस क्षेत्रमें काम कर रही हैं, पर उनकी संख्या बहुत ही कम है। मैं इस बहनको निमन्त्रण देता हूँ कि वे इस कार्यका आरम्भ करें। इस उद्देश्यसे उन्हें स्वयं कताईके लिए कुछ समय अलग बचाकर रखना चाहिए और धुनाई, कपासकी किस्म पहचानना, सूतका नम्बर पहचानना और उसकी मजबूती परखना सीखकर इस कलामें प्रवीणता प्राप्त कर लेनी चाहिए। वे इसका शुभारम्भ इस राष्ट्रीय व्यवसायके प्रति अपने पड़ोसियोंमें रुचि पैदा करके कर सकती हैं। यदि वे ऐसा करेंगी तो देखेंगी कि दायरा बढ़ रहा है। बेशक मैं पतियोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी पत्नियोंको इस कामका संगठन करने दें। बंगालका मामला शायद सबसे मुश्किल है, क्योंकि वहाँ क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सब महिलाएँ परदा रखती हैं। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जो कोई इस कामको श्रद्धा और उत्कटताके साथ शुरू करेगा, उसे वह बड़ा सरस और राष्ट्रीय दृष्टिसे लाभदायक जान पड़ेगा।

बकरीद

बकरीदके त्यौहारका समय हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंके लिए चिन्ताका होता है। यदि हम परस्पर सहिष्णुता और एक-दूसरेके प्रति आदरका भाव रखें तो ऐसी स्थिति न आये। मुसलमान पशुओंकी कुर्बानीमें विश्वास रखते हैं और इसलिए वे गायकी भी कुर्बानी करते हैं। फिर उसमें हिन्दुओंको क्यों दस्तन्दाजी करनी चाहिए? इसी तरह मुसलमानोंको भी गायकी कुर्बानी और सो भी जान-बूझकर इस ढंगसे क्यों करनी चाहिए, जिससे हिन्दुओंकी भावनाओंको आघात पहुँचे। क्यों नहीं मुसलमान १९२१ का वही शराफत-भरा व्यवहार करते जब उन्होंने अपने हिन्दू पड़ौसियोंकी भावनाका खयाल रखनेके लिए खुद ही गायोंको बचानेका भार अपने सिर ले लिया था? उस अवसरपर दरहकीकत उन्होंने सैकड़ों गायोंको बचाया भी, जिसे कि खुद हिन्दुओंने भी तसलीम किया। निश्चय ही बकरीदके दिन मुसलमानोंको अपने मनसे हिन्दुओंके प्रति प्रेमभाव जगानेके लिए खास तौरपर कोशिश करनी चाहिए और हिन्दुओंको भी चाहिए कि मुसलमानोंके धार्मिक रस्म-रिवाजका वे लिहाज रखें, भले ही वे उन्हें कितने ही अप्रिय क्यों न हों। क्या वे खुद भी मुसलमानोंसे मूर्तिपूजाके विषयमें यही अपेक्षा नही रखते हालाँकि उन्हें यह बहुत अप्रिय है? परमात्मा हमारे अपने कामके लिए हमें ही जिम्मेवार मानेगा, हमारे पड़ोसीके कामके लिए नहीं।

फिर बाराबंकीके बारेमें

बाराबंकी सम्बन्धी मेरी टिप्पणीपर मुझे दो ऐसे पत्र मिले हैं, जिनसे उस विषयपर बहुत प्रकाश पड़ता है। उनमें एक मुसलमान सज्जनका लिखा हुआ है और दूसरा हिन्दू सज्जनका। यद्यपि वे बिलकुल स्वतन्त्र रूपसे अलग-अलग लिखे गये हैं तो भी उनमें जिन तथ्योंका विवेचन है उनके बारेमें पत्र-लेखक एकमत हैं। दोनोंमें कुछ नई बातें हैं। दोनों निष्पक्ष दृष्टिसे लिखे हुए दिखाई देते हैं। मैं उन चिट्ठियोंको इसलिए प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ कि उनके प्रकाशनसे कोई लाभ नहीं होनेवाला है। जो बातें उनमें बताई गई हैं, उनसे लेखकोंको छोड़कर किसीकी नेकनामी नहीं होती। फिर भी एक बात बिलकुल साफ है कि नगरपालिकापर कब्जा करना वहाँके हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच वैमनस्यका कारण बन गया है। यदि असहयोगकी बात जाने दें तो भी मुझे तो यह बिलकुल साफ दिखाई देता है कि जहाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंमें हार्दिक एकता न हो, असहयोगी, फिर वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, नगरपालिका या जिला बोर्डोंमें प्रवेश न करें। जहाँ एक पक्ष उनमें जानेके लिए तैयार हो, वहाँ भी दूसरे पक्षके लोग उससे दूर ही रहें। कहते हैं, नगरपालिकाका यह अशोभन विवाद शुरू होनेसे पहले तक दोनों जातियोंके लोग पूरे मेल-मिलापके साथ रहते थे। पर अब इस चुनावके कारण केवल नगरपालिकाके प्रतिपक्षियोंके बीच ही नहीं बल्कि सारे शहरमें तनाव फैल गया है। मुझे पूरी आशा है कि बाराबंकी नगर अपनी पुरानी साम्प्रदायिक सद्भावनाको फिरसे स्थापित करके अपने खोये हुए यशको पुनः प्राप्त कर लेगा।

एक खण्डन

तियोंके धर्माचार्य श्री नारायण गुरुस्वामीके साथ जिस मुलाकातके विवरण[1]की बात छपी थी, उसके बारेमें श्री नारायणन्ने एक पत्र भेजा है। मैं प्रसन्नतापूर्वक वह पत्र छाप रहा हूँ। पत्र इस प्रकार है:

> वाइकोम-सत्याग्रहके वर्तमान तरीकोंके बारेमें परम पूज्य श्री नारायण गुरुस्वामीके विचारोंके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' में प्रकाशित आपकी टिप्पणी पढ़कर बहुत दुःख हुआ। कुछ ही दिन पहले मैं स्वामीजीसे मिला था और उनसे काफी देर तक बातचीत भी की थी। स्वामीजीने प्रारम्भमें ही स्वयं कहा कि कुछ दिन पहले रेलगाड़ीमें श्री केशवन् नामक किन्हीं सज्जनसे उनकी बातचीत हुई थी और उन्होंने उस तथाकथित मुलाकातका एक अनधिकृत विवरण देशी भाषाके किसी अखबारमें छापकर उन्हें जनताके सामने बहुत गलत रूपमें पेश किया है। पहली बात तो यह है कि स्वामीजी किसी पत्र-प्रतिनिधिको मुलाकात देनेके आदी नहीं हैं। लेकिन, वे जिस किसीसे जिस विषयपर भी बात करते हैं, उसपर अपने विचार मुक्त भावसे व्यक्त कर देते हैं। अभी बिलकुल हालमें श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारीकी भी वाइकोमके मामलेपर स्वामीजीसे काफी खुलकर बातें हुई थीं; और कहते हैं, उस अवसरपर स्वामीजीने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें वाइकोम सत्याग्रहके मौजूदा तरीकोंसे सहमति प्रकट की थी।
>
> स्वामीजी जो-कुछ कहते हैं, वह यह है: यह सच है कि वे मन्दिरमें प्रवेश करने और दूसरोंके साथ बैठकर खाने-पीनेके पक्षमें बोले; लेकिन ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि वे सदासे मन्दिर-प्रवेश और सह-भोजनके पक्षधर रहे हैं। किन्तु, अहिंसापर उनका बहुत आग्रह है। उनका कहना है कि बाड़ें खड़ी न की गई हों, तो भी निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करना हिंसा है, क्योंकि सीमापर सरकारके निषेधात्मक आदेशकी जो तख्ती होती है, वह अपने आपमें पुलिसवालों द्वारा खड़ी की गई बाड़के बराबर है; पुलिसवाले तो जब स्वयंसेवक उस ओर बढ़ते हैं, उस समय उस आदेशको सिर्फ दोहराते-भर हैं। उनका विचार यह है कि जबतक निषेधकी सूचना देनेवाली तख्ती वहाँ लगी हुई है तबतक स्वयंसेवकोंको सीमा-रेखापर ही रुके रहकर ईश्वरसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह उनके विरोधियोंको अपना मन बदलनेका साहस दें जिससे वे उस तख्तीको स्वयं हटा दें। हो सकता है, उन्होंने श्री केशवन्से ऐसा कुछ कहा हो कि यदि स्वयंसेवकोंका तख्तीपर लिखे सरकारके निषेधात्मक आदेशकी अवहेलना करके निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करना ठीक हो तब तो फिर पुलिसका घेरा लांघकर आगे बढ़नेमें भी कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। स्वामीजीका कहना है कि हो सकता है, इसी बातको श्री केशवन्ने गलत ढंगसे समझा

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १९-६-१९२४।

हो। उन्होंने मेरा ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया कि स्वयंसेवकोंका आचार-व्यवहार आदर्श होना चाहिए और उत्तेजनाका बड़ेसे-बड़ा कारण होने पर भी उन्हें रोष नहीं करना चाहिए। स्वामीजीका यह खयाल भी है कि ५०० सवर्ण हिन्दुओंके वाइकोमसे चलकर पैदल ही त्रिवेन्द्रमतक जानेकी जो बात चल रही है, उसका नैतिक प्रभाव बहुत जबरदस्त होगा और उससे सभी सम्बन्धित लोग प्रभावित होंगे। अन्ततः उन्होंने आन्दोलनकी पूर्ण सफलताकी कामना करते हुए कहा कि यदि लोग आन्दोलनको इसी उत्साहसे चलाते रहे तो सफलता दूर नहीं है।

उपर्युक्त टिप्पणी तैयार हो जानेके बाद, मुझे एक अधिकृत पत्र मिला है, जो इस प्रकार है:

> रेलगाड़ीमें श्री के० एम० केशवन्‌की मुझसे कुछ बातचीत हुई थी, जिसका विवरण 'देशाभिमानी' में छपा है। लगता है, वह विवरण मेरा आशय ठीक-ठीक समझे बिना तैयार किया गया है। प्रकाशनसे पूर्व वह विवरण मुझे दिखाया नहीं गया और न प्रकाशनके शीघ्र बाद ही वह मुझे देखनेको मिला। सामाजिक सामंजस्यके लिए अस्पृश्यता-निवारण बहुत आवश्यक है। महात्मा गांधीने इस बुराईको दूर करनेके लिए जो सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया है, उसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है और न लोगोंके उस आन्दोलनमें सहयोग देनेपर ही मुझे कोई एतराज है। अस्पृश्यताके कलंकको दूर करनेके लिए कामका जो भी तरीका अपनाया जाये, उसका पूर्ण रूपसे अहिंसात्मक होना जरूरी है।
>
> नारायण गुरु
>
> मुटावकडु
> २७-६-१९२४

आधा दर्जन और छः

'रंगीला रसूल' नामक अपठनीय पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक गाली-गलौजसे भरे पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो बातें कही थीं,[1] उनके सिलसिलेमें आर्यसमाजियोंकी तरफसे मेरे पास ढेरके-ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी बातकी सचाईके तो कायल हैं पर कहते हैं कि कुछ मुसलमान पर्चोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने ही यह गाली-गलौज शुरू की; बादमें आर्यसमाजी लोग भी बदलेमें वही सब करने लगे। पत्र-लेखकोंने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे हैं। उनके कुछ हिस्सोंको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की। उनके कुछ अंशोंकी भाषा तो निहायत घिनौनी है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके मैं इन पृष्ठोंको गन्दा नहीं कर सकता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी

1. देखिए "टिप्पणियाँ", १९-६-१९२४, उपशीर्षक "आग भड़कानेवाला साहित्य"।

दयानन्दके जीवन-चरित्रकी भी एक प्रति मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह अधिकांशमें उस महान् सुधारकका विकृत चित्र है। उनके किये हर काम-पर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस बातकी बड़ी बुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरी बातोंने मुसलमान लेखकों और वक्ताओंका हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे अब आर्यसमाज और आर्यसमाजियोंको और भी ज्यादा गालियाँ देने लगे हैं। एकने हाल ही हुई लाहौरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है, जिसमें आर्य समाजपर ऐसी-ऐसी गालियोंकी बौछार की गई कि जिनको लिखा नही जा सकता। कहनेकी जरूरत नहीं कि ऐसे लेखों और भाषणोंके साथ मेरी कोई हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने आर्यसमाजके बारेमें जो राय प्रकाशित की है, उसके बावजूद मैं आर्य-समाजके संस्थापकका एक नम्र प्रशंसक होनेका दावा करता हूँ। उन्होंने हिन्दू समाज-को भ्रष्ट करनेवाली कितनी ही कुप्रथाओंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने संस्कृत विद्याके पठन-पाठनका शौक बढ़ाया। उन्होंने अन्धविश्वासको ललकारा। उन्होंने अपने शुद्ध आचरणसे अपने समाजके आचरणको ऊँचा उठाया। उन्होंने निर्भयता सिखाई और कितने ही निराश युवकोंमें नई आशाका संचार किया। मैं उनकी राष्ट्र सेवाके अनेक कार्योंसे भी बेखबर नहीं हूँ। आर्यसमाजने कितने ही सच्चे और आत्मत्यागी कार्यकर्त्ता दिये हैं। उसने हिन्दुओंमें स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है, उतना ब्रह्मसमाजको छोड़कर शायद ही किसी और हिन्दू संस्थाने किया हो। कुछ अज्ञानी लोगोंने यहाँतक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजीके विषयमें जो बातें कही, वह इसलिए कि वे मेरी बातोंकी आलोचना किया करते हैं। किन्तु इस आरोपका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने गुरुकुलमें सबको रास्ता दिखानेवाला जो काम किया, उसके महत्त्वको मैं एक बार फिर स्वीकार किये बिना रह जाऊँ। ऐसी हालतमें, जहाँतक मैं एक ओर समाज, 'सत्यार्थप्रकाश', ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें कहा गया अपना एक भी शब्द वापस लेनेमें असमर्थ हूँ, वहीं दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूँ कि मैंने वह आलोचना बिलकुल मित्र-भावसे की है और इस अभिलाषासे की है कि जिन त्रुटियोंकी ओर मैंने समाजका ध्यान दिलाया है, उन त्रुटियोंसे मुक्त होकर वह अधिक सेवाक्षम बन सके। मैं चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम मिलाकर चले, खण्डन-मण्डन वृत्तिको छोड़ दे और अपनी रायपर कायम रहते हुए दूसरे सम्प्रदायवालोंके प्रति उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसकी अपेक्षा वह खुद अपने लिए रखता है। मैं चाहता हूँ कि वह अपने कार्यकर्त्ताओंपर निगाह रखे और ऐसे लेखोंका लिखना बन्द करवा दे जो समाजके नामपर धब्बा लगानेवाले हों; मौजूदा रवैयेको उचित ठहरानेके लिए यह कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है कि इस निन्दा-कार्यकी शुरुआत मुसलमानोंने ही की। मुझे पता नही कि उन्होंने ऐसा किया या नही। पर मैं इतना जरूर जानता हूँ कि अगर उनकी बातोंके जवाबमें वैसी ही बातें न कही जाती तो थककर वे अपने-आप चुप हो जाते। मैंने तो समाजियोंसे शुद्धि तकको छोड़ देनेको नही कहा है। पर मैं उनसे यह प्रार्थना जरूर करूँगा और इसी प्रकार मुसलमानोंसे भी कि वे शुद्धि सम्बन्धी वर्तमान विचारपर फिरसे गौर करें।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे, जिनके बारेमें मेरे पास उक्त पत्र आये हैं, मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रतिपक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी कीर्ति बढ़ाते हैं और न अपने धर्मकी। आर्यसमाजको और समाजियोंको गालियाँ देकर वे न तो अपना कुछ फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी ही खिदमत कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-७-१९२४

१९०. जेलके अनुभव -- १०

कुछ कैदी वार्डर (२)

अदन सोमालीलैंडका एक जवान सिपाही था और महायुद्धके दिनोंमें ब्रिटिश सेनाको छोड़कर चले जानेके अपराधमें उसे दस वर्षकी कड़ी सजा हुई थी। अदन-जेलके अधिकारियोंने उसे बदलकर यहाँ भेज दिया था। हम यरवदा गये तब वह अपनी सजाके चार साल काट चुका था। उसे निरक्षर ही कहना चाहिए। वह 'कुरान' मुश्किलसे पढ़ पाता था, परन्तु उसकी सही-सही नकल नहीं कर पाता था। उर्दू वह ठीक, काफी अच्छी तरह बोल लेता था और उर्दू पढ़नेको उत्सुक भी रहता था। सुपरिंटेंडेंटकी इजाजत लेकर मैं उसे पढ़ाने लगा। परन्तु वर्णमाला ही उसे बहुत मुश्किल लगी और उसने पढ़ना छोड़ दिया। फिर भी अदन था बड़ा समझदार और कुशाग्र बुद्धिका मनुष्य। उसकी सबसे ज्यादा दिलचस्पी धार्मिक बातोंमें थी। वह पक्का मुसलमान था; पाँचों नमाजें नियमपूर्वक पढ़ता, आधी रातकी नमाज भी। वह रमजानके महीनेमें कभी रोजा न चूकता। तसबीह आठों पहर उसके साथ रहती, फुरसत होती तब वह 'कुरान शरीफ' में से आयतें पढ़ता। अकसर मेरे साथ हिन्दुओंमें प्रचलित निराहार उपवासोंपर चर्चा करता। अहिंसाके बारेमें वाद-विवाद करता। वह बहादुर आदमी था। बहुत शिष्ट था परन्तु किसीकी खुशामद या चिरौरी कभी नहीं करता था। मिजाज उसका जरा गरम था, इसलिए अकसर बरदासियों या दूसरे वार्डरोंके साथ लड़ पड़ता। इस प्रकार हमें कभी-कभी उनके झगड़े निपटाने पड़ते। स्वभावसे सिपाही और सही बातको माननेके लिए तैयार होनेके कारण वह ऐसे अवसरोंपर दिया गया फैसला स्वीकार कर लेता था। परन्तु वह अपना पक्ष निर्भीकताके साथ और दलीलें देते हुए पेश कर सकता था। अदन ही सब वार्डरोंमें हमारे पास सबसे ज्यादा रहा। उसके प्रेमकी मुझे हमेशा याद आयेगी। मेरी देखभालमें उसने कोई कसर नहीं रखी। मुझे मेरी खुराक ठीक समयपर नियमित रूपसे मिल जाये इस बारेमें वह बहुत खबरदार रहता। यदि मैं कभी बीमार हो जाऊँ तो वह उदास हो जाता। मेरी जरूरतकी चीजोंका वह हमेशा खयाल रखता। मुझे खुद थोड़ी भी मेहनत करने नहीं देता। छूट जाने या कुछ नहीं तो वापस अदनकी जेल

भेज दिये जानेको वह बहुत उत्सुक था। मैंने उसकी मदद करनेकी खूब कोशिश की। मैंने उसके लिए कई अर्जियाँ[1] तैयार की थीं। सुपरिंटेंडेंटने भी भरसक पूरा प्रयास किया; परन्तु बात अदन-जेलके अधिकारियोंके हाथमें थी। उसे आशा दिलाई गई थी कि वर्ष (१९२३)का अन्त होनेसे पहले उसे छोड़ दिया जायेगा। मैं उम्मीद करता हूँ कि वह इस समय जेलके बाहर होगा। मैंने उसकी जो थोड़ी-बहुत मदद की, उससे तो वह मेरे और भी नजदीक आ गया तथा हम दोनोंके बीचका स्नेह गाढ़ा हो गया। आदनको बादमें हमारे विभागसे दूसरे विभागमें बदल दिया गया; विदाका वह प्रसंग काफी कठिन सिद्ध हुआ था। एक और बातका उल्लेख करना भी मुझे नही भूलना चाहिए। जब मैं जेलमें कातने और पींजनेके कामका संगठन कर रहा था तब अदन एक हाथसे लूला होते हुए भी बड़े परिश्रमके साथ पूनियाँ बनानेमें सहायता करता था। समय पाकर वह इस कलामें प्रवीण हो गया; उसे इसमे रस भी बहुत आता था।

जैसे शाबास खाँकी जगह अदन आया था उसी प्रकार हरकरनकी जगह भीवा आया था। हमें यह जानकर खुशी हुई कि भीवा महाराष्ट्रीय महार अर्थात् अछूत जातिका था। हम जेलमें जितने भी वार्डरोंके संसर्गमें आये, उन सबमें शायद यह भीवा ही सबसे अधिक उद्योगी था। पाठकोंको सुनकर आश्चर्य होगा कि जेल भी इस अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त नहीं रह पायी है। बेचारा भीवा हमारी कोठरियोंमें घुसते हुए बहुत हिचकिचाता था। वह हमारे बर्तनोंको हाथ नही लगाता था। हमने उसे तुरन्त आश्वासन दिया कि अस्पृश्योंके लिए हमारे मनमें किसी भी प्रकारकी घृणा नही है; इतना ही नहीं परन्तु हम इस कलंकको धोनेके लिए भरसक सब-कुछ कर रहे हैं। भाई शंकरलालने तो उसके साथ खास तौरपर दोस्ती कर ली और वह देखते-ही-देखते हमारे साथ पूरी तरह हिलमिल गया। उन्होंने भीवाको अपने साथ इस हदतक घनिष्ठ हो जाने दिया कि वह शंकरलाल द्वारा कठोर शब्द कहे जानेपर अपना रोष प्रकट करता और अन्तमें शंकरलाल उससे माफी तक माँगते। शंकरलालने उसे पढनेको भी राजी किया और कातना भी सिखाया। परिणाम यह हुआ कि बहुत थोड़े समयमें भीवा कातनेमें निपुण हो गया और इस काममें उसे इतना रस आने लगा कि उसने बुनाई सीख लेने और जेलसे छूटनेके बाद इस धन्धेसे ही अपना गुजारा करनेका विचार कर लिया। जेलमें मैंने सुबह सवा चार बजे गरम पानीमें नींबू निचोड़कर पीनेकी आदत डाल ली थी। शंकरलाल चार बजे उठकर मेरे लिए गरम पानी तैयार करने लगे। मैंने उन्हें रोका, तब शंकरलालने चुपकेसे भीवाको यह काम सिखा दिया। कैदी जेलमें जाग तो जल्दी जाते है, परन्तु चार ही बजे वे अपनी चटाई (यही उनका बिस्तर होता है) छोड़कर खड़े हो जाते हों, सो नही होता। परन्तु भीवाने तो शंकरलालके सुझावका तत्काल पालन करना शुरू कर दिया। लेकिन रोज चार बजे भीवाको जगानेका काम तो शंकरलालके ही जिम्मे रहा। जब भीवा चला गया (उसे खास तौरपर सजा कम करके छोड़ दिया गया

१. ये प्राप्त नहीं हैं।

था) तब अदनने इस कामका भार सँभाला। मैंने सोचा था, इतना काम मैं स्वयं कर लूँगा। परन्तु वह मुझे कैसे करने देता? इस प्रकार तड़के ही गरम पानी देनेकी यह परम्परा भाई शंकरलालके छूट जानेके बाद भी चालू रही। वार्ड छोड़कर जानेवाला प्रत्येक पुराना वार्डर नये आये हुए वार्डरको इन सब रहस्योंकी दीक्षा देकर जाता। कहनेकी जरूरत नहीं कि कैदीके दिन-भरके अनिवार्य कामोंमें इस प्रातःकालीन कामका समावेश नहीं होता था और जेलके नियमके अनुसार कैदियोंको वार्डरोंकी जगह मिल जाती है तो वे स्वयं काम करनेके कर्त्तव्यसे मुक्त हो जाते हैं। उन्हें तो आज्ञाएँ ही देना होता है।

परन्तु जैसे प्राणप्रिय मित्रोंसे भी जीवनमें कभी-न-कभी बिछुड़ना होता है वैसे ही एक दिन भीवाने हमसे राम-राम की। शंकरलालकी दी हुई खादीकी टोपियाँ, खादीके कुरते, खादीकी धोतियाँ और एक खादीका खेस लेनेकी उसे परवानगी मिल गई थी। उसने बाहर जाकर खादीके सिवा और कुछ भी न पहननेका वचन दिया था। मैं आशा रखता हूँ कि यह नेक भीवा जहाँ कहीं होगा अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर रहा होगा।

भीवाके बाद ठमू आया। वह भी महाराष्ट्रीय ही था। ठमू सौम्य प्रकृतिका वार्डर था। उसमें बहुत शऊर नहीं था। बताया हुआ काम वह कर देता, परन्तु अपने मनसे किसी कामको कर डालनेमें उसे रुचि नहीं थी। इसलिए उसकी और अदनकी ठीक पटती नहीं थी। परन्तु ठमू डरपोक होनेके कारण अन्तमें हमेशा अदनसे दब जाता था। ठमूकी तो हमारे यहाँ ऐसी मौज थी (मौज तो सभीकी होती थी) कि वह हमसे जुदा होना ही नहीं चाहता था। इसलिए बदली होनेके बजाय वह अदनकी धौंस सहनेको तैयार था। ठमू अदनके आनेके बहुत दिनों बाद आया था। इसलिए हमारे यहाँ अदन 'सीनियर' माना जाता था। 'सीनियर और जूनियर' होनेके ये काल्पनिक विचार जेल-जैसे छोटे-छोटे स्थानोंमें किस प्रकार पैदा हो जाते हैं, यह देखने लायक होता है। यरवदा तो हमारे नजदीक एक दुनिया ही थी या यों कहिए कि पूरी दुनिया। प्रत्येक छोटी-मोटी लड़ाई अथवा छोटे-मोटे झगड़े भी जेलमें एक बड़ी घटना माने जाते हैं और कैदी लोग उसकी चर्चा दिन-भर दिलचस्पीके साथ करते रहते हैं और कभी-कभी यह चर्चा कई दिनोंतक चला करती है। यदि जेल-अधिकारी जेलमें कैदियोंको केवल कैदियोंके ही इस्तेमालमें आनेवाले तथा उन्हींके द्वारा संचालित होनेवाले 'जेल अखबार' निकालनेकी अनुमति दें तो यह निश्चित है कि कोई भी कैदी उसे बिना पढ़े नहीं रहेगा और फिर उसमें खबरें भी बड़ी मजेदार आयेंगी। बढ़िया पकी हुई दालकी खबरें, अच्छी तरह साफ की हुई सब्जियोंकी खबरें, कैदियोंकी आपसी तू-तू, मैं-मैं, इत्यादि चटपटी खबरें और एकाध बार मारपीट और परिणाम-स्वरूप जेल सुपरिंटेंडेंटके सामने होनेवाले 'मुकदमों' के हालचाल इत्यादि गरमागरम खबरें कैदी लोग उतनी ही उत्सुकतासे बाँचेंगे, जितनी उत्सुकतासे बाहरके लोग बड़े-बड़े भोजों अथवा लड़ाइयोंकी खबरें पढ़ते हैं। मैं विधानसभाके अपने उत्साही मित्रोंके सामने यह सुझाव पेश करता हूँ कि यदि वे चाहें तो एक बहुत बढ़िया काम यह कर सकते हैं कि विधानसभामें इस आशयका बिल पेश करें जिसके

अनुसार प्रत्येक जेलके सुपरिंटेंडेंटको यह आदेश दिया जाये कि वे अमलदारोंके कठोर नियन्त्रणमें ही सही, कैदियोंको केवल उनके अपने उपयोगके लिए एक अखबार सम्पादित और प्रकाशित करनेकी इजाजत और सुविधा दें।

खैर, हम फिर ठमूकी बातपर आयें। यद्यपि वह शरीरसे ढीला-ढाला था, फिर भी भलमनसाहतमें वह उससे पहले आये हुए अन्य वार्डरों-जैसा ही था। चरखेको तो उसने ऐसी सुगमतासे सीख लिया जैसे मछली पानीमें तैरने लगती है। एक सप्ताहमें ही वह मुझसे भी अधिक समान सूत कातने लगा। और एक महीनेके भीतर शिष्यने गुरुको बिलकुल ही पछाड़ दिया। यहाँतक कि ठमूके बढ़िया सूतसे मुझे ईर्ष्या होने लगी और ठमूकी प्रगति जिस तेजीसे हो रही थी उसे देखकर मैं समझ गया कि मेरी मन्दगतिके लिए मैं ही दोषी हूँ। मेरी समझमें यह भी आ गया कि साधारण मनुष्य अधिकसे-अधिक एक महीनेमें आसानीसे बहुत बढ़िया सूत कातने लग सकता है। मैंने जिन-जिनको कातना सिखाया वे सब देखते-देखते मुझसे आगे बढ़ गये। भीवाकी तरह ही चरखा ठमूके लिए भी एक सुखद साथी बन गया। उसके मधुर और मन्द संगीतमें वे अपने प्रियजनोंके बिछोहका दुःख भूल जाते थे। बादमें चरखा चलाना ठमूके लिए सुबहका सबसे पहला काम हो गया। वह रोज चार घंटे कातता था।

जब हमें यूरोपीय वार्डमें भेजा गया तब कई परिवर्तन हुए। सबसे पहले वार्डर बदले गये और पहला नम्बर अदनका आया। यह तबादला यद्यपि हम लोगोंको पसन्द नहीं आया परन्तु हमने उसे धीरजके साथ स्वीकार किया। फिर ठमूकी बारी आई। बेचारा तबादलेकी बात सुनते ही रो पड़ा। उसने मुझे अपने पास ही रख लेनेका प्रयत्न करनेको कहा, परन्तु मैं यह कैसे कर सकता था। मैंने सोचा कि यह मेरे क्षेत्रसे बाहरकी बात है। जेल-अधिकारियोंको चाहे जिस कैदीको चाहे जहाँ ले जानेका पूरा हक है। अदन और ठमूके स्थानपर कुन्ती नामक एक गोरखा और गंगप्पा नामक एक कन्नड़ कैदी आया। गुरखा सारी जेलमें 'गोरखा' नामसे ही मशहूर था। वह कम बोलनेवाला था, परन्तु बादमें खूब हिलमिल गया। शुरूमें तो वह अपनी ठीक स्थिति ही नहीं समझ पाया था। शायद उसने सोचा हो कि हम कोई जरा-सा बहाना पाकर उसकी शिकायत कर देंगे और उसे मुसीबतमें डाल देंगे। परन्तु जब उसने देखा कि हमारा ऐसा कोई इरादा नही है, तब वह निकट आ गया। परन्तु थोड़े दिनोंमें ही उसका भी तबादला हो गया। गंगप्पाका थोड़ा-सा वर्णन जेलके पत्र-व्यवहारकी भूमिकाके रूपमें मैं कर चुका हूँ। वह प्रौढ़ अवस्थाका था। जेल-नियमोंका बारीकसे-बारीक पालन और अपने नियत कर्त्तव्यके प्रति उसकी जबरदस्त निष्ठा, इन दो चीजोंने मेरे मनमें उसके प्रति प्रशंसाका भाव उत्पन्न कर दिया था। अधिकारी उसे जो भी काम करनेका हुक्म देते उसे वह दिलोजानसे करता था। जो काम करना उसका फर्ज न हो उन्हें भी वह स्वेच्छापूर्वक अपने सिरपर ले लेता। निठल्ला तो शायद ही कभी बैठता हो। उसने मेरे साथियोंके लिए चपातियाँ बेलना और सेंकना सीख लिया। अपने प्रति उसका प्रेम तो मैं कभी नहीं भूल सकता। गंगप्पाने मेरी जितनी जी-तोड़ सेवा की, उससे अधिक स्वयं

अपनी पत्नी या बहन भी नहीं कर सकती। जब देखो तभी तत्पर। मेरी जरूरतोंका पहलेसे ख्याल रखनेमें ही उसे सुख होता था। मेरी हर चीज झकाझक रहे इस बातका उसे बड़ा ध्यान रहता। मैं बीमार हो जाता तो गंगप्पा ही मेरी परिचर्या सबसे अधिक कुशलताके साथ करता क्योंकि मेरे प्रति वही सबसे अधिक सावधान था। मेरे यूरोपीय वार्डमें पहुँचनेके बाद भाई मंजरअली और याज्ञिक दोनों प्रार्थनामें आकर शरीक हो जाते। मंजरअलीके छूटनेका समय निकट आनेपर उन्हें इलाहाबाद ले जाया गया। भाई इन्दुलालको भक्तिभावकी अपेक्षा तात्विक चिन्तनकी जरूरत अधिक महसूस होती थी। इसलिए उन्होंने प्रार्थनामें शरीक होना बन्द कर दिया। गंगप्पाको ख्याल हुआ कि इन मित्रोंके बिना प्रार्थनामें मुझे अकेलापन महसूस होगा और कदाचित् मुझे उनकी कमी खलेगी। इसलिए जिस दिन मुझे उसने पहले-पहल प्रार्थनामें अकेला बैठे हुए देखा, उसी दिन वह चुपचाप आया और मेरे सामने बैठ गया। कहनेकी जरूरत नहीं कि उसके इस कार्यके पीछे कोमल शिष्टताका जो भाव था वह मुझे अच्छा लगा। उसका यह कार्य बिलकुल स्वेच्छाप्रेरित, विनयपूर्ण और उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। रूढ़ अर्थमें मैं इसे धार्मिक नहीं कहूँगा। यद्यपि मेरी अपनी कल्पनाके अनुसार तो वह वास्तवमें धार्मिक था। अपनी इन प्रार्थनाओंमें मैं किसीको भी निमन्त्रण देनेसे हमेशा हिचकिचाता हूँ, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मेरे खातिर कोई प्रार्थनामें बैठे। अकेले प्रार्थना करनेमें मुझे कभी अकेलापन नहीं लगा। बल्कि ऐसे समय मैं सबसे अधिक ईश्वर-सान्निध्य अनुभव करता हूँ। ऐसे समय कोई आये तो मैं चाहता हूँ कि वह मेरे साथके खातिर नहीं परन्तु सिर्फ इसलिए आये कि वह इस ईश्वर-सान्निध्यके अनुभवमें भाग ले सके। इसलिए वार्डरोंको प्रार्थनामें शरीक होनेका निमन्त्रण देनेमें मुझे खास तौरपर हिचकिचाहट होती थी। मुझे लगता था कि कहीं ऐसा न हो कि वे मेरे बुलानेके कारण केवल बाहरी शिष्टाचारके विचारसे प्रार्थनामें शामिल हो जायें। मैं तो उन्हें ईश्वर-प्रार्थनामें शरीक होनेकी स्वाभाविक उमंग आनेपर ही प्रार्थनामें सम्मिलित होते देखना चाहूँगा। गंगप्पाने जो मेरा साथ दिया उसमें मैं मानता हूँ कि कुछ तो मेरी एकाकी स्थितिके प्रति दयाभाव और कुछ आधे घंटेके पवित्र वातावरणमें भाग लेनेकी उसकी अपनी इच्छा — दोनों बातोंका मिश्रण था। प्रार्थनामें मैं जो-कुछ गाता था उन सबमें 'राम-नाम' को छोड़कर वह एक शब्द भी नहीं समझता था। गंगप्पाके शरीक होनेके बाद अण्णप्पा नामक एक और कन्नड़ वार्डर भी प्रार्थनामें आने लगा और बादमें भाई अब्दुल गनी भी शरीक होनेको प्रेरित हुए। मेरा ख्याल है कि भाई अब्दुल गनी, अनजाने ही क्यों न हो, गंगप्पाके सरल भावसे आ जानेके उदाहरणसे प्रभावित हुए थे।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि कैदी वार्डरों सम्बन्धी मेरा जेलका सारा ही अनुभव सुखद संस्मरणोंसे भरा हुआ है। मुझे जैसे साथी या परिचारक मिले उनसे अधिक निष्ठावान साथी या अधिक वफादार परिचारक मिलनेकी मैं अपेक्षा नहीं कर सकता। पैसा लेकर काम करनेवाले व्यक्तिकी सेवा इनके मुकाबिलेमें हेय है और मित्रोंकी सेवा बहुत हुआ तो उनके बराबर बैठ सकती थी। दुर्दैववश जेल हो जानेके

कारण ऐसे मनुष्योंको समाज अपराधी अथवा अस्पृश्य मानकर सदा दुत्कारता रहे यह कैसी विडम्बना है? पिछले प्रकरणमें[1] उद्धृत प्रधान जेलरकी इस बातसे मैं बिल्कुल सहमत हूँ कि जेलोंमें ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जो बाहर रहनेवालोंसे कहीं अधिक अच्छे हैं। पाठक अब समझ सकेंगे कि जब मैंने अपनी रिहाईकी खबर सुनी, तब मुझे दुःख क्यों हुआ। मुझे लगा कि मुझे छोड़ दिया गया और जिन सब साथियोंने मुझपर अपने प्रेमकी वर्षा की और मेरी रायके अनुसार जिन्हें जेलोंमें बन्द करके रखनेका सरकारके पास कोई कारण नहीं रह गया है, वे तो अभीतक जेलोंमें ही हैं।

एक बात और कहकर गंगप्पासे मैं दुःखपूर्ण अन्तःकरणसे विदाई लूँगा। गंगप्पा अपनी त्रुटियाँ जानता था। वह कातता नहीं था; वह कहता था कि मुझसे यह नहीं होगा क्योंकि मेरी अंगुलियोंमें वह वस्फ नहीं है। परन्तु वह कताईके कमरेकी पूरी व्यवस्था रखता था और मेरी कपासको ओटकर धुनाईके योग्य बनाकर रखता था।

अपने जेल-जीवनके अनेक सुखद संस्मरणोंमें मैं जानता हूँ कि कैदी-वार्डरोंके सहवासके संस्मरण मेरे मनपर शायद हमेशाके लिए बने रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-७-१९२४

१९१. कताईका प्रस्ताव

कांग्रेसका कताईवाला[2] प्रस्ताव मेरी रायमें कांग्रेसके तमाम प्रस्तावोंसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर कुछ लोगोंमें उसकी हँसी उड़ानेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। कांग्रेसके विभिन्न संगठनोंके सदस्य एक ही महीनेमें इस उपहासके अनौचित्यको सिद्ध कर सकते हैं। अगर खादीके सिर्फ आर्थिक महत्त्वको स्वीकार कर लें तो तजुर्बेसे यह साबित हो जायेगा कि आर्थिक क्रान्ति लानेके लिए इस प्रस्तावकी जरूरत थी। कांग्रेसके सर्वाधिक लोकप्रिय कार्यक्रमके निमित्त कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंसे सिर्फ आधा घंटा काम करनेकी अपेक्षा रखना कुछ अधिक नहीं है।

जिन लोगोंने इस प्रस्तावके पक्षमें राय दी थी, इसपर उनका अमल करना तो मर्यादाकी दृष्टिसे कर्त्तव्य ही है। मेरी रायमें उस प्रस्तावमें दण्डकी व्यवस्था रखना उचित ही था। किसी संस्थाके सदस्य यदि स्वयं अपने ऊपर कुछ बन्धन लगायें तो उनके तोड़े जानेकी दशामें दण्डकी व्यवस्था करनेका अधिकार उस संस्थाको जरूर है। पर चूँकि अब दण्ड-विधान उस प्रस्तावमें से हटा दिया गया है इसलिए मैं आशा करता हूँ कि उसपर एतराज करनेवाले लोग भी प्रस्तावके अनुसार चलेंगे।

इससे बहुत लाभ होनेकी आशा है। कांग्रेस संगठनोंके सभी प्रतिनिधियोंके लिए सूत कातना कर्त्तव्य-रूप है। देशके बीसों प्रान्तोंमें प्रान्तीय, जिला, तहसील और

१. देखिए पृष्ठ २९९।
२. देखिए "अग्नि-परीक्षा", १९-६-१९२४।

ग्रामसंगठन हैं या होने चाहिए। उनमें से हरएकमें कमसे-कम पाँच सौ ऐसे प्रतिनिधि होते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ प्रान्तोंमें प्रतिनिधियोंकी संख्या कई हजार तक है। इनकी कमसे-कम तादाद मानें तो ये सदस्य १० हजारसे ऊपर हो जाते हैं। १० नम्बरके २००० गज सूतका मतलब है लगभग १० तोला। इस हिसाबसे हर महीने दस हजार सदस्य कोई २५०० पौंड सूत भेजते रहेंगे अर्थात् प्रतिनिधियों द्वारा भेजे गये इस सूतसे पाँच हजार गरीब देशवासियोंको एक-एक बंडीका कपड़ा मिल जायेगा। दूसरी बातोंको छोड़ दें तो भी क्या हमारा गरीबोंके लिए इतना-सा श्रम कर लेना उचित नहीं है? जरा सोचिए — इस बातका गरीब लोगोंपर क्या असर पड़ेगा? जब उनको यह मालूम होगा कि हमारे लिए कांग्रेसके लोग इतना काम कर रहे हैं, तब उनके जीवनमें नई आशाका संचार हुए बिना न रहेगा।

एक दूसरे दृष्टिकोणसे भी इसपर विचार कीजिए। ये दस हजार प्रतिनिधि सिर्फ खुद ही सूत कातकर खामोश नही हो रहेंगे। उनके उत्साहका संचार उन लोगोंमें भी जरूर होगा, जिनके वे प्रतिनिधि हैं और इस तरह खादी, जो आज कम होती चली जा रही है, दूनी ताकतके साथ चमक उठेगी।

कार्यकर्त्ता यदि समझ-बूझवाले स्त्री-पुरुष होंगे तो वे कताईकी कला सीख लेंगे और अपने पड़ोसियोंको संगठित करके हाथ-कताईका प्रचार करेंगे।

फिर आधा घंटा और १० तोला, यह तो कमसे-कम है। सच पूछिए तो आध घंटेमें १०० गज सूत बड़ी आसानीसे काता जा सकता है। इसलिए हर शख्स कमसे-कम तीन हजार गज सूत भेज सकता है और आधा घंटा तो उन कार्यकर्त्ताओंके लिए है जो बहुतेरे कामोंमें व्यस्त रहते हैं। बहुतसे लोग १ घंटा कात सकेंगे। मैं ऐसे कितने ही लोगोंको जानता हूँ जो रोज दो घंटा कातते हैं। इसलिए मेरे बताये हिसाबसे कमसे-कम दूना अर्थात् ५ हजार गज सूत मिलना चाहिए।

मेरी समझमें अभी किसीने इस हाथ-कताईके अर्थको नहीं समझा है। राष्ट्रीय कार्यक्रमको स्वावलम्बी बनाना ही उसका उद्देश्य है। इसके कुछ आँकड़े लीजिए। मैंने दर और कामका औसत कमसे-कम लगाया है।

		रु०आ०पा०
एक मन ओटाई	१२ घंटे	०–८–०
एक मन कपासमें से १३ पौंड रुईकी धुनाई	४० घंटे	२–८–०
२७५ गज फी घंटेके हिसाबसे १२½ पौंडकी १० नम्बर सूतकी कताई	४०० घंटे	२–६–०
	रु०	५–६–०

इस तरह एक आदमी ४५२ घंटेमें (४५० ही मान लीजिए) ५–६–० या (कहिए ५ रु०) कमाता है। ∴ ४५० आदमी एक घंटा काम करके ५ रु० पैदा करेंगे। ∴ ४५० आदमी ३० दिन १ घंटा रोज काम करके १५० रु० पैदा करेंगे। इस तरह

४५० आदमी रोज एक घंटा कातनेमें लगायें तो फी स्वयंसेवक ३० रु० महीनेके हिसावसे कमसे-कम ५ स्वयंसेवकोंकी गुजरके लायक सूत काता जा सकता है।

और ५ स्वयंसेवक ४५० पुरुषों और स्त्रियोंके नीचे कांग्रेसका पूरा काम संगठित कर सकते है। कार्यक्रमके किसी एक अंगको सफल वनानेके लिए अगर बहुतसे लोग सम्मिलित हो जाते है तो चाहे एक आदमीकी मेहनतका कुछ भी अर्थ न निकलता हो, फिर भी समष्टि रूपमें उसकी सम्भावनाएँ अपरिमित होती है।

सच्ची भावनासे प्रेरित और उत्साही कार्यकर्ता तो इतना काम कर दिखा सकते है कि दाँतों तले अँगुली दवानी पड़े। इस तरह हिसाव करनेके लिए मै तीन सुझाव रखता हूँ:

१. यदि किसी गरीव जिलेमें कताई प्रधानतः मजदूरीसे कराई जाये तो उसकी गरीवी दूर हो सकती है।

२. यदि किसी सम्पन्न जिलेमें कताई मुख्यतः स्वैच्छिक हो तो उससे तमाम आवश्यक स्वयंसेवकोंकी गुजर हो सकती है।

३. यदि पढ़ाईवाले दिनोंमें हर पाठशालामें कमसे-कम ३ घंटे कताई सम्वन्धी सभी काम कराये जायें तो हर ग्राम-पाठशाला कमसे-कम अपना आधा खर्च उसीसे निकाल सकती है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यदि खादी डाकके टिकटोंकी तरह आम बिक्रीकी चीज न वन जाये तो यह फल प्राप्त नही हो सकता। ऐसे देशमें, जहाँ कि जरूरतसे ज्यादा कपास पैदा होती हो, जहांके लोग कातते रहे है, जिसके पास उसके लिए आवश्यक सरंजाम मौजूद हो, जहां बहुत वड़ी तादादमें लोग भूखसे पीड़ित रहते हों और जहां केवल कामके संगठनकी ही आवश्यकता शेष है, वहाँ वैसा न करना घोर अपराध है।

यदि इस कामको सुचारु रूपसे और किफायतके साथ चलाना हो तो प्रान्तीय मन्त्रियोंको तथा दूसरे लोगोंको खादी वोर्डकी हिदायतोंपर पूरी तरह अमल करना होगा। प्रधान कार्यालयोंमें एक दुहरा रजिस्टर रखा जाये जिसमें यथाक्रम उन तमाम सदस्योंके नाम दर्ज रहें जिनके लिए कातना लाजिमी है। तमाम सूतपर गजकी तादाद, वजन और कातनेवालेका नाम तथा अनुक्रम नम्बर लिखा रहे। प्रान्तीय समितियोंको लोगोंको देनेके लिए काफी कपास एकत्र करनी होगी। धुनाईकी भी व्यवस्था करनी होगी। इस तरह यदि सूत पूरी तादादमें पहले ही महीनेसे भेजना हो, जैसा कि उचित है, तो वक्त नही गँवाना चाहिए।

जो लोग कातना विलकुल न जानते हों वे यदि सिर्फ आधा ही घंटा रोज कातते रहेंगे तो तरक्की नहीं कर पायेंगे। शुरूके कुछ दिनोमें जबतक कि अँगुलियों-को रफ्त न हो जाये, उन्हें रोज कुछ घंटोंतक कातना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-७-१९२४

१९२. एकमात्र कार्यक्रम

मित्रोंने मुझे एक ही ऐसा व्यापक कार्यक्रम सुझानेको कहा है जिसमें राजे-महाराजे, अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी, उदारदलवाले, स्वतन्त्र पक्षवाले, वकालत करनेवाले वकील, ऐंग्लो-इंडियन और दूसरे सभी विला पशोपेशके शामिल हो सकें। मुझे इस शर्तके साथ यह कार्यक्रम सुझानेको कहा गया है कि स्वराज्य पानेके लिए उसे पुरअसर और शीघ्र फलदायी होना चाहिए। सबसे कारगर और तेजीका कार्यक्रम जो मैं सुझा सकता हूँ, वह है — खादी अपनाना, उसको संगठित करना, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य बढ़ाना और हिन्दुओंका अपने बीचसे अस्पृश्यता-निवारण करना। मेरा यह पक्का विश्वास है — जो बदल नहीं सकता — कि यदि हम इन तीन बातोंको हासिल कर लें तो हम जरा-सी भी मुश्किलके बिना स्वराज्य स्थापित कर सकेंगे और मेरा यह भी विश्वास है कि यदि सभी पक्ष दिलोजानसे इस कार्यक्रममें जुट जायें तो यह एक ही वर्षमें मिल सकता है। खादीकी सफलताके मानी होंगे विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार। जितना कपड़ा हिन्दुस्तानको चाहिए उतना कपड़ा तैयार करना हिन्दुस्तानका हक है और फर्ज भी। इसके लिए उसके पास साधन भी मौजूद हैं। विदेशी कपड़ेका बहिष्कार अंग्रेजोंके मनको अपने-आप पवित्र कर देगा और हिन्दुस्तानी चीजोंको हिन्दुस्तानियोंकी दृष्टिसे देखनेमें जो बहुत बड़ी बाधा उन्हें मालूम होती है वह भी दूर हो जायेगी।

इसलिए अगर लगभग पूरा देश इस त्रिसूत्री कार्यक्रमको अख्तियार करनेके लिए तैयार है तो मैं एक सालके लिए असहयोगके कार्यक्रम और सविनय अवज्ञाको मुल्तवी रखनेकी राय देनेके लिए तैयार हूँ। मैं एक साल इसलिए कहता हूँ कि यदि ईमानदारीसे इस कार्यक्रमके अनुसार काम किया जाये तो इसी अरसेमें विदेशी कपड़ेका लगभग पूर्ण बहिष्कार हुए बिना नही रहेगा।

मुझे यह कहनेकी जरूरत नहीं कि स्वराज्यवादियोंका इस कार्यमें सहयोग देना ही इस बातके लिए काफी नहीं है कि असहयोग या सविनय अवज्ञाकी तैयारियोंको एक साल तकके लिए मुल्तवी कर दिया जाये। वे तो राजी ही हैं। कांग्रेसके दूसरे सदस्योंकी तरह वे भी सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रमके लिए वचनबद्ध हैं। जबतक सरकारका हृदय-परिवर्तन नहीं होता तबतक असहयोगकी जरूरत है और बिना इस परिवर्तनके जो लोग कांग्रेसके बाहर हैं वे खुले तौरपर सरगर्मीसे इस काममें हाथ नहीं बँटायेंगे।

मुझे भय है कि अभी वह समय नहीं आया है कि सरकार या वे लोग जिनकी इज्जत या ओहदे सरकारसे मिलनेवाले संरक्षणपर आधारित हैं, इस प्रकार लोगोंके साथ सच्चे दिलसे सहयोग करनेको तैयार हो जायें।

मैं यह भी जानता हूँ कि लोगोंकी एक बहुत बड़ी तादाद अबतक शुद्ध खादीके कार्यक्रमकी कायल नहीं हुई है। वे चरखेकी महान् शक्तिपर विश्वास ही नहीं करते। वे हिन्दुस्तानी मिलोंके खिलाफ कार्रवाई करनेकी साजिशका मुझपर सन्देह करते हैं।

चरखेके सन्देशसे क्या मतलब है इसे अपने मनमें उतारनेकी तकलीफ थोड़े ही लोग उठाते हैं।

यदि चरखेको माननेवालोंकी चरखेके प्रति सच्ची निष्ठा हो तो मुझे जरा भी शक नहीं कि देश चरखेको बहुत ही जल्दी मानने लगेगा। लेकिन मेरे कुछ मित्र मुझसे कहते हैं कि मेरा निदान सही नहीं है। वे कहते हैं कि यदि मैं असहयोग और सविनय अवज्ञाको छोड़ दूं तो सबके-सब चरखेको अपना लेंगे और मेरा यह सोचना कि सरकार हिन्दू और मुसलमानोंको लड़ाना चाहती है, एक हिमाकत है। मैं तो चाहता हूँ कि मेरा शक गलत निकले।

मिलोंके बारेमें मैं फिर एक बार अपने विचारोंका खुलासा कर दूं। मैं उनका दुश्मन नहीं हूँ। मैं मानता हूँ कि हमारे जीवनमें अभी कुछ समय तक उनकी उपयोगिता है। मिलोंकी मददके बिना विदेशी कपड़ेका बहिष्कार शायद जल्दी सफल न हो सकेगा। लेकिन यदि वे इसमें सहायता करना चाहती हैं तो उन्हें सिर्फ शेयर होल्डरों और एजेन्टोंके लाभके लिए ही नहीं चलाया जाना चाहिए, बल्कि समूचे देशके हितको दृष्टिमें रखकर। फिर भी हमारे कार्यक्रमसे तो मिलोंको अलग ही रखना पड़ेगा; क्योंकि खादीको अपनी स्थिति दृढ़ बनानी है। सात लाख गाँवोंमें से अभी एक गाँवतक भी खादीका सन्देश नहीं पहुँचाया जा सका है। अभी हिन्दुस्तानका ⅚ से भी कुछ अधिक भाग मिलोंके लिए खुला पड़ा है। यदि खादीको स्थायी जगह देनी है तो कांग्रेसके लोगोंको मिलोंके कपड़े छोड़कर खादीका ही इस्तेमाल करना चाहिए और उसे लोगोंमें फैलाना चाहिए। देशभक्त मिल-मालिक मेरे प्रस्तावकी उपयोगिता, आवश्यकता और न्यायानुकूलता एक ही नजरमें समझ सकते हैं। सचमुच वे अपनेको नुकसान पहुँचाये बिना ही खादीकी सहायता कर सकते हैं। यदि ऐसा समय आये जब सारा हिन्दुस्तान खादीको स्वीकार कर ले तब उन्हें भी राष्ट्रके साथ आनन्द मनाना चाहिए और उनको अपनी पूंजी और मशीनोंकी कोई और उपयोगिता सूझ ही जायेगी, जैसे कि लंकाशायरके मिलमालिकोंको भी किसी दिन करना पड़ेगा और करना भी चाहिए। आग्रही मित्रोंके सन्तोषके लिए मैंने एक व्यापक कार्यक्रमकी रूपरेखा तैयार की है। लेकिन मैं कार्यकर्त्ताओंको सावधान करता हूँ कि वे अपने और अपने पड़ोसीके कातनेके कामको अपना आजका काम मानें और उस ओर से अपना ध्यान जरा भी न हटने दें। यदि सभी लोग आज इसको माननेके लिए तैयार न भी हों तो उनकी कताई और निष्ठाके फलस्वरूप वह दिन जल्दी आ जायेगा और वह आयेगा जरूर। किस दिन आयेगा इसका दारमदार तो उन लोगोंपर है जिन्हें उसमें जीवन्त निष्ठा है और जिन्होंने भारीसे-भारी मुश्किलोंके बीच भी अपने आचरणके द्वारा उसे सिद्ध कर दिखाया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-७-१९२४

१९३. पत्र : वा० गो० देसाईको

आषाढ़ सुदी ८ [१० जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

अभयचन्दभाईके बारेमें क्या लिखूँ, इसी विचारमें बहुत-सा वक्त निकल गया। मेरी समझमें उनसे हिसाब-किताब रखने अथवा सूत तैयार करवानेका काम कराया जा सकता है। मेरी प्रवृत्तियोंसे तो आप परिचित हैं ही, इसलिए आप ही [उनके लिए उपयुक्त काम] सुझायें। यदि मैं आपको अपनी कांग्रेसके बाहरकी प्रवृत्तियोंका मैनेजर नियुक्त करूँ तो आप क्या करेंगे? आपने जिन दो लेखोंके बारेमें लिखा है उनमें से मुझे एक "स्वराज्यमें शिमला" मिल गया है। दूसरा शायद स्वामीके[2] पास हो; उनसे दर्याफ्त करूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१४) से।
सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१९४. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ़ सुदी ९, [११ जुलाई, १९२४][3]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला और भाई शंकरका भी। तुम्हारी तन्दुरुस्तीके बारेमें मैं तो निश्चिन्त हो गया था। अब तो क्या सलाह दूँ? तुम मेरी निगाहके सामने रहो तो मुझे कुछ उपाय सूझे भी, पर वहाँकी जलवायु यहाँ कहाँ है? मेरी इच्छा तो यह है कि तुम बरसात खतम होनेके बाद भी लम्बे समयतक हजीरामें रहो। जलवायु परिवर्तन ही सबसे अच्छा रास्ता है।

इस बीच तुम इतना तो करो ही। दालें कम, चटनी बिल्कुल नहीं और सब्जी उबली हुई लो तथा सन्तरे या हरे अंगूर जितने खा सको उतने खाओ। एपो-

१. "स्वराज्यमें शिमला" शीर्षक लेख जिसका इस पत्रमें उल्लेख है, ११-९-१९२४ के यंग इंडियामें छपा था। आषाढ़ सुदी ८, १० जुलाई, १९२४ को थी।

२. स्वामी आनन्दानन्द।

३. इस खण्डमें गांधीजी द्वारा गंगाबहनको भेजे गये पहले पत्रों और इस पत्रमें दिये गये भोजन आदिके निर्देशोंसे पता चलता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। इस वर्षमें आषाढ़ सुदी ९, ११ जुलाई को थी।

लिनारिस-नामक पानी बोतलोंमें आता है, एक-दो बोतल रोज पियो। जब प्यास लगे उसीको पियो। दवा लेना बन्द कर दो और दस्त न आता हो तो, हाजत हो चाहे न हो, पिचकारी अवश्य लो। पिचकारीका पानी गुनगुना होना चाहिए और उसमें आधा चम्मच बोरिक ऐसिड डालना चाहिए। यदि इससे पेट साफ न हो तो इसमें दूसरे दिन एक चम्मच अरंडीका तेल और तारपीनके तेलकी दस बूंदें डाल लेनी चाहिए। इस पानीमें साफ साबुन भी घोल लेना चाहिए।

मुझे साफ मालूम होता है कि तुम्हारा शरीर दवासे सचमुच बिगड़ता ही है। इसलिए जलवायु-परिवर्तन और पिचकारी, इन दोनोंसे सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

मैंने तुम्हारे पिछले पत्र और कार्डका उत्तर उसी दिन दे दिया था। वह तुम्हें अबतक मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५४८) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१९५. भाषण : गुजरात कांग्रेस कमेटीमें[1]

अहमदाबाद
११ जुलाई, १९२४

. . . महात्माजीने बैठकमें भाषण देते हुए श्रोताओंको १९२० में अहमदाबादमें हुए चौथे गुजरात राजनीतिक परिषद्की[2] याद दिलाई। उस समय गुजरातने कलकत्ता कांग्रेसके विशेष अधिवेशनसे भी पहले असहयोगकी सर्वप्रथम घोषणा की थी। महात्माजीने जोर देकर कहा कि उस समय मैं जैसा दृढ़ आशावादी था, देशमें प्रकट होनेवाले निराशाके लक्षणोंके बावजूद, आज भी वैसा ही आशावादी बना हुआ हूँ। गुजरातको सदा कांग्रेसके आगे रहना चाहिए। उन्होंने आगे कहा :

हमारे प्रतिनिधि अ० भा० कां० क० के आदेशके अनुसार केवल आधा घंटा चरखा चलाकर २,००० गज ही सूत न कातें, बल्कि इसके स्थानपर एक घंटा चरखा चलाकर ५,००० गज सूत कातें ताकि दूसरे प्रान्तोंको प्रोत्साहन मिल सके और उनके सम्मुख एक नजीर भी रखी जा सके। अब जोरदार तकरीरोंका समय

१. गुजरात कांग्रेस कमेटीकी यह बैठक ११ जुलाईको सायंकाल ३ बजे हुई थी। कार्य-सूचीमें अन्य विषयोंके साथ गुजरातका भावी कार्यक्रम, अ० भा० कां० क० के प्रस्तावोंपर की जानेवाली कार्रवाई तथा आगामी कांग्रेसके अध्यक्षका चुनाव — ये विषय भी शामिल थे।

२. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २३७-३९।

नहीं है। आप कताईके जरिये चरखेका सन्देश पास-पड़ोसके लोगों तथा मित्रोंतक पहुँचायें। मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसे भी मित्र हैं जो इस कार्यक्रमको पूरा करनेकी गुजरातकी क्षमताके बारेमें निराशावादी हैं। ईश्वरपर मेरा जो अटल भरोसा है उसके बाद गुजरात ही मेरी आशाओंका केन्द्र है। इसलिए गुजरात अपनेको अवसरके योग्य सिद्ध करे और इन मित्रोंके निराशावाद तथा अविश्वासका करारा जवाब दे। यदि हम प्रतिदिन एकाग्र होकर आधा घंटा भी अपनी शक्ति कताईमें नहीं लगाते तो मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि हम अहिंसासे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। आप विश्वास रखें कि हमें कौंसिलोंसे स्वराज्य नहीं मिलेगा। बाहर रचनात्मक कार्य किये बिना कौंसिलोंसे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। रचनात्मक कार्यका अन्त स्वराज्यके अन्तका सूचक होगा।

आगामी बेलगाँव कांग्रेसके अध्यक्षपदके बारेमें बोलते हुए महात्माजीने कहा कि सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे कांग्रेस दलमें फूट पड़ गई है और लोग अन्ध श्रद्धावश विश्वास करते हैं कि एक मैं ही इस फूटको दूर कर सकता हूँ। मैं सदस्योंको सूचित करता हूँ कि श्रीमती सरोजिनी नायडू एक या दो दिनमें जहाजसे बम्बई लौट रही हैं। "बॉम्बे क्रॉनिकल" ने इस वर्ष कांग्रेसके अध्यक्ष पदके लिए उन्हींका नाम प्रस्तावित किया है और मैं उससे सहमत हूँ।

मैं चाहता हूँ. . . कि उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें जो उत्कृष्ट सेवा की है[1] उसको ध्यानमें रखते हुए उनका उपयुक्त स्वागत किया जाये। मैं जानता हूँ कि उनमें प्रत्येक व्यक्तिको सन्तोष देनेकी क्षमता नहीं है, फिर भी मैं उनका नाम इस सर्वोच्च सम्मानके लिए प्रस्तावित करता हूँ। देश उनका ऊँचेसे-ऊँचा यही सम्मान कर सकता है। मेरे प्रस्तावका कारण यह है कि महिला होकर भी उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें जो काम कर दिखाया है उसे कोई पुरुष कदापि नहीं कर सकता था। इसके सिवा वे हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अग्रदूत भी हैं। यदि आप किसी मुसलमानको अपना अध्यक्ष बनाना चाहते हैं तो डा० अन्सारी इस सम्मानके योग्य दूसरे व्यक्ति हैं।

यदि आप मेरा नाम रखना चाहते ही हैं तो आप उसे सबसे अन्तमें रखें। मेरे सिरपर बहुतसे उत्तरदायित्वोंका भार है, इसलिए यदि मैं उनमें से कुछसे मुक्त हो सकूँ तो मुझे प्रसन्नता होगी। मेरे सिरपर उत्तरदायित्व इतने अधिक हैं कि मैं आगे बढ़कर कोई नयी जिम्मेदारी लेते हुए डरता हूँ।

अध्यक्षके निर्वाचनके सम्बन्धमें प्रान्तीय कमेटियोंपर आम हवाका असर नहीं पड़ना चाहिए। यद्यपि मैंने अभीतक इस सम्बन्धमें कोई निर्णय [नहीं] किया है, फिर भी मुझे आशा है कि मैं अन्तिम चुनाव होनेसे पहले निर्णय कर लूँगा।

भाषण समाप्त होनेके बाद महात्माजीने सदस्योंसे कहा कि यदि वे कुछ प्रश्न पूछना चाहें तो पूछें।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४३६-३७

महात्माजीने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा कि कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके काते हुए सूतसे बुनी खादीका जनताके मनोभावोंपर इतना असर पड़ेगा, जितना किसी अन्य बातका नहीं पड़ सकता।

एक दूसरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा कि जो लोग 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कार्यक्रमपर अमल करना चाहते हैं वे सबसे पहले इस बातकी खातरी कर लें कि वे सब लोग इस सम्बन्धमें एकमत हो गये हैं। यदि इसमें सफलता नहीं मिलती तो उन्हें कांग्रेस संगठनके बाहर रहकर इसपर अमल करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-७-१९२४

१९६. पत्र : वसुमती पण्डितको

साबरमती

आषाढ़ सुदी ११ [१२ जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा कार्ड मिला। बरसात न होनेके कारण बहुत कष्ट हो रहा है, पानी बरसनेके लक्षण दिखाई देते हैं; परन्तु बरसता नहीं है। नदीमें पानी चढ़ आया है; ऐसा लगता है कि ऊपर बारिश हुई है। राधा अभी अशक्त है। पेरीन बहन और नरगिस बहन यहाँ आई थीं। वे जमना बहनके साथ वापस [बम्बई] चली गई हैं। अब जो बहन सेवासदनमें व्यवस्थापिका थीं वही यहाँ है। तुम जितने दिन वहाँ रहना चाहो उतने दिन रहो। मुझे उम्मीद है कि जिस पत्रमें[2] मैंने कुछ हिदायतें लिखी थीं वह तुम्हें मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन,

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४९) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१. डाकखानेकी मुहरमें तारीख १३, जुलाई १९२४ है।
२. देखिए "पत्र: वसुमती पण्डितको", ११-७-१९२४।

१९७. जब्र या संयम?

एक मित्रने बहुत ही कठिन प्रश्न उठाया है। वे कहते हैं:

"यदि जबरदस्ती किसी बातका सुधार करना अहिंसा-नीतिके विपरीत हो तो कानूनके द्वारा किसीसे शराब छुड़वाना भी जबरदस्ती मानी जानी चाहिए।"

इसमें थोड़ा भ्रम है। उक्त मित्रका खयाल यह मालूम होता है कि हर कानून जबरदस्तीका सूचक है; परन्तु हर कानून बलात्कारका सूचक नहीं है। स्वार्थकी सिद्धिके निमित्त और किसीको कष्ट पहुँचानेके उद्देश्यसे दुःख देना हिंसा है। इसके खिलाफ यदि किसीको उसके सुखके लिए कष्ट देनेका अवसर उपस्थित हो तो स्थिरचित्तसे और निःस्वार्थ भावसे ऐसा करना अहिंसा हो सकती है। मैं चोरको चोरीके भयसे बचने अर्थात् स्वार्थके लिए सजा दूँ तो यह हिंसा है। शल्य चिकित्सक बीमारको उसके सुखके लिए नश्तर लगाकर दुःख पहुँचाता है, किन्तु यह अहिंसा है। इस दृष्टिसे चोरको पकड़कर उसे दुःख देनेके लिए नहीं बल्कि उसे सुधारनेके उद्देश्यसे सुधार-गृहमें रखना और उसके प्रति दयाभाव दिखाकर उसके लिए ऐसा वातावरण मुहैया करना कि वह सुधर जाये, बलात्कार अथवा हिंसा नहीं है। बल्कि यह तो समाजका या शासनकर्त्ताका संयम है। ऐसा शासनकर्त्ता चोरको अभियोगके भयसे बचा लेता है, यह उसका विशेष उपकार है। इसी तरह शराबियोंको कोड़े लगानेका कानून हिंसा है; परन्तु कानूनके द्वारा शराबकी दूकानोंको बन्द करके शराब पीनेवालोंकी आँखोंके सामनेसे प्रलोभन हटा लेना, संयम और अहिंसा [का पाठ पढ़ाना] है। इसमें शुद्ध प्रेमके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसी तरह यदि मैं धमकी देकर किसीसे विदेशी कपड़ा छुड़वाऊँ तो यह बलात्कार है? परन्तु कानून बनाकर विदेशी कपड़ेका आयात रोकना संयम है। इसमें भी शुद्ध प्रेमके सिवा और कुछ नहीं है। परन्तु विदेशी कपड़े पहननेवालोंको कानूनके द्वारा सजा देना बल-प्रयोग कहा जायेगा। यह समाजका रोष हुआ।

इससे यह प्रकट होता है कि हर कानून बलात्कारका चिन्ह नहीं है। हाँ, आधुनिक कानूनोंमें बलात्कार होता है; क्योंकि उनको बनानेवालेका हेतु भय उत्पन्न करके उसके द्वारा समाजको गुनहगारोंसे बचाना होता है। उनका हेतु गुनहगारका सुधार करना नहीं होता।

अब सिर्फ एक प्रश्न रह जाता है। सुधार जबरन भी होते देखे जाते हैं। चोरीकी आदत ठोंक-पीटकर छुड़ाई जाती है। बहुतसे लोग कहते हैं और मानते हैं कि मारपीटसे बहुतेरे बच्चे सुधरे हैं। हम ऐसी धारणाके ही कारण आज संसारमें पापोंका पुंज बढ़ता हुआ देखते हैं। बलात्कारसे मनुष्यकी आत्माका हनन होता है और उसका असर केवल हन्तापर ही नहीं, बल्कि उसकी सन्तानपर और समूचे वातावरणपर भी पड़ता है। बलात्कारके तमाम परिणामोंकी, और बहुत लम्बे काल

तकके परिणामोंकी, जाँच की जानी चाहिए। बलात्कार दीर्घकालसे चला आता है। फिर भी हमने जिन-जिन दोषोंकी निवृत्तिके लिए इसका उपयोग किया है वे दोष निर्मूल हुए दिखाई नहीं देते। पहले चोरी छुड़ानेके लिए बहुत कड़ी सजाएँ दी जाती थीं। तमाम अवलोकन-शास्त्रियोंका यह मत है कि उससे चोरियाँ कम नहीं हुई हैं। ज्यों-ज्यों सजामें दयाभाव शामिल होता गया त्यों-त्यों चोरी कम होती गई। गुनाहकी सजाएँ देनेके बजाय गुनाह करनेके कारणोंको खोजकर निर्मूल करनेसे वे कम होते हैं।

परन्तु हिंसाजनित हानियोंका सबसे बड़ा सबूत यह है कि जहाँ हिंसासे सुधार करनेका रिवाज पड़ जाता है वहाँ लोग मंद और जड़ बन जाते हैं और हर बातमें सजासे ही काम लेनेका आलस्य-भरा और असभ्यतापूर्ण उपाय ही अपनाया जाता है। इससे मनुष्य धीरज और प्रयत्न — अपने इन दोनों कीमती गुणोंको खो बैठता है। अतः चाहे हमें यह भासित भी होता हो कि जब्रके प्रयोगसे शान्ति मिलती है तो भी उसका समग्र परिणाम बुरा ही होता है, यह बात अनेक प्रमाण देकर सिद्ध की जा सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-७-१९२४

१९८. बाल-हत्या

नीचे दिया गया पत्र[1] मेरे पास बहुत दिनोंसे रखा हुआ है:

मैंने इस पत्रमें से ब्यौरेकी बहुत-सी बातें निकाल दी हैं। इसमें जो दोष पाटीदारोंमें बताये गये हैं वे कहाँतक सच हैं यह तो पाटीदार लोग ही जानें। मेरा उन लोगोंसे अच्छा परिचय है; किन्तु मेरा काम गुणोंको जानना है; इसलिए मैंने दोषोंको जाननेकी कोशिश नहीं की और न वे किसीने मुझे बताये ही।

परन्तु यदि इस चिट्ठीमें लिखी बातें सच हों तो वे लज्जाजनक हैं। लड़कीका जन्म अपशकुन-सूचक है, यह पापपूर्ण अन्धविश्वास हम लोगोंमें व्याप्त है। स्वार्थके अलावा इसका दूसरा कोई कारण नहीं दिखाई देता। इस वहमका जन्म सम्भवतः किसी भयानक कालमें हुआ होगा। जब कन्याएँ हरण की जाती रही होंगी तब लोगोंका कन्या-जन्मसे घबड़ाना कुछ समझमें आ सकता है। परन्तु अब यह भय प्रायः नहीं रह गया है। यदि यह भय कुछ शेष भी हो तो उसका उपाय किया जा सकता है। सन्तानके जन्मसे हर्ष होनेका कोई कारण हो तो फिर लड़का हो या लड़की दोनों एकसे प्रिय होने चाहिए। संसारके लिए दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। वे एक-दूसरेके पूरक हैं। ऐसी हालतमें एकके जन्मसे प्रसन्न होना और दूसरेके जन्मसे दुःखी होना हानिकर है। एक सुव्यवस्थित समाजमें दोनोंकी संख्या बराबर होनी चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

कन्याके पिताको शादीमें बहुत खर्च करना पड़ता है। यह रिवाज भी हिन्दू जातिमें आम है। सम्भव है कि इसने पाटीदारोंमें प्रचण्ड रूप धारण कर लिया हो। इस खर्चको निर्मूल करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बारेमें दो मत नहीं हो सकते। बहुत खर्चीले रिवाजोंसे बेचारे गरीब माँ-बापोंकी बहुत दुर्गत होती है। उनके लिए लड़कियोंकी शादी करना असम्भव-सा हो जाता है और फलस्वरूप लड़कियोंको जहर देनेकी प्रथा पड़ जाती है।

सुणावके अध्यापककी मिसाल[1] अनुकरणीय है। इस खादीके युगमें तो खादीकी वर-मालासे ही शादी हो सकती है।

लेखकने सारा दोष बूढ़े लोगोंके ही सिर मढ़ा है। यह बात कुछ अत्युक्तिपूर्ण मालूम होती है। परन्तु यदि बूढ़े लोग सचमुच मिथ्याभिमानके कारण किसीकी न सुनते हों तो युवक-मण्डलको बागडोर अपने हाथमें लेनी चाहिए। वे खर्चीले विवाहोंमें शरीक होनेसे साफ इनकार कर दें। इससे विवाहोंका खर्च एकदम कम हो जायेगा। इसमें न तो कोई अविनय है और न किसी बड़ी कोशिशकी जरूरत। खेदकी बात तो यह है कि युवक आजतक ऐसी बातोंको अपने क्षेत्रसे बाहर मानते आये हैं। उन्होंने अपनी शिक्षाका उपयोग अपने समाजके सुधारके लिए बिलकुल ही नहीं किया है।

परन्तु अब जमाना बदल गया है। युवकवर्ग खुद विचार करने लगा है। अतः यह सुधार किसी बड़े प्रयासके बिना ही हो सकता है। आवश्यकता है सिर्फ अटल निश्चय की।

मुझे तो बारह गाँवोंके[2] भीतर विवाह करनेकी मर्यादा भी खलती है। मैं सिर्फ चार वर्णोंको मानता हूँ। उपवर्णोंको उन्हींमें मिला दिया जाना चाहिए। परन्तु इसमें समय लगेगा। फिर भी पाटीदारोंका गाँवोंके भी विभाग करके शाखाएँ बनाना वर्ण-विभागकी अतिशयता है। सारे गुजरातके जिन पाटीदारोंमें रोटी-व्यवहार है उनमें बेटी-व्यवहार क्यों नहीं होना चाहिए? बारह गाँवोंकी मर्यादा बाँधनेका कारण संयम नहीं, बल्कि मिथ्याभिमान ही दिखाई देता है। जहाँ मिथ्याभिमान होता है वहीं पाप होता है। इसलिए समझदार और प्रौढ़ पाटीदारोंको उचित है कि वे सब तुरन्त मिलकर यह आवश्यक सुधार करें और इस बालहत्याको तथा इसके कारणरूप पूर्वोक्त क्रूर रिवाजोंको समाप्त करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-७-१९२४

१. इस पाटीदार अध्यापकके, जो सुणावकी राष्ट्रीयशालामें पढ़ाता था, विवाहमें केवल दस बराती थे। वर और वधू दोनोंने विवाहके समय अपने हाथके कते सूतके बने कपड़े पहने थे। इसके विवाहमें कुल सौ रुपये खर्च आया था।

२. केवल बारह गाँवोंके दायरेमें अपने ही समाजमें विवाह करनेकी प्रथा; जो पाटीदारोंमें प्रचलित थी।

१९९. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

आषाढ़ सुदी १४ [१५ जुलाई, १९२४]

भाई इन्द्र,

तुमारा खत मीला। मैंने थोड़ा सा लीखा उसके बाद तुमारा खत पहोंचा। लेकिन मैंने कोई ऐसी बात नहिं लिखी है जिससे किसीको हानी पहोंचे। मेरी उमीद है कोई अब कचेरीमें नहिं जायेंगे। मामला तो शांत हो गया होगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
'अर्जुन' आफिस
दिल्ली

मूल पत्र (जी० एन० ७१९८) तथा सी० डब्ल्यू० ४८५७ से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२००. पत्र : कुंवरजी खेतशी पारेखको

आषाढ़ सुदी १४ [१५ जुलाई, १९२४][1]

चि० कुंवरजी,

तुम्हारे पूज्य मामाके देहान्तका समाचार पढकर खेद हुआ। तुम्हे उनका बहुत बड़ा सहारा था, यह मैं जानता हूँ; लेकिन जन्म और मरण तो हमारे साथी ही हैं, ऐसा समझकर हमें एकका हर्ष और दूसरेका शोक नहीं मानना चाहिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

चि० कुंवरजी खेतशी
मार्फत पारेख गोकुलदास त्रिभुवन
मोरवी

मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ६७६) से।
सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

१. डाकखानेकी मुहर में १६ जुलाई, १९२४ पड़ी है।

२०१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आषाढ़ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][1]

तुम मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता न करना। मैंने अपनी खुराक फिर बढ़ा दी है। मेरे मनको आज, कौन पहचान सकता है? मैं स्वयं नहीं जानता कि वह मुझे किस घाट उतारेगा? मनमें मंथन तो चल ही रहा है। मैं आग्रह कोई नहीं रखता। यथासम्भव पवित्र बनने और रहनेका प्रयत्न करता हूँ। बस मैं अपना कर्त्तव्य इतना ही मानता हूँ। फिर प्रभु मेरे मनमें चाहे जो भरे। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में मेरे मनके प्रतिबिम्ब बहुत-कुछ आ जाते हैं।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२०२. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

आषाढ़ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][2]

अभी बाका वहाँ आना लगभग असम्भव है. . . .।[3] वहाँ आकर वह करेगी भी क्या? इसलिए मैं उसे आग्रह करके भेजना नहीं चाहता। आनन्दसे[4] कहना कि वह मुझे क्षमा करे।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

३. प्रेषीने अपनी माँके आदेशानुसार गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे बाको उसकी पत्नीके प्रथम प्रसव-काल सम्बन्धी संस्कारमें भाग लेनेके लिए बम्बई भेज दें।

४. प्रेषीकी माता।

२०३. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ़ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][1]

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। जब आपको क्रोध आये तब आप अपने मनमें सोचें, मेरा यह सब क्रोध किसपर है? आत्मा अवश्य ही निर्विकार है, वह क्रोध किसपर कर सकती है? क्रोधको शान्त करनेका बाह्य उपाय मौन है। जब क्रोध शान्त हो जाये आपको तभी बोलना चाहिए।

आपको पिछली बातें भूल जानी चाहिए। हम जिस तरह उच्छिष्ट अन्न नही खाते उसी तरह हमें बीती बात याद करके उनका मीठा-कड़ुवा स्वाद नही लेना चाहिए। हमें केवल इतना ही अधिकार है कि हम वर्तमानको सँभाल लें। हमें भविष्यका विचार भी न करना चाहिए।

आप क्रोध करके अथवा रूठकर बोरीवली नही छोड़ सकतीं; इसलिए यदि आपके पुत्रका बहुत आग्रह है तो आप उसे मानकर उसके पास हो आयें। आपको उसका अथवा बहूका त्याग तो कदापि नही करना है। आपको तो बहूको रास्ता देना है जिससे उसके दिलको ठेस न लगे और आपका मन भी दुःखित न हो।

मैं इस पूरे महीने हर हालतमें यहीं हूँ। अगस्तके पहले सप्ताहमें भी यहीं हूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१५) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

२०४. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। जो नया उपचार चल रहा है; उसका क्या असर हुआ है, इस बारेमें लिखती रहना। मुझे पूरा अगस्त शायद यहीं बिताना पड़े। तुम्हारा हजीरा जाना मुझे बहुत अच्छा लगेगा। मैं वहाँ जानेके लिए क्या बन्दोबस्त करूँ?

१. इस पत्रमें प्रेषीके (आश्रमके लिए) बोरीवलीका अपना घर छोड़नेकी जो चर्चा की गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। इस वर्ष आषाढ़ सुदी १५, १६ जुलाई, १९२४को थी।

२. डाकखानेकी मुहरमें १७ जुलाई, १९२४ पड़ी है।

पंजाब तो अक्तूबर मासके बाद जाना ठीक होगा। वहाँ फल क्या-क्या मिलते हैं और तुम क्या-क्या फल खाती हो?

बापूके आशीर्वाद

बहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४५०) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

२०५. उत्तर: मथुरादास त्रिकमजीके प्रश्नका[1]

[१६ जुलाई, १९२४ के आसपास][2]

यदि कांग्रेस मुझे निकाल दे तो मुझे उसे नम्रभावसे सहन कर लेना चाहिए; लेकिन मैं प्रहार किसी भी पक्षपर नहीं कर सकता।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

२०६. टिप्पणियाँ

भारत-कोकिला सरोजिनी

'यंग इंडिया' के पाठक भारतकी इस प्रतिभाशालिनी पुत्रीके आश्चर्यजनक कार्यके बारेमें दक्षिण आफ्रिकासे मेरे पास आये अनेक पत्र[3] पढ़ चुके हैं। श्री पी० के० नायडूसे प्राप्त एक पत्रमें से यह एक वाक्य पाठकोंके सामने पेश करता हूँ।

> यहाँ उन्होंने आश्चर्यजनक कार्य किया है। उनके आकर्षक व्यक्तित्व तथा सफल वक्तृत्वसे सैकड़ों ही नहीं, हजारों यूरोपीय सज्जन हमारे मित्र बन गये और उसने स्मट्सकी सरकारको भी हिला दिया।

इसलिए भारत उनका सम्मान करके अपना ही सम्मान कर रहा है। जहाँतक मेरा ताल्लुक है मैं तो यही कहूँगा कि उनकी मौजूदगीमें मुझे राहत महसूस होती है। क्योंकि, यद्यपि मैं समझता हूँ कि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताको दृढ़ करनेमें अपना विनम्र योगदान दे सकता हूँ तथापि कई बातोंमें वे इस क्षेत्रमें मुझसे कहीं बढ़कर हैं। मेरी

१. मथुरादासने कांग्रेसके भीतर मतभेद होनेके कारण गांधीजीसे कांग्रेस छोड़नेकी अपील की थी। मौन दिवसपर लिखे गये ये शब्द उसीके उत्तरमें थे।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४३६-३७।

अपेक्षा उनका अधिक मुसलमानोंसे अन्तरंग परिचय है। उनकी पहुँच उनके हृदयों तक है; किन्तु मैं ऐसा दावा नहीं कर सकता। उनकी इन सारी योग्यताओंमें अब एक यह भी जोड़ लीजिए कि वे नारी हैं। यह उनकी सबसे बड़ी योग्यता है, जिसमें कोई पुरुष उनकी बराबरी नहीं कर सकता। शान्तिकी स्थापना नारीका विशेषाधिकार है। सरोजिनी देवीने नारी जातिके इस विशेष गुणको अपने भीतर यत्नपूर्वक विकसित किया है। १९२१ में बम्बईके लज्जाजनक दंगेके अवसरपर उनका यह गुण पूर्ण रूपसे प्रकट हुआ था। उनकी वीरता तथा उनकी क्रियाशीलता सबके लिए प्रेरणाका स्रोत बन गई थी। उस समय वे जहाँ-कहीं गईं, दंगाइयोंने अपने हथियार रख दिये। वे पूर्वी और दक्षिणी आफ्रिकामें शान्तिकी साक्षात् देवी सिद्ध हुई हैं। भारतीय उनका सर्वोत्तम स्वागत इसी प्रकार कर सकते हैं कि वे भगवान्‌से प्रार्थना करें कि वह उन्हें शान्तिका सन्देश प्रसारित करते रहनेकी शक्ति देने और इन दोनों समुदायोंको अटूट रूपसे जोड़कर एक करनेका साधन बनाये। भगवान् करे, जिस काममें सबल कहलाने-वाले पुरुष सफल नहीं हो सके, वहाँ अबला कहलानेवाली नारी सफल हो जाये।

भगवान् विनम्रको, न कि अभिमानीको, अपना निमित्त बनाते हैं। पुरुष नाश करना जानता है। निर्माण नारीका विशेषाधिकार है। हमारी कामना है कि सरोजिनी हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच वास्तविक एकताकी स्थापना करनेमें ईश्वरके हाथका उपकरण बनें।

दिल्ली और नागपुर

दिल्लीने तो अपनी प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिला लिया। वहाँके दंगोंसे यह प्रकट होता है कि वहाँ असहयोगका लेश भी नहीं बचा है; क्योंकि सरकारके साथ असहयोग करनेका मतलब है लोगोंमें परस्पर सहयोगका होना। परन्तु दिल्लीमें पिछले सप्ताह सरकारके प्रति असहयोग न होकर हमारा ही परस्पर असहयोग दृष्टिगोचर हुआ। कांग्रेस और खिलाफतके लोग जनतामें शान्ति स्थापित नहीं कर सके। इसका श्रेय पुलिस और फौजको ही मिलना था। वे गौरवान्वित हुए और हम शर्मिन्दा। मुझे जो चिट्ठियाँ मिली हैं उनसे मालूम होता है कि हमारे स्वयंसेवकोंसे शान्ति स्थापित करनेकी दिशामें कुछ नहीं बन पड़ा और तब उन्होंने एक दर्जा उतरकर दूसरा उत्तम काम हाथमें लिया अर्थात् उन लोगोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम, जो पुलिस द्वारा मारपीट किये जानेसे नहीं, बल्कि आपसमें ही लड़कर घायल हुए थे।

इस सारे झगड़ेकी वजह बताई जाती है कुछ हिन्दुओं द्वारा एक मुसलमान युवककी कथित मारपीट। अगर वह लड़का मर भी जाता तो मुसलमान हाल ही कायम किये गये पंच-बोर्ड या सरकारी अदालतोंसे फैसला करा ले सकते थे।

मान लीजिए कि कुछ हिन्दुओंने मुसलमान लड़केको पीटा और इसपर कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंपर हमला किया, तब दूसरे हिन्दुओंने, फिर वे कोई भी क्यों न हों, उसका बदला क्यों लिया? मुझे जो चिट्ठियाँ प्राप्त हुई हैं उनके अनुसार यह लड़ाई सारे शहरमें जहाँ-जहाँ तक भारतीय बसे हुए हैं, फैल गई थी। उन्हीं चिट्ठियोंमें यह भी लिखा है कि अगरचे यह लड़ाई इतनी फैल गई थी फिर भी

दिल्लीकी आबादीका मुख्य भाग दंगोंसे अछूता रहा — यही नहीं, ऐसा भी हुआ कि हिन्दुओंने मुसलमानोंको पनाह दी और मुसलमानोंने हिन्दुओंको। इसमें कोई शक नहीं कि यह बात सराहनीय है। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि दिल्लीकी आबादीका मुख्य भाग हुल्लड़बाजोंपर काबू पानेमें असमर्थ रहा। स्थिति आज यह है कि हम लोग उपद्रवकारी तत्त्वोंपर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर पाये हैं।

नागपुरका भी यही हाल है। अबतक वहाँसे बहुत थोड़ी खबरें आ पाई हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि नागपुरके हिन्दू और मुसलमान दोनों एक होकर सरकारसे लड़ाई करनेकी अपेक्षा (यद्यपि वह अहिंसाके तरीकेसे ही होगी) आपसमें अन्धाधुन्ध लड़ना ज्यादा फायदेमन्द समझते हैं।

इस तरह अगर दिल्ली और नागपुरको ही किसी रूपमें आम लोगोंकी मनोवृत्तिका सूचक मान लिया जाये तो हमें बहुत समयतक हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आशा छोड़ देनी होगी और इसलिए आजादीके लिए कोशिश करनेके बजाय गुलाम बने रहना मंजूर करना होगा।

मगर मैं मायूस नहीं हूँ। मौलाना शौकत अलीकी तरह मेरा भी विश्वास है कि ये झगड़े चन्दरोजा हैं और थोड़े ही दिनोंमें दोनों जातियाँ अवश्य ही एक शान्तिमय कार्यक्रमपर अमल करने लगेंगी।

यदि हम सचमुच किसी ऐसे कार्यक्रमपर अमल करनेमें लग जाना चाहते हों तो मैं दिल्ली और नागपुर दोनों स्थानोंके कांग्रेस और खिलाफतके लोगोंसे कहना चाहता हूँ कि कोई भी पक्ष किसी भी हालतमें अदालतोंका दरवाजा न खटखटाये और ये तमाम झगड़े पंच-फैसलेसे निबटाये जायें। वकील लोग, फिर वे चाहे वकालत करते हों या न करते हों, इसमें बहुत-कुछ मदद कर सकते हैं। बस, वे अदालतमें इन मामलोंकी पैरवी करनेसे इनकार कर दें और दोनों पक्षोंको समझायें कि इससे उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हो सकता; शायद नुकसान ही ज्यादा हो। वे उन्हें यकीन दिला सकते हैं कि यदि वे सचमुच सच्ची शान्ति चाहते हैं तो वह उन्हें अदालतोंके जरिये हरगिज नहीं मिल सकती।

बड़ा-बाजारके कांग्रेसी

जब मैंने इन दंगोंका और आगे चलकर कलकत्तेके बड़ा-बाजारके कांग्रेसियोंके झगड़े और मारपीटका हाल पढ़ा तब मुझे इसपर सहसा यकीन नहीं आया। परन्तु मुझे प्रत्यक्षदर्शी कांग्रेसियोंकी तीन चिट्ठियाँ मिली हैं। उनसे पता चलता है कि समितिकी बैठकमें कांग्रेसियोंमें खुलकर मारपीट हुई और वह कांग्रेसके उद्देश्यकी सिद्धिके लिए नही बल्कि समितिपर अपना-अपना कब्जा जमानेके लिए हुई। तीनों चिट्ठियोंके लिखनेवाले वे हैं जो अपनेको पक्का अपरिवर्तनवादी कहते हैं। इन पत्रोंके आधारपर यह निर्णय नही किया जा सकता कि कुसूर किस दलका है। मुझे इस बातमें जरा भी शक नहीं कि स्वराज्यवादी अपने बयानोंमें सारा दोष अपरिवर्तनवादियोंके मत्थे मढ़ेंगे। मैं जो बात समझ नही पा रहा हूँ वह यह है कि जो संस्था अहिंसात्मक

होनेका दावा करती है, कोई भी दल उसीपर कब्जा करनेके लिए हिंसापर आमादा कैसे हो सकता है? पत्रोंके लेखक अपनेको 'मेरा अनुयायी' बताते हैं। यदि वे अपनेको 'मेरा अनुयायी' बताकर अहिंसाके पुजारी होनेका दावा करते हों तो उन्हें परस्पर संघर्षके हर मौकेको टालना चाहिए, इसलिए उन्हें कांग्रेस या उसकी किसी समितिपर कब्जा करनेके लिए हथियार लेकर नही लड़ना चाहिए। पत्र-लेखक कहते हैं कि यद्यपि बड़ा बाजार क्षेत्रमें अपरिवर्तनवादियोंका निश्चित बहुमत है तो भी सम्भावना यह है कि स्वराज्यवादी या तो बड़ी तादादमे उनकी बैठकोंमें आ घुसेंगे या उनकी सभाएँ भंग करेंगे और इस प्रकार वहाँकी कांग्रेस कमेटीपर कब्जा कर लेंगे। फर्ज कीजिए कि ये सब इलजाम सही हैं तो भी अपरिवर्तनवादी लोग अहिंसात्मक उपायोंसे इसका प्रतिकार कर सकते हैं। वे स्वराज्यवादियोंकी सभाओंमें कदम न रखें और अपना कार्यक्रम चलानेके लिए एक अलग संगठन बना लें — बशर्ते कि उनका उद्देश्य कार्यक्रमको चलाना हो, कांग्रेसपर कब्जा जमाना नही। मैं वचन देता हूँ कि यदि अपरिवर्तनवादी काम करेंगे तो स्वराज्यवादियोंका काम उनके बिना चल ही न सकेगा। एक ही ईश्वर है, एक ही साध्य है और एक ही साधन है। रोगोंकी जड़ एक ही है, इसलिए उनका उपचार भी एक ही है। चाहे सरकार हो, चाहे स्वराज्यवादी, दोनोंके लिए एक ही रामबाण दवा है, अहिंसात्मक असहयोग। इसलिए यदि 'मेरे अनुयायी' बातें न करके अपना संगठन बनाकर काम करें तो बेहतर होगा। उन्हें अपनी सेवाओं द्वारा राष्ट्रके हृदय तक पहुँचनेका रास्ता तैयार करना चाहिए। मैंने ये बातें अपरिवर्तनवादियोंसे इसलिए कही हैं कि उन्हींकी ओरसे इसका विरोध किया जा रहा है और उन्हींने अपनेको 'मेरा अनुयायी' कहकर पत्र लिखे हैं। मैं उनके द्वारा स्वराज्यवादियोंपर लगाये गये इलजामोंका न तो विश्वास करता हूँ और न अविश्वास। मैं तो स्वराज्यवादियोंको भी 'अपना अनुयायी' मानता हूँ, क्योंकि वे भी अपरिवर्तनवादियोंके समान कांग्रेसके ध्येयके समर्थक होनेका दावा करते हैं। यदि वे यह कहेंगे और मैं समझता हूँ कि वे जरूर कहेंगे कि इसमें उनका कुछ भी कुसूर नहीं है तो मैं उन्हें भी वही उपाय बताऊँगा जो मैंने अपने अपरिवर्तनवादी अनुयायियोंको बताया है। 'मेरे अनुयायी' तो विपक्षीकी प्रतिक्रियाकी राह नही देखते, क्योंकि वे बदला नहीं लेते। जो प्रतिक्रियाकी राह नहीं देखते वे कुछ प्रत्याशा भी नही रखते। इसलिए वे कभी दुखी नही होते। यदि इसी बातको बिलकुल ही व्यावहारिक रूप देकर कहूँ तो कहना होगा कि जिस शख्सको चरखा कातना हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करनी हो और अगर वह हिन्दू है तो जिसे अस्पृश्यता निवारण करना हो, उसे किसी संस्थाकी जरूरत नही है। संस्थाओंको उसकी जरूरत अवश्य हो सकती है; और उसकी सेवाकी जहाँ-कहीं जरूरत हो वह वहाँ खुशीसे अपनी सेवा अर्पित करेगा। एक स्वराज्यवादी मित्र कहते हैं कि महाराष्ट्रमें अपरिवर्तनवादियोंने केवल पशुबलके जोरपर अपना बहुमत बना रखा है और बरारमें तो उन्होंने ही मारपीट की थी। यदि बात ऐसी ही हो तो मैं अपरिवर्तनवादियोंसे कहूँगा कि वे क्षमा माँगें और वे जहाँ-कही पशुबल या

अनीतिपूर्ण तरीकोंसे पदाधिकारी बने हों, वहाँ अपने पदोंको त्याग दें और अपना काम फिर भी बराबर करते रहें। यह मानना सरासर वहम है कि हम कांग्रेसकी प्रतिष्ठाका सहारा लिये बिना कारगर तरीकेसे सेवा नहीं कर सकते।

एक कदम आगे

गुजरात प्रान्तीय कमेटीने चरखे-सम्बन्धी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावका समर्थन करते हुए उससे भी आगे जाकर पहले महीनेमें ३,००० गज सूत कातनेका अनिवार्य नियम बना दिया है और उसे जल्दी ही ५,००० गज तक बढ़ानेका विचार कर रही है। उसने अपने आदेशमें उस दण्डात्मक धाराको भी रख लिया है, जो अ० भा० कां० क०की बैठकमें हटा दी गई थी। मेरी हमेशा यह राय रही है कि हर प्रान्तीय कमेटीको यह अधिकार है कि वह अखिल भारतीय कमेटीकी अपेक्षाओंसे आगे बढ़कर काम करे। जो प्रान्त इतनी क्षमता रखता हो उसे ऐसा करना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए। यह दो हजार गज सूत एक किस्मका चन्दा है, जिसे अदा करना हर प्रतिनिधिका फर्ज है। यदि कोई ज्यादा देता है तो यह उसके लिए गौरवकी बात है। यदि कोई सदस्य अपना चन्दा न दे तो उसे सदस्यतासे हटानेमें कोई बुराई नहीं है। इसलिए मुझे आशा है कि जो प्रान्त गुजरातका अनुसरण कर सकते हों, वे अवश्य करें। १५ अगस्तको यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि कांग्रेसके प्रतिनिधियोंका चरखेमें कितना विश्वास है। उन्हें याद रखना चाहिए कि आचरणहीन श्रद्धा आत्माहीन शरीर — मुर्दे — की तरह है, जो जलाने या दफनानेके सिवा किसी मसरफका नहीं होता।

हर प्रान्तमें चरखेके संगठनका दायित्व प्रान्तीय समितियोंपर है। उन्हें अविलम्ब उन प्रतिनिधियोंके नाम जान लेने चाहिए और देखना चाहिए कि वे साधन-सामग्री या जानकारीके अभावमें अपने कर्त्तव्य-पालनमें ढील न डालें। हमारी असहाय अवस्था तो दयनीय है; हम अपने सिरपर मंडरानेवाली इस बरबादीसे उसी अवस्थामें बच सकते हैं जब हमारी कौम पहलेकी तरह बुनकरों और कतैयोंकी कौम बन जाये। कांग्रेसने कमसे-कम कागजपर तो इस बातकी सचाईको अंगीकृत कर लिया है। अब देशके कोने-कोनेके प्रतिनिधियोंसे यह आशा की जा रही है कि वे कताई और धुनाईमें प्रवीण हो जायेंगे, चरखा-शास्त्रकी सब बारीकियोंको जान लेंगे और अपने-अपने जिलोंमें इस कार्यका संगठन करेंगे।

यह आध घंटेका श्रम तो केवल शुरूआत है। लेकिन प्रारम्भमें ही ब्यौरेकी बातोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत है — जैसे रुई जमा करना और पहुँचाना, उसे धुनना और पूनियाँ बनाना और कातना। एकत्र सूतको प्रान्तीय केन्द्रोंमें जाँचना होगा। चरखोंपर भी ध्यान देना होगा। यदि चरखे और तकुए ठीक हों तो बहुत-सा वक्त अपने-आप बच जाता है और कातनेवालेको कातनेमें बहुत आनन्द आता है।

कांग्रेसके प्रतिनिधियोंपर तो कताईका यह कर्त्तव्य अ० भा० कां० कमेटीके प्रस्तावसे आयद होता है। पर दरअसल यह कर्त्तव्य हरएक मनुष्यपर लागू होता है, फिर चाहे वह कांग्रेसी हो या न हो। हरएक उत्साही कार्यकर्त्ता एक चरखा-क्लब

कायम कर सकता है, जिसका यह काम हो कि वह अपने सदस्योंसे जितना बने सूत कतवाये और उसे खादी बोर्डके मन्त्रीको भिजवा दे। पाठक यह जानकर खुश होंगे कि गुजरात विद्यापीठके रजिस्ट्रारने इसका श्रीगणेश भी कर दिया है। उन्होंने अपने दफ्तरके कर्मचारियोंसे यह वचन ले लिया है कि वे हर महीने पाँच हजार गज सूत कातेंगे; उनमें से दो हजार गज सूत विद्यापीठको दिया जायेगा और शेष अलग रख दिया जायेगा।

एक खतरा

गुजरात अपनी जरूरतकी ज्यादातर खादी आन्ध्र, पंजाब और बिहारसे मँगाता रहा है। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्थामें जब गुजरात अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए खादी बनाता ही नहीं था तथा जब उक्त प्रान्तोंको प्रोत्साहनकी आवश्यकता थी, यह शायद जरूरी रहा हो तथापि पद्धतिके रूपमें यह दोषपूर्ण है। खद्दरका मूल सिद्धान्त ही यह है कि प्रत्येक गाँव अपने अन्न और वस्त्रके मामलेमें आत्मनिर्भर बने। अतः प्रत्येक प्रान्तको स्वावलम्बी बन जाना चाहिए। यदि उसे दूसरे प्रान्तसे खादी मँगानी पड़े तो वह आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। एक बात यह भी है कि ऐसे प्रान्तमें दुर्भिक्षके विरुद्ध संघर्ष करनेकी तनिक भी शक्ति नहीं होती। निर्यात करनेवाले प्रान्तको भी हानि पहुँचे बिना नहीं रहेगी। उत्पादन और बिक्री दोनोंमें ही खराबी आना अवश्यम्भावी हो जायेगा और हाथके कते सूतकी जगह मिलके सूतका उपयोग करनेका जबर्दस्त लोभ उत्पन्न हो जायेगा। मेरे सामने मसूलीपट्टमसे आया एक पत्र है। उसमें लेखक कहते हैं कि व्यापारियोंमें हाथकता सूत इकट्ठा करके उसे निर्यातके लिए बुनवा लेनेका चलन बढ़ता जा रहा है। लेखक आगे कहते हैं कि लगभग सभी कातनेवाले स्वयं हाथके कते सूतका कपड़ा पहननेके बजाय मिलके कते सूतका कपड़ा पहनते हैं। अतः खद्दरके ऐसे व्यावसायिक उपयोगके विरुद्ध सतर्क रहना कार्यकर्त्ताओंके लिए अत्यन्त आवश्यक है। उन कातनेवालोंको हाथसे कते सूतका कपड़ा पहननेके लिए प्रेरित करनेका तरीका यह है कि उनका कपड़ा मुफ्त बुना जाये। यह सम्भव है कि कुछ समय तक हाथकते सूतके कपड़ेसे मिलके सूतका कपड़ा सस्ता मिले। गरीब कातनेवाले जो केवल अपनी आजीविकाके लिए कातते हैं, देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय आर्थिक हितकी बात सुननेवाले नहीं हैं। उनकी समझमें तो वही बात आयेगी जिससे उनको दो पैसे ज्यादा मिलें। इसलिए यदि उनके काते सूतसे कपड़ा मुफ्त बुन दिया जाये तो वे खुशी-खुशी खद्दर पहनने लगेंगे। यह काम बिलकुल ठीक तरहसे और कम खर्चमें करनेके लिए यह जरूरी है कि बहुसंख्यक युवक कातना ही नहीं, बुनना भी सीखें जिससे वे अपनी गरीब बहनोंके लिए खादी बुन सकें। ये सब बातें तबतक नहीं हो सकतीं जबतक कांग्रेस संगठन मुख्यतः खादी प्रचारक संगठन नहीं बन जाता।

उपरोक्त तर्कका अर्थ यह नहीं कि खादीका निर्यात बिलकुल ही न किया जाये। आन्ध्रकी विशेष कुशलताके कारण उसकी खादीकी माँग सदा बनी ही रहेगी। किन्तु विनिमयका यह काम व्यापारियोंपर छोड़ दिया जाना चाहिए। कांग्रेस तो उन्हीं

चीजोंपर ध्यान रख सकती है, जिनको विकसित करनेके लिए शुरूमें बड़ी सार-सँभालकी जरूरत हो।

मुँहपर पट्टी भी आवश्यक

एक अंग्रेज मित्र लिखते हैं :

> मैंने अभी एक हफ्ते पहले ही एक मित्रको लिखा था 'गांधीने जब चरखेकी सिफारिश की तब वे उसके साथ-साथ मुँहपर पट्टी बाँधनेकी सिफारिश करना भूल गये'। शायद आपको याद होगा कि मैंने अपने एक भाषणमें अवकाश अथवा फालतू समयके दुरुपयोगको भारतका अभिशाप बताया था और शौकके तौरपर बागवानी, बढ़ईगिरी, फोटोग्राफी, पुस्तकवाचन, इतिहास, दर्शन इत्यादि विषयोंके अध्ययनकी सिफारिश की थी। इस देशके लोगोंका सारा फालतू समय मूर्खतापूर्ण और बेमतलबकी गपशपमें बीतता है। उन्होंने ठीक ढंगसे पढ़ना, अवलोकन करना, ज्ञान प्राप्त करना और उसे आत्मसात् करना नहीं सीखा है। अब उपाय यही है कि स्कूलों और कालेजोंमें छात्रोंसे सभी विषयोंपर निरन्तर निबन्ध लिखाये जायें। इसलिए उन्हें पुस्तकोंका अध्ययन करने, लेखोंके तथ्योंका पूरा ज्ञान प्राप्त करने तथा विचारोंको बनाने और उनको सुसंगत रूपमें रखनेकी आवश्यकता होगी।

मुझे मुँहपर पट्टी बाँधनेके बारेमें दिये गये अपने मित्रके सुझावका समर्थन करनेमें कोई संकोच नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि हममें बहुत ज्यादा बोलने और लिखनेकी बीमारी है। यदि हमारे बोले या लिखे हुएमें सरकार अथवा अपने विरोधीको गालियाँ नहीं दी गई हों तो वह अधिकांशतः निरर्थक दिखाई पड़ता है। मैंने तो सुझाव दिया है कि जहाँतक बोलनेका सवाल है, वह काम मौलाना शौकतअली और मेरे लिए छोड़ दिया जाये। रही लिखनेकी बात सो तो मैं कर ही रहा हूँ। हमें इन मित्रकी आलोचनाकी कीमत सिर्फ इसलिए कम नहीं आँकनी चाहिए कि वे अंग्रेज हैं। वे संयोगवश 'अपराधी' भी हैं। वे उस तन्त्र या व्यवस्थाको चलानेमें हाथ बँटाते हैं, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। परन्तु चूँकि हमारे मनमें इन अंग्रेज 'अपराधियों'के प्रति जो इस शासनतन्त्रकी बागडोर थामे हुए हैं, कोई दुर्भावना नहीं है, इसलिए जिस शासनतन्त्रको वे चला रहे हैं उसका मेरे द्वारा विरोध किये जानेके बावजूद (यद्यपि उनमें से कुछको यह विरोध पागलपन लगता है) वे मेरे साथ अपनी दोस्ती बनाये हुए हैं। अतः पाठकोंसे मेरा निवेदन है कि वे उनकी आलोचनाको उचित महत्त्व दें। निबन्ध-लेखन एक सीमातक ही उपयोगी होता है। वह लेखकको अनिवार्यतः सारयुक्त बातें कहनेवाला नही बनाता; लेखक इस कलाका विशिष्ट अभ्यास करे तो बात अलग है। यों तो प्रत्येक व्यक्ति, यदि चाहे तो अपने विचारोंके विस्तारको कम करता हुआ अपने लेखमें इतनी काट-छाँट कर सकता है कि वह एक चौथाई पृष्ठमें आ जाये।

मॉर्लेने गोखलेसे एक बार यही करतब कर दिखानेके लिए कहा था। उन्होंने वह कर दिखाया था; किन्तु जितना समय उन्हें पूरे ५० कागज लिखनेमें लगता — जिन्हें कोई पढ़ता भी नही — उनका उससे अधिक समय उसको संक्षिप्त करनेमें लग गया। शंकरने अपना जगत् विख्यात सन्देश श्लोककी एक पंक्तिमें दे दिया था: "ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या।" सच्चा अनुशासन बोलने अथवा लिखनेकी इच्छापर अंकुश रखनेमें है। ऐसा मनुष्य तभी बोलेगा अथवा लिखेगा, जब उसके लिए बोलना और लिखना बिलकुल ही अनिवार्य हो जायेगा।

पर कताईके साथ मुँहपर पट्टी तो रहती ही है। जब किसी पुरुष अथवा स्त्रीपर कताईकी धुन सवार होती है, तब उन्हें और किसी बातके लिए अवकाश ही नही रहता। हमारे अंग्रेज मित्रका एक तो जनसाधारणकी दशासे उतना अन्तरंग परिचय नही जितना हमारा है और दूसरे उनकी भावनाएँ भी हमसे भिन्न हैं। इसलिए वे कताईको केवल अवकाशका समय बितानेका एक शौक-भर समझते हैं और इसी तरह उसका उल्लेख करते हैं। पर हम तो कताईको इस युगमें और इस देशके लिए जिसमें हम रह रहे हैं, एक पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं; और इस बातसे कताईको निराला ही महत्त्व मिल जाता है। उसे दूसरे धन्धोंकी श्रेणीमें नही रखा जा सकता। जब अंग्रेज इस तथ्यको समझ लेंगे, तब यहाँ उनकी हैसियत अजनबी देशमें शोषणके विचारसे रहनेवाले अजनबीकी नही रह पायेगी। तब वे भी कातने लगेंगे, मनोरंजन या कुतूहलके लिए नही, वरन् जिस देशका वे नमक खाते हैं उसके प्रति अपना कर्त्तव्य निभानेके लिए। किन्तु हम उनसे ऐसी आशा तभी कर सकते हैं जब हम स्वयं अपने कामके द्वारा अपनी आस्थाको प्रमाणित कर दें।

जनताका बाजार

चम्पारनके लोग भारतके सर्वाधिक भीरु लोगोमे हैं। इधर कुछ दिनोसे उन्होंने तनकर खड़े होनेका प्रयत्न शुरू किया है। चम्पारनमे आज भी छोटे-मोटे अधिकारियोका सम्माननीय सज्जनोंको अपमानित करना या उनपर लात-घूँसे बरसाना आम बात है। बाबू राजेन्द्रप्रसादने एक संक्षिप्त पत्र भेजकर मुझे वे घटनाएँ बताई है, जिनके कारण बेतियाने अपने बाजारकी स्थापना की है और राज द्वारा स्थापित बाजारको त्याग दिया है। इस सम्बन्धमें जनताने जो अत्याचार सहा है उसकी मैं यहाँ चर्चा नही करूँगा। किन्तु एक घटना है, जिसे मैं अनदेखा नही कर सकता। कहा जाता है कि अधिकारियों द्वारा उकसाये गये कुछ लोग इस प्रकारके प्रवाद फैला रहे है कि मैं जनताके बाजारोंकी स्थापनाको पसन्द नही करता। मुझे इस प्रवादका खण्डन करनेमें जरा भी संकोच नही है। सच तो यह है कि इससे पहले मुझे इस बाजारके अस्तित्वकी भी जानकारी नही थी। किन्तु जनसाधारणके इस प्रकारके उपक्रमोंका मैं सदा स्वागत करूँगा। अतः मैं आशा करता हूँ कि बेतियाकी जनता सारे विरोध और असुविधाके बावजूद अपने इस अनुष्ठानपर दृढ़ रहेगी। उसे प्रलोभनों अथवा धमकियोंके आगे झुकना नही चाहिए।

कंगाल उड़ीसा

जब-जब मैं भारतकी कंगालीकी बात सोचता हूँ, मेरी आँखोंके सामने वे जीवित नर-कंकाल खड़े हो जाते हैं, जिन्हें मैंने पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरके बिलकुल आस-पास देखा था। मुझे लगता है कि वे मेरी भर्त्सना कर रहे हैं, क्योंकि मैं दरिद्रता-का जीवन अपनानेका व्रत लेकर भी उनकी तुलनामें काफी आरामका जीवन बिता रहा हूँ। उत्कल सम्मेलनके समक्ष आचार्य रायके[1] ओजस्वी भाषणने मेरे मनमें उड़ीसाके अपने दौरेके समय देखे हुए उन चित्रोंकी बेचैन बना देनेवाली स्मृतियोंको पुनः जगा दिया है। जनताके दारिद्र्यको सिद्ध करनेके लिए डाक्टर रायने कुछ भयंकर आँकड़े पेश किये हैं। वे कहते है कि बिहार और उड़ीसामें प्रति हजार मृत्यु ३५ और जन्म १९.४ है। अतः दोनों प्रान्तोंमें मिलाकर हजार पीछे मृत्युसे जन्म १५.६ कम बैठता है। अकेले उड़ीसामें यह कमी और भी ज्यादा है अर्थात् हजार पीछे ३१। पाठक जरा सोचें कि इन आँकड़ोंका अर्थ क्या होता है। उड़ीसामें लोग हर साल हजार पीछे ३१ के हिसाबसे मर रहे हैं। यदि हालत ऐसी ही रही जैसी अभी है तो उड़ीसाकी आबादीमें यह कमी प्रति वर्ष बढ़ती ही चली जायेगी। उड़ीसामें अकाल पड़ते ही रहते हैं। लोगोंके पास खेतीके सिवा और कोई धन्धा नहीं है। ऐसे ही तथ्योंके कारण डा० राय चरखेके पक्षपाती बन गये है।

इस्तीफे

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके तीसरे प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसके प्रतिनिधियोंकी तरफसे इस्तीफे दिये जानेकी खबरें आ रही हैं। मैं इसे एक शुभ लक्षण समझता हूँ — बशर्ते कि प्रतिनिधियोंने इस्तीफे अच्छी भावनासे दिये हों और इनका यह मतलब न हो कि अब वे कांग्रेसका काम नहीं करेंगे। देशकी हालत ऐसी नहीं है कि वह किसी भी कार्यकर्त्ताकी छोटीसे-छोटी सेवासे वंचित रह सके। पर वह सेवा उसकी शर्तों और अपेक्षाओंके अनुसार होनी चाहिए। इसीलिए हर प्रान्तके कार्य-कर्त्ताओंको अपना दिमाग ठण्डा रखना होगा और एक-दूसरेसे लड़े-झगड़े बिना काम करना होगा। जहाँ-कहीं बहुत-ज्यादा इस्तीफे दिये जायेंगे वहाँ कार्यकर्त्ताओंको समितियोंके पुनर्गठनमें बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। कई प्रान्तोंमें प्रान्तीय समितियोंके सदस्योंकी तादाद बहुत ही ज्यादा है। प्रान्तोंको तो प्रायः पूरा स्वायत्त शासन मिला हुआ है। इसलिए वे ऐसे नियम बना सकते हैं जिनसे समितियाँ आजकी अपेक्षा बहुत छोटी हो जायें। वे शोभाकी वस्तु होनेके बजाय, सचमुच उपयोगी और भारी-भरकम होनेके बजाय सुचारु रूपसे काम करनेवाली होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

१. आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय (१८६१-१९४४)।

२०७. राष्ट्रसे अपील

श्री श्रीशचन्द्र चटर्जी और अठारह अन्य हस्ताक्षरकर्त्ताओंने उक्त शीर्षकसे एक अपील जारी की है। उसकी नकल मैं नीचे दे रहा हूँ ?[1]

मैं जानता हूँ कि यह अपील देशके सामने कुछ समयसे पेश है। इसमें कोई नई बात नही है। फिर भी इसमें व्यक्त विचार केवल इन उन्नीस लोगोके ही नहीं, बहुतेरे शिक्षित भारतवासियोंके भी है। इसलिए यदि यहाँ उनकी छानबीन करें तो परिश्रम व्यर्थ नही जायेगा।

कांग्रेसने तो स्वराज्यकी कोई परिभाषा नहीं दी है; पर हस्ताक्षरकर्त्ता पूर्ण स्वाधीनता चाहते है और इसीलिए उन्होंने स्वराज्यकी परिभाषा 'भारतके संयुक्त राज्योंका संघबद्ध गणतन्त्र' की है। कांग्रेसके ध्येय-पत्रमें ऐसी कोई बात नही है जो भारतको स्वाधीन होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखनेसे रोके। सच पूछिए तो वह स्वराज्य, स्वराज्य ही नही जिनमें आवश्यक होनेपर भारत अपने आपको स्वाधीन घोषित न कर सके। पर अपीलकर्त्ताओंका अभिप्राय स्वाधीनतासे यह है कि हर हालतमें और हर तरह जोखिम उठाकर इंग्लैंडसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया जाये। मेरा मत है कि भारत-वर्षकी उन्नति और आजादीके लिए ऐसा सम्बन्ध-विच्छेद अनिवार्य नहीं है। वैसा करनेका दायित्व अंग्रेज लोगोंके सिरपर होना चाहिए। हमारे लिए यही अधिक गौरव-पूर्ण बात होगी कि हम स्वतन्त्र राज्योंके संघमें अंग्रेजोंके साथ बराबरीके हिस्सेदार बने रहनेकी सहमति घोषित करें। हो सकता है कि अंग्रेजोंके लिए ऐसी स्थितिको कबूल करना असम्भव हो। पर हमें उस वस्तुको असम्भव मान लेनेका कोई हक नहीं है जो कि अपने-आपमें असम्भव नही है। विश्व-राज्योंका ध्येय स्वाधीन होकर सबसे अलग होकर रहना नहीं है। वह तो स्वेच्छापूर्वक परस्परावलम्बन है। इंग्लैंड इस हदतक स्वतन्त्र कदापि नही है कि वह यूरोपके चाहे जिस राष्ट्रको हड़प ले। उसकी स्वतन्त्रता कुछ तो उसके पड़ोसियोंकी शुभेच्छापर और कुछ उसके अपने शस्त्रास्त्रोंपर निर्भर है और जिस हदतक वह अपने शस्त्रास्त्रोंपर आधार रखता है, वह संसारके लिए एक संकट है, जैसा कि सचमुच पिछले विश्वयुद्धके जमानेमें सिद्ध हो गया था। अब हम जानने लगे है कि उसका हेतु भलाई करना नहीं बल्कि लूट-खसोट करना था। उसके राजनीतिज्ञ, फ्रांस और दूसरे राज्योंके बराबर ही गुप्त-सन्धियों, कूटनीतिकी कपट चालों और बर्बरताओंके गुनहगार है। इस मामलेमें वह जर्मनीसे शायद कुछ ही कम हो। यह बात हर शख्सको साफ तौरपर जान लेनी चाहिए कि अपीलकर्त्ता लोग ऐसी सशस्त्र स्वाधीनता नही चाहते और यदि वे चाहते ही हों तो फिर यह उनका अपना ही मत है। वे औरोंके मतोंके प्रतिनिधि नही हैं।

१. अपील यहां नहीं दी जा रही है। उसमें कही गई प्रायः सभी बातोंका उल्लेख गांधीजीके पत्रमें आ जाता है।

स्वाधीनता एक ऐसा शब्द है जो शताब्दियोंके प्रयोगसे पुनीत हो गया है और इसलिए उसके बारेमें विभिन्न प्रकारके मत बन जाना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु उसकी ऐसी परिभाषा तो कोई भी नहीं कर पायेगा जो सभी मतोंके अनुकूल पड़े। इसलिए मेरा सुझाव है कि "स्वराज्य" शब्दकी जगह कोई दूसरा ज्यादा अच्छा शब्द नहीं मिलेगा और उसकी एक ही सार्वभौम परिभाषा यह हो सकती है कि 'स्वराज्य भारतकी वह संस्थिति है जिसे किसी निश्चित समयपर भारतीय जनता प्राप्त कर लेना चाहती है।'

यदि मुझसे कोई पूछे कि इस घड़ी हिन्दुस्तान क्या चाहता है तो मैं कहूँगा कि मुझे नहीं मालूम। मैं सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि मेरी कामना उसे इस बातके लिए इच्छुक देखनेकी है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्ध निश्छलतापूर्ण रहें, जनसाधारणको रोटी मिले और छुआछूत दूर हो। इस घड़ी तो मैं स्वराज्यकी यही परिभाषा करूँगा। यह परिभाषा मैं इसलिए पेश कर रहा हूँ कि मैं एक व्यावहारिक आदमी होनेका दावा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि हम इंग्लैंडसे अपनी राजनैतिक स्वाधीनता चाहते हैं। वह पूर्वोक्त तीन बातोंके बिना कभी नहीं मिल सकती — फिर चाहे हमारे पास हथियार भी क्यों न हों और हम उसका प्रयोग भी जानते हों।

अपीलकर्त्तागण दूसरी बात यह चाहते हैं कि कांग्रेसके ध्येय-पत्रसे वह अंश निकाल दिया जाये जो उसे 'शान्तिमय और न्यायोचित' साधनों तक ही मर्यादित करता है। मैं उनसे इस बातमें सहमत हूँ, पर उन कारणोंसे नहीं जो उन्होंने पेश किये हैं; बल्कि मेरे कारण ठीक उनसे उलटे हैं। वे कहते हैं: साधन आखिरकार साधन ही हैं। मैं कहूँगा: आखिरकार साधन ही सब-कुछ हैं। जैसा साधन वैसा साध्य। हिंसापूर्ण साधन हिंसात्मक स्वराज्य देंगे। ऐसा स्वराज्य सारे संसारके लिए और खुद भारतके लिए भी एक खतरा ही होगा। फ्रांसने हिंसात्मक साधनोंसे अपनी स्वतन्त्रता हासिल की थी। वह अबतक अपने हिंसाकाण्डकी भारी कीमत चुका रहा है। निकट भविष्यमें उसे अपनी बर्बर आफ्रिकी सेनाकी दयापर मोहताज रहना पड़ेगा। मैं मनुष्य-मनुष्यके बीच पूर्ण समानताका कट्टर समर्थक हूँ, पर मेरा यह विश्वास मुझे उस हदतक नहीं ले जाता जहाँतक वह फ्रांसको ले गया। आफ्रिकियोंको सेनामें भरती करके प्रशिक्षित करना उनके समानताके सिद्धान्तकी स्वीकृतिका प्रमाण नहीं है, बल्कि वह अपनी एकछत्र राज्य-सत्ता बनाये रखनेके लोभका प्रमाण है। साधन और साध्यके बीच ऐसी कोई दीवार नहीं होती जो दोनोंको एकदूसरेसे अलग करती हो। हाँ, उस सृष्टिकर्त्ताने हमें साधनोंपर नियन्त्रण रखनेकी शक्ति प्रदान की है (सो भी एक हदतक) किन्तु साध्यपर नहीं। ज्यों-ज्यों हम साधनका साक्षात्कार करते जायेंगे त्यों-त्यों हमें साध्यका साक्षात्कार होता जायेगा। यह एक ऐसा नियम है जिसमें किसी तरहका अपवाद नहीं हो सकता। ऐसा विश्वास रखनेके कारण मैं देशको उन्हीं साधनोंपर कायम रखनेका प्रयत्न करता रहा हूँ जो कि बिलकुल 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित' हैं।

परन्तु अनुभवने मुझे यह सिखाया है कि साधनोंको मर्यादित कर देनेसे यह प्रयोजन शायद सिद्ध नहीं हुआ है। क्योंकि मैं देखता हूँ कि जो लोग स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए सत्य और अहिंसाकी आवश्यकतामें विश्वास नहीं रखते वे भी कांग्रेसमें शामिल हो गये हैं और खुद उसमें विश्वास न रखते हुए भी वे कांग्रेसके ध्येय-पत्रपर दस्तखत कर देना पूर्णतया उचित समझते हैं। कदाचित् वे 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित' शब्दोंका अर्थ क्रमशः 'अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण' न करते हों। इसलिए शायद मैं खुद ही इस बातका प्रस्ताव पेश करूँ कि 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित साधनों द्वारा' अंश निकाल दिया जाये। देशकी मौजूदा हालतका यही सच्चा दिग्दर्शन होगा। उस अवस्थामें हमपर यह आरोप नहीं लगाया जा सकेगा कि हम किसी चीजपर पर्दा डालते हैं। हर शख्सको, जो वह सर्वोत्तम समझे, उसी नीतिका पालन करनेकी आजादी रहेगी।

'अपील'का आखिरी खण्ड दिखाई तो बड़ा अच्छा देता है; पर उससे अपील-कर्त्ताओंकी व्यावहारिकताके विषयमें पूरी नातजुर्बेकारीका पता लगता है। यह बात उनके ध्यानमें आई नहीं दिखाई देती कि यदि अबतक हमारे पास राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओंकी ऐसी टोली नहीं है जो अपना सारा समय और शक्ति लगाये तो इसका कारण यह नहीं है कि कांग्रेसने इसके लिए कोशिश नहीं की; बल्कि यह है कि कांग्रेसको बड़ी तादादमें ऐसे कार्यकर्त्तागण प्राप्त करनेमें सफलता नहीं मिली। हाँ, यदि अपीलकर्त्ता चाहें और सम्भव हो तो अवश्य ऐसी टोलीका संगठन करें। सही किस्मके कार्यकर्त्ताओंके लिए उन्हें काफी रुपया मिल जायेगा। यदि अपीलकर्त्ता भारत-की भिन्न-भिन्न संस्थाओंको देखें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि उन्हें धनका अभाव नहीं है। इससे क्या यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि राष्ट्र हमेशा उन संस्थाओंके खर्च-का भार उठानेके लिए तैयार रहता है जिनकी उसे जरूरत होती है? अभी पिछले ही सप्ताह मैंने इस बातकी ओर ध्यान खींचा था कि खादी मण्डलको जैसे चाहिए वैसे कार्यकर्त्ता नहीं मिल रहे हैं।

अपीलकर्त्ताओंके कार्यक्रमकी दूसरी बातोंके बारेमें अधिक विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

मेरा खयाल है कि पिछले किसी लेखमें[1] मैंने इस बातको अच्छी तरह दिखा दिया है कि ब्रिटिश मालका बहिष्कार एक बिलकुल अव्यावहारिक प्रस्ताव है।

कारखानोंकी स्थापनाके प्रस्तावपर पश्चिमका रंग गहरा चढ़ा हुआ है और वह भारतीय परिस्थितिकी उपेक्षा करता है।

जो एक ही कुटीर उद्योग सम्भव है, उसे इस कार्यक्रममें स्थान नहीं दिया गया।

मजदूरों और किसानोंकी सहायताकी तजवीज बिलकुल सही होते हुए भी कहनेमें जितनी सहल है उतनी करनेमें नहीं है।

और आखिरी तजवीज कि निकट भविष्यमें तमाम एशियाई जातियोंका एक संघ बनाया जाये, यह दिखलाता है कि यह कार्यक्रम आज असम्भव है।

१. देखिए "साम्राज्यके मालका बहिष्कार", १५-५-१९२४।

इसलिए मेरा सभी उन्नीसों अपीलकर्त्ताओंसे विनयपूर्वक निवेदन है कि वे कार्यक्रमकी तमाम तजवीजोंको परस्पर बाँट लें। हर टुकड़ी एक तजवीज लेकर उसपर विशेष रूपसे काम करे और जब किसी भी विभागमें सफलता दिखाई दे तब वे कांग्रेसके पास आयें कि वह इसे राष्ट्रीय कार्यक्रममें स्थान दे। पर यदि उन्होंने यह कार्यक्रम खुद अमलमें लानेका विचार किये बिना बनाया हो तो मैं उनसे निवेदन करता हूँ कि वे मेरे द्वारा प्रस्तुत कार्यको स्वीकार करें और खादीके काममें जुट जायें; यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें सभी काम करनेके इच्छुक व्यक्तियोंकी शक्तिका पूरा-पूरा उपयोग हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२०८. सभापति कौन हो?

जबसे बेलगाँवके आगामी कांग्रेस अधिवेशनके सभापति-पदके लिए मेरा नाम पेश किया गया है, मेरे मनमें दो विचारोंकी कशमकश चली है। शुरूमें तो मेरा यही खयाल था कि अपनी नामजदगीकी बातपर असहमति प्रकट कर दूँ। पर मैं यह भी सोचता रहा कि राष्ट्रकी नावको आज जिस तूफानी मौसमका सामना करना पड़ रहा है उसमें उसे गन्तव्य स्थान तक सुरक्षित ले जानेके लिए शायद मैं ही सबसे अधिक उपयुक्त रहूँ। लेकिन अब मुझे साफ तौरपर दिखाई दे रहा है कि मेरा यह खयाल गलत था। कांग्रेसके आगामी अधिवेशनका पूरा चित्र अपनी आँखोंके सामने लाते ही मैं काँप उठता हूँ। अगले एक सालतक सभापतिकी हैसियतसे कांग्रेस कार्यकारिणीके कार्य-संचालनका खयाल आते ही बुद्धि चकरा जाती है। मैं अभीतक यह नहीं समझ पाया हूँ कि देश किस ओर जा रहा है। इसलिए मेरा मन कहता है कि इस नावका कर्णधार होने लायक मैं नहीं हूँ। चरखा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके सिवा मेरे पास दूसरा कोई कार्यक्रम नहीं है। मैं दूसरे किसी कार्यक्रमको कार्यान्वित करने — जैसे अंग्रेजी मालका बहिष्कार या धारासभाकी कार्यवाहीके प्रति लोगोंमें उत्साह उत्पन्न करना — के योग्य नहीं हूँ। ये तो अनेक सम्भावनाओंमें से कुछ नमूने ही हुए। यदि मैं सहायता नहीं कर सकता तो मैं कांग्रेसके भीतर रहकर रोड़े अटकाना भी उचित नहीं मानता। यह मेरे स्वभावके खिलाफ है कि जिस कार्यक्रममें मेरा विश्वास न हो या हो न सकता हो, उसका दायित्व स्वीकार करूँ। इसके अलावा, अचानक आ पड़नेवाले मामलोंके लिए भी मेरा अपनेको इससे अलग ही रखना ठीक है। यदि कांग्रेसके प्रतिनिधिगण आधा घंटा सूत कातनेका मामूली-सा काम और अपने द्वारा काता गया २,००० गज अच्छा सूत हर महीने भेजनेकी तकलीफ गवारा नहीं कर सकते तो मैं नहीं समझता कि मेरे कांग्रेसमें रहनेसे क्या लाभ होगा? सभापतिकी हैसियतसे मेरा भाषण हाथ कताईका, मुसलमानों तथा दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंके हितोंके लिए हिन्दुओं द्वारा अपनी सभी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओंके

पूर्ण त्यागका और हिन्दू समाजसे छुआछूतको एक पाप समझनेके आग्रहपूर्वक निवेदनका एक अन्वेष-प्रबन्ध मात्र होगा। यदि ये बातें देशमें उत्साहका संचार नहीं कर सकतीं तो मैं एक निकम्मा सभापति सिद्ध होऊँगा। ऐसे किसी व्यक्तिको सभापति बनानेसे कांग्रेसका काम कैसे चलेगा, जो समूचे राष्ट्रसे एक ऊटपटाँग काम करानेकी योजना बनाये। हम अपनी राय बेखटके ऐसे शख्सके खिलाफ देंगे — फिर वह अपने कथनके प्रति कितना ही सच्चा और अपनी तजवीजके मुताबिक काम चलानेमें कितना ही माहिर क्यों न हो। हम उसे अपना सभापति नहीं बनायेंगे, क्योंकि वह हमारे कामका न होगा। मुझपर यही बात चरितार्थ हो सकती है।

ऐसी हालतमें मुझे चाहिए कि मैं अपना चुनाव न होने दूं। जिन सज्जनोंने मेरा नाम पेश किया है, उनके प्रेमकी मैं कद्र करता हूँ। पर मैं उनसे निवेदन करता हूँ कि वे मेरी स्थितिको समझें और मेरे साथ सहानुभूति रखते हुए मेरा नाम वापस ले लें।

तो अब सभापति पदके लिए दो नाम लेने लायक हैं — सरोजिनी नायडू और डाक्टर अन्सारी। जब मैंने डा० अन्सारीका नाम लिया तब एक मित्रने कहा कि इन चार सालोंमें डाक्टर अन्सारी चौथे मुसलमान सभापति होंगे।[1] पर मैं इसे कोई अड़चन नहीं मानता। हिन्दुओंको चाहिए कि वे एक मुसलमानको अध्यक्ष बनाकर हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अपनी दृढ़ अभिलाषाका परिचय दें। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंमें जो-कुछ थोड़े निष्पक्ष नेता हैं, डाक्टर अन्सारी उनमें से एक हैं। इसलिए सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकताकी दृष्टिसे डा० अन्सारीका चुनाव सबसे बढ़िया होगा।

लेकिन मैं तो वर्तमान कठिन अवसरपर श्रीमती सरोजिनी नायडूको अध्यक्ष बनानेके पक्षमें हूँ। वे स्थायी हिन्दू-मुस्लिम एकताकी हिमायती हैं। मुसलमान उन्हें अविश्वासकी दृष्टिसे नहीं देखते। अभीतक कोई भारतीय महिला कांग्रेसकी अध्यक्ष नहीं हो सकी है। जो आदर देशकी बहनोंको बहुत पहले मिल चुकना था, यह उसका सर्वोत्कृष्ट अवसर है। पूर्वी और दक्षिणी आफ्रिकामें उनके द्वारा की गई सेवाओंकी याद अभी हमारे दिलोंमें ताजा बनी हुई है। उनका पुरस्कार हम इससे बढ़कर दूसरा नहीं दे सकते कि आगामी अधिवेशनके लिए सरोजिनी देवीको अपना अध्यक्ष चुनें। इससे हमारे प्रवासी भारतीय भाइयोंका पक्ष पुष्ट होगा। वे खास तौरपर इस बातको महसूस करेंगे कि हम उनके हितोंकी उपेक्षा नहीं कर रहे हैं। दोनों उप-महाद्वीपोंमें सैकड़ों यूरोपीयोंने हमारी इस महिला राजदूतके प्रति बड़ा ही सौजन्य और सहानुभूति प्रदर्शित की है। हमारा यह चुनाव उनके इस सद्व्यवहार और सहानुभूतिके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना होगा। यह हमारे इस निश्चयका सूचक होगा कि हम प्रवासी भाइयोंके कामको अपना काम मानते हैं और आखिरी बात यह कि हमें इस बार एक निष्पक्ष सभापतिकी आवश्यकता है। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ कि मैं बिलकुल

१. अभिप्राय सन् १९२१ से १९२३ तक कांग्रेसके अध्यक्षोंमें हकीम अजमलखाँ (१९२१), मौ० अबुल कलाम आजाद (१९२३, विशेष अधिवेशन दिल्ली) और मौ० मोहम्मदअली (१९२३) के अध्यक्ष होनेसे है।

निष्पक्ष नहीं हूँ। मैं तो पुराने कार्यक्रमका ही कट्टर हामी हूँ। देशके और अपने सद्भाग्यसे श्रीमती नायडूके विचार इतने कट्टर नहीं हैं। इससे भी बढ़कर बात यह है कि उन्हें कोई किसी कार्यक्रमसे उस तरह एकात्म नहीं कह सकता जिस तरह मुझे अपने कार्यक्रमके विषयमें कहा जा सकता है। इसलिए मैं सभी प्रान्तीय कमेटियोंसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे मेरा नाम वापस ले लें और सरोजिनी देवीको अपना सभापति चुनें। हाँ, यदि पूर्वोक्त कारणोंसे वे किसी मुसलमानको सभापति बनाना चाहते हों और डाक्टर अन्सारीको यह पद देना चाहते हों तो बात अलग है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२०९. वर्णाश्रम या वर्णसंकर?

एक विदुषी लिखती हैं:

एक बहनने सफरके दौरान वारतेजकी राजपूत परिषद्के लिए भेजे आपके सन्देशकी[1] ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। उसे पढ़कर, मेरे दिलका वह विरोध उमड़ आया जो कि बहुत दिनोंसे मानसमें दबा पड़ा था। वह विरोध अपनी कहानी कहनेके लिए आतुर हो उठा। जो मनन करता है उसे मनुष्य कहते हैं। इसलिए मुझे आशा है कि आप अपने साथी विचारकके विचारोंके प्रति सहिष्णुता दिखायेंगे और घोर मतभेद होनेपर भी उन्हें धैर्यके साथ सुनेंगे। १९२० में साबरमती आश्रम और उसकी बुनाईशाला देखकर ये विचार मेरे दिलमें पहली बार उठे थे। फिर वे शान्त हो गये; किन्तु बीच-बीचमें उठते ही रहे। कुछ दिनोंसे तो उन्होंने मेरे दिलमें घर बना लिया है और अब राजपूत परिषद्वाला आपका सन्देश उनके उद्रेकका आखिरी निमित्त हुआ।

जहाँ स्टेशनपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फौजी ढंगकी पोशाक पहने हुए और तलवारें लटकाये हुए स्वयंसेवक पंक्तिबद्ध खड़े हुए थे, जहाँ सारा वायुमण्डल क्षत्रिय जातिकी वीरता और शौर्यके संस्मरणोंसे गूँज रहा था, वहाँ तलवारकी झंकारका स्थान चरखेकी गुन-गुनको देनेकी, सभी जातियों द्वारा आपको अपनी ही जातिका धर्म अपनानेकी आपकी सलाह क्या ईसाई पादरियोंकी सलाहके समान बिलकुल बेतुकी नहीं थी? क्या आपको प्राचीन ऋषियोंकी तरह ब्राह्मणको सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रियको आदर्श क्षत्रिय, वैश्यको एक आदर्श वैश्य बननेकी सलाह नहीं देनी चाहिए? ब्राह्मणका चिह्न पोथी या कलम, क्षत्रियका तलवार और वैश्यका चरखा या हल है। आप शौकसे अपनेको

१. देखिए "सन्देश: सौराष्ट्र राजपूत परिषद्को", ११-६-१९२४।

जुलाहा या किसान कहलवानेमें अपना गौरव मानें — ऐसा करना अपनी जातिकी स्वाभाविक वृत्ति या वैश्य-धर्मके प्रति आपकी वफादारी ही होगी। पर आप जैसे वर्णाश्रमके सिद्धान्तोंको माननेवाले हिन्दूका ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे उनका स्वाभाविक जाति-धर्म छुड़ाकर वैश्य-धर्म अंगीकार करानेके लिए इतना आग्रह करना और इस प्रकार उनके पतनमें सहायक बनना कहाँतक ठीक है? क्या आज भी क्षत्रिय वैश्य-धर्मको स्वीकार किये बिना गरीबोंकी रक्षा और सेवा नहीं कर सकते?

भारतवर्षके महापुरुषोंने तो हर व्यक्तिको स्वभावके अनुसार स्वधर्मका ही उपदेश हमेशा किया है। आप ही पहले-पहल इन तमाम धर्मोंको ताक पर रखकर सारे राष्ट्रको वैश्य-वृत्ति अंगीकार करनेका उपदेश दे रहे हैं। वैश्य-धर्मका उद्धार आप शौकसे कीजिए, पर दया करके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको पीछे न घसीटिये। आप अपनी जातिको शौकसे आध्यात्मिक बनाइए; परन्तु दूसरी जातिवालोंको अपने व्यक्तित्वके जादूसे मुग्ध करके जुलाहे और धुनिये बनाकर उन्हें भौतिकतावादी क्यों बनाये डाल रहे हैं? मेरी रायमें तो आपके आश्रमके विनोबा और बालकोबा[1] आपके बनाये आध्यात्मिक जुलाहोंकी अपेक्षा यदि शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और उन्होंने अपनी मेधाका पूर्ण विकास किया होता तो उनके द्वारा राष्ट्रकी कहीं अधिक सेवा होती।

यह पत्र मैंने पूरा नही दिया है — उसका सार-भाग जरूर दे दिया है। जो हिस्सा नहीं दिया गया है वह पूर्वोक्त अंगका भाष्य-मात्र है। पत्र-लेखिकाका जन्म हिन्दू-कुलमें हुआ है और वे उसका दावा भी करती हैं। मेरा भी यही दावा है। चरखेको मैंने भिन्न-भिन्न धार्मिक मतोंसे भी ऊँचा माना है। इसलिए मेरा यह खयाल था कि उसके बारेमें सुसंस्कृत मित्रोंको गलतफहमी नहीं होगी। पर ऐसा नही हुआ है। लेखिका कहती है कि मैं अकेली ही चरखेके खिलाफ नही हूँ। इसलिए मेरे लिए उचित है कि धीरजके साथ मैं उनकी दलीलोंपर विचार करूँ। १९०४ से मैंने पत्र-सम्पादन शुरू किया है। तबसे अबतकके अपने अनुभवसे मैंने यह देखा है कि सम्पादकोंके पास आनेवाली अधिकांश टीका-टिप्पणियोंका आधार अपने प्रतिपक्षीके वक्तव्यको पूरी तौरपर समझ न पाना ही होता है। प्रस्तुत विषयमें यदि लेखिका इस एक बातको अपने ध्यानमें रखती कि चरखेका पैगाम मैंने केवल हिन्दुओंको नहीं दिया है, बल्कि बिना किसी अपवादके तमाम भारतवासियोंको दिया है — फिर वे चाहे स्त्री हों या पुरुष और चाहे मुसलमान हों, पारसी हों, ईसाई हों, यहूदी हों, सिख हों या और कोई हों — वे सिर्फ अपनेको हिन्दुस्तानी मानते हों — तो वे इस तरह न लिखतीं। उस अवस्थामें वे इस अनुमानपर पहुँचतीं कि मैंने भारतके लोगोंके सामने एक ऐसी चीज पेश की है कि जो उसके विविध धर्मोंके विरुद्ध तो पड़ती ही नहीं है बल्कि जहाँतक उसका अमल किया गया है वहाँतक उससे उनके धर्मका और

१. विनोबाके अनुज।

हिन्दू धर्मवालोंके तो वर्ण या जातिका — तेज और गौरव ही बढ़ा है। इसलिए मेरा दावा है कि मेरा विधान वर्ण-संकरता फैलानेवाला नहीं, बल्कि वर्ण-शोधन करनेवाला है। मैं किसीसे यह नहीं कहता कि आप अपने पुश्तैनी धर्म-कर्मको छोड़ दीजिए; मैं हर मजहबवालोंसे यह जरूर कहता हूँ कि अपने स्वाभाविक कर्मके साथ-साथ चरखेको भी शामिल कर लीजिए। काठियावाड़के राजपूत इस बातको जानते थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या आप यह चाहते हैं कि हम अपनी तलवारें छोड़ दें? मैंने कहा, 'नहीं, मैं यह नहीं चाहता। जबतक आप लोग तलवारके कायल हैं तबतक मैं यही चाहता हूँ कि आप अपने पास ऐसी भरोसे लायक तलवारें रखें जो कभी दगा न दें।' मैंने उनसे यह भी कहा कि मेरे तई आदर्श राजपूत तो वह है जो तलवारके बिना ही अपनी रक्षा करे और जो बिना दूसरेपर प्रहार किये अपनी जगहपर खड़े-खड़े प्राण त्याग दे। तलवार तो हमसे कोई छीन सकता है पर बिना वार किये प्राण-विसर्जन करनेकी वीरता हमसे कोई नहीं छीन सकता। पर यह तो दूसरी ही बात हुई। मेरे प्रयोजनकी पूर्तिके लिए तो इतना ही दिखलाना काफी है कि राजपूतोंको निर्बलोंकी रक्षा करनेके अपने कर्त्तव्यको छोड़नेकी जरूरत मैंने नहीं बताई और न मैं यही चाहता हूँ कि ब्राह्मण लोग अपने अध्यापनकर्मको त्याग दें। मैंने तो सिर्फ उनसे इतना ही कहा है कि यदि वे त्यागमूलक सूत्र-विद्याको अपनायेंगे तो अधिक योग्य अध्यापक बन सकेंगे। विनोबा और बालकोबाने सूतकार, जुलाहा और भंगी बनकर, अपनेको योग्यतर ब्राह्मण बना लिया है। उनका ज्ञान अब अधिक परिपक्व हो गया है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मको जानता हो। मेरे ये दोनों साथी आज ईश्वरके नजदीक पहुँच गये हैं; क्योंकि वे भारतके लाखों क्षुधा-पीड़ित लोगोंकी हालतसे दुःखी होते हैं और उन्होंने चरखेके द्वारा उनके साथ अपने आपको एकात्म कर दिया है। ईश्वरीय ज्ञान पुस्तकोंसे नहीं मिल सकता। उसे तो हम खुद अपने अन्दर ही अनुभव कर सकते हैं। पुस्तकें बहुत हुआ तो एक हदतक सहायता दे सकती हैं — अकसर तो वे बाधक ही होती हैं। एक विद्वान ब्राह्मणको एक ईश्वर-परायण कसाईसे ब्रह्मज्ञान सीखना पड़ा था।

अच्छा तो यह वर्णाश्रम क्या चीज है? ये ऐसे विभाग नहीं हैं जिनका एक-दूसरेसे कुछ भी ताल्लुक न हो। मेरी रायमें तो यह एक वैज्ञानिक तथ्यकी स्वीकृति ही है — फिर चाहे हम उसे जानते हों या न जानते हों। ब्राह्मणका कर्म एकमात्र अध्यापन नहीं, वह उसका प्रधान कर्म है। पर जो ब्राह्मण शरीर-यज्ञ (शारीरिक श्रम) से इनकार करता है, उसे लोग मूढ़ कहेंगे। हमारे प्राचीन अरण्यवासी ऋषि लकड़ी काटते थे, पशु चराते थे और युद्ध भी करते थे। पर उनके जीवनका प्रधान कार्य था — सत्यकी शोध। इसी प्रकार विद्याविहीन राजपूत किसी कामका नहीं माना जाता था, फिर शस्त्र-विद्यामें चाहे वह कितना ही निपुण क्यों न हो। और वैश्य अपने आत्मविकासके लिए आवश्यक अध्यात्म ज्ञानके बिना सचमुच उस राक्षसके समान होगा जो समाजके मर्म-स्थलको चूसता रहता है — जैसे कि आजके कई वैश्य बन चुके हैं, फिर भले वे पूर्वके हों या पश्चिमके। 'गीता' के अनुसार ऐसे लोग सिर्फ अपने ही लिए जीनेवाले पापात्मा होते हैं। चरखे दाखिल करनेका उद्देश्य

ही हरएकको अपने कर्त्तव्यके प्रति जाग्रत करना है। वह हरएकको अपना धर्म या कर्त्तव्य अच्छी तरह पालन करनेकी सामर्थ्य देता है। जहाज जब शान्त समुद्रमें चल रहा हो तब हरएक कर्मचारी यथोचित ढंगसे अपना-अपना काम करनेमें लगा रहता है; पर जब जहाज एक घोर तूफानमें पड़ जाता है और डूबने लगता है तब हर शख्सको लोगोंके प्राण बचानेमें सहायता देनी पड़ती है — क्योंकि उस समय वही सबसे आवश्यक कार्य हो जाता है।

हमें एक बात और याद रखनी चाहिए। सारे संसारके साथ भारत भी आज जगद्व्यापी व्यापार-रूपी काल-सर्पकी लपेटमें जकड़ गया है। सिपाहियोंके बानेमें एक बनिया जाति उसपर शासन करनेका अधिकार जता रही है। उसकी जकड़से उसे छुड़ानेके लिए हिन्दुस्तानके तमाम ब्राह्मणोंको अपनी सारी विद्या-बुद्धि और साधन-सामग्री लगा देनी पड़ेगी। इसलिए उसके पण्डितों और सैनिकोंको अपनी तमाम विद्या और शस्त्र-कौशलको व्यापारिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें खर्च करना होगा। इसलिए उन्हें चरखा कातना सीखकर रोज उसे चलाना ही होगा, तभी वे सचाईके साथ अपने धर्मका पालन कर सकेंगे।

मुझे उन लोगोंके लिए भी, जो नीति और इज्जतके साथ अपनी जीविका चलाना चाहते हैं, हाथ-बुनाईकी सिफारिश करनेमें कुछ संकोच नहीं होता। उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा दूसरे लोगोंको जो आजकल अपने वंश-परम्परागत कर्मोंको छोड़कर धन कमानेके पीछे पागल हो रहे हैं, मैं जुलाहेका ईमानदाराना और (उनके लिए) प्रामाणिक काम सुझाता हूँ और उन्हें दावत देता हूँ कि आइए, फिरसे अपने-अपने धर्म-कर्मको अपनाइए और करघेसे जो-कुछ आमदनी हो उसीपर सन्तोष कीजिए। जिस प्रकार खाना, पीना, सोना आदि कर्म सब जातियों और मजहबोंके लिए सामान्य हैं, उसी तरह जबतक यह संकरता, स्वार्थमय लोभ और उसके फलस्वरूप कंगाली कायम है, तबतक कताई भी बिना अपवाद हरएकके लिए सामान्य कर्म होनी चाहिए। इसी कारण मेरी यह प्रणाली वर्णसंकर बनानेकी अर्थात् अधिक गोलमाल पैदा करनेका नहीं, बल्कि वर्णाश्रमकी स्थापना करके उसे विशुद्ध और अधिक सुरक्षित बनानेकी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२१०. खद्दर क्या कर सकता है?

आन्ध्र जिलेसे एक पत्रलेखक लिखते हैं:[1]

मैंने १९२१ में मद्रासके प्रेसिडेंसी कालेजसे पढ़ना छोड़ा था। मेरे चाचाने मई १९२१ में मुझे खद्दरका धन्धा चलानेके लिए बीस चरखे बनाने लायक लकड़ी, कुछ रुई और बीस रुपये दिये। एक बढ़ईकी सहायतासे मैंने उस लकड़ीसे चरखे बनवाये और उनमें से शायद चार पंचम वर्णके लोगोंको दिये। मैंने उन पाँच चरखोंसे काम शुरू किया था; और अब मेरे निरीक्षणमें लगभग चार सौ चरखे चल रहे हैं। . . . खद्दरके धन्धेमें पिछले तीन वर्ष तक संघर्ष करनेके बाद मुझे श्री पोनियाके साथ — जो कुर्नूल जिलेके नागालापुरम् गाँवमें यही धन्धा कर रहे हैं — इसकी एक दूसरी योजना बनानेकी आवश्यकता महसूस हुई, जिससे कतैये और बुनकर हमारे-जैसे सहायकों (खद्दर-कार्यकर्त्ताओं) के न मिलनेपर नुकसान न उठायें। . . . श्री पोनिया, नागालापुरम्में और मैं यहाँ दो महीनेसे इस तरीकेको अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं और हम लगभग सफल भी हो गये हैं। इससे लोगोंको और हमें बड़ी राहत मिली है।

लेखकने अपने रोचक कार्यका और भी विवरण दिया है। मुझे उसमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु उस विवरणमें यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त सामग्री है कि खद्दर राष्ट्रके आर्थिक जीवनमें धीरे-धीरे चुपचाप कैसी क्रान्ति ला रहा है।

हम यहाँ बीजापुर जिलेके एक विवरणमें से कुछ उद्धरण देते हैं।[2]

ये उदाहरण पैसे लेकर काम करनेवाले लोगोंके हैं। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसके चुने हुए प्रतिनिधि और अन्य लोग कताईको राष्ट्रीय कर्त्तव्यका अंग समझकर कातने लगेंगे, तब शहरोंमें भी उदासीनता नहीं रहेगी। तब शहर भी जैसे होने चाहिए — ग्राम्य जीवनका ही विस्तार बन जायेंगे और ऐसे नहीं रहेंगे, जैसे आज हैं। आज तो वे हमारे जीवनसे बिलकुल ही अलग विजातीय विस्तार-जैसे लगते हैं। वे ग्रामवासियोंके स्वस्थ जीवनको चूसकर उसे मटियामेट किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

१. अंशतः उद्धृत।

२. नहीं दिये जा रहे हैं। विवरणमें बीजापुर जिलेके कई गाँवोंमें चरखा कताई और बुनाईके कार्यका तथा उसके जरिये कई ग्रामनिवासी स्त्री-पुरुषों द्वारा अपनी आजीविका कमानेका विस्तृत उल्लेख है।

२११. मिलोंकी हिमायत

एक महाशय लिखते हैं:

आपकी रायमें स्वराज्य हासिल करनेका सबसे बढ़िया साधन चरखा है। आपके उच्च आदर्श और स्वार्थत्यागसे इनकार नहीं किया जा सकता। पर यह समझमें नहीं आता कि आप यह क्यों नहीं सोचते कि खादीका घर-घरमें प्रचार करके आप अनेक मिलवालोंको और उनसे भी बढ़कर उन व्यक्तियोंको जिनके मिलोंमें शेयर हैं, बड़े घाटेमें और घोर-संकटमें डाल देंगे? मिलवालोंने मिलोंमें लाखों रुपया लगाया है और शेयर खरीदनेवालोंने — जिनमेंसे कितनोंको ही रोटीके लाले पड़े हैं — मिलोंकी समृद्धि देखकर अपनी सारी जमा-पूंजी शेयरोंमें इसलिए डाल दी है कि उससे प्राप्त होनेवाले खासे मुनाफेसे निर्वाहका एक सुविधाजनक साधन मिल जायेगा। इसका फल यह होगा कि उन निचली श्रेणीके लोगोंकी हालत सुधारनेकी आशामें, जिन्हें अपनी इज्जत-आबरूका कुछ भी खयाल नहीं होता और जो किसी भी उपायसे अपना पेट पाल सकते हैं, आप उतने ही बल्कि उससे भी अधिक मध्यम श्रेणीके लोगोंको बरबाद कर देंगे।

२. आप तो ऐसे महात्मा हैं जिनका सारी मानवताके प्रति अत्यन्त ही निःस्वार्थपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण भाव है। इसलिए आपको तो सभीके साथ ठीक न्याय ही करना चाहिए और इसलिए अपने पूरे बुद्धिबलका प्रयोग कीजिए और कोई ऐसा मध्यम मार्ग निकालिए जिससे एकको नुकसान पहुँचाकर दूसरेका लाभ न हो — चरखेको भी एक हद तक ही बढ़ावा दीजिए, पर दूसरी ओर मिलवालों और शेयर रखनेवालोंकी बहुसंख्याको भी मदद देनी चाहिए।

३. आप विदेशी कपड़ेका बहिष्कार बेशक कीजिए, परन्तु खादी और मिलका कपड़ा दोनोंमें से किसीका इस्तेमाल करनेकी छूट दे दीजिए। इससे आप अनेक उच्च और मध्यम वर्गके लोगोंके सहायक बनेंगे।

यह पत्र शोचनीय है। मनमें यह उठने लगता है कि यदि लेखकके तमाम अन्देश सच हो जायें तो क्या ही अच्छा हो। क्योंकि उसी अवस्थामें ये महाशय समझ सकेंगे कि मिलों और शेयर रखनेवालोंकी बरबादीकी घड़ी ही खुद उनके तथा भारतवर्षकी मुक्तिकी घड़ी है। ऐसा होनेपर वे यह भी देखेंगे कि हिन्दुस्तानकी धमनियोंमें नया खून बह रहा है और मध्यमवर्ग आज भूखों मरनेवाले किसानोंकी कीमतपर जीनेके बजाय सुखी और समृद्ध किसानोंके साथ सहयोग करते हुए अपना निर्वाह कर रहा है। ये किसान लोग खुशी-खुशी उन चीजोंको, जिन्हें वे पैदा नहीं, कर सकते पर जिनकी उन्हें जरूरत तो रहती है, अपनी पैदा की हुई चीजके बदलेमें ले लेंगे। थोड़ा विचार करनेसे ही पूर्वोक्त पत्र-लेखक समझ जायेंगे कि चरखेका

प्रचार इस हदतक करनेके लिए, जिससे मिलें उखड़ जायें, खुद पत्रलेखक तथा दूसरे हिस्सेदारों और मिलोंके डायरेक्टरोंको जनताके साथ पूरा सहयोग करना होगा। पत्र-लेखकको यह बात जानकर तसल्ली हो सकती है कि मिलके कपड़ेपर असर तो तब पड़ेगा जब खादी लगभग ६० करोड़ रुपयेके विदेशी कपड़ेकी जगह ले ले। परन्तु मैंने जिन कारणोंका उल्लेख इस पत्रमें किया है उनके अनुसार हमें मिलका कपड़ा छोड़कर केवल खादीकी ही बात सोचनी चाहिए। हमारी मिलोंको मेरे तथा दूसरे किसीके आश्रयकी जरूरत नहीं है। उनके पास खुद अपने आढ़तिये हैं और अपने मालके विज्ञापनकी अपनी निराली तरकीबें हैं। इसलिए जो लोग कांग्रेसमें हों उन्हें खादीके बदले मिलका कपड़ा पहननेकी छूट देना मानो खादी-उद्योगका नाश करना है। इससे पहले कि खादीका असर कपड़ेके बाजारपर हो, उसे जितना रक्षण दिया जा सके, दिया जाना चाहिए।

यह तो हुआ पूर्वोक्त पत्रलेखक तथा उनके सदृश विचार रखनेवाले लोगोंके चित्तकी शान्तिके लिए। परन्तु यहाँ यह कह देना चाहिए कि यदि यह पत्र मिलों और मध्यम वर्गपर आनेवाली विपदाके अज्ञानपूर्ण भयसे न लिखा गया होता तो मैं इसे हृदयहीनताका नमूना कहता। "जिन्हें अपनी इज्जत-आबरूका कुछ भी खयाल नहीं होता और जो किसी भी उपायसे अपना पेट पाल सकते हैं"—इस प्रकार निचली श्रेणीके लोगोंका परिचय देनेमें पत्रलेखकका मन्शा क्या है? क्या उन्हें यकीन है कि निचले दर्जेके लोगोंको अपनी इज्जत-आबरूका कुछ विचार नहीं होता? क्या उनके हृदय नहीं होता और उसमें भाव भी नहीं होते? क्या कड़वे और तीखे शब्द उन्हें बुरे नहीं मालूम होते? उनके निचले होनेका कारण सिवा उनकी गरीबीके और क्या है? और क्या उनकी गरीबीके लिए मध्यमवर्ग जिम्मेदार नहीं है? मैं पत्र-लेखकसे यह भी कहना चाहता हूँ कि "निचली श्रेणीके लोग" किसी भी उपायसे अपना पेट नहीं भर पाते, यही नहीं बल्कि उनका एक बड़ा भाग अध-पेट रहकर जिन्दगी काट रहा है। यदि मध्यमवर्ग निचले वर्गके लिए स्वेच्छापूर्वक नुकसान बरदाश्त करे तो कहना होगा कि उसने अबतक शोषणमें जो सहयोग दिया, उसका देरसे ही सही थोड़ा-सा बदला चुकाया है। निचले कहे जानेवाले वर्गसे ऊँचे होनेका यह अभिमान और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली उनके कष्टोंके प्रति निष्ठुरता ही स्वराज्यके रास्तेमें विघ्नरूप है और जीवनदायी चरखेकी प्रगतिको रोकती है। मैं पत्रलेखकसे प्रार्थना करता हूँ कि वे सारी स्थितिपर सर्वसाधारणकी दशाका ध्यान रखकर विचार करें और चरखेको अपनाकर अपनेसे कम सुखी देशभाइयोंके साथ अपनेको एकात्म करें।

अन्तमें पत्रलेखकको यह बात भी याद रखनी चाहिए कि यदि समूची मानवताके प्रति अपनी मानवीयताके आधारपर मुझसे निचले वर्गकी बलि देकर मिलोंके प्रति दयाभाव रखनेकी बात कही जाये तो उसी कारणसे विदेशी मिलोंके प्रति भी दया-भाव रखनेका आग्रह किया जा सकता है; जैसा कि कितने ही मित्रोंने किया भी है। परन्तु यदि यह बात सच हो कि विदेशी मिलोंने हमारी साधारण जनताकी सुख-समृद्धिका नाश किया है—और यह निस्सन्देह सच है—तो विदेशी मिलवालोंका नुकसान होते हुए भी मानव-दयाकी खातिर सर्वसाधारणको फिरसे चरखा ग्रहण

करनेकी शिक्षा दिये विना चारा नहीं। इसी प्रकार यदि आवश्यक हो तो देशी मिलोंका भी सर्वसाधारणके हितमें, जिसे गरीब बनाकर वे मालामाल हो रहे हैं घाटा उठानेके लिए तैयार हो जाना लाजिमी है। हमारे देहातमें जाकर कोई साहसी नानबाई चूल्हे बन्द करानेके लिए नानकी सस्ती दूकानें खोले तो मुझे आशा है कि सारा समाज उसका विरोध करेगा। इस विरोधका जो कारण होगा, मेरे मिल विरोधका भी वही कारण है। लेकिन उसी सूरतमें, जब वे सर्वसाधारणके हितमें बाधक होंगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२१२. अधिकार-वंचित

श्री जमालुद्दीन मखमूर लिखते हैं :

> १९२३ के नवम्बरमें किये गये नगरपालिकाके पिछले चुनावमें, मेरवाड़ाके अतिरिक्त सहायक आयुक्तने मेरा नाम ब्यावरकी मतदाता-सूचीसे इस आधार-पर निकाल दिया था कि मुझे दण्ड प्रक्रिया संहिताके खण्ड १०८ के अन्तर्गत छः महीनेकी सजा हो चुकी है। . . . मैंने १० अक्तूबरको आयुक्तके यहाँ अपील कर दी . . . इसपर कोई ध्यान नहीं दिया गया और चुनाव कर लिया गया। तबसे मैं आयुक्तके कार्यालयसे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था और आज १० जुलाईको मुझे निम्न सूचना प्राप्त हुई है :[1]

यह ऐसा ही है, जैसे फाँसी दे देनेके बाद क्षमा-दानका आदेश भेजना। इस समय कदाचित् मतदानका अधिकार बहुत महत्त्वका न हो। किन्तु जब लोग अपने अधिकारोंके बारेमें जागरूक हो जाते हैं, तब महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर एक मत भी बाजी पलट देनेके लिए काफी होता है। श्री जमालुद्दीनको एक ऐसे मामलेमें, जिसमें किसी लम्बी जाँचकी आवश्यकता नहीं थी और आयुक्तको चुनाव जल्दी ही होनेकी बात अवश्य ही मालूम होगी, इस असाधारण विलम्बके लिए स्पष्टीकरण माँगनेका अधिकार है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, यह घटना असहयोग करनेके लिए एक और कारण प्रस्तुत करती है। मैं अधिकारियोंके ऐसे सभी कामोंको बहुत सन्देहकी दृष्टिसे देखता हूँ। उनसे लोगोंके मताधिकार और अन्य अधिकारोंके प्रति तिरस्कारका भाव व्यक्त होता है। यदि लोगोंके पास इस भ्रष्टाचारके विरुद्ध तत्काल कोई उपाय नहीं है तो मैं इसे इस बातका कोई कारण नहीं मान सकता कि जनमतकी नितान्त अवज्ञा करके भारतीय प्रशासन चलानेमें अधिकारियोंसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे कोई सहयोग किया जाये।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १७-७-१९२४

१. यह यहाँ नहीं दी जा रही है। इसमें प्रार्थीका नाम मतदाता-सूचीमें शामिल कर लेनेकी मंजूरी दी गई थी।

२१३. पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको

साबरमती
आषाढ़ बदी ३ [१९ जुलाई, १९२४][1]

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। अनुवाद देख लिया है। तुम्हारे दुःखी होनेका कोई भी कारण नहीं है। डरनेका समय वही होता है जब संसार हमें पूजे। जब जगत हमारी निन्दा करता है तब प्रभुके निकट होनेकी सम्भावना होती है। जगत्की स्तुति सुनकर मीराबाई हँसती थी। तुम त्यागपत्र अवश्य दो। सेहतको खराब करके वहाँ रहना तनिक भी वांछनीय नहीं है। लेकिन फिर भी सावधानीके तौरपर जमनालालजीसे[2] सलाह ले लेना। धर्मकी कसौटी गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख और अन्य द्वन्द्वोंको सहन करनेमें ही है।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री नानाभाई इच्छाराम
अकोला
बरार

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३१६) से।
सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

२१४. विदग्ध अथवा अर्धदग्ध

गणपत नामका एक विद्यार्थी अपने परिजनोंको निम्न पत्र[3] लिखकर ७ जुलाईको अपने घरसे भाग गया है :

इस पत्रमें जितना देशप्रेम है उतना ही अज्ञान है। कहाँ डायरशाही और कहाँ एक अंग्रेजका किसी स्त्रीको गाली देना। ऐसे दृश्य देखना शहरोंमें घूमने-फिरनेवालोंकी किस्मतमें बदा ही है। केवल गोरे ही भारतीय स्त्रियोंको गालियाँ नहीं देते; भारतीय भी देते हैं और वे तो उन्हें मार तक देते हैं। उद्धत भारतीय स्टेशन मास्टरों और सिपाहियोंको बहनोंपर जुल्म करते किसने नहीं देखा? इस दुष्टताका निवारण कहीं घरसे भाग जानेसे हो सकता है?

१. डाकखानेकी मुहरसे।
२. जमनालाल बजाज।
३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

जब गोरेने स्त्रीको गालियाँ दीं तब गणपत देखता कैसे रहा? यदि उसे इससे दुःख हुआ था तो उसके पास दो-तीन रास्ते थे। वह अहिंसाका प्रयोग करके नम्रभावसे उस गोरेको समझाता और यदि ऐसा करनेपर उसको मार भी खानी पड़ती तो खा लेता और इस प्रकार उस बहनको गालियाँ खानेसे बचाता; अथवा यदि वह 'शठम् प्रति शाठ्यम्'के न्यायको मानता था तो वह उस झगड़ेको अपना बनाकर उस गोरेसे भिड़ सकता था। यदि वह सहयोगी है तो उसके लिए तीसरा रास्ता यह था कि वह उस स्त्रीको थानेमें ले जाता और वहाँ उसकी शिकायत दर्ज कराता और यदि उसे इससे न्याय न मिलता तो वह स्वयं असहयोगी बन जाता। हम इसपर चाहे जिस तरह विचार करें, उसे घरसे भागनेका मार्ग तो अख्तियार ही नहीं करना था। यह उपाय [मुक्तिदाता होनेके बजाय] बन्धनकारी सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थी गणपतने लिखा है, 'अब मैं जीवनका मर्म समझ गया हूँ'। वह क्या समझ गया है सो तो भगवान जाने। वह घरसे भागकर क्या साधना करेगा? जितना कुछ वह करना चाहता था, घर रहते हुए कर सकता था। कायरतापूर्वक घर-से भागकर ज्ञानोपलब्धि नहीं होती। साहस भी नहीं आता। सब लोग बुद्ध नहीं हो सकते। सरस्वतीचन्द्र[1] तो गोवर्धनभाईकी[2] कल्पनामें बसता था। विद्यार्थी गणपत तो सरस्वतीचन्द्रसे भी आगे बढ़नेकी आशा रखता है। गोवर्धनभाईने सरस्वतीचन्द्रको तो कोल्हूके बैलकी भाँति एक ही जगह घुमाया-फिराया है। वह 'नवीन' तो हुआ ही नहीं। वह नवीन अनुभव प्राप्त करनेके बाद भी कुमुदको[3] छोड़ कुसुममें[4] रम गया तथा अन्तमें उससे अपनी पूजा करवाई। 'सरस्वतीचन्द्र'से तो शिक्षा यह लेनी है कि हम कर्त्तव्य पथसे कदापि विचलित न हों। जिस दुःखका निवारण नहीं हो सकता हम उसे साक्षी बनकर सहन करें और उसके निवारणके उपायोंकी खोज करें। दुःखोंके निवारणके उपाय तो दुःखोंको सहनेसे ही मिलेंगे, दुःखोंसे दूर भागनेसे नहीं।

यदि विद्यार्थी गणपत अबतक जंगलमें न चला गया हो और छिपा रहकर भी 'नवजीवन' पढ़ता हो और यदि उसे यह अंक दिखाई दे जाये तो वह मेरे-जैसे अनुभवीकी विनतीपर ध्यान देकर वापिस आ जाये। वह अपना अध्ययन जारी रखे, स्वास्थ्य अच्छा न हो तो कोई बात नहीं — ब्रह्मचारी अवश्य रहे, ईश्वर भक्त जरूर बने, जीवनका रहस्य सेवाभाव है यह सीखे और यह भी जान ले कि सेवा घर छोड़कर भागनेसे नहीं होती।

अरण्यवासका मार्ग सही मार्ग नहीं है, मैं यह नहीं कहना चाहता। वहाँ जाकर तो बहुत-कुछ सीखा जाता है, लेकिन इसके लिए मनुष्यको पहले अधिकारी बनना चाहिए। हम सब बुद्ध बननेका साहस न करें। हम तो सुदामा बनें। अर्जुनको युद्ध-भूमि छोड़कर भागनेसे रोकनेवाले कृष्ण मूर्ख नहीं थे। रामने पिताकी आज्ञाका पालन किया; परन्तु भरतको अयोध्यामें बाँध दिया तथा स्वयं जंगलमें जाकर मंगल

१. सरस्वतीचन्द्र नामक गुजराती उपन्यासका नायक।
२. गोवर्धन त्रिपाठी, उक्त उपन्यासके लेखक।
३ व ४. उक्त उपन्यासके स्त्री-पात्र।

किया और वहाँ तपश्चर्या करके आदर्श पुरुष बने। सौभाग्यसे, भागनेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या ज्यादा नहीं है इसलिए मुझे विद्यार्थी गणपतकी चर्चाको विस्तार देनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन घरमें रहनेवाले विद्यार्थी गणपतसे बहुत-कुछ बोध ले सकते हैं। हमें दुःखोंको देखकर जड़ अथवा उदासीन नहीं होना चाहिए। हम गणपतकी-सी भावनाका ही विकास करना चाहते हैं। हमें अपनी विद्या कौड़ियोंके भाव नहीं बेचनी है। हम देशके निमित्त ज्ञान अर्जन करें और उसके द्वारा सेवा करें। हम गणपत-जैसी भावनाका विकास करें और उसमें विवेक-बुद्धिका उचित समन्वय करके सन्तुलन रखें। हम सन्तुलन रखना सीखकर धीरज रखना सीखें। हम स्थितिका अध्ययन करके और उपचार ढूँढ़कर उसे दृढ़तासे आजमाएँ। हम बहुत सोच-विचारकर निश्चय करें, लेकिन एक बार निश्चय कर लेनेपर उसका पालन वज्र-जैसी दृढ़तासे करें। गणपत तिरस्कारका पात्र तो अवश्य ही नहीं है। वह दयाका पात्र भी नहीं है। प्रत्युत वह प्रशंसाका पात्र है। उसने केवल उतावलीमें कदम उठाया है। हमें ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए; बल्कि हम जहाँ हैं वहाँ रहते हुए ही हमें अरण्यकी-सी स्थिति उत्पन्न कर लेनी चाहिए। शान्ति और वैराग्य — आदि गुण मानसिक स्थितियाँ हैं। यह सच है कि कुछ लोगोंको भटकनेसे शान्ति मिलती है। लेकिन बहुतसे लोगोंको तो वह जगतके जंजालमें रहते हुए अनुभवसे ही मिल जाती हैं। हमारा मार्ग तो बहुजन मार्ग है और यही राजमार्ग भी है।

सहजभावसे तुम यों रहो,
जैसे-तैसे हरिको लहो।[1]

यह अखा भगत लिख गये हैं, वे सच्चे ज्ञानी थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१५. प्रश्नोत्तरी

असहयोगके अध्येता एक मित्रने कुछ सवाल पूछे हैं। बहुतसे लोगोंके लिए वे उपयोगी हो सकते हैं, इसलिए उनको जवाब सहित यहाँ देता हूँ:

"सिस्टम" का अर्थ

प्र० — हमारा विरोध व्यक्तियोंसे नहीं 'सिस्टम' से है। यहाँ सिस्टमका क्या अर्थ है? समुदाय, पद्धति या संस्कृति?

समुदाय हरगिज नहीं। पद्धति जरूर है और जहाँतक संस्कृति उसके लिए जिम्मेदार हो वहाँतक संस्कृति भी।

१. सुतर आवे तेम तू रहे।
जेम तेम करीने हरिने लहे।

'समरथको नहिं दोष गुसाईं' नामक लेखमें[1] आपने लिखा है कि सर शंकरन् नायरके साथ जो अन्याय हुआ है उससे इस राजतन्त्रकी बुराई अधिक स्पष्ट हो गई है। आप दूसरी ओर अ० भा० कां० क० के सदस्योंको लिखते[2] हैं कि "यदि हम अदालतों और पाठशालाओंकी तरफ खिंचाव होते हुए भी उनका विरोध करते हैं तो फिर हमारा विरोध पद्धतिसे नहीं, व्यक्तियोंसे हो जाता है . . . मेरा स्वराज्य तो अपनी संस्कृतिके प्राणको अक्षुण्ण रखनेमें है।"

इन दोनों अंशोंपर विचार करें तो जान पड़ता है कि पहले अंशमें इशारा 'गोरोंके द्वारा चलाई जानेवाली शासन-पद्धति'की ओर है, किन्तु दूसरेमें संस्कृति-पर कटाक्ष है।

नहीं, ऐसा हरगिज नहीं है। यदि सर शंकरन्‌का न्यायाधीश कोई काला आदमी होता तो भी ऐसा ही अन्याय करता। वह न्यायाधीश वर्तमान ब्रिटिश राजनीतिका पुर्जा होनेके कारण दूसरा निर्णय नहीं ले सका। हिन्दुस्तानमें रहनेवाले हम लोग जानते हैं कि वर्तमान राजतन्त्रमें काम करनेवाले हिन्दुस्तानी न्यायाधीशोंसे नाजुक मौकोंपर न्यायकी आशा नहीं रखी जा सकती। यह उनका नहीं, प्रणालीका दोष है। मामूली आदमी अपने वातावरणसे ऊँचा नहीं उठ सकता; जो ऊँचा उठ सकता है वह ऐसी किसी त्याज्य पद्धतिमें एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। असहयोग हमें इसी तत्त्वकी शिक्षा देता है। मैंने तो कितनी ही वार कहा है कि यदि वर्तमान प्रणाली कायम रहे और उसमें तमाम अधिकारी हिन्दुस्तानी हों तो भी वह मेरे लिए त्याज्य है।

मैं समझता हूँ कि हमने असहयोगकी योजना अपनी संस्कृतिकी रक्षाके लिए नहीं बनाई थी, बल्कि अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए बनाई थी — फिर संस्कृतिकी रक्षा उसका अप्रत्यक्ष, किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम भले ही हो।

हमारी प्रतिष्ठापर जो हमला होता था वह प्रत्यक्ष था। इसलिए उसकी बात करना अधिक प्रभावकारी था। परन्तु हमारी प्रतिष्ठा हमारी संस्कृतिमें छिपी हुई थी। अब जब कि प्रतिष्ठाकी रक्षा न होनेपर भी सरकारी अदालतों और पाठशालाओं आदि-का मोह बढ़नेका भय फिर दिखाई देता है, तब हम उसके द्वारा संस्कृतिपर जो प्रच्छन्न आक्रमण हो रहा है उसे स्पष्ट रूपसे सामने रखते हैं। इस तरहकी दलीलें सोच-सोचकर नहीं दी जातीं। वे परिस्थितिसे उत्पन्न होती हैं। अगर हम गहराईसे विचार करें तो प्रतिष्ठा, संस्कृति, पद्धति आदि शब्दोंका परस्पर सम्बन्ध दिखाई दे सकता है और समझा जा सकता है कि उन सबका मूल एक ही है।

सरकारी अदालतोंमें किसी विघातक तत्त्वके होनेपर मुझे यकीन नहीं हुआ है; फिर भी मैं उनमें अपने पड़ोसीके विरुद्ध अभियोग नहीं ले जाऊँगा, क्योंकि वे उस विदेशी सरकारकी अदालतें हैं जो हमपर जुल्म करती है। इसी प्रकार मौजूदा

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-६-१९२४।
२. देखिए "खुला पत्र: कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके नाम", २६-६-१९२४।

शिक्षा-पद्धतिमें बुराई न देखनेवाले आदमीको भी उसका बहिष्कार करना चाहिए। सरकारी अस्पतालकी दवा कितनी ही अच्छी हो और पुलिसका प्रबन्ध कितना ही सराहनीय हो फिर भी असहयोगियोंको उनसे लाभ न उठाना चाहिए।

जिन लोगोंने अदालतों और पाठशालाओंमें इतना ही दोष देखा है कि वे गैरोंकी हैं, उनके लिए असहयोग कठिन है। इस बुराईकी जड़ यह नहीं है कि ये संस्थाएँ पराई हैं, बल्कि यह है कि ये एक दूषित पद्धतिकी अंग हैं। इस जगह पद्धतिकी व्याख्याकी जरूरत है; क्योंकि प्रश्नकर्त्ताने "शिक्षा-पद्धति" शब्दोंका प्रयोग किया है। मुझे सरकारकी शिक्षा-पद्धतिमें भी दोष दिखाई देता है। परन्तु मेरा विरोध उसके कारण नहीं है। मेरा विरोध शासन-पद्धतिसे है — उस पद्धतिसे है जिसमें राज्यकर्त्ताका आर्थिक स्वार्थ प्रधान रहता है और इस कारण जिसमें धर्म या नीतिका स्थान गौण है; जिसमें राज्यकर्त्ता अपने आर्थिक लाभकी रक्षाके लिए डायरशाही-जैसे काण्ड रचनेमें नहीं हिचकते और कोई भी पाप करते हुए नहीं डरते। यदि यह पद्धति ऐसी स्वार्थमय न होती तो अंग्रेजी राज्यको पराया कहनेका कोई मौका ही न आता। इस दलीलकी सचाईकी कसौटी यह है — फर्ज कीजिए कि यह सरकार पंजाबके हत्याकाण्डका प्रायश्चित्त कर ले, विदेशी कपड़ेका आना बन्द कर दे, खादीको प्रोत्साहन दे, अफीम-शराबसे प्राप्त आय समाप्त कर दे, फौजी खर्चमें ७५ फी-सदी कमी कर दे, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता कराना अपना कर्त्तव्य समझे तथा अन्यान्य बातोंमें लोकमतका आदर करे तो उसका विरोध कौन करेगा; और यदि कोई करे तो उसे कौन सुनेगा? फिर हम दूसरी बातोंमें दोषयुक्त होनेपर भी वर्तमान अदालतों और पाठशालाओंका बहिष्कार नहीं करेंगे। पूर्वोक्त स्वार्थमय राजनीति आधुनिक या पाश्चात्य संस्कृतिका आधार है। परन्तु जो लोग इस प्रकार गहराईमें जाना नहीं चाहते उनमें उसके प्रति विरोध जाग्रत करनेके लिए इस संस्कृतिसे उत्पन्न सरकारकी डायरशाही-जैसे स्पष्ट परिणाम पर्याप्त हैं।

आप लिखते हैं कि सरकारी राजनीतिका उद्देश्य हममें "अंग्रेजियत" भरना है। हम जहाँ 'अंग्रेज' बने कि हमारे राज्यकर्त्ता तुरन्त खुशीसे राज्यकी बागडोर हमें सौंप देंगे और अपने आढ़तियोंके रूपमें हमारा स्वागत करेंगे। क्या अंग्रेज लोग इतने निःस्वार्थ भावसे यहाँ बने हुए हैं? जिसे आप उनका दोष बताते हैं उसीको वे पुकार-पुकार कर अपना गुण बताते हैं। यदि हम यूरोपीय चाल-ढाल कुबूल कर लें तो क्या अंग्रेज यहाँसे चले जायेंगे? हम अपनी इच्छासे उनके आढ़तिये कैसे बन सकते हैं? इंग्लैंड और जर्मनीकी संस्कृति एक ही है। फिर भी उनमें झगड़े होते हैं या नहीं? मैं तो कहता हूँ कि संस्कृति एक है, उनमें इसी कारण झगड़े होते हैं।

इसमें बहुत-सी बातें एक-साथ आ गई हैं। यदि हम जंगली हो जायेंगे तो हम खादीवादी नहीं रह सकेंगे। आधुनिक संस्कृति परिणाममें जड़वादी और अनात्मवादी है। हमारे जंगली होनेका यह अर्थ है कि हम दुनियाको लूटनेकी पद्धतिको स्वीकार कर लें। फिर हम किसानोंकी हालतकी ओरसे लापरवाह हो जायेंगे और

पशुबलको अपने जीवनका आधार बना लेंगे। इससे फौजका खर्च और अन्य खर्च तो ऐसे ही रहेंगे। यदि ऐसा होगा तो फिर उन्हें हमसे कोई शिकायत न रहेगी।

जब हमारी जरूरतें बहुत बढ़ जायेंगी तब हम इंग्लैंडके सबसे बड़े खरीदार बन जायेंगे; और इस प्रकार उसके स्वेच्छापूर्वक खरीदार यानी आढ़तिया बन जायेंगे। इंग्लैंड और जर्मनीकी लड़ाई भी इसी संस्कृतिका किन्तु भिन्न रूपमें उत्पन्न फल है। दोनों देश निर्बल राष्ट्रोंसे लाभ उठाना चाहते थे और दोनों ज्यादासे-ज्यादा हिस्सा माँगते थे, वे इसी कारण लड़ पड़े। परन्तु उनकी और हमारी लड़ाईमें भारी भेद है। इनका मुकाबला बराबरवालोंका था और उसमें स्व-प्रतिष्ठाका प्रश्न नहीं था। हमें तो प्रतिक्षण अपनी प्रतिष्ठाका खयाल रखना पड़ता है। यदि हम यूरोपकी संस्कृतिको ग्रहण कर लें तो फिर जबतक हम अंग्रेजोंके ग्राहक बने रहेंगे, तबतक हमारे और उनके बीच बहुत कालतक लड़ाई होनेकी सम्भावना न रहेगी। अंग्रेज लोग बार-बार यह बात कहते हैं कि हम अभी अपना कारबार चलाने लायक नहीं हुए। उनका यह कथन कोरा बहाना ही नहीं है। कितने ही लोग यह बात मानते हैं और कहते भी हैं कि जबतक हमारी संस्कृति जुदा रहेगी, हम तबतक यूरोपीय पद्धतिके अनुसार राज्य-संचालन करनेके योग्य न होंगे। दक्षिण आफ्रिका और अन्य देशोंको पूरी सत्ता प्राप्त है। इसका क्या कारण है? शोधकोंको दिखाई देगा कि वहाँके गोरे एक ही संस्कृतिके पुजारी हैं। इससे वे इंग्लैंडके आढ़तिये बन गये हैं। इंग्लैंड अपना माल उन गोरोंकी मार्फत बेचता है। इससे उसे वहाँ खुद अपने आदमियोंको रखनेकी जरूरत नहीं होती। यह बात नहीं है कि उनका खून एक हो। अगर दक्षिण आफ्रिकाके गोरे आज निःस्वार्थ होकर वहाँके हबशियोंके हितोंको प्रथम स्थान दें तो उनके गोरे होनेपर भी इंग्लैंड बड़ी चिन्ता और दुविधामें पड़ जायेगा। हम यह तो देखते ही हैं कि जब कभी ऐसे परोपकारी अंग्रेज सामने आते हैं तो अंग्रेजोंका समाज उनका बहिष्कार करता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१६. टिप्पणियाँ

भाई इन्दुलालका पत्र

मुझे विश्वास है कि भाई इन्दुलाल याज्ञिकने मेरे नाम जो खुला पत्र लिखा है, वह सभीने पढ़ लिया होगा। उनके पत्रकी प्रत्येक पंक्तिसे देशप्रेम झलकता है। उसमें अविनय तो कहीं भी नहीं है। यदि ऐसे सद्भावसे लिखे गये पत्रमें कोई दोष हो भी तो उसे बतानेकी इच्छा नहीं होती। मेरा मन तो यही कहता है कि इस पत्रका उत्तर देना पाप है। उसका कोई उत्तर न देना क्या अपने-आपमें पूर्ण उत्तर नहीं है? भाई इन्दुलाल बातकी गहराईमें जानेवाले व्यक्ति हैं। वे प्रत्येक प्रश्नके अन्तिम छोरको समझ लेना चाहते हैं। वे स्वभावसे सिपाही हैं, इसलिए साहसी हैं।

वे जैसे सब-कुछ जाननेकी इच्छा रखते हैं वैसे ही सब-कुछ करनेकी इच्छा भी रखते हैं। प्रेम-दीवाने होनेके कारण एक क्षणके लिए भी उन्हें कोई काम अपने सामर्थ्यसे बाहर नहीं जान पड़ता। क्या प्रेमकी कोई सीमा होती है? प्रेमसे क्या नहीं किया जा सकता? इसीलिए वे स्वयं अपनी मर्यादा आँकनेके बजाय यह कार्य ईश्वरपर छोड़ देते हैं। यह गुण भी है और अवगुण भी। उनके इस पत्रसे मैं देख पा रहा हूँ कि उनपर इन दोनोंका प्रभाव है।

मैं तो उनके इस प्रेमसे सराबोर पत्रका स्वागत ही करता हूँ। मेरे लिए यह पत्र और ऐसे ही अन्य पत्र चौकीदार हैं। मैं उनसे धीरज सीखता हूँ और उनसे मुझे अपनी मर्यादाका भान होता है।

भाई इन्दुलालने जिन त्रुटियोंकी ओर संकेत किया है और उन्होंने जो दलीलें रखी हैं, उनमें से मैंने एकपर भी विचार न किया हो सो बात नहीं है। मैं उनपर विचार करनेके बावजूद जिस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ, उसे मैंने विनयपूर्वक लोगोंके सम्मुख रख दिया है। मैं उसमें उठाई गई अनेक शंकाओंका समाधान तो इन पृष्ठोंमें कर चुका हूँ और समय-समयपर करता भी रहूँगा तथापि मैं जिन शंकाओंका समाधान नहीं कर सकता उनके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहूँगा कि लोग इन शेष प्रश्नोंके उत्तर मेरे आचरणमें से ढूँढ़नेका प्रयत्न करें।

हास्यरस

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

धारवाड़के सज्जन[2] अपने कपड़ोंका हिसाब देना चाहेंगे तो देंगे; लेकिन उक्त पत्र-लेखककी समस्याका कुछ समाधान तो मैं ही कर दूँ। निर्दोष प्रश्नोंके उत्तर निर्दोष ही होने चाहिए। इन सज्जनने निर्दोष विनोद किया है, इसलिए मुझे उनके इस विनोदमें शामिल होनेकी इच्छा होती है। उक्त धारवाड़ी भाईके स्थानपर मैं ही इस भाईको कपड़े देनेका ठेका लेता हूँ। इसमें हमें केवल थोड़ा-सा परिवर्तन करना होगा। कोई भी १,००० रुपएके मूल्यके कपड़ोंका ठेका १५ रुपयेमें नहीं ले सकता। हम धारवाड़ी भाईसे पूछकर जान सकते हैं कि वे कितने कपड़ोंसे गुजारा कर सकेंगे। अपने कपड़ोंपर वे वर्षभरमें १५ रुपये खर्च करते हैं। सम्भवतः मैं तो ३ रुपये भी खर्च नहीं करता। मेरी लंगोटी इससे अधिककी नहीं आती होगी। तौलिया तो मैं जेलमें एक ही व्यवहारमें लाता था। वह मेरे पास एक वर्षसे भी ज्यादा चला था। मुझे नाकके लिए अलग रूमाल रखनेकी आदत है। वह मैं लंगोटीकी कतरनमें से बना लेता था। वैसे रूमाल तो मेरे पास अब भी बहुत पड़े हैं। लेकिन मैं इन सज्जनसे लंगोटीसे सन्तोष मान लेनेकी बात नहीं कहता। लेकिन उनको वास्कट, कोट और भारी धोती जोड़ेकी जरूरत तो नहीं है। चद्दर पहननेके कपड़ोंमें नहीं गिनी जाती, इसलिए उक्त भाईकी गिनतीके मुताबिक ४ रुपयेका कुरता, ३ रुपयेकी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

२. इन्होंने जून, १९२४ में गांधीजीको लिखा था: मेरे खद्दरके बने कपड़ोंका वार्षिक खर्च १५ रुपये आता है, किन्तु मैं जब विदेशी कपड़े पहनता था तब ५० रुपये आता था।

लंगोटी, १ रुपयेका तौलिया और १ रुपयेकी टोपियाँ — यह कुल ९ रुपयेका खर्च हुआ। आजकल जिनके[1] हाथमें गुजरातकी पतवार है यदि उन्हें उनका अनुकरण करनेमें शर्म न लगे और वे टोपीके बिना काम चला लें तो वे इससे एक रुपया और बचा लेंगे। यदि वे इतना कपड़ा पहननेके बाद ३४ रुपयोंमें[2] से जो-कुछ मुझे भेज देंगे तो मैं उसका उपयोग उड़ीसाके लोगों अथवा उन-जैसे अन्य अस्थिपंजरोंके लिए करूँगा। कपड़े शरीर ढकने तथा सर्दी और गर्मीसे बचनेके लिए होते हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हमें घुटनोंतक की धोती, कुरते और टोपीके सिवा किसी और कपड़ेकी जरूरत नहीं है। हमारे देशकी आबोहवामें वास्कट और कोट केवल भाररूप हैं। मोतीलालजी धोती, कुरता और टोपी पहनकर धारासभामें जानेसे नहीं शर्माते। देशबन्धुकी पोशाकमें भी इससे अधिक कुछ नहीं होता। अलीबन्धु धोतीके बजाय पाजामा पहनते हैं, बस इतना ही अन्तर है। इन सज्जनने एक सुझाव दिया है। वह भ्रमपूर्ण है। देशकी खातिर किसीको मैला कपड़ा पहननेकी जरूरत नहीं होती। जो अपनी धोती और कुरतेको सावधानीसे धोते हैं उन्हें साबुनकी जरूरत भी नहीं पड़ती, पड़ती भी है तो बहुत कम। मैलापन आलसीपनका लक्षण है। उसका देशभक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं। खादीधारियोंका तो खास धर्म है कि वे अपने कपड़े दूध-जैसे उजले रखें। हाँ, इतना अवश्य है कि फिर अनावश्यक कपड़ोंके लिए कोई अवकाश नहीं रहता और यदि अधिक कपड़े पहनने ही हों तो उनसे साबुनका अथवा धोबीका खर्च बढ़ेगा ही।

"कातो, कातो, कातो"

एक महाराष्ट्रीय भाई लिखते हैं:[3]

मैं इस भाईके उदाहरणको प्रत्येक भाई-बहनके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। जिनमें ऐसी अचल श्रद्धा है कि शान्तिके द्वारा ही भारतको खरा स्वराज्य मिलेगा, उन्हें अन्य प्रपंचोंमें पड़नेकी कोई जरूरत नहीं। शान्तिसे स्वराज्य मिलना वहीं सम्भव हो सकता है जहाँ लोग एकनिष्ठ हों और उनका लक्ष्य एक हो। अशान्तिकी सम्भावना वहीं होती है जहाँ कुछ लोग अधीर हो जायें, दूसरे उनका साथ न दें और इस कारण वे उनको जोर-जबरदस्तीसे अपने साथ घसीटें। यह स्वराज्य नहीं है। यह तो आकाशसे गिरकर खजूरमें अटकने-जैसा हुआ। इससे करोड़ों नर-कंकालोंका भला नहीं होगा। इतना ही नहीं, इसमें उन्हें अनिच्छापूर्वक अपनी बलि देनी पड़ेगी। इससे नरमेधका युग, जो बीत गया माना जाता है, फिर वापस आ जायेगा। यूरोपमें तो नरमेध हो रहा है। वहाँका वर्तमान भयंकर युद्ध नरमेध नहीं तो क्या है? यदि वह हिन्दुस्तानमें होगा तो करोड़ोंका बलिदान लेगा, क्योंकि लोगोंमें उसका सामना करनेका साहस नहीं है।

१. गांधीजीका संकेत वल्लभभाई पटेलकी ओर है।

२. पत्र लेखकने लिखा था कि किफायत करनेके बावजूद एक मनुष्यको खादीके कपड़ोंपर प्रतिवर्ष ३४ रुपये खर्च करने पड़ते हैं।

३. यहाँ नहीं दिया गया है।

आज जहाँ बहुतसे लोग शंकित-हृदय हैं, जहाँ लोगोंमें परस्पर द्वेष है, जहाँ आलोचना-विषयक असहिष्णुता है और जहाँ आक्षेपोंकी कोई सीमा नहीं है वहाँ मौन रहना ही सर्वोत्तम मार्ग है। लेकिन मौनके साथ-साथ कोई काम भी चाहिए और वह काम है चरखा चलाना।

लेकिन अन्य लोग कातेंगे ही नहीं, ऐसी शंका निर्मूल है। जैसे यह प्रश्न नहीं उठता कि अन्यलोग नहीं खायेंगे वैसे ही यह प्रश्न भी नहीं उठता। यदि मुझे विश्वास है तो मुझे दूसरोंकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए? दूसरे नहीं कातेंगे तो उनके बजाय मुझे और भी ज्यादा कातनेका आग्रह होना चाहिए। यदि ऐसा किया जाये तो इसकी छूत दूसरोंको आसानीसे लगेगी।

अतिशयता

एक भाई लिखते हैं:[1]

यह दलील भ्रामक है, इसलिए त्याज्य है। मनुष्य परावलम्बी होकर जन्म लेता है। यदि यह न होता तो उसके अभिमानकी कोई सीमा नहीं रहती। संन्यास परावलम्बनकी पराकाष्ठा है, क्योंकि उस हालतमें उसे लोग जो कुछ दें उसीमें निर्वाह करना होता है, किन्तु उसके द्वारा मनुष्य आत्माकी स्वतन्त्रताको प्राप्त करता और ब्रह्मसे तादात्म्य स्थापित करता है। दूसरोंको कष्ट न देनेके लिए हम सब काम स्वयं कर लें; लेकिन स्वावलम्बनका दावा सिद्ध करनेके निमित्त जो व्यक्ति सब-कुछ अपने हाथों करनेका प्रयास करता है वह अन्ततः स्वेच्छाचारी बन जाता है। हम अन्न और वस्त्रके मामलेमें समस्त समाजको स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं। वस्त्रके मामलेमें समाज परावलम्बी बन गया है और अब वह स्वावलम्बी बन सकता है या नहीं, उसे इसमें शंका हो गई है। इसीलिए मैं प्रत्येक स्त्री और पुरुषको इस विषयमें स्वावलम्बी बन जानेकी सलाह देता हूँ। व्यक्तियोंके स्वावलम्बी बननेपर ही समाज-का स्वावलम्बी बनना सम्भव है। इसके सिवा अन्य क्रियाओंके सम्बन्धमें स्वावलम्बी बननेका प्रयास वस्त्र-विषयक महान व्यापक और आवश्यक प्रयासमें बाधक होगा। कल्पना कीजिये कि सब लोग अपने लिए साबुन, पेंसिल, कलम, घड़ी और अन्य वस्तुएँ बनाने लग जायें और उसके साथ-साथ वस्त्र भी तैयार करें तो ऐसे एक दो मनुष्य भले ही हो जायें, लेकिन इससे भारतका दारिद्र्य दूर नहीं होगा।

हमें भारतका दारिद्र्य दूर करनेके लिए इससे विपरीत मार्गपर चलना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सभी लोग अन्य सब अनावश्यक प्रवृत्तियोंको छोड़कर भारतको वस्त्रके सम्बन्धमें स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न करें और उस प्रयत्नका स्वरूप यह है कि सभी सूत कातें। हमारी प्रवृत्तियोंमें वर्षोंसे व्यभिचार पैठ गया है। कोई कहता है, मैं साबुनका कारखाना स्थापित करके देशको गुलामीसे छुड़ाऊँगा। कोई कहता है, मैं इसके लिए ताला बनानेका कारखाना खोलूँगा। कोई चमड़ेका और कोई बाँस-

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था, आप चाहते हैं कि सभी अपने लिए स्वयं खाना बनायें और सूत कातें। लेकिन क्या आप हर कार्यमें हर व्यक्तिको आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं।

की चटाइयाँ बनानेका कारखाना खोलनेकी बातें करता है। इसीका नाम है समाजका व्यभिचार। जब हमारी बुद्धि एक कार्यक्रमपर स्थिर हो जायेगी और हम सब उसपर अमल करनेके लिए एकसूत्र हो जायेंगे, हम तभी स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। मुझे ऐसा कार्यक्रम चरखा चलाना ही दिखाई देता है और इसीलिए मैं उसकी रट लगाये रहता हूँ। अभीतक तो मुझे कोई भी मनुष्य इसके समान कोई दूसरा कार्यक्रम नहीं बता सका है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१७. बुनाईकी कमाई

एक भाईने बुनाईके सम्बन्धमें अपना अनुभव और उसकी तफसील लिखकर भेजी है। वह ब्योरा छोड़कर उनका अनुभव-मात्र दिया जा रहा है:[1]

सभी लोगोंको ऐसे अवसर और अनुभव प्राप्त नहीं हो पाते, यह तो स्पष्ट ही है। फिर भी इस अनुभव और जिन अन्य अनुभवोंको मैं पहले ही प्रकाशित कर चुका हूँ, उनसे यह प्रकट हो जाता है कि कोई भी व्यक्ति लगन और चतुराईसे बुनाई करे तो गुजारेके लायक पैसा निकल आता है।

यही भाई आगे लिखते हैं:[2]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१८. नये प्रकारका चरखा

बम्बईके समाचारपत्रोंमें नये प्रकारके चरखेके सम्बन्धमें एक टिप्पणी देखनेमें आई है। इस सम्बन्धमें खादी बोर्डसे जाँच करनेका अनुरोध किया गया है। आजतकका अनुभव तो यह है कि अभीतक कोई व्यक्ति ऐसा चरखा नहीं बना पाया है जिससे अधिक अच्छा और अधिक सुगमतापूर्वक सूत काता जा सके। थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके बनाये गये भिन्न-भिन्न प्रकारके चरखे दिखाई तो देते हैं; लेकिन उन्हें कोई महत्त्व देनेकी जरूरत नहीं है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था: "यदि दो व्यक्ति, जिन्हें बुनाईकी सारी क्रियाएँ आती हों, प्रतिदिन आठ या नौ घंटा काम करें तो वे प्रतिदिन बड़ी आसानीसे औसतन दो से तीन रुपयेतक कमा सकते हैं। हमने कताई और बुनाईको अवकाशके समयके उपयोगका एक अच्छा धन्धा पाया है।"

२. नहीं दिया गया है। यहाँ लेखकने कहा था कि हम हरसाल तीन-चार मन कपास खरीदते हैं और उससे हमारे परिवारके आठ-नौ सदस्योंके कपड़े बन जाते हैं। सन् १९२२ में परिवारके कपड़ोंका खर्च साल-भरमें ३०० रुपयेसे भी ज्यादा आया था; किन्तु हमारे कताई और बुनाई शुरू करनेके बाद यह खर्चा केवल ४०-५० रुपये आता है।

प्रत्येक खादी-प्रेमीको मेरी सलाह तो यह है कि वह ऐसा एक भी 'नये प्रकार-का चरखा' न खरीदे जिसे खादी-बोर्डने पसंद न किया हो। नये प्रकारके अनेक चरखे बिलकुल निकम्मे साबित हुए हैं और उनके बारेमें जो दावा किया गया है वह सत्य प्रमाणित नहीं किया जा सका है। अभीतक तो यही कहा जा सकता है कि यदि पुराने चरखेमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर दिया जाये तो कोई दूसरा चरखा उससे अच्छा नहीं हो सकता। इसलिए अच्छा यही होगा कि कोई भी व्यक्ति 'नये प्रकारके चरखे' में दिलचस्पी न रखे। लेकिन यदि किसीकी नजरमें कोई चमत्कार-पूर्ण चरखा आये तो इष्ट यह है कि वह उसे जाँचके लिए खादी बोर्डके पास भेज दे और खादी बोर्ड द्वारा पसन्द किये जानेपर ही उसका प्रचार अथवा क्रय-विक्रय करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१९. पत्र: वा० गो० देसाईको

आषाढ़ वदी ४, [२० जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

आपका पत्र मिला। महादेवने मुझे कल बताया कि स्वामीने आपका शिमला-सम्बन्धी लेख आपको भेज दिया है। उसने यह भी कहा कि उसे भेजे हुए २० दिन हो गये हैं। क्या आपको वह नहीं मिला? जिन अवतरणोंके बारेमें आपने लिखा है उनके विषयमें पूछताछ कर रहा हूँ। मेरा शिमला आना अभी तो बिलकुल अनिश्चित है। अभी तो पंजाबके दौरेकी तारीख भी तय नहीं हुई और आप शिमला आनेकी बात लिखते हैं। आप कोई अमीर उमराव हैं? आप किसी प्रान्तके गवर्नर या लॉर्ड रीडिंग नहीं हैं। इसलिए आप अपने निमन्त्रण पत्रको तो अस्वीकृत ही समझें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वा० गो० देसाई

१. इस पत्रमें शिमला सम्बन्धी जिस लेखकी चर्चा की गई है वह सितम्बर, १९२४के यंग इंडियामें प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष आषाढ़ वदी ४, २० जुलाई की थी।

२२०. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ़ बदी ६, [२२ जुलाई, १९२४][1]

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जब आना चाहो तब आ जाओ। ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। मेरी सलाह तो यह है कि तुम अपनी पोतीको अपने साथ न लाओ। पति-पत्नीको जैसा ठीक जान पड़े वैसा करने दो। पिता भले ही बच्चीको स्वयं आकर छोड़ जाये। यदि तुम उसको अभी ले आओगी तो इससे परेशानी बढ़नेकी सम्भावना है।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१७) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

२२१. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

आषाढ़ बदी ६ [२२ जुलाई, १९२४][2]

चि० इन्द्र,

तुमारा दूसरा खत मीला। मेरा उत्तर मील गया होगा। फाइल भी मीली है। मैं दिल्ही पहोंचनेके लीये उत्सुक हुं।[3] डाक्तरोंने डराया है इसलीये ठेहर गया हुं। हो सके उतनी त्वरासे पहोंच जाउंगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

प्रो० इन्द्र
'अर्जुन' कार्यालय
दिल्ली

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८५८) से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

१. इस ग्रन्थमें प्रेमीको भेजे गये पहलेके पत्रोंसे पता चलता है कि यह पत्र भी १९२४ में लिखा गया था। इस वर्ष आषाढ़ बदी ६, २२ जुलाई को थी।

२ और ३. मुहम्मद अलीके निमन्त्रणपर गांधीजी १६ अगस्त, १९२४ को दिल्लीके लिए रवाना हुए थे। इस वर्ष आषाढ़ बदी ६, २२ जुलाईको पड़ी थी।

२२२. पत्र : फूलचन्द शाहको

[२३ जुलाई, १९२४][1]

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे सम्मुख एक ही मार्ग है। इस स्कूलमें[2] प्रवेशके सम्बन्धमें व्यवस्थापकोंने अन्त्यजोंको जो वचन दिया है उसका उल्लंघन किया ही नहीं जा सकता। तुम्हें अन्त्यजोंका स्वागत करना ही चाहिए और अगर इससे स्कूल खाली हो जाये तो उसे सहन करना चाहिए। यदि व्यवस्थापक इस इमारतको तुम्हें सौंप कर नया स्कूल बनाना चाहें तो बना सकते हैं। नींव रखते समय जो सिद्धान्त स्थिर किया गया था वह कैसे बदला जा सकता है? मैं इस बारेमें 'नवजीवन'में टिप्पणी अवश्य लिखूंगा।[3]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम अपनी शान्ति, धैर्यशीलता और विनय मत छोड़ना।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२१) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

२२३. शिक्षकोंकी दीन दशा

एक जिलेमें चौदह राष्ट्रीय पाठशालाओंमें से सात बन्द हो गई हैं। शेष बन्द होनेकी तैयारीमें हैं और विद्यार्थियोंकी संख्या दो हजारसे घटकर पाँच सौ रह गई है। इन पाठशालाओंमें से एक पाठशालाके प्रधान शिक्षक पाठशालाओंकी दीन-दशाका वर्णन करते हुए लिखते हैं :

> यदि सच कहूँ तो हमारी राष्ट्रीय पाठशालाओंके बहुतेरे शिक्षकोंकी हालत ऐसी हो गई है कि अपने अधपेट रहनेवाले परिवारका और भीषण कर्जके बोझका विचार करते हुए उनका दिल दहल उठता है और मनमें ऐसा अन्देशा होने लगता है कि ऐसे कर्जदार व्यक्तिके लिए इतना कष्ट-सहन करते रहकर देशकी

१. डाकखानेकी मुहर से।
२. काठियावाड़में बढ़वानका राष्ट्रीय स्कूल।
३. देखिए "धर्मकी कसौटी", २७-७-१९२४।

सेवा करना अक्लमन्दी है या बेवकूफी? या फिर भूखे रहकर शिक्षकका काम करनेके बजाय उसे दूसरे तरीकेसे देशकी सेवा करनी चाहिए? मुझे यहाँ यह कह देना चाहिए कि इनमें से कितने ही शिक्षकोंने देशकी पुकारपर कान देकर जो नौकरियाँ छोड़ी थीं, वे कहीं अधिक वेतनकी थीं।

इस दुःख-कथासे डर जानेकी जरूरत नहीं। बड़े कष्ट-सहनके फलस्वरूप ही राष्ट्रोंका निर्माण होता है। या तो हमें सशस्त्र बलवेमें मक्खियोंकी तरह पिस जाना चाहिए और स्वेच्छाचारी सैनिक सत्ताके तावेदार बन जाना चाहिए तथा अति दूरवर्ती धुंधले भविष्यमें लोकतन्त्रात्मक शासन स्थापित करनेकी आशा रखनी चाहिए; या फिर धीरजके साथ, स्वाभाविक रीतिसे, अन्य लोगोंकी नजरोंमें आये बिना, कष्ट-सहन करते रहकर अपने-आपको स्वशासित, आत्मसम्मानपूर्ण राष्ट्रके रूपमें खड़ा करना चाहिए। पत्र-लेखकने जिन दुःखोंका वर्णन किया है उन्हें सहन करके ही हम अपने सामने उपस्थित कठिनाइयोंका इलाज कर सकेंगे। यह कष्ट-सहन ही स्वराज्यकी सच्ची तालीम है। दोष सारा बालकोंके माता-पिताओंका नहीं है। दोष तो हमारी परिस्थितिमें निहित है। हम अभीतक कठिनाइयोंकी परवाह किये बिना अनवरत कार्य करते रहनेका गुण पैदा नहीं कर पाये हैं। राष्ट्रीय शिक्षाका सारा तन्त्र जिस केन्द्रके आसपास घूमना चाहिए वह शिक्षक ही है। यदि वे ही असन्तुलित हो जायें तो पूरा ढांचा ही ढह जायेगा। परन्तु हमारे शिक्षक अनुभवहीन थे। उन सबमें राष्ट्रीय शिक्षा-का अनुराग जीवित रखनेके लिए आवश्यक और अथक कर्तृत्वशक्ति नहीं थी। उनमें आज संगठन-क्षमता नहीं, एकाग्रता और आत्मार्पणकी योग्यता नहीं। हर जगह कार्य-कर्त्ता सेवाके एक क्षेत्रमें निष्णात होनेके बदले सभी क्षेत्रोंमें टांग अड़ाते रहे हैं और इसका फल यह हुआ है कि वे किसी भी कामको पूरा-पूरा अंजाम नहीं दे पाये हैं। पर यह अनिवार्य था। काम हमारे लिए बिलकुल नया था। हमारे शासकोंने हमें क्लर्क बननेकी ही तालीम दी है और ऐसा काम हमें सौंपा है जिसमें न कुछ विचारना पड़े न कुछ स्वतन्त्र रूपसे करना पड़े। परन्तु पुरानी व्यवस्था बदलती जा रही है। आरम्भिक उत्साहके दौरमें लगा कि हम यदि बिलकुल ठीक नहीं तो काफी ठीक ढंगसे काम कर रहे हैं। चूंकि वह उत्साह समाप्त हो गया है और सार्वजनिक आश्रयकी नमी भी नहीं बच रही है, इसलिए उन्हीं पौधोंके टिके रहनेकी आशा की जा सकती है जो बुरेसे-बुरे मौसमकी मार सह सकते हैं। जो पाठशालाएँ और शिक्षक अभीतक अडिग बने हुए हैं आशा है कि वे ठीक ढंगके हैं। उन्हें निर्वाहके लिए घर-घर भीख मांगनी पड़ेगी और अगर वे ईमानदार कार्यकर्त्ता हैं तो इसमें उन्हें शर्म माननेकी जरूरत नहीं। पूर्वोक्त प्रधान शिक्षकने कुछ विशिष्ट प्रश्न भी पूछे हैं। वे सर्वसाधारणके लिए उपयोगी हैं। इसलिए वे उत्तर सहित यहाँ दिये जा रहे हैं —

प्र० — बढ़ते जानेवाले कर्जके बोझसे दबे हुए गरीब शिक्षक फाकेकशीके मेहनतानेपर इन पाठशालाओंके साथ अपना सम्बन्ध कबतक कायम रख सकते हैं?

उ० — मौतकी घड़ीतक। जिस तरह सिपाही तबतक लड़ता है जबतक वह विजयके दर्शन न कर ले या दूसरे शब्दोंमें लड़ाईमें काम न आ जाये।

यदि १ फी सदी लोग भी पाठशालाओंकी परवाह न करते हों तो संचालकोंको कबतक इतनी बड़ी आर्थिक हानि सहकर उन पाठशालाओंको चलाना चाहिए?

यदि लोगोंको पाठशालाकी कुछ भी गरज न हो तो उस पाठशालाको जीवित रहनेका कोई अधिकार नहीं है। परन्तु जिन लोगोंने पाठशालाएँ स्थापित की हों उन्हें यदि बादमें उसकी आवश्यकता न दिखाई दे तो मैं संचालकोंको ही दोष दूंगा।

शिक्षाको बन्द रखना और कार्यकर्त्ताओंके लिए कष्टसहन करना एक सालतक, दो सालतक, बहुत हुआ तो तीन सालतक सम्भव है, परन्तु यदि स्वराज्यकी लड़ाई वर्षों तक जारी रहे तो फिर क्या करें?

जो एकसे तीन सालतक कष्ट-सहन कर सकेंगे, उनमें तीस सालतक कष्ट सहनेकी क्षमता आ जायेगी।

जहाँ एक भी राष्ट्रीय पाठशाला न हो, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा पानेकी इच्छा रखनेवाले इने-गिने लड़कोंका क्या होगा?

अगर माता-पितामें अथवा खुद छात्रोंमें सूझ हो तो उन्हें रास्ता अवश्य दिखाई देगा। यह मानना कि शिक्षा केवल पाठशालाओंमें अथवा महज अंग्रेजीके ही द्वारा या सिर्फ पुराने तरीकेसे ही मिल सकती है, गलतफहमी है। वर्तमान हालतमें तो कताई और बुनाई सीखना ही सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अधिकांश गाँवोंमें तो पाठशालाएँ बिलकुल हैं ही नहीं।

हमारे देशबन्धु कबतक ऐसे प्रस्ताव पास करते रहेंगे जिनके पालन करनेकी कभी उनकी इच्छा ही न हो? सब लोग सरकारी पाठशालाओंके बहिष्कारकी राय देंगे और फिर इनमें से इने-गिने सज्जन ही अपने बालकोंको राष्ट्रीय पाठशालाओंमें भेजेंगे।

मुझसे बने तो अब एक क्षण भी नहीं। पिछले कांग्रेस अधिवेशनमें मेरी तमाम लड़ाई इसीको लेकर थी कि हम अपने प्रस्तावोंके प्रति सच्चे रहें।

मैं जानता हूँ कि मैंने जो उत्तर दिये हैं उनसे बहुतोंको सन्तोष न होगा। परन्तु मैं कहता हूँ कि ये ही जवाब सही और व्यावहारिक हैं। हमें पाखण्डको तिलांजलि तो दे ही देनी चाहिए। सरकारी पाठशालाओंके बहिष्कारके प्रस्तावकी खातिर (उनकी जगह भरनेके लिए नहीं,) यदि सारे देशको राष्ट्रीय पाठशालाओंकी जरूरत महसूस न हो तो बहिष्कारके प्रस्तावमें परिवर्तन करना जरूरी है। इसके बाद जो थोड़े लोग बहिष्कारके पक्षमें रहें उन्हें कांग्रेसकी देखरेखमें नहीं, बल्कि अलहदा राष्ट्रीय पाठशालाएँ चलाकर बहिष्कारकी अपनी इच्छा पूरी करनी चाहिए। ये पाठशालाएँ वहीं चलेंगी जहाँ उनकी जरूरत होगी। यदि ऐसी एक भी पाठशाला होगी तो वह भी बिना निराशाका अनुभव किये चलती रहेगी। श्रद्धा निराश होना नहीं जानती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२४. सी० एफ० एन्ड्रयूजके लेखपर टिप्पणी

महाकविकी[1] लोकोपकारी और शान्तिके प्रचारार्थ की गई विदेश-यात्राके[2] प्रभावके बारेमें पूरे विवरणके लिए मैं पाठकोंसे कहूँगा कि वे 'विश्व भारती' पत्रिकाके सम्पादकों द्वारा उनकी विदेश-यात्राके सिलसिलेमें प्रकाशित की गई 'विश्व भारती' की सुन्दर विज्ञप्तियां पढ़ें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२५. सूतका क्या किया जाये?

खादी बोर्डसे बराबर पूछताछ होती रहती है कि कांग्रेसके प्रतिनिधि जो सूत भेजेंगे, उसका क्या उपयोग किया जायेगा। कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार प्रत्येक प्रतिनिधिको प्रति मास कमसे-कम २,००० गज अच्छा बटदार, एक-सा सूत भेजना है। यह सूत यों तो चन्देके रूपमें दिया जाना है; पर इसके बारेमें तरह-तरहके सवाल उठाये जा रहे हैं। कुछ सदस्य अपना सूत अपने पास रखते जाना और अपने इस्तेमालके लिए उसकी खादी बुनवाना चाहते हैं। यह विचार उत्तम है, किन्तु मेरी सलाह है कि फिलहाल इस इच्छाको दबाया जाये। किसी भी कार्यक्रमकी क्षमता उसकी एकरूपता, नियमितता तथा उसके अमलकी व्यापकतापर निर्भर करती है। महत्त्व परिमाणका हुआ करता है। किन्तु यदि प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करना चाहे तो बड़े परिमाणमें सूत प्राप्त करना असम्भव हो जायेगा। यद्यपि प्रत्येक सदस्य द्वारा अपने ही परिवानके लिए सूत काते जानेके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इस समय सहकारी कताईके पक्षमें अपेक्षाकृत अधिक कहनेको है। यदि यह देखा जाये कि पार्सलें प्रत्येक प्रान्तमें बनाई जायेंगी और केन्द्रीय बोर्डको भेजी जायेंगी तो सूत भेजनेकी लागतका कोई बड़ा महत्त्व नहीं रह जाता; पर उसके फायदे तो देखिए:

१. हर महीने सूत इकट्ठा होगा।
२. कताईकी किस्मकी माहवारी जांच हो सकेगी और उसके फलस्वरूप उसमें सुधार हो सकेगा।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

२. इसके साथ ही श्री एन्ड्रयूजका लेख "सुदूर पूर्वमें भारत" दिया गया है जिसमें अन्य बातोंके साथ-साथ महाकविकी जापान-यात्राका विवरण है।

३. कातनेवालोंमें ढिलाईकी सम्भावना कम रहेगी।

४. सूतकी किस्म और उसके कुल परिमाणके बारेमें कातनेवालोंमें और प्रान्तोंमें भी एक स्वस्थ स्पर्द्धा बनी रहेगी।

५. यदि कांग्रेसके सदस्य प्रस्तावकी भावनाके अनुकूल ही आचरण करते रहें तो खद्दरके दाम निश्चित ही गिरते जायेंगे।

खादी बोर्डको मेरी सलाह है कि वह इस सारे सूतका कपड़ा वहीं बुनवाये जहाँ सस्तीसे-सस्ती बुनाई हो सकती हो, किन्तु यदि प्रत्येक प्रान्त अपना सूत अपने ही यहाँ बुनवा लेना पसन्द करे तो बात दूसरी है। यदि खादी बोर्ड ठीक समझे तो दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्रोंमें गरीबोंको खादी बहुत ही सस्ते दामोंमें दी जाये। यदि कातनेवाले खरीदना चाहें तो वह उन्हें भी रियायती दरपर दी जा सकती है। किन्तु इस सूतसे तैयार होनेवाली खादीका क्या किया जायेगा इसके बारेमें अन्तिम निर्णय करनेका समय अभी नहीं आया है। बहुत-कुछ इसपर निर्भर करेगा कि कितना सूत इकट्ठा होता है। अपने ही काते हुए सूतसे बुनी हुई खादी पहननेके लिए उत्सुक लोगोंको मेरी सलाह है कि सारे सूतको एक जगह इकट्ठा करना और फिर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने दिये हुए सूतके वजनके बराबर खादी प्राप्त करना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावसे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है, सामान्य भण्डारमें जमा होनेके लिए अपने सूतको दानमें देनेकी तुलनामें अपने काते सूतकी खादी पहननेकी इच्छा स्वार्थपूर्ण ही मानी जायेगी। और अन्तिम विचारणीय बात यह है कि कोई भी सदस्य अगर न चाहे तो २,००० गजसे अधिक सूत भेजनेके लिए बाध्य नहीं है। वह राष्ट्रको नित्य आधा घंटा दे और शेष आधे घंटेमें अपने उपयोगके लिए श्रम करे। मैं नये सीखनेवालोंको बता दूँ कि अनेक कार्यकर्त्ता २,००० गजका अपना हिस्सा कबका पूरा कर चुके हैं और जो अपना सारा अतिरिक्त समय कताईमें लगा रहे हैं, वे तो १०,००० गजसे भी अधिक सूत कातनेकी आशा करते हैं। गुजरात विद्यापीठके कुछ अध्यापक यद्यपि कांग्रेसके प्रतिनिधि नहीं हैं तो भी प्रतिमास प्रति व्यक्ति ५,००० गज सूत कात रहे हैं। इसमें से वे ३,००० गज राष्ट्रको देंगे और बाकी २,००० गज अपने निजी उपयोगके लिए रखेंगे। मैं कांग्रेसी स्त्री-पुरुषोंसे अनुरोध करता हूँ — वे चाहे प्रतिनिधि हों या न हों — कि उनको फिलहाल प्रसन्नतापूर्वक और सच्ची लगनसे राष्ट्रीय योजनाकी पूर्तिमें सहायक बनना चाहिए फिर चाहे यह योजना उनको अपूर्ण ही क्यों न लगती हो। वे देखेंगे कि हार्दिक सहयोगके परिणामस्वरूप वह पूर्ण बन जायेगी। मानव-मस्तिष्क अभीतक ऐसी कोई भी योजना नहीं बना पाया है जिसमें दोष न रहा हो अथवा जिसकी आलोचना न की गई हो। पर व्यावहारिक बुद्धिमत्ता इसी बातमें है कि जिस योजनाको बहुमतने पसंद कर लिया हो, उसको कार्यान्वित करनेमें सहायता दी जाय। प्रत्येक आपत्तिको इतना महत्त्व नहीं देना चाहिए कि वह अन्तःकरणका प्रश्न बन जाये। मूल आपत्तियाँ तो सचमुच बहुत ही थोड़ी होती हैं। कुछ भी हो; यह निर्णय करनेमें तो अन्तःकरणका कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि २,००० गज सूत

एक सार्वजनिक भण्डारमें जमा करना ज्यादा अच्छा है या उसे अपने उपयोगके लिए रख लेना।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२६. नैराश्यपूर्ण चित्र

अमृतसरसे एक मुसलमान सज्जनने भावनापूर्ण पत्र लिखा है:

आजकल उत्तर भारत और पंजाबमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें खुलकर संघर्ष होना एक रोजकी बात ही हो गई है। इससे यह साबित होता है कि ये दोनों ही गुलाम कौमें अपने देशमें उठनेवाले प्रश्नोंका निबटारा करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं — यही नहीं वे अनेक अनमेल तत्त्वोंवाले इस विशाल देशके शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें लेनेके अयोग्य हैं।

दोनोंके बीच विरोध मिटानेके आपके प्रयत्न सफल तो हुए थे; पर आपके जेल जानेके बाद झगड़ालू लोग फिर सामने आ गये। आपके जेल जानेसे पहले जहाँ-जहाँ दोनों कौमोंमें लम्बे अर्सेसे साथ रहनेके कारण परस्पर सहानुभूति और भाईचारा था वहीं आज फूट और दुश्मनी है। पंजाबके तमाम बड़े-बड़े शहर इन दोनों जातियोंकी आपसकी लड़ाईके अखाड़े हो गये हैं और यह आशा नहीं दिखाई देती कि भूतकालके मीठे सम्बन्ध फिर कभी बहाल हो सकेंगे।

कृपया रोगके असाध्य होनेसे पहले इसके इलाजका कोई रास्ता निकालिये। कृपा करके पंजाब पधारिए और खुद अपनी आँखों सब हाल देखिए। जबतक आप फिर उसी स्थितिको नहीं ला पाते, तबतक आपकी खादीकी हलचल व्यर्थ है। कहाँ १९१९ के अमृतसरके वे शानदार दिन और कहाँ आजकी यह निराशा-भरी तसवीर। इस नगरकी आबादी कोई २ लाख है, पर उसमें ५० आदमी भी मुश्किलसे खादीधारी दिखाई देंगे; और जो हैं सो भी इसी कारण कि वे कांग्रेस कमेटियोंमें किसी-न-किसी पदपर हैं और यह सब हिन्दू-मुसलमानोंके बीच फैले हुए तनाजेका नतीजा है। इस खराबीको हटाइए, दूसरी सब बातें अपने-आप दुरुस्त हो जायेंगी। अफसोस है कि संगठनकी बुनियाद किसी बुरी साइतमें रखी गई थी।

पत्रलेखक द्वारा खींची गई यह तसवीर निःसन्देह अतिरंजित है। पंजाबमें अगर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें रोज खुल्लमखुल्ला लड़ाई हो रही हो तो वहाँ लोगोंका रहना बहुत ही कठिन हो गया होता। पर मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि बाह्य दृष्टिसे तो पंजाब दूसरे किसी भी प्रान्तके बराबर ही शान्त है। फिर यह सज्जन सारा दोष संगठनके ही मत्थे मढ़ते हैं। यह उनकी भूल है। रोग तो था

ही। हाँ, संगठनसे वह बढ़ जरूर गया है। दोनों जातियाँ अपना-अपना सन्तुलन खो बैठी हैं।

यदि पंजाबियोंने हिन्दू-मुसलमान तनावके कारण खादी छोड़ दी हो तो खादी और देशके प्रति उनका प्रेम ऊपरी रहा होगा। परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता कि उनकी देशभक्ति औरोंसे कम है। इसलिए खादीका इस्तेमाल कम होनेका कारण कहीं और खोजना होगा। इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि लोगोंमें यह विश्वास नहीं जम पाया है कि खादीके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता और मलमल तथा मिलके कपड़े जिस ऐशो-आरामकी जिन्दगीके चिन्ह हैं, वैसी जिन्दगी बसर करनेकी उनकी इच्छा बढ़ गई है। तमाम प्रान्तोंमें पंजाब ही ऐसा है जो अगर चाहे तो विदेशी कपड़ेका बहिष्कार आज ही कर सकता है, पर वह चाहता ही नहीं। मैंने लोगोंको यह कहते हुए सुना है कि कितने ही हिन्दू इसलिए खादी पहननेसे इनकार करते हैं कि वह मुसलमानोंकी बुनी होती है और मुसलमान इसलिए इनकार करते हैं कि उन्हें स्वराज्यमें कोई दिलचस्पी नहीं। वे अंग्रेजोंको तो निकाल देना चाहते हैं पर उनकी जगह पुराना मुसलमानी शासन कायम करना चाहते हैं और यह भी कहा जाता है कि अगर हिन्दू और मुसलमान दोनों एक सामान्य ध्येयके लिए चरखेके सूत्रमें बँध जायें तो पुराना मुसलमानी राज्य कायम नहीं किया जा सकेगा। मगर इन सबको मैं गर्म दिमागोंकी सनक मानता हूँ। ऐसी बातोंका विचार करनेतक की फुरसत गरीब हिन्दू और मुसलमानोंको नहीं हो सकती। वे तो चरखा चलाकर सालमें अपनी आमदनी थोड़ी-बहुत बढ़ानेके लिए उत्सुक रहते हैं।

परन्तु खादीका इस्तेमाल कम होनेकी बात तथा पूर्वोक्त पत्रमें जो बातें बढ़ा-चढ़ाकर कही गई हैं उन्हें छोड़ दीजिए तो भी इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि दोनों जातियोंमें वैमनस्यने बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लिया है। दिल्लीमें नेताओंकी साखका उठ जाना एक ऐसा तथ्य है जिसकी ओरसे कोई आँख नहीं मूँद सकता।

खुशकिस्मतीसे समझ फिर लौटती दिखाई दे रही है। जाट और कसाई एक-दूसरेका सिर फोड़नेकी अपनी मूर्खताको समझ गये हैं और कहते हैं कि उनमें सुलह भी हो गई है। पर सबसे आशाजनक खबर तो दूसरे पत्रलेखकोंसे मिली है। उनका कहना है कि एक ओर जहाँ खून-खराबी करनेपर तुले हुए वहशी लोग हैं वहाँ दूसरोंकी जान बचानेपर तुले हुए समझदार स्त्री-पुरुष भी मौजूद हैं और ऐसी मिसालें एक-दो ही नहीं बल्कि बहुत ज्यादा हैं; इससे लगता है दोनों जातियोंके लोगोंमें लड़ाईकी इच्छा जितनी बलवती थी, उतनी ही शान्तिकी भी थी। लड़ाई स्वाभाविक नहीं है, वह तो शरीरपर उठनेवाले अदीठ फोड़ेकी तरह है। लेकिन शान्ति एक शाश्वत वस्तु है। दोनों जातियाँ यदि एक बार इस बातका निश्चय कर लें कि हम एक-दूसरेके धार्मिक रीति-रिवाजोंका लिहाज रखेंगे तो फिर कोई बात मुश्किल नहीं है। मेरे पंजाब जानेके विषयमें यह बात छिपी नहीं है कि मेरा दिल उन जगहों पर जानेके लिए तड़प रहा है, जहाँपर तनाजा फैला हुआ है। इच्छा तो अपार है; शरीर साथ नहीं दे पाता। जैसे ही देखूँगा कि सफर करनेमें तन्दुरुस्तीके लिए

अब ज्यादा खतरा नहीं है वैसे ही मौलाना शौकत अलीके साथ सिन्ध और पंजाब जानेका मेरा इरादा है।

[अंग्रजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२७ संतप्त दक्षिण

मानसून बहुत ज्यादा परेशान कर रहा है। दक्षिणमें जिधर देखो पानी ही पानी है और उत्तर वर्षाके लिए तरस रहा है। दक्षिण कनारासे एक हृदयद्रावक तार आया है। उसमें कहा गया है:

> विनाशकारी बाढ़ फिर आ गई। नदीकी सतह सामान्य सतहसे चालीस फुट ऊँची। पिछले सालके मुकाबलेमें सिर्फ चार फुट नीची है।

इस समाचारके बाद उस तारमें बेघरबार हुए परिवारोंका और लोगोंका आतंकित होकर इधर-उधर भागनेका विस्तृत विवरण है। स्वयंसेवक आशा कर रहे थे कि पिछले सालकी बाढ़के बाद जो सहायता कार्य किया गया था, उससे भूखों मरते परिवार फिर अपने पाँवोंपर खड़े हो सकेंगे। अब ऐसी आशा कदापि नही की जा सकती। पाठकोंको याद होगा कि स्वयंसेवकगण कताई और धुनाईका काम देकर परिवारोंको संगठित कर रहे थे। किन्तु प्रकृतिने इन बेचारे बेघरबार परिवारोंके भाग्यमें और भी अधिक विपत्तियाँ लिख रखी हैं। तब श्री सदाशिवरावका सहायताकी अपील करना उचित ही है। हमें आशा करनी चाहिए कि बाढ़से इतनी गम्भीर क्षति नहीं हुई होगी जितनी इस विवरणसे प्रतीत हो रही है। हम अधिक विस्तारपूर्ण और सही विवरणकी प्रतीक्षा व्यग्रताके साथ कर रहे हैं।

[अंग्रजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२८. अफीमके विरुद्ध संग्राम

'व्हाइट क्रॉस' एक अन्तर्राष्ट्रीय मादकद्रव्य-विरोधी संस्था है। इसका मुख्य कार्यालय वाशिंगटनमें है। इसकी शाखाएँ शायद संसारके सभी देशोंमें हैं। संस्थाकी ओरसे लिखे जानेवाले पत्रोंके लिए जो छपे कागज प्रयुक्त किये जाते है उनपर दिये गये नामोंमें न्यासियों तथा स्थायी सदस्योंके रूपमें बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोगोके नाम मौजूद हैं। उसके कार्यकारी मन्त्री, श्री मैक्किब्बेनने अफीमके विरुद्ध किये जानेवाले इस संस्थाके जिहादमें भारतका सहयोग प्राप्त करनेका अनुरोध करते हुए मुझे एक लम्बा पत्र भेजा है। उस पत्रमें से मैं निम्न अंश उद्धृत करता हूँ:[1]

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

भारत 'व्हाइट क्रॉस' को अपने इस पुनीत कार्यमें सहयोगका भरोसा दिलाता है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अभी हालमें ही एक प्रस्ताव पास किया है। उसमें भारत सरकारकी अफीम सम्बन्धी नीतिकी तीव्र निन्दा की गई है। यदि पोस्त-का एक-एक पौधा जड़से उखाड़कर फेंक दिया जाये तो भी देशमें उसके विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठेगी।[1] जब मादक पेयों और नशीली चीजोंकी सारी आमदनी बन्द हो जायेगी, वे प्रमाणित दवाफरोशों द्वारा केवल औषधिके रूपमें ही बिक सकेंगी और इसके अतिरिक्त उनकी बिक्री बिलकुल निषिद्ध कर दी जायेगी, तब जनता सचमुच खुशी मनायेगी।

किन्तु हमारा और संसारका दुर्भाग्य है कि भारतका मत आज एक ऐसी सरकार व्यक्त करती है, जो जनताकी प्रतिनिधि नहीं है। अतः आगामी सम्मेलनमें प्रतिनिधित्व भारतकी जनताका नहीं होगा, भारतकी विदेशी सरकारका होगा और उसमें मुख्यतः मानवताके हितका खयाल इतना नहीं किया जायेगा जितना उसकी अपनी आमदनीका। जनताका वास्तविक प्रतिनिधित्व करनेवाले, श्री एन्ड्रयूज-जैसे किसी गैर-सरकारी प्रतिनिधिको भेजनेसे कोई उपयोगी उद्देश्य सिद्ध होगा या नहीं, इसपर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको विचार करना चाहिए।

किन्तु अब हम यह देखें कि इस मानव-हितकारी जिहादका लक्ष्य क्या है। कुमारी ला मॉटने अकाट्य आँकड़ोंके बलपर सिद्ध कर दिया है कि संसारमें अफीमका उत्पादन उसकी भैषजिक आवश्यकताओंसे बहुत अधिक हो रहा है और जबतक यह जारी रहेगा तबतक — चाहे उसके विरुद्ध कितने ही प्रयत्न किये जायें — उसका अनैतिक और आत्मघाती व्यापार जारी रहेगा। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि भारत सरकार ही इस मामलेमें सबसे बड़ी अपराधी है। हम अपने लक्ष्यपर तबतक नही पहुँच सकते, जबतक भारत सरकार लागतकी परवाह किये बिना, अपने क्षेत्राधिकारमें अफीमकी खेती यथासम्भव कमसे-कम करके, ईमानदारीसे संसारके सर्वश्रेष्ठ विचारकोंकी इच्छा पूरी नहीं कर देती। केवल भारत सरकारने ही रास्ता रोक रखा है और डर है कि वह आगे भी ऐसा ही करेगी, इसलिए नहीं कि भारतकी जनता ऐसा चाहती है, बल्कि इसलिए कि भारत इस समय असहाय है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

१. पत्रमें कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार अफीम-निषेधमें जनताके विरोधकी जबरदस्त सम्भावना मानती है।

२२९. वचन-पालन

श्री एम० के० आचार्यकी खुली चिट्ठी पाकर मैंने उनको वचन दिया था कि मैं 'यंग इंडिया' में उसका जवाब देनेकी कोशिश करूँगा। अफसोस है कि मैं इससे पहले जवाब न दे सका। इस चिट्ठीको खूब गौरसे पढ़नेके बाद मेरा खयाल है कि मतभेदकी बहुत गुंजाइश नहीं है। मेरी खुशनसीबी है कि मैं बातोंपर अपने प्रतिपक्षीके दृष्टिकोणसे विचार कर पाता हूँ और उस हदतक उनके विचारोंमें भी शरीक रहता हूँ और यह मेरी बदनसीबी है कि मैं सदा उन्हें अपने दृष्टिकोणके अनुसार देखनेके लिए राजी नहीं कर पाता। यदि यह सम्भव होता तो मतभेद होते हुए भी हमारे बीच सुखदायी सहमति हो सकती थी।

असहयोगके कारण और मूल विषयके निरूपणके सम्बन्धमें मेरे और श्री आचार्यके बीच काफी इत्तिफाक है। लेकिन कांग्रेसके प्रस्तावकी रचनाके बारेमें मेरा और उनका मतभेद ही है। उनकी दृष्टिसे देखूँ तो मैं यह बात मान लूँगा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने पेश मेरे प्रस्तावोंका प्राक्कथन कांग्रेसके प्रस्तावके शब्दोंसे आगे जाता है। लेकिन (मुझे कहना चाहिए तबसे) स्थिति बिलकुल बदल गई है। मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे इससे पहलेकी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावोंका अध्ययन करें। उन्हें उसमें प्राक्कथनकी रूपरेखाकी झलक मिल जायेगी। मेरा खयाल था कि सविनय अवज्ञाकी तैयारीके लिए चरखा अख्तियार करना अनिवार्य ही माना गया है। प्रस्तावोंमें यह शर्त बार-बार रखी गई है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आखिरी बैठकमें बहुत-सी बातोंका पूर्ण विरोध तो किया गया था, लेकिन इस प्राक्कथनके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा गया था। क्योंकि हरएकने सविनय अवज्ञाके लिए चरखेको पहले ही आवश्यक मान लिया था। मेरा खयाल है कि मेरा उस प्राक्कथनको पेश करना ठीक ही था।

कताईकी खूबियोंको ध्यानमें रखते हुए मैं अपना यह विश्वास दोहराता हूँ कि जबतक कताई व्यापक न होगी, तबतक जनताका स्वराज्य नहीं आ सकता। यह सच है कि हम लोग परदेशी सत्ताके अधीन होनेसे पहले कातते तो थे लेकिन उस वक्त उसकी राष्ट्रीय उपयोगिता नहीं समझते थे। क्या हम अशुद्ध वायु ग्रहण करके अकसर अपने फेफड़े खराब नहीं कर लेते? जब वे खराब हो जाते हैं तभी उनकी और शुद्ध वायुकी जरूरत समझमें आती है। चरखेको फिर अपनानेके मानी होते हैं बहुत-सा संगठन, बहुत-सा सहयोग, बहुत-से पैसेकी बचत, उसका जनतामें वितरण और यहाँ बने रहनेके लिए अंग्रेजोंके लालचमें उस हदतक कमी। इसलिए जब कोई मुझसे चरखेसे स्वराज्य स्थापित करनेकी सम्भावनाके बारेमें सवाल करता है तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे यह कहनेकी जरूरत नही है कि मैंने स्वराज्य पानेके लिए हर राष्ट्रको हर हालतमें चरखा चलाना आवश्यक नहीं बताया है। श्री आचार्य देखेंगे

कि उन्होंने चरखेके खिलाफ जो दलीलें पेश की हैं वे ऐसी बातोंको लेकर की हैं जो मैंने उसके बारेमें कभी कही ही नहीं।

अब कौंसिलोंका प्रश्न लीजिये। मैं कुछ हदतक कौंसिलोंकी उपयोगितासे इनकार नहीं करता। मेरा तो इतना ही कहना है कि वे जनताके किसी कामकी नहीं हैं और चूंकि कांग्रेसको अपना राष्ट्रीय स्वरूप कायम रखनेके लिए मुख्यतया जनताका प्रतिनिधित्व करना ही चाहिए और ऐसा कार्यक्रम ही सामने रखना चाहिए जिसमें जनता खुलकर भाग ले सके; इसलिए मेरा यह कहना है कि बहिष्कारको जैसाका-तैसा कायम रहने देनेमें ही बुद्धिमत्ता है। मेरे इस प्रस्तावकी पुख्तगी तो जिस हिसाबसे हम नीचे उतरकर जनताके साथ अपनेको एक करेंगे उसी अनुपातमें महसूस की जा सकेगी। वकील लोग और धारासभावादी यदि मेरे कथनकी सत्यताको समझ सकें तो वे कांग्रेसके पदोंका खयाल किये बिना ही प्रजाकी अच्छी सेवा कर सकते है और कांग्रेसमें रह सकते हैं।

कार्यक्रममें कोई बुराई नही है। बुराई तो हमारे आपसके अविश्वासमें, असहिष्णुता-में, कल्पना शक्तिके अभावमें और पदलोलुपतामें ही है। यदि दोनों पक्ष सत्ताकी चाह छोड़ दें और केवल सेवा करना ही सीख लें तो असहयोगका कार्यक्रम ही एकमात्र सच्चा राष्ट्रीय कार्यक्रम साबित होगा। क्या यह समझ मुश्किल है कि बहुतसे गाँव, जहाँ रेल नहीं पहुँची है, अदालतों, पाठशालाओं और धारासभाओंके बारेमें कुछ भी नहीं जानते और परिस्थितिवश कहिए उनका बहिष्कार ही किये हुए हैं। यदि हम जो उनकी सेवा करना चाहते हैं, सत्ताकी चमक-दमकको तुच्छ मानने लगें तो इन करोड़ों ग्रामवासियोंके लिए कुछ आशा बँध सकती है। अगर हम ऐसा न करें तो फिर एक सुयोग्य देशभक्तके गम्भीरतापूर्वक कहे गये निम्न कथनको ही ठीक माना जायेगा :

> **मैं आपके कार्यक्रममें विश्वास नहीं करता, क्योंकि जनताके सम्बन्धमें जैसा आपका भाव है वैसा मेरा नहीं है। वे प्लेगमें या भूखसे मर जायें इससे बेहतर तो यही है कि मैं उन्हें सिर्फ लड़ाईके मैदानमें ले जाकर वहीं उनकी आहुति चढ़ा दूं। यह सच है कि यह बलिदान दिलसे नहीं होगा, किन्तु यह जरूरी है। जब इन लोगोंको, जो समाजके लिए सिर्फ भारस्वरूप हैं, रणक्षेत्रमें कटवाकर भारतवर्ष रहनेके काबिल देश बनेगा, उस समय भारतवर्ष भूखों मरने-वाले लोगों और गुलामोंका देश नहीं, स्वतन्त्र मनुष्योंका स्वतन्त्र देश होगा।**

उक्त सज्जनसे मैंने कहा कि यदि मैं उनकी बातको स्वीकार कर सकूँ तो उनकी दलीलको लाजवाब मानूंगा। लेकिन जब हम एक-दूसरेके पूर्व पक्षको ही ठीक नहीं मान सके तब अपने-अपने मतोंपर कायम रहना ही हमने ठीक माना। हमने एक-दूसरेके निष्कर्षोंको आदरकी दृष्टिसे देखा और अच्छेसे-अच्छे मित्रोंकी तरह एक-दूसरेसे विदा ली। मुझे तो अपने अदनासे-अदना देशवासीको साथ लेकर चलना है फिर चाहे नैया पार लगे, चाहे डूब जाये। यदि श्री आचार्य मेरी इस स्थितिको जाननेका कष्ट उठायें तो वे १९२० की और आजकी मेरी बातमें कोई अन्तर नहीं पायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२३०. टिप्पणियाँ

पी० बी०से

आपके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें जो विलम्ब हुआ उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। उत्तर इस प्रकार है:

(१) मैं विदेशी कपड़ेपर जबरदस्त आयात-कर लगानेका हिमायती हूँ, भले ही उससे खादीको लाभ न पहुँचकर केवल देशी मिलोंको ही लाभ क्यों न पहुँचे। मैं विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार करनेके लिए आतुर हूँ। मुझे खादी और देशी मिलोंके बीच प्रतियोगिताका डर नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमारी मिलें आज भारतकी आवश्यकता पूरी करनेकी स्थितिमें नहीं हैं। किन्तु मान लें कि वे खादीसे प्रतियोगिता करती हैं तो मैं उस हालतमें जनताकी सुरक्षाके लिए खादीको अपनी मिलोंके विरुद्ध उसी प्रकार निःसंकोच संरक्षण दूँगा, जिस प्रकार मैं इस समय देशी मिलोंको विदेशी प्रतियोगिताके विरुद्ध संरक्षण देना चाहता हूँ। मेरे आँकड़ोंके अध्ययनसे सिद्ध होता है कि विदेशी कपड़ेके बहिष्कारसे हमारी मिलों और हाथकती खादी दोनोंको समान रूपसे लाभ पहुँचेगा।

(२) खादीको संरक्षण देना जबरदस्ती नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे मद्य-पानके निषेधको जबरदस्ती नहीं कहा जा सकता। यह राज्यका कर्त्तव्य नहीं है कि वह किसी अल्पसंख्यक वर्गके हितके लिए किसी ऐसी वस्तुको प्रोत्साहित करे जिसे जनमत समस्त जनताके नैतिक या भौतिक कल्याणकी दृष्टिसे अहितकर मानता है। -

(३) यदि विदेशियोंके साथ, जैसा आज किया जाता है वैसा, बहुविध पक्षपात न किया जाये तो मैं विदेशी पूंजीके अथवा विदेशियोंके भारतमें आनेसे नहीं डरता। हम उचित और बराबरीकी प्रतियोगितामें भली-भाँति टिक सकते हैं।

(४) मैं व्यक्तिगतरूपसे बड़े-बड़े न्यासों तथा विशाल यन्त्रों द्वारा उद्योगोंके केन्द्रीकरणका विरोधी हूँ। किन्तु इस समय मेरा काम शोषणकी उस जबरदस्त प्रणालीको नष्ट करना है, जो भारतका विनाश कर रही है। यदि भारत खादी तथा उसकी आनुषंगिक बातोंको अपना लेता है तो मुझे आशा है कि भारत आधुनिक यन्त्रोंकी प्रणालीको भी उसी हदतक अपनायेगा, जिस हदतक वह जीवनकी सुविधाओं तथा जीवनकी रक्षाके कामोंके लिए आवश्यक मानी जा सकती है।

आचार्य गिडवानी

श्रीमती गंगाबाई गिडवानीको अपने पतिका निम्नलिखित पत्र[१] प्राप्त हुआ है:

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें जेल जीवनका वर्णन था और अन्तमें कुछ मित्रों और रिश्तेदारोंको पत्र लिखनेके लिए धन्यवाद दिया गया था।

खादीकार्यकी झलक

उपरोक्त शीर्षकसे अध्यवसायी श्री वी० एफ० भरूचाने अपने बंगालके दौरेका विवरण प्रकाशित किया है। विवरणमें कामकी बातें हैं और वे कामकाजी और शिक्षाप्रद भी हैं। मैं उस अनुच्छेदको छोड़ देता हूँ, जिसमें उन्होंने इस बातपर दुःख प्रकट किया है कि यदि अहमदाबादकी मिलोंने बंग-भंगके दिनोंमें धोखा न दिया होता तो आज बंगाल पूर्णतः स्वदेशीके रंगमें रंगा होता और साथ ही इस बातकी भी शिकायत है कि सिराजगंजकी स्वदेशी प्रदर्शनीमें डा० प्रफुल्लचन्द्र रायकी दुकानको छोड़कर बाकी सब दुकानोंकी खादी अशुद्ध थी। श्री भरूचाने देशबन्धु दाससे यह अपील की है कि वे सत्याग्रहियोंसे खद्दर पहननेका आग्रह करें तथा शुद्ध खादी संगठनके लिए कुछ कार्यकर्त्ता अलग रख दें; मैं इसे भी छोड़ रहा हूँ, किन्तु डा० राय और उनके योग्य सहायक बाबू सतीशचन्द्र दासगुप्तके शानदार कामके बारेमें श्री भरूचाने जो उत्साहपूर्ण रिपोर्ट दी है उसे मैं अवश्य दूंगा।[1]

> डा० प्र० चं० राय बंगालमें चरखेके सन्देशवाहक हैं। रसायनशास्त्रके ये बूढ़े आचार्य दुर्बल तन और कमजोर स्वास्थ्यके बावजूद भी दुर्भिक्ष और बाढ़से बरबाद बंगालके किसानोंकी रक्षाके लिए खेतों और जलप्लावित क्षेत्रोंमें घूम रहे हैं और आज वे इसकी जो अमोघ औषधि बता रहे हैं . . . वह औषधि है घर-घरमें चलनेवाला पुरातन चक्र अर्थात् चरखा। राजशाही और अन्य जलप्लावित क्षेत्रोंमें डा० रायने चरखेको पुनरुज्जीवित करके और खद्दरको लोकप्रिय बनाकर भूखों मरते लोगोंकी रक्षा की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने बंगालमें खद्दर प्रचारके लिए खादी-निकाय[2], खादी-प्रतिष्ठान्[3] और देशी रंग-निधिका[4] सूत्रपात किया है। उन्हें अपने चरखों और करघोंको काम देनेके लिए प्रति सप्ताह तीन हजार रुपयोंकी आवश्यकता होती है। . . . डा० रायने स्वयं खादीके कार्यके लिए अपनी जीवन-भरकी संचित कमाई ४०,००० रुपयेकी राशि भी दे दी है। सचमुच, बंगालमें वे खादीके सन्देशवाहक हैं।
>
> अब मैं अपने देखे हुए कताई और बुनाईके केन्द्रोंके कामकी कुछ झलक दूंगा।[5]

मैं श्री भरूचाकी इस कल्याण-कामनामें अपनी भी कल्याण-कामना जोड़ता हूँ।

श्री भरूचा हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेकी चरखेकी-क्षमताके बारेमें भी उतने ही उत्साही हैं। इस बारेमें उनका अनुच्छेद यह है।

१. अंशतः उद्धृत।

२, ३ और ४. आचार्य राय द्वारा रचनात्मक कार्यक्रमके लिए स्थापित लोकप्रिय संस्थाएँ।

५. इसके बाद अतराई, रानीनगर, तलोरा और सुखिया (चटगाँव) केन्द्रोंके रचनात्मक कार्य और उसके संगठनका विवरण तथा संगठनकर्त्ता सतीशचन्द्र दासगुप्तके काम और स्वभावकी प्रशस्ति और उनकी कल्याण-कामनाका विवरण था। वह यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

बंगाल कष्ट-निवारण समितिके खादी-कार्यसे सम्बन्धित तथा खादी निकाय, खादी प्रतिष्ठान, और देशी रंग-निधिसे सम्बन्धित लगभग सभी स्वयंसेवक और कार्यकर्त्ता हिन्दू हैं। और इन संस्थाओंसे जो लाभ उठाते हैं, उनमें सबसे अधिक संख्या मुसलमानोंकी है। ये हिन्दू कार्यकर्त्ता अपने केन्द्रोंसे मीलों चल कर मुसलमानोंकी झोंपड़ियोंमें कपास और रुई पहुँचाते हैं। वे काता हुआ सूत तोलते हैं, उसकी मजदूरी देते हैं; चरखोंकी मरम्मत करते है, कल-पुर्जे जुटाते हैं, कातनेवालोंका हिसाब तैयार करते हैं और कपास या रुई, जिसे जो चाहिए सो देते हैं। इस प्रकार ये हिन्दू कार्यकर्त्ता अपनी मुसलमान बहनोंकी सेवा उनके भाइयोंकी तरह करते हैं। हिन्दू कार्यकर्त्ताओं और मुसलमान कातनेवालों, बुनकरों तथा उनके कुटुम्बोंके बीच एक-दूसरेके प्रति इतना आदरभाव है कि उनको देखकर कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि वे भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी हैं। वे इस प्रकार बोलते और व्यवहार करते हैं, मानो वे सब बंगाली हैं और एक ही कौम और मानव-बिरादरीके लोग हैं। सचमुच, यदि देशके और भागोंमें भी चरखेका ऐसा ही प्रचार किया जाये, जैसा सतीश बाबूके 'तरुण' कार्यकर्त्ता कर रहे हैं तो हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचका मौजूदा तनाव बहुत-कुछ कम और यदि भगवान्‌ने चाहा तो लुप्त ही हो जायेगा।

अधिक उत्पादन ?

पाठकोंने श्री भरूचाके विवरणमें लक्ष्य किया होगा कि डा० रायको अपनी खादीको खरीदनेके लिए ग्राहक जुटानेमें कठिनाई होती है। यही शिकायत कर्नाटकके डा० हार्डीकरने भी की है। मैं पंजाबमें बेकार पड़े हुए संग्रहका एक पिछले अंकमें पहले ही निर्देश कर चुका हूँ। चूँकि गुजरातको आन्ध्रसे बहुत ज्यादा खादी खरीदनी बन्द करनी ही है, इसलिए आन्ध्र भी अधिक उत्पादनकी शिकायत करेगा। यही बात लगभग प्रत्येक खादी-उत्पादक प्रान्तपर लागू होती है। फिर भी समूचे भारतमें खादीका सारा संग्रह अधिकसे-अधिक बीस लाखसे ज्यादाका नहीं होगा। आप इसकी तुलना करोड़ों रुपयोंकी कीमतके विदेशी वस्त्रके संग्रहसे करें। क्या यह बात हमारे कार्य तथा धनाढ्य लोगोंकी देशभक्तिपर धिक्कारके योग्य नहीं ठहरती? एक करोड़पति खादीके सम्पूर्ण वर्तमान संग्रहको खरीदकर उसे गरीबोंमें सस्ते भावसे बेच सकता है। कोई देशभक्त मिल-मालिक भी नुकसान उठाये बिना ऐसा ही कर सकता है। हमारे अधिवेशनोंमें हजारों लाखों स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते हैं। यदि वे सारी खादी एक ही दिनमें खरीद डालें तो वे कुछ निर्धन नहीं हो जायेंगे। सार्वजनिक संस्थाएँ बिना कुछ अथवा अधिक हानि उठाये अपनी कपड़ेकी आवश्यकता खादी खरीदकर पूरी कर सकती हैं। बम्बई ऐसे मामलोंमें सदा आगे रहा है। अगर बम्बईके बीस लाख निवासी इतना ठानलें तो वे वर्तमान अतिरिक्त संग्रहको बहुत ज्यादा नुकसान उठाये बिना ही खरीद सकते हैं। किन्तु मैं शिकायत नहीं करना चाहता। दोष

जनताका नहीं है। यह अभीतक सिद्ध तो हुआ नहीं है। दोष कार्यकर्त्ताओंका है। जैसे हम उत्पादनकी व्यवस्था करते हैं, वैसे ही हमें बिक्रीकी भी व्यवस्था करनी होगी। नियम यह होना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त जितनी खादी उत्पन्न करता है उतनी बेचे भी। साथ ही प्रत्येक प्रान्तको अपने पूरे सामर्थ्यसे खादीका उत्पादन करना चाहिए और यदि कुछ अतिरिक्त माल बचे तो उसे बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे प्रमुख शहरोंको, जो स्वयं सफल उत्पादन-केन्द्र नहीं होंगे, भेज देना चाहिए। इन सबके लिए व्यवस्था और विचार करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक प्रान्तको अपनी न्यूनतम बिक्री निर्धारित करनी होगी। यदि किसी प्रान्तके कातनेवाले और कार्यकर्त्ता खुद विदेशी या मिलका कपड़ा पहनें और अपना तैयार किया हुआ माल बिक्रीके लिए बाहर भेजें तो इससे काम नहीं चलेगा। इस प्रकारकी व्यवस्थाकी ओर पहला कदम निःसन्देह यह है कि अ० भा० कां० कमेटीका कताई-सम्बन्धी प्रस्ताव पूर्णतः कार्यान्वित किया जाये।

अ-प्रतिनिधि

अतः यह प्रसन्नताकी बात है कि विभिन्न प्रान्त कताई-सम्बन्धी प्रस्तावका समर्थन कर रहे हैं और अपने-अपने प्रान्तमें कताईकी व्यवस्था कर रहे हैं। मुझे आशा करनी चाहिए कि इसमें कोई भी प्रान्त पीछे नहीं रहेगा। किन्तु मेरा खयाल है कि कोई भी यह नहीं सोचता है कि कताई-सम्बन्धी प्रस्ताव जिस पुरुष या स्त्रीपर लागू नहीं होता उसे कातने अथवा अखिल भारतीय खादी निकायको अपना सूत भेजनेकी आवश्यकता नहीं है। वह प्रस्ताव आदेशात्मक है और अ० भा० कां० कमेटी सारे राष्ट्रको आदेश नहीं भेज सकती। किन्तु यदि कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके लिए यह अनिवार्य है तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कांग्रेसके अन्य सभी सदस्योंको, अर्थात् चार आना चन्दा देनेवाले निर्वाचकोंको और दूसरोंको भी, इसे अपने लिए अनिवार्य बना लेना चाहिए और जितना सम्भव हो, उतना हाथकता सूत केन्द्रीय संगठनको प्रेषित करनेके लिए खादी निकाय मन्त्रीको अथवा उसके प्रान्तीय प्रतिनिधिको भेजना अपना नैतिक कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि समूचा राष्ट्र दलोंका खयाल छोड़कर, सहयोग करे तो हम देखेंगे कि हमारे देशसे विदेशी कपड़ा और साथ ही गरीबी भी बहुत ही कम समयमें समाप्त हो सकती हैं। खादीके इस कार्यकी व्यवस्था करने-जैसा सरल कोई दूसरा काम है ही नहीं और यदि हम एक राष्ट्रके रूपमें इस साधारणसे कार्यकी भी व्यवस्था नहीं कर सकते तो हमसे किसी अन्य बड़े रचनात्मक कार्यकी व्यवस्था भी करते नहीं बनेगी।

कपड़ा या इस्पात

आचार्य रायने राष्ट्रके नाम एक करुण अपील प्रकाशित की है। उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि इस्पातको संरक्षण देनेके लिए प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ रुपयेकी सहायता देनी उचित है तो निश्चय ही खादीको संरक्षण देनेके लिए उससे भी बड़ी रकम देना कहीं अधिक उचित होगा।

डा० राय कहते हैं:

किन्तु कपड़ा और इस्पात, इन दो उद्योगोंमें किसका महत्त्व अधिक है? हमारा वस्त्र-उद्योग अनुचित विदेशी प्रतियोगिताके कारण नष्ट हो गया। यदि संरक्षण ही देना है तो राज्यसे संरक्षण पानेका सबसे अधिक अधिकारी कौनसा उद्योग है? हमारे देशके लोगोंके लिए भोजन और वस्त्रकी, जो जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, बेहद कमी रहती है। क्या आयातित सूती मालपर कर लगाकर हमारे हाथ-कताई उद्योगको प्रतियोगितासे नहीं बचाया जा सकता? किन्तु सरकार ऐसा कदापि नहीं करेगी। भारत स्वराज्य मिलने तक ऐसा करनेमें असमर्थ है। जो काम सरकार नहीं करना चाहती, लोग चाहें तो उसे कर सकते हैं। हमें कह देना चाहिए कि हम आयातित विदेशी सूती कपड़ा नहीं पहनेंगे, हम केवल हाथकी कती और हाथकी बुनी खादीका ही उपयोग करेंगे और इस प्रकार प्रतिवर्ष देशसे ६० करोड़ रुपये बाहर जानेसे रोकेंगे। यह हमारा काम है कि हम स्वयं विदेशी प्रतियोगितासे अपने वस्त्र-उद्योगको संरक्षण दें।

मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि अब हाथकी कताई स्थायी हो गई है; बशर्ते हमारे देशवासी देशभक्तिके खयालसे केवल कुछ वर्षों तक मोटे और महँगे कपड़ेको पहननेकी तकलीफ गवारा करें। आप अनजाने टाटा इस्पात-उद्योगको डेढ़ करोड़ रुपया दे रहे हैं, इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप जान-बूझकर एक ऐसे उद्योगको भी कुछ सहायता दें, जिसकी तुलनामें टाटा इस्पात-उद्योग बौना ही है। जबतक यह शिशु-उद्योग दृढ़ आधारपर प्रतिष्ठित नहीं होता तबतक हमें अपने संघर्षकी इस प्रारम्भिक अवस्थामें अपनी देशभक्तिके बलपर ही सफलता प्राप्त करनी है।

असममें अफीम

असमकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त अफीम जाँच-समिति अपना काम शुरू कर चुकी है और उसने शिवसागरमें अनेक साक्षियाँ ली हैं। कई साक्षी जिलेके प्रमुख व्यक्ति थे और सभी दलोंसे छाँटे गये थे। उन्होंने एकमतसे अफीमपर पूरी रोक लगानेका समर्थन किया। एक अनुभवी सज्जनने कहा, यह कथन मूर्खतापूर्ण है कि अफीममें काला-आजार या मलेरियाके निरोधका गुण है। उन्होंने यह भी कहा कि शिवसागर जिलेके एक गाँव अंगेरा खोवामें सबसे ज्यादा मौतें अफीम खानेवालोंकी ही हुई हैं। कुछ साक्षियोंने यह दिलचस्प बात बताई कि लोगोंको अफीम खाने या चंडू पीनेसे रोकनेके अपराधमें नशा-निषेध करनेवाले कुछ कार्यकर्त्ताओंको तंग किया गया तथा उनपर मुकदमे चलाये गये। मैं आशा करता हूँ कि यह समिति सामान्य गवाहियाँ लेकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जायेगी, वरन् अफीमकी खेती, अफीमकी दूकानों और अफीमके अड्डोंके बारेमें तुलनात्मक आँकड़े भी एकत्र करेगी। उसमें असमके लोगोंपर

पड़े अफीमके प्रभावके सम्बन्धमें डाक्टरोंकी गवाहियाँ भी ली जानी चाहिए। अफीमके पूर्ण निषेधसे सम्पादित प्रभावके बारेमें भी गवाहियाँ ली जानी चाहिए। यदि प्रतिवेदनको उपयोगी बनाना है तो उसे वस्तुतः जानकारीसे भरपूर होना चाहिए।

अ० भा० खा० बोर्डकी शिकायत

अखिल भारतीय खादी बोर्ड पिछले ६ महीनोंसे खादीकी प्रगति जाननेके लिए प्रान्तोंसे खादीके कुछ मासिक आँकड़े माँग रहा है। खादीके उत्पादन और बिक्रीको प्रोत्साहित करनेके लिए प्रचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किन्तु बोर्डका कहना है कि तमिलनाड, उत्कल, पंजाब, बिहार और महाराष्ट्र ही ऐसे प्रान्त हैं, जो नियमित विवरण भेजते हैं। केरलने विवरण भेजना अभी शुरू किया है। महाराष्ट्रके आँकड़े अधूरे हैं। कुछ प्रान्तोंके विवरण नियमित नहीं आते। दिल्ली और बर्मामें अभीतक खादी बोर्डोंका निर्माण ही नहीं किया गया है। यह स्थिति सचमुच खेदजनक है। प्रधान कार्यालयोंके पास कांग्रेसके सभी विभागोंकी प्रवृत्तियोंके पूरे आँकड़े होने चाहिए। खादी इन सबमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः प्रान्तोंसे स्वभावतः यह आशा की जाती है कि वे जो सूचना दें, वह ताजीसे-ताजी और सही हो। उदाहरणार्थ, कांग्रेसके तत्त्वावधानमें या स्वतन्त्र रूपसे प्रत्येक जिलेमें जो खादी तैयार होती है उसके परिमाणकी जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकार स्थानीय तथा प्रान्तोंके बाहरकी बिक्रीकी जानकारी भी आवश्यक है। साथ ही कोई प्रान्त खादीका कितना आयात करता है यह जानकारी भी आवश्यक है। यह काम नियमपूर्वक और समयपर किया जाना चाहिए। केन्द्रीय कार्यालयको स्मरणपत्र भेजनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। संगठन शब्दका इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं होता कि उसमें ऊपरसे नीचेतक प्रत्येक छोटीसे-छोटी बातका ध्यान रखा जाये और उसके सब अंग मिल-जुलकर सहयोगपूर्ण काम करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२३१. पत्र: एक मित्रको

साबरमती

२४ जुलाई, १९२४

प्रिय मित्र,

आपने जो कठिनाई बताई है मैं उसे समझता हूँ; किन्तु मेरा विचार अब भी यही है कि मेरे अध्यक्ष न बननेसे हमारा कार्य अधिक अच्छी तरह आगे बढ़ेगा। यदि मैं अध्यक्ष नहीं बनता हूँ तो खादीका अहित क्यों होगा? कलकत्ता, नागपुर या अहमदाबादमें कोई कठिनाई नहीं आई थी। फिर बेलगांवमें ही उसका डर क्यों है? मेरे कार्यक्रमके रद्द होनेपर मेरे पृथक होनेका देशपर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह तो सोचिए। मौलाना शौकत अलीने मुझे तार भेजा है, आपने वह देखा ही होगा। उनके

मनमें क्या है, यह मैं नहीं जानता। शायद वे इस मुद्देपर बातचीत करनेके लिए यहाँ आयेंगे। मैं सिर्फ वही करना चाहता हूँ जो सही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९०००) से।

२३२. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

साबरमती
२४ जुलाई, १९२४

महोदय,

इसी १९ तारीखका आपका पत्र मिला। मुझे मालूम हुआ है कि नगर निगमके मानपत्रको स्वीकार करनेके लिए अगस्तके अन्तमें कोई तारीख निश्चित की जाय तो वह निगमको भी समान रूपसे सुविधाजनक होगी। फिर भी यदि आपको सुविधा हो तो मैं मानपत्र स्वीकार करनेके लिए ३० अगस्तका सुझाव देता हूँ। क्या आप कृपया मुझे सूचित करेंगे कि मुझे कब और किस स्थानपर इस रस्मको पूरा करनेके लिए हाजिर होना पड़ेगा।

आपका,

श्री वि० झ० पटेल, बार एट-ला
अध्यक्ष, नगर निगम
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८११) की फोटो-नकलसे।

२३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आषाढ़ बदी ८ [२४ जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

अहिंसाभावसे हिंसा भी हो सकती है ऐसा अबतक मेरी कल्पनामें नहिं आ सका है। मैंने खूब सोचा है। मेरा यह भी मन्तव्य है कि जबतक हम स्वयं गुणातीत न बन सकें हम इस वस्तुको पूर्णतया सोच भी नहिं सकते हैं।

आनंदस्वामीने आपको यंग इंडिया इ०के लीये बील भेज दीया है।

१. **यंग इंडिया**के बिलके प्रसंगसे स्पष्ट है कि यह २६ जून, १९२४को प्रेषीको लिखे गये पत्रके बाद लिखा गया था। १९२४में आषाढ़ बदी ८, २४ जुलाईको पड़ी थी।

मैं दिल्ली जाना चाहता हुं। परन्तु थोडी देर होगी। दिल तो चाहता है अभी चला जाऊं। परन्तु शारीरिक परिश्रमके लीये मैं तैयार नहिं हुं।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१८) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२३४. तार : मुहम्मद अलीको[1]

[२६ जुलाई, १९२४][2]

आपका तार मिला। आनन्दानन्द मशीनें जल्दी भिजवानेके लिए बम्बई और अहमदाबादके बीच चक्कर लगा रहे हैं।

गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९००३) की फोटो-नकलसे।

२३५. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

२६ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

नीचे आपके प्रश्नोंके[3] उत्तर दे रहा हूँ:

(१) मेरे विचारसे अपरिवर्तनवादियोंको कौंसिल-प्रवेशके खिलाफ सक्रिय प्रचार करनेकी पूरी छूट है, लेकिन राष्ट्रीय उद्देश्यकी दृष्टिसे मैं इसे सर्वथा अवांछनीय मानता हूँ।

१. यह मुहम्मद अलीके २५ जुलाईके तारके उत्तरमें भेजा गया था। मुहम्मद अलीका तार इस प्रकार था: "आज सुबह पहुँचा हूँ। आपके सुझावकी प्रतीक्षा है। शीघ्र ही अपने विचार और जानकारी भेजूँगा। प्रेस मिलनेकी उम्मीद कब करूँ। इन्तजार है।"

२. मुहम्मद अलीके नाम २७ जुलाईको भेजे पत्रमें गांधीजी कहते हैं: "कल आपको मेरे दोनों तार मिल गये होंगे।" यह तार अनुमानतः उन्हींमें से एक है।

३. ये प्रश्न प्रारम्भमें मुहम्मद अलीसे पूछे गये थे और बादमें २५ जुलाईके पत्रके साथ (देखिए परिशिष्ट ४-क) गांधीजीको भेजे गये। गांधीजीने उस प्रश्नावलीके उत्तरोंका जो मसविदा तैयार किया, वह एस० एन० ९००२ में उपलब्ध है।

(२) अगर एक पक्ष ऐसा कोई प्रचार शुरू कर दे तो दूसरे पक्षको भी विरोधी प्रचार करनेका उतना ही अधिकार है। लेकिन मैं तो दोनोंसे संयमसे काम लेनेको कहूँगा।[1]

(५) बहुमतके पक्षसे मैं न कुछ 'कर' रहा हूँ और न तबतक कुछ करनेके लिए ही तैयार हूँ, जबतक कि उस काममें कताई और ऐसी ही दूसरी चीजें शामिल न की जायें।

(६) अपरिवर्तनवादी लोग चाहे जो करें या न करें, बेशक मैं ऐसा मानता हूँ कि स्वराज्यवादियोंको हर उचित तरीकेसे अपनी शक्ति बढ़ानेका अधिकार है।

(७ क) इन सबको कार्यकारिणी संस्थाएँ होना चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि आज वे क्या हैं। जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ, कांग्रेसको अधिक प्रभावकारी *बनानेके खयालसे मैं संविधानमें कुछ संशोधन करनेका सुझाव देना चाहूँगा।*

(७ ख) मेरा निश्चित मत है कि अगर कांग्रेसको कुछ प्रभावकारी काम करना हो तो इसकी सभी कार्यकारिणी समितियाँ ऐसे लोगोंके हाथमें ही रहनी चाहिए, जिनका कांग्रेसके कार्यक्रममें पूरा विश्वास हो और जो फिलहाल कांग्रेस कार्यक्रमपर अमल करें।

मेरा खयाल है कि मौलाना मुहम्मद अली आपके प्रश्नोंके उत्तर देंगे। ३० अगस्तको मैं बम्बईमें रहूँगा। आशा है, आपके पिछले पत्रके[2] उत्तरमें भेजा गया मेरा कार्ड आपको मिल गया होगा।[3]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. प्रश्न ३ और ४ के उत्तर उपलब्ध नहीं हैं।

२. अपने इस पत्रकी एक प्रति गांधीजीने मौलाना मुहम्मद अलीको भी भेजी थी। पण्डित मोतीलाल नेहरूने इसका प्रत्युत्तर भी भेजा था। देखिए परिशिष्ट ४ (ख)।

३. यह उपलब्ध नहीं है।

२३६. पत्र : जे० बी० पेटिटको

सावरमती
२६ जुलाई, १९२४

प्रिय श्री पेटिट,

मेरे पत्रके उत्तरमें लिखा आपका १७ जूनका पत्र मिल गया था। लेकिन उसका जवाब भेजनेमें मैंने जान-बूझकर देरी की। बात यह थी कि जेल जानेसे पहले मैंने आपको एक पत्र लिखा था। सोचता था उसमें जो-कुछ लिखा था उसका कुछ ब्यौरा मिल जाये। कोशिश की, लेकिन नहीं मिला। श्री चतुर्वेदीको पत्रकी याद है, लेकिन पत्रका पता नहीं लग पाया। आपके पत्रमें श्री बनारसीदासके लिखे एक पत्रका उल्लेख है। श्री बनारसीदासको अच्छी तरह याद है कि मेरे पत्रके उत्तरमें आपने जो पत्र लिखा था उसमें आपने यहाँ दी जानेवाली रकमका आधा भाग देनेका वादा किया था। मेरा तो कहना है कि श्री बनारसीदासको यहाँ पूरे समयतक काम करनेकी जरूरत नहीं है। इतना ज्यादा काम ही नहीं है। अभी स्थिति यह है कि विशेषज्ञ होनेके नाते वे हममें से ज्यादातर लोगोंकी अपेक्षा अधिक काम करते हैं। उन्हें कुछ साहित्यिक दायित्वोंका भी निर्वाह करना पड़ता है, जिससे उन्हें कोई आमदनी नहीं होती और अगर वे बम्बईमें रहकर यह काम करें तो खर्च बहुत आयेगा। आपको मालूम ही है कि उनका रहन-सहन बहुत सादा है। इसलिए महत्वकी दृष्टिसे बम्बईमें वे जितना काम कर सके हैं, उसका चौगुना यहाँ करते हैं। उनका तीन-चौथाई समय विदेशोंसे सम्बन्धित काममें लग जाता है। इसलिए मेरे विचारसे यह बात बहुत ठीक होगी कि इस कामके लिए विशेष रूपसे जो राशि निर्धारित कर दी जाये वह इसी कामपर खर्च की जाये। अतः अगर संघ उनको बम्बईमें रखकर मोटी तनख्वाह देनेके बजाय उनके कामके लिए यहीं उन्हें वाजिब रकम दे दे तो उसे सस्ता पड़ेगा। वैसे, जब कभी वहाँ उनकी सेवाकी आवश्यकता हो, उन्हें बेशक बुला लिया जा सकता है।

आपसे यह निवेदन करनेसे पहले कि आप मेरा पत्र समितिके सामने पेश करें, अगर आप मेरी राय मानें तो मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि मैंने जो बात सुझाई है, वही ठीक है। उत्तरके साथ आप समितिके सदस्योंके नाम भी सूचित कर सकें तो कृपा हो। इससे मैं अपना विचार समितिके सदस्योंके सामने भी रख पाऊँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९९७८) की फोटो-नकलसे।

२३७. पत्र : डब्ल्यू० पॉटनको

२६ जुलाई, १९२४

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। 'यंग इंडिया' के ताजे अंकमें अफीमके सम्बन्धमें मेरा सुचिन्तित विचार देखनेको मिलेगा।[1] अगर आज ही अफीमका पूरा व्यापार बन्द कर दिया जाये और उसकी बिक्री सिर्फ दवाके कामोंके लिए ही होने दी जाये तो मेरा विश्वास है कि उसके खिलाफ कोई ऐसा आन्दोलन नहीं होगा जिसे आन्दोलन कहा जा सके। नैतिक दृष्टिकोणसे तो भारत सरकारकी अफीम सम्बन्धी नीतिके पक्षमें कहनेके लिए कुछ है ही नहीं।

मेरा स्वास्थ्य काफी अच्छा है। धन्यवाद।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री डब्ल्यू० पॉटन
१११ ए, रसा रोड
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२३८. पत्र : सी० एफ० वेलरको

साबरमती
२६ जुलाई, १९२४

प्रिय श्री वेलर,

२२ मईके आपके कृपा-पत्रका जवाब अबतक नहीं दे सका। पत्रके लिए तथा आपके इस सौजन्यपूर्ण आमन्त्रणके लिए भी कि मैं आपके घर ठहरूँ, आभारी हूँ। लेकिन वहाँ ठहरनेका लोभ मुझे संवरण ही करना पड़ेगा। आजकल मैं जिस प्रयोगमें लगा हुआ हूँ, उसे जबतक सफल सिद्ध करके न दिखा दूँ, तबतक मैं और कोई प्रयोग नहीं करूँगा। आज तो मैं उसकी सफलताका दावा ही नहीं कर सकता। उसके विपरीत लगता है, बहुतसे साथी-कार्यकर्त्ता मेरे तरीकेसे असन्तुष्ट हैं। अभी यहाँके

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २४-७-१९२४, उपशीर्षक "असममें अफीम"।

बजाय किसी और क्षेत्रमें काम शुरू करनेकी हिम्मत आज मुझमें नहीं है। आज मैं जिस पौवेको यहाँ सींच-सँवार रहा हूँ, वह अगर बढ़कर मजबूत वृक्षके रूपमें आ जाये तो बाकी सब आसान ही है। इसलिए मैं आपसे तथा अन्य मित्रोंसे यही अनुरोध करूँगा कि मुझे अपना वर्तमान कार्य-क्षेत्र छोड़कर कोई और काम शुरू करनेका प्रलोभन देनके बजाय इस समस्याका अध्ययन कीजिए और यह जहाँतक आप सबको लाभकारी लगे, इसके पक्षमें विश्व जनमत तैयार कीजिए और इस प्रकार मेरे इसी कामको सफल बनाइए।

अपने परिवारवालोंके लिए मेरा स्नेहाभिवादन स्वीकार करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री चार्ल्स एफ० वेलर
लीग ऑफ नेवर्स
ब्रॉड ऐंड वेस्ट ग्रैण्ड स्ट्रीट
एलिजाबेथ, न्यू जर्सी
यू० एस० ए०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२३९. पत्र: वसुमती पण्डितको

आषाढ़ वदी १० [२६, जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा कार्ड मिला। मानसिक चिन्ताको छोड़कर उपयुक्त उपचार करना और वहाँ रहकर अपने स्वास्थ्यको सुधार लेना। हजीरामें तुम्हारे लिए बन्दोबस्त कर रहा हूँ। गंगाबहनने सोमवारको पहुँचनेकी बात लिखी है। राधा ठीक तरहसे भोजन नहीं कर पाती।

बापूके आशीर्वाद

बहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४५१) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२४०. टिप्पणियाँ

आचार्य राय प्रतिदिन कातते हैं

आचार्य रायकी उम्र इस समय साठ सालसे ऊपर है — तिसपर भी वे कताई-का अभ्यास करते हैं। वे लिखते हैं:

> सचमुच चरखेके चलनेकी मधुर ध्वनि मेरे लिए शान्तिदायी सिद्ध हुई है। खादीमें मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती जाती है और ज्यों-ज्यों मेरा काम आगे बढ़ रहा है त्यों-त्यों चरखा मेरे उत्साहको कायम रखनेवाला अखूट स्रोत बनता जा रहा है।

यदि आचार्य राय-जैसे अति उद्यमी बड़े-बूढ़े लोग इस प्रकार सूत कातने लगें तो फिर युवा लोग, जिनके पास बहुत समय होता है, सूत क्यों न कातेंगे? आचार्य रायके उत्साहका कारण समझना आसान है। उन्होंने कितने ही वर्षोंसे अकाल पीड़ित बंगालियोंकी सहायता करनेका काम हाथमें लिया है। उस कामको करते हुए उन्होंने देखा है कि अकाल-पीड़ित केवल दान देनेसे तो नीतिभ्रष्ट हो जाते हैं और इससे उन्हें लाभ होनेके बजाय हानि होती है। हजारों स्त्री-पुरुषोंको ऐसा कौन-सा काम दिया जा सकता है जिससे उन्हें रोजी मिल सके? चरखेके सिवा इतनी व्यापक दूसरी कौन-सी वस्तु हो सकती है? उनकी तीक्ष्ण और परोपकार-रत बुद्धिमें इस बातका आ जाना कठिन न था।

इस्तीफे

हुबलीकी कांग्रेसके अनेक पदाधिकारियोंने कमेटीके प्रस्तावको देखते हुए इस्तीफे दे दिये हैं। कुछ लोग इस स्थितिसे डर गये हैं, परन्तु मैं तो इसे एक शुभ चिह्न मानता हूँ, क्योंकि इससे समितिके प्रस्तावके प्रति आदर व्यक्त होता है। जिन संस्थाओं-के पास राजदण्ड नहीं है, उनका अस्तित्व केवल उनके सदस्योंकी निष्ठापर ही अवलम्बित रहता है। मैं जानता था कि ऐसे बहुत-से पदाधिकारी हैं जो पंचविध बहिष्कारोंको नहीं मानते या उनका पालन नहीं करते और इसीलिए मैंने ऐसा प्रस्ताव रखा था कि ऐसे लोगोंसे अपने पदोंको छोड़नेका अनुरोध किया जाये। यदि ऐसे पदाधिकारी बिना रोष किये और पद छोड़ना उचित मानकर कांग्रेससे निकल जाते हों तो इसमें उनका और राष्ट्र — दोनोंका लाभ है। उन्होंने उचित कार्रवाई करके अपनी भलमनसाहतका परिचय दिया है और इस्तीफे देकर कांग्रेस कमेटीको शुद्ध किया है। ऐसा होनेपर भी उनकी सेवाएँ तो देशको मिलेंगी ही। यदि वे रोषके वश होकर निकले होंगे तो इसमें उन्हींकी हानि है, क्योंकि इससे उन्होंने सेवा द्वारा लोगों-का जो प्रेम प्राप्त किया है उसके नष्ट हो जानेकी सम्भावना है। परन्तु मुझे जो समाचार मिले हैं उनके अनुसार तो सब लोग साधुभावसे ही अलग हुए हैं। देशको

उनकी सेवाएँ मिलती रहेंगी। श्री गंगाधरराव [देशपाण्डे] ने केवल कर्नाटकके सामने ही नहीं, बल्कि सारे देशके सामने जो बढ़िया मिसाल पेश की है उससे ऐसी आशा रखी जा सकती है कि इस्तीफा देनेवाले सभी सज्जन उनका अनुकरण करके अपने पद छोड़ देनेपर भी देशकी सेवा करते रहेंगे। गुजरातके सामने तो श्री कालिदास झवेरीकी मिसाल है। वे इस्तीफा दे देनेके कारण सेवा करना बन्द कर देंगे — ऐसी बात नहीं है। जो लोग कांग्रेसके प्रस्तावोंपर अमल नहीं कर सके हैं, वे यदि पदाधिकारी रहते हैं तो मानो खुद अपनेको और देशको धोखा देते हैं। ऐसा करनेसे किसी भी संस्थाका काम नहीं चल सकता। जो शख्स खुद विदेशी कपड़ा पहनता हो वह दूसरोंसे उसका बहिष्कार कैसे करा सकता है? जो खुद वकालत करता हो वह दूसरोंसे वकालत कैसे छुड़ा सकेगा? जो खुद अपने लड़कोंको सरकारी पाठशालामें पढ़ाता है वह राष्ट्रीय पाठशालाका काम कैसे चला सकता है? फिर यदि बहिष्कार-को माननेवाले और उसका पालन करनेवाले लोगोंमें कांग्रेस संगठनको चलानेकी क्षमता न हो तो स्वराज्यका अर्थ ही क्या होगा? और यदि बहिष्कारपर अमल करनेवाला कोई भी न हो तो बहिष्कारको भावनाके रूपमें भी किस तरह कायम रखा जा सकता है? भावनाके रूपमें वही वस्तु रह सकती है जिसपर कुछ लोग तो जरूर अमल करते हों। कोई वस्तु भावनाके रूपमें इसी उद्देश्यसे कायम रखी जाती है कि उसपर किसी-न-किसी दिन तो अमल किया जाना है। यदि उसपर कोई भी अमल न करे तो फिर वह भावना नहीं, बल्कि ढकोसला मानी जायेगी। आज जो स्वच्छता हो रही है उससे ढकोसला मिट रहा है। यह कोई साधारण बात नहीं है। इसका अर्थ यह है कि हम जिस तरह भी विचार करें उसी तरह हमें एक ही जवाब मिलता है कि कमेटीके प्रस्ताव और उसकी रूसे दिये जानेवाले इस्तीफे दोनों ही स्वागत योग्य हैं।

शिक्षकोंके विषयमें क्या?

परन्तु एक कुमार-मन्दिरके आचार्य पूछते हैं कि जिस जगह लोगोंको राष्ट्रीय पाठशालाकी चाह न हो और शिक्षक वेतन न मिलनेसे भूखों मरते हों, वहाँ शिक्षकोंको क्या करना चाहिए? ऐसा ही सवाल एक बंगाली शिक्षकने किया था। मैंने उसका जवाब 'यंग इंडिया'में दिया है।[1] हम उसी प्रश्नपर यहाँ कुछ अधिक सूक्ष्मतासे विचार करते हैं। अब्बास साहबने[2] इस सवालपर दूसरे ढंगसे विचार करनेका भार मुझपर डाला है। वे कहते हैं कि कितने ही गाँवोंमें पाठशालाएँ हैं ही नहीं। वहाँ क्या किया जाये? पहली कठिनाईका जवाब सरल है। यदि शिक्षकमें प्रतिभा होती है तो वह अपना काम हर उपायसे चला लेता है। शिक्षक तो चुम्बककी तरह काम करता है। उसके आसपास लड़के बने ही रहते हैं और उसे घड़ी-भर छोड़ना पसन्द नहीं करते। विद्यार्थियोंको उसका वियोग असह्य हो जाता है। माँ-बाप ऐसे शिक्षक-

१. देखिए "शिक्षकोंकी दीन दशा", २४-७-१९२४।

२. अब्बास तैयबजी।

का त्याग हरगिज न करेंगे। यदि शिक्षक धनी हो जाता है तो वह 'चोर' समझा जाता है और भूखों मरता है तो 'बुद्धू' माना जाता है। उक्त शिक्षकोंको मेरी सलाह है कि वे घर-घर भीख माँगकर अपना पेट भरें; लेकिन अपना शिक्षा-धर्म न छोड़ें। काका कालेलकरने[1] एक जगह लिखा है कि शिक्षाको धन्धा न मानना चाहिए। उनका यह कथन बिलकुल ठीक है।

फिर आज तो शिक्षा सस्ती हो जानी चाहिए। लड़के पढ़ें और पढ़ते हुए कमायें। पहले जमानेमें ऐसा ही होता था। विद्यार्थी 'समित्पाणि' होकर गुरुके पास जाता था। उसके दो अर्थ हैं। एक अर्थ यह है कि वह उसके द्वारा अपना भार गुरुपर न डालने और मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपने गुरुका निर्वाह करनेकी प्रतिज्ञा करता है। उसका दूसरा अर्थ यह है कि वह सदा विनयशील रहेगा। इन दोनों बातोंकी जरूरत आज भी है। चरखेमें मजदूरी और विनय दोनों हैं। उक्त शिक्षक लड़कोंको रुईकी तमाम विधियाँ सिखायें और उनसे बढ़िया सूत कतवायें। वे खुद भी उनके सामने बैठें और सूत कातें। वे साथ-साथ लड़कोंको पहाड़े याद करायें। संस्कृत धातुओं और संज्ञाओंके रूप कण्ठस्थ करायें। वे उन्हें श्लोकोंके अर्थ समझायें और अच्छी-अच्छी ऐतिहासिक कथाएँ सुनायें। वे लड़कोंके लिए चरखा कातना एक सरस और ज्ञानमय विषय बना दें। ऐसा होनेसे लड़कोंका जी भी न ऊबेगा। तकलीसे सूत कातनेकी विधि एक लेखमें अन्यत्र दी गई है। उसकी तजवीज करनेसे काम तुरन्त शुरू किया जा सकता है।

अब अब्बास साहबके सवालपर विचार करें। 'नवजीवन' के पाठक शायद ही इस बातको जानते होंगे कि भारतमें अंग्रेजीका ज्ञान चाहे बढ़ गया हो, परन्तु समष्टि-रूपसे अक्षर-ज्ञान कम हो गया है। हिन्दुस्तानमें पिछले पचास वर्षोंमें देहाती पाठशालाओंकी संख्या कम हो गई है। इसका अर्थ यह है कि जितने अंशमें हम मध्यम-वर्गके लोग अपनेको ऊँचा उठा मानते हैं उतने ही अंशमें देहाती बालक नीचे गिरे हैं। ज्यों-ज्यों हमारी आर्थिक उन्नति हुई है त्यों-त्यों देहातकी अवनति हुई है — उसी तरह ज्यों-ज्यों विद्यामें हमारी उन्नति हुई है त्यों-त्यों उनकी अवनति। यह बात है तो भयंकर, परन्तु है बिलकुल सच। कोई भी अर्थशास्त्री इस बातको साबित कर सकता है। ब्रह्मदेशमें ऐसा देखा गया है कि अंग्रेजी राज्य आनेसे पहले प्रायः तमाम बालकोंको अक्षर-ज्ञान था — क्योंकि वहाँतक एक भी गाँव पाठशालाके बिना न था। वहाँ आज हालत बदलती जा रही है। ग्रामीण पाठशालाएँ टूटती जा रही हैं और इससे अक्षरहीनता बढ़ती जा रही है।

हमारा आन्दोलन मुख्यतः गरीबोंके लिए है। इसलिए वह जिस हदतक उनमें फैलेगा उसी हदतक गरीबोंकी आर्थिक और बौद्धिक उन्नति होगी। इसका उपाय यह है कि हर गाँवमें एक स्थानीय पण्डित खोजकर उससे पाठशाला खुलवाई जाये। वह पेड़के नीचे बैठकर पढ़ाये। हिन्दुओंके लड़के मन्दिरोंमें पढ़ें और मुसलमानोंके मस्जिदोंमें। लोग इस तरह कार्य आरम्भ करें और फिर दोनोंके लिए एक ही पाठशालाकी

१. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।

व्यवस्था करें। इसमें कठिनाइयाँ तो अनेक हैं; परन्तु उन्हें दूर करनेमें ही हमारी क्षमताकी कसौटी है। हमें देहातमें इतनी जागृति और इतना विद्यानुराग पैदा करना चाहिए। चरखेकी हलचलके मूलमें ये सब बातें निहित हैं। जिला और तहसील समितियोंको उचित है कि वे इन कामोंको सावधान होकर करें।

खेड़ा जिला

गुजरातमें कताईकी जो स्पर्धा हो रही है वह स्वागतके योग्य है। खेड़ा जिला कमेटीने हर मास ५००० गज सूत कातनेका प्रस्ताव स्वीकार किया है और कमसे-कम ५०० स्त्री-पुरुषोंसे इतना सूत कतवानेका निश्चय करके कताईका काम ताल्लुकों और महालोंमें बाँट दिया गया है। मैं आशा करता हूँ कि खेड़ा जिला निवासी इतनेसे ही सन्तुष्ट न हो जायेंगे। हम तो अन्ततः लाखों लोगोंका आध घंटेका श्रम माँगते हैं। इसलिए मैं खेड़ा जिला समितिको धन्यवाद देनेके साथ ही इतनी चेतावनी भी देता हूँ कि मैं उनकी ५०० कातनेवालोंको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञाको इससे भी बड़ी संख्याकी सूचक मानता हूँ। यह खेड़ाकी शक्तिकी हद नहीं हो सकती है। मैं आशा करता हूँ कि खेड़ा जिला कमेटीकी तरह दूसरी कमेटियाँ भी इसके लिए आवश्यक कार्रवाई करेंगी।

मुस्लिम खादी समिति

श्री सैयद हुसैन उरेजीने एक सूची[1] प्रकाशित करनेके लिए भेजी है:

मैं मौलाना आजाद सुमानीको तथा अहमदाबादके मुसलमान भाइयोंको इस समितिकी स्थापनापर बधाई देता हूँ। यों तो सारे हिन्दुस्तानमें खादीका प्रचार शिथिल पड़ा है; परन्तु मुसलमान भाइयोंने तो आम तौरपर खादीसे अपना नाता तोड़-सा लिया है। सुना है कि पिछली ईदके दिन शायद ही कोई मुसलमान खादीके लिबासमें दिखाई देता था। यदि यह खादी समिति चाहे तो बहुत अधिक काम कर सकती है। चरखेकी हलचल एक ऐसी हलचल है कि इसमें हिन्दू और मुसलमान एक-सा योग दे सकते हैं। कुछ दस्तकारियोंमें मुसलमान दुनियामें सबसे आगे हैं। इनमें से एक बुनाई है। ढाकाकी मलमल बुननेवाले मुसलमान ही थे। इसीलिए जुलाहोंको 'नूरबाफ' कहते हैं; उनका यह नाम बहुत मीठा और गौरवास्पद है। जरीके काममें उनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। पटनाका नूरबाफका काम दुनिया-भरमें प्रसिद्ध है। आज भी महीन कढ़ाईकी कलामें प्रवीण मुसलमान ही हैं। वे आज विदेशी सूत काममें लाते हैं। वे ही पहले हाथ-कता सौ अंकका महीन सूत बुनते थे। ढाकाकी 'शबनम' भी वे लोग ही बुनते थे। इस खादी आन्दोलनमें उसी कलाका पुनरुद्धार अभिप्रेत है। हजारों नूरबाफ अपना यह पेशा छोड़ बैठे हैं। वे अपनी रोजी इस खादीके रोजगारसे फिर कमाना शुरू कर सकते हैं। आज भी बीजापुरकी मुसलमान बहनें महीन सूत कातती हैं। यदि मुसलमान बहनें चाहें तो महीनसे-महीन सूत कात सकती हैं। यदि यह समिति उद्योग करे तो बहुत काम कर सकती है। मैं मान लेता

१. यह यहाँ नहीं दी गई है।

हूँ कि इसका हर एक सभासद शुद्ध खादी ही पहनता है और इसका हर सभासद हर मास कमसे-कम २००० गज सूत कातेगा। यदि समिति सफलता चाहती है तो उसके कुछ सभासदोंको अपना सारा समय इस कामके लिए लगाना होगा। मैं समितिकी सफलता चाहता हूँ।

छात्र गणपत

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि छात्र गणपत वापस घर आ गया है।[1] मुझे आशा है कि इस भाईके ध्यानमें जो अन्याय आया है वह उसके निवारण-का उपाय खोजना बन्द न करेगा। यदि वह इस सम्बन्धमें खोज करेगा तो उसे ज्ञात होगा कि इसका उपाय स्वराज्य प्राप्त करना है और स्वराज्य प्राप्त करनेका साधन चरखा है। इसलिए छात्र गणपतको अपना अध्ययन जारी रखते हुए चरखेके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसे नित्य सूत कातना चाहिए और फिर सूत प्रान्तीय कमेटीको भेज देना चाहिए। जब वह चरखा चलायेगा तब उसे बीचमें अन्य उपाय भी मिलेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-७-१९२४

२४१. धर्मकी कसौटी

वढ़वानकी राष्ट्रीय पाठशालापर घटाएँ घिर आई हैं। ये घटाएँ बिखर जायें या और भी घनी हो जायें तथा घनी होकर स्कूलपर बरस पड़ें—चाहे कुछ भी हो, यह अवसर स्कूलकी कसौटीका है।

मेरा खयाल तो यह है कि जब स्कूलकी स्थापना की गई थी तभी उसमें अन्त्यज बालकोंके दाखिलेका प्रश्न उठा था और व्यवस्थापक मण्डलने यह निश्चय किया था कि इसमें अन्त्यज बालक भी दाखिल किये जा सकते हैं। इस स्कूलके भवन-निर्माणके लिए दिया गया धन भी इतना मानकर ही दिया गया था।

किन्तु जब उसमें अन्त्यज बालकोंको दाखिल करनेका समय आया है तब अनेक प्रकारके प्रश्न उठने लगे हैं। उसमें अन्त्यज बालकोंके दाखिल किये जानेसे समितिके सदस्य निकल जायें, माँ-बाप अपने बच्चोंको उसमें से निकाल लें और शिक्षक त्याग-पत्र दे जायें—यह सब हो तो भी जिन शिक्षकों और माता-पिताओंको धर्मप्रिय होगा वे तो धर्मके मार्गसे तिल-भर भी न हटेंगे।

मेरी अल्पमतिके अनुसार इस अवसरपर धर्म क्या है, इस बारेमें दो मत नहीं हो सकते। मूल प्रतिज्ञाका पालन करना ही धर्म है। ऐसी एक भी नई स्थिति पैदा नहीं हुई है जिससे अब कर्त्तव्यके विषयमें कोई शंका उत्पन्न हो सके। इस स्कूलपर

१. देखिए "विदग्ध अथवा अर्धदग्ध", २०-७-१९२४।

जितना हक दूसरोंका है उतना ही अन्त्यजोंका है। यदि हम अदालतमें जायें तो अदालत भी इस मामलेमें एक ही निर्णय देगी और वह यह है कि शिक्षक और व्यवस्थापक अन्त्यज बालकोंको स्कूलमें दाखिल करनेके लिए बाध्य हैं। जो व्यवस्थापक अथवा शिक्षक इसमें आनाकानी करते हैं, वे जिन्होंने दान दिया है, उनके प्रति विश्वासघात करते हैं।

कांग्रेसके अनुयायी अथवा सहायकगण तो अस्पृश्यता निवारणको राष्ट्रका अविचल सिद्धान्त मान चुके हैं। यह प्रश्न १९२० से लोगोंके सम्मुख प्रस्तुत है। इसमें फेरफार करनेका सुझाव देनेकी हिम्मत किसीको नहीं है। इसी सिद्धान्तकी रक्षाके लिए तो विद्यापीठने[1] अपने अस्तित्वको जोखिममें डाला था। इसी सिद्धान्तकी रक्षाके लिए तिलक स्वराज्य कोषमें चन्दा उगाहनेवाले कार्यकर्त्ताओंने लिखी हुई चन्देकी रकमें छोड़ी थीं। मेरी इच्छा है कि वढ़वानकी राष्ट्रीय पाठशालाके धर्मनिष्ठ व्यवस्थापक और शिक्षक तथा अन्य नागरिक इसी सिद्धान्तपर चलने और धर्मका पालन करनेके लिए तैयार रहें।

वढ़वानके नागरिक बुद्धिमान हैं, उदार हैं। वे धर्मान्ध नहीं हैं, परन्तु धर्मिष्ठ हैं। उनका मुझपर हमेशा यही प्रभाव पड़ा है। इस शहरमें अन्त्यजोंका तिरस्कार नहीं होना चाहिए। इस शहरकी राष्ट्रीय पाठशालामें अन्त्यजोंका स्वागत किया जाना चाहिए, उनको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और जहाँ अन्त्यज बालक आते हों वहाँ माता-पिताओंको अपने बच्चोंको भेजना कर्त्तव्य ही समझना चाहिए। मेरी उनसे प्रार्थना है कि वे इस सम्बन्धमें दृढ़तासे और केवल सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर विचार करें और उन्होंने जो प्रतिज्ञा की है उसका पालन करें।

स्कूलके सामान्य नियमोंमें फेरफार किया जा सकता है। लेकिन जिन सिद्धान्तोंको आधार मानकर स्कूलकी स्थापना की गई है, उनमें फेरफार करना सामर्थ्यके बाहरकी बात है। इस पाठशालाकी स्थापना एक निश्चित उद्देश्यको ध्यानमें रखकर की गई है और वह विधिके विधानके समान अपरिवर्तनीय है। ज्यादासे-ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि जिन माता-पिताओंकी धार्मिक मान्यता विरुद्ध बैठती हो वे अपने बच्चोंको पाठशालासे निकाल लें। लेकिन इसमें व्यवस्थापकों अथवा शिक्षकोंके निकल आनेकी कोई गुंजाइश नहीं है। उन्हें तो जबतक एक भी अन्त्यज बालक हो पाठशाला चलानेके लिए कटिबद्ध रहना चाहिए। स्कूलकी, शिक्षकोंकी, व्यवस्थापकोंकी और वढ़वानकी प्रतिष्ठा इसीमें है।

स्वराज्यके धर्मयुद्धमें तो ऐसी अनेक विडम्बनाएँ आयेंगी। हमने इस युद्धमें केवल दो साधनोंसे काम लेनेका निश्चय किया है; वे हैं सत्य और अहिंसा। यदि पाठशालाके सिद्धान्तमें कोई परिवर्तन किया जायेगा तो वह सत्य और अहिंसाका त्याग होगा। धनका, मानका, कुटुम्बका और प्राणका त्याग करना पड़े तो भी सत्यका अर्थात् प्रतिज्ञाका और अहिंसाका अर्थात् अन्त्यजोंके प्रति प्रेमका त्याग कदापि नहीं किया जाना चाहिए; यह सब धर्मोंका सार है। इसके पालनमें न्यूनता, धर्मके पालनमें न्यूनता मानी जायेगी।

१. गुजरात विद्यापीठ, इसकी स्थापना १९२० में गांधीजीने की थी।

यदि सब लड़के स्कूल छोड़ दें तो इससे धर्मकी हानि नहीं होती, इससे स्वराज्यको आँच नही आती और बढ़वानकी बदनामी नहीं होती। लेकिन यदि दूसरे बच्चोंके चले जानेके भयसे अन्त्यज बालकोंका तिरस्कार हो तो इसमें तीनोंकी बदनामी है।

मेरे खयालसे अब यह बात सिद्ध करनेकी कोई जरूरत नहीं है कि अस्पृश्यता महापाप है। कांग्रेसके सदस्योंको और स्वराज्यके प्रेमियोंको इस बारेमें अब कोई शंका नही हो सकती।

मेरी विनम्र प्रार्थना है कि बढ़वानके नागरिक धर्मकी रक्षा करें और व्यवस्थापक और शिक्षकगण अपनी प्रतिज्ञाका पालन। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह उनको इतना बल प्रदान करे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २७-७-१९२४

२४२. छोटी-छोटी बातोंकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता

सूत कातनेकी प्रतिज्ञाके सांगोपांग पालनके लिए छोटीसे-छोटी बातोंका ध्यान रखना भी आवश्यक है। अंग्रेजीमें कहावत है "यदि हम पेनीकी चिन्ता रखेंगे तो पौंड अपनी चिन्ता खुद रख लेगा।" जो पैसेकी परवाह नही करता वह रुपया कभी नहीं बचा सकता। यह बात तमाम बड़े कामोंपर लागू होती है। जब छोटी बातोंपर ध्यान नहीं दिया जाता तभी बड़े काम बिगड़ते हैं। यदि बड़े यन्त्रमें एक छोटीसी कील लगनेसे रह जाये या ढीली पड़ जाये या उसमें धूलका कण चला जाये तो अकसर देखा गया है कि वह बिगड़ जाता है।

स्वराज्य तन्त्रको चलानेकी हमारी क्षमताका माप हमारी छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देनेकी क्षमतासे होगा। हमें यह क्षमता कातनेकी प्रतिज्ञासे प्राप्त होगी। नित्य नियमसे सूत कतना, उसका एकत्र होना, प्रान्तीय कमेटीमें उसका इन्दराज होना, फिर वहाँसे मुख्य कमेटीके पास जाना, वहाँ उसका इन्दराज होना, उसका एक जगह इकट्ठा किया जाना और फिर खादी बनकर उसकी बिक्री — इन बातोंको लिखना तो आसान है, परन्तु इनको करनेके लिए विभिन्न योग्यता-सम्पन्न बहुतसे कार्यकर्त्ताओं-की जरूरत पड़ेगी।

प्रत्येक गाँव अपनी निगरानी खुद रखे और गाँवोंकी निगरानी तहसील रखे, तहसीलोंकी जिला और जिलोंकी प्रान्त तथा प्रान्तोंकी खादी बोर्ड रखे।

जहाँ हर शख्स अपने फर्जको समझता हो और उसे करना जानता हो वहाँ तो सब-कुछ आसान होगा; परन्तु जहाँ जिम्मेवारीका ज्ञान न हो वहाँ प्रान्तीय समितियोंको इन तमाम बातोंकी सँभाल रखनी होगी :

चरखोंका संग्रह करना, उन्हें दुरुस्त करना और दुरुस्त रखवाना होगा।

तकुए अच्छे और सीधे रहने चाहिए।

चमरख ऐसा होना चाहिए जो मोढ़ियेके सूराखोंमें ठीक बैठ जाये।

[अतिरिक्त] मालका प्रबन्ध रखना चाहिए।

कपास जमा करके रखनी चाहिए।

कपास ओटकर, रुई धुनकर और उसकी पूनियाँ बनाकर जहाँ जरूरत हो वहाँ पहुँचा देनी चाहिए और बादमें सूत इकट्ठा करवा लेना चाहिए।

जो लोग इससे काममें दिलचस्पी लेंगे उन्हें न तो व्याख्यान झाड़नेकी फुरसत रहेगी और न टीका-टिप्पणियों और द्वेष-कलह करनेकी। वे तो अपने काममें ही जुटे रहेंगे।

आदर्श यह है कि हर शख्स अपने लिए चरखेकी व्यवस्था स्वयं करे, कपास जुटाये, उसे ओटे, धुने उसकी पूनियाँ बनाये, सूत काते और फिर सूतपर पानी छिड़के, उसे अटेरनपर उतारे, उसकी गुंडी बनाये, उसपर अपना नाम, नम्बर, सूतका वजन, लम्बाई और अंक लिखे और फिर उसे लपेटकर हर मास प्रान्तीय कमेटीको भेजे।

परन्तु जबतक तमाम कातनेवाले इस तरह तैयार नहीं हो जाते तबतक प्रान्तीय कमेटीको इनमें से बहुत-सी बातोंकी जिम्मेदारी लेनी होगी और इसके लिए कुछ समय तक एक या अधिक कताई-शिक्षक भी रखने पड़ेंगे।

यदि कातनेवाले बड़ी संख्यामें तैयार हो जायें और हमारे पास उनके लिए काफी चरखे न हों तो इतने चरखे तैयार करानेमें कुछ समय लगेगा। फिर इसके लिए काफी रुपयेकी भी जरूरत होगी। कताईके प्रारम्भिक दिनोंमें भाई लक्ष्मीदासने[1] तकली दाखिल की। जब मैंने पहले-पहल वह उनके हाथोंमें देखी तब मैं आनन्दित होकर बहुत हँसा; परन्तु मैंने उसके विषयमें कुछ पूछताछ नहीं की। फिर मैंने वह जुहूमें भाई मथुरादासके हाथमें देखी। मुझे उसपर सूत कातना सीखनेकी इच्छा हुई और मैंने थोड़ा-बहुत सीखा भी। वह उसी समयसे मेरे मनमें बस गई है। उसकी कीमत ज्यादासे-ज्यादा दो आने पड़ती है; बनानेमें भी बहुत वक्त नहीं लगता और साधारण चरखेसे इसपर आधा माल उतरता है। उसकी सुविधाओंकी तो गिनती ही नहीं। उसे आसानीसे रखा जा सकता है। इसका सूत एक-सा और मजबूत होता है। आज भी ब्राह्मण तकलीपर जनेऊके लिए सूत कातते देखे जाते हैं। कितने ही मदरसोंके लड़के मुझसे मिलने आया करते हैं। मेरे सवालोंके जवाबमें कुछ लोग कहते हैं कि उनके पास चरखा नहीं है। कुछ कहते हैं कि सिखानेवाला नहीं है। कितने ही मदरसोंमें इतनी जगह नहीं होती कि वहाँ चरखे रखे जा सकें। ऐसी हालतमें तकली बड़े कामकी चीज है। जो लोग उससे सूत कातना सीख जाते हैं उन्हें चरखेसे सूत कातनेमें दिक्कत नहीं हो सकती। इसलिए सूत कातनेकी विधि तो तकलीसे ही सीखी जा सकती है। इस सुन्दर तथा सादे यन्त्रसे प्रतिदिन सौ गज सूत कातना आसान है। मैं आशा करता हूँ कि जिन लोगों या संस्थाओंके पास चरखा न हो वे तकलीसे सूत कातने लगेंगे।

'कंकर-कंकरसे बाँध और बूँद-बूँदसे सागर' इस कहावतमें बड़ा चमत्कार है। अकेली एक बूँद किसी काम नहीं आती। अकेली एक कंकरी बाँध नहीं बाँध सकती।

१. लक्ष्मीदास आसर

परन्तु हम अनेकों बूंदों और कंकड़ोंके चमत्कारसे परिचित हैं। यही चमत्कार बहुत लोगोंके थोड़े परन्तु नियमपूर्वक कातनेसे होता है। जिस प्रकार ईंटोंके ढेरसे मकान नहीं बन जाता, वह तो उन्हें यथानियम लगाने और जोड़नेसे ही बनता है; उसी प्रकार नियमपूर्वक कते सूतकी यथानियम व्यवस्था करनेसे ही सबका पालन करनेवाली खादी तैयार होती है।

आम तौरपर थोड़ेसे किसान बहुत-सा अनाज उगाते हैं। यूरोपीय महायुद्धके समय इंग्लैंडमें खाद्य-सामग्रीकी कमी पड़ गई थी। खेतोंमें खड़ी फसल काफी न थी। आलूकी फसल उगाना सबसे आसान था। अतः हर शहरीको अपने पाँच-पचीस वर्ग गजके अहातेमें आलू बोनेपर मजबूर किया गया था। एक अहातेमें उगे आलुओंसे तो एक कुटुम्बका पेट शायद ही भर सकता था; परन्तु हजारों अहातोंमें बोये हुए आलुओंकी मदद अनमोल हो गई। उसी तरह असंख्य रेड क्रॉस-बिल्लों और कुरतोंकी जरूरत थी। इसके लिए दरजी काफी न थे अतः उन लोगोंसे भी यह काम कराया जाता था जिन्होंने कभी सुई-धागा हाथमें भी नहीं लिया था। नौसिखियोंके लिए नमूने रख दिये गये थे। उनके लिए सिखानेवालोंकी व्यवस्था भी की गई थी और इस प्रकार हजारों स्वयंसेवकोंसे, जो लड़ाईमें नहीं जा सकते थे और जिनके पास थोड़ा-बहुत भी समय बचता था, ऐसा काम लेकर लाखों रेड क्रॉसके बिल्ले और कुरते मुफ्त तैयार कराये गये थे। एक आदमीकी मेहनतकी कोई कीमत नहीं परन्तु एक समुदायकी एक ही तरह की हुई मेहनतने उस समय सोनेसे भी अधिक कीमती काम किया। उस काममें वकील, विद्यार्थी, दलाल, स्त्रियाँ और पुरुष सब शामिल होते थे और गर्वका अनुभव करते थे। शायद पाठक यह नहीं जानते कि इस कामम सरोजिनी देवी और मैं भी शरीक था। तब हमने यह नहीं सोचा कि यह काम तो दरजीका है। अमीर-उमरावोंने उसे अपनी प्रतिष्ठाके अयोग्य नहीं माना था। आज जब मैं किसी पढ़े-लिखे आदमीको चरखा कातनेवालेकी हँसी उड़ाते हुए देखता हूँ तब मुझे अपना लड़ाईका अनुभव याद आ जाता है। जब इस समय और उस समयकी तुलना करता हूँ तो देखता हूँ कि हिन्दुस्तानमें भड़के हुए इस दावानलको बुझानेके लिए जितनी जरूरत आज सब लोगोंके कातने की है उतनी उस भयंकर लड़ाईके समय लोगोंके लाल स्वस्तिकवाले बिल्ले बनाने और कुरते सीनेकी नहीं थी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-७-१९२४

२४३. मेरी लँगोटी

एक मुसलमान भाई लिखते हैं:[1]

यह पत्र जैसा है, मैंने वैसा ही दिया है। दूसरे मुसलमान भाइयों और कुछ हिन्दू भाइयोंको भी इस भाई-जैसी शंका हुई होगी, मैं यही सोचकर इस पत्रका जवाब दे रहा हूँ। मुझे अपने सम्बन्धमें कितने ही पत्र मिलते हैं। लेकिन मैं उनकी चर्चा करना व्यर्थ समझकर 'नवजीवन' में उनका उल्लेख नहीं करता। परन्तु इस पत्र-में कितनी ही भूलें हैं। मैं इनको सामने रखना आवश्यक समझता हूँ। मैं लँगोटी पहनता हूँ, इसका कारण टीकाकारने ठीक ही समझा है। इसे तभी त्यागा जा सकता है, जब हमें स्वराज्य मिल जाये। इसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। हिन्दुस्तानी भाई-बहन स्वराज्य प्राप्त करके मुझसे मेरी लँगोटी छुड़वा सकते हैं। ईश्वर मुझे ऐसा कमजोर कर दे कि मेरा काम ज्यादा कपड़ोंके बिना चल ही न सके; तब भी शायद इसे त्यागना पड़ सकता है। मुझे खुद शुरूमें लँगोटी पहनते वक्त यह डर था कि इसपर असभ्यताका आरोप होगा। किन्तु मेरा जीवन जिस दिशामें जा रहा है उसका विचार करते हुए मुझे यही ठीक मालूम हुआ कि मैं इस असभ्यताके आरोपको बरदाश्त करनेका साहस करूँ। मैं अपने मुसलमान मित्रोंके लिए सदा बहुत कुछ करनेके लिए तैयार रहता हूँ। मुझे उनकी बहुत जरूरत है। मैंने पोशाक बदलनेसे पहले एक मित्रसे इस बारेमें चर्चा भी की थी। उन्होंने मेरे इस विचारको पसन्द किया और इससे मुझे बड़ी हिम्मत मिली। मुझे तीन सालोंके अनुभवके बाद इस परिवर्तनपर जरा भी पश्चात्ताप नहीं हुआ है; प्रत्युत अधिकाधिक सन्तोष ही होता जा रहा है।

मैं गरीबसे-गरीब हिन्दुस्तानीके जीवनसे अपने जीवनको मिला देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझे ईश्वरके दर्शन दूसरे तरीकेसे हो ही नहीं सकते। मुझे उसे प्रत्यक्ष देखना है; इसके लिए मैं अधीर हो गया हूँ। जबतक मैं गरीबसे-गरीब न बन जाऊँ तबतक मुझे उसका साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। जबतक उन्हें खानेके लिए पूरा खाना और पहननेके लिए पूरा कपड़ा नहीं मिलता तबतक मुझे खाना और पहनना बुरा लगता है। यदि ईश्वरने मुझे कमजोर न बनाया होता तो मैंने अपने जीवनमें और भी अधिक परिवर्तन किये होते। इन आलोचक महोदयको भारतके नर-कंकालोंकी हालतकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसका अनुभव करनेके लिए तो उन्हें दूरस्थ गाँवोंमें जाना चाहिए और गाँवोंके लोगोंके साथ मिलकर रहना चाहिए।

ये भाई हिन्दुस्तानके लोगोंके लिए जैसी पोशाक चाहते हैं, वैसी पोशाक तो उन्हें दो-चार सौ बरस भी नसीब नहीं हो सकती। उन्हें यह जानना चाहिए कि हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको तो मेरे जितना कपड़ा भी नहीं मिलता। वे तो सिर्फ लँगोटी लगा-

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

कर ही फिरते हैं। करोड़ों लोगोंने चप्पलें देखी भी नहीं होतीं। उन्हें उनकी जरूरत भी नहीं मालूम होती। गरीब लोग पट्टीदार गलेके कुरते कहाँसे लायें ? उन्हें टोपी भी कौन दे ? हम ऐसे कपड़े पहनकर इन गरीबोंको कपड़े नहीं पहना सकेंगे; लेकिन हमारा धर्म तो यही है कि हम उन्हें पहनाकर पहनें, खिलाकर खायें। इन सज्जनको तो पोशाककी पड़ी है। मैं नम्रतापूर्वक यह बता देना चाहता हूँ कि इस देशके गरीबोंको तो खाना भी पूरा नहीं मिलता — फिर पोशाकके सुधारकी तो बात ही क्या हो सकती है।

अब सभ्यताको लें। सभ्यता कोई निरपेक्ष शब्द नहीं है। उसका अर्थ सब जगहोंपर एक ही नहीं होता। पश्चिमकी सभ्यता पूर्वके लिए असभ्यता हो सकती है। पश्चिमका कितना ही पहनावा पूर्वमें असभ्य समझा गया है। मुझे अमेरिकामें तो कैदमें ही रखा जायेगा। श्री नारायण हेमचन्द्र[1] धोती पहननेके जुर्ममें कैदमें रखे गये थे। मेरी माँ हम भाइयोंको पतलून पहने देखकर दुःखी होती थी। वह इसे नंगा पहनावा मानती थी। असंख्य हिन्दू लँगोटीको असभ्य पोशाक कदापि नहीं मानते। साधु लोग केवल लँगोटी ही लगाते है किन्तु इससे वे असभ्य नहीं माने जाते।

मेरी नजरमें तो कम कपड़े पहननेमें असभ्यता है ही नहीं। कपड़ोंकी जरूरत केवल शरीरकी रक्षाके लिए होती है। उक्त आलोचकने जिस दृष्टिसे पोशाकके बारेमें लिखा है उस दृष्टिसे तो ज्यादा कपड़ोंमें जो बुराई है वह मेरे-जैसे भिखारीकी लँगोटीमें नहीं है। यदि हम मनुष्यका शरीर जैसा है, उसे वैसा ही देखें और समझें तो उसमें मोहका कोई कारण ही दिखाई नही देता। इस हाड़-चामके समुच्चयको जब अनेक तर्जके और भाँति-भाँतिके कपड़ोंसे सजाते हैं वह तब मोह पैदा करता है। यह विचार ठीक है। इसका एक ही दृष्टान्त देता हूँ। मुरदेपर कोई मुग्ध हुआ हो, ऐसा आज-तक नहीं सुना है। मोह केवल शरीरस्थ जीवसे होता है। फिर शरीरके लिए इतना विचार क्यों? उसका इतना शृंगार किसलिए ?

बहनें मुझे दर्शन देनेके लिए आती हैं। वे मुझपर मोह रखती हैं और मुझे आशीर्वाद देती हैं। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही होती हैं। मेरा विश्वास है कि वे मेरे शरीरको देखनेके लिए कदापि नहीं आती। वे मेरे शरीरको देखती हैं ऐसा मुझे कभी नही लगा; और यही उचित भी है। पुरुष हो या स्त्री उसे मित्रके शरीरको देखना ही नहीं चाहिए। अगर अनजानमें देख भी ले तो उसको उसकी ओरसे फौरन नजर हटा लेनी चाहिए। एकको दूसरेका केवल चेहरा ही देखनेका अधिकार है। लक्ष्मण-जैसे संयमीने तो सीताके केवल चरण ही देखे थे क्योंकि वे नित्य उनकी वन्दना किया करते थे। इसलिए जब बहनें मुझे आशीर्वाद देनेके लिए आती हैं, तब उन्हें देखकर मुझे अपनी लँगोटीके कारण कभी संकोच नहीं हुआ। मैं तो उनकी दयाका ही भूखा हूँ। मैं उनसे बहुत मदद चाहता हूँ। वे थोड़ी मदद कर भी रही है, लेकिन वह अभी बहुत ही कम है। हिन्दू और मुसलमान बहनें जब चरखेको

१. गुजरातके एक भाषाविद् और विद्वान्, जिनसे गांधीजीकी मुलाकात इंग्लैंडमें हुई थी; देखिए आत्मकथा, भाग १, अध्याय २२।

अपना लेंगी और जब खादीको अपना शृंगार बना लेंगी तब मैं मान लूँगा कि मुझे सब-कुछ मिल गया। तब मैं इस भाईको धोती और पट्टीदार कुरता भी पहनकर सन्तुष्ट करूँगा, क्योंकि बहनोंपर खादीका रंग चढ़ जानेपर मैं स्वराज्यको मिला ही समझता हूँ। लेकिन इस दरम्यान इस भाईको मुझपर और मुझ-जैसे लँगोटी पहनने-वालोंपर दया रखनी चाहिए और लँगोटीको असभ्यताका चिह्न मानते हुए भी उन्हें अपना भाई समझकर उनकी असभ्यताको सह लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-७-१९२४

२४४. एक टेक

"एक टेक" इन शब्दोंका प्रयोग सर्व-प्रथम सन् १९१७में[1] मिल-मजदूरोंकी हड़तालके समय किया गया था। मजदूर इन शब्दोंसे अंकित पताकाएँ लेकर घूमते-घूमते थक गये थे और संघर्ष बन्द करनेकी स्थितिमें आ गये थे। लेकिन भगवानने उनकी लाज रख ली और समझौता हो गया। लेकिन मैं यहाँ उस हड़तालका इतिहास लिखने नहीं बैठा हूँ।

मैं तो गुजरातको उसकी टेककी याद दिलाना चाहता हूँ और ऐसे समय उन मजदूरोंकी टेकका उदाहरण भर दे रहा हूँ। हमने अबतक स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए जो कदम उठाये हैं उनमें हमारा जोर सामुदायिक कार्यपर रहा है। इसलिए किसी भी मनुष्यको अपने उत्तरदायित्वकी पूरी कल्पना नहीं थी। चार आने दे देने-भरसे कांग्रेसके प्रति हमारा कर्त्तव्य पूरा हो गया, ऐसा कहा जा सकता था। किन्तु अब स्थिति बदल गई है। अब तो प्रत्येक मनुष्यको स्वराज्यके निमित्त आधा घंटा प्रतिदिन देना होगा। कांग्रेसका प्रस्ताव-मात्र निर्वाचित अधिकारियोंपर ही लागू होता है, ऐसा कोई न माने। यह प्रस्ताव उनके लिए आदेश रूप है; लेकिन उसका असर तो प्रत्येक समझदार और देशहितैषी भारतीयपर पड़ना चाहिए। प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालकका धर्म देशकी खातिर सूत कातनेमें आधा घंटा देना है। यह कांग्रेसकी सानुरोध प्रार्थना है। हम इसे स्वीकार करेंगे, यह सबकी टेक होनी चाहिए।

चाहे जैसा सूत कातनेसे काम नहीं चलेगा; बल्कि वह अच्छा, बटदार और एकसार होना चाहिए। उसकी किस्ममें दिन-प्रतिदिन सुधार होना चाहिए।

पैसा देकर छूट जाना आसान था। भाषण करना उससे भी आसान था। दूसरोंके नाम दर्ज करना भी अपेक्षाकृत सहल था। फिर भी बिना चूके नियमपूर्वक जनताके हितमें ईमानदारीसे आधा घंटेका श्रम देना मुश्किल जान पड़ता है। लेकिन यदि हम अच्छी तरहसे विचार करें तो यह सबसे अधिक आसान काम है। क्योंकि इसमें समयका व्यर्थ अपव्यय नहीं है। भाग-दौड़ तो इसमें हो ही क्या सकती है? इसमें

१. अहमदाबादके मिल मजदूरोंकी हड़ताल १९१८ में हुई थी; देखिए खण्ड १४।

खुशामद नहीं करनी पड़ती। देशके लिए आधा घंटा देनेमें कोई खास दिक्कत नहीं है, ऐसा प्रत्येक देशप्रेमीको लगना चाहिए।

लेकिन मुझे एक मित्रने कहा है कि कुछ लोग पहले एक-दो महीने तो नियमानुसार अपना काता हुआ सूत देंगे, लेकिन वे बादमें खुद-ब-खुद थक जायेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यह भय निर्मूल सिद्ध होगा। मुझे तो कमसे-कम यही उम्मीद है कि जिसने प्रतिज्ञा ली है वह उसका पालन भी अवश्य ही करेगा।

मैं सुनता हूँ कि गुजरातमें तो खूब होड़ चल रही है। कोई तीन अथवा चार हजार गज सूत देनेकी तो बात ही नहीं सोचता; सबको ज्यादासे-ज्यादा सूत कातनेकी उमंग है। यदि यह उमंग स्थायी हो तो यह स्तुत्य है।

यदि इस टेकका पालन किया जायेगा तो अभी जो सूत कातनेका उपहास करते हैं वे लोग ही उसका अनुकरण करने लगेंगे।

यदि इस टेकका पूरी तरह पालन होने लगे तो फिर "गुजरातमें महीन सूत नहीं काता जा सकता", "गुजरातमें कताईका काम लाभप्रद नही हो सकता"— ऐसी निराशाभरी बातें सुनाई देनी बन्द हो जायेंगी। तब हम गुजरातमें महीन सूत कातने लगेंगे, इस बारेमें मुझे कोई शंका नहीं है। इतना ही नही इससे खादी भी महँगी न रहेगी, सस्ती हो जायेगी। इससे लोगोंमें अपने सामर्थ्यके सम्बन्धमें जो अविश्वास हो गया है उसकी जगह उनमें विश्वास उत्पन्न हो जायेगा।

गुजरातने असहयोगमें पहल की थी। वही उसकी पूर्णाहुति भी कर सकता है। हमें एक भयसे बचना है। असहयोगपर लगाये गये आरोपोंमें एक आरोप गर्वका भी है। ऐसा माना जाता है कि असहयोगियोंको सहयोगियोंके प्रति गाली-गलौजकी भाषाका व्यवहार करनेका इजारा मिल गया है। सहकारी कहते हैं कि असहयोगियों-के मनमें यह बात बैठ गई है कि असहयोगी हो गये तो मानों सर्वोपरि हो गये। यह आरोप मिथ्या है, हमें ऐसा सिद्ध करना चाहिए। कातनेवाले लोग न कातने-वालोंकी निन्दा न करें, बल्कि वे उन्हें अपने नम्र व्यवहारसे जीतें। कातनेवाले केवल कांग्रेसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोगोंको ही कातनेके लिए आमन्त्रित न करें, वरन् सहयोगियोंसे भी सूत कातनेकी विनती करें। यदि वे वकीलोंसे उचित प्रकारसे विनती करेंगे तो सम्भव है कि वे अपना आधा घंटा इस कार्यके लिए दें। दूसरे भी इतना तो अवश्य करें। जिन्हें खादीमें श्रद्धा न हो वे भी आधा घंटा सूत कातनेसे इनकार न करें। शायद यह बात सभी मानेंगे कि सूत कातनेसे देशको कोई नुकसान नहीं होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-७-१९२४

२४५. खण्डन

कुछ समय पहले 'नवजीवन' में पेटलाद स्टेशनपर किसी बनिए द्वारा एक अन्त्यज-पर आक्रमण किये जानेकी खबर छपी थी। इस बारेमें एक वैष्णव भाई लिखते हैं कि जाँच करनेपर यह बात बिलकुल निराधार पाई गई है। मैं उनके भेजे हुए खण्डनको प्रकाशित कर रहा हूँ, पर यह मानकर नहीं कि ऐसी घटना नहीं हुई होगी। मुझे तो यह खण्डन ही निराधार लगता है। जबतक शिकायत करनेवालेका नाम-धाम न मालूम हो और उसे किसीने देखा न हो तबतक आक्रमण नहीं हुआ, ऐसा निर्णय कौन कर सकता है? यदि पेटलादके सब लोग यह कहें कि उन्होंने आक्रमण होते नहीं देखा और उनका यह कहना सच भी हो तो भी आक्रमणका होना सम्भव हो सकता है। इस तरह खण्डन किये जानेपर भी हम अच्छी तरह जानते हैं कि ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं। इसलिए इसका घटित होना भी सम्भव तो है। इस मान्यताके आधारपर मेरी यह नम्र राय है कि हमें ऐसे आक्रमणोंके विरुद्ध लोकमत तैयार करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-७-१९२४

२४६. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती
२७ जुलाई, १९२४

प्रिय जवाहरलाल,

मेरे विचारसे तो तुम्हें सरकारसे पत्र-व्यवहार करके यह पता लगाना चाहिए कि प्रतिबन्धका[1] कारण क्या है और उससे कहना चाहिए कि अगर तुम्हारी समितिको सचमुच कोई आपत्तिजनक चीज दिखाई जा सके तो वह सम्बन्धित अंशोंको निकाल देनेको तैयार है। अगर सरकारका उत्तर असन्तोषजनक हो तो उसे सूचित कर दो कि जो शब्द प्रचारित किये जा चुके हैं, उन्हें वापस नहीं लिया जायेगा।

सरकार बच्चोंको परेशान करेगी, ऐसा नहीं लगता; बहुत हुआ तो वह पुस्तकें बच्चोंके पास नहीं रहने देगी। उस हालतमें बच्चोंसे यह कह दिया जाये कि वे परेशान न हों और पुलिसको पुस्तकें दे दें। मेरी समझमें इसके लिए कोई और दण्ड नहीं दिया जा सकता। जरा कानूनको देखकर मुझे स्थिति बताओ। मुझे लगता है कि हम चाहे कितने भी पस्त हो गये हों, सरकार अगर हमपर किसी बातको लेकर संघर्ष थोपना चाहे तो हम उससे मुँह नहीं चुरा सकते। अभी आक्रामक

१. रामदास गौड़की पुस्तकोंपर। देखिए "टिप्पणियाँ", १४-८-१९२४, उपशीर्षक "तुरन्त कार्रवाई"।

सविनय अवज्ञा करनेकी जरूरत नहीं है, सामूहिक सविनय अवज्ञा भी हम न करें, लेकिन कोई एक परिस्थिति सामने आ जाये और हमारा पानी परखना चाहे तो हमें उसका मुकाबला करना ही है। क्या यह ठीक नहीं है? संघर्ष कैसे किया जाये, यह तो परिस्थितियोंके मोड़के अनुसार तुम्हीं निश्चित करोगे।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[पुनश्चः]

मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता मत करो। स्वास्थ्य ठीक ही है और मेरा काम चल जाता है। चरखा सुधार लेना तो तुम्हें आ ही जाना चाहिए। बढ़िया हत्थेके लिए सिर्फ उसमें लोहा लगा देना-भर काफी है। लकड़ीका लोहेसे ठीक मेल नहीं बैठता; वह टूट जाती है। इसलिए यदि छेदमें लोहेका छल्ला बैठा दिया जाये तो हत्था ठीक काम देने लगेगा। याद रखो, सिर्फ कीलोंसे काम नहीं चलेगा। हत्थेका कोई भी हिस्सा चरखेमें लगी हुई लोहेकी धुरीसे रगड़ न खाये, इसका ध्यान रखना होगा।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२४७. पत्र : मुहम्मद अलीको

साबरमती
२७ जुलाई, १९२४

प्रिय भाई,

आपका काम बड़ा मुश्किल काम है। मैं अकसर सोचता हूँ कि स्वास्थ्यकी परवाह न करके दिल्ली जा पहुँचूं। अगर आप भी ऐसा ही सोचते हों तो आपके कहने-भरकी देर है। आपको मेरे दोनों तार[1] कल मिल गये होंगे। मैं तो चाहता हूँ कि अगर हो सके तो आप मामलेकी पूरी तहकीकात करके अपनी राय प्रकाशित कर दें। मैं जानता हूँ, आप डरनेवाले आदमी नहीं हैं। दोषी पाये जानेपर आप न हिन्दुओंकी मुरौवत करें, न मुसलमानोंकी। सभी पक्षोंकी बात धीरजके साथ सुनिए, सभीको सार्वजनिक रूपसे अपनी बात कहनेको आमन्त्रित कीजिए। उनसे लिखित बयान लीजिए।

१. एक ही उपलब्ध है; देखिए "तार : मुहम्मद अलीको", २६-७-१९२४।

मैं कोशिश कर रहा हूँ कि आनन्दानन्द अपना काम जल्दी पूरा कर ले। अभी वह अहमदाबाद और बम्बईके बीच चक्कर लगा रहा है। आपकी मशीनोंकी जगह उसे मशीनें जुटानी हैं। इन भारी भरकम चीजोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जानेमें समय लगता ही है। अभी वह बम्बईमें सौदेकी बातचीत कर रहा है। उससे मैं शायद कल मिलूंगा। आपने जैसे ही मुझसे इस बातकी चर्चा की, मैंने उसे तुरन्त लिख दिया कि वह समय-समयपर आपको पत्र लिखकर सूचित करता रहे कि क्या-कुछ हो रहा है।

पण्डित मोतीलालजीने जो प्रश्न आपसे किये थे उसकी एक प्रति मुझे भी भेजी है, उन्होंने शिकायत की है कि आपने अबतक उन प्रश्नोंके उत्तर नहीं दिये हैं। मुझे तो पत्र कल ही मिला। उन्होंने लिखा है कि उनके सामान्य प्रश्नोंके उत्तर मैं भी दूं। मैंने उत्तर भेज दिये हैं। अगर आपने अबतक उत्तर न भेजें हों तो कृपया भेज दीजिए। हमारी ताकत तो हमारा काम होना चाहिए; दूसरा कुछ नहीं।

आपका,
मो० क० गांधी

मौलाना मुहम्मद अली
दिल्ली

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२४८. पत्र: बाबू भगवानदासको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय बाबू भगवानदास,

पत्रके लिए धन्यवाद। विश्वास कीजिए मैं बराबर सोचता रहता हूँ कि इस विवादको कैसे खत्म किया जाये। मैं जानता हूँ कि दोनों नीतियोंके लिए गुंजाइश है। आपने बहुत ठीक ही कहा है कि इन दोनों नीतियोंको पनडुब्बी और विमानकी तरह समझिए।[1] दोनोंके कार्य क्षेत्र अलग-अलग होने चाहिए। तब वे नीतियाँ एक-दूसरेसे टकरायेंगी नहीं, बल्कि परस्पर मदद पहुँचायेंगी। मैं कांग्रेससे निकल आनेका कोई ऐसा उपाय सोच रहा हूँ कि निकल भी आऊँ और उसकी ज्यादा बात भी न हो। श्री तिलकके समयमें मुझे अपने तरीकोंसे काम करनेमें कोई कठिनाई नहीं

१. देखिए "लोकमान्यकी पुण्य तिथि", ३१-७-१९२४।

होती थीं। मैं जानता हूँ मेरे हृदयमें उनके प्रति श्रद्धा थी और वे भी मुझे नापसन्द नहीं करते थे; बल्कि जहाँ-कहीं बन पड़ता, मेरी सहायता ही करते थे।

आपका,
मो० क० गांधी

बाबू भगवानदासजी
सेवाश्रम, सिगरा
बनारस कैंट

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२४९. पत्र : डा० सत्यपालको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय डा० सत्यपाल,

आपका पत्र मिला। दिल्लीके सम्बन्धमें जो-कुछ सम्भव है, वह मैं कर रहा हूँ। शरीरकी कमजोरी दिल्ली आनेमें आड़े आ रही है, अगर सदस्यगण कातनेको तैयार नहीं है और इसीलिए त्यागपत्र देते हैं तो उनका त्यागपत्र दे देना ही ठीक है। अगर कांग्रेसी लोगोंका कताईमें विश्वास है तो उन्हें कातना ही होगा; और अगर वे कताईमें विश्वास नहीं करते है तो फिर हम कांग्रेस कार्यक्रमसे खादीको हटा दें। जहाँतक किसानोंकी बात है, वे अग्नि-परीक्षासे गुजरनेको तैयार हों तो उनके लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है।

आपका,
मो० क० गांधी

डा० सत्यपाल
ब्रैडलॉ हॉल
लाहौर

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५०. पत्र : डा० चिमनदास जगतियानीको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय चिमनदास,

आपका पत्र मिला। 'यंग इंडिया' में मैंने बताया है कि राष्ट्रकी खातिर आधा घंटा चरखा चलाकर कता हुआ सूत कांग्रेसको भेजना क्यों जरूरी है। आपने यह सब पढ़ लिया होगा। आप अपने लिए तो कातें ही, लेकिन राष्ट्रके लिए कातना तो निहायत जरूरी है।

मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता न करें।

आपका,
मो० क० गांधी

डा० चिमनदास
निहारजंगो पीर
हैदराबाद (सिंध)

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५१. पत्र : कुमारी एमिली हॉबहाउसको

साबरमती
२७ जुलाई, १९२४

प्रिय कुमारी हॉबहाउस,[1]

मित्रोंने आपका ८ दिसम्बरका पत्र सुरक्षित रखा था। उस पत्रको पाकर तो ऐसा लगा मानो मैं आपसे प्रत्यक्ष भेंट कर रहा हूँ। कुमारी ऐडम्ससे मुलाकात कभी नहीं हुई।

जेलमें मैं बिलकुल प्रसन्न रहा। जितनी पुस्तकें चाहता था, मिल जाती थीं, शर्त सिर्फ यह थी कि वे राजनीतिसे सम्बन्धित न हों।

१. उदार विचारोंकी एक अंग्रेज महिला, जिनकी चर्चा गांधीजीने आत्मकथामें भी की है।

पता नहीं, आप 'यंग इंडिया' कभी पढ़ती है या नहीं। अगर आप उसे पढ़नेको तैयार हों तो उसकी प्रति भेजते रहना मैं अपना सौभाग्य मानूँगा। आपका स्वास्थ्य कैसा है?

आपका,
मो० क० गांधी

कुमारी एमिली हॉबहाउस
वारेन हाउस, सेंट इन्स
कॉर्नवाल

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५२. पत्र : खुशीराम दरियानोमलको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। मैं तो सत्यके पक्ष-पोषणका ही प्रयत्न करता हूँ। मैं तो हिन्दुओंको सलाह दूँगा कि वे 'मुसलमान' में प्रकाशित बातको कोई महत्व ही न दें।

आपका,
मो० क० गांधी

सेठ खुशीराम दरियानोमल
जमींदार
जैको[बा]बाद (सिंध)

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५३. पत्र : धरनीधर प्रसादको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय धरनीधर बाबू,[1]

पत्र पाकर खुशी हुई। किसी अलग संगठनमें काम करनेके बारेमें आपके विचारसे मैं सहमत हूँ। लेकिन उसमें मेरे बने रहनेका कारण यह है कि मैं किसी अलग संगठनकी स्थापना या कांग्रेसके लगभग एकमत हो जानेकी प्रतीक्षामें हूँ। आशा है, आपकी पारिवारिक झंझटें शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगी।

आपका,
मो० क० गांधी

बाबू धरनीधर प्रसाद
डाकघर सिरी (दरभंगा)

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५४. पत्र : डा० पट्टाभि सीतारामैयाको

२७ जुलाई, १९२४

प्रिय डा० पट्टाभि,

'कलाशाला' के बारेमें मैंने विचार किया है। इस सिलसिलेमें मैं आपके पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा था। अब कार्रवाई शुरू कर रहा हूँ लेकिन आप जितनी जल्दी चाहते हैं, शायद उतनी जल्दी आपको सहायता न पहुँचा पाऊँ। यह भी सम्भव है कि बिलकुल ही असफल हो जाऊँ। क्या आप कांग्रेसकी मार्फत सहायता पानेकी अपेक्षा कर रहे हैं? क्या इस १०,००० रुपयेकी रकमके बाद आपको और सहायता-की जरूरत नहीं बचेगी या आपको बराबर दूसरे प्रान्तोंकी सहायतापर निर्भर करना पड़ेगा? दान देनेवालोंके मनमें बात बैठानेके लिए जो जानकारी भेजी जा सकती

१. दरभंगाके प्रसिद्ध वकील और कांग्रेसी।

हो, भेज दीजिये। हाँ, कताई संक्रामक होती है। यहाँ एक भाई तो सारी ही क्रियाएँ खुद करते हुए ५०,००० गज कातनेकी कोशिश कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डा० पट्टाभि सीतारामैया
मसूलीपट्टम

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५५. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

आश्रम
२७ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

आपके स्नेहपूर्ण पत्रके[1] लिए धन्यवाद। यदि आपने ही मुझे यह न बताया होता कि आपके कोई अन्तरंग मित्र तेज बुखारकी हालतमें भी विधान सभामें अपना काम करते ही रहे और उन्होंने डाक्टरोंकी सलाहपर भी वहाँसे आ जाना मंजूर नहीं किया, तो मैं आपकी बात जरूर मान लेता। बहस खत्म होनेके बाद भी वे आराम करनेको तैयार नहीं हुए। जब आप अपने ऐसे घनिष्ठ मित्रको भी अपनी बातपर राजी नहीं कर सके तो फिर आप मुझे ही कैसे कर सकते है? बहुत-सी सुलेख पुस्तिकाओंमें 'उपदेशसे आचरण श्रेयस्कर होता है' लिखा पाया गया है। यों मेरी तबीयतको लेकर चिन्ता करने-जैसी कोई बात नहीं है। यह सच है कि मेरा वजन इतना कम हो गया है कि भय लगता है, लेकिन जब कामका बोझ ज्यादा होता है, मुझसे खाया नहीं जाता। उन बैठकोंमें लगातार बैठे रहनेसे भी बड़ी कमजोरी आई। अगर वक्तकी इतनी खींचतान न होती तो गंगा-किनारे आकर आराम करनेके आपके निमन्त्रणको मैं कदापि न छोड़ता। लेकिन दिल्लीके लोग मुझे परेशान किये हैं। आश्रमके भी कितने ही नाजुक मामले निबटाने हैं। अगर मुझे वक्त मिले और आपको भी स्नेहपूर्वक उनके बारेमें सुननेकी फुरसत हो तो मैं आपको लिखकर मनका बोझ हलका करना पसन्द करूँगा। लेकिन फिलहाल तो इस इच्छाको दबाना ही पड़ेगा। आज मैं आपको एक बहुत जरूरी बात भी लिख भेजना चाहता था, लेकिन कुछ मित्र प्रतीक्षा कर रहे हैं; आज नहीं लिख पाऊँगा। बना तो कल लिखूँगा। काम-काजके

१. देखिए परिशिष्ट ४ (ख)।

बारेमें आपको जब भी मुझसे कुछ कहना जरूरी लगे, आप अवश्य लिखें; मेरा आपसे यह अनुरोध है। मैंने मुहम्मद अलीको आपको जवाब भेज देनेके लिए लिख दिया है।[1] मैंने अपने जवाबोंकी एक प्रति भी उन्हें भेज दी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२५६. पत्र : शौकत अलीको

साबरमती
२७ जुलाई, १९२४

प्रिय भाई,

इटारसीसे आपका तार मिला था। मुहम्मद अली दिल्लीमें हैं, यह जानकर खुशी हुई। मैंने उन्हें तार[2] भेजा है कि कांग्रेस अध्यक्षके नाते वे मामलेकी तहकीकात करके एक प्रारम्भिक रिपोर्ट प्रकाशित करें। हकीमजीने तारसे सूचित किया है कि खबरें बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर दी जा रही हैं। जो भी हो, अगर हम दिल्लीके मामलेको व्यावहारिक ढंगसे हल कर सकें तो बहुत सारी मुसीबतोंसे बचा जा सकता है। मैं खुद वहाँ जल्दी पहुँचनेकी फिक्रमें हूँ। पर यह शरीरकी कमजोरी आड़े आ रही है। लेकिन, अक्सर मुझे लगता है कि जैसे बने वहाँ जाकर मुहम्मद अलीके काममें हाथ बँटाना चाहिए। फिर भी, जबतक उस ओरसे स्पष्ट संकेत नहीं मिलता, मैं अपनेको रोके हुए हूँ।

आप मुझे बेलगाँव कांग्रेसका अध्यक्ष क्यों बनाना चाहते हैं? मैं अध्यक्ष होऊँ या न होऊँ, यह तो निश्चित है कि प्रतिनिधियों और कांग्रेसकी कार्यवाहीपर मेरा असर पड़ेगा। अगर मैं देशसे हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा चरखेको राष्ट्रीय-निष्ठाके रूपमें स्वीकार नहीं करा सका तो मेरी कोई उपयोगिता नहीं रह जायेगी। अगर आगामी महीनोंमें कताईके सम्बन्धमें हम जैसी आशा करते हैं वैसी अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं होती, और अगर हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेके और पास नहीं ला पाते तो अध्यक्षके रूपमें बेलगाँवमें मैं क्या कर सकूँगा? यदि दृढ़ और कृत-संकल्प

१. देखिए "पत्र: मुहम्मद अलीको", २७-७-१९२४।
२. यह तार उपलब्ध नहीं है।

अल्पमत हो तो भी बहुत-कुछ किया जा सकता है, लेकिन दिखावटी और नाम-मात्रका बहुमत तो आन्दोलनके मार्गमें बाधक ही होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मौलाना शौकत अली

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५७. पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको

आषाढ़ वदी ११ [२७ जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री ५ नानाभाई,

आपका पत्र मिला। यह बात जमनादास मेहताने[2] मुझसे कही थी। मैं उनसे पत्र लिखकर पूछता हूँ। कहनेवाले कुछ भी कहें, उसकी तो चिन्ता ही नहीं है। हमारा दोष न हो, इतना ही बहुत है।

आशा है आपने अब चिन्ता करना छोड़ दिया होगा। आपको मेरा पिछला पत्र मिल चुका होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री नानाभाई इच्छाराम
अकोला
बरार

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३१७) से।
सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

१. इसपर डाकखानेकी मुहर तारीख २९ जुलाई, १९२४ की है। आषाढ़ बदी ११, २७ जुलाईको थी।

२. जमनादास माधवजी मेहता, बार-एट-लॉ बम्बईके राजनीतिज्ञ।

२५८. पत्र : वा० गो० देसाईको

आषाढ़ वदी ११ [२७ जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

'माई मेगज़ीन' पत्रिका यहाँ मिल गई। आपने जो अवतरण भेजे हैं उनके बारेमें फिर कभी लिखूँगा। यह तो 'एवरग्रीन' है। 'एवरग्रीन'का गुजराती समानार्थक शब्द ढूँढ़कर लिखें। मेरा स्वास्थ्य कामचलाऊ है। अभयचन्दभाई क्या-क्या काम कर सकते हैं और उन्हें कितना वेतन चाहिए — यह जाननेपर ही जो-कुछ ध्यानमें आयेगा बताऊँगा। मैंने 'सत्याग्रहका इतिहास'में शुद्धिपत्र लगानेके लिए कहा तो है। इसे आप तैयार करके भेज देते तो कितना अच्छा होता? आपने यह काम तो फिर छोड़ ही दिया। 'चेरिटी' और 'कलरलैस' के जितने गुजराती समानार्थक शब्द मिलें उतने भेजिएगा। मैंने 'कलरलैस' पत्र लिखा, यदि ऐसा कहना हो तो किस शब्दका व्यवहार करना चाहिए?

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च:]

क्या आप मालवीयजीकी तबीयतका हाल पूछनेके लिए उनके यहाँ जाते हैं? मेरी ओरसे जायें और लिखें कि उनका स्वास्थ्य कैसा है।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. १० जुलाई, १९२४ को प्रेमीको लिखे पिछले पत्रमें अभयचन्दभाईका जो उल्लेख मिलता है, उससे मालूम होता है कि यह पत्र भी इसी वर्ष लिखा गया था।

२५९. तार : त्रिवेन्द्रम् कांग्रेस सहायता समितिके अध्यक्षको

[३० जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

अध्यक्ष कांग्रेस सहायता समिति
त्रिवेन्द्रम्

इस क्षतिको पूरा करना कांग्रेसकी शक्तिसे बाहर। मेरी सलाह है कि जहाँ सम्भव हो सरकारी संगठनोंको सहयोग दें। अन्यथा चुपचाप और व्यक्तिगत रूपसे निजी सहायता करना सबसे अच्छा। ऐसी सहायता दी जानी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००५) की फोटो-नकलसे।

२६०. वर्णाश्रमके सम्बन्धमें कुछ और[2]

मेरी एक महिला मित्रने, जिनके पत्रका कुछ अंश मैंने अपनी टिप्पणीके साथ दिनांक १७ के अंकमें उद्धृत किया था, शिकायत की है कि मैंने उनके पत्रका अंश-मात्र उद्धृत करके तथा उसका वह अंश, जो मेरे तर्ककी दृष्टिसे असुविधाजनक था, छोड़कर उनके साथ न्याय नहीं किया है। उन्होंने मुझसे सरोष कहा है कि मैं उनका पूरा पत्र उद्धृत करूँ। चूंकि पूरा पत्र न छापनेका जो कारण उन्होंने बताया है वह कारण मेरे मनमें कदापि नहीं था इसलिए इस अंकमें मैं उनका पूरा पत्र और उसपर अपनी आलोचनाके सम्बन्धमें उनकी टीका भी पाठकोंके समक्ष सहर्ष प्रस्तुत करता हूँ। मेरी इच्छा इस मामलेमें और आगे बहसमें पड़नेकी नहीं है, इसलिए मैंने उनसे कह दिया है कि इस सम्बन्धमें उनकी इस आलोचनाके बाद अन्य कुछ नहीं छापा जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३१-७-१९२४

१. यह त्रिवेन्द्रम् कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीके ३० जुलाईके तारके उत्तरमें भेजा गया था। उसमें सूचित किया गया था कि केरलमें भयंकर बाढ़के कारण भारी क्षति हुई है, अकाल पड़ गया है और कांग्रेस सहायता-कार्यका संगठन कर रही है। इसके लिए केन्द्रीय कांग्रेससे सहायता माँगी गई थी।

२. देखिए "वर्णाश्रम या वर्णसंकर?", १७-७-१९२४।

२६१. लोकमान्यकी पुण्यतिथि

लोकमान्यके भौतिक शरीरका विसर्जन हुए पहली अगस्तको ४ साल हो जायेंगे। इस पुण्यतिथिका मेरे लिए तथा मैं जिसका प्रतिनिधित्व करता हूँ उस आन्दोलनके लिए एक विशेष महत्त्व है। मित्र तथा आलोचक दोनों ही मुझे लिखा करते हैं कि महाराष्ट्रीय अखबारोंका एक भाग इस आन्दोलनपर तथा मुझपर लगातार आक्षेप करता रहता है; और मुझे उन्हें पढ़ना और उनका उत्तर देना चाहिए। परन्तु ऐसा करनेका लोभ मैं संवरण करता आया हूँ। परन्तु मित्रोंने जितना-कुछ लिखा है और जो उद्धरण उन्होंने मेरे पास भेजे हैं उनसे उनका भावार्थ मेरी समझमें भली-भाँति आ चुका है।

लोकमान्यकी चौथी पुण्यतिथिके अवसरपर मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए उत्सुक हूँ। पर लोकमान्यके कितने ही श्रेष्ठ अनुयायियोंके अपने प्रति इस अविश्वासको देखते हुए मैं उसे किस तरह अर्पित करूँ?

कार्य कठिन है। १९२०की उस चिरस्मरणीय रातको, सरदारगृहमें स्वर्गीय लोकमान्यके शवके अन्तिम दर्शन करके वापस लौटते समय अकेलेपनकी अनुभूतिसे मेरा हृदय बैठा जा रहा था। जबतक लोकमान्य थे तबतक मैं सुरक्षित था। परन्तु उनके चले जानेसे अपनी अतिशय अरक्षित दशाका मुझे ज्ञान हुआ। उनके साथ मैं मतभेद रख सकता था और अपना मतभेद आदरपूर्वक प्रकट भी कर सकता था; परन्तु हम दोनोंने कभी एक-दूसरेको गलत नहीं समझा। पर उनके अनुयायियोंके बारेमें मुझे ऐसा नहीं लग पाया। इसका कारण यह नहीं है कि वे मुझपर अविश्वास ही करना चाहते हों; बल्कि अपने उस मार्ग-दर्शकके अभावमें जिसका शब्द उनके लिए वेदवाक्य था, उन्हें मेरे मतके विषयमें हमेशा भय और सन्देह बना रहेगा और उनमें आपसमें भी पूरी-पूरी सहमति नहीं रहेगी। उनमें परस्पर मतभेद पैदा हों ऐसी इच्छा तो मैं कर ही नहीं सकता। मैंने तो अनेक बार महाराष्ट्र दलकी प्रशंसा की है। इस दलकी सुनिश्चित नीति है। वह अनुशासनमें भली-भाँति दीक्षित है। वह समर्थ है और उसने बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ की हैं। इस दलको तोड़नेकी नहीं बल्कि उसपर कब्जा करनेकी मेरी इच्छा थी, और अब भी है। मैं चाहता था, और आज भी चाहता हूँ कि स्वराज्य प्राप्त करनेके साधन-सम्बन्धी मेरे विचारोंको यह दल मान्य कर ले। यदि लोकमान्य होते तो मुझे एकमात्र उन्हींको अपने विचारोंका कायल करनेकी या उन्हें मुझे अपने विचारोंका कायल करनेकी जरूरत रह जाती। घटनाओं और परिस्थितियोंको वे अपने सहज ज्ञानसे ही समझ लेते थे। मुझसे उन्होंने कहा था कि "यदि लोग आपकी प्रणालीको स्वीकार कर लें तो मुझे अपना ही समझना।"

परन्तु आज तो हम विभक्त महाराष्ट्रको देखते हैं। यदि सत्याग्रह विषयक मेरी श्रद्धा अटल होगी तो जिस प्रकार मैं अंग्रेजोंको जीतनेकी आशा रखता हूँ

उसी प्रकार महाराष्ट्रको भी जीतनेकी आशा रखता हूँ। पर ऐसा करनेके लिए मुझे महाराष्ट्रीय अपरिवर्तनवादियोंकी सहायताकी जरूरत होगी। यदि उन्होंने सत्य और अहिंसाके रहस्यको समझ लिया हो तो उन्हें मतभेद रखते हुए भी परिवर्तनवादियोंके प्रति सक्रिय प्रेमका परिचय देना चाहिए। उन्हें उनपर टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। एक-दूसरेके सिर फोड़नेके बदले दूसरा बहुतेरा काम हर पक्षके सामने पड़ा हुआ है।

दो प्रख्यात सज्जनोंने मुझसे अनुरोध किया है कि दोनों दलोंको एक करके उनका नेतृत्व मैं करूं। अपने विस्तृत पत्रमें उनमें से एकने लिखा है:[1]

> मेरे विचारके अनुसार तिलक-नीति और गांधी-नीतिमें कोई अनिवार्य अथवा तात्त्विक विरोध नहीं है; दोनोंमें अन्तर जरूर है परन्तु उतना ही जितना कि पनडुब्बियों द्वारा डाले गये घेरे और हवाई जहाजों द्वारा किये गये हमलेमें होता है। इतना ही नहीं बल्कि दोनों दल एक साथ, सामान्य शत्रुके मुकाबले समान उद्देश्यके लिए खुले तौरपर, निश्छल रहकर अर्थात् एक सद्भावनापूर्ण समझौता करके काम कर सकते हैं (अपनी-अपनी इन नीतियोंके अनुसार, तिलक-नीति कौंसिलोंमें और गांधी-नीति कौंसिलोंके बाहर, खुले मैदानमें)।

इन वाक्योंमें एक हदतक स्थिति यथार्थरूपमें प्रदर्शित हो गई है। 'एक हदतक' मैं इसलिए कहता हूँ कि असहयोगकी मेरी योजनामें कौंसिलोंमें भाग लेनेकी बात शामिल नहीं है। यह मेरी न्यूनता हो, कदाचित् है भी। एक ही आदमी दोनों गतिविधियों — पनडुब्बी और हवाई जहाज — का संचालन नहीं कर सकता। और दोनोंका लक्ष्य एक होनेपर भी दोनोंके निदेशक एक-दूसरेकी जगह भी नहीं ले सकते। मैं कौंसिलोंके बाहर काम करके यहाँतक कि उसकी बुराइयोंको सामने रखकर और इस प्रकार लोगोंको उस ओरसे विरत करके वहाँ किये जानेवाले कामको और अधिक निर्दोष बना सकता हूँ। अपने कथनको स्पष्ट प्रदर्शित करनेके लिए तो इससे ज्यादा अच्छी उपमा 'एन्टीसेप्टिक' (पूतिनाशक) और 'ऐसेप्टिक' (पूतिनिवारक) चिकित्सा पद्धतियोंका अन्तर है। एकका काम रोगाणुओंका नाश करना और दूसरीका काम रोगाणुओंको उत्पन्न ही न होने देना है। ये दोनों प्रयोग एक ही समय और एक ही रोगीपर नहीं किये जा सकते। परन्तु इन दोनों प्रयोगोंके हिमायती सर्जन अपने-अपने प्रयोग उन प्रयोगोंको माननेवाले रोगियोंपर कर सकते हैं; और ऐसा करते हुए एक-दूसरेके कार्यमें किसीके द्वारा रुकावट डाले जानेकी भी सम्भावना नहीं है। यही सज्जन आगे लिखते हैं:

> जबतक तिलकजी और गांधीजीका विरोध बन्द न होगा तबतक भारतके हृदयमें इन दोनोंके बीच खींचतान होती रहेगी और देश स्थिरचित्त होकर कार्य करनेमें असमर्थ रहेगा।

यदि सचमुच यही दुष्परिणाम हो, देश स्थिरचित्त न हो पाये तो मैं एक अकुशल सर्जन और खुद अपनी पद्धतिका लापरवाह प्रचारक सिद्ध होऊँगा। मैं अपने इन मित्र

१. बाबू भगवानदास। देखिए "पत्र: बाबू भगवानदासको", २७-७-१९२४।

और पाठकोंको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं पूरी तरह सतर्क हूँ। इस विरोधका जारी रहना मेरे लिए आनन्दकी बात नहीं है; परन्तु यह विरोध जितना अनिवार्य है, उससे इसकी उम्र एक दिन भी अधिक नहीं होने दी जायेगी।

स्थिरचित्त होकर कार्यमें लग जानेका दिन पास आये, इसमें मैं अपरिवर्तनवादियोंकी मदद चाहता हूँ। अपरिवर्तनवादियोंका विश्वास लोगोंके बीच कार्य करनेमें ही है। अतएव वे निष्ठापूर्वक अपनी जुबानें बन्द कर ले सकते हैं। उस हालतमें वे अधिक अच्छा काम कर सकेंगे। उलटकर जवाब देनेका विचार ही उन्हें छोड़ देना चाहिए। जहाँ भी मत हासिल करके या तिकड़मबाजीसे विजय पाना जरूरी लगे वहाँ वे कांग्रेसके पदोंपर से हट जायें। परिवर्तनवादियोंका काम बाहरी गतिविधियों और प्रचार आन्दोलनके बिना नहीं चल सकता। इसलिए वे बेशक वर्तमान पत्रों, और इच्छा हो तो कांग्रेसके संगठनपर भी अपना कब्जा कर लें। मैं तो उनकी सहमति बनाये रखकर कांग्रेसको जन-संगठनके रूपमें रखना चाहता हूँ। और यह तो तभी हो सकता है जब कार्यकर्त्तागण सब तरफसे ध्यान हटाकर सिर्फ इसी एक कामपर उसे केन्द्रित करें। परन्तु यदि इसके लिए दोनों दलोंमें मोर्चाबन्दी और कटु संघर्ष होना अनिवार्य हो तो यह सम्भव नहीं होगा। वैसी हालतमें यदि अपरिवर्तनवादियोंके जोड़-तोड़ लगाकर बहुमतमें आ जानेकी सम्भावना भी हो तो भी, उन्हें चाहिए कि वे अत्यन्त शालीनताके साथ कांग्रेसकी बागडोर परिवर्तनवादियोंको सौंप दें। हम इस बातको साफ-साफ समझ लें कि जनता अभीतक हमारे काम करनेकी पद्धतिमें सक्रिय रूपसे भाग नहीं ले रही है या फिर वह उसे समझ नहीं पा रही है। उसपर सिर्फ वही लोग अपना प्रभाव जमा सकते हैं जो उसके बीच काम करते हों। हमारे नामी-गिरामी व्याख्यानदाताओंकी अपेक्षा उनपर उन लोगोंका असर ज्यादा होता है जो चुपचाप देहातोंमें काम करते हैं। इसके मैं दर्जनों उदाहरण दे सकता हूँ। इसलिए हमें जनताका उपयोग शतरंजके मोहरोंकी तरह नहीं करना चाहिए। और न कांग्रेसका कब्जा इस ढंगसे छोड़ा जाना चाहिए जिससे परिवर्तनवादियोंको परेशानी हो। यह कब्जा सौंपनेका कार्य अत्यन्त विनयपूर्वक, शुद्ध चित्तसे और मनमें कोई भी दुराव-छिपाव रखे बिना करना चाहिए। मेरी समझमें तो यह काम उन्हीं लोगोंसे हो सकता है जिनकी चरखेपर जीवन्त श्रद्धा हो और जिन्हें एक क्षण भी चरखे और उससे सम्बद्ध संगठनसे विलग होना अखरता हो।

अपरिवर्तनवादियोंको मेरी यह सलाह चाहे पसन्द हो या नापसन्द और वे इसे मानें या न मानें, फिर भी यदि ईश्वर चाहेगा तो ऐसे समय और तरीकेसे जिससे परिवर्तनवादियोंको दिक्कतमें न पड़ना पड़े और राष्ट्रकार्यकी भी हानि न हो, मैं कांग्रेस उनको सौंपकर अपनी यह निष्ठा प्रमाणित कर दिखाऊँगा। जिस दिन मैं यह कर सकूँगा उसी दिन लोकमान्यको मेरी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित हो जायेगी। उनकी दी हुई विरासतके लायक तो मैं अपने धर्मपालनके द्वारा ही बन सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-७-१९२४

२६२. टिप्पणियाँ

दुःखी मलावार

पिछले सप्ताह मैंने दक्षिण कनाराकी बाढ़का उल्लेख किया था। इस सप्ताह जनताको यह दुःखदायी समाचार मिला है कि मलावार प्रायः पानीमें डूब गया है। मेरे पास श्री नम्बूद्रीपादका तार भी आया है, जिसमें उन्होंने बाढ़से हुए भारी नुकसानका विस्तारसे वर्णन किया है और मुझसे सहायता माँगी है। किन्तु मुझे यह मामला गैर-सरकारी साधनोंके सामर्थ्यसे परे मालूम होता है। कांग्रेसके पास न तो इतना धन है, न इतना प्रभाव और न ऐसा संगठन ही कि वह उस महान् संकटसे निपट सके, जिसका सामना इस समय मलावारको करना है। इस समय अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने साधनोंकी अल्पताको स्वीकार करना हमारे लिए सर्वोत्तम होगा। जरूरत हो तो मैं सरकारी अधिकारियों द्वारा नियुक्त किसी समितिके माध्यमसे संकटग्रस्त लोगोंकी सहायता करनेमें भी संकोच नहीं करूँगा। अलबत्ता वे हमारी सहायता स्वीकार करें। यदि हमें यह मालूम हो कि उन्हें हमारी सेवा ग्राह्य नहीं है अथवा सरकारी सहायता संगठन दिखावा-मात्र है, तो मैं उस समितिमें सम्मिलित नहीं होऊँगा और सामर्थ्य-भर निजी एवं व्यक्तिगत रूपसे सहायता करूँगा। भगवान् मुझे सामर्थ्यके अभावके लिए नहीं बल्कि इच्छाके अभावके लिए दण्ड देंगे। अतः मैं स्थानीय कार्य-कर्त्ताओंको सलाह देना चाहता हूँ कि वे अपने सामर्थ्यके अनुसार कार्य करनेमें कुछ उठा न रखें और लोगोंके कष्ट दूर करनेका कोई भी अवसर हाथसे न जाने दें। आखिर ऐसे मौकोंपर पैसा कोई ज्यादा काम नहीं करता। व्यक्तिगत सद्भाव, कष्ट-पीड़ित लोगोंके लिए कष्ट भोगनेकी तत्परता और संकटग्रस्त पड़ोसियोंके साथ अपने भोजनके अन्तिम ग्रास तकको बाँटकर खानेकी तैयारी — ये ऐसी बातें हैं, जिनका महत्त्व लाखों रुपयोंकी अपेक्षा ज्यादा होता है। महाराज युधिष्ठिरने एक महायज्ञ किया था जिसमें उन्होंने सोनेकी मुहरें दक्षिणामें दी थीं; किन्तु उनके पुण्यसे उस ब्राह्मणके त्यागका पुण्य कई गुना अधिक था जिसने अपने थोड़ेसे भोजनमें से भी संकटग्रस्त अतिथिको भोजन कराया था।

एस० वी० के० से

आपके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया। मुझे इसके लिए आपसे अवश्य ही क्षमा-याचना करनी चाहिए। उत्तर इस प्रकार है:

(१) १९१७ की[1] मिलोंकी हड़तालके सम्बन्धमें किया गया मेरा अहमदाबादका उपवास अपने 'सहयोगियों' — मिल-मजदूरों — के विरुद्ध था, मालिकों, 'अत्याचारियों'-के विरुद्ध नहीं। मैंने उस समय यह स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि मेरा उपवास निर्दोष नहीं है, क्योंकि उसका प्रभाव निश्चय ही मिल-मालिकोंपर भी पड़ेगा, जो

१. यहाँ १९१८ होना चाहिए; देखिए खण्ड १४, पृष्ठ २४३।

मेरे निजी मित्र हैं। किन्तु मेरे लिए तटस्थ भावसे यह देखना सम्भव नहीं था कि मिल-मजदूर — मेरे ही सहयोगी — अपनी वह प्रतिज्ञा भंग करें जो उन्होंने मेरी २१ दिनतक गम्भीरतापूर्वक दोहराई थी। उस उपवासका असर बिजलीके समान उपस्थितिमें हुआ था। उससे डाँवाडोल मजदूरोंका निश्चय एकदम दृढ़ हो गया था।

(२) मेरा सिद्धान्त अवश्य ही मुझे मित्र और शत्रुके प्रति समान भावसे प्रेम रखना सिखाता है। किन्तु जबतक शत्रु मित्र नहीं बन जाता तबतक इससे शत्रु-मित्रका भेद नहीं मिटता। श्री जोजेफको लिखा गया पत्र थोड़ा गूढ़ था और प्रकाशनके लिए भी नहीं था। श्री जोजेफ आसानीसे छोड़ी हुई बातोंको समझ ले सकते थे। श्री जोजेफके पत्रमें कही गई बात अधिक पूर्ण रूपमें इस प्रकार कही जा सकती है:

कोई भी व्यक्ति अपने सहकर्मीके कार्यों एवं विचारोंमें सुधार करनेके लिए उपवास कर सकता है, किन्तु ऐसे व्यक्तिके कार्यों और विचारोंमें सुधार करनेके लिए नहीं कर सकता जो विरोधमें हो, फिर व्यक्तिगत रूपसे वह कितना ही घनिष्ठ मित्र क्यों न हो। इस प्रकार, यद्यपि पण्डित मोतीलालजी नेहरू मेरे प्रिय मित्र हैं, फिर भी कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें अपने मतके अनुरूप उनका मत परिवर्तन करनेकी दृष्टिसे मैं उनके विरुद्ध उपवास नहीं कर सकता। मैंने बम्बईके दंगाइयोंके विरुद्ध उपवास किया था, क्योंकि वे मेरे निजी दोस्त नहीं थे फिर भी वे एक समान उद्देश्यमें मेरे साथी थे। हमें उपवासोंके द्वारा अपने आदर्शोंके अनुरूप लोगोंका मत-परिवर्तन करानेका कोई अधिकार नहीं है। वह एक प्रकारकी हिंसा होगी। किन्तु हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उपवास करके उन लोगोंको मजबूत करें जिनके आदर्श हमारे ही समान हैं, किन्तु दबावके कारण जिनके कमजोर पड़ जानेकी आशंका दिखाई देती हो।

(३) मुझे संयोगवश आयरलैंडके महान् देशभक्त मैक्स्विनीकी मृत्युपर आयोजित एक शोकसभाकी अध्यक्षता करनेका अवसर मिला था।[1] मैंने उसमें अपना यह मत नम्रतापूर्वक व्यक्त किया था कि जनताके सम्मुख इस समय जो तथ्य हैं, मैं उनके बलपर नैतिकताकी दृष्टिसे उपवासको न्यायसंगत नहीं कह सकता। तबसे आजतक मुझे अपना मत बदलनेका कोई कारण नहीं मिला। उस प्रसिद्ध उपवासके राजनीतिक महत्त्वसे मुझे कोई सरोकार नहीं है। कोई यह भी न समझे कि मैं दिवंगत देश-भक्तकी स्मृतिपर कोई आक्षेप कर रहा हूँ। मैं तो केवल सत्याग्रहीके रूपमें उपवासकी नैतिकताके बारेमें अपना मत व्यक्त कर रहा हूँ।

भारतका हिस्सा

एक अमेरिकी महिलाने भारत सरकारकी अफीम सम्बन्धी नीतिके बारेमें मुझे एक लम्बा पत्र लिखा है। इसमें उन्होंने अफीमके व्यवसायकी रोकथामके लिए निर्मित, ब्रिटिश सोसाइटी द्वारा प्रकाशित विवरणमें से निम्न अंश[2] उद्धृत किया है:

> . . . प्लेग, युद्ध और दुर्भिक्ष, ये तीनों मिलकर भी भविष्यके बारेमें ऐसी भयानक आशंका प्रस्तुत नहीं करते जैसा अफीमका व्यसन। जब यह व्यवसाय

१. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ४९४।
२. पूरा नहीं दिया जा रहा है।

चीनके साथ किया जाता था तब ब्रिटिश लोकसभाने इसे नैतिक दृष्टिसे असमर्थनीय कहकर, एकमत होकर इसकी निन्दा की थी, किन्तु भारतको आज भी पांच पूर्वी राष्ट्रोंको उतनी अफीम भेजनेकी अनुमति है, अफीमकी जितनी माँग उनकी सरकारें करें। भारत सरकार यह डींग हाँकती है कि वह इन पाँच देशोंमें निजी व्यक्तियोंको अफीम नहीं बेचती, किन्तु करारके अनुसार वह उन्हें इस मादक द्रव्यसे पाट देती है और ये तस्करोंके जरिये चीनमें पहुँच जाते हैं। . . .

अज्ञान

एक मित्रने मेरे पास उत्तरकी अपेक्षा रखते हुए 'गार्जियन' की एक कतरन भेजी है। उसमें हिन्दुस्तानके एक भूतपूर्व पुलिस अधिकारीने हिन्दुस्तान सम्बन्धी मामलों-में अपना सामान्य अज्ञान व्यक्त किया है। समाचारपत्रोंके अनुच्छेदोंको ढूंढ़ना और सुधारना बहुत मुश्किल है। किसी भी आन्दोलनको सफल होनेके पहले अज्ञान और उपहासकी स्थितिमें से जरूर गुजरना पड़ता है। लेकिन मैं यह बात जोर देकर कह सकता हूँ कि यदि असहयोग आन्दोलन रचनात्मक नहीं है तो वह व्यर्थ है। उसका खादी-कार्य, उसके प्रयत्न (यदि वे इस समय असफल होते भी दिखाई दें तो भी कुछ हर्ज नहीं) और अछूतोंमें तथा उनके निमित्त किया जानेवाला उसका कार्य, उसकी राष्ट्रीय शालाएँ, उसकी पंचायतें कायम करनेका प्रयत्न, उसके द्वारा अफीम और शराबखोरीके खिलाफ किया जानेवाला प्रचार और उसकी अकाल और बाढ़से पीड़ित लोगोंको दी जानेवाली राहत — ये सब उसके रचनात्मक कार्यके उदाहरण हैं। परन्तु इस आन्दोलनका उद्देश्य 'ब्रिटिश सरकारकी मेहरबानी' से हिन्दू राज्यकी स्थापना करना नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य यह है कि स्वराज्यकी स्थापना की जाये; जिसका अर्थ है ब्रिटिश राज्यके स्थानपर अर्थात् जनताके प्रति सर्वथा उत्तरदायित्वहीन उन ब्रिटिश या भारतीय प्रशासकोंके स्थानपर — जो भारत तथा भारतीय जनताके शोषण-के लिए नियुक्त किये गये हैं — चुने हुए प्रतिनिधियोंकी सरकारकी स्थापना करना। इस संघर्षके दौरान की गई प्रत्येक गलतीके लिए सदैव स्पष्ट तथा पूर्ण प्रायश्चित्त किया गया है। असहयोग आन्दोलनके समान बड़े पैमानेपर किया गया कोई भी अन्य आन्दोलन इस प्रकार हिंसासे मुक्त नहीं रहा। आप अन्य प्रत्येक सम-सामयिक राष्ट्रीय आन्दोलनसे तथा देशभक्तिके नामपर की गई हत्याओं तथा हिंसापूर्ण कार्योंकी सूचीसे भारतीय आन्दोलनकी तुलना तो करें। लेखकने अछूतोंमें ईसाइयों द्वारा किये गये कार्यकी प्रशंसा की है। मैं भारतमें ईसाइयों द्वारा किये गये कार्यके गुणावगुणोंकी चर्चामें नहीं पड़ना चाहता। ईसाई मजहबका अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू धर्ममें नवचेतना पैदा हो गई है। सुसंस्कृत हिन्दू समाजने अछूतोंके प्रति किये गये अपने गम्भीर पापको स्वीकार कर लिया है। लेकिन ईसाई मजहबका साधारण रूपसे भारतपर जो असर हुआ है उसका सही अन्दाज हमारे बीच साधारण ईसाइयोंके रहन-सहनसे और उसके हमपर पड़नेवाले असरसे लगाना पड़ेगा। मुझे अपनी यह राय जाहिर करते हुए दुःख होता है कि हमपर उसका बड़ा हानिकारक प्रभाव

पड़ा है। मुझे यह कहते पीड़ा होती है कि कुछ अपवादोंको छोड़कर आमतौरपर ईसाई प्रचारकोंने सामूहिक रूपसे उस शासन प्रणालीको सक्रिय सहायता पहुँचाई है जिसने पृथ्वीपर भद्रतम तथा सभ्यतम गिने जानेवाले लोगोंको कंगाल बनाया है, हतवीर्य किया है तथा नैतिक दृष्टिसे भी गिराया है। मुझे इतना और कहना है कि मैं पृथ्वीपर एक ही धर्मके होने या रह जानेकी बातमें विश्वास नहीं करता। इसलिए मैं सब धर्मोंमें मिलती-जुलती बातें ढूंढ़ निकालने तथा एक-दूसरेके प्रति सहनशीलता उत्पन्न करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

हृदय-परिवर्तन

यह उपर्युक्त उदाहरणका एक प्रत्युदाहरण है। एक अंग्रेज पत्र-लेखक लिखते हैं:

> मैं १९१९ की घटनाओंके समय भारतीय सेनाकी एक टुकड़ीमें था और मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि सत्यके प्रति अन्धा होना कितना सरल है, तथा अंग्रेजोंके लिए अपने बहु संकुचित दृष्टिकोणको उदार बनाना कितना कठिन है। मैंने सेनाकी नौकरी छोड़ दी और मैं विश्वविद्यालयमें चला गया। जब मैं विश्वविद्यालयमें था तब मेरी नियुक्ति भारतीय नागरिक सेवामें कर दी गई। अब मेरी समझमें आ गया है कि वह मेरा सौभाग्य था जिसने मुझे उस पदसे त्यागपत्र देनेके लिए प्रेरित किया था। अभी कुछ दिन हुए मैंने स्वयं विश्वविद्यालयके ऐकान्तिक जीवनसे निकलकर स्वयं औद्योगीकरण, भौतिकवाद और यन्त्रोंसे उत्पन्न विभीषिका देखी है।
>
> मैं भारतके लिए किये जानेवाले आपके महान् कार्यको ध्यानपूर्वक देखता आ रहा हूँ। यह आध्यात्मिक सत्यको लौकिक क्षेत्रमें लागू करनेका एक अनोखा उदाहरण है। ज्यों-ज्यों मेरी दृष्टिमें इंग्लैंडके दो स्वरूप साफ होते गये मेरा क्षोभ बढ़ता चला गया। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि आप भारतको भौतिकवादी सभ्यताके अभिशापसे मुक्त करके विशाल अंग्रेजी जन-समुदायको भी उसके दूषित परिणामोंसे मुक्त करेंगे।
>
> भारतीय आन्दोलनके इस पहलूसे, वस्तुतः आप भलीभाँति परिचित हैं।
>
> किन्तु मेरा खयाल है कि आप निराशाओं और कष्टोंसे भरे अपने जीवनमें, १९१९ में भारतमें रहे हुए एक 'आंग्ल भारतीय' द्वारा की गई अपने कार्यकी इस सराहनाको अस्वीकार नहीं करेंगे।

पाठ्य पुस्तकोंकी जब्ती

संयुक्त प्रान्तकी सरकारने इस मासकी १५ तारीखको निम्नलिखित विज्ञप्ति जारी की है:

> १८९८ के पाँचवें कानूनके खण्ड ९९ क में दिये गये अधिकारोंके अनुसार, सपरिषद् गवर्नर घोषित करते हैं कि पण्डित रामदास गौड़ द्वारा लिखित और बैजनाथ केड़िया, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, १२६ हैरीसन रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित और वणिक प्रेस कलकत्तामें मुद्रित हिन्दी पाठ्य पुस्तक सं० ३, ४,

५ और ६ की तमाम प्रतियाँ सम्राट्की ओरसे जब्त कर ली गई हैं। इसके सिवा इन पाठ्य पुस्तकोंकी किसी अन्य स्थानपर छपी दूसरी तमाम प्रतियाँ या उनमें से ली गई सामग्री भी जब्त कर ली गई है, क्योंकि स्थानिक सरकारकी राय है कि इन पाठ्य पुस्तकोंमें राजद्रोहात्मक सामग्री है, जिसका प्रकाशित करना भारतीय दण्ड विधानके खण्ड १२४ क के अनुसार दण्डनीय है।

ये पाठ्यपुस्तकें कोई तीन सालसे जनताके सामने हैं। राष्ट्रीय शालाओंमें उनका विस्तृत उपयोग होता है। वे नगरपालिकाओंकी शालाओंमें भी चलती रही हैं। इसलिए प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने उचित ही आचार्य रामदास गौड़को इसपर बधाई दी है, इन पुस्तकोंको निर्दोष बताया है और इस सरकारी हुक्मके होते हुए भी उनको बनाये रखनेकी सिफारिश की है। इससे लोगोंके इस भ्रमका निराकरण हो जाता है कि अब सरकारने असहयोगियोंके खिलाफ मनमानी कार्रवाई करनेकी नीति छोड़ दी है। सरकारका कथन है कि इन पुस्तकोंमें ऐसे पाठ हैं जिनसे भारतीय दण्ड विधानका खण्ड १२४ क भंग होता है। वह लेखकपर मुकदमा चलाकर उन्हें सजा दिला सकती थी। तभी उसका इन पुस्तकोंको जब्त करना न्यायोचित भी कहला सकता था। मैंने इन पाठ्य पुस्तकोंके सभी पाठ पढ़ लिये हैं; मुझे तो वे सरकारी दृष्टिकोणसे भी बिलकुल निरापद मालूम होती हैं। सरकारका लोगोंके प्रति कमसे-कम इतना कर्त्तव्य तो था ही कि वह यह बता देती कि इन पुस्तकोंमें आपत्तिजनक सामग्री क्या है, जिससे लोग इतना मानकर भी कि सरकार मनमाने अधिकारका निस्सन्देह उपयोग कर सकती है, इस बातपर विचार कर सकते कि सरकारका यह आदेश न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण। परन्तु मौजूदा हालतमें तो इस नतीजेपर पहुँचे बिना नहीं रहा जा सकता कि सरकार पाठ्य पुस्तकोंकी बढ़ती हुई लोकप्रियताको पसन्द नहीं करती और अनुचित रीतिसे अपने उन प्रतिपालित लोगोंको फायदा पहुँचाना चाहती है जिनकी पाठ्य पुस्तकें आचार्य गौड़की पाठ्य पुस्तकोंकी प्रतियोगितामें पीछे रह गई होंगी। यदि पुस्तकें सचमुच राजद्रोहात्मक होतीं तो उसके लम्बे-चौड़े खुफिया विभागकी ओरसे यह बात जरूर उसके सामने पेश कर दी गई होती। इतने दिनोंके बाद पुस्तकोंका जब्त किया जाना मेरे इस निष्कर्षकी पुष्टि करता है। मैं संयुक्त प्रान्तकी सरकारको आमन्त्रित करता हूँ कि वह अपने इस फैसलेके सम्पूर्ण कारण सर्वसाधारणके सामने पेश करे। मुझे यह जानकर खुशी होगी कि मैंने जो निष्कर्ष निकाला है वह ठीक न हो। मैं समितिके सभापतिको भी सलाह देता हूँ कि वे सरकारसे इसके कारण पूछें और यदि समितिको सरकारका फैसला ठीक दिखाई दे तो मैं आचार्य रामदास गौड़को सलाह दूँगा कि वे उन पुस्तकोंमें आवश्यक संशोधन कर दें या उनकी बिक्री बन्द करा दें।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

कोई भी पाठक, जिसने दिल्लीकी हालकी घटनाओंपर प्रकाशित हकीम अजमल खाँका वक्तव्य पढ़ा है उसमें छिपे गहरे सन्तापको महसूस किये बिना नहीं रह सकता। मुझे उसका कमसे-कम एक अनुच्छेद यहाँपर अवश्य देना चाहिए :

दिल्लीके हालके उपद्रवोंके समय हुई सारी घटनाओंमें सबसे ज्यादा लज्जाजनक और हृदयविदारक घटनाएँ हैं औरतोंपर किये गये अन्यायपूर्ण और कायरतापूर्ण आक्रमण। जहाँतक मुझे मालूम हुआ है हिन्दुओंने एक मुसलमान स्त्रीके साथ दुर्व्यवहार किया है; परन्तु इससे भी ज्यादा बुरी बात तो यह है कि १५ तारीखके उपद्रवोंमें कुछ ऐसे लोग, जो दीने-इस्लामके पुजारी होनेका दावा रखते हैं, सिर्फ हिन्दू मन्दिरपर आक्रमण करके और मूर्तियाँ तोड़-फोड़कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए बल्कि उन्होंने औरतों और बच्चोंपर भी कायरतापूर्वक आक्रमण किया। स्त्री-जातिकी प्रतिष्ठा और पवित्रताकी ओर अपने हम-मजहब लोगों द्वारा की गई निर्दयतापूर्ण और असभ्यतापूर्ण अवज्ञाकी कल्पना मात्रसे मुझे घोर सन्ताप होता है और मेरी रूह काँप उठती है। ऐसे गुनहगारोंकी जितनी भी निन्दा की जाये थोड़ी है। मैं तमाम सच्चे मुसलमानोंसे अपील करता हूँ कि वे दिल खोलकर बिना आगा-पीछा किये इस अनाचारकी निन्दा करें। मैं जमीयत-उल-उलेमा और खिलाफत समितियोंको दावत देता हूँ कि वे उठ खड़ी हों और इस्लामकी उदात्तसे-उदात्त भावनाओंका उपयोग ऐसे जंगली और गैरकानूनी कामोंकी निन्दा करनेमें और आयन्दा उनकी पुनरावृत्ति न होने देनेमें करें। सच्चे मुसलमानकी हैसियतसे ऐसी करतूतोंको बिलकुल नामुमकिन बना देना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है। अगर हम इसमें कामयाब न हुए तो कौमी आजादी और स्वराज्य प्राप्त करनेकी कोशिशोंमें हमारी पराजय उचित ही होगी।

एक सज्जनने अपने पत्रमें मुझे इस बातपर फटकारा है कि हकीमजीने जिन हमलोंका जिक्र किया है मैंने अपने वक्तव्यमें उनपर कुछ नहीं कहा है। मैंने अपनी टिप्पणी उपद्रवोंकी बिलकुल पहली खबरके आधारपर लिखी थी। उसमें इन हमलोंका कोई जिक्र नहीं था। उसके बाद परिस्थिति बहुत बिगड़ गई। यह खबर इतनी गम्भीर थी कि उसपर केवल सनसनीखेज तारोंके आधारपर खुली टीका नहीं की जा सकती थी। इसलिए मैंने दिल्लीके मित्रोंसे चिठ्ठी-पत्री शुरू की; परन्तु आज मैं कोई प्रभावकारी आलोचना कर सकनेकी स्थितिमें नहीं हूँ। खुशकिस्मतीसे मौलाना मुहम्मद अली इस समय दिल्लीमें हैं। वे तहकीकात कर रहे हैं और मैंने सुझाव दिया है कि यदि सम्भव हो तो उन्हें कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे अपनी प्राथमिक जाँच-पड़तालकी रिपोर्ट प्रकाशित करनी चाहिए।[1] इस मामलेमें मुझे अपने कर्त्तव्यका पूरा खयाल है। इस समय मुझे मौलाना साहबके पास होना चाहिए था। लेकिन डाक्टरोंकी सलाहसे मैंने वहाँ जाना स्थगित कर रखा है। अबतक जितना पथ्य-परहेज करने पर जोर दिया जाता है वह सब शायद जरूरी नहीं है; क्योंकि यद्यपि मैं बाहर आता-जाता नहीं तथापि बहुत-सा काम तो करता ही हूँ। लेकिन यथासम्भव स्वास्थ्य-

१. देखिए "पत्र: मुहम्मद अलीको", २७-७-१९२४।

को जोखिमसे बचाना चाहता हूँ। इस अवसरपर मित्रोंका मुझे मेरे कर्त्तव्यकी याद दिलाना ठीक है; लेकिन मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि मैंने अपनेको पूरी तरह मौलाना मुहम्मद अलीकी इच्छापर छोड़ रखा है। मैंने उनसे कह दिया है कि यदि वे मुझे तत्काल दिल्ली बुलाना जरूरी समझें तो वे मेरी तन्दुरुस्तीका खयाल न करें। और यों भी मैं हर हालतमें जल्दी ही दिल्ली जानेकी तैयारी कर रहा हूँ, परन्तु अगर मौलाना मुहम्मद अली मेरा जल्दी दिल्ली आना जरूरी न समझते हों तो मैं अगस्तके अन्ततक सफर नहीं करना चाहता। अहमदाबादमें मेरी तन्दुरुस्ती कुछ बिगड़ जानेके कारण श्री विट्ठलभाई पटेलसे अनुरोध किया गया है[1] कि वे बम्बई नगर निगमकी ओरसे मुझे दिये जानेवाले मानपत्रकी तारीख अगस्तके अन्तमें रखें। परन्तु यदि जरूरत हुई तो मैं मानपत्रके लिए बम्बई जानेसे पहले दिल्ली जानेमें आगा-पीछा नहीं करूँगा।

पक्षपात या न्याय

मैं देखता हूँ कि कलकत्ता नगर निगमके मुख्य कार्यपालक अधिकारीकी पर्याप्त रूपमें प्रतिकूल आलोचना की गई है, क्योंकि उन्होंने ३३में से २५ नियुक्तियाँ मुसलमानोंकी की हैं। मैंने आलोचनाएँ स्वयं नहीं पढ़ी, किन्तु मैंने मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा दिया गया वक्तव्य पढ़ा है। मेरी विनम्र रायमें उनका यह काम श्लाघ्य है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि अभीतक यूरोपीयों अथवा भारतीयोंने निष्पक्ष भावसे नियुक्तियाँ नहीं की हैं। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि अनेक अवसरोंपर हिन्दुओंने प्रभाव डालकर अपने पक्षमें निर्णय कराया है। इसलिए अब उन्हें यह शोभा नही देता कि वे बहुत-सी जगहें मुसलमानोंको दे देनेके कारण झगड़ा करें। यह आरोप होनेपर भी कि नियुक्ति-योंके पीछे दलबन्दीका हेतु है, यदि नियुक्तियाँ अन्यथा न्यायसंगत हैं तो इसमें अनैतिक अथवा निन्दनीय कुछ नहीं है। इंग्लैंडमें दलके हितकी दृष्टिसे सदा ऐसी नियुक्तियाँ की जाती हैं; यद्यपि प्रायः यह सावधानी बरती जाती है कि उससे कार्यकर्त्ताओंकी कार्यकुशलताका मान कम न हो जाये। व्यक्तिगत रूपसे मैं तो यह चाहता हूँ कि नियुक्तियाँ योग्यतम व्यक्तियोंकी होनी चाहिए और उसमें दल विशेषका विचार नहीं किया जाना चाहिए; इसीलिए नियुक्तियोंके लिए एक निर्दलीय स्थायी निकायका होना उचित है। किन्तु यदि हिन्दू भारतको स्वतन्त्र देखना चाहते हैं तो उन्हें अपने मुसलमान और अन्य भाइयोंकी खातिर त्याग करनेके लिए खुशी-खुशी तैयार रहना चाहिए। मैं मुख्य कार्यपालक अधिकारीके निम्न वक्तव्यका हृदयसे समर्थन कर सकता हूँ। वे कहते हैं:

> जब हजारों शिक्षित नौजवान बेकार हों तथा करीब-करीब भूखों मर रहे हों, और रिक्त स्थान बहुत सीमित हों, तब किसी भी मनुष्यके लिए सभीको प्रसन्न करना सम्भव नहीं है। मैं कुछ भी करूँ, बेकार लोगोंका अधिकांश भाग निश्चय ही पूर्ववत असन्तुष्ट रहेगा। इस समस्याका एकमात्र हल है, कोई

१. देखिए "पत्र: विट्ठलभाई पटेलको", २४-७-१९२४।

हुनर सिखानेकी व्यवस्था करना, और मेरी रायमें, निगम इस दिशामें बहुत-कुछ कर सकता है।

हमें नौकरियोंके बिना काम चला सकना सीखना चाहिए। नौकरियाँ तो बहुत ही कम लोगोंको मिल सकती हैं। शिक्षाको केवल बाबूगिरीकी शिक्षा बनकर नहीं रहना है। कोई स्नातक, कारीगर अथवा साग-भाजी या खद्दरकी फेरी क्यों नहीं लगा सकता?

एक मुस्लिम खादी समिति

अहमदाबादमें अभी-अभी स्थापित, मुस्लिम खादी समितिके मन्त्री श्री एस० एच० उरेजीने मेरे पास निम्न समाचार प्रकाशनके लिए भेजा है:

> कानपुरके हजरत मौलाना आजाद सोबानी साहब कुछ उत्साही मुसलमानोंकी सहायतासे इस मासकी १५ तारीखको अहमदाबादमें मुस्लिम खादी समितिका संगठन करनेमें सफल हुए हैं। इसका स्पष्ट उद्देश्य मुसलमानोंमें खद्दरका व्यापक प्रचार करना है। समितिमें निम्नलिखित सज्जन हैं:
>
> अध्यक्ष — हकीम सैयद अहमद साहब देहलवी; उपाध्यक्ष — हकीम समीर साहब सिद्दीकी; मन्त्री — सैयद हुसैन उरेजी; कोषाध्यक्ष — सेठ मुहम्मदभाई राजाभाई शेख। सदस्य — मौलवी सैयद सज्जाद हुसैन साहब; हकीम रहीमुल्ला साहब अजमेरी; मुंशी मंजरअली साहब; सेठ नूरमुहम्मद मुहम्मदभाई मंसूरी साहब; सेठ पीरभाई आदमजी मोदी साहब; सेठ अब्दुर्रहीम अब्दुल करीम साहब; मौलाना शराफ साहब देहलवी।

मैं अपनी सीमाका अतिक्रमण करके इस समितिका विज्ञापन कर रहा हूँ, क्योंकि सामान्यतः मैं इस प्रकारके विवरण प्रकाशित नहीं करता। मैंने कटु अनुभवके बाद जाना है कि ऐसी समितियाँ घास-पातके समान शीघ्रतासे उत्पन्न होती हैं और फिर शीघ्रतासे नष्ट भी हो जाती हैं। इनका अस्तित्व प्रायः कागजपर ही रहता है। किन्तु मैं इस समितिके पक्षमें अपवाद स्वरूप यह आशा करता रहा हूँ कि यह अपने संस्थापक मौलाना आजाद सोबानीकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सिद्ध होगी। मैं ऐसे बहुत कम मुस्लिम संगठनोंको जानता हूँ जो विशेष रूपसे खादीके काममें संलग्न हों। न बहुतसे मुसलमान ही ऐसे हैं जो इस अत्यन्त आवश्यक राष्ट्रीय कार्यमें सक्रिय रुचि रखते हों। बल्कि एक मित्रने मुझसे कहा कि अहमदाबादमें बकरीदके समय खादी पहने हुए मुसलमान अँगुलियोंपर गिने जा सकते थे। वे देशी मिलोंका कपड़ा भी नहीं पहने हुए थे। विदेशी-ही-विदेशी कपड़ा दीख पड़ रहा था। मैं आशा करता हूँ कि इस समितिके प्रयत्नोंसे यह स्थिति बदल जायेगी। मैं यह भी आशा करता हूँ कि इसके सब सदस्य सूत कातते और खादी बुनते होंगे।

कतैयोंसे

सत्याग्रह आश्रमके व्यवस्थापक मुझसे कहते हैं कि पूनियों, तकुओं, चमरखों, चरखों, धुनकियों और चर्खियोंकी माँगकी बाढ़-सी आ रही है। अ० भा० कांग्रेसके

प्रस्तावोंकी यह प्रतिक्रिया एक शुभ चिह्न है। परन्तु यहाँ एक छोटी-सी चेतावनी दे देना जरूरी है। जो लोग इस काममें नये ही आये है उन्हें, स्वभावतः सहायता और मार्गदर्शनकी जरूरत होगी। लेकिन व्यवस्थापकों और सूत कातनेवालोंको यह समझ लेना चाहिए कि अगर हर सूत कातनेवालेको कही दूरसे पूनियाँ उपलब्ध करनी पड़ें तो सारे देशमें कताईका संगठन करना नामुमकिनहो जायेगा। पूनियाँ बहुत नरम होती हैं और एक जगहसे दूसरी जगह भेजनेमें खराब हो जाती हैं। यदि वे धातुके डिब्बोंमें भरकर भेजी जायें तो वे बिना दबे जा सकती हैं; परन्तु इसमें पूनीकी कीमतसे भी ज्यादा खर्च बैठ जायेगा। इसलिए सबसे अच्छा तो यह है कि लोग सूत कातनेके साथ-साथ रुई धुनना भी सीख लें। जहाँ यह मुमकिन न हो वहाँ ३० या उससे कम सदस्योंके कताई मण्डल कायम किये जायें। मण्डलका एक सदस्य जो पूरे समय काम करनेवाला हो, केवल रुई धुनने और पूनियाँ बनानेका काम करे किन्तु वह आधा घंटा सूत कातनेमें भी अवश्य लगाये। यदि चरखे, तकुए आदि भी किसी एक ही जगहसे मँगवाने पड़ें तो भी कताईको सफलतापूर्वक चलाना नामुमकिन है। हर प्रान्तीय कमेटीसे संलग्न एक गोदाम होना चाहिए जहाँ कताई और मरम्मत सम्बन्धी तमाम सरंजाम मिल जाये। चरखेका पार्सल बनाना बहुत मुश्किल होता है और रेल-भाड़ा बहुत पड़ जाता है। यदि अच्छा नमूना सामने हो तो एक मामूली बढ़ई भी अच्छा चरखा बना सकता है। किसी संस्थाको सुचारु रूपसे चलानेके लिए हजारों छोटी-मोटी बातोंपर विचार करना पड़ता है। और इसीलिए अगर सम्भव हो तो मैं कांग्रेसको एक ऐसा कारखाना और खादी-भण्डार बना देना चाहता हूँ जिसमें कताईसे सम्बन्धित तमाम सामग्री मिले और जहाँ खादीकी बिक्री भी हो। हमें अपने आन्तरिक प्रयत्नों द्वारा विदेशी कपड़ेका सम्पूर्ण बहिष्कार करनेके लिए बहुत सोच-विचार और उससे भी अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। एक आदमी या एक ताल्लुकेके पूरे तौरपर खादीपोश हो जानेसे चाहे स्वराज्य न मिले किन्तु सारे देशके ऐसा करनेसे तो स्वराज्य अवश्य मिलेगा। यही सफल बहिष्कारका अर्थ है। यदि हम अपनी कल्पनाशक्तिको थोड़ा भी दौड़ायें तो खादी-आन्दोलनका पूरा स्वरूप सामने आ जायेगा और हमारी सब शंकाएँ दूर हो जायेंगी। खादीकी बात लोगोंको न जँचे यह दूसरी बात है। परन्तु यह भी तबतक नहीं कहा जा सकता जबतक हम उसके लिए सचाईसे पूरी कोशिश न करें; किन्तु ऐसी कोशिश हार्दिक श्रद्धाके ही बलपर की जा सकती है।

प्रश्नकर्त्तासे

नहीं, यह सच नहीं है कि मैंने अपना भोजन इसलिए कम कर दिया था कि देश सूत नहीं कात रहा है। मैंने भोजन कम किया था, मानसिक शक्ति और स्वास्थ्यकी संरक्षाके लिए। मैं अब फिर तीन बार भोजन करने लगा हूँ और उसमें भाकरी[1] शुरू कर दी है। किन्तु जब 'स्यामके जुड़वाँ भाइयों' ने अहमदाबादसे रवाना होनेसे पहले

१. प्रायः बाजरे अथवा ज्वारकी बनी मोटी रोटी।

मुझसे स्नेहपूर्वक यह आग्रह किया था कि मुझे फिर तीन बार भोजन शुरू कर देना चाहिए और अपने भोजनकी मात्रा भी बढ़ा देनी चाहिए तब मैंने उनसे विनोदमें कहा था, मैं ऐसा तब करूँगा जब लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता पुनः स्थापित कर लेंगे और खद्दरको लोकप्रिय बना लेंगे। अतः उन्होंने मेरे द्वारा की गई भोजनकी कमीका जो उल्लेख किया है उसका कारण यही है कि उन्होंने या तो यह मैत्रीपूर्ण छूट ली है या फिर मेरे विनोदको सच समझ लिया था। जो भी हो, मैं इन दोनोंही अवस्थाओंमें प्रश्नकर्तासे सहमत हूँ कि उन्हें मेरी निजी आदतों अथवा संयम-नियमोंका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता और खादी, दोनों ही प्रश्नोंका निर्णय उनके गुण-दोषके आधारपर किया जाना चाहिए। दोनों ही राष्ट्रके अस्तित्वके लिए नितान्त आवश्यक हैं, और हम तभी सफल होंगे जब हम राष्ट्रका मत अपने पक्षमें कर लेंगे।

"गांधीजीके लिए या देशके लिए?"

एक मित्रने ऐसा-कुछ लिखा है कि 'गांधीजीकी खातिर' सूत कातो, यह कहकर छात्रोंको सूत कातनेके लिए प्रेरित करनेकी प्रथा-सी बन गई है। उसने मुझसे पूछा है कि क्या यह उचित है? जबतक मैं देशके लिए और केवल देशके लिए कार्य करता हूँ तबतक कुछ खास परिस्थितियोंमें इस प्रकारकी अपील अनुचित नहीं है। मेरी खातिर सूत कातनेकी अपील 'देशके लिए' सूत कातनेकी अपीलसे अधिक सीधा असर कर सकती है। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि सबको केवल देशके लिए सूत कातना चाहिए। यदि इसका और भी उदात्त अर्थ लें तो यह कहना अधिक ठीक होगा कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने लिए सूत कातना उचित है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति देशके लिए जो कार्य करता है, अपने लिए भी करता है। जो सिर्फ अपने लिए कार्य करता है वह अपने नाशकी तैयारी करता है। हमारा लाभ और देशका लाभ बिलकुल एक होना चाहिए और हमारे लाभका अस्तित्व देशके लाभमें विलीन हो जाना चाहिए। किन्तु जो लोग केवल अवसर विशेषपर, दिखावेके लिए सूत कातते हैं, अन्यथा कातते ही नहीं वे बेईमानीका आचरण करते हैं।

मैदानमें सबसे आगे

अ० भा० खादी बोर्डकी कताई सम्बन्धी प्रस्तावपर अमल किये जानेका प्रमाण मिलना प्रारम्भ हो गया है। कुछ लोगोंकी तात्कालिक अनुकूल प्रतिक्रियाका कारण 'स्पष्ट' है। जिन्हें रुचि है वे प्रतिदिन आधे घण्टेमें १५० गज सूत आसानीसे कात सकते हैं। यह प्रति घंटा ३०० गज औसत गति हुई। ऐसे अनेक लोग हैं जिन्होंने अपना दाय पूरा भी कर लिया है। अबतक अधिकतम गति ५०० गज प्रति घंटा आई है।

श्रीमती अवन्तिकाबाई[1] और उनकी सहेलियाँ सूत भेजनेवालोंमें प्रथम हैं। इनमें से अधिकतर कांग्रेसकी सदस्याएँ नहीं हैं। वे कांग्रेसकी किसी कार्यकारी संस्थामें भी नहीं हैं। किन्तु मैंने इन पृष्ठोंमें कहा है कि प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुषका, चाहे

१. अवन्तिकाबाई गोखले।

वह किसी दलसे सम्बद्ध हो, कर्त्तव्य है कि वह अपने सूतका भाग अ० भा० खादी बोर्डको भेजे। अतः मैं इन महिलाओंको उनकी भेंटके लिए बधाई देता हूँ। यह स्वाभाविक है कि वे अपने सूतकी किस्मके बारेमें विशेषज्ञोंकी राय जानना चाहेंगी। जहाँतक सूतकी किस्मका सवाल है, वह उत्तम है। किन्तु गुंडियाँ आदि बनानेका ढंग जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है और यह स्वाभाविक ही है। सूतकी परीक्षा और उसके वर्गीकरणमें एक घंटेसे ज्यादा समय लगाना पड़ा। इस एक पुलिन्देकी जाँच करनेके फलस्वरूप मन्त्री महोदयने कातनेवालोंके ध्यान देनेके लिए मेरे पास निम्न विशिष्ट हिदायतें भेजी है:

(१) प्रत्येक कातनेवाले स्त्री अथवा पुरुषको अपनी गुंडीपर नामकी चिट लगानी चाहिए और उसपर निम्न सूचनाएँ देनी चाहिए:

(अ) गुंडीके तारोंकी लम्बाई और संख्या।

(ब) वजन, तोलोंमें।

(स) सूतका अंक जो हिसाब लगानेके बाद निकले।

ये चिटें उस मुख्य चिटके अतिरिक्त होंगी जिसपर कातनेवालेके नाम आदिका ब्योरा रहेगा।

(२) सब गुंडियाँ आकार-प्रकारमें समान हों।

(३) प्रत्येक गुंडीमें दो या अधिक अलग-अलग दीख पड़नेवाली लच्छियाँ हों इसके लिए गुंडीमें ८० या १०० या इससे भी अधिक तारोंकी लच्छियाँ बनाकर उनके बीचसे एक मजबूत सुतली निकाल देनी चाहिए और उसमें प्रत्येक लच्छीके बाद अंटी डाल दी जानी चाहिए।

(४) यह अच्छा होगा कि कपासकी जिस किस्मका उपयोग किया गया हो, उसका नाम बंडलके साथ लगी चिटपर लिख दिया जाये। इससे सूत संग्रहकर्त्ताको विभिन्न प्रान्तोंमें काममें लाई जानेवाली कपासकी किस्में जाननेका, तथा किस किस्मसे कितने अंकका सूत काता जाये, यह सलाह देनेका अवसर प्राप्त होगा।

बम्बई, तथा अन्य स्थानोंमें भी मिलोंकी बनी पूनियोंका उपयोग करनेकी प्रथा रही है। मिलोंकी पूनियोंसे काता हुआ सूत हमारे उद्देश्यकी दृष्टिसे बिलकुल बेकार होता है। उद्देश्य है, कपास सम्बन्धी सभी प्रक्रियाओंको जनताके बीच लोकप्रिय बनाना। मिलोंकी बनी पूनियों और मिलोंकी ओटी हुई रुईमें बहुत कम अन्तर है। यदि हम मिलोंकी बनी पूनियोंका उपयोग कर सकते हैं तो मिलोंके कते सूतका भी उपयोग कर सकते हैं।

हाथकी कताईके पीछे मुख्य विचार है, एक ही सरल कुटीर-उद्योग सुलभ करके लाखों लोगोंकी जेबोंमें पैसा डालना। अतः पूनियाँ हाथकी बनी होनी चाहिए। अटेरनके घेरेके प्रश्नका भी निर्णय हो जाना चाहिए। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि सभी अटेरनें एक नापकी होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो दिये गये सूतके परिमाणके आधारपर उसका अंक निकालना बहुत कठिन होगा। अनुभवसे ज्ञात हुआ है कि अटेरनका घेरा ४ फुटका होना उचित है। तब ३७५ तारोंकी ५०० गजकी एक लच्छी बनेगी। ऐसी चार लच्छियोंमें २,००० गज सूत होगा। यदि हमें वजन मालूम

हो तो ऐसी लच्छियोंका अंक निकाल लेना बेहद आसान होगा। तोलोंके वजनको इकन्नियों या अन्नियोंके रूपमें परिवर्तित कर दो और इन अन्नियोंका भाग तारोंकी संख्यामें दे दो। बस, अंक निकल आयेगा। यदि ३७५ तारोंकी एक लच्छीका वजन १५ अन्नियाँ हो तो अंक होगा ३७५/१५ = २५। अटेरनके आधारके सम्बन्धमें भी कई सुझाव दिये गये हैं। अनुभवसे ४ फुटका घेरा ही ठीक जान पड़ता है। ये अटेरनें आश्रमके चरखोंमें ही हत्थेके पास लगी रहती हैं। इसमें निःसन्देह सुभीता है। किन्तु अटेरनें तो बाँसकी खपच्चियोंसे भी सहजमें बनाई जा सकती हैं। आवश्यक लम्बाईकी चारसे लेकर छः तक बाँसकी ऐसी खपच्चियाँ जिनके बीचमें छेद हों, ले लें। अब आधारके लिए एक अन्य खपच्ची लें और उसके सिरोंको पतला करके उसमें दोनों ओर तीन-तीन खपच्चियोंको फँसा दें। उनको यथास्थान रखनेके लिए डोरेसे बाँध दें। इससे कामचलाऊ अटेरन बन जाता है। चरखेके साथ जो उपकरण होते हैं वे भी चरखेके समान ही सादे होते हैं। अन्तमें, यह याद रखना ठीक होगा कि सूतपर पानीकी बौछार मारनी चाहिए और फिर उसे अटेरनपर एक घंटे नमी दूर होनेतक बने रहने देना चाहिए। सूतपर इस प्रकार पानी डालनेसे सूतके बट पक्के हो जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-७-१९२४

२६३. पत्र : श्रीमती बी० के० विलासिनीको

साबरमती

३१ जुलाई, १९२४

प्रिय बहन,

आपके प्रश्नका उत्तर:

सत्यको कदापि न छोड़े। यह तभी सम्भव है जब जो-कुछ भी जीवित है[1] उससे प्रेम किया जाये और उसके प्रति हृदयमें संवेदना हो।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

श्रीमती बी० के० विलासिनी
हिल पैलेस
त्रिपुनितारा, कोचीन राज्य

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. यत्किंचित् जगत्यां जगत्।

२६४. तार : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

[३१ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

मेरे विचारसे जो क्षति हुई है उसे पूरा करना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है। हम अपेक्षाकृत बड़ी संस्थाओंको व्यक्तिगत सेवा देकर उनका हाथ बँटायें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००७) की फोटो-नकलसे।

२६५. सन्देश : 'वन्देमातरम्' को

[१ अगस्त, १९२४][2]

मैं चाहता हूँ कि 'वन्देमातरम्' के पाठक लोकमान्यकी पुण्यतिथिके अवसरपर उनके जीवनके बारेमें मनन करें। तब वे अनुभव करेंगे कि वे हमसे यह अपेक्षा करते थे कि हमारे अन्दर देशके लिए निःस्वार्थ भक्तिभाव हो। जबतक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जाता तबतक क्या वे नैष्ठिक नियमितताके साथ रोजाना सूत कातनेके रूपमें आधा घंटा भी शरीर-श्रम करनेका कष्ट उठायेंगे?

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-८-१९२४

१. यह चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके २९ जुलाईके तारके उत्तरमें भेजा गया था। श्री राजगोपालाचारीका तार गांधीजीको ३१ जुलाईको मिला था। वह इस प्रकार था: "बाढ़के कारण भयंकर बरबादी। बताइए कि हम कांग्रेस-कोषसे सहायता-कार्य करें या नहीं।" ऐसा ही एक तार गांधीजीने श्रीनिवास आयंगारके ३० जुलाईके तारके उत्तरमें भी भेजा था।

२. यह सन्देश लोकमान्य तिलककी पुण्य-तिथिपर अर्थात् १ अगस्त, १९२४को भेजा गया था।

२६६. पत्र : आसफ अलीको[1]

साबरमती
१ अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अपने एक पत्रमें आपने जो-कुछ लिखा है, कह नहीं सकता उसके पीछे आपका उतावलापन था या अविवेक। कुछ भी हो, वह था बिलकुल स्वाभाविक; क्योंकि आप अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंमें काम कर रहे थे और वह समय ऐसा था जब अगले क्षण क्या आन पड़ेगी, इसका कुछ पता नहीं था। आपकी स्थितिमें मैं होता तो शायद मैं भी वैसा ही करता और मेरे मनमें भी हर चीज और हर आदमीपर दोष मँढ़नेका विचार उठता। जो वक्तव्य अब जारी किये जा रहे हैं, मैं सोचता हूँ कि उनसे कुछ लाभ तो होगा लेकिन मैं चाहूँगा कि कांग्रेस अध्यक्षकी ओरसे कोई निश्चित और अन्तिम निर्णय होने तक ऐसे वक्तव्य जारी न किये जायें।

क्या इन मुकदमोंकी कार्रवाइयोंको रोकनेके लिए कुछ किया जा सकता है? कोई अपराध प्रज्ञेय[2] है या नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है? आखिरकार, जब सम्बन्धित पक्ष मुकदमा दायर नहीं कराना चाहता है तो पुलिसके लिए मुकदमा चलाकर उसमें सफलता पाना बहुत मुश्किल गुजरेगा। मैं आपसे सहमत हूँ कि अगर मुकदमेकी ये कार्रवाइयाँ जारी रहीं तो सच्ची बातें सामने नहीं आयेंगी; क्योंकि आपका यह कहना बहुत ठीक है कि उस हालतमें जिन लोगोंको सही जानकारी है वे हमारे पास आनेमें डरेंगे।

जो कागजात आपने माँगे थे, उन्हें लौटाया जा रहा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री आसफ अली
कूच-ए-चेलान
दिल्ली

मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९९५) से।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. आसफ अली (१८८८-१९५३); बैरिस्टर और राष्ट्रवादी मुस्लिम राजनीतिज्ञ; बादमें अमेरिकामें भारतके राजदूत।

२. कॉग्निजेबिल।

२६७. भाषण : शिक्षा परिषद्में[1]

अहमदाबाद
१ अगस्त, १९२४

भाइयो और बहनो,

मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि मैं जितनी तैयारी करना चाहता था उतनी नहीं कर सका। सच बात तो यह है कि मुझे यह साहस बिलकुल करना ही नहीं था। मेरे पास न तो इतना शरीर-बल है और न इतना समय ही है। परन्तु बहुत दबाव डालनेपर मुझे यह कहना पड़ा कि यदि परिषद् अगस्तके आरम्भमें की जाये तो मैं उसमें आ जाऊँगा। कुछ विचारके बाद मेरी समझमें आया कि उसमें हाजिर होनेके अलावा मुझे कुछ काम भी करने होंगे। मैं अपने विचारोंको लिख डालना चाहता था; परन्तु समय नहीं मिल सका। जितना विचार करना उचित था उतना विचार भी न कर सका। मुझे आशा है, आप इसके लिए मुझे माफ कर देंगे।

श्री किशोरलालभाईकी[2] माँगको पूरी करना मेरी शक्तिके बाहर है। शिक्षकगण परस्पर सखाभावसे रहें, यह स्थिति ही स्वराज्य है किन्तु यह स्वराज्य देना मेरे बसकी बात नहीं है। ऐसी भिक्षा तो ईश्वरसे ही माँगी जा सकती है। यदि ईश्वर इतना दे दे तो हमें मानो सब-कुछ मिल गया। ऐसी भिक्षा आपकी दृष्टिमें चाहे कुछ भी न हो, परन्तु मैं तो इसे देनेमें असमर्थ हूँ। मैं तो आपको कुछ सुझाव और ऐसे आँकड़े देना चाहता हूँ जिनसे आपको और मुझे कुछ प्रोत्साहन मिले।

भारतमें आज निराशा छाई हुई है। इसका एक कारण मैं भी हूँ। मैंने देशके समक्ष एक काल-सीमा रखी थी और कहा था कि हमें एक सालमें स्वराज्य ले लेना चाहिए। एक वर्ष बीत गया; और भी वर्ष बीत गये और मालूम यही होता है कि अभी स्वराज्य दूर है। कुछ लोगोंको तो वह १९२१ में जितना दूर दिखता था शायद उससे भी अधिक दूर दिखाई दे। परन्तु मैं यह नहीं मानता। मुझे तो स्वराज्य नजदीक आया हुआ दिखाई देता है। परन्तु इसके लिए मेरे जैसी अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। किन्तु वह देनेसे नहीं आ सकती। वह तो अनुभवसे ही मिलती है। यदि मैंने काल-मर्यादा न रखी होती और उसके अनुसार हिसाब न लगाया होता तो मैं समझता हूँ कि जितना काम हुआ है, उतना भी न हुआ होता।

मैं जो आँकड़े आपके सामने रखना चाहता हूँ, वे आपसे छिपे नहीं हैं। वे हमारा उत्साह कायम रखनेके लिए पर्याप्त हैं। असहयोगके किसी भी अंगके सम्बन्धमें

१. गुजरातकी राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षकोंकी यह परिषद् गांधीजीकी अध्यक्षतामें हुई थी। उद्देश्य था गुजरातमें राष्ट्रीय शिक्षाका संगठन करना, अच्छे शिक्षक तैयार करना और शिक्षाके कार्यमें संलग्न लोगोंमें भ्रातृ-भाव और सहयोगकी भावना उत्पन्न करना।

२. किशोरलाल मशरूवाला।

गुजरातने जो काम किया है वह लज्जाके योग्य तो नहीं है, उससे गुजरात ही क्यों, पूरे देशको भी लज्जित नहीं होना पड़ेगा। हम गणितके मुताबिक अपने हिस्सेका पूरा काम नहीं कर पाये, यह बात सच है। परन्तु यदि सभीने अपना-अपना काम यथाशक्ति किया हो और मैं जानता हूँ कि उन्होंने वैसा किया है तो कोई कारण नहीं कि हमें सिर नीचा करना पड़े। मैं ऐसा क्यों कहता हूँ इसका कारण मैं आपको समझाता हूँ।

मैंने अपने साथियोंको उलाहना दिया है कि उन्होंने जितना किया उतना ही क्यों किया। कारण यह है कि ऐसा उलाहना देना मेरा धर्म है। जो सेवा करना चाहता है और जिसके सिरपर सेवाके कारण सरदारीकी जिम्मेदारी आ पड़ी है उसके लिए तो ज्यादासे-ज्यादा कामकी माँग करना लाजिमी है। उलाहना देना उसका धर्म है। परन्तु मैं जब निष्पक्ष रूपसे विचार करने लगता हूँ तब मैं नहीं समझता कि किसीने बेईमानी की है।

यह तो हुआ उजला पक्ष। इसके समर्थनमें मैंने आँकड़े प्राप्त किये हैं। आपको वे आँकड़े मालूम हैं। ये रजिस्ट्रारने तैयार किये हैं और आप शिक्षकोंने ही संकलित किये हैं। मैं इन्हींसे स्वयं उत्साहित होना चाहता हूँ और आपको उत्साहित करना चाहता हूँ। हमारे पास राष्ट्रीय शालाओंमें १०,००० विद्यार्थी हैं, इनमें नगर-पालिकाओंकी तीनों शालाओंके विद्यार्थी शामिल नहीं हैं। हमने उनपर साढ़े तीन लाख रुपये खर्च किये हैं। इन विद्यार्थियोंमें ५०० लड़कियाँ हैं। यह संख्या कम है, परन्तु हम इतनी लड़कियोंको शिक्षा दे रहे हैं। अहमदाबाद, नडियाद और सूरतकी नगर-पालिकाओंने, नगरपालिका क्षेत्रमें असहयोगका तत्त्व प्रचलित करके, अपनी शालाओंको राष्ट्रीय बना दिया है। उन शालाओंके आँकड़े जोड़ें तो विद्यार्थियोंकी संख्या २०,००० हो जाती है। इनमें से १०,००० विद्यार्थी अहमदाबादके हैं। हमारे पास ८०० शिक्षक हैं। इनकी आजीविकाका प्रबन्ध भी इसी साढ़े तीन लाखमें से किया गया है। हमारे दो महाविद्यालय चल रहे हैं और एक पुरातत्त्व मन्दिर भी चल रहा है। इसके सम्बन्धमें मैंने सुना है कि ऐसा काम भारतमें किसी दूसरी जगह नहीं किया जा रहा है। तीन सजीव संस्थाएँ हमें पोषण दे रही हैं और हमसे पोषण ले रही हैं। ये संस्थाएँ हैं दक्षिणामूर्ति विद्यार्थीभवन,[1] चरोतर शिक्षा-मण्डल[2] और भड़ौंच शिक्षा-मण्डल।[3] इन संस्थाओंके संस्थापक और संचालक इस बातको मानेंगे कि जिस प्रकार इन संस्थाओंने असहयोग करके आन्दोलनको गौरवान्वित किया है उसी प्रकार असहयोगसे बहुत-कुछ पोषण भी लिया है।

इसके अलावा हमने बहुत-सी पाठ्य पुस्तकें भी लिखी हैं। मैंने इनमें से बहुत-सी पुस्तकें जेलमें देखी थीं। मैं दक्षिणामूर्ति और चरोतर शिक्षा-मण्डलकी पुस्तकें भी सरसरी तौरपर देख चुका हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मैंने उनको ध्यानपूर्वक पढ़ा है। परन्तु मुझमें बहुत-सी पुस्तकोंको देखते रहनेसे इतनी शक्ति आ गई है कि मुझे पुस्तकको सरसरी तौरपर देख लेनेसे ही यह मालूम हो जाता है कि इसमें क्या लिखा है, कैसी शैलीमें लिखा है और लेखकका आशय क्या है। इन पुस्तकोंके लेखकों-

१, २ व ३. क्रमशः काठियावाड़, आनन्द और दक्षिण गुजरातमें।

और इन संस्थाओंको धन्यवाद दिया जाना चाहिए। विद्यापीठकी[1] पुस्तकें इससे अलग हैं। यदि हम गुजरातका आधुनिक अर्थात् पिछले ५० वर्षोंका पूरा इतिहास देख जायें तो हमें मालूम होगा कि ऐसा काम हुआ ही नहीं है। अबतक जो काम किया गया है, वह सब सरकारने किया। उसका श्रेय हम नहीं ले सकते। इसमें लोग तो हमारे ही थे; परन्तु योजना सरकारकी और सरकार द्वारा नियुक्त लोगोंकी थी। यह योजना मौजूदा शासन-प्रणालीकी पोषक थी और इस विचारको प्रधान रखकर बनाई गई थी कि इस प्रणालीको पोषण देनेके हेतु शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है। यह काम जब सरकारने शुरू किया था तब उसने पहले वर्षमें कितनी पुस्तकें प्रकाशित की थी, हम इसका हिसाब बैठाएँ तो भी हम आगे बढ़े हुए हैं। परन्तु हम किसीसे स्पर्धा नहीं करना चाहते।

गुजरात सबसे पिछड़ा हुआ प्रान्त था और वह आज भी पिछड़ा हुआ है। गुजराती लोग निरक्षर हैं, सिर्फ व्यापार करना ही जानते हैं और व्यापारसे जितना धन गुजरातमें लाया जा सकता है उतना लानेकी बात ही उन्होंने सोची है। असहयोगसे पहले समाजके लिए साहित्य तैयार करनेकी भावना व्यापक न थी। इस दिशामें सबसे पहले काम करनेवाला है सस्तु साहित्य वर्द्धक कार्यालय — अर्थात् स्वामी अखण्डानन्दजी। उन्होंने गुजरातमें बहुत सस्ती पुस्तकोंका प्रचार किया। परन्तु असहयोगकी हलचलने तो इसे भी ऐसा दबा दिया है कि हम अखण्डानन्दजीके पुरुता कामको भूल जा सकते हैं, यद्यपि वह भूलने लायक नहीं है।

मैंने पाठ्य पुस्तकोंके विषयमें जरूरतसे ज्यादा प्रशंसा की; मैं अब चेतावनी भी देता हूँ। ऐसी पाठ्य पुस्तकोंका एकसा प्रवाह गुजरातमें बहता रहे, यह मुझे पसन्द नहीं है। जब मुझपर यरवदा जेलमें इन पाठ्य पुस्तकोंकी वर्षा होने लगी तब मैं चौंक पड़ा। छपाई आदि सभीकी बढिया थी; मैं एकको देखकर तो मुग्ध ही हो गया था। परन्तु यह प्रवृत्ति ऐसी नहीं है जो गुजरातको शोभा दे सके। गुजरात भिखारी नहीं है। गुजरातमें अन्य प्रान्तोंके मुकाबलेमें रुपया अधिक है। परन्तु मेरा खयाल है कि गुजरात इतना भार नहीं उठा सकता। वह पुस्तकोंके इतने बड़े ढेरको हजम भी नहीं कर सकता और इतनी पुस्तकोंको खरीदना उसके सामर्थ्यके बाहर है। यदि ये पुस्तकें अहमदाबाद, सूरत, भड़ौंच और नडियाद-जैसे शहरोंके लिए ही लिखी जायें तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है। फिर शहरवासियोंका दिमाग भी इतना भार न उठा सकेगा — जेबें भले ही उठा सकें। देहाती माता-पिता तो उन्हें किसी प्रकार नहीं खरीद सकते। हम जो पुस्तकें प्रकाशित करके लोगोंके सामने रखें वे ऐसी होनी चाहिए जिन्हें गरीबसे-गरीब बालक खरीद सके। यदि मेरा बस चले तो मैं एक, दो और चार पैसे मूल्यकी पुस्तकें देना चाहूँगा।

मुझे बताया गया है कि नवजीवन प्रकाशन मन्दिरने भी बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। लोग शायद यह नहीं जानते कि उसका मालिक मैं नहीं, स्वामी आनन्दानन्द हैं। वे तो पुस्तकें छापकर बादमें मुझे खबर दे देते हैं कि उन्होंने ऐसा किया है।

१. अहमदाबाद-स्थित गुजरात विद्यापीठ।

मेरे पास शिकायतें आई हैं कि आनन्दानन्दने गुजरातको ठगा है और 'नवजीवन' से ५०,००० रुपयेकी भेंट दिलवाई है। वे स्वयं कितने रुपये खा गये, यह क्या आप जानते हैं? ऐसे लोगोंको मैं यही जवाब देता हूँ कि मेरे पास इस तरह पैसा खा जानेवाले साथी नहीं हैं और यदि हैं तो मुझे नहीं मालूम। इस संस्थामें कुछ लोग तो वेतन ही नहीं लेते और कुछ अपनी गुजरके लायक लेते हैं। परन्तु यदि सब लोग उचित वेतन लेते तो उसका जोड़ ५०,००० रुपयेसे अधिक होता।

यह बात ठीक है कि यदि मैं बाहर होता तो इतनी पुस्तकें नवजीवन प्रकाशन मन्दिरसे प्रकाशित न होने देता। मैं तो एक पुस्तक लोगोंके सामने रखूँ तो पहले हजार बार विचार करूँ। मैंने एक मामूली-सी पुस्तक 'बालपोथी'[1] लिखी है। उसे मैं केवल पाँच मिनटमें पढ़ सकता हूँ और तनिक अच्छी तरह पढ़ूँ तो वह १० मिनटमें पूरी हो सकती है। उसपर कितनी ही आलोचनाएँ आई हैं। उन्हें मैं अभीतक पढ़ नहीं पाया हूँ। मैं जानता हूँ कि बहुत-सी आलोचनाएँ ऐसी हैं जिनसे मुझे प्रसन्नता नहीं हो सकती। मेरी स्तुति और निन्दाका तो पार नहीं। अतः उसका मुझपर कुछ असर नहीं होता। फिर भी इस 'बालपोथी'के मूलमें जो विचार है वह बहुत बड़ा है। शिक्षकको चाहिए कि वह मौखिक शिक्षा दे। शिक्षा पुस्तकों और पाठ्य पुस्तकों द्वारा नहीं दी जा सकती। जिन देशोंमें ढेरकी-ढेर पाठ्य पुस्तकें होती हैं, उन देशोंके बालकोंके दिमागोंमें जाने क्या-क्या कूड़ा भर जाता है। उनके दिमागोंमें शैतान घुस जाता है और उनकी विचारशक्ति समाप्त हो जाती है। मैंने अपना यह मत असंख्य बालकोंके अनुभवसे और अनेक शिक्षकोंसे बातचीत करके उसके आधारपर बनाया है। मैं दक्षिण आफ्रिकामें आँखें खोलकर घूमता था। वहाँ जब आग भड़की तब भी मैं वहाँ घूमता रहा और मुझे यही अनुभव हुआ। आप दो शालाओंकी तुलना करें। एकमें शिक्षकोंके पास पाठ्य पुस्तकें हैं और दूसरीमें नहीं। दोनोंके शिक्षकोंमें सत्त्व तो है। इनमें जिनके पास पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं वे जितना ज्ञान बालकोंको दे सकते हैं उतना ज्ञान वे शिक्षक नहीं दे सकते जिनके पास पाठ्य पुस्तकें हैं। मैं बालकोंके हाथोंमें पाठ्य पुस्तकें नहीं देना चाहता। शिक्षक स्वयं उन्हें पढ़ना चाहें तो खुशीसे पढ़ें। हम शिक्षकोंके लिए जितनी पुस्तकें लिख सकते हों लिखें। यदि हम बालकोंके लिए पुस्तकें लिखेंगे तो शिक्षक यन्त्रवत् बन जायेंगे। इससे उनकी स्वतन्त्र सोचकी बुद्धि और मौलिकता नष्ट हो जायेगी। मैं शिक्षकोंकी गतिको रोकना नहीं चाहता। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आप मेरे इस दृष्टिकोणको भी जान लें। पाठ्य पुस्तकोंके लेखक अनुभवी हैं। लोगोंको जबतक उनकी जरूरत है तबतक वे उन्हें खुशीसे लें। परन्तु मैं किस दृष्टिसे ऐसा कहता हूँ, इसे आप समझ लें। आप पूछेंगे कि क्या आपने शिक्षकका काम किया है? मेरे विचारके पीछे मेरा पर्याप्त अनुभव है। मैंने शिक्षाके विषयपर काफी सोचा है। मैंने जो दृष्टिकोण रखा है, आप उसके अनुसार सोचकर देखें और अपनी गति कुछ मन्द करें। मेरा मतलब यह है कि यदि गुजरातको लाखों बालकोंके लिए पुस्तकें तैयार करनी पड़ें तो गुजरातके

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १३२-३८।

पास इतने पैसे नहीं हैं और इस कारण वह परेशान हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि बालकोंके दिमागपर पुस्तकोंका बोझ नहीं डाला जाना चाहिए।

यदि मनुष्य अपने मनमें नया विचार आते ही उसपर तुरन्त निछावर हो जाये और उसे संसारके सामने रख दे तो इसमें उसकी और संसारकी दोनोंकी हानि है। परन्तु यदि उस विचारको सँजोकर रखे, उसे प्रयोगमें लाकर देखे, उसका अपने-पर और छात्रोंपर प्रयोग करे, उसकी जाँच-पड़ताल करके भी कुछ दिन उसे अपने पास छोड़ रखे और फिर भी रुका रहे तो इसमें ससारकी कोई हानि नही होगी। इसके पक्षमें मेरे पास बड़े-बड़े लोगोकी मिसाले हैं। विचारको रोक रखनेसे न तो उनकी हानि हुई है और न संसारकी। उन्होंने बादमें अपने विचार बदले भी हैं और नये अनुभवमें अपने पुराने विचारोंको उन्होंने भुलाया भी है। इसका एक उदाहरण है उतावले एन्ड्रयूज साहब — मेरे परम मित्र — मेरे साथ उठने-बैठने और खाने-पीनेवाले। दस साल पहले वे विचार आते ही झट लिख डालते थे। इन्हें यह लत ही पड़ गई थी। इनके दस वरस पहले जो विचार थे, वे आज नहीं हैं। वे तो धार्मिक मनुष्य हैं, हम भी धार्मिक मनुष्य हैं — हम जिन विचारोंको प्रकट किये बिना ही साथ लेकर मर जायेंगे वे हमारी आत्माके साथ जायेंगे और किसीन-किसी दिन संसारको जरूर मिलेंगे।

विद्यापीठ और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ किन स्थितियोंमें स्थापित की गई थीं, यदि हम इसपर विचार करें तो अनेक गुत्थियाँ सुलझ जायेंगी। आज हम शिक्षापर शिक्षककी दृष्टिसे विचार कर रहे हैं। शिक्षकका काम शिक्षा देना है और इस दृष्टिसे हमें अच्छीसे-अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। परन्तु प्रश्न इतना सहल नहीं है। हम महज शिक्षा देनेके लिए इस विद्यापीठको और इन शालाओंको नही चला रहे हैं। हमने असहयोगके सिलसिलेमें विद्यापीठकी स्थापना की थी। इसका अर्थ यह है कि जो शिक्षक, शिष्य और माता-पिता स्वराज्यके काफिलेमें शामिल हुए हैं वे स्वराज्यके सेवक हैं और असहयोगी हैं। परन्तु मैं इस समय यहाँ असहयोगका चमत्कार बतानेके लिए नहीं आया हूँ बल्कि आपको राष्ट्रीय शिक्षककी हैसियतसे आपका धर्म बताना चाहता हूँ। हम जिस दिन स्वराज्यके काफिलेमें शामिल हुए हमने उसी दिन यह बात मान ली थी कि असहयोगका सिद्धान्त बिलकुल ठीक है।

यदि इस सिद्धान्तमें भूल होगी तो उसे कांग्रेस सुधारेगी। हमें फिलहाल यह मानकर ही चलना होगा कि गाड़ी ठीक-ठीक चल रही है। हम यहाँ यह तात्त्विक निर्णय करनेके लिए नही बैठे है कि असहयोग ठीक है या नही। मुझे और आपको दोनोंको ही यह मान्य है कि हमारे विद्यापीठ और शालाओंका अस्तित्व स्वराज्यके सिलसिलेमें है। शिक्षाकी खातिर शिक्षापर विचार स्वराज्य मिलनेके बाद करेंगे। हमें आज तो पूर्वोक्त संकुचित दृष्टिसे ही विचार करना है।

हमें अपनी प्राथमिक शालाओं, विनय मन्दिरों, महाविद्यालयों और पुरातत्त्व मन्दिरों-के संचालनमें भी यही दृष्टि सामने रखनी चाहिए। हमें स्वराज्य और असहयोगके सिद्धान्तका उल्लंघन नही करना चाहिए। हमें स्वराज्य प्राप्त करना है। हमने इसके साधन सत्य और अहिंसा निश्चित किये हैं। कांग्रेसके संकल्पमें शान्तिमय और न्यायो-

चित शब्दोंका चाहे जो अर्थ होता हो, मेरे नजदीक तो इनका एक ही अर्थ है— सत्य और अहिंसा। और मैं मानता हूँ कि इनका अर्थ गुजरात भी यही करता है। इसके अलावा हमने पंचविध बहिष्कार भी स्वीकार किया है। यदि हम इसे छोड़ दें तो हमारी प्रतिज्ञाका पालन नहीं होता। यदि बालकोंके सदाचारकी जिम्मेदारी हमारी है तो हम बहिष्कारको छोड़कर उन्हें गलत पदार्थपाठ ही देंगे। जिन्हें इनपर श्रद्धा न हो वे इन संस्थाओंसे हट जायें। उदरपोषण तो सबके पीछे लगा हुआ है; परन्तु यह हमारा प्रधान हेतु नहीं है। जिन्हें असहयोगकी तमाम शर्तें मंजूर न हों उन्हें इनसे हट जाना चाहिए। केवल उदरपोषणको दृष्टिमें रखकर राष्ट्रीय शालाओंमें प्रवेश करना न तो शिक्षकोंको शोभा देता है और न विद्यार्थियोंको।

हमारी लड़ाईके दो अंग हैं। इनमें से एक ध्वंसात्मक है और उस अंगको हम पूरा कर चुके हैं। यदि हम अब भी यही काम करते रहे तो हमारा यह काम किसी अनाड़ी किसानके कामकी तरह होगा। किसान बीजकी बुआई करनेके पहले घास और कंकर-पत्थर निकालकर जमीनको जोतता और समतल करता है। यदि वह इतना कर लेनेपर भी जमीनको उलटता-पुलटता ही रहे तो वह व्यर्थका कालक्षेप ही होगा। उसी प्रकार परिणाम देखे बिना दूसरे खेतमें प्रयोग करे तो यह भी ठीक नहीं है। इसी तरह यदि एक छोड़कर चला जाये और उसकी जगह दूसरा आ बैठे तो यह भी ठीक नहीं है। उसे तो वहाँ स्थायी रहकर काम करना चाहिए। यदि वह इस कामको करता हुआ धीरज रखे तो उसका खेत खुद-बखुद तैयार हो जायेगा। हमारा ध्वंसात्मक काम पूरा हो चुका है। अब रचनात्मक—स्थायी—काम करना बाकी रहा है। यह रचनात्मक काम बहिष्कारका पोषक है। हम जिस कामको कर रहे हैं यदि संसार उसकी स्तुति करे और उसे अपना ले तो दूसरी शालाएँ खुद-बखुद बन्द हो जायेंगी। सब लोग इस बातको मानते हैं कि दूसरी शालाओंमें आत्मा नहीं है और कहते हैं कि इनके स्थानमें कुछ दूसरी तरहकी चीज रखी जानी चाहिए। हमें यदि अपने काममें अटल श्रद्धा हो तो फिर उसकी सिद्धिमें चाहे एक साल लगे, चाहे बीस साल, हमें तो इसीमें लगे रहना है।

हमारा स्थायी काम यह है कि हम शालाओंकी स्थापना करें। शिक्षक पंचायतों और अदालतोंको भूल जायें। हमें इन सबका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम तो बस उतना ही विचार करें जितनी हमपर जिम्मेवारी है; बस हम इतनेसे ही संसारको जीत लेंगे। हमारी दूसरी जिम्मेवारी है शालाओंकी प्रतिष्ठा बढ़ानेकी। हमने अबतक विस्तार तो बहुत किया। अब इस विस्तारमें से चुनाव करनेकी जरूरत है। आप लोगोंमें जो किसान होंगे वे इस बातको समझ जायेंगे। किसान बोये हुए पौधोंमें से खराब, पीले और बेजान पौधोंको उखाड़ फेंकता है। गेहूँ पकनेपर अच्छे-अच्छा बीज अगले सालके लिए रख लेता है और हर साल इसी तरह करते हुए बढ़िया फसल तैयार करता है। हमारा विस्तार-कार्य पूरा हो चुका। अब हमें शक्ति और गुण बढ़ानेका काम हाथमें लेना चाहिए।

दूसरा काम है चरखा-प्रचार और अस्पृश्यता निवारणका, और तीसरा है हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यका। हाँ, गुजरातमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या उतनी जटिल नहीं है, परन्तु

कुछ तो जटिल जरूर है। यदि हम बालकोंमें यह भावना फैलायें कि हिन्दू और मुसलमानोंको सगे भाइयोंकी तरह रहना चाहिए तो गुजरातमें भी जो कटुता है वह दूर हो जायेगी। यह सच है कि हमने गुजरातमें परस्पर एक-दूसरेके सिर नहीं तोड़े, फिर भी हममें सखा-भाव नहीं है। इसके लिए शालाएँ जिम्मेवार हैं; परन्तु बहुत नहीं। अन्त्यज बालकोंको प्रविष्ट करनेकी जिम्मेवारी तो सभी शालाओंपर है ही। विद्यापीठने अपने अस्तित्वको खतरेमें डालकर भी अन्त्यज बालकोंको लेनेका नियम निश्चित किया है। परन्तु शिक्षकोंने क्या किया है? बच्चोंके अभिभावकोंने क्या किया है? वे तो डरते हैं। वे अन्त्यजोंके बिना शालाएँ चलानेके लिए तैयार हैं। उनका भाव यह है कि यदि अन्त्यज दूर रखे जा सकें तो अच्छा रहे। इसीसे शालाओंमें अन्त्यज बालकोंकी संख्या बहुत नहीं है। सौभाग्यसे श्री इन्दुलाल, मामा तथा दूसरे सेवक हमारे पास हैं जिनकी बदौलत यहाँ १५ अन्त्यज शालाएँ हैं। ये तो हमारी बदनामीके चिह्न हैं, ये हमारी कार्य-शक्ति या उदारताके चिह्न नहीं हैं। पृथक अन्त्यज-शालाओंकी जरूरत नहीं हो सकती है, जहाँ उनके प्रति तिरस्कार हो। नहीं तो अन्त्यज बालक सामान्य शालाओंमें ही क्यों न जायें? हमें चाहिए कि हम प्रेमपूर्वक जबरदस्ती करके अन्त्यज बालकोंको ले जायें। हम पहले उन्हें पढ़ायें, नहलायें, खिलायें-पिलायें और तुतलाते हों तो उनके उच्चारण सुधारें। परन्तु हमने ऐसा नहीं किया है। यह छोटा नहीं, बड़ा गुनाह है।

यदि हम अस्पृश्यता-निवारणको कांग्रेसके कार्यक्रमका अंग मानते हों तो हमें मानना पड़ेगा कि हम जबतक अन्त्यजोंको दूर रखेंगे और उन्हें गले लगानेके लिए तैयार न होंगे तबतक भारतको स्वराज्य मिलना असम्भव है। सम्भव है कि अंग्रेजोंके अखबार या वक्ता मेरे इस कथनका दुरुपयोग करें, परन्तु मुझे इसकी फिक्र नहीं है। हमें स्वराज्य आत्मशुद्धिके बलपर ही लेना है। इसीलिए मैं यह बात कहता ही रहूँगा।

मुझसे कहा जाता है कि शिक्षक लोग इस्तीफे दे देंगे और लड़के चले जायेंगे। इससे क्या होगा? त्रेलगांवके कार्यकर्ताओं और जमनालालजीने[1] मुझे खबर दी है कि लोग जगह-जगह इस्तीफे दे रहे हैं। कुछ जगह तो इतने सदस्य भी नहीं बच रहे हैं जिनसे समितिका काम चल सके। मुझे यह बात सुनकर प्रसन्नता हुई है। यदि मेरे पास एक करोड़ रुपये हों तो मैं उनको पत्थरपर बजाकर परखूँगा। और यदि कोई ठीक न बजे तो मैं उसका क्या करूँगा? उसको तो मैं साबरमतीमें डाल दूंगा। परन्तु यदि उन एक करोड़ रुपयोंमें एक ही खरा हो और मुझसे यह कहा जाये कि उसको अवकाश निकालकर खोज लेना तो वह रुपया मुझे न जाने किस दिन हाथ लगेगा? यदि मुझे अपने बाल-बच्चोंके लिए आटा लाना हो तो उसका उपयोग तत्काल कैसे हो सकता है? इसलिए मैं तो उस रुपयेको आज ही खोजना और दूसरे खोटे रुपयोंको आज ही त्याग देना चाहता हूँ। मैं इन इस्तीफोंके विषयमें इसीलिए निश्चित हूँ। ये खोटे रुपये जाते हैं तो चले जायें। हमारे शिक्षकोंको चाहिए कि वे निर्भय बनें, सत्यपर अडिग रहें और कहें कि जिस शालामें अन्त्यज बालक न आ सकते

१. जमनालाल बजाज।

हों वह राष्ट्रीय नहीं, स्वराजी नहीं, असहयोगी नहीं है। मैं तो स्वराज्यका जौहरी हूँ। जो शाला किसी मसरफ की होगी मैं उसीकी कीमत आकूँगा। हमें दृढ़तासे यह अटल निश्चय करके जाना चाहिए कि यदि शालामें अन्त्यज बालकोंको दाखिल होनेसे रोका जायेगा और माँ-बाप परोक्ष रूपसे अन्त्यज बालकोंका वहाँ भरती होना रोकना चाहेंगे तो हम उस शालाको त्याग देंगे। हम अन्त्यजोंके मुहल्लेमें जाकर रहेंगे और उनके लड़कोंको पढ़ायेंगे। यदि शहरके लड़के वहाँ आयें तो ठीक, नहीं तो हमारा इतना भार कम हुआ और पैसेकी इतनी जोखिम कम हुई। आज हमारे पास रुपया नहीं है। लोग हमें रुपया नहीं देते। अन्त्यजोंकी सेवाका काम लोगोंको पसन्द नहीं। यह काम अभी लोकप्रिय नहीं है। इससे लोग इसके लिए धन नहीं देते, यह माननेमें क्या बुराई है? फिर भी हमें तो यही काम करते जाना है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि लोग गलत रास्ते जा रहे हैं, उन्हें सीधे रास्तेपर आना ही होगा और जब वे उसपर आयेंगे तब हम उन्हें हरी झंडी दिखानेके लिए तैयार हैं। यदि हम किसी पाठशालामें असहयोगके स्थायी अंगोंको पोषित न कर सकें और फिर भी यह मानें कि वह राष्ट्रीय शाला है तो हम पापके भागी होंगे।

क्या मैं पागल हो गया हूँ? यदि हम इस बातको मानते हों कि सूतके धागेसे स्वराज्य मिलेगा तो हमें ऐसा करके दिखाना चाहिए। मेरे नाम दो पत्र आये हैं। उनमें लिखा है:

> आपकी तो बुद्धि मारी गई है; आप पहले तो चरखेकी बात कुछ मर्यादा रखकर करते थे किन्तु अब तो आप उसको भी छोड़ बैठे हैं . . .।

दुनिया मुझे मूर्ख कहे, पागल कहे, चाहे गालियाँ दे किन्तु मैं तो यही बात कहता रहूँगा। यदि दूसरी बात मुझे सूझती ही नहीं तो मैं क्या करूँ? मैं तो महाविद्यालयके स्नातकको भी यदि वह चरखेकी परीक्षामें पास न हो तो फेल कर दूँगा और प्रमाणपत्र नहीं दूँगा। यह आक्षेप किया जाता है कि यह तो जबरदस्ती है। अच्छा, जबरदस्तीके मानी क्या हैं? हमें अंग्रेजी, गुजराती और संस्कृत पढ़नी पड़ेगी, क्या ऐसे नियम रखना जबरदस्ती नहीं है? हम इसी तरह यह कहते हैं कि कातना सीखना भी लाजिमी है। यदि हमारा उसपर विश्वास न हो तो बात दूसरी है। हम विद्यार्थियोंसे यह कहें कि यदि वे सूत नहीं कातेंगे तो विद्यालयमें नहीं रह सकेंगे, इसमें क्या बुराई है? यदि कोई व्यक्ति फोड़ेको छूते ही चिल्लाये तो क्या उसे हाथ ही न लगाया जाये? वह उसे फोड़ देनेके बाद तो खुश ही होगा। यह जबरदस्ती नहीं, सुव्यवस्था है। हमने जिस बातको जरूरी माना है हमें चाहिए कि उसे निःसंकोच विद्यार्थियोंके सामने रखें। जिन बालकों और अभिभावकोंको यह कुबूल न हो, वे न आयें। यदि प्राथमिक शालाएँ, विनय मन्दिर और महाविद्यालय स्वराज्यशालाएँ हों तो उनमें [कताई-सम्बन्धी] यह नियम रहना ही चाहिए। हमारे लिए दूसरी बातपर विचार करना अप्रासंगिक है। जिनके विचार बदल गये हों वे इस्तीफा दे सकते हैं। जबतक कांग्रेसका प्रस्ताव कायम है तबतक उसमें ऐसे आदमीके लिए स्थान नहीं है।

हमें इन दोनों शर्तोंको छिपाकर नहीं रखना चाहिए। माता-पितासे डर कैसा? यदि उन्हें यह बात पसन्द न हो तो वे अपने बच्चोंको सरकारी शालामें भेज देंगे, यही न? फिर सरकारी शालाओं और हमारी राष्ट्रीय शालाओंमें भेद क्या रहा? मैंने स्वयं यह बात कही थी कि हमारी और सरकारी शालाओंमें भेद इतना ही है कि हमारी शालाओंमें स्वतन्त्रताका वातावरण है। कोई भी पूछ सकता है कि क्या इतना काफी नहीं है? हाँ, काफी है; परन्तु मैं चरखे और अन्त्यजोंको तो कभी भूला नहीं हूँ। मैंने स्वप्नमें भी यह खयाल नहीं किया है कि स्वतन्त्रताका अर्थ स्वच्छन्दता है। बालक खुशीसे शिक्षकोंके सिरपर चढ़ें, उन्हें गालियाँ दें और उनसे अशिष्टता पूर्वक बोलें, परन्तु वे उनका कहना जरूर मानें। जो बालक अन्त्यजकी गर्दनपर बैठता है वह स्वतन्त्रताको क्या जाने? उसे स्वतन्त्रतासे अनुराग भी कैसे होगा? बारडोलीके जो सवर्ण दुबला जातिके लोगोंको सताते हैं वे जुल्म ढाना तो जानते हैं; किन्तु वे स्वराज्यको क्या समझें? शिक्षकोंकी तो यह प्रतिज्ञा है कि वे हर प्रकारके जुल्मको रोकेंगे। मैं यह नियम बनाना चाहूँगा कि प्रत्येक परीक्षाके अवसरपर हर विद्यार्थी अमुक मात्रामें अपना काता हुआ सूत अवश्य दे। फिर मैं थोड़े ही दिनोंमें दिखा सकूँगा कि हरएक राष्ट्रीय शाला स्वावलम्वी बन सकती है। मैं यह बता सकूँगा कि मैंने हिन्दुस्तानके सामने जो सिद्धान्त रखे हैं वे सच्चे हैं।

मैं यह दिखा सकता हूँ कि जो सिद्धान्त मैं देशके सामने रख रहा हूँ वे ठोस हैं। यदि हम अपनी शालाओंको राष्ट्रीय बनाये रखना चाहते हैं तो हमें ये दोनों काम करने ही चाहिए। यदि शिक्षक कातना, धुनना और कपासकी परख करना न जानता हो तो वह इसे जरूर सीख ले। वह अपनी फुरसतका सारा वक्त इसीके लिए दे। यदि शिक्षक खुद ही यह सब न जानता हो तो वह बालकोंको क्या सिखा-येगा? कुछ शिक्षक शायद यह कहें कि वे तो सिर्फ भाषा-ज्ञान ही देंगे? हम कातने, बुनने और धुनने आदिकी कला सिखानेके लिए दूसरोंको रख लें। इसपर मैं कहूँगा कि जिस प्रकार हममें खानेकी शक्ति है, और कपड़े पहननेका ज्ञान है उसी प्रकार हमें कातना आदि भी जरूर आना चाहिए। ऐसा होनेपर ही बालकोंको पदार्थ-पाठ दिया जा सकता है।

अबतक सब रुपया महाविद्यालय, विनय मन्दिर और अन्त्यज शालाओंके निमित्त ही खर्च किया गया है। विद्यापीठने प्राथमिक शालाओंपर जोर नहीं दिया है। यदि मेरे प्रतिपादित सिद्धान्त जीवित रखे जाने है तो हमें विद्यापीठको खादी-शाला बनाना होगा। असहयोग आन्दोलन सार्वजनिक है। वह थोड़ेसे लोगोंके लिए नहीं है। हम तो भारतके करोड़ों नर-कंकालोंको जगाना और उनपर थोड़ा मांस चढ़ाना चाहते हैं। हमें तो खाना-दाना मिल रहा है, इससे हमारे बदनपर चरबी चढ़ी हुई है और हमको लगता है कि हम ठीक दिखाई देते हैं। परन्तु हिन्दुस्तानमें कितने नर-कंकाल हैं जिनपर चमड़ीके सिवा दूसरा कोई आच्छादन नहीं। मैं इन्हें देखकर रोया हूँ। यदि आप भी इन्हें देखें तो रोये बिना न रहें और कह उठें 'सचमुच लोगोकी ऐसी हालत है?'

कंकाल कैसा होता है, इसे बम्बईके निवासी क्या जानें? हमारा काम जनताको जाग्रत करना है। यदि अखबार बन्द हो जायें तो इससे कुछ नहीं बिगड़ता। जनता अखबार नहीं पढ़ती। वह तो आपको और मुझको पढ़ती है। आप अपनी दो आँखें उसपर लगा दें; बस वह उन्हींको पढेगी। आप इसे वेदवाक्य समझें। यदि आपकी आँखोंमें कुछ होगा तो लोग उसे समझेंगे और अखबारको हँसकर एक तरफ रख देंगे।

यदि हम सर्वसाधारणको शिक्षित करना चाहते हैं तो हम महाविद्यालयको महत्त्वपूर्ण मानते रहें; परन्तु आखिर हमें उसे गंगोत्रीका ही रूप देना है। अन्तमें उसके विद्यार्थी तैयार होकर देहातमें जाकर बैठें। आप उनको इसी खयालसे तैयार करें। यदि विद्यार्थी थोड़े भी आयें तो इसकी चिन्ता नहीं।

परन्तु मैं तो प्राथमिक शालाओंपर जोर देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि विद्यापीठ प्राथमिक शालाओंपर ज्यादा ध्यान दे और उनकी विशेष जिम्मेवारी ले। प्राथमिक शालाएँ किस प्रकार चलानी चाहिए, यह विचारणीय है। मैं इस विषयमें आपको अपना विचार बता रहा हूँ। सरकारी शालाओंका अनुकरण करना मूर्खता है। मैंने दो साल पहले 'यंग इंडिया'में कुछ आँकड़े प्रकाशित किये थे।[1] उनमें बताया गया था कि पंजाबमें ५० वर्ष पहले जितनी प्राथमिक शालाएँ थीं आज उनसे कम हैं। ब्रह्मदेशमें भी जगह-जगहपर शालाएँ थीं। तमाम बच्चे लिखना-पढ़ना और हिसाब करना जानते थे। आज हालत वैसी नहीं रही है, क्योंकि सरकारने इन जंगली मानी जानेवाली ग्रामीण शालाओंको बन्द करके अपनी शालाएँ खोल दी हैं। सरकार भला सात लाख गाँवोंमें कैसे पहुँचती? सातमें से तीन लाख गाँवोंमें मदरसे नहीं हैं। जहाँ ऐसी खराब हालत हो वहाँ सरकारी ढंगकी शालाएँ खोलनेसे क्या लाभ हो सकता है? हमें मकानोंके बिना काम चला लेना चाहिए; हमें सिर्फ सुशील और सच्चरित्र शिक्षकोंकी आवश्यकता है। पुराने पण्डितजी ऐसे ही शिक्षक हुआ करते थे। वे लड़कोंको पढ़ाते थे और भिक्षा-वृत्तिसे गुजारा करते थे। वे आटा माँग लाते थे। घी मिल जाता तो घी भी माँग लाते थे। जहाँ ये पण्डितजी अच्छे न थे वहाँ शिक्षा भी अच्छी नहीं मिलती थी; जहाँ अच्छे थे वहाँ अच्छी शिक्षा मिलती थी। आज उनका लोप हो गया है। शिक्षा बढ़िया-बढ़िया मकानोंसे नहीं मिलती। यदि हम देहातमें जाकर सादगीसे रहकर चरखेके प्रचार वगैराका काम करना चाहते हों तो हम अपनी मंजिलतक पहुँच सकते हैं। हम विद्यापीठसे इसपर विचार करनेको कहेंगे; परन्तु विद्यापीठ आपसे और मुझसे अलग नहीं है। पाँच-सात आदमी योजना तैयार करके विद्यापीठको दें और स्वार्थत्यागी लोग देहातमें जा बैठने और रूखा-सूखा जो भी मिल जाये उसे खाकर काम करनेके लिए तैयार हों तो यह हो सकता है।

मुझे एक शिक्षकका पत्र मिला है जिसे मैंने 'नवजीवन'में छापा है। वह लिखता है कि उसने अपनी शाला तीन विद्यार्थियोंसे शुरू की थी। आज इसमें ९६ विद्यार्थी हैं, इनमें ७३ लड़के हैं और २३ लड़कियाँ। इन्हें वह पेड़के नीचे बैठकर पढ़ाता है। ये

१. ८ दिसम्बर, १९२० और २६ जनवरी, १९२१ के बीच यंग इंडियामें प्रकाशित दौलतराम गुप्तके लेखोंमें।

बालक ब्राह्मणों और वैश्योंके नहीं, अन्त्यजोंके हैं। जो काम यह अन्त्यज-शिक्षक कर सका है, उसे क्या मैं और आप नहीं कर सकते? क्या हमें अन्त्यज लड़के भी न मिलेंगे? यदि वे एक जगह न मिलें तो हम दूसरी जगह आजमाइश करेंगे। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि हमें प्राथमिक शिक्षाके कामपर बहुत ध्यान देना ही चाहिए।

मैंने सुना है कि अभिभावकगण हमारे शिक्षाक्रमसे ऊब गये हैं। विद्यार्थियोंको मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना उन्हें नापसन्द है। यह सुनकर मुझे पहले हँसी आई परन्तु पीछे दुःख हुआ। जब मनुष्यके मनमें दुःखका दावानल सुलग रहा होता है तब वह रो नहीं पाता, हँसता है। मैंने मनमें कहा — यह कैसी अधोगति है! माँ-बाप सोचते हैं, लड़के अच्छी अंग्रेजी नहीं बोल सकेंगे; गुजराती खराब बोलेंगे, यह उन्हें नहीं खलता। वे यह क्यों नहीं सोचते कि यदि वे गुजराती पढ़ेंगे तो घरमें शिक्षाका कुछ प्रवेश करायेंगे? मैं खुद ज्यामिति, बीजगणित और अंकगणितकी परिभाषाएँ नहीं जानता। यदि मुझसे 'सर्कल' शब्दका गुजराती समानार्थक शब्द पूछा जाये तो मैं सोचकर ही बता सकूँगा। मैं त्रिभुजोंके भिन्न-भिन्न अंग्रेजी नाम जानता हूँ किन्तु मैं उनमें से एकका भी गुजराती नाम नहीं जानता। यह कैसी दुरवस्था है। मैं ऐसे अभिभावकोंसे कहूँगा, अपने लड़के आप स्वयं सँभालें। क्या मैं उन्हें अंग्रेजीमें शिक्षा दूँ और गुजराती शब्द दूसरोंसे पूछने जाऊँ? क्या मैं इसके लिए राष्ट्रीय शालाएँ खोलूँ और उनके लिए चन्दा जमा करूँ? इसकी बजाय तो मैं यह पसन्द करूँगा कि खुद घर बैठ जाऊँ। सारी परिभाषाएँ सीखलूँ और फिर धारा प्रवाह गुजराती बोलूँ। मैंने किसी भी अंग्रेज विद्वान्को अपनी भाषाके शब्द ढूँढ़ते नहीं देखा। स्पर्ज्यन नामक एक अंग्रेज था। वह विद्वान् तो बहुत न था परन्तु जब अंग्रेजी बोलने लगता तब मानो प्रवाह बहता। वह जलसेना सम्बन्धी छोटेसे-छोटे शब्दोंकी भरमार करके सबको दंग कर देता। यदि मैं अपने यहाँके परम विद्वान् श्री नरसिंहराव[1] और श्री आनन्दशंकरके[2] पास ऐसी समस्याएँ लेकर जाऊँ और वदनीयतीसे उनकी परीक्षा लूँ तो उन्हें तुरन्त फेल कर दूँ। जहाँ ऐसी दरिद्रता है, वहाँ मुझसे अंग्रेजीकी मार्फत शिक्षा देनेके लिए कहा जाये तो मैं इनकार ही करूँगा। मैं कबूल करता हूँ कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना असहयोगका अंग नहीं है। यदि किसी बच्चेके अभिभावक कहें, आप हमारे लड़केको अच्छी अंग्रेजी सिखा दें और फिर अगर कताई-संगीत आदि सिखाना चाहें तो वह भी सिखायें तो मैं यह सौदा कर लूँगा। मैं उसे चार घंटे अंग्रेजी पढ़ाऊँ और उससे चार घंटे चरखा चलवाऊँ। अंग्रेजीके साथ जितनी गुजराती पढ़ा सकूँगा उतनी गुजराती भी पढ़ा दूँगा। मैं इस हदतक अभिभावकोंको धोखा ही दूँगा; क्योंकि मेरे मनमें कुछ दुराव तो है ही। एम० ए० पास भी गलत अंग्रेजी लिखते हैं और गलत हिज्जे करते हैं।

स्त्री-शिक्षाके बारेमें मुझे बहुत-कुछ कहना था। परन्तु यह विषय गम्भीर है। एक लिहाजसे इस संग्रामके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है। हम स्त्रियोंको अवश्य ही

१. नरसिंहराव दिवेटिया।
२. आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव।

अशिक्षित तो रखना नहीं चाहते। परन्तु स्त्री-शिक्षाकी पद्धति क्या होनी चाहिए। कन्याओं और स्त्रियोंकी शिक्षा कहाँसे दो भागोंमें विभक्त होती है, यह विषय बिलकुल स्वतन्त्र है और इसका सम्बन्ध केवल शिक्षासे है। इस समय तो हमारी दृष्टि संकुचित है। मैं फिलहाल लड़कियोंको प्राथमिक शालाओंमें ले जाऊँगा और उनसे चरखा चलवाऊँगा। दूसरे सूक्ष्म प्रश्नोंपर मैं विचार नहीं कर पाया हूँ। हालाँकि लड़कियोंकी शिक्षाके प्रयोग जितने मैंने किये हैं उतने शायद ही किसी दूसरेने किये हों। मैंने जवान लड़के और लड़कियोंको साथ-साथ रखकर पढ़ाया है। इसके लिए मुझे जरा भी पश्चाताप नहीं है। हाँ, मेरी अँगुलियोंमें कुछ आँच जरूर लगी है; परन्तु वे पूरी जली नहीं? क्योंकि मैं उनपर सिंहकी तरह गरजता रहता था। मैं अधिक नहीं कह रहा हूँ इससे आप यह हरगिज न समझें कि मैं इस विषयकी अवहेलना करता हूँ।

ये प्रस्ताव[1] मैंने अपने विचारोंके निचोड़के रूपमें तैयार किये हैं। आप उनपर विचार कर लें। आप इन्हें केवल इसीलिए न मान लें कि उन्हें मैंने पेश किया है। मैं कांग्रेसके अधिवेशनमें तो लट्ठ लेकर पहुँचा था कि मेरा प्रस्ताव पास करना ही होगा। यहाँ तो मैं सिर्फ सलाहके रूपमें उन्हें पेश कर रहा हूँ। यदि आप इनका विरोध निर्भय होकर करेंगे तो मुझे जरा भी दुःख न होगा। मुझे दुःख होता है, पाखण्ड और प्रतिज्ञा करके उसे तोड़नेपर। परन्तु यहाँ पाखण्डकी कोई बात नहीं है, क्योंकि इस बारेमें हमारी कोई प्रतिज्ञा नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-८-१९२४

२६८. राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्के प्रस्ताव[2]

अहमदाबाद
१ अगस्त, १९२४

प्रस्ताव सं० १:– इस परिषद्की राय है कि चूँकि राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापना स्वराज्यकी सिद्धि और असहयोगमें सहायताके उद्देश्यसे की गई है, इसलिए स्कूलोंको चलानेमें असहयोगके सिद्धान्तोंका त्याग कदापि नहीं किया जाना चाहिए।

प्रस्ताव सं० २:–इस परिषद्की राय है कि स्कूलोंको चलानेमें छात्रोंकी संख्यापर नहीं अपितु उनकी योग्यतापर जोर दिया जाना चाहिए। इसलिए उनमें ऐसे लड़कों और लड़कियोंको दाखिल किया जाना चाहिए जिनके अभिभावक स्वराज्य और असहयोगकी दृष्टिसे स्वीकार किये गये सिद्धान्तोंको पसन्द करते हों, अर्थात्:

(१) इनमें जो हिन्दू हों वे अस्पृश्यताको पाप मानते हों और जिन्हें अपने बालकोंको अन्त्यजोंके बच्चोंके साथ बैठने और पढ़ने देनेमें कोई आपत्ति न हो,

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. गांधीजीने परिषद्के अध्यक्षके नाते इन प्रस्तावोंको पेश किया था।

(२) जो अपने बच्चोंको बुनाईकी कला सिखाना पसन्द करते हों, और
(३) जो हिन्दू-मुस्लिम और इतर धर्मावलम्बी भारतवासियोंके बीच एकताकी आवश्यकता और सम्भावनामें श्रद्धा रखते हों।

प्रस्ताव नं० ३: — इस परिषद्की राय है कि राष्ट्रीय स्कूलोंके शिक्षक ऐसे होने चाहिए जो स्वराज्य-सिद्धिके लिए शान्ति, सत्य तथा असहयोगके समस्त अंगोंको आवश्यक साधन मानते हों।

प्रस्ताव नं० ४: — इस परिषद्की राय है कि कताई सम्बन्धी कार्यसे अनभिज्ञ प्रत्येक शिक्षक और शिक्षिकाको कपासकी किस्म पहचानने, कपास ओटने, रुई धुनने, पूनियाँ बनाने, सूत कातने उसके अंक और गुणकी परीक्षा करनेका ज्ञान तुरन्त प्राप्त करना चाहिए।

प्रस्ताव नं० ५: — प्राथमिक स्कूलोंके शिक्षकोंकी शिक्षण शक्तिमें वृद्धि हो, इस दृष्टिसे यह वांछनीय है कि विद्यापीठ निम्न व्यवस्था करे:

(१) शिक्षकोंके लिए पाठ्यक्रम निश्चित करे;
(२) समस्त शिक्षकोंकी एक सामान्य परीक्षा ले;
(३) नये शिक्षकोंकी छमाही परीक्षा ले;
(४) शिक्षकोंके लिए पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षाके वर्ग चलाये;
(५) शिक्षकोंकी शिक्षण शक्तिके विकासके लिए ऐसे अन्य कार्य भी करे।

प्रस्ताव नं० ६: — चूंकि असहयोगका शाश्वत स्वरूप आत्मशुद्धि है और असहयोगके तत्त्वोंका गाँवोंमें प्रसार करना कांग्रेसका उद्देश्य है और गाँवोंमें आत्मशुद्धिका कार्य बालकोंसे ही शुरू किया जाना चाहिए, इसलिए परिषद्की यह मान्यता है कि विद्यापीठको उच्च और माध्यमिक शिक्षाकी तुलनामें प्राथमिक शिक्षाको प्रधानता देनी चाहिए और इस दृष्टिसे प्राथमिक शिक्षामें उचित परिवर्तन करके उसका प्रचार गाँवोंमें करना चाहिए।

प्रस्ताव नं० ७: — इस परिषद्की यह राय है कि राष्ट्रीय ग्राम-स्कूलोंकी स्थापनामें सरकारी स्कूलोंकी वर्तमान पद्धतिका अनुकरण नहीं किया जाना चाहिए और इसकी बजाय ग्राम-स्कूल प्राचीन पद्धतिके आधारपर चलाये जाने चाहिए।

प्रस्ताव नं० ८: — विद्यापीठ और स्वतन्त्र राष्ट्रीय संस्थाओंने राष्ट्रीय शिक्षाको प्रोत्साहन देनेके शुभ उद्देश्यसे प्रेरित होकर जो पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की है, यह परिषद् उनके लिए उन्हें बधाई देती है। लेकिन साथ ही परिषद्की यह राय है कि विद्यापीठ और अन्य संस्थाओंको पाठ्य पुस्तकोंकी संख्याकी अपेक्षा उनकी अच्छाईकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। उन्हें इस सम्बन्धमें इसके साथ-साथ देशकी गरीबीका भी ध्यान रखनेकी जरूरत है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ३-८-१९२४

२६९. भाषण: शिक्षा-परिषद्के प्रस्तावपर[1]

२ अगस्त, १९२४

इस प्रस्तावके[2] सम्बन्धमें खासी बहस हो चुकी है। काकाने[3] जो प्रोत्साहनके शब्द कहे हैं मैं उनपर ठण्डा पानी डालना चाहता हूँ। यदि आप जोशमें आकर इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। यदि हममें इस प्रस्ताव-को कार्यान्वित करनेकी शक्ति न हो तो हमें यह बात कबूल कर लेनी चाहिए। इस तरह कबूल करनेमें दुर्बलता नहीं, सबलता है। यदि आपको दुर्बलताका नमूना देखना हो तो मैं स्वयं मौजूद हूँ। आप मुझपर जितने पत्थर फेंकना चाहें उतने फेंक सकते हैं। जो वस्तु हमारे भीतर न हो वह है, यह दिखाने-बतानेका ढोंग करना केवल अहम् और दुराग्रह है। इस प्रस्तावमें जो-कुछ कहा गया है, जिन लोगोंसे उसका पालन न हो सके वे कदापि आगे न बढ़ें। बाकी लोग सोलहों आने अपना योग दें। मैं तो उनका पूरा सहयोग लेनेके लिए ही खड़ा हुआ हूँ। यदि हम अपनी शक्तिका अनुमान लगाये बिना आगे बढ़ेंगे तो हमारी दशा उस कपड़ा मिलके[4] समान ही होगी जो हाल ढह गई। यदि इस मिलके आसपासकी अन्य इमारतें वैसीकी-वैसी ही खड़ी रहीं और यह मिल गिर गई तो इस मिलमें कुछ-न-कुछ कमी तो अवश्य ही होगी। हम ऐसी स्थितिसे बचना चाहते हैं। इसलिए इस प्रस्तावके द्वारा हमें यह मालूम करना है कि हमारे पास असहयोगके कितने सिपाही हैं; असहयोग-सिद्धान्तमें विश्वास रखनेवाले कितने लोग हैं।

वस्तुतः देखा जाये तो इसमें सिद्धान्तकी बात परोक्ष रूपसे ही आती है। इसमें असली बातें तो केवल दो ही हैं: अन्त्यज और चरखा। हम इनके लिए तैयार हैं या नहीं? इनमें से एक बात तो हृदय परिवर्तन करने और आजीविकाको जोखिममें डालनेकी है। दूसरी आलस तजकर हाथ हिलाने अर्थात् कुछ करने-धरनेकी है। जिस मनुष्यकी इतना करनेकी इच्छा न हो और जिसमें इतनी शक्ति न हो उसे इसमें से चुपकेसे निकल जाना चाहिए।

हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता महापाप है। जैसे-जैसे कालचक्र घूमता है वैसे-वैसे हिन्दू धर्मकी कसौटी होती जाती है। यदि हिन्दू धर्म इस कसौटीपर खरा न उतरा तो वह इस दुनियासे मिट जायेगा, इस बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। हमारे सामने प्रश्न यह है कि अब हमें शुद्ध होना है अथवा दूसरोंको अस्पृश्य बनाये रखकर जगत्में स्वयं अस्पृश्य बनना है? दक्षिण आफ्रिका, पूर्व आफ्रिका और यहाँ हिन्दुस्तानमें

१. महादेव देसाई द्वारा लिखे शिक्षा-परिषद्के विवरणसे उद्धृत।

२. परिषद्का पाँचवाँ प्रस्ताव।

३. काका कालेलकर।

४. देखिए "कारखानेमें दुर्घटना", ३-८-१९२४।

भी हम अस्पृश्य बने हुए हैं। इन सभी देशोंमें हमें अंग्रेजोंके स्थानोंमें घुसनेकी मनाही है। अंग्रेजोंने यह बात यहीं आकर सीखी है। उन्होंने देखा कि "यहाँ कुछ विचित्र-सा धर्म है, एक मनुष्यको छूकर दूसरा मनुष्य अपवित्र हो जाता है, एक मनुष्य दूसरेकी छाया तकसे बचता है। हमें भी ऐसे ही चलना चाहिए, नहीं तो हम खतरेमें पड़ जायेंगे।" ऐसा मानकर उन्होंने अपना घेरा तैयार किया। इसमें इनका कोई दोष है; मुझे ऐसा तनिक भी महसूस नही होता। हमने ही उन्हें अस्पृश्यता सिखाई है।

आपमें यदि मानसिक बल होगा तो आप चरखा भी लेकर बैठ जायेंगे और ऐसे बालकोंको खोज निकालेंगे जिन्हें आप ये दोनों काम सिखा सकें। इन दो कामोंमें आप उन्हें लवलीन कर सकेंगे। यदि आप इन दोनों कामोंको कर सकें तो आपके लिए इतना बहुत है। आप अन्य कामोंकी चिन्ता न करें। अन्य सब चीजोंको ईश्वर-पर छोड़ दें। यदि आपमें बल होगा तो आपका रास्ता साफ है।

यदि ऐसा करते हुए आजीविका जोखिममें पड़ गई तो? आजीविका जोखिममें न पड़े, ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेके लिए ही तो हम स्वराज्यका आन्दोलन चला रहे हैं। यह आन्दोलन तभी सफल हुआ माना जायेगा जब सैकड़ो, हजारों और लाखों बालक और बालिकाएँ आजीविका सम्बन्धी चिन्ता त्याग देंगे और उसकी ओरसे उदासीन हो जायेंगे। सभी स्वतन्त्र देशोंमें लड़के और लड़कियाँ अपने-अपने कर्त्तव्यका पालन करते समय आजीविकाका खयाल तक मनमें नही लाते। आजीविकाके लिए जितनी 'हाय-हाय' यहाँ है उतनी और किसी देशमें नही है। हिन्दुस्तानका यह दावा है कि वह आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंको प्रधानता देता है। जो देश इस प्रकारका दावा करता है वह मौत और आजीविकाके सम्बन्धमें जितना भयभीत है उतना दूसरा और कोई देश नहीं है। मैं ऐसी बातें इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरे शरीरका अणु-अणु हिन्दू है। हमें आजीविकाका भय क्यों होना चाहिए? आजीविकाके लिए बुनाईका काम तो हमारे पास है ही। यदि वह न हो तो हम लकड़ियाँ काटेंगे, पत्थर तोड़ेंगे और ढोयेंगे। यदि हम इससे भी आगे बढ़े और पाखानेकी सफाई करनेका पवित्र काम करें तो उससे हमें जरूरतके लायक अर्थात् १५–२० रुपये तो मिल ही जायेंगे; और इतना ही नही बल्कि लोग हमारी खुशामद भी करेंगे। इसलिए देखा जाये तो हमारे सामने आजीविकाका सचमुच कोई प्रश्न है ही नही। जो स्वराज्यकी कामना करते हैं और उसके लिए व्यग्र हैं, जो ऐसा मानते हैं कि इस यज्ञमें हमें आहुति देनी चाहिए, उन्हें चाहिए कि वे आजीविकाकी बात भूल ही जायें। और यदि इसके बाद भी भूखों मरनेकी नौबत आ जाये तो? हम माँ-बाप, स्त्री और अन्य परिजनोंके लिए अन्न न जुटा पायें तो? जगत्को खिलानेके बाद स्वयं खाना यह महान् धर्म है। इसलिए धर्मका आचरण करते हुए हमें जितने कष्ट उठाने पड़ें, हम अवश्य उठायें। 'महाभारत' के रचयिताने पुरुषार्थ प्रधान है या प्रारब्ध प्रधान, इस प्रश्नका विवेचन किया है; लेकिन वे निश्चय नहीं कर पाये हैं कि इनमें से प्रधान क्या है? देखते हैं कि प्रारब्ध सदा हमसे दो कदम आगे-ही-आगे चलता है। हमारा धर्म तो केवल इतना ही है कि हम अधिकसे-अधिक मेहनत करें। मैं बहनका विवाह करूँगा, हममें इतना भी कहनेका

अहंकार क्यों हो? बहनको खिलानेवाला मैं कौन हूँ? यदि मेरी आँखें मुँद जायें तो? मेरे जैसा-मनुष्य तो अपने पीछे यह वसीयत भी कर जा सकता है कि 'मैं अपनी बहनके लिए दहेजमें देनेके लिए पैसा नहीं वरन् चरखा छोड़े जाता हूँ।'

मैं प्रोत्साहनके शब्द कहना नहीं चाहता था, मैं तो ठण्डा पानी डालना चाहता था; लेकिन मैं अनायास ही यह सब बोल गया। यदि इन दो कामोंको करनेकी आपकी तैयारी न हो तो आप इस प्रस्तावको फाड़ फेंके। यदि आपकी इतनी तैयारी हो, आपमें इतना बल हो तो आप इसको स्वीकार करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो काम आगे नहीं बढ़ेगा और बादमें हम हिन्दुस्तानसे यह भी न कह सकेंगे कि गुजरातमें इतने राष्ट्रीय स्कूल हैं और उनमें इतने विद्यार्थी पढ़ते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

२७०. भाषण: स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें[1]

२ अगस्त, १९२४

भाई चन्दूलाल मेरे कहनेका अर्थ नहीं समझे। यह प्रश्न गम्भीर है, महत्त्वका है; यह इतना ज्यादा गम्भीर है कि यह परिषद् उसपर विचार करनेमें असमर्थ है। पद्माबहनने जो-कुछ कहा है उससे तो मुझे अचरज ही हुआ है।[2] मेरे लिए तो गणिकाएँ बहनकी तरह हैं। मैं जहाँ गया हूँ मैंने वहीं उनके दर्शन किये हैं तथा मैं उनके दर्शन भविष्यमें भी करनेवाला हूँ और उनके सामने चरखेका सुझाव रखनेवाला हूँ। मेरे विचार जेल जानेके बाद जरा भी नरम नहीं पड़े हैं। मेरे मनमें स्त्री-शिक्षाके बारेमें विचार इतनी तेजीसे उठ रहे हैं कि मैं उन्हें यहाँ रख नहीं सकता। मेरा दावा है कि मैंने इस बारेमें किसी अन्य मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सोचा है। मैं यह भी दावा करता हूँ कि इस आन्दोलनसे जितनी जागृति स्त्रियोंमें हुई है, उतनी किसी अन्य वर्गमें नहीं हुई।

चरखा स्त्रियोंके हृदयोंको हिलाये बिना नहीं रह सकता। यही उनकी सच्ची शिक्षा है। और जो काम वे खुद कर रही हैं उसके बारेमें प्रस्ताव क्या पास करना? इन प्रस्तावोंको तो थोथा ही समझिए। हमारे आँगनमें क्या-क्या हो रहा है, हमें यही नहीं दिखाई देता। लगभग जंगली और अपढ़ मानी जानेवाली स्त्रियाँ पर्दा छोड़कर बाहर निकल आईं, क्या हम कई बरसोंमें भी उनको इससे ज्यादा शिक्षा दे सकते

१. यह भाषण महादेव देसाईकी डायरीमें दिये गये अहमदाबादकी शिक्षा-परिषद्के विवरणसे लिया गया है। यह श्री चन्दूलाल दवेके उस प्रस्तावपर दिया गया था जिसमें अहमदाबादके राष्ट्रीय विद्यापीठसे स्त्रियोंकी शिक्षाकी कोई निश्चित व्यवस्था करनेका अनुरोध किया गया था।

२. पद्माबहनने श्री दवेके प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा था: "गांधीजी तो गणिकाओंतक से बहुत सहानुभूति दिखाते हैं। यदि वे ही हमारी उपेक्षा करेंगे तो हमारी कैसी दुर्दशा होगी?"

थे? स्त्री-शिक्षा इस आन्दोलनके साथ-साथ ही चल रही है; बल्कि स्त्रियोंको शिक्षा न मिल रही होती तो यह आन्दोलन चल ही नहीं सकता था।

स्त्री-शिक्षाका विषय आपके, मेरे और सबके बूतेके बाहरकी बात है। इसपर विचार करना तो समुद्रको उलटने और मृगजलको हाथमें पकड़नेका प्रयत्न करनेके बराबर है। स्त्री तो अर्धांगिनी है, उसको यह शिक्षा कौन दे सकता है? थोड़ी-सी स्त्रियाँ कर्वे विद्यापीठकी ग्रेजुएट हो जायें तो इससे क्या होगा? इससे उनको सच्ची शिक्षा नहीं मिलनेवाली है। यदि यह समझमें आ जाये कि स्त्री अर्धांगिनी है तो उसको सच्ची शिक्षा मिलने लगेगी।

उसके लिए हमें फुरसतसे बैठना चाहिए, सोचना चाहिए और बहुतसे लोगोंको मिलकर सलाह करनी चाहिए। अगर ऐसी बात हो कि विद्यापीठके कुलपतिकी हैसियतसे मुझे कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए, तो मैं कहता हूँ कि चन्दूलाल और अन्य भाई हमपर जो बोझा डाल रहे हैं, वह असह्य है। न हमारे पास साधन हैं और न हमारे पास इतनी बहनें हैं। कुलपतिकी कितनी ही इच्छा क्यों न हो, परन्तु वह बेचारा क्या कर सकता है? कुछ रुपये खर्च करने और कुछ कन्याशालाएँ खोलनेसे स्त्री-शिक्षा पूरी नहीं हो सकती। इसीलिए मैं चुपचाप बैठा हूँ। हमारी शालाएँ और हमारे विद्यालय लड़कियोंको प्रविष्ट करनेके लिए तैयार हैं। यदि कोई योजना बनाकर लाये तो विद्यापीठ उसपर विचार करनेके लिए तैयार है, मगर वह खुद योजना नहीं बनायेगा। जो 'विशेषज्ञ' हैं वे यह भार उठायें, अपने विचार पेश करें, खूब आन्दोलन करें और कार्यकारिणी परिषद्में जायें। विद्यापीठ इस कामसे अलग नहीं होगा। परन्तु यदि कोई स्वराज्यके सिलसिलेमें शिक्षाकी बड़ी योजना तैयार करे तो विद्यापीठ उसपर विचार करनेसे इनकार ही करेगा। विद्यापीठ इस विषयकी उपेक्षा करना और उसे भुलाना नहीं चाहती। मैं तो सिर्फ उसकी अशक्तिकी ही बात करता हूँ। मैं खुद इस प्रस्तावपर पन्द्रह मिनटमें विचार नहीं कर सकता। मैं सरदार और सिराहीकी हैसियतसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना यह भ्रम त्याग दें कि मुझे स्त्री-शिक्षाकी कुछ भी लगन नहीं है और सिर्फ इसलिए यह प्रस्ताव वापस ले लें कि हमारी हँसी न उड़े।[1]

यहाँ जितना काम हुआ है उस सबका श्रेय आप लोगोंको ही है। आपने मुझे अपने उपकारके भारसे दबा दिया है। आप इसमें स्वीकार किये गये प्रस्तावोंपर अमल करके मुझे और भी अधिक उपकृत करें। मेरी प्रार्थना यही है कि आप इन प्रस्तावोंको भुला न दें, इनको अपने मस्तिष्कमें कायम रखें। आप इनको अमलमें लाकर उनका मीठा फल खुद खायें और गुजरातको खिलायें। ईश्वर आपको इसके लिए बल दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

१. इसके बाद चन्दूलाल दवेने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया और गांधीजीने कुछ शब्द कहकर परिषद्की कार्रवाई समाप्त कर दी।

२७१. इर्विन बैंक्टेके पत्रपर निर्देश[1]

[२ अगस्त, १९२४ के पश्चात्]

गणेशन द्वारा प्रकाशित सामग्री, 'यंग इंडिया' और 'इंडियन होमरूल' भेज दिये जायें। 'यंग इंडिया' नियमित रूपसे भेजा जाये और उसका मूल्य श्री बिड़लाके खातेमें डाल दिया जाये। पत्रलेखकको सूचित कर दें कि वे भुगतानके बारेमें चिन्ता न करें। वे चाहें तो बिना कुछ लिये भाषण दें, अथवा उससे अर्जन करें या सामग्रीका जैसा चाहें वैसा उपयोग करें।

मूल प्रति (एस० एन० १००९१) की फोटो-नकलसे।

२७२. कारखानेमें दुर्घटना

मनसुखभाईकी मिलकी दुर्घटना हमारे सामने अहमदाबादमें ही हुई, इस कारण हमारे दिल दहल उठे। परन्तु मलाबारपर इस समय जो विपत्ति आई हुई है[2] हमें उसका खयालतक नहीं आता; आता भी है तो क्षण-भरके लिए ही। और यदि हिन्दुस्तानसे बाहर किसी देशमें जानोमालकी हानि मलाबारकी हानिसे भी अधिक बड़ी हो तो हमारे दिलोंपर शायद कुछ भी असर न हो। परन्तु ये दुर्घटनाएँ हमें बताती है कि राजा और रंक, ब्राह्मण और चाण्डाल, मनुष्य और पशुके बीच कुछ भी अन्तर नहीं है। ईश्वरीय दुर्घटनाएँ जहाँ होती हैं उनका फल सबको समान रूपसे भोगना पड़ता है। एक जहाजमें बैठे मनुष्य और पशु सब एक ही साथ डूबते हैं। मनुष्य भेदभाव रखकर पहले अपने सगे-सम्बन्धियोंको बचाता है और फिर हो सका तो पशुओंको बचाता है। इन बचाये हुए लोगोंमें से भी कुछ लोग तो दूसरे ही दिन मर जाते हैं और शेष कुछ दिन बाद। जब मौत किसीको नहीं बख्शती तब हम उसका आलिंगन प्रसन्नतापूर्वक क्यों न करें? हम उसे अपना परम मित्र क्यों न मानें? वह अनेक आपत्तियोंसे मुक्त करनेवाली और दुःखविनाशिनी क्यों न मानी

१. गांधीजी द्वारा लिखे गये १५ मार्च, १९२४ के पत्र (देखिए खण्ड २३, पृ० २६२-६३) की प्राप्ति स्वीकार करते हुए इरविन बैंक्टेने २ अगस्त, १९२४ को गांधीजीको लिखा था कि आपके कार्योंमें दिलचस्पी रखनेवाले कुछ लोगोंने मुझसे भारतीय धर्म, इतिहास और साहित्य विषयक प्रश्नोंपर भाषण देनेको कहा है। उन्होंने आगे लिखा था: "मुझे आपकी लिखी कुल किताबोंकी सख्त जरूरत है। मेरे पास केवल एथिकल रिलिजन हैं। तथापि मैं आपकी अन्य पुस्तकें भी पाना चाहूँगा, और यदि मेरे पास काफी पैसा होता तो मैं सीधे सम्पादकसे ही उन्हें मँगवा लेता। लेकिन मैं अपनी साहित्यिक कृतियोंसे ही जीविका कमाता हूँ और इनसे मुझे बहुत थोड़ा ही मिल पाता है।

२. देखिए, "मलबारमें बाढ़", १०-८-१९२४।

जायें? ईश्वर कोई ऐसी क्रूर सत्ता नहीं है जो नीरोकी तरह अपने मनोरंजनकी खातिर प्राणियोंको पीड़ित करे। पहले तो उन्हें संसारमें भेजे और फिर उनका हनन करे। परमात्माकी प्रत्येक कृतिमें कुछ-न-कुछ युक्ति जरूर रहा करती है।

परन्तु क्या हम इस तरह तत्त्व-ज्ञानकी बातें बघारते हुए हाथपर-हाथ धरे बैठे रहें? कदापि नहीं। हम स्वयं अवश्य ही प्रसन्नतापूर्वक मृत्युका आलिंगन करें। दूसरोंको पीड़ासे मुक्त करनेका उपाय मौतका भय त्यागकर ही खोजा जा सकता है। जो बात दूसरेके लिए सच है वही हमारे लिए भी। हमें यह मान बैठनेका अधिकार नहीं है कि चूंकि मौत मित्र है इसलिए भले ही कल मरनेवाले आज मर जायें। यमराजकी गति न्यारी है। यदि हमें मौतकी घड़ीका निश्चय हो तो हम कष्ट ही न भोगें और न किसीको मदद देनेकी जरूरत ही रहे। परन्तु वह कब आयेगी इसका पता हमें नहीं रहता, इसीसे हम दुःख भोगते हैं। हम ज्ञानी नहीं हैं; यदि फिर भी हम अपनेको ज्ञानी मानकर चलें तो हमारी अधोगति होगी। हम तत्त्व-ज्ञान सम्बन्धी विचार मनमें लाकर शान्त भले रहें; परन्तु हमें एक-दूसरेकी सहायता करना कदापि नहीं भूलना चाहिए। इसे न भूलनेमें ही मौतसे भेंट करनेकी तैयारी निहित है।

अहमदाबादकी दुर्घटनाके सम्बन्धमें तो हम यह मान लें कि कारखानेके मालिक मृत व्यक्तियोंके सगे-सम्बन्धियोंको अवश्य ही मदद पहुँचायेंगे। यह उनका विशेष धर्म है। परन्तु यह दुर्घटना हुई कैसे? आजकलकी इमारतें कम मजबूत पाई जाती हैं। ठेकेदार और कारीगर सभी बहुत धोखेबाजी करते हैं। वे सीमेंटमें [अनुपातसे अधिक] रेत मिला देते हैं। कई बार इतनी कच्ची ईंटें भी लगा दी जाती हैं कि वे मिट्टी हो जायें। ठीक मजबूत लकड़ीकी बजाय कमजोर लकड़ीका उपयोग और चूनेकी जगह गारेका उपयोग कर डालते हैं। कितनी ही बार इंजीनियर मालिकोंको खुश करनेके लिए कमसे-कम मजबूतीसे काम चला लेते हैं। इसीलिए बम्बईमें कितनी ही इमारतें गिर चुकी हैं और लोग दबकर मर चुके हैं। मुझे आशा है कि मिल-मालिक इमारतकी बनावटके बारेमें पूरी तहकीकात कराके दुर्घटनाके अधिकृत कारण प्रकाशित करेंगे और नगरवासियोंका समाधान करेंगे। हम यह आशा भी रखते हैं कि मालिक दूसरी इमारतोंकी जाँच भी करा लेंगे और उनमें उन्हें जहाँ-कहीं कमजोरी दिखाई दे वहाँ मरम्मत करा लेंगे।

मलाबारमें जो संकट उपस्थित हुआ है वह तो मानो समुद्रमें आग ही लग गई है। उसका मुकाबला करना किसी खानगी संस्थाके बसके बाहर है। यह नहीं समझना चाहिए कि यदि कांग्रेसके लोग ऐसे समयमें उस संस्थाको, जो उनकी मदद कर रही है और उनका दुःख निवारण कर रही है, अपनी सेवाएँ देंगे तो उससे असहयोगके सिद्धान्तमें बाधा पड़ेगी। यदि हमारे पास अखूट धनराशि हो तब हमें जरूर अलहदा महकमा खोलकर उनकी सहायता करनी चाहिए। परन्तु जहाँ लाखों रुपयोंसे भी काम नहीं बन सकता वहाँ बेचारी कांग्रेस क्या कर सकती है? अतः यदि सरकार कुछ सहायता करे और उसमें हमारी सेवाएँ उसे मंजूर हों तो हमें अपनी सेवाएँ उसे अवश्य देनी चाहिए।

परन्तु हरएक सेवकको याद रखना चाहिए कि सच्ची सेवा करनेके लिए द्रव्यकी जरूरत नहीं होती। सच्ची सेवा तो वह कार्य है जो सच्चे दिलसे किया गया हो। स्नेहपूर्ण दृष्टि और समयपर कहा गया उचित शब्द जो सेवा करता है वह पैसा नहीं कर पाता। घरबारहीन हो जानेवाले स्त्री-पुरुषोंके पास जाना, उनकी शुश्रूषा करना, उन्हें अनेक प्रकारके छोटे-छोटे कामोंमें मदद देना और उन्हें अपनी उपस्थितिसे उत्साहित करना — इसमें जो सहायता निहित है वह बेजोड़ है। ऐसी सहायता करनेवाले मूक स्वयंसेवक जितने मिलें उतने कम हैं। इस क्षेत्रमें सब लोग स्पर्द्धा कर सकते हैं और इसमें कोई किसीके आड़े नहीं आ सकता। अतः ऐसे समयमें कांग्रेसका धनके अभावमें हारकर बैठ जाना वांछनीय नहीं होगा। मैंने ऐसा उत्तर मलाबारके मदद माँगनेवाले कांग्रेस-सदस्योंको दिया है। जब मुझे उनका पहला तार मिला तब मैंने सोचा कि मुझे उनको कुछ धन एकत्र करके भेज देना चाहिए। मैंने एक मित्रसे सहायता माँगी। उन्होंने २५०) भेजे भी; परन्तु पीछे जब मैंने आसमान फटनेकी खबरें सुनीं तब मेरा हृदय काँप उठा। तब मैंने देख लिया कि यह काम मुझ-जैसेकी शक्तिके बाहर है। यह कांग्रेसकी शक्तिके भी बाहर है। फिर भी यदि कोई सज्जन धन देंगे तो मैं उसे अवश्य कांग्रेसके अधिकारियोंको भेज दूंगा। मैं वाइकोमके सत्याग्रहके लिए तो बाहरसे रुपये-पैसे मँगानेके खिलाफ था, परन्तु मैं इस मामलेमें मदद पहुँचा सकूं तो मदद पहुँचाना अपना फर्ज समझता हूँ। यहाँ रुकावट असमर्थताके कारण है, अनिच्छाके कारण नहीं। जहाँ इच्छा तो चक्रवर्तीकी हो परन्तु सामर्थ्य कंगालका हो वहाँ मौन रहनेमें ही विवेक है। मैंने यह समझकर ही कांग्रेसके स्थानीय अधिकारियोंको दूसरा तार भेजकर यह सलाह दी है कि वे मलाबारकी सेवा तनसे करें तथा सरकारी संस्थाकी मारफत जो-कुछ सेवा हो सके वह भी करें और इसीमें सन्तोष मानें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-८-१९२४

२७३. टिप्पणियाँ

पूर्व आफ्रिकाका सत्याग्रह

पूर्व आफ्रिकामें रहनेवाले एक भाई लिखते हैं:[1]

ऐसा ही चित्रण एक अन्य भाईने भी किया है, इसलिए इसमें कुछ सत्य अवश्य होगा। जिस संघर्षमें थोड़ेसे लोग भी शुद्ध हृदयसे जेलमें गये हों, वह नितान्त निष्फल तो हो ही नहीं सकता। लेकिन जबतक अवांछित कानून रद नहीं किये जाते तबतक लोगोंको तो संघर्ष निष्फल ही लगेगा। पत्रलेखकने इस असफलताके कारण ठीक बताये हैं। देशको ये कारण दूर करने ही होंगे। सत्याग्रह केवल सरकारको परेशान

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

करनेका ही साधन है, जो लोग ऐसा मानते हैं, वे भारी भूल करते हैं। सत्याग्रहका उद्देश्य आत्मशुद्धि है। हमारे कर्त्तव्य-पालनसे सरकारको जो परेशानी होती है सो तो अनिवार्य है; लेकिन हमारा उद्देश्य परेशान करना नहीं होता। यदि शराब पीनेवाले लोग शराब पीना छोड़ दें तो इससे शराबके दूकानदारको अवश्य कष्ट होगा; लेकिन इसमें शराब छोड़नेवालोंका उद्देश्य दूकानदारको कष्ट देना नहीं है। उसका उद्देश्य तो शराबके दूकानदारको सुधारना हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो लोग सत्याग्रह आन्दोलनमें शामिल नहीं होते उनका बहिष्कार करना भी अनुचित है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इससे लड़ाईका रूप बिगड़ता है, सुधरता नहीं। सत्याग्रहीको अपने सत्य-पर अर्थात् अपनी दुःख सहन करनेकी शक्ति अथवा तपश्चर्यापर विश्वास रखना चाहिए। यदि दूसरे वैसा नहीं करते तो उसे इस सम्बन्धमें निश्चिन्त रहना चाहिए। जो इस लड़ाईमें शामिल नहीं होते वे अविश्वास अथवा अशक्तिके कारण ही शामिल नहीं होते। अविश्वास अनुभवसे ही दूर होता है। शक्ति दूसरोंकी शक्ति देखकर आती है। दोनोंमें से किसी भी स्थितिमें जबरदस्ती करना उचित नहीं है।

गुजरातके असहयोगियोंसे

असहयोगी सहयोगियोंका प्रीति-सम्पादन नहीं कर सकें तो इसमें दोष असहयोगियोंका ही है, यह बात मैंने बहुत बार स्वीकार की है। लेकिन इससे सहयोगियों अथवा असहयोगियोंको देशकी स्थिति बिगाड़नेका अधिकार नहीं मिल जाता। १९२२ के आरम्भमें अनेक सहयोगी खादीका काम करनेके लिए तैयार हो गये थे। उनमें से बहुतसे यह मानने लगे थे कि खादीसे देशकी आर्थिक स्थिति अवश्य सुधारी जा सकती है। बादमें यह बात वहीकी-वही रह गई। अब जबकि चरखेकी प्रवृत्तिको फिर तेजीसे चलानेका प्रयत्न किया जा रहा है, मैं एक बार फिर सहयोगियोसे मदद माँगनेकी धृष्टता करता हूँ। भिखारीको लज्जा किस बातकी? उनका देशके प्रति क्या धर्म है, इन बारेमें सहयोगियों और असहयोगियोंके विचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। हिन्दू एक तरहसे मोक्ष प्राप्त करनेका यत्न करता है तो मुसलमान दूसरी तरहसे। इसमें दोनोंके परस्पर लड़नेका कोई प्रयोजन नहीं, दोनों अपनी-अपनी दृष्टिसे सच्चे हैं। लेकिन दोनों परस्पर एक-दूसरेको सहन करें, इसीमें हमारी राजनीतिक मुक्ति है — हम ऐसा मानते हैं।

इसी तरह सहयोगियों और असहयोगियोंको अपनी-अपनी दृष्टिसे कार्य करते हुए परस्पर एक-दूसरेको सहन करना चाहिए। जहाँ दोनोंके विचार मेल खाते हों वहाँ दोनों साथ मिलकर काम क्यों न करें? कुछ लोग यह कहते सुने गये हैं कि जबतक गांधी चरखेको असहयोगका अपना साधन मानता है तबतक सहयोगी उसके प्रचारमें कदापि सहायता नहीं करेंगे। ऐसा किस लिए? मैं चरखेमें राम अथवा धर्म देखता हूँ इसीसे क्या दूसरे लोगोंको जो चरखेमें माग-सूत अर्थात् अर्थ ही देखते हैं, उसका त्याग कर देना चाहिए। चरखा अपने-आप न तो रामका बोधक है और न सूतका। उसे चलानेवाला सूत कात सकता है और रामको देख सकता है। उसमें मेरे-जैसे लोग असहयोगकी भावना आरोपित करते हैं। लेकिन यदि चरखेका प्रचार

सर्वत्र हो जाये तो असहयोगकी आवश्यकता ही नहीं बच रहेगी, यह कहनेवाला व्यक्ति भी सिर्फ मैं ही हूँ। क्या सहयोगी ऐसा करनेमें मेरी मदद न करेंगे?

लेकिन सारा भार असहयोगियोंके कन्धोंपर ही है। असहयोगियोंके दोषसे ही सहयोगियों और असहयोगियोंके बीच खाई पड़ गई है। इसे मिटानेका प्रयत्न भी हमें ही करना चाहिए। इस दृष्टिसे मैंने सहयोगियोंसे यह प्रार्थना करनी शुरू की है, और अब असहयोगियोंको सलाह देता हूँ कि वे अपने सम्पर्कमें आनेवाले सहयोगियोंसे विनती करें और उन्हें सूत कातनेके लिए आमन्त्रित करें। उन्हें सूत कातना न आता हो तो वे उन्हें सिखायें। सूत कातना केवल कांग्रेसमें भरती होनेवालोंका ही धर्म हो, ऐसी बात नहीं है। यह तो भारतीय-मात्रका धर्म है। इसलिए हम सहयोगियोंसे प्रेम-पूर्वक विनती करें। वे हमारी बात न सुनें तो हम इससे दुःखित न हों। हम प्रसंग आनेपर उनसे फिर विनती करें और विश्वास रखें कि चरखेमें जो शक्ति मानी गई है वह उसमें अवश्य होगी और यदि हम रोपमुक्त हो जायें तो सहयोगी चरखेको अवश्य अपनायेंगे।

होशियार शिक्षक

यह बोटादकी अन्त्यज-शालाके शिक्षकका पत्र[1] है। यदि इस शालाके समान ही सब शालाएँ चलें तो कितना अच्छा हो?

सुधार

रंगूनसे एक भाई लिखते हैं:

'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहके इतिहास' में[2] आपने स्व० सेठ अहमद मुहम्मद काछलियाका परिचय सूरतके मेमन मुसलमानके रूपमें दिया है। यह ठीक नहीं है। वे सूरत जिलेके सुन्नी वोहरा थे। आपको उनका परिचय इसी रूपमें देना था।

मैं जानता था कि भाई अहमद मुहम्मद काछलिया सुन्नी सम्प्रदायके थे, लेकिन दक्षिण आफ्रिकामें सूरतकी ओरके सुन्नी वोहरा सूरती मेमनके नामसे जाने जाते हैं; इसलिए मैंने उनका परिचय वैसा ही दिया है।

बुनाईसे कमाई

एक भाई लिखते हैं:[3]

यह भाई चाहते हैं कि उन्होंने जो कहा है मैं उसकी लिखकर ताईद करूँ। मैं इनसे सहमत भी हूँ, किन्तु मैं यह मानता हूँ कि यदि सूत एक समान हो तो इससे प्रतिमास दस रुपयेसे भी अधिककी कमाई हो जाती है। मेरी कल्पना तो यह है कि यदि होशियार अर्थात् पढ़ा-लिखा और मेहनती बुनकर सूत कतवाये, खरीदे और बुने तो उसे इससे अवश्य ही ज्यादा आय होगी। तथापि इतना तो निश्चित

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

२. यह लेख-माला अप्रैल १९२४ से नवम्बर १९२५ तक नवजीवनमें प्रकाशित हुई थी।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

है कि जो व्यक्ति धनवान बननेका इरादा रखता है उसे हाथकते सूतसे कपड़ा बुननेके धन्धेमें नहीं पड़ना चाहिए। यह तो देशकी खातिर किया जानेवाला एक महान् प्रयोग है। इसमें तो शूरवीर ही भाग ले सकते हैं। मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि इस धन्धेमें पड़नेवाला मनुष्य कभी भूखों नहीं मर सकता।

मेरे साथ बातचीत

एक संवाददाताने मुझे अस्पृश्यताके सम्बन्धमें एक स्वामीजीकी और मेरी बातचीतका छपा हुआ विवरण भेजा है और पूछा है कि इसमें कुछ सत्य है या नहीं। मैंने यह बातचीत पढ़ ली है और इसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। मुझे इसकी प्रत्येक पंक्तिमें अर्द्ध सत्य ही दिखाई देता है। इसमें मेरे वाक्य तोड़-मरोड़कर रखे गये हैं। मैं अपने अस्पृश्यता सम्बन्धी विचार इतने विस्तारसे व्यक्त कर चुका हूँ कि मैं उनको यहाँ फिर देनेकी कोई जरूरत नहीं समझता। लेकिन जो लोग मुझसे मिलनेके लिए आते हैं उन सबसे मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी और मेरी बातचीत प्रकाशित न करें और यदि करें भी तो उसका मसविदा पहले मुझे दिखा ले और तब उसे प्रकाशित करें। पाठकोंसे भी मेरी यह प्रार्थना है कि जो संवाद मेरे द्वारा प्रमाणित न हों, उनमें व्यक्त विचार वे मेरे न मानें। अनेक भाई और बहन मुझसे मिलकर जाते हैं। वे मेरे अथवा मेरे विचारोंके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखें यदि मैं उसे पढ़ने अथवा उसके दोषोंको सुधारनेका दायित्व अपने सिरपर ले लूं तो मुझे अपना बहुत-सा समय इसी काममें लगाना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि मेरे समयका ऐसा अपव्यय कोई नहीं चाहेगा। मैं स्वयं उसके लिए कतई तैयार नहीं हूँ। इसलिए जो मुझपर दयालु हों उनके लिए अच्छा रास्ता यही है कि वे मेरे साथ हुई बातचीत कदापि प्रकाशित न करें। जो मुझपर दयाभाव न रखते हों उन्हें भी मेरे साथ हुई बातचीत प्रकाशित नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे मेरी बात निर्दयताके कारण समझ ही नहीं पायेंगे। लेकिन यदि निर्दयी लोग मेरी विनती न मानें तो समझदार पाठकोंको चाहिए कि ऐसे लोग जो-कुछ लिखें, उसे वे प्रामाणिक न समझें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-८-१९२४

२७४. तार: सरोजिनी नायडूको[1]

४ अगस्त, १९२४

देवी सरोजिनी
ताजमहल
बम्बई

स्वास्थ्य बिलकुल ठीक। शुक्रवार सवेरे ठीक रहेगा। तुम और पद्मजा कैसी हो।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १००९४) की फोटो-नकलसे।

२७५. तार: हकीम अजमल खाँको[2]

४ अगस्त, १९२४

हकीम साहब अजमल खाँ
श्रीनगर

स्वास्थ्य ठीक। मुहम्मद अलीके निकट सम्पर्कमें हूँ। वे कहते हैं उपस्थिति अभी आवश्यक नहीं। आप और बेटी कैसे हैं? निहायत जरूरी न हुआ तो माहके अन्ततक निकलनेकी इच्छा नहीं।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १००९६) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार श्रीमती सरोजिनी नायडूके ४ अगस्तके तारके जवाबमें भेजा गया था, जिसमें लिखा था: "स्वास्थ्यकी तारसे सूचना दें। शुक्रवार और शनिवार अहमदाबादमें बिताऊँगी बशर्ते कि इससे पहले मेरी जरूरत न हो।"

२. यह हकीम अजमल खाँके ४ अगस्तके इस तारके उत्तरमें था: "तार दें स्वास्थ्य कैसा है। दिल्ली कब जा रहे हैं, वहाँ आपकी सख्त जरूरत है।"

२७६. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

श्रावण सुदी ४ [४ अगस्त, १९२४][1]

चि० इन्द्र,

तुमारा खत मीला है। मेरे क्षेत्रसे वाहर मुझको ले जाना चाहते हो? शिवाजी महाराजके वारेमें मैं क्या लीख सकता हुं? मुझे कहते हुए शर्म आती है कि जो-कुछ मैंने विद्यार्थी समयमें पढ़ा है उससे ज्यादा कुछ भी उनके लीये मैं नहिं जानता।

मोहनदास गांधीके आ०

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८५९) से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२७७. पत्र : वसुमती पण्डितको

श्रावण सुदी ४ [४ अगस्त, १९२४][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम चिन्तासे जितना दूर रहोगी तुम्हारी तन्दुरुस्ती उतनी ही सुधरेगी। रात-भर पानीमें भिगोये हुए काले अथवा लाल मुनक्के खाया करो। उन्हें साफ करनेके बाद ही पानीमें भिगोना। फूल जानेपर उनका जो पानी बचे उसे कुनकुना करके पी लिया करो। उसे मुनक्कों समेत भी गर्म किया जा सकता है। मैं तुम्हारे हजीरामें रहनेकी व्यवस्था कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

बहन वसुमती,

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४५२) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१ और २. डाकखानेकी मुहर ५ अगस्त, १९२४की है।

२७८. पत्र : वा० गो० देसाईको

श्रावण सुदी ४ [४ अगस्त, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

आपका पत्र मिला। महादेवका कहना है कि स्वामीने आपका शिमला सम्बन्धी लेख तुरन्त वापस भेज दिया था। पता नहीं वह आपको क्यों नहीं मिला। स्वामीसे पूछूंगा। मैं अगर शिमला आ सका तो और कुछ नहीं तो कमसे-कम आपसे और पण्डितजीसे[2] मिलनेके लिए ही आ जाऊँगा। श्रीनगर जानेकी तो बड़ी इच्छा होती है; परन्तु यदि 'मनुष्यके ही हाथकी बात हो तो कोई दुःखी न हो' आदि। क्या मैंने आपको यह नहीं लिखा कि मैंने 'तल्लीन' शब्दके प्रयोगके सम्बन्धमें जो क्षमा-याचना[3] की थी उसपर आनन्दशंकर भाईने मुझे मधुर पत्र लिखते हुए सूचित किया कि मेरा वह प्रयोग सही था? इस प्रकार जिस शब्दके प्रयोगसे अर्थकी पुनरुक्ति हो जाती है उसका प्रयोग भी होता है। तथापि मैं 'आवकारदायक' शब्दको सुधार लूंगा। आयुर्वेदके अवतरणोंका उपयोग भी करूँगा। मुझे बुखार बिलकुल नहीं है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

वा० गो० देसाई
स्टर्लिंग कैसिल,
शिमला

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२०) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. डाकखानेकी मुहर ५ अगस्त, १९२४ की है।
२. पण्डित मदनमोहन मालवीय।
३. देखिए "मेढ़ाका खेड़ता", १५-६-१९२४।

२७९. तार: अ० भा० कां० कमेटीके महामन्त्रीको[1]

५ अगस्त, १९२४

दोनोंको पिछले हफ्ते तार दिया कि बाढ़ बहुत भयंकर और कांग्रेसके बसके बाहरकी बात। हमें गैर-सरकारी संगठनोंसे और यदि सरकार हमारी सेवा ले तो उससे भी सहयोग करना चाहिए। व्यक्तिगत सेवा तो सदैव दी जा सकती है; दी भी जानी चाहिए। यदि कांग्रेसके लिए सम्भव हो तो वह विशेष चन्दा जरूर जमा करे।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १००९७) की फोटो-नकलसे।

२८०. एनी बेसेंटको[2] आदराञ्जलि

साबरमती
६ अगस्त, १९२४

जैसा कि सभी लोग जानते हैं, राजनीति और सिद्धान्तोंके विषयमें दुर्भाग्यवश मैं कुछ ऐसे विचार रखता हूँ जो डा० एनी बेसेंटके विचारोंसे बुनियादी तौरपर भिन्न हैं। लेकिन इस तथ्यके बावजूद एक उच्च चरित्र, महान उद्देश्य, अथक शक्ति और दुर्दमनीय साहसवाली महिलाके रूपमें उनके प्रति मेरा आदर किसी तरह कम नहीं होता। वे भारतको उतना ही प्यार करती हैं जितना कोई श्रद्धालु बेटी अपनी माँको करती है। उनकी उद्यमशीलता और लगन हमारे लिए ईर्ष्याकी चीज है। लोकप्रियता खोनेका खतरा उठाकर भी उन्होंने असहयोगका विरोध करके अद्भुत साहस प्रदर्शित किया था। ईश्वर उन्हें भारत और मानवताकी सेवाके लिए दीर्घायु करे।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. यह तार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके महामन्त्री द्वारा इलाहाबादसे भेजे गये ४ अगस्तके तारके उत्तरमें था जिसमें कहा गया था: “श्रीनिवास आयंगारका सुझाव है कि बाढ़-सहायताके लिए पचास हजार तुरन्त स्वीकार किये जायें। राजगोपालाचारी तमिलके लिए सुरक्षित कोषमें से १५ हजार रुपये सहायताके रूपमें दिये जानेकी प्रार्थना करते हैं। अखिल भारतीय कोषमें फिक्स्ड डिपाजिटमें एक लाख पच्चीस हजार और करेंट अकाउंटमें बारह हजार रुपये हैं। बारह हजारकी देनदारियाँ हैं। दोनों प्रार्थनाओंके सम्बन्धमें अपनी सम्मति तार द्वारा भेजें।

२. यह सन्देश श्रीमती बेसेंटकी सार्वजनिक सेवाके ५० वर्ष पूरे होनेपर भेजा गया था।

२८१. पत्र: कामाक्षी नटराजनको

६ अगस्त, १९२४

प्रिय श्री नटराजन,[1]

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जो कतरन भेजी है, उसे मैंने देखा था। जब मैंने वह खबर देखी थी तो मन हुआ था कि तार भेजनेवाले संवाददाताको गोली मार दूं। लेकिन ऐसा करना मेरे धर्मके विरुद्ध है; इसलिए मैं शान्त हो गया और यह मनको भरोसा दिलाया कि होश-हवासवाला कोई पुरुष या स्त्री इसपर विश्वास नहीं करेगा कि मैंने ऐसी बेहूदा बात[2] कही होगी। मेरे किसी भी तारमें चरखेका उल्लेख नहीं है। हो भी कैसे सकता है? चरखेसे तभी मदद मिल सकती है जब लोग सूखी धरतीपर बस गये हों और उस मानसिक आघातसे सँभल चुके हों जिसने हमारे हजारों देशवासियोंको अवश्य ही किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया है।[3] अहमदाबादके लोगोंसे जो बात मैंने कही वह यह थी कि यह काम किसी भी गैर-सरकारी संस्थाकी सामर्थ्यसे बाहर है, लेकिन यदि वे मुझे पैसा भेजेंगे तो मैं उसे ठीक जगह पहुँचा देनेकी व्यवस्था कर दूंगा। मैंने यह भी कहा कि सभी श्रोता, गरीब हों या अमीर, अपने वस्त्रहीन भाई-बहनोंके लिए कताई करें और वह सारा सूत मुझे भेज दें। मैं यह जिम्मेदारी लेता हूँ कि उसका इस्तेमाल पीड़ितोंके लिए किया जायेगा। सच तो यह है कि इस खबरने मुझे सन्न कर दिया है। जब प्रकृति अपनी भयंकर चोट करती है तब हम कितने बेबस हो जाते हैं, यह सोचकर मैं छटपटा रहा हूँ। ईश्वरके मंगलमय होनेमें मेरा प्रबल विश्वास है; इसीलिए मैं प्रकटतः संकट जान पड़नेवाली इस घटनामें से भी किसी शुभ परिणामकी आशा कर रहा हूँ और वही आशा मुझे विक्षिप्त हो जानेसे बचाये हुए है।[4]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. सम्पादक, इंडियन सोशल रिफॉर्मर, बम्बई।

२. देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", ७-८-१९२४।

३. जुलाई १९२४ में मलाबारमें बाढ़ आई थी। यह संकेत उसीकी ओर है।

४. ८ अगस्तको इस पत्रको श्री नटराजनने जी० के० पारेखकी अध्यक्षतामें हुई एक सार्वजनिक सभामें पढ़कर सुनाया था।

२८२. पत्र: वा० गो० देसाईको

श्रावण सुदी ६ [६ अगस्त, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

स्वामी कहते हैं कि वे 'शिमलामें स्वराज्य'[2] शीर्षक आपका लेख आपको भेज चुके हैं। वह तो खो ही गया जान पड़ता है। अब तो उसे फिर लिख लें तो ठीक रहेगा। विदेशी कपड़ा बेचनेवाले व्यापारीका नौकर विदेशी कपड़ा पहननेवालोंके सगे-सम्बन्धियोंका त्याग नहीं कर सकता। यदि आप अशुद्धियाँ सुधारनेका काम जारी रखते तो अच्छा होता। उसे अभी भी कर डालें तो ठीक। 'नवजीवन' के किस लेखका अंग्रेजी अनुवाद किया जाना चाहिए, इस बातका निर्णय आप ही क्यों नहीं करते?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२१) की फोटो नकलसे।
सौजन्य: वा० गो० देसाई

२८३. अनुचित प्रहार

सरकारके बारेमें प्राय: जो कुछ कहा गया है उसकी सत्यता बार-बार सिद्ध हो रही है, अर्थात् जनताकी चीख-पुकारपर सरकार जो कुछ देती है उसमें भी वह सदा येन-केन-प्रकारेण अपनी ही बात ऊपर रखती है। प्रेस ऐक्ट तो रद कर दिया गया है। किन्तु राजद्रोह तथा मानहानि सम्बन्धी कानूनोंके अन्तर्गत नई गतिविधियोंने उसका स्थान ले लिया है। प्रेस-ऐक्टके अन्तर्गत सरकार जो कुछ कर सकती थी वही अब बिना उस कानूनके और बिना किसी कठिनाईके कर रही है। 'क्रॉनिकल' के विरुद्ध जो असाधारण निर्णय दिया गया है उससे मेरे इस मतकी पुष्टि ही होती है। यह विश्वास करना कठिन है कि कोई सरकारी कर्मचारी अपने कार्योंके सम्बन्धमें की गई उस टिप्पणीपर जो किसी सम्पादकने पत्रकारके रूपमें अपने व्यावसायिक कर्त्तव्यका पालन करते हुए की है, क्षतिपूर्तिके लिए अदालती कार्रवाई कर सकता है। मुझे मालूम हुआ है कि 'क्रॉनिकल' के विरुद्ध जो मुकदमा चलाया गया है वह इस तरहका पहला ही मुकदमा नहीं है। लाहोरके 'वन्देमातरम्' तथा 'जमींदार' नामक अखबारोंको ऐसी ही परिस्थितियोंमें हर्जाना देना पड़ा था। एक रद-

१. पत्रमें शिमला सम्बन्धी लेखके उल्लेखसे स्पष्ट है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। उस वर्ष श्रावण सुदी ६, ६ अगस्तको थी। देखिए "पत्र: वा० गो० देसाईको", ४-८-१९२४ भी।

२. लेखका शीर्षक था "स्वराज्यमें शिमला"।

शुदा कानूनके अन्तर्गत की गई जब्ती और मानहानिके अभियोगके अन्तर्गत की गई क्षति-पूर्ति — इनमें कौन-सी बात अधिक बुरी है? 'क्रॉनिकल' के मामलेमें दिये गये निर्णय के बाद सरकारी कर्मचारियोंके कार्योंकी स्पष्ट और स्वतन्त्र आलोचना करनेका साहस कौन कर सकता है? किसी दैनिक समाचारपत्रका सम्पादक जब सम्पादकीय लिखता है तब वह अपने शब्दोंको सोनेकी तरह बारीकीसे नहीं तोलता। उससे जल्दीमें किसी शब्दका गलत प्रयोग हो जा सकता है। क्या उसे उसके लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी, चाहे वह शब्द उसने स्पष्टतः अच्छी भावनासे, बिना द्वेषके तथा जनताकी भलाईके लिए ही लिखा हो? 'क्रॉनिकल' में सम्पादकीय लिखनेवाला लेखक वास्तवमें श्री पेन्टरको नहीं जानता था। इसलिए उन्हें बदनाम करनेमें जिस तरह खुद उन विद्वान् न्यायाधीशकी कोई दिलचस्पी नहीं थी जिन्होंने क्षतिपूर्तिका निर्णय दिया, उसी तरह लेखककी भी उसमें दिलचस्पी नहीं थी। इस निर्णयको मैं बदलेकी भावनासे प्रेरित आदेश मानता हूँ।

जनता यह नहीं मान सकती कि श्री पेन्टरको 'क्रॉनिकल' की टिप्पणीसे कोई हानि पहुँची थी। मेरा तो यह खयाल है कि वे जनताकी दृष्टिमें 'क्रॉनिकल' की टिप्पणीसे उतने नहीं गिरे जितने अपनी इस जीतसे गिरे हैं। 'क्रॉनिकल' के विरुद्ध यह आदेश पास करवाकर उन्होंने अपनेको निर्दोष सिद्ध नहीं किया है, प्रत्युत उन्होंने यह सिद्ध किया है कि वे सख्त सार्वजनिक आलोचनाको सहज-भावेन स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं। मुझे उनपर तरस आता है।

किन्तु इस मामलेको दृष्टिमें रखते हुए मुझे जो बात खटक रही है वह है पत्रकारकी स्थिति। मनुष्य अपने दृढ़ विश्वासोंको सिद्ध करनेमें सदा समर्थ नहीं होता। यदि उसके लिए किन्हीं सार्वजनिक कार्यों तथा उनके कर्त्ताओंकी आलोचना आवश्यक हो जाये तो उसे चाहिए कि वह अपने दृढ विश्वासोंको सिद्ध करनेकी झंझटमें पड़े बिना उन्हें स्पष्ट करके व्यक्त कर दे। उदाहरणके लिए, मेरा पूर्ण विश्वास है कि सर शंकरन नायरके मामलेमें दिया गया न्यायाधीशका निर्णय पक्षपात-रंजित था[1] और मुझे इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं है कि न्यायाधीशका मानसिक झुकाव राजनीतिक कारणोंसे सर माइकेल ओ'डायरके पक्षमें था। फिर भी जो कुछ मैंने कहा है यदि उसे निन्दात्मक समझा जाये और यदि न्यायाधीश मुझपर अभियोग चलानेका नोटिस भेजे तो मुझे लोकहितकी दृष्टिसे स्पष्ट मत प्रकट करनेपर नम्रतापूर्वक तथा दीनभावसे बिना शर्त क्षमा-याचना करनेको कहा जायेगा और इसका कारण यह होगा कि मैंने जो-कुछ कहा है उसे मैं सिद्ध नहीं कर सकता।

श्री पेन्टर अनजाने ही एक बड़े षड्यन्त्रके मोहरे बन गये हैं। यह सरकार अवसरका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहती है। उसे लगता है कि हम असंगठित हैं और हममें परस्पर फूट है। वह समझती है कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेका सिर फोड़नेका यह मजेदार खेल खेलते रहेंगे; और सविनय अवज्ञा तो अब एक दूरकी चीज हो गई है। इधर हम इस तरह आपसमें लड़ रहे हैं और उधर सरकार अपनी

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-६-१९२४, उपशीर्षक "समरथको नहिं दोष गुसाँई।"

शक्तिको येन-केन-प्रकारेण दृढ़ करनेमें लगी है। हम उसे दोष नहीं दे सकते। यह उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक है। मानहानिके इन अभियोगोंका उद्देश्य यह है कि भारतीय पत्रकार आदर्शच्युत हो जायें तथा खुली आलोचना करते हुए जरूरतसे ज्यादा सतर्क रहें और दब्बू बन जायें। मुझे अनुत्तरदायित्वपूर्ण अथवा अनुचित रूपसे की गई तीव्र आलोचना कतई पसन्द नहीं है। किन्तु इस तरहकी सतर्कता तभी लाभदायी हो सकती है जब वह भीतरसे उचित हो, बाहरसे न लादी गई हो।

मेरे दिमागमें एक बात बिलकुल स्पष्ट है। यह ठीक है कि हमें राजनीतिक तथा धार्मिक मतभेदोंके कारण पराजय मिली है; किन्तु हमारी परेशानियोंका लाभ उठाने तथा सरकारी अधिकारियोंके सार्वजनिक व्यवहारकी द्वेषहीन आलोचनापर सम्पादकों-को दण्ड देनेके उद्देश्यसे सम्बन्धित अधिकारियोंको मानहानिके अभियोग चलानेके लिए प्रोत्साहित करके या उन्हें उसकी अनुमति देकर सरकारने हमसे भी अधिक खोया है। हो सकता है कि हम इतने कमजोर हों कि फिलहाल इसका कोई प्रतिकार न कर सकें; किन्तु हमारी कमजोरीका लाभ उठानेकी दृष्टिसे सरकार द्वारा किये जाने-वाले प्रत्येक कार्य तथा प्रत्येक अनुचित प्रहारसे हमारा विरोध और भी लागू हो जायेगा। हमारी यह असमर्थता थोड़े ही दिनोंकी है। हमारे विरोधका अन्त हो तो वह उसी दिन होगा जिस दिन हमारी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितिको सम्भव बनानेवाली इस सरकारका अन्त होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-८-१९२४

२८४. शिक्षकोंकी परिषद्

गुजरात विद्यापीठकी राष्ट्रीय पाठशालाओंमें इस समय लगभग ३०,००० विद्यार्थी हैं और उन्हें पढ़ानेके लिए ८०० से अधिक शिक्षक हैं। विद्यापीठके अधीन लगभग १४० संस्थाएँ हैं, जिनमें दो कालेज हैं और एक पुरातत्त्व अनुसन्धान संस्था है। उक्त संस्थाओंमें तेरह उच्च विद्यालय, १५ माध्यमिक विद्यालय और विशेष रूपसे अन्त्यजों-के लिए १५ विद्यालय भी शामिल हैं। अन्त्यजोंके विद्यालयोंमें ३०० से अधिक लड़के और लड़कियाँ पढ़ती हैं। सब संस्थाओंमें मिलाकर लड़कियोंकी संख्या ५०० से अधिक नहीं है। विद्यापीठने जमीनका टुकड़ा ले लिया है और उसमें एक सुन्दर-सा छात्रा-वास बनवा लिया है। जबतक पढ़ानेके लिए अलग भवन नहीं बन जाता तबतक इस छात्रावासका उपयोग अध्यापन कार्यके लिए भी किया जायेगा। उक्त ब्यौरेमें वे राष्ट्रीय पाठशालाएँ शामिल नहीं हैं जो विद्यापीठसे सम्बद्ध नहीं हैं। यह ब्यौरा इस दिशामें की गई प्रगतिकी चरम सीमाका द्योतक भी नहीं है। सर्वाधिक प्रगति-बिन्दु तो १९२१ में आ चुका था। तबसे बहुतसे स्कूल बन्द हो चुके हैं और सम्भव है, आगे चलकर और भी स्कूल बन्द हो जायें। राष्ट्रीय पाठशालाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या भी कुछ बढ़ नहीं रही है? अन्य सभी प्रान्तोंकी तरह गुजरातमें भी सामान्य कांग्रेस जनोंके उत्साहमें शिथिलता आ गई है।

इस शिथिलताके बावजूद गुजरातने जो-कुछ किया है वह स्तुत्य है। क्योंकि यह प्रान्त शिक्षाके क्षेत्रमें सबसे पिछड़े हुए प्रान्तोंमें से था और शायद आज भी है। यदि स्वराज्यके मापदण्डसे देखें तो इन प्रयोगोंको शायद कोई विशेष उपलब्धि नहीं माना जायेगा, लेकिन यदि एक प्रयोगके रूपमें ही इसपर विचार करें तो इस चार सालकी अल्प अवधिमें कितनी प्रगति हुई है वह आश्चर्यजनक लगेगी। इससे पर्याप्त संगठन-शक्ति, आवश्यकतानुसार धन जुटानेकी सामर्थ्य और शिक्षाके सम्बन्धमें असहयोगके प्रति विश्वासका परिचय मिलता है। यह सब मैं बिलकुल तटस्थभावसे कह सकता हूँ, क्योंकि यद्यपि मैं गुजरातका रहनेवाला हूँ, फिर भी जब यह प्रयोग चल रहा था, मैं यहाँ बहुत कम रहा और उस काममें मेरा कोई हाथ नहीं था। इसका सारा श्रेय सिर्फ वल्लभभाई और उनके अत्यन्त योग्य सहायकोंको ही है। इस प्रयोगके दौरान अधिकांश समयतक और जब परिस्थिति सबसे अधिक संकटापन्न थी तब भी मैं यरवदा जेलमें आराम कर रहा था और इसलिए इस सम्बन्धमें मुझसे कोई सलाह लेना भी सम्भव नहीं था।

अपनी स्थितिपर विचार करने तथा अपनी भावी नीतिकी रूपरेखा तैयार करनेके लिए शिक्षकोंने जब पिछले हफ्ते अपना सम्मेलन किया तो उनकी यह इच्छा स्वाभाविक और उचित ही थी कि मैं उनकी कार्यवाहीका संचालन करूँ। मुझको जो काम सौंपा गया था यदि मैं उसपर अधिक समय और श्रम दे पाता तो कितना अच्छा होता। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था; और अनेक काम सामने थे, इसलिए मैं (उसके लिए पर्याप्त रूपसे) आवश्यक अध्ययन और तैयारी नहीं कर सका।

वैसे उस सम्मेलनमें उपस्थित शिक्षकोंको मैंने उस सफलताके लिए तो बधाई दी जिसका परिचय उपर्युक्त विवरणसे मिलता है, किन्तु साथ ही वे जिन अनेकानेक संस्थाओंका संचालन कर रहे हैं, उनकी कुछ स्पष्ट खामियों और कमजोरियोंकी ओर भी मुझे उनका ध्यान आकृष्ट करना पड़ा। राष्ट्रीय पाठशालाओंकी स्थापना स्वराज्य प्राप्तिके लिए ही तो की गई है और इस दृष्टिसे सच्ची राष्ट्रीय पाठशालाका संचालन इस बातको ध्यानमें रखकर करना चाहिए कि वह शिक्षण संस्थाओंकी हदतक राष्ट्रीय कार्यक्रमको पूरा करनेमें कहाँतक सहायक सिद्ध हो रही हैं। इस तरह, उदाहरणके तौरपर हम कह सकते हैं कि चरखेके सन्देशके प्रचारमें, हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अन्य जातियोंको एक-दूसरेके निकट लानेमें, अन्त्यजोंको शिक्षित करनेमें तथा स्कूलोंसे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेमें राष्ट्रीय पाठशालाओंको एक बहुत जबरदस्त साधन साबित होना चाहिए। इस दृष्टिसे देखा जाये तो यह प्रयोग असफल है और अगर असफल नहीं तो आशाके अनुरूप सफल कदापि नहीं माना जा सकता। ३०,००० लड़कों और लड़कियोंमें से मुश्किलसे एक हजार लड़के-लड़कियाँ १०० चरखोंपर प्रतिदिन सिर्फ आधा घंटा कताईका काम करते हैं। सैकड़ों चरखे बेकार और उपेक्षित दशामें पड़े हुए हैं। यद्यपि कहनेको तो इन स्कूलोंके द्वार अन्त्यजोंके लिए खुले हुए हैं, किन्तु वास्तवमें बहुत कम स्कूलोंमें अन्त्यज बच्चे पढ़ रहे हैं। मुसलमान विद्यार्थियोंकी संख्या बहुत कम है। इसलिए मैंने निःसंकोच होकर कहा कि अब हमें इन पाठशालाओंकी संख्या बढ़ानेके बजाय, इनमें अधिकाधिक अच्छा काम करानेका प्रयत्न करना है। बच्चोंके प्रवेशके लिए

उत्तरोत्तर कड़ी कसौटी रखते जाना चाहिए। जो माता-पिता नहीं चाहते कि उनके बच्चे कताई करें या अन्त्यजोंसे मिलें-जुलें, वे चाहें तो अपने बच्चोंको इन पाठशालाओंसे हटा लें। मैंने बेहिचक सलाह भी दी कि अगर उन पाठशालाओंको चलाते रहनेके लिए अन्त्यजों और चरखेको स्थान न देना जरूरी जान पड़े तो वैसी दशामें शिक्षकोंको उन्हें बन्द कर देने तकके लिए तैयार रहना चाहिए। अन्त्यज विद्यार्थी किसी तरह चोरी-छिपे हमारी पाठशालाओंमें प्रवेश पा जायें तो उन्हें बर्दाश्त कर लेना ही काफी नहीं; जरूरत इस बातकी है कि उनके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करके और विशेष ध्यान देकर उन्हें इन पाठशालाओंमें अधिक संख्यामें आनेकी प्रेरणा दी जाये। शिक्षक मुसलमान और पारसी माता-पिताओं द्वारा बच्चोंके भेजे जानेकी राह न देखें; बल्कि उनसे जाकर अपने बच्चे भेजनेके लिए कहा जाये। राष्ट्रीय शिक्षकको अपने क्षेत्रमें स्वराज्यका उद्भट प्रचारक बन जाना चाहिए। उसे अपनी पाठशालाके प्रत्येक बच्चेके बारेमें पूरी जानकारी होनी चाहिए। यही नहीं, उसे पाठशालासे बाहरके बच्चोंके बारेमें भी जानना चाहिए। उसे उनके माता-पिताओंके बारेमें भी जानकारी होनी चाहिए और यह मालूम होना चाहिए कि उन्होंने अपने बच्चोंको उसकी पाठशालामें क्यों नहीं भेजा; और उसे यह सब असहिष्णु बनकर नहीं, बल्कि प्रेमसे करना चाहिए। केवल इसी रास्तेपर चलकर राष्ट्रीय पाठशालाएँ, कांग्रेस प्रस्तावमें बताये गये अर्थोंमें वास्तविक राष्ट्रीय पाठशालाएँ बन सकती हैं।

काम कठिन है इसमें शक नहीं। इस सरकारने हर चीजको अर्थमूलक बना दिया है। चरित्र तो किसी भी चीजकी कसौटी रह ही नहीं गया है। थोथे पाठ्य-क्रममें सूचित पुस्तकोंको तोतेकी तरह रट लेनेकी क्षमता ही एकमात्र कसौटी मानी जाती है। हर पेशेको गिराकर आजीविकाका साधन बना डाला है। हम वकील, डाक्टर या शिक्षक इसलिए नहीं बनते कि देशकी सेवा करें, बल्कि इसलिए बनते हैं कि पैसा कमायें। इसलिए विद्यापीठको आत्माका हनन करनेवाले ऐसे ही वातावरणमें से शिक्षक चुनने पड़े हैं। अधिकांश शिक्षकोंको स्वयं अपने-आपसे और अपने परिवेशसे ऊपर उठना पड़ा है। उन्होंने देशकी पुकारको सुन लिया, यही अचरजकी बात है।

लेकिन, अब चार वर्षोंके अनुभवके बाद हमें एक नया अध्याय प्रारम्भ करना है। अब हम जहाँके-तहाँ रुके नहीं रह सकते। ऐसा करना तो सर्वनाशको आमन्त्रित करने जैसा होगा। इसलिए हमें आग्रह रखना चाहिए कि सभी लड़के और लड़कियाँ प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा चरखा चलायें। तीस हजार लड़के और लड़कियाँ तथा आठ सौ शिक्षक चरखा चलायें — देशके लिए प्रतिदिन आधा घंटा मेहनत करें — यह कोई मामूली शिक्षा नहीं है। इसका मतलब है प्रतिदिन आधा घंटा देशभक्ति, उपयोगी श्रम और दान तथा त्यागका पाठ पढ़ना। कोई लड़का अपने शिक्षण-कालमें ही किसी प्रतिदानकी अपेक्षा किये बिना अपना श्रम और समय देना शुरू कर दे, यह बात बलिदानका गुण सीखनेकी दृष्टिसे पदार्थ-पाठके समान है, जिसे वह अपने जीवनमें आगे चलकर भी नहीं भूलेगा और राष्ट्रके लिए इसका मतलब है प्रति मास १८७५ मन सूतका दान। इससे कमसे-कम ५,००० आदमियोंको एक-एक धोती मिल

सकती है; और तो जो लाभ हैं, वे हैं ही। शिक्षकगण जरा हिसाब लगायें कि प्रत्येक बालक या बालिकाके मनमें यदि यह खयाल आ जाये कि वह बालक या बालिका अन्य पाँच बच्चोंके साथ मिलकर एक महीनेमें इतना सूत कात सकते हैं जिससे मद्रासकी हालकी बाढ़में निर्वस्त्र हो जानेवाले एक देशभाईके लिए एक धोती तैयार हो सकती है तो इसका मतलब कितना बड़ा सबक सीख लेना है।

लेकिन राष्ट्रीय पाठशालाओंमें कांग्रेस कार्यक्रमके रचनात्मक हिस्सेकी इस स्वल्प सफलताका कारण अवश्य स्पष्ट कर देना चाहिए। अब यह दुःखद तथ्य प्रकट हो रहा है कि हम जो विशिष्ट और चुनिन्दा लोग हैं उन्होंने कताईतक नहीं सीखी है। इन पाठशालाओंके शिक्षकोंने अबतक सामूहिक रूपसे ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया जिससे वे सब धुनने और कातनेकी योग्यता प्राप्त कर लेते। फिर क्या आश्चर्य है कि वे अपने शिष्योंको प्रेरणा नहीं दे पाते और हर जगह चरखेका अभाव खटकता रहता है।

लेकिन यह बड़े सन्तोषकी बात है कि इस दोषको दूर करनेके लिए सुझाये गये सभी प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमतसे स्वीकार कर लिये गये। शिक्षक और विद्यार्थी-का किसी उद्योगमें व्यस्त रहना हमारे लिए एक नई बात है। इसलिए यदि इस ओर पूरा उत्साह नहीं दिखाया गया है तो वह शायद स्वाभाविक ही है। लेकिन चूँकि शिक्षकोंने ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये हैं, इसलिए अब उनका तदनुसार आचरण न करना उनके लिए बड़े कलंककी बात होगी। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि शिक्षक सचमुच चाहें तो अधिकांश माता-पिता भी यह बात नापसन्द नहीं करेंगे कि उनके बच्चे कताईकी प्रशस्त कला सीखें और प्रतिदिन आधा घंटा देशके कार्यमें लगावें तथा अन्त्यज बालकोंके साथ उठें-बैठें। मुझे आशा है कि गुजरातके शिक्षकोंने जो-कुछ करनेका निश्चय किया है, सारे देशके राष्ट्रीय शिक्षक भी वही करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-८-१९२४

२८५. टिप्पणियाँ

एक कठिनाई

एक सज्जन हुबलीसे पत्र लिखते हैं:[1]

मेरे विचारमें ये सारी कठिनाइयाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावोंको न समझनेके कारण ही उत्पन्न हुई हैं। जिन नौ सज्जनोंने त्यागपत्र दिया है, उन्होंने निःसन्देह अच्छा काम किया है। यदि वे खिन्न होकर नहीं, सहज भावसे अलग हुए हैं तो वे पदाधिकारी न होनेपर भी सहायता करते रह सकते हैं और नये चुनाव करानेमें भी मदद दे सकते हैं, ताकि उचित योग्यता सम्पन्न लोग चुने जा सकें और यदि वे बहिष्कारमें विश्वास नहीं करते तो स्वयं फिर चुने जानेके लिए खड़े हो जायें और साहसपूर्वक निर्वाचकोंको अपने विचारोंके पक्षमें लानेकी कोशिश करें तथा उनसे कहें कि हमें ही चुनिए। यदि हुबलीकी समिति सजीव संस्था है तो सारी स्थिति निर्वाचकोंके हाथमें रहेगी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका प्रस्तुत प्रस्ताव निर्वाचकोंके पथ-प्रदर्शनके उद्देश्यसे पास किया गया है, न कि अपनी पसन्दके लोगोंको चुननेमें बाधा डालनेके उद्देश्यसे। उन्हें ऐसे लोगोंको चुननेका पूरा अधिकार है जो कांग्रेसकी वर्तमान नीतिपर बिलकुल विश्वास नहीं करते या आंशिक विश्वास करते हैं। सही ढंगसे किया गया चुनाव ही एकमात्र ऐसा सच्चा तरीका है जिससे देशकी राय जानी जा सकती है। हम जबतक उचित भावना रखकर चुनाव नहीं करते तबतक हम न कभी देशकी वास्तविक राय जानेंगे और न वास्तविक प्रगति कर सकेंगे। हुबली कमेटीको उन लोगोंके नाम रजिस्टरमें दर्ज करने चाहिए जो कांग्रेसके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं और ४ आना चन्दा देते हैं तथा फिर ये लोग उन्हींको चुनें जिन्हें वे वास्तवमें चुनना चाहते हैं। ऐसे लोग ही, चाहे वे कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास करते हों चाहे न करते हों, सही प्रतिनिधि होंगे। मुझसे पूछा गया है कि क्या एक मनुष्य सौ व्यक्तियोंकी ओरसे चन्दा देकर उनके नाम दर्ज करा सकता है। मैं कहना चाहता हूँ कि यह तो मत खरीदना है और इसीलिए यह बेईमानी है। बात यह है कि जो स्त्री या पुरुष सदस्य बनना चाहता है, अपने पाससे ४ आना शुल्क दे। यदि ये सच्चे निर्वाचक सामने रखे गये कार्यक्रमके सभी पहलुओंको समझकर कार्यक्रमपर विश्वास रखनेवाले लोगोंको छोड़कर दूसरे लोगोंको मत देनेसे इनकार करें और यदि केवल इने-गिने लोग ही ऐसे मिलते हैं जो उन शर्तोंपर काम करनेके लिए तैयार हों तो मुझे उन थोड़ेसे प्रतिनिधियोंको साथ लेकर ही कार्यक्रमपर अमल करनेमें जरा भी संकोच नहीं होगा। यदि हम वैज्ञानिक तरीकेसे तथा सच्ची भावनासे किन्हीं नीतियों तथा सिद्धान्तोंके सही नतीजों तक पहुँचना चाहते हैं तो उसका इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें अहमदाबाद-प्रस्तावके पास होनेके बाद हुबली ताल्लुका कांग्रेस कमेटीकी कठिनाइयाँ गिनाई गयी थीं।

दुर्भिक्षमें राहत पहुँचानेके लिए

मेरे इस कथनके समर्थनमें कि दुर्भिक्षमें राहत पहुँचानेके लिए चरखा सबसे अधिक समर्थ साधन है,[1] तमिलनाड खादी बोर्डके मन्त्री लिखते हैं:[2]

> कोयम्बटूर जिलेको 'गरीब' कहना शायद सही न हो। किन्तु यह अधिकांशमें एक सूखा जिला है और यहाँ जब वर्षा नहीं होती, जैसा गत वर्ष हुआ, तब अवश्य ही दुर्भिक्ष पड़ जाता है। गत वर्षके अन्तमें यहाँ भयानक दुर्भिक्ष था। लोग अपने पशु बिना कुछ लिये दे देते थे। स्त्रियोंके लिए चरखा चलाना एक सरल और नितान्त स्वाभाविक व्यवसाय होनेसे स्त्रियोंने हजारोंकी संख्यामें रुई प्राप्त करनेके लिए खादी उत्पादकोंको जा घेरा। खादी उत्पादकोंने यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्त्रियोंको रुई दी। इसके परिणामस्वरूप नवम्बर तथा दिसम्बर मासमें खादीमें लगी ७५,००० रु०की कुल पूंजी रुक गई। फरवरीमें खादी उत्पादकोंको खादीका उत्पादन बन्द कर देना पड़ा। . . . मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि हमारे प्रयत्नोंसे अब परिस्थिति बदल गई है और उत्पादन फिर तेजीसे हो रहा है। . . .

एक ब्राह्मणका कथन

एक मित्रने निम्नलिखित पत्र भेजा है। आशा है यह दिलचस्पीसे पढ़ा जायेगा।[3]

'दोषपूर्ण उत्पादन'

एक गम्भीर प्रकृतिके मित्र लिखते हैं:

> आपने 'यंग इंडिया'के गत अंकमें खादीके अधिक उत्पादनका उल्लेख किया है और उसकी बिक्रीकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया है। आपने यह इच्छा भी व्यक्त की है कि बम्बई-जैसे नगर अतिरिक्त खादीके मालको खरीद लें। किन्तु, यदि बिक्रीकी व्यवस्था अपर्याप्त है तो क्या उत्पादनकी प्रणालीमें दोष नहीं है? खादी आज भी मिलके कपड़ोंसे कहीं अधिक महँगी है और इसमें भी सन्देह है कि दामोंको देखते हुए टिकाऊ भी होती है या नहीं। इस समय तो वे ही लोग, जो तीव्र भावनासे प्रेरित होते हैं तथा जिनके पास अतिरिक्त पैसे हैं, खादीकी विलासिताका सुख ले सकते हैं। आपकी टिप्पणीसे ध्वनित होता है कि उसे आर्थिक सहायता चाहिए। किन्तु केवल आर्थिक सहायता क्या कर सकती है? यदि उत्पादनकी प्रणाली दोषपूर्ण

१. देखिए "पत्र: कामाक्षी नटराजनको", ६-८-१९२४, और "भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", ७-८-१९२४।

२. अंशत: उद्धृत।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उक्त ब्राह्मणने अपने धार्मिक कुटुम्बकी परम्पराओंका विस्तृत वर्णन लिखकर यह स्पष्ट किया था कि सूत कातना आध्यात्मिक कर्म माना जाता है और वह किसी ब्राह्मणके लिए निषिद्ध न होकर प्रशस्त है।

है तो आर्थिक सहायता भी अपने उद्देश्यमें असफल हो जायगी। यदि आपके वक्तव्योंका सही अर्थ लगाया जाये तो उनका आशय यह निकलता है कि चरखा आन्दोलनका लक्ष्य, जहाँतक कपड़ेका सम्बन्ध है, गाँवोंको आत्मनिर्भर बनाना है; अर्थात् घर-घरमें अपने लिए स्वयं सूत काता जाना चाहिए। किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि उत्पादनको इस दृष्टिसे बढ़ावा दिया जा रहा है। कितने गाँव आत्मनिर्भर बन गये हैं या बननेवाले हैं?

जैसा कि आपने कहा है, यदि खादीका अन्तर्प्रान्तीय व्यापार वांछनीय नहीं है तो खादीको शहरोंमें संग्रह करके रखना भी उतना ही अवांछनीय है और यह इसलिए कि खादीके अपेक्षाकृत महँगे होनेके कारण उसका बिक्री व्यवसाय आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक नहीं है। इसकी बिक्री लोगोंकी भावनाको जगाकर ही की जा सकती है, किन्तु हमेशा यही मार्ग अपनाना उचित नहीं है।

खादी देखनेमें ही महँगी लगती है। मैं इन स्तम्भोंमें लिख चुका हूँ कि खादीके मूल्यकी नापके आधारपर अन्य कपड़ोंके मूल्यके साथ तुलना करना सही नहीं है। रुचिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन किये बिना खादी सस्ती नहीं जान पड़ेगी। खादी पहननेसे यह परम्परागत विचार चला जाता है कि वस्त्र सजधजके लिए पहने जाते हैं और यह विचार ही दृढ़ बन जाता है कि वस्त्र उपयोगके लिए पहने जाने चाहिए। खादी कम मजबूत होती है इसके बारेमें मतभेद है। इस मतभेदका आधार कदाचित् यह है कि अलग-अलग लोगोंको अलग-अलग अनुभव हुआ है। जबतक हमारा काता हुआ सूत एकसार नहीं होता तबतक विभिन्न अनुभव होते ही रहेंगे। चार वर्षका प्रयत्न, सो भी ढीला-ढाला, हाथ-कते सूतको एक विशेष स्तरपर लानेके लिए निश्चित ही काफी नहीं है। प्रत्येक नये उद्योगको प्रारम्भमें संघर्ष करना ही पड़ता है। गम्भीर प्रकृतिके होनेके कारण उक्त सज्जन भावनाकी उपेक्षा करते हैं; किन्तु भावना संसारमें एक अत्यन्त शक्तिशाली तत्त्व है। हम अपने घरोंमें भोजन इसलिए नहीं बनाते कि आधुनिक अर्थ-विज्ञानके अनुसार वह सस्ता पड़ता है, बल्कि इसलिए बनाते हैं कि उसके पीछे एक युगों पुरानी भावना है। यहाँतक कि अर्थ शास्त्रके अध्येता छात्र भी बता सकते हैं कि यदि आप लागत परिश्रम, ईंधन, बर्तनोंकी घिसाई तथा जगहका किराया सब मिलाकर देखें तो होटलका खाना घरके खानेसे सस्ता पड़ता है। इस समय खादीको आर्थिक सहायता देना आवश्यक है। आचार्य रायने अपनी हालकी विज्ञप्तिमें उचित ही कहा है कि जो काम राज्य नहीं करता वह जनताकी देश-भक्तिकी भावनाकी सहायतासे किया जाना चाहिए। खादी आन्दोलनके उद्देश्यको लेखकने सही रूपमें निरूपित किया है और उस उद्देश्यकी पूर्ति पूर्णरूपमें तभी हो सकती है जब हम जनताकी सेवा करनेके आकांक्षी लोग चरखेकी आवश्यकताका अनुभव करें और चरखेमें तथा उसके द्वारा होनेवाले उत्पादनमें रुचि पैदा करें। यदि मैं उड़ीसाके कंकालोंके बीच ले जाकर चरखा डाल दूँ तो वे उसकी ओर नजर भी नहीं डालेंगे। किन्तु यदि मैं उनके बीचमें बैठकर चरखा चलाना शुरु कर दूँ तो वे उसे उसी प्रकार अपना लेंगे जिस प्रकार मछली पानीको अपना लेती है। बड़े

लोग जैसा करते हैं, जनता भी वैसा ही करती है। किन्तु जैसा वे उपदेश देते हैं, वैसा नहीं करती। इसलिए कताई सम्बन्धी प्रस्तावकी आवश्यकता थी। इससे गाँवोंके प्रति अपने उत्तरदायित्वका वास्तविक बोध होता है। इससे वातावरणमें कताईके प्रति रुचि उत्पन्न होती है और खादीके दाम घटते हैं। यदि देश कताईके प्रस्तावपर ईमानदारीसे अमल करे तो इसमें वह शक्ति है जिसकी हमने अभीतक कल्पना भी नहीं की है।

उपदेश

> आपकी वृत्ति मुसलमानोंकी बेहद तारीफ करनेकी है। आपका ऐसा खयाल जान पड़ता है कि आप उन्हें उनकी उद्दण्डताके दोषसे मुक्त करके हिन्दुओंके मनमें उनके प्रति घनिष्ठताका भाव उत्पन्न कर सकते हैं। अब आपको यह सीखना है कि दोष उन्हीं लोगोंपर मढ़ा जाये जो अपराधमें शामिल हैं। यही न्यायका भी तकाजा है, क्योंकि राष्ट्रके कमजोर तथा दीन सदस्योंपर दोष मढ़ना और शक्तिशाली तथा उद्दण्ड लोगोंकी चापलूसी करना बुद्धिमत्तापूर्ण नीति कदापि नहीं है।

एक हिन्दू मित्रने अपने पत्रमें मुझे जो लम्बा उपदेश दिया है, यह उसीका एक अंश है। मैं जानता हूँ कि अन्य बहुतसे हिन्दुओंका खयाल भी इन्ही सज्जनके समान ही है। किन्तु तथ्य यह है कि सन्देह तथा आवेशसे भरे हुए वातावरणमें, मेरी निष्पक्षतामें पक्षपातका भ्रम होगा ही। जो हिन्दू यह मानते ही नही हैं कि इस्लाम या मुसलमानोंमें भी कोई अच्छाई हो सकती है, उन्हें किसीको इस्लाम या उसके अनुयायियोंका बचाव करते देखकर धक्का लगना स्वाभाविक ही है। मैं इससे न अशान्त होता हूँ और न विचलित; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे हिन्दू आलोचक एक दिन मेरे निर्णयको उचित मान लेंगे। वे शायद यह स्वीकार करेंगे कि जबतक प्रत्येक पक्ष एक-दूसरेके दृष्टिकोण तथा कमजोरियोंको भी समझने, सराहने और सहन करनेके लिए तैयार नहीं होता तबतक एकता नही होगी। इसके लिए हृदयकी विशालताकी, जिसे दूसरे शब्दोंमें उदारता कहते हैं, आवश्यकता है, हम दूसरोंके प्रति वैसा ही व्यवहार करें जैसा व्यवहार हम दूसरोंसे अपने प्रति चाहते हैं।

दिल्लीकी हलचल

मौलाना मुहम्मद अलीके एक खतसे मालूम होता है कि वे दिल्लीमें विभिन्न दलवालोंके बीच पूर्णरूपसे समझौता करानेकी भरसक कोशिश कर रहे हैं और उन्हें आशा है कि सफलता मिल जायेगी। वे एक जाँच करानेकी भी चेष्टा कर रहे हैं। इसके लिए निहायत सावधानीसे काम लेनेकी जरूरत है। मौलाना साहब कहते हैं, वहाँ परस्पर इतना अविश्वास फैला हुआ है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो जाँच कराना ही नहीं चाहते। मौलाना साहब बीमार हैं और ज्यादातर बिस्तरपर ही पड़े रहते हैं। वे एक जगहसे दूसरी जगह डोलीमें बैठकर जाते हैं, फिर भी सन्धि-वार्त्ता चला रहे हैं। हमें आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि मौलाना साहब जल्दी

२८५. टिप्पणियाँ

एक कठिनाई

एक सज्जन हुबलीसे पत्र लिखते हैं:[1]

मेरे विचारमें ये सारी कठिनाइयाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावोंको न समझनेके कारण ही उत्पन्न हुई हैं। जिन नौ सज्जनोंने त्यागपत्र दिया है, उन्होंने निःसन्देह अच्छा काम किया है। यदि वे खिन्न होकर नहीं, सहज भावसे अलग हुए हैं तो वे पदाधिकारी न होनेपर भी सहायता करते रह सकते हैं और नये चुनाव करानेमें भी मदद दे सकते हैं, ताकि उचित योग्यता सम्पन्न लोग चुने जा सकें और यदि वे बहिष्कारमें विश्वास नहीं करते तो स्वयं फिर चुने जानेके लिए खड़े हो जायें और साहसपूर्वक निर्वाचकोंको अपने विचारोंके पक्षमें लानेकी कोशिश करें तथा उनसे कहें कि हमें ही चुनिए। यदि हुबलीकी समिति सजीव संस्था है तो सारी स्थिति निर्वाचकोंके हाथमें रहेगी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका प्रस्तुत प्रस्ताव निर्वाचकोंके पथ-प्रदर्शनके उद्देश्यसे पास किया गया है, न कि अपनी पसन्दके लोगोंको चुननेमें बाधा डालनेके उद्देश्यसे। उन्हें ऐसे लोगोंको चुननेका पूरा अधिकार है जो कांग्रेसकी वर्तमान नीतिपर बिलकुल विश्वास नहीं करते या आंशिक विश्वास करते हैं। सही ढंगसे किया गया चुनाव ही एकमात्र ऐसा सच्चा तरीका है जिससे देशकी राय जानी जा सकती है। हम जबतक उचित भावना रखकर चुनाव नहीं करते तबतक हम न कभी देशकी वास्तविक राय जानेंगे और न वास्तविक प्रगति कर सकेंगे। हुबली कमेटीको उन लोगोंके नाम रजिस्टरमें दर्ज करने चाहिए जो कांग्रेसके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं और ४ आना चन्दा देते हैं तथा फिर ये लोग उन्हींको चुनें जिन्हें वे वास्तवमें चुनना चाहते हैं। ऐसे लोग ही, चाहे वे कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास करते हों चाहे न करते हों, सही प्रतिनिधि होंगे। मुझसे पूछा गया है कि क्या एक मनुष्य सौ व्यक्तियोंकी ओरसे चन्दा देकर उनके नाम दर्ज करा सकता है। मैं कहना चाहता हूँ कि यह तो मत खरीदना है और इसीलिए यह बेईमानी है। बात यह है कि जो स्त्री या पुरुष सदस्य बनना चाहता है, अपने पाससे ४ आना शुल्क दे। यदि ये सच्चे निर्वाचक सामने रखे गये कार्यक्रमके सभी पहलुओंको समझकर कार्यक्रमपर विश्वास रखनेवाले लोगोंको छोड़कर दूसरे लोगोंको मत देनेसे इनकार करें और यदि केवल इने-गिने लोग ही ऐसे मिलते हैं जो उन शर्तोंपर काम करनेके लिए तैयार हों तो मुझे उन थोड़ेसे प्रतिनिधियोंको साथ लेकर ही कार्यक्रमपर अमल करनेमें जरा भी संकोच नहीं होगा। यदि हम वैज्ञानिक तरीकेसे तथा सच्ची भावनासे किन्हीं नीतियों तथा सिद्धान्तोंके सही नतीजों तक पहुँचना चाहते हैं तो उसका इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें अहमदाबाद-प्रस्तावके पास होनेके बाद हुबली ताल्लुका कांग्रेस कमेटीकी कठिनाइयाँ गिनाई गयी थीं।

दुर्भिक्षमें राहत पहुँचानेके लिए

मेरे इस कथनके समर्थनमें कि दुर्भिक्षमें राहत पहुँचानेके लिए चरखा सबसे अधिक समर्थ साधन है,[1] तमिलनाड खादी बोर्डके मन्त्री लिखते हैं:[2]

> कोयम्बटूर जिलेको 'गरीब' कहना शायद सही न हो। किन्तु यह अधिकांशमें एक सूखा जिला है और यहाँ जब वर्षा नहीं होती, जैसा गत वर्ष हुआ, तब अवश्य ही दुर्भिक्ष पड़ जाता है। गत वर्षके अन्तमें यहाँ भयानक दुर्भिक्ष था। लोग अपने पशु बिना कुछ लिये दे देते थे। स्त्रियोंके लिए चरखा चलाना एक सरल और नितान्त स्वाभाविक व्यवसाय होनेसे स्त्रियोंने हजारोंकी संख्यामें रुई प्राप्त करनेके लिए खादी उत्पादकोंको जा घेरा। खादी उत्पादकोंने यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्त्रियोंको रुई दी। इसके परिणामस्वरूप नवम्बर तथा दिसम्बर मासमें खादीमें लगी ७५,००० रु०की कुल पूंजी रुक गई। फरवरीमें खादी उत्पादकोंको खादीका उत्पादन बन्द कर देना पड़ा। . . . मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि हमारे प्रयत्नोंसे अब परिस्थिति बदल गई है और उत्पादन फिर तेजीसे हो रहा है। . . .

एक ब्राह्मणका कथन

एक मित्रने निम्नलिखित पत्र भेजा है। आशा है यह दिलचस्पीसे पढ़ा जायेगा।[3]

'दोषपूर्ण उत्पादन'

एक गम्भीर प्रकृतिके मित्र लिखते हैं:

> आपने 'यंग इंडिया' के गत अंकमें खादीके अधिक उत्पादनका उल्लेख किया है और उसकी बिक्रीकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया है। आपने यह इच्छा भी व्यक्त की है कि बम्बई-जैसे नगर अतिरिक्त खादीके मालको खरीद लें। किन्तु, यदि बिक्रीकी व्यवस्था अपर्याप्त है तो क्या उत्पादनकी प्रणालीमें दोष नहीं है? खादी आज भी मिलके कपड़ोंसे कहीं अधिक महँगी है और इसमें भी सन्देह है कि दामोंको देखते हुए टिकाऊ भी होती है या नहीं। इस समय तो वे ही लोग, जो तीव्र भावनासे प्रेरित होते हैं तथा जिनके पास अतिरिक्त पैसे हैं, खादीकी विलासिताका सुख ले सकते हैं। आपकी टिप्पणीसे ध्वनित होता है कि उसे आर्थिक सहायता चाहिए। किन्तु केवल आर्थिक सहायता क्या कर सकती है? यदि उत्पादनकी प्रणाली दोषपूर्ण

१. देखिए "पत्र: कामाक्षी नटराजनको", ६-८-१९२४, और "भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", ७-८-१९२४।

२. अंशत: उद्धृत।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उक्त ब्राह्मणने अपने धार्मिक कुटुम्बकी परम्पराओंका विस्तृत वर्णन लिखकर यह स्पष्ट किया था कि सूत कातना आध्यात्मिक कर्म माना जाता है और वह किसी ब्राह्मणके लिए निषिद्ध न होकर प्रशस्त है।

है तो आर्थिक सहायता भी अपने उद्देश्यमें असफल हो जायगी। यदि आपके वक्तव्योंका सही अर्थ लगाया जाये तो उनका आशय यह निकलता है कि चरखा आन्दोलनका लक्ष्य, जहाँतक कपड़ेका सम्बन्ध है, गाँवोंको आत्मनिर्भर बनाना है; अर्थात् घर-घरमें अपने लिए स्वयं सूत काता जाना चाहिए। किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि उत्पादनको इस दृष्टिसे बढ़ावा दिया जा रहा है। कितने गाँव आत्मनिर्भर बन गये हैं या बननेवाले हैं?

जैसा कि आपने कहा है, यदि खादीका अन्तर्प्रान्तीय व्यापार वांछनीय नहीं है तो खादीको शहरोंमें संग्रह करके रखना भी उतना ही अवांछनीय है और यह इसलिए कि खादीके अपेक्षाकृत महँगे होनेके कारण उसका बिक्री व्यवसाय आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक नहीं है। इसकी बिक्री लोगोंकी भावनाको जगाकर ही की जा सकती है, किन्तु हमेशा यही मार्ग अपनाना उचित नहीं है।

खादी देखनेमें ही महँगी लगती है। मैं इन स्तम्भोंमें लिख चुका हूँ कि खादीके मूल्यको नापके आधारपर अन्य कपड़ोंके मूल्यके साथ तुलना करना सही नही है। रुचिमें क्रान्तिकारी परिर्तवन किये बिना खादी सस्ती नहीं जान पड़ेगी। खादी पहननेसे यह परम्परागत विचार चला जाता है कि वस्त्र सजधजके लिए पहने जाते हैं और यह विचार ही दृढ़ बन जाता है कि वस्त्र उपयोगके लिए पहने जाने चाहिए। खादी कम मजबूत होती है इसके बारेमें मतभेद है। इस मतभेदका आधार कदाचित् यह है कि अलग-अलग लोगोंको अलग-अलग अनुभव हुआ है। जबतक हमारा काता हुआ सूत एकसार नहीं होता तबतक विभिन्न अनुभव होते ही रहेंगे। चार वर्षका प्रयत्न, सो भी ढीला-ढाला, हाथ-कते सूतको एक विशेष स्तरपर लानेके लिए निश्चित ही काफी नहीं है। प्रत्येक नये उद्योगको प्रारम्भमें संघर्ष करना ही पड़ता है। गम्भीर प्रकृतिके होनेके कारण उक्त सज्जन भावनाकी उपेक्षा करते हैं; किन्तु भावना संसारमें एक अत्यन्त शक्तिशाली तत्त्व है। हम अपने घरोंमें भोजन इसलिए नही बनाते कि आधुनिक अर्थ-विज्ञानके अनुसार वह सस्ता पड़ता है, बल्कि इसलिए बनाते है कि उसके पीछे एक युगों पुरानी भावना है। यहाँतक कि अर्थ शास्त्रके अध्येता छात्र भी बता सकते हैं कि यदि आप लागत परिश्रम, ईंधन, बर्तनोंकी घिसाई तथा जगहका किराया सब मिलाकर देखें तो होटलका खाना घरके खानेसे सस्ता पड़ता है। इस समय खादीको आर्थिक सहायता देना आवश्यक है। आचार्य रायने अपनी हालकी विज्ञप्तिमें उचित ही कहा है कि जो काम राज्य नहीं करता वह जनताकी देश-भक्तिकी भावनाकी सहायतासे किया जाना चाहिए। खादी आन्दोलनके उद्देश्यको लेखकने सही रूपमें निरूपित किया है और उस उद्देश्यकी पूर्ति पूर्णरूपमें तभी हो सकती है जब हम जनताकी सेवा करनेके आकांक्षी लोग चरखेकी आवश्यकताका अनुभव करें और चरखेमें तथा उसके द्वारा होनेवाले उत्पादनमें रुचि पैदा करें। यदि मैं उड़ीसाके कंकालोंके बीच ले जाकर चरखा डाल दूँ तो वे उसकी ओर नजर भी नहीं डालेंगे। किन्तु यदि मैं उनके बीचमें बैठकर चरखा चलाना शुरु कर दूँ तो वे उसे उसी प्रकार अपना लेंगे जिस प्रकार मछली पानीको अपना लेती है। बड़े

लोग जैसा करते हैं, जनता भी वैसा ही करती है। किन्तु जैसा वे उपदेश देते हैं, वैसा नहीं करती। इसलिए कताई सम्बन्धी प्रस्तावकी आवश्यकता थी। इससे गाँवोंके प्रति अपने उत्तरदायित्वका वास्तविक बोध होता है। इससे वातावरणमें कताईके प्रति रुचि उत्पन्न होती है और खादीके दाम घटते हैं। यदि देश कताईके प्रस्तावपर ईमानदारीसे अमल करे तो इसमें वह शक्ति है जिसकी हमने अभीतक कल्पना भी नहीं की है।

उपदेश

> आपकी वृत्ति मुसलमानोंकी बेहद तारीफ करनेकी है। आपका ऐसा खयाल जान पड़ता है कि आप उन्हें उनकी उद्दण्डताके दोषसे मुक्त करके हिन्दुओंके मनमें उनके प्रति घनिष्ठताका भाव उत्पन्न कर सकते हैं। अब आपको यह सीखना है कि दोष उन्हीं लोगोंपर मढ़ा जाये जो अपराधमें शामिल हैं। यही न्यायका भी तकाजा है, क्योंकि राष्ट्रके [कमजोर तथा] दीन सदस्योंपर दोष मढ़ना और शक्तिशाली [तथा] उद्दण्ड लोगोंकी चापलूसी करना बुद्धिमत्तापूर्ण नीति कदापि नहीं है।

एक हिन्दू मित्रने अपने पत्रमें मुझे जो लम्बा उपदेश दिया है, यह उसीका एक अंश है। मैं जानता हूँ कि अन्य बहुतसे हिन्दुओंका खयाल भी इन्हीं सज्जनके समान ही है। किन्तु तथ्य यह है कि सन्देह तथा आवेशसे भरे हुए वातावरणमें, मेरी निष्पक्षतामें पक्षपातका भ्रम होगा ही। जो हिन्दू यह मानते ही नहीं है कि इस्लाम या मुसलमानोंमें भी कोई अच्छाई हो सकती है, उन्हें किसीको इस्लाम या उसके अनुयायियोंका बचाव करते देखकर धक्का लगना स्वाभाविक ही है। मैं इससे न अशान्त होता हूँ और न विचलित; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे हिन्दू आलोचक एक दिन मेरे निर्णयको उचित मान लेंगे। वे शायद यह स्वीकार करेंगे कि जबतक प्रत्येक पक्ष एक-दूसरेके दृष्टिकोण तथा कमजोरियोंको भी समझने, सराहने और सहन करनेके लिए तैयार नहीं होता तबतक एकता नहीं होगी। इसके लिए हृदयकी विशालताकी, जिसे दूसरे शब्दोंमें उदारता कहते हैं, आवश्यकता है, हम दूसरोंके प्रति वैसा ही व्यवहार करें जैसा व्यवहार हम दूसरोंसे अपने प्रति चाहते हैं।

दिल्लीकी हलचल

मौलाना मुहम्मद अलीके एक खतसे मालूम होता है कि वे दिल्लीमें विभिन्न दलवालोंके बीच पूर्णरूपसे समझौता करानेकी भरसक कोशिश कर रहे हैं और उन्हें आशा है कि सफलता मिल जायेगी। वे एक जाँच करानेकी भी चेष्टा कर रहे हैं। इसके लिए निहायत सावधानीसे काम लेनेकी जरूरत है। मौलाना साहब कहते हैं, वहाँ परस्पर इतना अविश्वास फैला हुआ है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो जाँच कराना ही नहीं चाहते। मौलाना साहब बीमार हैं और ज्यादातर बिस्तरपर ही पड़े रहते हैं। वे एक जगहसे दूसरी जगह डोलीमें बैठकर जाते हैं, फिर भी सन्धि-वार्त्ता चला रहे हैं। हमें आशा रखनी चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि मौलाना साहब जल्दी

हीं तन्दुरुस्त होकर उनके सामने जो जबर्दस्त काम है उसको अच्छी तरह करनेमें समर्थ होंगे।

माँगके मुताबिक अभिनन्दन

श्री बी० एफ० भरूचा पंजाबमें खादीका प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने अभी-अभी लिखा है:

> गत कुछ दिनोंमें अमृतसरमें तीन प्रचार समितियाँ बनी हैं, हिन्दू, मुस्लिम और सिख। ये ही समितियाँ गवर्नर, सर मेलकॉम हैलीको अमृतसर आनेपर अभिनन्दन पत्र भेंट करने जा रही हैं। इस मासकी २८ तारीखको जलियाँवाला बागमें एक सार्वजनिक सभा हुई थी। इसमें कहा गया था कि इन समितियोंसे जनताका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इससे उनका प्रचार बन्द नहीं हुआ है। अमृतसरमें कांग्रेस कमेटी, खिलाफत समिति तथा सिख लीगके अतिरिक्त तीन दूसरी साम्प्रदायिक संस्थाएँ हैं — हिन्दू सभा, डा० किचलूका मुसलमान संगठन तथा सिखोंकी शिरोमणि समिति।

उन्होंने प्रश्न पूछे हैं: इन प्रचार समितियोंमें कौन लोग हैं और क्या उनका गवर्नरको अभिनन्दनपत्र भेंट करनेके अतिरिक्त कोई और भी उद्देश्य है? यदि गवर्नर और दूसरे अधिकारी इसका स्वाभाविक परिणाम पहचानकर अभिनन्दनपत्रोंको स्वीकार करनेसे साफ इनकार कर दें तो कितना अच्छा हो। यदि वे किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी व्यक्तिको, चाहे वह सरकारी अधिकारी, गैरसरकारी व्यक्ति, मध्यम मार्गी, उदारदलीय, स्वराज्यवादी या अपरिवर्तनवादी कोई भी हो, सभी तरहके अभिनन्दन पत्र देना बन्द करनेके लिए कोई संस्था स्थापित करना चाहते हों तो मैं उसमें भी उनसे सहयोग करनेमें जरा भी संकोच नहीं करूँगा। अभिनन्दनपत्रोंसे किसीका भी भला नहीं होता और वे अब प्रचारके साधन भी नहीं रहे हैं। अब जनता इन प्रदर्शनोंके धोखेमें नहीं आयेगी। जो लोग इस प्रकारके प्रदर्शन करते हैं वे केवल अपना सस्ता प्रचार ही करते हैं, इसके सिवा और कुछ नहीं। ईमानदारीसे किया गया काम ही स्वयं अपनी अच्छाईका प्रमाणपत्र क्यों न हो?

मलाबारकी बाढ़

मद्रास अहातेकी बाढ़ इतने बड़े क्षेत्रमें व्याप्त है कि कल्पना भी उसका चित्र नहीं खींच सकती। उससे मानवकी असहायताका बोध होता है। उसमें वर्षोंके धैर्यपूर्वक किये गये परिश्रमके परिणाम एक क्षणमें बह गये। सहायता प्राय: एक मजाक-सी लग रही है। इसलिए जहाँ मैंने अपना यह विचार प्रकट किया है कि उसमें कोई भी प्रभावकारी सहायता कांग्रेसके सामर्थ्यसे बाहर है वहाँ मेरा आशय यह नहीं है कि कांग्रेसी जनोंको कुछ नहीं करना चाहिए। बेशक वैयक्तिक सेवा तो सदा ही की जा सकती है। व्यक्तियोंके लिए जहाँ-कहीं भी आर्थिक सहायता देना सम्भव है, वहाँ वह भी अवश्य ही देनी चाहिए। इसलिए यदि 'यंग इंडिया' के पाठक सहायताके लिए चन्दा भेजेंगे तो मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा[1] और अपनी मतिके अनुसार उसका अच्छेसे-

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २४-८-१९२४, उपशीर्षक "मलाबारके लिए सहायता"।

अच्छा उपयोग करूँगा। मुझे विश्वास है कि यह क्षति इतनी बड़ी है कि इसमें असंगठित या छुटपुट प्रयत्न अधिक कारगर नहीं हो सकते। किसी भी संस्थाको जिसे सार्वजनिक विश्वास प्राप्त हो, इस भयानक विपत्तिको देखते हुए सरकारी संस्थाकी सहायता करनेमें संकोच नहीं करना चाहिए। विपत्तिमें लोग दुश्मनी भूलकर एक हो जाते हैं।

मौलाना हसरत मोहानी

आखिर महान् हसरत मोहानी आगामी १२ ता० को छूट रहे हैं। वे कानपुर जाते हुए रास्तेमें अहमदाबादमें उतरेंगे। वे जहाँ भी जायेंगे वहाँ धूमधामसे उनका स्वागत किया जायेगा। पता नहीं, आज उनके विचार क्या हैं। सभी जानते हैं कि मेरा उनसे अनेक बातोंमें मतभेद है। जेलमें आचरण कैसा किया जाना चाहिए, इस विषयमें मेरा मत उनसे बिलकुल नहीं मिलता। मैं उनके स्वदेशी-सम्बन्धी विचारोंको खतरनाक तक मानता हूँ। परन्तु इतना मतभेद होते हुए भी मैं उनका, उनकी देशभक्ति-का और उनकी विद्वत्ताका अत्यन्त आदर करता हूँ। उनकी दृढ़ताको देखकर उनके मित्रोंको उनसे स्पर्धा होती है और शत्रुओंको निराशा। उन्होंने अपने देश और धर्मके लिए जितना कष्ट सहा है उतना हममें से बहुत कम लोगोंने सहा होगा। इसलिए मैं आशा रखता हूँ कि वे जहाँ जायेंगे वहाँ उनका स्वागत उत्साहके साथ होगा।

बरार नहीं, विरार

मैंने 'यंग इंडिया' के हालके ही एक अंकमें कहा[1] है कि एक स्वराज्यवादी मित्रने शिकायत की है कि अपरिवर्तनवादी पदोंपर बलपूर्वक अधिकार जमाये हुए हैं। बरारके एक मित्रने लिखा है कि यह बात बरारके बारेमें नहीं हो सकती। इसपर मैंने उक्त स्वराज्यवादी मित्रसे पूछताछ की तो उन्होंने मुझे बताया कि यह खण्डन सही है। शिकायत विरारके विरुद्ध है, बरारके विरुद्ध नहीं। मैं बरारके अपरिवर्तनवादियोंसे क्षमा याचना करता हूँ। वे भी इस बातको स्वीकार करेंगे कि यह भ्रम अक्षम्य नहीं है। विरारके अपरिवर्तनवादी सावधान हो जायें। यदि मैं तानाशाह होता तो तुरन्त इन युद्धोत्सुक अपरिवर्तनवादियोंसे माँग करता कि यदि वे स्वराज्यवादियों तथा कांग्रेससे खुले तौरपर क्षमा-याचना नहीं करते तो वे कांग्रेसकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दें। मेरी यह धारणा है कि इस बार जिसने मुझे सूचना दी है उसे सही खबर मिली है और परिणामस्वरूप मैं भी सही खबर दे रहा हूँ।

यह उपाय?

एक पत्रलेखक अपने पत्रमें हिन्दू-मुसलमान समस्याका हल इस प्रकार सुझाते हैं। मैं उनके पत्रसे निम्नलिखित उद्धरण देता हूँ:

> 'मुसलमान हिन्दुओंका लिहाज तभी करेंगे जब उन्हें यह मालूम हो जायेगा कि हिन्दू शरीरबलमें उनके ही समान हैं और केवल तभी दोनोंमें एकता सम्भव होगी। इसलिए आपको अपनी सारी शक्ति हिन्दू जातिको शरीरसे बलवान् बनानेमें लगानी चाहिए। हिन्दुओंको हर गाँव और शहरमें व्यायामके

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १७-७-१९२४, उपशीर्षक "बड़ा बाजारके कांग्रेसी"।

लिए अखाड़े खोलने चाहिए और पौष्टिक भोजन खाना चाहिए। आप उन्हें उपदेश दें कि वे अपने लड़के और लड़कियोंकी शादियोंमें बहुत खर्च न करें, बल्कि २१ वर्षकी आयुतक ब्रह्मचर्यका पालन करें। ऐसा करके आप हिन्दू-जातिकी भारी सेवा करेंगे और फलतः स्वराज्य भी सहज मिल जायेगा। कृपया इस पत्रको 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर दें।

पत्रलेखक सज्जन चाहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों पशु बन जायें और अपने अस्तित्वके लिए निरन्तर पशुबलका उपयोग करते रहें। केवल वे एक बातको भूल जाते हैं कि पशुओंमें परस्पर प्रेम नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू शारीरिक रूपसे बलवान हों। मैं यह भी चाहता हूँ कि वे किसी आदमीसे न डरें। ये बातें केवल हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए ही नहीं, बल्कि राष्ट्रके अस्तित्वके लिए भी आवश्यक हैं। परन्तु मैं जानता हूँ कि केवल शरीर-बलसे एकता नहीं आ सकती। जबतक हममें पारस्परिक प्रेम नहीं होता तबतक हम हमेशा कुत्ते-बिल्लीकी तरह आपसमें लड़ते रहेंगे और मैं यह उचित नहीं समझता कि मैं अपना जीवन एक ऐसी योजनाको अर्पित कर दूं जिसका उद्देश्य शस्त्रोंके बलपर शान्ति स्थापित करना हो। मैं तो शाश्वत शान्ति चाहता हूँ। वह केवल पारस्परिक धार्मिक सहिष्णुतासे ही पदा हो सकती है। यह बात तो अब पुरानी हो गई; चाहे हमारा और अंग्रेजोंका प्रश्न हो, चाहे हिन्दुओं और मुसलमानोंका, हम हृदय-परिवर्तन चाहते हैं। दूसरी सब बातें अपने-आप ठीक हो जायेंगी।

पत्रलेखक शरीर-बलकी प्राप्तिका उपाय ब्रह्मचर्य बताते हैं। शरीरबलकी प्राप्तिके लिए आत्मसंयमका उपयोग करनेका विचार करना मानों कौड़ीके लिए हीरेको बेचना है। क्या ब्रिटिश सैनिक सैंडो-जैसा हृष्ट-पुष्ट बननेके लिए आत्मसंयमका पालन करते हैं? पत्रलेखकको अपने उपायोंसे निकलनेवाले परिणामोंपर ठंडे मनसे विचार कर देखना चाहिए। मैं सोचता हूँ कि हमारे पास १०,००० सच्चे ब्रह्मचारियोंकी सेना हो तो हम मुसलमानों, अंग्रेजों और अन्य सबको जीत सकते हैं। क्या लेखककी समझमें यह बात नहीं आती कि उनके ये ब्रह्मचारी उनके सुझाये हुए तरीकेसे नहीं लड़ेंगे? यह सच है कि उन्हें ऐसा करनेकी जरूरत भी नहीं होगी।

रजिस्टरोंका विवरण

निम्न समितियोंने उन पंजीयित प्रतिनिधियोंके विवरणके रजिस्टर भेज दिये हैं, जिनका नाम मास-प्रतिमास सूत कातनेके लिए दर्ज किया गया है।

बंगाल	...	१०६६
मध्य प्रान्त (हिन्दुस्तानी)	...	१०५५
बिहार	...	७९०
गुजरात	...	३८१
बम्बई	...	२३७
संयुक्त प्रान्त	...	२४२
बर्मा	...	३६

असम, दिल्ली, बरार, उत्कल, पंजाब, सिन्ध तथा केरलको छोड़कर अन्य प्रान्तोंने सूचित किया है कि वे अपने रजिस्टरोंको इस मासकी १० तारीखसे पहले भेज देंगे। मुझे पूरी आशा है कि ये शेष प्रान्त भी अपने रजिस्टर भेजने तथा अपने हिस्सेका सूत भेजनेमें, जो अधिक आवश्यक है, गफलत नहीं करेंगे। मैं यह मान लेता हूँ कि जिन्होंने रजिस्टर भेज दिये हैं वे यह भी ध्यान रखेंगे कि सदस्य अपने हिस्सेका सूत स्वयं कात रहे हैं। यह दिलचस्प बात है कि बंगालमें प्रतिनिधियोंकी संख्या सबसे अधिक है। दूसरे स्थानपर मध्यप्रान्त (हिन्दुस्तानी) आता है। यदि ये सभी प्रतिनिधि अपने हिस्सेका सूत नियमित रूपसे भेजना जारी रखेंगे तो हम सहज ही खादीको टिकाऊ बनानेमें सफल हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-८-१९२४

२८६. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

[अहमदाबाद
७ अगस्त, १९२४]

मैंने उक्त पत्रको[1] अभी-अभी देखा। ऐसी कोई बात मैंने न लोकमान्यकी पुण्य-तिथिके अवसरपर आयोजित सभामें कही और न कहीं दूसरी जगहपर ही। उस बाढ़ग्रस्त प्रान्तमें मैंने कई लोगोंको तार दिये हैं, लेकिन किसीमें भी मैंने 'कताई' या 'खद्दर' शब्दका प्रयोग नहीं किया है। बड़े ताज्जुबकी बात है कि इस खबरपर किसीने विश्वास कैसे कर लिया। मैंने जो मत व्यक्त किया था, उसपर मैं अब भी कायम हूँ। मेरा कहना है कि राहत पहुँचानेका यह कार्य किसी भी गैर-सरकारी संस्थाके बूतेसे बाहरकी बात है; और न कांग्रेसके कोषसे ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। इस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके पास बहुत कम पैसा बच रहा है। यह विपत्ति इतनी बड़ी है कि इसमें हर व्यक्तिको — चाहे वह सहयोगी हो अथवा असहयोगी, उदारदलीय अथवा सरकारी अधिकारी — अधिकसे-अधिक सहायता देनी चाहिए। मैं सोचमें पड़ा हूँ कि किस तरह सहायता पहुँचाऊँ। पहला तार मिलते ही मैंने 'यंग इंडिया' में एक अपील निकाली थी। एक मित्रसे मैं व्यक्तिगत रूपसे मिला भी और उनसे कुछ रकम प्राप्त की। मैं और भी सहायता प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। मैंने ऐसी ही अपील 'नवजीवन' के पाठकोंसे भी की है, लेकिन मेरी राय है कि जितनी सहायताकी जरूरत है, उसको देखते हुए, कोई भी एक व्यक्ति चाहे जितना प्रयत्न करें, राहतके लिए वह अपर्याप्त होगी। यह काम तो कारगर तरीकेसे सिर्फ

१. भेंटके दौरान गांधीजीका ध्यान **टाइम्स ऑफ इंडियामें** प्रकाशित एक पत्रकी ओर आकृष्ट किया गया, जिसमें उनकी इस कथित सलाहकी आलोचना की गई थी कि मलाबारके बाढ़ग्रस्त लोगोंको कताई करनी चाहिए।

सरकार ही कर सकती है और यही कारण है कि मैंने कांग्रेसके लोगोंको निःसंकोच भावसे सलाह दी कि वे इस कार्यसे सम्बन्धित किसी भी सरकारी संगठनके काममें हाथ बँटाये। निजी तौरसे दी गई मदद ठीक ही रहेगी; इससे सरकारी संगठनों द्वारा किये गये काममें जो कमी रहेगी, वह पूरी हो जायेगी। राहत देनेके ऐसे काममें हाथ बँटानेका मेरे लिए यह पहला ही अवसर नहीं होगा; इससे पहले भी मैं कई बार ऐसा कर चुका हूँ। मुझे इस सम्बन्धमें इतनी पर्याप्त जानकारी है कि जिसके आधार-पर मुझे लगता है कि आगामी कई महीनोंतक राहत पहुँचाते रहना जरूरी होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८-८-१९२४

२८७. भाषण : गुजरात महाविद्यालयमें[1]

अहमदाबाद
८ अगस्त, १९२४

अध्यापक भाइयो, विद्यार्थियो और विद्यार्थिनियो,

आपको कृपलानीजीने राजाका गीत[2] सुनाया; परन्तु यदि राजा छः सालमें आनेकी बात कहकर गया हो और वह उसके बजाय दो ही बरसमें आ खड़ा हो तो इसमें कसूर राजाका है, प्रजाका नहीं। राजाको सोचना चाहिए कि प्रजाको तैयारीका समय नहीं मिला।

आपने जितना हो सका आपने उतना दे दिया। परन्तु उसके बारेमें कुछ कहने से पहले मुझे एक फैसला देना है। पक्षोंका नाम लेनेकी जरूरत नहीं है। आप तो उनको जानते ही होंगे। एक अध्यापकने पत्र लिखकर पूछा है कि चरखा गांधीके लिए कातें या देशके लिए? यह सवाल आसान है। आज विद्यालयमें शिक्षा पाते हैं, इसलिए आप यह तो समझते ही होंगे कि हर बातके कमसे-कम दो पहलू हुआ करते हैं — एक काला और दूसरा उजला अथवा एक गरम और दूसरा नरम। यदि हम सम्बन्धित पक्षोंके दृष्टि-बिन्दुसे सोचें तो दोनोंकी बातें ठीक ठहर सकती हैं। जो शख्स गांधीके लिए सूत कातता है वह अपनी दृष्टिसे सच्चा है। जो देशके लिए कातता है वह भी सच्चा है। क्योंकि वह जानता है कि गांधी आज नहीं तो कल दुनियामें नहीं रहेगा। इसकी दृष्टि कुछ ज्यादा ठीक मालूम होती है, क्योंकि जहाँ

१. रिहाईके बाद पहली बार महाविद्यालयमें आनेपर स्वागतार्थ की गई सभामें दिया गया भाषण। छात्रोंने इस अवसरपर उनको १,२२९ रुपयेकी थैली मलाबारके बाढ़ पीड़ितोंके सहायतार्थ दी थी। उन्होंने बहुत-सा हाथ-कता सूत भी दिया था जिसकी बिक्रीकी रकम भी इसी निमित्त खर्च की जानी थी। सभाकी अध्यक्षता आचार्य जीवतराम भ० कृपलानीने की थी।

२. कृपलानीजीने अपने स्वागत भाषणमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी गीतांजलिकी एक कविता सुनाई थी। इसमें यह भाव है कि हम राजाका स्वागत जैसा करना चाहते थे, वैसा नहीं कर पाये।

पहले व्यक्तिको क्षणिक वस्तुका मोह है वहाँ दूसरेको देशके प्रति प्रेम है और देश तो क्षणिक वस्तु नहीं। यदि हम स्वराज्य तलवारसे लें तो हमें उसे कायम रखनेके लिए तलवार रखनेकी ही जरूरत होगी। यह दुनियाका नियम है। इसलिए जबतक देश है तबतक चरखा भी है ही, इस दृष्टिमें निर्मलता है; मोह नहीं। अब रही तीसरी बात। हम खुद अपने ही लिए चरखा क्यों न कातें? हम बलिदान और त्यागकी जो बातें करते हैं वह तो संसारकी आँखमें धूल झोंकना है। हमारा त्याग, त्याग नहीं है — वह तो विलास है। इसमें हमारी इच्छाको सन्तुष्ट करनेका स्वार्थ रहता है और 'देशके लिए' का अर्थ है स्वयं अपने लिए। अगर हम अपने लिए चरखा कातनेको तैयार होंगे तो फिर उसे हम ठीक वैसे ही नहीं छोड़ सकेंगे, जैसे हम खाना, पीना और अन्य शारीरिक धर्मोंको नहीं छोड़ सकते। परन्तु ये तीनों दृष्टियाँ उन-उन मनुष्योंके अपने दृष्टि-बिन्दुसे सच्ची हैं।

जा विधि आवे ता विधि रहिए।
जैसे तैसे हरिको लहिए॥[1]

इसमें अखा भगतने जीवन-कर्त्तव्य सूचित कर दिया है। चरखा मुझे धोखा देनेके लिए नहीं, देशको धोखा देनेके लिए भी नहीं और न दूसरोंको धोखा देनेके लिए ही है, बल्कि काता तो अपने सन्तोषके लिए ही जाना चाहिए। जबतक हम लोग ढोंग-ढकोसलेसे बचकर काम करेंगे तभीतक हमारे कामकी प्रतिष्ठा होगी। शुद्ध ज्ञान जितना ही अधिक होगा, मोह उतना ही कम होगा। फिर भी मोह या प्रेमके वश-वर्ती होकर अच्छा काम करनेसे भी लाभ ही होता है। पुत्रके हृदयमें पिताके प्रति मोह रहता है। मैंने जो सच बोलना सीखा उसमें मेरे पिताका कुछ हिस्सा है। उस समय मुझे इतना ज्ञान न था कि सच बोलना ही अच्छी बात है। परन्तु यह मोह मुझमें जरूर था कि मुझे अपने पिताके लिए कमसे-कम इतना तो करना चाहिए। मैंने माताके प्रेमके कारण माँस छोड़ा। मैं माताके प्रेमके कारण ही व्यभिचारमें फँसते-फँसते बचा। नहीं तो आज मैं दुनियामें एक बहुत ही अधम व्यक्ति होता। इस प्रकार मैं मोहके वश होकर ऊँचा उठा। परन्तु ऊँचा उठा, यह भी कौन कह सकता है? मैं तो वास्तवमें गिरते-गिरते बचा हूँ। मैं माता और पिताके प्रेमके वशवर्ती और उनके वशवर्ती होकर बचा हूँ। व्रत तो जिन्दगीमें मेरा सहारा है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य शुभ कार्य अनेक भावनाओंसे करता है। आपने जो सवाल उठाया है उसकी तो जरूरत ही नहीं थी। असली बात यह थी कि आपको कातना जरूर था। आपका पाँच तोला सूत कातकर चरखेको फेंक देना उचित नहीं है; यह तो पतनका चिह्न है। चरखा तो सतत चलता ही रहना चाहिए। आपकी भावनापर ही इसका अस्तित्व और नाश निर्भर है।

महाविद्यालयके विद्यार्थियोंको वे कुछ बातें समझ ही लेना चाहिए जिनपर विद्यालयकी नींव रखी गई है। उनके बिना राष्ट्रीय विद्यालय राष्ट्रीय नहीं रह सकता।

१. ज्यम अवे तेम तू रहे।
ज्यम त्यम करीने हरिने लहे।

स्वराज्यके जो-जो साधन माने गये है, उन्हें समझ लिया जाना चाहिए। यदि हम उन्हें समझकर उनका पालन न करेंगे तो वह संसारकी आँखोंमें धूल झोंकने-जैसा होगा। यदि विद्यालयमें आपने बहुत लिख-पढ़ लिया हो और अंग्रेजी भी आ गई हो और आप संस्कृत इस प्रकार धाराप्रवाह बोलते हों कि आपको काशीके पण्डित भी नमस्कार करें तो भी यह कोई बड़ी बात नहीं है। यहाँ रहकर आपको ये बातें हासिल नहीं करनी है। आपको तो यहाँ कुछ अलौकिक गुण प्राप्त करने हैं। ये गुण दूसरे तमाम गुणोंसे बढ़कर है। ये है चरखा चलाना, अन्त्यजोंको गले लगाना और हिन्दू-मुसलमान-पारसी आदि जातियोंमें एकता कराना। आप किसी अन्त्यज लड़केसे मिले हैं? आप किसी पारसी अथवा मुसलमान लड़केसे मिले है? क्या आपने उन्हें कभी यह कहा है और समझाया है कि उनके लिए महाविद्यालयमें गुंजाइश है? आप उनसे महाविद्यालयमें आनेका अनुरोध करते है? यदि वे इतना करनेपर भी न आयें तो फिर कसूर आपका नहीं, विधिका है।

यदि बाहरसे कोई भी मनुष्य आपकी परीक्षा लेनेके लिए आयेगा तो वह आपके अंग्रेजी, गुजराती या संस्कृतके ज्ञानका परिचय देनेवाले उत्तरोंसे मुग्ध न होगा; वह तो दूरसे ही यह देखेगा कि आपके यहाँ चरखे चल रहे है या नहीं और अस्पृश्यताका बहिष्कार हो गया है या नहीं। चरखा, अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकता — हमारे कार्यक्रमके ये तीनों अंग हर दर्शकको फूले-फले दिखाई देने चाहिए। यदि आप इनको छोड़कर दूसरी बातोंमें पास हो जायें तो इसमें आपकी कुछ बड़ाई नहीं। यह तो महाविद्यालयमें अपना समय फिजूल गँवाना ही हुआ।

आप लोग जो-कुछ काम यहाँ कर रहे है उसके लिए मैं आपका उपकार मानता हूँ। अब आप एक कदम आगे बढ़ायें; अन्यथा आपको और देशको अपनी गर्दन नीची करनी होगी। आप देशके ऐसे सेवक बन जायें कि देश आपको साधुवाद दे। मैं तो गुजरात महाविद्यालयसे ज्यादासे-ज्यादा आशा रखता हूँ। आप विचार करके देखें कि हमने अबतक महाविद्यालयपर कितना धन खर्च किया है। प्राप्त रुपयोंमें से ९० प्रतिशत यहीं खर्च हुआ है। आप खर्चके इन आँकड़ोंका हिसाब खोलकर देखें कि प्रति विद्यार्थीपर हमने कितना खर्च किया है। इससे जिस तरह मैं काँप उठता हूँ उसी तरह लोग भी काँप जायें। आपके दिलमें यह बेकली जरूर होनी चाहिए कि जो रुपया आपके ऊपर खर्चा हुआ है उसके बदलेमें आपने देशकी क्या सेवा की है। यदि ऐसा लगे कि हमारी भावी पीढ़ियाँ हमारे कामसे सन्तुष्ट न होंगी तो आपके लिए इस विद्यालयको छोड़ देना ही अच्छा है। आप इस बातको समझें और इसे गाँठमें बाँध लें कि आप असहयोगमें स्वराज्य-सिद्धिके लिए निर्धारित स्थायी अंगोंको अवश्य अपनायेंगे। इस बातको समझनेपर ही आप योग्य बनेंगे; आपपर जो कुछ खर्च हुआ है, आपको उससे भी अधिक बल मिलेगा। तभी जिस तरह बीज खेतमें फलता है उसी तरह आपपर खर्च हुई रकम फलेगी। मित्र, विद्यार्थी और कुलपतिकी हैसियतसे मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आपके सम्मुख केवल दो ही रास्ते हैं। आपको इन दोमें से एकको अपनाना होगा। कुलपतिकी खातिर सूत देना एक रास्ता है और मेरी खातिर सूत देना दूसरा रास्ता। यदि मुझपर आपकी श्रद्धा

हो और आप मेरे प्रति प्रेम या मोहके वश होकर सूत कातें तो यह उचित हो सकता है; परन्तु केवल मुझे सन्तोष देनेके लिए आपका सूत कातना बिलकुल अलग बात है। यदि चरखेपर आपकी श्रद्धा हो और फिर भी आप सूत न कातते हों और यदि मैं आकर आपकी काहिली दूर करूँ और आप मेरी खातिर काहिली छोड़ दें तो यह ठीक है। पर जिस बातपर आपको तनिक भी श्रद्धा न हो उसे आप केवल मुझे सन्तोष देनेके लिए करें तो यह बहुत बुरी बात है। यह पाखण्ड है, छल है, कपट है। जिस अध्यापकने यह बात कही कि उन्हें देशके लिए चरखा कातना चाहिए, उसने यह सच्चे अर्थमें ही कही होगी।

हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदी, ये सब हमारे भाई हैं। यदि आपको ऐसी श्रद्धा न हो और आप तदनुसार चलनेके लिए तैयार न हों तो आप खुशीसे महाविद्यालयको छोड़ दें। आप अपने रास्ते जायें; महाविद्यालय अपने कार्यकी रूप-रेखा खुद ही निश्चित कर लेगा।

यह बात कहते हुए मुझे महाविद्यालयकी इमारतकी याद आ गई। उसमें कितने ही अन्त्यज मजदूर काम करते हैं और उन्हें पानीकी तकलीफ रहती है। यदि आपमें सामर्थ्य हो तो आप खुद अन्त्यजोंके साथ काममें लग जायें, यदि इसपर दूसरे मजदूर काम छोड़कर जाना चाहें तो उन्हें जाने दिया जाये। परन्तु मैं देखता हूँ कि आपके पास ऐसा शरीर नहीं, और श्रमके प्रति ऐसा प्रेम नहीं। आप ऐसे अवसरपर अन्त्यजोंको और दूसरोंको अलग-अलग पानी लाकर दें। आप मुझे कह सकते हैं कि आप ऐसा परिश्रम करनेसे थक जायेंगे और फिर आपके पास पढ़नेका समय भी कैसे बचेगा। मैं कहता हूँ कि आप कृपलानीजीसे कहकर उसकी दूसरी व्यवस्था भी कर सकते हैं। आप ऊँची जातियोंके मजदूरोंसे कह सकते हैं कि वे अन्त्यजोंको पानी खींच-खींचकर पिलायें। आप उन्हें समझा सकते हैं कि यदि उनको अपनेसे हीन वर्णोंके लोगोंपर दया नहीं आयेगी तो आप स्वयं उनको पानी देंगे। इस प्रकार आप उनको दया और सत्याग्रह-का पदार्थ-पाठ पढ़ा सकते हैं। आप कमसे-कम इतना अवश्य करें कि स्वयं अन्त्यजोंको नहला-धुलाकर और खिलाकर ही खायें। हम चाहें जंगलमें, टूटे-फूटे मकानोंमें रह लेंगे, परन्तु अन्त्यजोंको नहीं छोड़ेंगे। ऐसा करनेसे उनके मनसे ऊँचे वर्गोंका भय जाता रहेगा। आपको यह शिक्षा अध्यापकगण नहीं दे सकते और यह पुस्तकोंसे भी नहीं मिल सकती। अध्यापक अपने आचरण द्वारा ही यह पदार्थ-पाठ पढ़ा सकेंगे। मैंने विद्यापीठकी स्थापनाके समय[1] ही कहा था कि यदि केवल अक्षर-ज्ञानके ही लिए यह संस्था खड़ी की जा रही हो तो मैं कुलपति होनेके योग्य नहीं हूँ। चरित्रबलको बढ़ानेकी शर्तपर ही विद्यापीठ आदि संस्थाओंकी नींव डाली गई है। इस बातकी याद दिलाना मेरा कर्त्तव्य है और आप इस अनिवार्य कर्त्तव्यको स्वीकार करें और उसे खूबीके साथ निबाहें।

यदि आपके चरखे धूप और बारिशमें पड़े सड़ते रहें तो समझिए कि आप पाप कर रहे हैं। विज्ञानकी प्रयोगशालामें जैसे आप अपने औजार साफ-सुथरे रखते

१. सन् १९२० में।

हैं, वैसे ही आपके चरखे भी नजर आने चाहिए। मैं आपसे अवश्य ही यह आशा करता हूँ कि आपके तकुए, चमरखे, रुई और पूनी आदि बढ़िया होंगे। आपको इसके लिए आश्रमका मुँहताज रहना उचित नहीं, क्योंकि आप तो 'विशारद' कहलाते हैं। यह आशा यदि आपसे नहीं तो फिर और किससे रखी जाये? इतना स्वाभिमान तो आपमें जरूर होना चाहिए कि आप इस सबका इन्तजाम स्वतन्त्र रूपसे कर लेंगे।'

आप भोजन खर्चमें कमी करके, दूधकी मात्रा घटाकर [राष्ट्रीय कोषमें] रुपया दें। यदि आपके पास खाली वक्त बचता है तो आप उसमें सूत कातें और उसे बेचकर उसका रुपया सहायतार्थ दें। आप स्वयं रुपया दें और अपनी जिम्मेदारीपर दूसरोंसे भी जितना इकट्ठा कर सकें उतना इकट्ठा करें। हम देशके निमित्त मरना सीखें। हम अपने देशके प्रति अपने मनमें उत्कट प्रेम उत्पन्न करें क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा-का अर्थ यही है। यदि लोगोंको गीली जमीनपर सोना पड़ता हो तो हम उन्हें सूखी जमीन दे सकते हैं और गीली जमीनमें स्वयं सो सकते हैं। हमने बचपनमें दलपत-रामसे[2] यह शिक्षा ली थी कि हमें अपने देशसे माँकी तरह प्यार करना चाहिए। हम देशकी ऐसी सेवा तभी कर सकते हैं जब कि हमारे मनमें इतना प्यार हो। जिन वस्तुओंकी आपको आवश्यकता नहीं है उनमें से कोई वस्तु दे डालनेका अर्थ कुछ नहीं होता। आप विशेष कष्ट उठाकर अपने कामकी वस्तुएँ दें। वह आपका विशुद्ध प्रेम होगा। आपको उसका ढोल पीटनेकी भी जरूरत नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

२८८. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

अति गोपनीय

प्रिय मोतीलालजी,

मैंने आपको एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखनेका वादा किया था; किन्तु अभीतक लिख नहीं पाया था। अभी चार दिन पहले मैं लिखने जा ही रहा था कि श्रीमती नायडूका पत्र आ गया, जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि वे यहाँ आ रही हैं। इसलिए उनके आनेतक मैं फिर रुक गया। मैं यह कहना चाहता था कि कांग्रेस आपके नियन्त्रणमें आ जाये, इसके लिए मैं आपका रास्ता सुगम बनाने, वास्तवमें उसमें आपको सहायता देनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन मतदाताओंको अपने पक्षमें करनेका आज जो अर्थ लगाया जा रहा है, उस अर्थमें मैं उन्हें किसी पक्षमें करनेके

१. इसके बाद गांधीजीने मलाबारके बाढ़-पीड़ितोंकी सहायतार्थ धनकी अपील की।

२. उन्नीसवीं सदीके प्रसिद्ध गुजराती कवि।

प्रयत्नमें शामिल नहीं होऊँगा। मैं कांग्रेससे बाहर रहकर काम करनेको तैयार हूँ; किन्तु उसके विरोधमें काम करनेके लिए तैयार नहीं हूँ। वातावरणमें शान्ति लाने, खद्दर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ावा देने और अस्पृश्यताको दूर करनेके अलावा और किसी बातमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं जानता हूँ कि इस सबमें मुझे आपकी मदद मिलेगी। स्वाभाविक है कि उस कामके लिए मैं अपने अधीन कोई संगठन भी चाहूँगा, लेकिन ऐसी किसी इच्छासे नहीं कि मैं किसी दिन कांग्रेसपर कब्जा कर लूँ। आज जैसा वातावरण है, उसमें मैं नहीं चाहूँगा कि बहुमत प्राप्त करनेके लिए विवाद खड़ा हो और उसमें राष्ट्रका समय बरबाद हो।

अगर आप पूरे कांग्रेस संगठनकी बागडोर हाथमें लेनेको तैयार न हों तो मैं उन प्रान्तोंकी कांग्रेसको हाथमें लेनेमें आपकी मदद करनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ, जहाँ उसके संचालनमें आपको कोई कठिनाई दिखाई न देती हो।

आपके कार्यक्रममें शामिल होनेकी बातको छोड़कर आप और जो-कुछ चाहें, मैं करनेको तैयार हूँ।

फिर कांग्रेस अध्यक्षका सवाल भी एक बड़ा सवाल है। राजगोपालाचारी, गंगाधरराव और राजेन्द्र बाबूका आग्रह है कि यह पद म स्वीकार कर लूँ। लेकिन वल्लभभाई और शंकरलालको मेरा यह विचार ठीक जान पड़ता है कि मैं उसे स्वीकार न करूँ। जमनालाल तटस्थ हैं और शायद यही स्थिति श्रीमती नायडूकी भी है। हाँ, यह बताना भूल गया कि शौकत अलीका भी आग्रह है कि मैं यह पद स्वीकार कर लूँ। लेकिन मैं एक ही हालतमें अपने निर्णयपर पुनर्विचार कर सकता हूँ — यानी अगर आप चाहें कि मुझे यह पद स्वीकार कर लेना चाहिए तो आप कृपया श्री दास, केलकर तथा अन्य सज्जनोंसे सलाह-मशविरा करके सूचित करें कि जिन दोनों बातोंके बारेमें मैंने आपसे पूछा है उनपर आपका क्या सुझाव है।

यह पत्र मैंने श्रीमती नायडूको पढ़कर सुना दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५१७७) की फोटो-नकलसे।

सौजन्य : कृष्णदास

२८९. पत्र : बदरुल हुसैनको

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

प्रिय बदरुल,

मुझे बहुत दुःख हुआ, जब श्रीमती नायडूसे मालूम हुआ कि तुम्हारा यह खयाल है कि यद्यपि तुम और भी बहुत-कुछ कर सकते हो, फिर भी मैंने तुमसे सब छोड़कर किसी गांवमें रहकर वही काम करते रहनेको कहा है। मुझे तो अपने ऐसे कहनेकी याद नहीं आती। इतना कहनेकी याद जरूर पड़ती है कि अगर तुम बाहरी सहायताके बिना बड़े पैमानेपर कोई काम नहीं कर सकते तो तुम्हें गांवोंमें जाकर वही काम शुरू कर देना चाहिए। किसी चीजकी खपतकी जब आसपासके इलाकेमें ही गुंजाइश न हो तो उनका बड़े पैमानेपर उत्पादन करना गलत है। लेकिन अगर तुमको अपने ऊपर भरोसा हो और तुम पूरे हैदराबादमें इसे संगठित कर सकते हो तो मेरे लिए इससे ज्यादा खुशीकी बात और क्या होगी? आत्मनिर्भर रहनेका ध्यान जरूर रखना होगा। मैं तुम्हें अपनी सामर्थ्य-भर सुन्दरसे-सुन्दर खद्दर तैयार करने तथा उसे अपने तईं अधिकसे-अधिक "कलात्मक" बनानेसे भी नहीं रोकना चाहता। मेरी बातसे अगर तुम्हें ऐसा लगा हो कि तुम्हारे सुन्दरसे-सुन्दर खद्दर तैयार कर सकनेकी क्षमताको जानकर भी मैंने तुमसे मोटा खद्दर ही तैयार करनेको कहा था तो बेशक तुमसे बातचीत करते समय मेरे मनमें कोई खब्त ही रहा होगा; और फिर मैं किसीसे ऐसा कोई काम करनेको तो कह ही नहीं सकता, जो उसे पसन्द न हो।

बात साफ न हुई हो तो लिखना। पद्मजाको[1] भी यह पत्र दिखा देना ताकि वह भी मेरे विचारोंसे अवगत हो जाये।

तुम्हारा
बापू

श्री बदरुल हुसैन
आबिद मंजिल
हैदराबाद (दक्षिण)

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. सरोजिनी नायडूकी पुत्री।

२९०. पत्र : हंसेश्वर रायको

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यदि कोई पत्नी अपने पतिके विचारोंसे सहमत न होते हुए भी अन्य दृष्टियोंसे सर्वथा निर्दोष हो तो पाशविक वासना-रहित स्नेहके द्वारा उसके मनको जीता जा सकता है। इस प्रक्रियाके दौरान पतिको चाहिए कि पत्नीको अपने मनसे चलते रहने दे और स्वयं वही करता रहे जिसे वह सर्वोत्तम समझता हो। लेकिन पत्नी यह आशा भी न रखे कि पति उसकी खर्चीली रुचियोंका बोझा उठाये। जहाँतक भोजन और वस्त्रकी बात है, पत्नीके लिए उसका प्रबन्ध करना पतिका कर्त्तव्य है। पत्नीको पतिकी आयमें हिस्सा बाँटनेका अधिकार है, किन्तु उसे यह अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए कि पति कर्ज लेकर उसकी इच्छाएँ पूरी करे। मुझे विश्वास है कि जहाँ केवल विशुद्ध स्नेहका राज्य है, वहाँ अन्य सभी मतभेद दूर हो जाते हैं या यदि रहते भी हैं तो उनके बावजूद सम्बन्ध-निर्वाहके लिए कोई सम्मानजनक रास्ता निकल ही आता है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

हंसेश्वर राय
७।१ . . .
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२९१. पत्र : तीरथराम जनेजाको

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

इस दुःखमें आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। आत्महत्या पाप है और हरएक पाप वियोगकारी होता है। इसलिए आत्महत्या करनेसे तो आपके और आपकी पत्नीके बीचकी दूरी बढ़ेगी ही। फिर मृत्युसे समस्या हल भी नहीं होगी; क्योंकि तब आप वहाँ चले जायेंगे जहाँ जाना आपके भाग्यमें लिखा है और वे वहाँ रहेंगी जहाँ रहना उनके भाग्यमें लिखा है। लेकिन आप इस शरीरको छोड़नेतक खुदको सुधार सकते हैं। आप उनके शरीरको प्यार करते थे या उसमें प्रतिष्ठित आत्माको? यदि आप शरीरको प्यार करते थे तब तो आपको चाहिए था कि उसपर मसाले चढ़ाकर उसे अपने कमरेमें बन्द करके रखते। यदि उनकी आत्माको प्यार करते थे तो वह तो अब भी आपके साथ है। उनमें जो-कुछ अच्छा था, उसकी स्मृति ही क्या आपके लिए पर्याप्त नहीं है? या आपका प्रेम स्वार्थपूर्ण था? जिन्हें हम प्यार करते हैं उनकी मृत्युके बाद तो हमें ऐसा अनुभव होना चाहिए कि वे हमारे और भी निकट आ गये हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री तीरथराम जनेजा
कानपुर

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२९२. पत्र: अली बन्धुओंको

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

प्रिय भाइयो,

मुझे आप दोनोंके तार मिले। मुझे नहीं मालूम कि आप कहाँ हैं। अगर बी-अम्मा कहीं पास ही हों तो उन्हें मेरा आदाब कहें। उनसे कह दीजिए कि अगर ईश्वर उन्हें उठा लेता है तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा। जितने गौरव और सन्तोषके साथ वे शरीर-त्याग कर सकती हैं, उतने गौरव और सन्तोषके साथ और कोई माता शरीर-त्याग नहीं कर सकती। दुःख उनके लिए होगा जो पीछे रह जायेंगे। हम अपने वृद्धसे-वृद्ध कुटुम्बीका भी संसारसे उठ जाना पसन्द नहीं करते और माताके बारेमें तो हम यही चाहते हैं कि वह सदा हमारे साथ रहें। ईश्वरकी इच्छा कुछ और होती है। किन्तु शरीरका अन्त हो जानेपर भी आत्माका अस्तित्व सदा बना रहता है। इसलिए आप चिन्ता न करें — ईश्वर उन्हें हमारे साथ कुछ दिन और रहने दे तो ठीक और न रहने दे तो भी ठीक।

आपका,
मो० क० गांधी

मौलाना शौकत अली
और मुहम्मद अली

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२९३. मजदूर संघको सलाह[1]

अहमदाबाद
९ अगस्त, १९२४

अगर मजदूर संघ चाहे तो वह जाँच-समितिके सामने बयान पेश कर सकता है लेकिन, मैंने जान-बूझकर मजदूर संघको सलाह दी है कि यह जरूरी नहीं कि वह अपनी ओरसे बयान दे। मजदूर संघके संगठनकर्त्ता असहयोगी हैं, इसलिए वे जाँचमें कोई प्रत्यक्ष हिस्सा नहीं ले सकते, लेकिन मजदूरोंके सलाहकार और संरक्षकके रूपमें वे उनमें कुछ हिस्सा ले सकते हैं। जाँचका विषय इतना सीमित है कि मजदूरोंको उससे कोई लाभ नहीं होगा। मजदूर संघके इस जाँचमें हिस्सा नहीं लेनेका एक और भी बड़ा कारण इस जाँच-आयोगके कामका तरीका है। वह यथासम्भव मिल-मालिकोंसे मतभेदोंका निपटारा संगत तरीकोंसे करेगा। इसलिए जबतक कोई बहुत जबरदस्त कारण न हो, मजदूर संघको दो बातोंका ध्यान रखना है — एक तो भविष्यमें इमारतोंकी विशेष सुरक्षितताके भरोसेका, और दूसरे मृतकों और घायलोंके लिए हर्जाना दिये जानेका। हर्जानेके सवालसे इस जाँचका कोई प्रत्यक्ष सरोकार नहीं है। भविष्यमें इमारतें ठीक सुरक्षित रहें, इस ओर मजदूर संघ पूरी तरह सतर्क है और जिन अधिकारियोंसे इस विषयमें बातचीत की जानी चाहिए उनसे बातचीत चल रही है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ११-८-१९२४

२९४. मलाबारमें बाढ़

मलाबारकी बाढ़के सम्बन्धमें सहायता देनेके लिए मेरे पास तारपर-तार आ रहे हैं। वहाँ हजारों लोगोंके घरबार पानीमें बह गये हैं, सारी फसल जलमग्न हो गई है और उपजाऊ भूमिपर रेत चढ़ आई है। ऐसी हालतमें कौन किसे मदद दे सकता है? ऐसे समय एक उपाय यह है कि सरकार जो-कुछ करे उसे हम ठीक मानें और चुप हो जायें। सरकार जो सहायता हमसे चाहे और हम जो सहायता दे सकें वह जरूर दें। इतना होते हुए भी लोगोंके निजी तौरपर दान देने और सेवा करनेकी गुंजाइश तो है ही।

१. गुजरात जिनिंग मिलमें एक दुर्घटना हो गई थी, और उसकी जाँच हो रही थी। यह सलाह गांधीजीने उसीके सम्बन्धमें दी थी। गांधीजीकी यह सलाह अहमदाबाद मजदूर संघ द्वारा प्रकाशित *मजदूर सन्देश* नामक पत्रिकामें छपी थी।

यह संकट एक दिन या एक महीनेमें दूर नहीं हो सकता। यह तो सालभर या सालों भी चल सकता है। पिछले साल दक्षिण कर्नाटकमें बाढ़ आ गई थी। उसका काम अभी चल ही रहा था कि इस बीच वहाँ फिर बाढ़ आ गई है। फिर इस कारण सहायताका कार्य नये सिरेसे किया जाना है। परन्तु जब इतनी छोटी-सी बाढ़से हुई हानिका प्रबन्ध करनेमें लगभग पूरा साल भी काफी नहीं हुआ, तब जहाँ प्रान्तका-प्रान्त जलमग्न हो गया है वहाँका प्रबन्ध करनेमें कितना समय लगेगा, यह कौन कह सकता है? इसलिए मैं गुजराती समाजकी उदारताका अवश्य ही आह्वान करना चाहता हूँ।

गुजरातियोंने उड़ीसाके अकाल-पीड़ित लोगोंको[1] दिल खोलकर मदद दी थी। गुजरातियोंने दूसरे अनेक कोषोंमें रुपया दिया है। दान देना जिसका स्वभाव बन गया है उसीके सामने हाथ भी फैलाया जा सकता है। अतः 'नवजीवन' के पाठकोंसे मेरी याचना है कि वे मलाबारके निराधार लोगोंकी सहायता करें। वे जो भी चाहें और जितना भी चाहें भेजें। विद्यार्थियोंसे भी उन्हें मलाबारका भूगोल पढ़ाकर, मलाबारियोंके संकटकी बातें बताकर और उनकी प्रेमवृत्तिको जाग्रत करके कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

प्रत्येक पाठक

१. अपनी एक दिनकी आमदनी दे सकता है।

२. अपने पड़ोसीसे भी इतना ही त्याग करा सकता है।

३. अपने एक दिनके भोजनकी कीमतके बराबर रकम दे सकता है।

४. इस निमित्त अधिक सूत कातकर भेज सकता है।

५. अपने कपड़े-लत्तेके खर्चमें कुछ भी कमी करके उससे कुछ बचाकर भेज सकता है।

६. यदि उसे कोई व्यसन हो तो उसे छोड़कर बचनेवाली रकम दे सकता है।

७. जो पूरा व्यसन न छोड़ सके तो उसमें कमी करके बचतकी रकम भेजी जा सकती है।

८. जो अनेक व्यसन करता हो वह उनमें से इस दृष्टिसे कुछ व्यसन छोड़ कर मदद कर सकता है। जो खुद ऐसा करेगा वह अपने मित्रों और रिश्तेदारोंको भी उसके लिए प्रेरणा दे सकता है।

इसमें सहयोगी और असहयोगीका भेद नहीं हो सकता।

पाठक इस बातपर विश्वास रखें कि जो धन और जो चीजें मिलेंगी उनका सदुपयोग ही होगा। इसका जितना प्रबन्ध हो सकेगा, उतना किया जायेगा।

यह सवाल पूछना आवश्यक नहीं है कि कितने धनकी जरूरत है। यहाँ इसी न्यायसे काम लेना चाहिए कि जितना अधिक देंगे उतना ही अधिक फल होगा। जितना देंगे और जितना करेंगे, सब कम होगा। सद्भावसे जो चीज मिलेगी वह लाख-

१. सन् १९२०-२१ में।

के बराबर है। सब लोग शुद्ध भावसे यथाशक्ति दें; यही मेरी याचना है। जो-कुछ मिलेगा उसकी पहुँच 'नवजीवन' में देनेका इरादा रखता हूँ। एक सज्जनने २५० रुपये दिये हैं। वे तो उसी समय मिले थे जब दक्षिण कर्नाटकमें पहली बाढ़ आई थी। फिर भी उनकी प्राप्ति स्वीकार आज करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

२९५. शिक्षा-परिषद्

यह परिषद् आरम्भ हुई और समाप्त हो गई। शिक्षकों और साधारण जनता दोनोंकी दृष्टिसे इसे महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। परन्तु आज तो इन दोनोंमें से कोई भी इसे महत्त्व नहीं देगा। शिक्षकोंकी कीमत न तो लोगोंकी दृष्टिमें है और न खुदकी उनकी ही दृष्टिमें। उनकी कीमत उनके वेतनसे आंकी जाती है। शिक्षकका वेतन एक मुन्शीके वेतनसे भी कम होता है। इसलिए रिवाजके अनुसार शिक्षककी कीमत मुन्शीसे भी कम हो गई। कहीं इसी कारण तो हम शिक्षकको मुन्शीजी कहते हैं?

तो अब शिक्षकका दरजा किस प्रकार ऊँचा हो? भला सात लाख देहातोंके सात लाख शिक्षकोंका वेतन कोई बढ़ा सकता है? इतने शिक्षकोंका वेतन नहीं बढ़ाया जा सकता और बढ़ाना आवश्यक मालूम हो तो कुछ गाँवोंमें महँगे शिक्षक रखकर शेष गाँवोंको शिक्षासे वंचित रखना पड़ेगा। जबसे अंग्रेजी राज्यकी स्थापना हुई है यही होता आया है। हम देखते हैं कि यह तरीका गलत है। अतः हमें ऐसी तरकीब ढूंढ निकालनी चाहिए जिससे हम सभी गाँवोंमें शिक्षाका प्रबन्ध कर सकें। वह तरकीब यह है कि शिक्षकोंकी कीमत वेतनके अनुसार न आंकी जाये, बल्कि शिक्षक वेतनको गौण मानकर शिक्षाको प्रधान स्थान दें। संक्षेपमें कहूँ तो शिक्षा प्रदान करना शिक्षकका धर्म होना चाहिए। इस यज्ञको किये बिना जो शिक्षक भोजन करे, उसे चोर समझना चाहिए। यदि ऐसा हो जाये तो फिर शिक्षकोंकी कमी न रहे और फिर उनकी कीमत करोड़पतिसे भी करोड़ गुनी अधिक मानी जाये। प्रत्येक शिक्षक अपनी भावनाको बदलकर आज भी इस स्थितिको प्राप्त कर सकता है।

इस परिषद्को सफल करना, न करना शिक्षकोंके हाथ है। शिक्षकोंकी प्रतिज्ञामें सफलताकी कुंजी है। यदि शिक्षक अपना धर्म मानकर कताई सम्बन्धी तमाम विधियाँ सीख लें और प्रति मास कमसे-कम ३,००० गज सूत कांग्रेसको अर्पण करें तो शिक्षा-परिषद् सफल हुई मानी जा सकती है। इतना तो हरएक शिक्षक करके दिखा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षकोंका वर्तमान कार्य है स्वराज्य प्राप्तिमें मदद करना। सूत कातना और खादी पहनना यह उनकी कमसे-कम और सर्वप्रथम सहायता है। जो इतना करते हैं, वे शेष बातें भी करते हैं। दूसरी तमाम बातोंके करते हुए भी जो इतना नहीं करते, वे कुछ भी नहीं करते।

अतः बड़े लोग जैसा करते हैं वैसा ही छोटे करते हैं, 'गीता' के इस न्यायके अनुसार शिक्षक जैसा करेंगे वैसा ही उनके शिष्य करेंगे। इस तरह लोगोंको सहज शिक्षकों ही और शिष्योंकी ओरसे एक भारी भेंट मिलेगी।

छुआछूत दूसरी कसौटी है। यदि शिक्षकोंमें आत्मबल होगा तो वे अपनी पाठशालाओंमें अन्त्यजोंको जरूर आकर्षित करेंगे। यदि इससे पाठशाला टूट जाये तो चिन्ता नहीं। पाठशाला धर्मके लिए है, धर्म पाठशालाके लिए नहीं है। यदि बालकोंको अस्पृश्यता छोड़ देनेका पदार्थपाठ न दिया जाये तो फिर क्या दिया जायेगा। यदि बच्चोंके माँ-बाप कहें कि हमारे लड़केको सत्यकी शिक्षा अधिक न दें; क्योंकि सत्याचरणी होनेसे वे व्यापारके लायक नहीं रहेंगे तो शिक्षक क्या कहेगा? क्या वह उन बालकोंको त्याग न देगा? सत्य-हीन इतिहास भूगोल और अंकगणितसे क्या लाभ होगा? इसी प्रकार शिक्षक अपने गाँवोंके मुसलमानों, पारसियों तथा इतर जातियोंके बालकोंको भी पाठशालामें भेजनेके लिए जरूर उनके माँ-बापसे अनुरोध करें।

यदि शिक्षक आजीविकाको भूलकर शिक्षादानके अपने कर्त्तव्यको ही याद रखें तो पाठशालाओंमें नवीन चैतन्य दिखलाई देने लगे और वे सच्चे अर्थमें राष्ट्रीय हो जायें। राष्ट्रीय हलचलमें उनका उपयोग उसी हालतमें हो सकता है। हमने जिस बातको अंगीकार किया है उसके प्रति निष्ठावान बने रहना तो बालक, वृद्ध और स्त्री-पुरुष सबके लिए पहला पाठ है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

२९६. टिप्पणियाँ

हिमालयकी महिमा

हिमालयमें रहनेसे तन्दुरुस्ती सुधर जाती है, इसे केवल अंग्रेजोंने जाना या खोजा हो सो नहीं है। हिमालयकी महिमा प्राचीन ग्रन्थोंमें भी गाई गई है। यह दिखानेके लिए एक मित्रने आयुर्वेदमें हिमालयकी जो स्तुति की गई है उसका अनुवाद[1] करके भेजा है। आशा है, वह पाठकोंको रुचेगा।

इन वाक्योंको पढ़ते हुए यह भाव किसके मनमें उदित नहीं होगा कि जब वे लिखे गये थे तब हमारे पूर्वजोंका जीवन अवश्य ही काव्यमय रहा होगा। इसमें उन्होंने अति सीधी-सादी बातको अलंकारोंसे सजाकर माधुर्यपूर्ण बना दिया है। वे ऐसा कर सकते थे; क्योंकि उस समय लोगोंको सन्तोष था। हिन्दुस्तान तब अपेक्षाकृत सुखी था। यहाँ गरीब भी भूखों नहीं मरते थे। तब भारत स्वावलम्बी था। क्या यहाँ ऐसा समय फिर न आयेगा? वैद्य सच्चे बनें; हम भी सच्चे बनें तभी ऐसा समय फिर आ सकता है। वैद्य स्वयं हिमालयमें जाकर नवस्फूर्ति प्राप्त करें, प्रामाणिक बनें, औषधियोंकी खोज करें और हमें पुण्यार्थ प्रदान करें। आज तो वैद्य

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

घेलेकी दवा देकर रुपया लेना चाहता है। उन्होंने पश्चिमकी शोधक शक्तिको तो नहीं अपनाया पर उसके धनके लोभका अनुसरण अवश्य किया है। वे पुराने श्लोकोंको रट-रटाकर दवा देते और रोगोंको घटानेके बदले बढ़ाते रहते हैं। वे अखबारोंमें तरह-तरहके विज्ञापन छपवाकर हम रोग-पीड़ित लोगोंको ललचाते हैं और हमें सदाके लिए दवाका और साथ ही अपना गुलाम बना लेते हैं। यदि वे हिमालयमें जाकर बसें और नई-नई खोज करें और हमें संयमी बनानेका प्रयत्न करें तो इससे उनका भी कल्याण हो और हमारा भी। जो काम सौ दवाएँ नहीं कर सकतीं वही काम एक दवा[1] कर सकती है, यह हम उनसे सीखें। आज पहाड़ या तो अमीरोंके लायक रह गये हैं या फकीरोंके। मध्यम वर्गके भाग्यमें तो अनेक दवाएँ पी-पी कर जैसे-तैसे जिन्दगी काटना बदा है।

मिलकी दुर्घटना

अहमदाबादमें अभी हालमें जो एक मिल ढह गई थी, उसकी जाँच एक सरकारी समिति कर रही है। इस समितिका कार्य क्षेत्र तो बहुत संकुचित है, उसकी अपेक्षा मिल-मालिकका कर्त्तव्य कहीं अधिक है। मिल-मालिक संघका कर्त्तव्य तो उससे भी बहुत ज्यादा है और कुछ अंशोंमें मजदूर संघका कर्त्तव्य इन सभीसे अधिक है।

सरकारी समिति क्या करती है, यह बात अलग है; किन्तु मिलके मालिकोंका कर्त्तव्य तो स्पष्ट है कि जो परिवार निराश्रित हो गये हैं उनका वे पूरा भरण-पोषण करें। दुर्घटना किसी भी कारणसे हुई हो; उसमें बेचारे मजदूरोंका तो कोई भी हाथ न था। मिलकी इमारतको बनानेमें भी उनका हाथ नहीं था। इस स्थितिमें चाहे मिल-मालिक कानूनन बाध्य न भी हों, किन्तु वे धर्मतः इसपर बाध्य हैं कि निराश्रित परिवारोंका भरण-पोषण करें, घायल लोगोंकी सार-सँभाल करें और भविष्यमें इमारतकी मजबूतीके बारेमें अधिक सावधानी रखें।

मिल-मालिक संघका कर्त्तव्य सभी मिल-मालिकोंकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना है। सभी मिलोंकी इमारतोंको ठीक हालतमें रखनेकी जिम्मेदारी उनकी है। उसे चाहिए कि वह निष्पक्ष वास्तु-विशेषज्ञोंसे प्रत्येक मिलकी इमारतकी मजबूतीकी जाँच कराये और उसका प्रमाणपत्र ले; यदि किसी इमारतमें खराबी हो तो उसे सुधरवानेकी व्यवस्था की जाये। उसे यह जाँच भी करनी चाहिए कि इस मिल-मालिकने मिलके जख्मी मजदूरोंकी सार-सँभाल और निराश्रित परिवारोंके निर्वाहकी उचित व्यवस्था की है या नहीं।

मजदूर संघकी जिम्मेदारी बहुत है और नाजुक है। मजदूरोंके हितोंका ध्यान रखना उसका विशेष धर्म है। यह भय सदा ही रहता है कि मिल-मालिक इसे एक उलटा काम मानें फिर भी मजदूर संघको मजदूरोंकी जीवन-रक्षाके लिए उचित कदम उठाना ही चाहिए। मिल-मालिकोंकी मार्फत ऐसी कार्रवाई करवाना तो स्वाभाविक और पहला कदम है। किन्तु यदि उनसे सहायता न मिले तो भी उसको उचित कार्रवाई अवश्य करनी चाहिए। किन्तु मैं इस सम्बन्धमें विस्तृत विचार 'मजदूर

१. मूलमें 'दवा' ही है।

सन्देश'[1] की मार्फत ही व्यक्त करना चाहूँगा। इसलिए 'नवजीवन' का स्थान नहीं लेता। मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि मिल-मालिक मजदूर संघकी स्थितिको विषम न बनायें और यह समझकर कि मजदूर-संघके व्यवस्थापक उनका अहित नहीं चाहते बल्कि हित ही चाहते हैं, मजदूर संघको मजदूरोंके हित-रक्षकके रूपमें सहायता दें और उससे जो आवश्यक हो वह सहायता लें।

आवकारलायक या आवकारदायक?

शिमला निवासीने[2] लिखा है, आपने जैसे 'तल्लीन' के[3] सम्बन्धमें सुधार स्वीकार कर लिया वैसे क्या आप 'आवकारदायक'[4] शब्दको न सुधारेंगे? मैंने तो यह सुधार लेखमें ही दिया है, दायकका अर्थ है देनेवाला, लायकका अर्थ है योग्य। इस अर्थमें सरकारका अत्याचार आवकारलायक[5] माना जाना चाहिए। आवकारदायक नहीं। ऐसी भूलें तो न जाने कितनी होती होंगी। ऐसी भूलोंके लिए मैं नेक सलाह देता हूँ कि 'नवजीवन'के पाठक भूलचूक सुधार करके ही 'नवजीवन' पढ़ें।

सिखानेकी सुविधा

कहा जाता है कि यदि चरखे आदिकी सुविधा मिले तो अहमदाबादमें बहुतसे भाई और बहन सूत कातना सीखना चाहते हैं। इस तरहकी कोई असुविधा न हो; इस दृष्टिसे भाई लक्ष्मीदासने निम्न सूचनाएँ दी हैं:[6]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-८-१९२४

२९७. माला या चरखा?

'नवजीवन' में एक भाईका एक रोषपूर्ण पत्र प्रकाशित हुआ था। उसमें उसने मेरे अधिकांश कार्यक्रमों और मोटे तौरपर मेरी जीवन-चर्याका विरोध प्रदर्शित किया है। एक मित्रने 'यंग इंडिया' के पाठकोंके लाभार्थ उस लेखका तथा उसका जो मैंने उत्तर लिखा था, अनुवाद कर दिया है। उत्तर यहाँ दिया जा रहा है, पत्र नहीं दे रहे हैं; क्योंकि आपत्तियाँ जो उठाई गई थीं, उत्तरसे स्पष्ट हो जाती हैं[7]।

धर्म सीधी लकीर नहीं; बल्कि विशाल वृक्ष है। उसमें करोड़ों पत्तोंमें से दो पत्ते भी एक-से नहीं हैं। उसकी प्रत्येक टहनी दूसरीसे जुदा है। उसकी एक भी

१. मजदूर संघ, मजूर-महाजन अहमदाबाद, द्वारा प्रकाशित पत्रिका।
२. पत्र-लेखकका उपनाम।
३. देखिए "मेहताका खेदता", १५-६-१९२४।
४. स्वागत करनेवाला।
५. स्वागत-योग्यके लिए गुजराती प्रयोग।
६. यहाँ इसका अनुवाद नहीं दिया गया है।
७. इस लेखका १४-८-१९२४के यंग इंडियामें जो अनुवाद प्रकाशित किया गया था उसके साथ यह प्रस्तावना भी थी।

आकृति रेखा-गणितकी आकृतिकी तरह नपी-नपाई नहीं होती और हम जानते हैं कि इसके बावजूद भी उसके बीज, टहनियाँ या पत्ते एक ही हैं। रेखा-गणितकी आकृति-जैसी संगति उसमें नहीं है, फिर भी वृक्षकी शोभासे रेखा-गणितकी आकृतिकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। धर्म जिस प्रकार सीधी लकीर नहीं उसी प्रकार टेढ़ी लकीर भी नहीं है। वह सीधी लकीरके परे है, क्योंकि वह बुद्धिके परे है और अनुभवसे जाना जाता है।

उक्त लेखकको जिस बातमें असंगति दिखाई देती है उसमें मुझे तो सुसंगति ही दिखाई देती है। मुझे अपने जीवनमें न विरोध दिखाई देता है और न विक्षिप्ति। हाँ, यह बात सच है कि मनुष्य जिस प्रकार अपनी रीढ़को नहीं देख सकता उसी तरह मैं अपने दोषको और अपनी विक्षिप्तिको भी नहीं देख सकता। परन्तु ज्ञानियोंने धर्मनिष्ठकी तुलना विक्षिप्त व्यक्तिसे की है। इसीलिए मैं सन्तोष किये बैठा हूँ कि मैं विक्षिप्त नहीं हूँ, बल्कि सचमुच धर्माचारी ही हूँ। परन्तु इसका निर्णय तो मेरी मृत्युके बाद ही हो सकेगा।

मैं नहीं मानता कि यादवजी महाराजने भीरुतावश मेरा विरोध नहीं किया है; क्योंकि वे मेरे कथनका अर्थ अच्छी तरह समझ गये थे और उस समय मेरी बातसे सहमत हो गये थे। होते भी क्यों नहीं? मैंने नारायणका नाम छोड़कर चरखा चलानेकी बात नहीं कही थी। मैंने यह कहा था कि चरखा कातते हुए भी नारायणका नाम जपा जा सकता है और आज जब सारे देशमें आग लग रही है तब तो चरखे-रूपी डोलमें सूत रूपी जल भरकर नारायणका नाम जपते हुए इस आगको बुझाना ही हम सबका धर्म है।

मुझे सर्वत्र चरखा ही चरखा दिखाई देता है; क्योंकि मुझे सर्वत्र निर्धनता दिखाई देती है। हिन्दुस्तानके अस्थिपंजर-मात्र लोगोंको जबतक अन्न-वस्त्र नहीं मिलता तबतक उनके लिए धर्म नामकी कोई चीज ही दुनियामें नहीं है। वे आज पशुवत् जीवन बिता रहे हैं और इसमें हमारा भी हाथ हैं। इसलिए चरखा हमारे लिए प्रायश्चित्तरूप है। अपंगोंकी सेवा करना धर्म है। भगवान् हमें अपंगोंके रूपमें हमेशा दर्शन देते हैं; और हम नित्य तिलक-छापा लगाते हुए भी उनकी और ईश्वरकी अवहेलना करते हैं। ईश्वर वेदोंमें है भी और नहीं भी है। जो वेदोंका सीधा अर्थ करता है उसे उनमें ईश्वरकी ज्योति दिखाई देती है और जो उनके शब्दोंसे चिपका रहता है उसे हम 'वेदिया' [पोथी-पण्डित] कहते हैं। हाँ, नरसिंह मेहताने मालाकी स्तुति बेशक की है; परन्तु वहाँ वह उचित भी थी। उन्हीं मेहता शिरोमणिने यह भी कहा है:

शुं थयुं तिलकने तुळसी धार्या थकी,
शुं थयुं माळ ग्रही नाम लीधे?
शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वद्ये,
शुं थयुं वरणना भेद जाण्ये?[1]

१. तिलक और तुलसी धारण करनेसे क्या हुआ? माला हाथमें लेकर नारायणका नाम जपनेसे भी क्या हुआ? वेद, व्याकरण और साहित्यका पण्डित होनेसे भी क्या हुआ और वर्णभेद जाननेसे भी क्या हुआ? अर्थात् यदि आत्मतत्त्वको नहीं पहिचाना तो ये सब निरर्थक हैं।

अवश्य ही मुसलमान 'तसबीह' फेरते हैं और ईसाई 'रोजरी'। परन्तु यदि किसीको साँप काट खाये और वे 'तसबीह' या 'रोजरी' छोड़कर उसे मदद देने न जायें तो वे अपनेको धर्मभ्रष्ट मानेंगे। ब्राह्मण वेदोंको पढ़कर ही धर्मगुरु नहीं हो जाते। यदि ऐसा होता तो वेदोंके ज्ञाता मैक्समूलर भी हमारे धर्मगुरु हो जाते। वर्तमान युग-धर्मको जाननेवाला ब्राह्मण वेदाध्ययनको गौण मानकर अवश्य ही चरखा-धर्मका प्रचार करेगा और करोड़ों क्षुधा-पीड़ितोंकी भूख मिटानेके बाद ही स्वाध्यायमें रत होगा।

मैंने चरखा चलाना साम्प्रदायिक धर्मोंसे श्रेष्ठ माना है। इसका अर्थ यह नही है कि सम्प्रदाय छोड़ दिये जायें। परन्तु जिस धर्मका पालन हर सम्प्रदाय और धर्मके अनुयायियोंके लिए लाजिमी है वह तमाम सम्प्रदायों और धर्मोसे अवश्य श्रेष्ठ होगा; इसलिए मैं कहता हूँ कि जो ब्राह्मण सेवा-भावसे चरखा चलाता है वह अधिक अच्छा ब्राह्मण, वह मुसलमान, अधिक अच्छा मुसलमान और वह वैष्णव, अधिक अच्छा वैष्णव बनता है।

मैंने अपना अन्त समय पास आया जानकर राम-नाम नहीं जपा अथवा माला नही फेरी; लेकिन मुझमें उस समय चरखा चलानेकी शक्ति नहीं थी। जब माला मुझे राम-नाम जपनेमें मदद करती है तब मैं माला फेरता हूँ; किन्तु जब मैं इतना एकाग्र हो जाता हूँ कि मुझे माला विघ्नरूप मालूम होती है तब मैं उसे छोड़ देता हूँ। यदि मैं सोते-सोते चरखा चला सकूँ और मुझे राम-नाम लेनेमें उसकी सहायताकी जरूरत मालूम हो तो मैं अवश्य मालाके बजाय चरखा ही चलाऊँ। यदि मुझमें माला और चरखा दोनोंको फेरनेका सामर्थ्य हो और मुझे दोनोंमें से किसी एकको चुनना हो तो जबतक देश गरीबी और फाकाकशीसे पीड़ित है तबतक मैं चरखारूपी माला फेरना ही पसन्द करूँगा। मैं ऐसे समयकी प्रतीक्षामें हूँ जब मुझे राम-नामका जप करना भी उपाधि रूप मालूम होने लगे। जब यह अनुभव होगा कि 'राम' वाणीसे भी परे है तब 'नाम' लेनेकी जरूरत ही न रह जायेगी। चरखा, माला और रामनाम ये मेरे लिए जुदी-जुदी चीजें नहीं हैं। मुझे तो ये तीनों ही सेवा-धर्मकी शिक्षा देते हैं। मैं सेवा-धर्मका पालन किये बिना अहिंसा धर्मका पालन नहीं कर सकता और मैं अहिंसा धर्मका पालन किये बिना सत्यकी खोज नहीं कर सकता। सत्यके सिवा धर्म नहीं। सत्य ही राम है, नारायण है, ईश्वर है, खुदा है, अल्लाह है, गॉड है।

"घाट घडिया पछी नाम-रूप जूजवां, अन्ते तो हेमनुं हेम होये।"[1]

'हिन्द स्वराज्य'[2] में यन्त्रोंके सम्बन्धमें मैंने जो-कुछ लिखा है वह यथार्थ ही है। अखबारोंकी बात भी उसमें आ जाती है। जिन्हें इस विषयमें शंका है, वे उसे देख लें। फिर उन्हें यह भी याद रखना चाहिए कि मैं आज तो 'हिन्द स्वराज्य' को देशके सामने नहीं रख रहा हूँ, बल्कि संसदीय अर्थात् बहुमतीय स्वराज्यको रख रहा हूँ। अभी मैंने हर तरहके यन्त्रोंके विनाशका प्रस्ताव पेश नहीं किया है; बल्कि आज तो

१. सोनेके गहने गढ़नेपर उनके नाम अलग-अलग होते हैं; किन्तु अन्तमें तो सोनेका-सोना ही रहता है।
२. देखिये खण्ड १०।

मैं चरखेको सर्वोपरि यन्त्र बता रहा हूँ। 'हिन्द स्वराज्य' में आदर्श स्थितिका चित्र खींचा गया है। मैं उनकी जिन-जिन बातोंका पालन नहीं कर रहा हूँ उतनी हद तक इसे मेरी कमजोरी समझना चाहिए। मैं अहिंसाको परम-धर्म मानता हूँ। फिर भी खाने-पीने आदिमें कुछ-न-कुछ हिंसा तो हो ही जाती है। मैं अहिंसाका आदर्श अपने सामने रखकर अपनी दिनचर्यामें संयमके पालनका प्रयत्न अवश्य करता हूँ। मैं हिंसाकी प्रवृत्तिको बढ़ानेका नहीं, बल्कि घटानेका प्रयत्न करता हूँ।

मैंने अस्पतालोंके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है वह भी यथार्थ है। फिर भी जब-तक मुझे शरीरका मोह है तबतक दवा सेवन करता हूँ। हाँ, मैं यह जरूर चाहता हूँ कि मेरा यह मोह कम हो। मैं अस्पतालमें[1] कैदीकी हैसियतसे गया था। छूट जानेपर[2] मुझे वहाँसे तुरन्त भाग खड़े होनेकी जरूरत नहीं दिखाई दी। जिन लोगोंने इतनी विनय और दयामायाका परिचय दिया था मुझे उनकी देख-रेखमें रहना धर्म दिखाई दिया। मैंने अस्पतालमें अपने व्रतोंका पालन किया है। यदि अधिकारी मुझे वहाँ न ले जाते तो मैं उदास न होता। मैं अस्पतालमें अपनी खुशीसे नहीं गया था। मैंने वहाँ ले जाये जानेके प्रस्तावका विरोध भी नहीं किया। मैंने विदेशी चीनी न खानेका व्रत नहीं लिया है, परन्तु मैं विदेशी चीनी नहीं खाता। मुझे चीनी खाना ही नापसन्द है। मैंने पिछली बीमारीमें ही चीनी खाना शुरू किया था, परन्तु वह भी स्वदेशी ही। मैंने दवाएँ भी वे ही ली हैं, जिनके खानेसे मेरे व्रतमें बाधा न पड़े।

फिर भी मेरी यह बात सच है कि मेरी यह बीमारी मेरी तात्विक कल्पनाओंके खिलाफ थी, जो मेरे लिए शर्मकी बात है। मेरी दृष्टिमें किसी किस्मकी दवा लेना हीनता है। मैं अस्पतालमें जाने लायक बीमार हो जाऊँ, यह तो उससे भी बड़ी हीनता है। लेखक और पाठक मुझे मेरी इन कमजोरियोंके कारण दया-दृष्टिसे देखें, निबाहें और ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं इन उपाधियोंसे मुक्त होकर बिलकुल निर्विकार हो जाऊँ और जबतक उनका यह आशीर्वाद फलीभूत न हो तबतक मुझे, मैं जैसा हूँ वैसा ही निबाहें और सहन करें।

मैं चोरों और डाकुओंको सजा देना या मार डालना ठीक नहीं मानता। मैंने तो उन्हें भी प्रेमसे जीतना पसन्द किया है। परन्तु जो लोग इस प्रेम-धर्मका पालन न कर सकें, जिनके पास इतनी प्रेमकी पूँजी भी न हो और अपने आश्रितों तथा धन-धान्यकी रक्षा करना चाहें, उन्हें लुटेरोंको मारकर भी आत्मरक्षा करनेका अधिकार है।

अंग्रेजोंकी डाकुओंसे तुलना करना विचार-दोषका जबरदस्त उदाहरण है। लुटेरे बलपूर्वक लूटते हैं, अंग्रेज बहका-फुसलाकर लूटते हैं। दोनोंकी लूटकी पद्धतिमें अन्तर है। शराबका ठेकेदार भी शराब बेचकर मेरे धन और मेरी आत्माको लूटता है। मैं लोगोंको क्या सिखाऊँ—उसे मारना या उसका त्याग करना? परन्तु यदि कोई अंग्रेज किसीके शरीरपर प्रहार करे अथवा कोई शराबका ठेकेदार दूसरेको जबरन शराब पिलाये और पीड़ित व्यक्ति उन्हें प्रेमसे जीतनेमें असमर्थ हो तो वह निस्सन्देह हिंसा-

१. पूनामें यरवदा जेलके निकट स्थित सैसून अस्पताल।

२. १२ जनवरी, १९२४को।

का मार्ग अपना सकता है। विचारणीय बात यह नहीं है कि वह आक्रमणकारी अंग्रेज या शराबका ठेकेदार एक है या अनेक, सबल है या निर्बल।

इस पत्रका जवाब मैंने दिया तो है, परन्तु उसके औचित्यके विषयमें मैं असन्दिग्ध नहीं हूँ। मैंने यह जवाब लेखकके हेतुको निर्मल समझकर दिया है। परन्तु मुझे लगता है कि ऐसे प्रश्नोंमें पर्याप्त विचार-दोष रहा करता है। यह बात मेरे जवाबसे जानी जा सकती है।

कितने ही पढ़े-लिखे लोगोंका जीवन विचार-शून्य हो गया दिखाई देता है। जबतक मनुष्यमें किसी सिद्धान्तसे उपसिद्धान्त निकाल लेनेकी शक्ति न हो, हम कह सकते हैं कि उसको सिद्धान्तोंकी कोई पकड़ नहीं है। यदि पत्र-लेखकने गहरा विचार किया होता तो वह खुद उन्हीं निष्कर्षोंपर पहुँच जाते जो मैंने जवाबमें लिखे हैं। सच पूछें तो इन तमाम बातोंके जवाब मेरे पहलेके लेखोंमें आ चुके हैं परन्तु लेखककी जैसी विचार-शिथिलता, हमारे यहाँ एक सर्व-सामान्य बात है। मेरे नाम जो अनेक चिट्ठियाँ आती हैं उनमें भी मैं यही बात देखता हूँ। इसीलिए मैंने जवाब तो दिया है; परन्तु पाठकों और लेखकोंको मेरी सलाह है कि वे प्रत्येक बातपर स्वयं मनन करनेका स्वभाव बनायें। इस प्रकार वे अनेक मिथ्याभासोंसे बच जायेंगे। "विचारके बिना शिक्षा व्यर्थ है।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, (अतिरिक्त अंक) ७-८-१९२४

२९८. दानियोंसे प्रार्थना

गुजराती 'नवजीवन' में मैंने मलाबारके प्रलयके[1] विषयमें लिखा है। वह तो सब पाठक पढ़ेंगे ही। परन्तु मैं जानता हूँ कि 'हिन्दी नवजीवन' के पढ़नेवालोंमें कई दानवीर भी हैं। उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे जितना धन दे सकें उतना भेज दें।

हिन्दी नवजीवन, १०-८-१९२४

२९९. पत्र : ए० डब्ल्यू० बेकरको

साबरमती

१० अगस्त, १९२४

प्रिय श्री बेकर,[2]

आपके दो पत्र मिले। पहलेकी प्राप्ति सूचित कर चुका हूँ। पुस्तक भी मिल गई है। बराबर लिखते रहनेकी कृपा करें। मुझको लगता है कि मुझे अपने रास्ते ही

१. देखिए "मलाबारमें बाढ़", १०-८-१९२४।

२. नेटालके एक वकील।

चलना चाहिए। हम सभी अन्वेषक हैं। जबतक हम अपने और ईश्वरके बीच अपने अहंको खड़ा नहीं कर देते तबतक समझना चाहिए हम सही दिशामें ही चल रहे हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री ए० डब्ल्यू० बेकर
डाकघर पोर्ट शिपस्टोन
नेटाल

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३००. पत्र : पॉल एफ० क्रेसीको

साबरमती
१० अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

हमें तो बचपनसे ही आत्म-त्यागकी शिक्षा दी जाती है। इसलिए प्राच्य संसारके हम लोग यद्यपि उस सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेमें असमर्थ रहते हैं, फिर भी हम जानते हैं कि जीवनका उद्देश्य भोग नहीं, त्याग है। ईश्वर करे, अमेरिकाके छात्र इस एक पाठको हृदयंगम कर लें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री पॉल एफ० क्रेसी
ग्रेनविले, ओहियो
संयुक्त राज्य अमेरिका

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०१. पत्र : लाला बुलाकीरामको

साबरमती
१० अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

अमीरको[1] कोई सन्देश भेजनेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मेरा काम ही बोले। कोई भेंट भेजना भी जरूरी नहीं समझता। मेरे काते सूतसे अलग थान तैयार नहीं किया गया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गां०

[पुनश्च :]

मुझे अभी-अभी आपका दूसरा पत्र मिला है। उन्होंने इस्तीफा दे दिया, उनका यह काम मुझे तो पसन्द आया, ऐसा कह सकता हूँ। हम सत्यका अनुसरण कर रहे हैं। सत्याग्रह आवेश नहीं है। वह स्थिरचित्तसे किये गये संकल्पके बाद किया जाता है; मैं अनिश्चित कालतक प्रतीक्षा करूँगा।

मो० क० गांधी

लाला बुलाकीराम
भास्कर प्रेस, ५ कचहरी रोड
देहरादून

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. अफगानिस्तानके।

३०२. पत्र : डा० आर० काणेको

साबरमती
१० अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद।

(१) मैं अनिवार्य शिक्षाके विरुद्ध हूँ। अनिवार्यता अन्यायपूर्ण हो सकती है। वह अनावश्यक तो है ही।

(२) यदि हमें आज ही स्वराज्य मिल जाये तो मैं प्राथमिक या किसी भी स्तरकी शिक्षाको अनिवार्य बनानेके हर प्रयत्नका विरोध करूँगा। हमने अभीतक स्वैच्छिक प्रणालीकी आजमाइश नहीं की है।

(३) यदि यवतमाल नगरपालिका अनिवार्य शिक्षाका तरीका अपनाती है तो उसका यह कदम कांग्रेस प्रस्तावकी शर्तोंके अन्तर्गत ही कहलाएगा। किन्तु यदि इस सम्बन्धमें कोई मेरी सुने तो मैं नगरपालिकाके सदस्योंसे इस बातकी वकालत करूँगा कि शिक्षाको अनिवार्य बनानेके पहले स्वेच्छापूर्वक शिक्षा लेनेके सभी प्रयत्नोंको कर देखें। जहाँ कहीं अनिवार्य शिक्षा लागू की गई है वहाँ मैंने उससे होनेवाले दुष्परिणामको देखा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री आर० काणे
सदस्य, विधान परिषद्
यवतमाल

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०३. पत्र: सरदार मंगलसिंहको

१० अगस्त, १९२४

प्रिय सरदार मंगलसिंहजी,

यह पत्र आपको श्री वालजी देसाईका परिचय देगा। वे अर्सेसे मेरे सहयोगीके रूपमें काम कर रहे हैं। मेरे जेल जानेके बाद ही वे भी उसी अभियोगमें जेल भेज दिये गये थे। कृपया श्री देसाईकी किसी ऐसे ढंगसे मदद कीजिये जिससे वे पंजाबमें रहकर स्थितिका अध्ययन कर सकें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९९६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: वा० गो० देसाई

३०४. पत्र: अली हसनको

साबरमती
१० अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र अवश्य मिला था। हिन्दू वह है जो 'वेदों', 'उपनिषदों', 'पुराणों' आदिमें और वर्णाश्रम-धर्ममें विश्वास करता है। मैं आपके इस विचारसे सहमत नहीं हो सकता कि हमें उन लोगोंका दावा स्वीकार नहीं करना चाहिए जो अपनेको किसी विशेष धर्मका अनुयायी बताते हैं। मैं अपने विश्वासका सबसे अच्छा पारखी स्वयं अपनेको माननेका दावा करता हूँ। क्या आप ऐसा नहीं करते?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री अली हसन, बार-एट लॉ
पटना

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

३०५. पत्र : चित्तरंजन दासको

साबरमती
१० अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

जो पत्र मैं साथ भेज रहा हूँ वह मुझे श्री खोपकरके एक मित्रसे मिला है। इनके कथनानुसार श्री खोपकरका खयाल है कि उस कागजपर आपके हस्ताक्षर नहीं होने चाहिए थे। किन्तु यदि आपके हस्ताक्षर हो गये हों तो वह सज्जन कहते हैं कि जिस ढंगसे आपको सन्तोष हो, उस ढंगसे वे अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेको तैयार हैं। कृपया सूचित करें कि श्री खोपकरके इन मित्रसे मैं क्या कहूँ।

आशा है आप और श्रीमती दास स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री चित्तरंजन दास
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०६. पत्र : जमनालाल बजाजको

श्रावण सुदी १० [१० अगस्त, १९२४][1]

चि० जमनालाल,

मोतीलालजीको मैंने जो पत्र लिखा है; उसे पढ़ लेना। मैंने कृष्णदाससे उसकी एक नकल तुम्हें भेज देनेके लिए कहा है। गोविन्द बाबू उड़ीसामें काम कर रहे हैं। उनके कामकी जाँच करना और यदि तुम्हे ठीक लगे तो उन्हें गांधी सेवा संघ कोषमें से आर्थिक सहायता देना। उनकी योग्यता कम है, माँग ज्यादा अर्थात् प्रति-मास २०० रुपये है। इतना तो अवश्य ही नहीं दिया जा सकता। यदि वे तुम्हारी कसौटीमें खरे उतरें तो उन्हें ५० रुपये मासिकतक देना। जाँच सावधानीसे करना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८४८) की फोटो-नकलसे।

१. यह तारीख पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद नामक पुस्तकके अनुसार दी गई है।

३०७. पत्र : वसुमती पण्डितको

श्रावण सुदी १० [१० अगस्त, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा वजन तो जरूर कम हुआ है, लेकिन यों तबीयत अच्छी है। 'नवजीवन' में मलाबारसे सम्बन्धित पंक्तियाँ पढ़ जाना और वहाँसे जो-कुछ किया जा सके सो करना।

उम्मीद है तुम घूमने बराबर जाती होगी। पत्रमें काटा-कूटी हो जानेकी तनिक भी चिन्ता न करना। आज हरिभाई यहाँ आये हुए हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

काले फ्रान्सीसी बेर (प्लम) आते हैं, उन्हें भिगोकर खानेकी आदत डालना। तुम्हारा दूसरा कार्ड अभी ही मिला है। मैं बहुत करके यहाँ रहूँगा। अवश्य ही जल्दी आ जाना।

बापू

बहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९२०४) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ४५३ से।

सौजन्य : वसुमती पण्डित

३०८. पत्र : वा० गो० देसाईको

श्रावण सुदी १० [१० अगस्त, १९२४][2]

भाई वालजी,

मैंने तो शिमला सम्बन्धी लेख प्रकाशित करनेके लिए प्रेसमें भेज दिया था; इसलिए आपके पास भेजना मेरा काम न था। लेकिन आप और स्वामी तो मित्र-मित्र ठहरे। इसलिए स्वामी तो मनमानी छूट लेंगे ही। आपने यह लेख इतने छोटे-छोटे अक्षरोंमें और इतना घना लिखा था कि पढ़नेमें दिक्कत होती थी, जान

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२. शिमला सम्बन्धी लेख सितम्बर १९२४ में छपा था। उसके उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया। १९२४ में श्रावण सुदी १०, १० अगस्तको पड़ी थी।

पड़ता है कि इसी कारण स्वामीने उसे आपको वापस भेजा था। आप उसे फिरसे लिख डालें।

इन साप्ताहिक पत्रोंको चलाना ही मेरे शिमला आनेमें एकमात्र कठिनाई नहीं है।

मैं आपको आनन्दशंकर भाईका पत्र भेज ही रहा था; परन्तु कुछ सोचकर रुक गया। मैंने तो आपके संशोधनको ठीक माना है और उसे ज्योंका-त्यों रहने दिया है। लेकिन मैंने आपको आनन्दशंकर भाईका पत्र यह विचारकर नहीं भेजा कि उसे भेजना कहीं मेरे अभिमानका सूचक न हो। विनोदपूर्ण पत्र लिखनेका समय न था।

मैंने 'लायक' और 'दायक' के अन्तरको पहले ही स्पष्ट कर ही दिया है।

सरदार मंगलसिंहको पत्र लिख रहा हूँ। सभी सिख सीधे-सादे और विनम्र होते हैं। यदि ये वहाँ न हों तो यह पत्र किसी भी अकाली सिखको दे दें।

मोहनदास

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

३०९. घनश्यामदास बिड़लाको

श्रावण सुदी १० [१० अगस्त, १९२४][1]

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपके सब पत्र मीले हैं। मुझको उनसे बहोत सहाय मीलती है।

नरोजीनीके विषयमें जो मैं मानता हूँ उसको न लीखना भी कठिन है। क्या कार्य किनसे न्ह सकते हैं उसका निश्चय जनताको कर लेना हि चाहिये। एक व्यक्तिकी एक कार्यमें मैं प्रशंसा करूं उसने कोई ऐसा क्यों समझे कि वह सम्पूर्ण व्यक्ति है? मैं इतना लीखता हुआ भी चाहता हुँ कि आपके दिलमें जो बात आवे आप लीखते रहें।

मैं जानता हूं कि हिं० मु० प्रश्नमें मालवीजी मेरी राय पसंद नहिं करते हैं। तदापि मेरा विश्वास है कि हमारे नजदीक दूसरा कोइ फसला नहिं है। हां थोडे दिनों कि लिये हम कृत्रिम ऐक्य पेदा कर सकें। उससे हमारी उन्नति नहीं हो सकती है।

मुन्दरलालजीके विषयमें मैं आपको कुछ सलाह नहिं दे सकता हूँ। हां, इस बातमें जानता हुँ कि जमनालालजीने जिस शर्तसे उन्होंने सहाय मांगी नहिं दी। मेरे मुकाबलेमें जमनालालजी उनको बहोत ज्यादा पहचानते हैं। आप जो कुछ करें इस बारेमें जमनालालजीकी राय ले लें।

१. सम्भवतः यह पत्र "बम्बई सरोजनीको याद रखे", ३ जुलाई, १९२४ के बाद लिखा गया था। १९२४ में श्रावण सुदी १०, १० अगस्तको पड़ी थी। देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ३ जुलाई १९२४ के पश्चात्।

आपने दो महीनेका दान जमनालालजीके वहां भेज देनेका लीखा उस लीये आपका अनुग्रह मानता हुं। उसीके आधारपर मैंने दक्षिणमें हिन्दी प्रचारके लीये और दूसरी दो संस्थाके लीये कुछ प्रबंधकी वात जमनालालजीसे की है। उस द्रव्यका व्यय उन्हींके हाथसे होता है।

आपका
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२३) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

३१०. पत्र: शौकत अलीको

साबरमती
११ अगस्त, १९२४

प्यारे भाई,

आपके दोनों पत्र मिल गये। बी अम्माकी खबर पढ़कर बड़ा दुःखी हुआ। तुमने जो अनुमति माँगी है, उम्मीद है मिल जायेगी। हम अपने देशमें ही निर्वासितोंकी तरह रहें और फिर भी स्वराज्यके साथ खिलवाड़ होता रहे यह कैसी विडम्बना है।

मेरा स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण मैंने विट्ठलभाईको इस बातके लिए राजी कर लिया है कि बम्बई नगर निगम द्वारा मुझे दिया जानेवाला अभिनन्दन-पत्र[1] ३० अगस्तको दिया जाये। इसलिए अगर कोई खास बात न हुई तो मेरा प्रस्ताव है कि हम लोग सितम्बरके प्रारम्भमें दौरा शुरू करें। लेकिन मैंने मुहम्मद अलीको पत्र लिखकर सूचित कर दिया है कि यदि वे चाहें तो अब मेरा दिल्ली जाना सम्भव है। देखना है कि मैं सफर और कामका यह बोझ सँभाल भी सकता हूँ या नहीं। यदि उन्हें मेरी जरूरत न भी हो तो भी मेरा खयाल है कि हमें काम दिल्लीसे शुरू करना चाहिए। मालूम हुआ है कि मुहर्रम १२ अगस्तको है। यह दिन हमारे लिए एक और चिन्ताका दिवस होगा। मैं नहीं जानता कि उस दिन हम सब कहाँ होंगे। इन सब बातोंपर विचार करके तय कीजिये कि हमें उस दिन कहाँ होना चाहिए।

मैं खिलाफत सम्बन्धी काममें आपकी अपनी कठिनाइयोंसे परिचित हूँ। मेरा खयाल है कि हमारी समझमें यह बात आ जायेगी कि संख्याकी अधिकताके बजाय हमें कम संख्यामें ही क्यों न हो अच्छे कार्यकर्त्ताओंपर भरोसा रखना होगा। यह बात स्वराज्य आन्दोलन और खिलाफत आन्दोलन दोनोंपर समान रूपसे लागू होती है।

अध्यक्षके चुनावके सम्बन्धमें मुझे जो-कुछ कहना था, मैं कह चुका हूँ। इस सम्बन्धमें लोगोंमें इतना जोश है कि लगता है, यदि किसीको बहुमत पानेके लिए

१. देखिए "पत्र: विट्ठलभाई झ० पटेलको", १७-५-१९२४।

संघर्ष करना आवश्यक हुआ तो ईमानदारी बनाये रखकर काम कर सकना लगभग असम्भव हो जायेगा। यदि बहुमतको थोड़ा-बहुत भी उपयोगी होना है तो उसका आसानीसे प्राप्त होना आवश्यक है। बहुमत प्राप्त करनेका यह पश्चिमी तरीका मैं बहुत ही नापसन्द करता हूँ।

मैं खिलाफत सम्बन्धी समाचारोंको पढ़नेकी कोशिश करूँगा।

सस्नेह,

आपका,
मो० क० गांधी

मौलाना शौकत अली
बम्बई

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३११. पत्र : स्वामी आनन्दानन्दको

सोमवार [११ अगस्त, १९२४][1]

भाईश्री आनन्दानन्द,

आपका पत्र मिला। परिशिष्टांक प्रकाशित करते रहें। मैं आठ गैली सामग्री नियमित रूपसे दूंगा। मुझे इसका एक रास्ता कल मिल गया है। सब लिखी हुई सामग्री जब खत्म हो जायेगी, तब क्या करना चाहिए, यह देखना होगा। तबकी बात तब सोचेंगे। 'नवजीवन' की सामग्री कितने कालम तैयार है इस बारेमें भी आपको तार दूंगा। मुझसे अनुमानमें गलती हो सकती है; किन्तु सावधानी रखूंगा।

मैं यह बात भी अच्छी तरह समझता हूँ कि हमें व्यावसायिक पक्षपर भी ध्यान देना ही होगा। इसपर पूरा आग्रह रखना आपका काम है। मैं अन्य पक्षोंका विचार करते हुए उतावलीमें कुछ भटक भले ही जाऊँ; परन्तु अन्तमें सीधे मार्गपर आ जाऊँगा, क्योंकि मैं सत्याग्रही तो हूँ ही और सदा रहूँगा भी।

'सत्याग्रहका इतिहास' की अंग्रेजीके बारेमें मुझे वालजीका दृष्टिकोण ठीक नहीं जान पड़ता। हमें तो गुजराती संस्करणको अच्छा बनाना है। अंग्रेजी संस्करणका बीड़ा तो मद्रासने उठा लिया है; इसलिए हम उसमें हस्तक्षेप कदापि न करेंगे। गणेशन सीधे और सच्चे व्यक्ति हैं। पैसा उनका परमेश्वर नहीं है। उनका साहस

१. इस पत्रमें गणेशनके उल्लेखसे मालूम होता है कि गांधीजीने यह पत्र सम्भवत: उसी दिन लिखा था जिस दिन वालजी देसाईको पत्र लिखा था। देखिए अगला शीर्षक।

बहुत बड़ा है। हम उसमें उन्हें उत्तेजन प्रदान करें और गुजराती कार्यको स्वयं आगे बढ़ायें। इसमें कोई त्रुटि दिखाई दे तो अवश्य बतायें।

हमें 'यंग इंडिया' में कभी-कभी अधिक पृष्ठ देनेकी तैयारी रखनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ७७५३) से।

३१२. पत्र : वा० गो० देसाईको

श्रावण सुदी ११ [११ अगस्त, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

मैं गणेशनकी बातको और आपके प्रश्नको अच्छी तरह समझ नहीं पाया हूँ। लेकिन मैं सामान्य रूपसे यह सलाह देता हूँ कि गणेशन जैसे काम करना चाहें उन्हें वैसे करने देना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

अन्य विषयोंसे सम्बन्धित उत्तर कल दे दिया गया है।

वा० गो० देसाई
स्टर्लिंग कैसिल
शिमला

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. वालजी १९२४ में शिमलामें थे।

३१३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

श्रावण सुदी ११ [११ अगस्त, १९२४][1]

भाईश्री घनश्यामदास,

आपका पत्र मीला है। मी० आयरके पत्रका कुछ असर मेरेपर नहीं पडा क्योंकि हिंदु धर्मको बचानेका रास्ता हि मैं दूसरा समझता हुँ। अखबार नीकालनेसे भी कुछ लाभ होगा ऐसा मै नहि मानता हुं। पंजाबमें आजतक हम लोगोंने मुसलमानोंको मोका हि नहि दया है। मी० दास दूसरा कर हि नहि सकते थे। उन्होंने पेक्ट बनाया। मौकेपर वही कैसे तोड सकते थे? दिल्ली जाते हुए मुझको कोई रोकते नहि है। सप्टेम्बरमें तो ऐसे भी मैं वहां पहोंचनेकी उमीद रखता हुँ।

आप मुझे सब हाल लीखते रहें और कुछ पढनेके लायक वस्तु हो भेजते रहें।

आपका
मोहनदास

[पुनश्च :]

मी० आयरका खत वापिस भेजता हुं। आज मुझको रु० १०,००० मील गये हैं। कल आपको एक खत हरिद्वारके ठिकानेपर भेजा गया।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२५) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. गांधीजीकी दिल्ली-यात्राके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। गांधीजी १९२४ में पहले अगस्तमें और फिर सितम्बरमें दिल्ली गये थे। उस वर्ष श्रावण सुदी ११, ११ अगस्त की थी।

३१४. तार : सरोजिनी नायडूको[1]

[१२ अगस्त, १९२४ या उसके पश्चात्]

सरोजिनी नायडू
ताज
बम्बई

सभामें शामिल होना अनावश्यक। मतलब, राहत पहुँचानेके काममें असहयोगियोंको सरकार द्वारा खोली गई संस्थाओंकी मदद करनी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०१०७) की फोटो-नकलसे।

३१५. तार : के० माधवन् नायरको[2]

[१२ अगस्त, १९२४ या उसके पश्चात्]

माधवन् नायर
वकील
कालीकट

चन्दा और कपड़े इकट्ठे कर रहा हूँ। भूखों, नंगों और बेघरबार देश-वासियोंके बारेमें रात-दिन चिन्तित हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०१०८) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार सरोजिनी नायडूके ११ अगस्तके निम्नलिखित तारके जवाबमें था, जो गांधीजीको १२ अगस्त, १९२४ को मिला था; "बाढ़से सम्बन्धित सभामें शेरिफका सुझाव है कि अध्यक्षताके लिए गवर्नरको बुलाया जाए। तार द्वारा सूचित कीजिये, क्या असहयोगी शामिल हो सकते हैं।"

२. यह तार माधवन नायरके १२ अगस्त, १९२४ के तारके जवाबमें भेजा गया था, जो इस प्रकार था: "बाढ़ग्रस्त क्षेत्रमें दौरा किया। अत्यधिक दुर्दशा-ग्रस्त क्षेत्रमें मारवाड़ी राहत कोषकी मददसे सहायता केन्द्र खोले। आपका लेख चन्दा देनेवालोंको निरुत्साहित कर सकता है। कोषके अलावा कांग्रेसके किसी भी तरहके छोटे बड़े योगदानका स्वागत है, कृपया आम जनतासे अपील कीजिए। शुरूके एक महीनेमें भोजन सम्बन्धी राहत जरूरी है। आवासके लिए धन देनेका काम सरकारपर छोड़ा जा सकता है। एक लाख रुपयेसे एक लाख लोगोंके कष्ट दूर हो सकेंगे।"

३१६. तार : बम्बई नगर निगमको[1]

[साबरमती
१२ अगस्त, १९२४ या उसके पश्चात्]

अध्यक्ष
नगर निगम
बम्बई

आपका तार मिला। २९ को बम्बई सहर्ष पहुँच जाऊँगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८११) की फोटो-नकलसे।

३१७. पत्र : नगीनदास अमुलख रायको[2]

साबरमती
१३ अगस्त, १९२४

मैं आपकी पहली किताब[3] पढ़ गया हूँ। देखता हूँ कि इसे लिखनेमें आपने बहुत परिश्रम किया है। पाठ्य सामग्रीका क्रम कुल मिलाकर बहुत सुन्दर है। मुझे इसमें कोई भी स्थल लेखकके उद्देश्यसे बेमेल नहीं दीख पड़ा। इसका अनुवाद किया जाये तो कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता।

[गुजरातीसे]
गुजराती, २-११-१९२४

१. यह तार बम्बई नगरनिगमके अध्यक्ष द्वारा ११ अगस्त, १९२४ को भेजे गये एक तारके जवाबमें दिया गया था। वह तार गांधीजीको १२ अगस्तको मिला था और उसका मजमून यह था: "निगम द्वारा भेंट किये जानेवाले मानपत्रके लिए सर कावसजी जहाँगीर हाल ३० तारीखको खाली नहीं। कृपया मानपत्र स्वीकार करनेके लिए शुक्रवार २९ को तीसरे पहरका समय निकालिए।"

२. गांधीजीने यह पत्र प्रेषी द्वारा १९२३ में सम्पादित और प्रकाशित 'गांधी शिक्षण' नामक पुस्तक मालाके सम्बन्धमें लिखा था।

३. उक्त पुस्तक-मालाकी १३ पुस्तकोंमें से पहली पुस्तक सत्याग्रह।

३१८. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश[1]

१३ अगस्त, १९२४

मेरा यह दृढ़ मत है कि प्रत्येक बातके सम्बन्धमें मुझसे आदेश माँगना गलत है और खतरनाक भी। प्रश्न जिस ढंगसे पूछा जायेगा मेरा उत्तर भी उसी ढंगका होगा। इस प्रकार उत्तर देनेमें मुझसे भूल भी हो सकती है। प्रत्येक व्यक्तिको चाहिए कि सिद्धान्तोंमें से उपसिद्धान्त वह स्वयं निकाल ले।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी,

३१९. पत्र : तेजके सम्पादकको

श्रावण सुदी १३ [१३ अगस्त, १९२४]

भाई गुप्त,

मैंने उसी कृष्णको प्रतिदिन कोटीशः प्रणाम करता हूं जो गीताका प्रणेता है, जो १६,००० इंद्रियोंका स्वामी है, जो अखंड ब्रह्मचारी है, जो निर्विकारी है, जो हमारे हृदयका अधिष्ठाता है — दूसरेको नहीं।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. शेरिफकी सभामें सम्मिलित होनेके बारेमें गांधीजीने सरोजिनी नायडूके तारका जो उत्तर दिया था उसपर प्रेषी द्वारा किये गये प्रश्नके जवाबमें भेजा गया था। देखिए "तार : सरोजिनी नायडूको", १२-८-१९२४ था उसके पश्चात्।

३२०. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

श्रावण सुदी १३ [१३ अगस्त, १९२४][1]

चि० इन्द्र,

'इस समय प्रत्येक उत्सवपर मैं तो एक हि प्रार्थना करता हुं। हे ईश्वर, हिंदू और मुसल्मान दोनोंके हृदयको पलटा दे। उसमें से झहर नीकाल दे। प्रेम भर दे। सबको समजा दे देशके गरीबोंके लिये वे सूत कातें। हिंदुके दिलोंको साफ कर और अस्पृश्यताका नाश कर।' और क्या भेजु? मेरी उमेद है तुमारा प्रयत्न सफल होगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८६०) से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

३२१. उचित प्रश्न

एक पत्र-लेखक पूछता है :

> क्या आप भारतमें अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाप्रणाली लागू करनेके पक्षमें हैं? क्या शिक्षाको अनिवार्य बनाना अनुचित या अनावश्यक है? यदि हम देशकी वर्तमान अवस्थामें स्वराज्य प्राप्त कर लेते हैं तो क्या आप भारत-भरमें प्राथमिक शिक्षाको अनिवार्य बना देंगे?

मेरी समझमें तो उनके मुख्य प्रश्नका मेरा उत्तर निश्चित रूपसे नकारात्मक ही होगा। यह मैं निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि मैं हर हालतमें अनिवार्य शिक्षाका विरोध नही करूँगा। मेरी दृष्टिमें सभी प्रकारकी अनिवार्यता घृणित है। जिस प्रकार मैं यह नही चाहता कि जबरदस्ती करके किसीको शराब पीनेसे रोका जाये, उसी प्रकार मैं यह भी नहीं चाहता कि राष्ट्रको जबरदस्ती करके शिक्षण दिया जाये। किन्तु मैं जिस प्रकार शराबकी दूकान खोलनेसे इनकार करके तथा वर्तमान शराबकी दूकानोंको बन्द करके लोगोंको शराब पीनेसे विमुख करना चाहता हूँ, उसी प्रकार मैं रास्तेमें आनेवाली रुकावटोंको हटाकर निःशुल्क स्कूल खोलकर और उन्हें जनताकी आवश्यकताको पूरा करने योग्य बनाकर लोगोंको शिक्षा ग्रहण करनेकी दिशामें उन्मुख करना चाहता हूँ। किन्तु अभीतक तो बड़े पैमानेपर निःशुल्क शिक्षाका प्रयोग करनेका भी प्रयत्न नहीं किया गया है। हमने माता-पिताओंको कोई प्रेरणा नहीं दी

१. डाकखानेकी मुहरसे।

है, हमने साक्षरताके महत्त्वका पर्याप्त परिमाणमें या थोड़ा भी प्रचार नहीं किया है। पढ़ानेके लिए हमने योग्य अध्यापक भी तैयार नहीं किये हैं। इसलिए मेरे विचारसे अभी अनिवार्य शिक्षाके बारेमें विचार करना सर्वथा असामयिक है। मैं यह भी नहीं मानता कि जहाँ-कहीं अनिवार्य शिक्षाका प्रयोग किया भी गया, उन सभी जगहोंमें वह सफल हुआ है। यदि अधिकांश जनता शिक्षा चाहती है तो उसे अनिवार्य बनाना बिलकुल ही अनावश्यक है। यदि अधिकांश जनता उसे नहीं चाहती है तो उसे अनिवार्य बनाना अत्यधिक हानिकारक ठहरेगा। बहुसंख्यक जनताका विरोध रहते हुए केवल तानाशाह सरकार ही तद्विषयक कानून पास करती है। क्या सरकारने बहुसंख्यक लोगोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए पूरी सुविधाएँ मुहैया कर रखी हैं? हम गत १०० या उससे भी अधिक वर्षोंसे अनिवार्य नियमोंमें जकड़े हैं। हमसे पूर्वानुमति लिये बिना राज्य हमारे जीवनके विविध अंगोंपर शासन करता है। चाहे इस समय राष्ट्र द्वारा की गई प्रार्थनाओं, याचिकाओं तथा उसके द्वारा दिये गये परामर्शोंका कोई अनुकूल उत्तर न भी मिले तो भी यह समय ऐसा है कि राष्ट्रको ऐच्छिक तरीकोंका ही आदी बनाया जाना चाहिए। यह विश्वास कि ऐच्छिक प्रयत्नोंसे किसी प्रकारका सुधार सम्भव नहीं है, समाजकी प्रगतिमें सबसे अधिक आड़े आता है। जबरदस्ती शिक्षित किये गये लोग स्वराज्यके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो जाते हैं।

मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है, उसका तात्पर्य यह है कि यदि हमें आज स्वराज्य मिल जाता है तो मैं अनिवार्य शिक्षाका विरोध तबतक करता रहूँगा जबतक ऐच्छिक प्राथमिक शिक्षाके लिए ईमानदारीसे किया गया प्रत्येक प्रयत्न असफल नहीं हो जाता। पाठकोंको यह नहीं भूल जाना चाहिए कि आज भारतमें ५० वर्ष पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक अशिक्षा है। इसका कारण यह नहीं है कि माता-पिताओंकी शिक्षाके प्रति दिलचस्पी कम हो गई है, बल्कि यह है कि विदेशी तथा अस्वाभाविक शासनप्रणालीके अन्तर्गत देशमें जो सुविधाएँ पहले थीं, वे अब नहीं रही है। ब्रह्मदेशमें भी आज यही बात देखी जा रही है।

पत्र-लेखकका दूसरा प्रश्न है:

> क्या आप इस पक्षमें हैं कि नगरपालिकाएँ तथा दूसरे स्थानीय निकाय वर्तमान अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियमका लाभ उठाकर प्राथमिक शिक्षाको अनिवार्य कर दें; विशेषतः ऐसे समय जब यह काम सभी विचारोंके सदस्योंके हार्दिक समर्थनसे सम्पन्न कराया जा सकता है?

इस प्रश्नमें संकेत असहयोगियोंकी ओर है। मेरा विचार है यदि पार्षद ऐसा करना चाहते हैं तो अधिनियमसे लाभ उठाना कांग्रेसके प्रस्तावकी रूसे असंगत नहीं है। किन्तु मुझे इसीलिए अनिवार्यताका सीधा उपयोग करनेमें संकोच होगा। अनिवार्यताके प्रति मौलिक आपत्तिके अतिरिक्त ऐसा करना चाहिए या नहीं इसपर निर्णयात्मक विचार प्रकट करनेसे पहले मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि (१) क्या प्राथमिक शिक्षाको निःशुल्क बनानेके प्रयत्न किये गये हैं और किये गये हैं तो उनका क्या परिणाम निकला है? क्या सभी अभिभावकोंसे इस बारेमें बातचीत कर ली गई है और

उनकी आपत्तियोंपर ध्यान दिया गया है तथा जहाँ वे उचित जान पड़ी है वहाँ उन्हें दूर किया गया है? समझाने-बुझाने और प्रेरित करनेके सभी उपलब्ध साधनोंका परीक्षण किये बिना शिक्षाको अनिवार्य बनानेके लिए दौड़ पड़ना, काहिली और अधीरता है। यह मानना कि बहुसंख्यक माता-पिता इतने मूर्ख या हृदयहीन है कि घरके सामने निःशुल्क पाठशालाएँ खोल दिये जानेके बाद भी अपने बच्चोंको शिक्षण देनेकी ओर प्रवृत्त न हों, युक्ति-संगत न होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-८-१९२४

३२२. जोश चाहिए !

मैं एक ऐसे वकील साहबके पत्रसे कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ, जिन्होंने राष्ट्रीय कार्यमें बहुत कुरबानियाँ की है। जब उन्होंने वकालत छोड़ी तो अपनी किताबें सब बेच डालीं। अब वे नाउम्मीद हो गये हैं। उन्होंने अपना यह पत्र इस तरह समाप्त किया है—"मैंने यह खत महज इसलिए लिखा है कि मेरे मनका बोझ कुछ हल्का हो जाये। यदि इसकी ओर आप ध्यान न दें तो भी मुझे निराशा न होगी।" मैं शुद्ध भावसे लिखे गये लेखकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ? इसलिए मैंने मध्यम मार्ग स्वीकार किया है। मैंने इस पत्रसे निराशात्मक और उपदेशात्मक अंश हटाकर उसका निचोड़ निकाल लिया है और ऐसे कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं, जो कि विचारणीय हैं:

> चरखा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अछूतोद्धारकी बातें लोगोंको दो बरसोंसे नहीं जँच रही हैं; और उनके विचारोंमें परिवर्तनका कोई चिन्ह भी दिखाई नहीं देता।
>
> अपरिवर्तनवादियोंको अपना कार्यक्रम मानव-प्रकृतिको ध्यानमें रखकर बनाना चाहिए। उन्हें इस बातका खयाल रखना चाहिए कि जनतामें उत्साहका संचार करनेके लिए कोई जोशीला कार्यक्रम बहुत आवश्यक है। सत्याग्रहसे बढ़कर जोश पैदा करनेका दूसरा जरिया नहीं हो सकता। लेकिन यह सरकारसे सीधी और खुली लड़ाईके रूपमें हो। हमारे अन्दर ही भिन्न-भिन्न जातियोंमें सत्याग्रहका प्रयोग हानिकर है। इससे तो केवल यही होता है कि सरकारकी बन आती है और वह नजरोंसे ओझल रहकर, खाईमें छिपकर हमपर अन्धेरेमें वार करती है और इससे षड्यंत्र और शरारतभरे प्रचारको पनपनेका खासा मौका मिल जाता है। सरकारसे सीधी खुली मुठभेड़के लिए जोरदार मसले चुने जाने चाहिए जिनपर जनताकी सहानुभूति प्राप्त की जा सके। नीचे लिखे मसले इन शर्तोंको पूरा कर सकते हैं, इनमें से कोई एक बात चुन ली जाये:

१. अदालतोंका बहिष्कार किया जाये और ग्राम, कस्बा, नगर-पंचायतोंकी स्थापना की जाये और हर जगह दस्तावेजोंको रजिस्टर करनेके दफ्तर रहें,

२. सिक्केके चलनका बहिष्कार करके हुंडीका चलन किया जाये,

३. शराब तथा नशीली चीजोंके व्यवहारको रोका जाये।

मैं इस बातको नहीं मानता कि हमने जनताके अन्दर अभी इतना काम कर लिया है कि जिससे हम जान सकें कि ये तीन चीजें उन्हें जँचती हैं या नहीं। हमने जनताका अर्थात् देहातका जो-कुछ अनुभव प्राप्त किया है, उससे तो यही मालूम होता है कि लोग चरखेकी उपयोगिता स्वीकार कर चुके हैं। गाँवोंमें सिर्फ उसे संगठित करनेकी जरूरत है। लेकिन हम लोग, जो कि उनके नेता होनेका दम भरते हैं, गाँवोंमें जाकर उनके बीच रहने और चरखेके जीवनदायी सन्देशको उन्हें सुनानेसे इनकार करते हैं। लेखकका तो जनतासे परिचय है ही नहीं। वरना उन्हें मालूम होता कि हिन्दू-मुस्लिम जनता आपसमें नहीं लड़ रही है। देहली कोई गाँव नहीं है और यह कहना कि वहाँ भी गरीब लोग लड़े — उनकी बदनामी करना होगा। हमने ही भाई-भाईको आपसमें लड़नेके लिए भड़काया। अलबत्ता अछूतोंका सवाल जनताके लिए मुश्किल है। जनताके मनको यह सवाल आन्दोलित तो करता है; पर ऐसे रूपमें जिसे हम पसन्द नहीं करते। ऊँचे होनेका जो अहसास उन्हें सदियोंसे विरासतमें मिला है, वे उसे एकाएक छोड़ना नहीं चाहते। लेकिन यदि हम अपनी स्वच्छता, निस्वार्थ भाव और धैर्यके बलसे जनताको इस रोगसे मुक्त नहीं कर सकते तो राष्ट्रके रूपमें हमारा अवसान निश्चित ही समझिए। इस बातको हर राजनैतिक सुधारक जितनी ही जल्दी महसूस करेगा उतनी ही जल्दी उसके और देशके लिए हितकर होगा। हमारे लिए इस लड़ाईको (अछूतोद्धारके प्रयत्नको) स्वराज्य प्राप्त होने तक बन्द रखना सम्भव ही नहीं है। इसे मुल्तवी रखना तो ऐसा ही है जैसे बिना फेफड़ेके जीवित रहनेकी इच्छा रखना। जो लोग यह मानते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम तनाजा और छुआछूत स्वराज्य प्राप्त होनेके बाद दूर किये जा सकेंगे, वे मानों स्वप्नके संसारमें विचरते हैं। उनके मन इतने थक गये हैं कि अपने प्रस्तावका अर्थ समझनेकी शक्ति उनमें नहीं रह गई है। स्वराज्य-प्राप्तिके किसी भी कार्यक्रममें ये तीन अंग अवश्य होने चाहिए। हाँ, यह काम मुश्किल है; पर असम्भव नहीं है। इसलिए मैं यह बात दावेके साथ कहता हूँ कि यह रचनात्मक त्रिविध कार्यक्रम भारतकी मानव प्रकृतिके बिलकुल अनुकूल है। वह उन लोगोंकी दैनिक आवश्यकताओंके बिलकुल अनुकूल हैं जो अपनी प्रगति करनेके लिए तत्पर हैं।

पर ये मित्र तो कहते हैं कि 'जोश' के बिना काम नहीं चल सकता। पता नहीं 'जोश' किसे कहते हैं। क्योंकि काम करनेवालोंके लिए तो इन तीन कामोंमें काफी जोशका मसाला मौजूद है। आप किसी भी गाँवमें चले जाइए, एक चरखा लेकर बैठ जाइए और गाँववालोंसे कहिए कि वे अपने अछूत-भाइयोंको गले लगायें। गाँवके बच्चे तो चरखेके आसपास, जिसे वे बरसोंसे भूल गये थे, नाचने ही लगेंगे और गाँववाले यदि आप उन्हें अछूतोंको गले लगानेकी बात अच्छे और मीठे ढंगसे

न कहें तो आपको पत्थर मार-मारकर गाँवके बाहर खदेड़ देनेपर आमादा हो जायेंगे। एक ऐसा जोश है जिससे जीवन मिलता है; पर एक ऐसा जोश भी है जो हमारी 'मृत्यु' का कारण बनता है। वह क्षणिक होता है और लोगोंको अन्धा कर देता है तथा जरा देरके लिए चकाचौंध पैदा कर देता है। इस किस्मके जोशसे स्वराज्य नहीं मिल सकता। हाँ, उन लोगोंके लिए इसकी उपयोगिताका अनुमान मैं कर सकता हूँ जो दूसरेके हाथोंसे सत्ता छीननेके लिए युद्ध करनेको प्रवृत्त हों। पर भारतके सामने जो समस्या दरपेश है वह इतनी सुगम नहीं है। हम न तो हथियार लेकर लड़ाई लड़नेके लिए तैयार हैं और न हमें इसका अभ्यास ही है। अंग्रेज लोग केवल भुज-बलके ही द्वारा यहाँ राज्य नहीं करते। हमें फुसलाने-बहलानेके तरीके भी उनके पास हैं। वे ऊपरी मुलायम दस्तानेमें अपने घूँसेको बड़ी सावधानीके साथ छिपाकर रख सकते हैं। जिस घड़ी हम बुद्धियुक्त संगठन, शुद्ध और अविचल संकल्प तथा पूर्ण और नियमबद्ध संघशक्तिका परिचय देंगे, वे अपना पूरा शासन-तन्त्र बिना किसी संघर्षके ही हमें सौंप देंगे और हमारी शर्तोंपर भारतकी सेवा करनेको तत्पर हो जायेंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे हम आज अनिच्छापूर्वक, अज्ञानवश उनकी शर्तोंपर उनकी गुलामी कर रहे हैं।

सत्याग्रह इस पिछले तर्जका जोश नहीं है, बल्कि वह तो ऐसे वायु-मण्डलमें भर जाता है। उसके लिए शान्त स्थिरचित्त साहसकी आवश्यकता है, जो शिकस्त नहीं जानता और बदला लेनेकी बातसे दूर रहता है। यहाँतक कि अन्तर्जातीय सत्याग्रह भी (यदि वह दर हकीकत सत्याग्रह हो तो) राष्ट्रको सरकारके मुकाबलेमें लड़ाई लड़नेके लिए बल प्रदान करता है। अपरिवर्तनवादियों और परिवर्तनवादियोंके बीच जो यह अशोभनीय लड़ाई चल रही है, वह किसी भी अर्थमें सत्याग्रह नहीं है। दिल्लीकी शर्मनाक घटनाएँ सत्याग्रह कदापि नहीं हैं। अन्तर्जातीय सत्याग्रहके नमूने वाइकोम और तारकेश्वर हैं। मैं वाइकोमके बारेमें तो कुछ जानता हूँ; क्योंकि माना जाता है कि मैंने उसका मार्ग प्रदर्शन किया था। यदि सत्याग्रही धैर्यवान, पूर्णरूपसे सत्य-परायण, मन, वचन और कर्मसे अहिंसात्मक रहें और यदि वे प्रतिपक्षियोंके साथ नम्रतासे पेश आते रहें और अपनी न्यूनातिन्यून माँगपर दृढ़ बने रहें तो सफलता मिले बिना रह नहीं सकती। यदि वे इन शर्तोंको पूरा कर दें तो सनातनी हिन्दू उनपर आशीर्वादकी वृष्टि करेंगे और राष्ट्र-कार्य भी कमजोर नहीं, प्रबल बनेगा। तारकेश्वरके बारेमें मैं नहीं के बराबर जानता हूँ। पर यदि वह सच्चा सत्याग्रह होगा तो उसका भी फल अच्छा ही निकलेगा।

पत्र-लेखकका 'जोश' पैदा करनेका तरीका सत्याग्रह सम्बन्धी उनकी गलतफहमी जैसा ही है। वे इस बातको महसूस नहीं करते कि पंचायतों और दस्तावेजोंको रजिस्टर करनेकी व्यवस्था यदि एक तरहसे अनिवार्य बना दी जाये तो उससे लेखकका मूल उद्देश्य ही नष्ट हुए बिना नहीं रहेगा। यदि उनमें अनिवार्यता न रखी जायेगी तो वह चरखेसे भी कम जोश पैदा कर सकेगा — और नहीं तो सिर्फ इसी कारण कि गैर-सरकारी अदालतोंमें किसे पड़ी है जो अपने दस्तावेज रजिस्टर

कराने जाये। चालू सिक्केका बहिष्कार भी डण्डेके बलपर ही हो सकता है; उसके बिना उसमें जनताके जोशकी गुंजाइश तो और भी कम है। हाँ, यदि वातावरण शान्तिपूर्ण बनाया जा सके और शान्तिपूर्ण धरना दिया जा सके तो शराबकी दूकानोंपर फिरसे धरने शुरू करनेकी दिशामें मैं बहुत-कुछ करनेको तैयार हो जाऊँगा। हम अनुभव कर चुके हैं कि १९२१ का हमारा 'धरना' सब तरहसे शान्तिपूर्ण नहीं था।

सच्चा उपाय हमें अपने अन्दरसे ही मिलेगा। जनताने नहीं बल्कि हमने ही अपना विश्वास खो दिया है। क्योंकि पत्र-लेखक जिनके कि जिम्मे खुद एक कांग्रेस समितिका काम है, कहते हैं कि मेरे पास धड़ाधड़ इस्तीफे आ रहे हैं। क्यों? इसलिए कि इस्तीफे देनेवाले लोगोंका विश्वास इस कार्यक्रमपर नहीं रह गया है। अबतक तो वे राष्ट्रके साथ खिलवाड़ कर रहे थे, अब वे अपने और राष्ट्रके साथ संजीदगी-से पेश आ रहे हैं। वे सत्यकी पुकारका उत्तर दे रहे हैं। इन इस्तीफोंको मैं राष्ट्र-कार्यके लिए आगे चलकर लाभकारी मानता हूँ। यदि सब लोग ईमानदारी बरतें; अर्थात् या तो प्रस्तावोंका पालन करें या इस्तीफे दे दें तो हमें पता लग जायेगा कि हम कहाँ खड़े हैं। जिन मन्त्री महाशयके जिम्मे कांग्रेसका काम है उन्हें मैं सुझाऊँगा कि उनके रजिस्टरमें यदि कुछ भी मतदाताओंके नाम दर्ज हैं तो वे उन्हें बुलायें और उनसे अपने प्रतिनिधियोंको चुननेको कहें। यदि सदस्य लोग स्वयंभूत सदस्य हों — जैसा कि मुझे अन्देशा है कि बहुत सी जगहोंमें होंगे — तो मन्त्री ही अकेला कांग्रेसका सच्चा और एकमात्र प्रतिनिधि बना रहे बशर्ते कि उसे खुद अपने ऊपर और कार्यक्रमपर विश्वास हो। उस अवस्थामें उसे अपना सारा समय और ध्यान चरखेके लिए देना होगा। यह निश्चित है कि इस प्रकार कताईके प्रति निष्ठा रखनेवाला वह अकेला नहीं होगा। जो मनुष्य श्रद्धा और दृढ़ निश्चय रखता है उसे दुनियामें निराश होनेका कोई कारण नहीं रहता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-८-१९२४

३२३. एक सबक

मैंने अखिल भारतीय खादी भंडारके नाम पंजाबके स्थानीय मन्त्रीका लिखा वह पत्र पढ़ा है जिसमें श्री भरूचाने अपने बहुत छोटे मुकामके दौरान वहाँ जो काम किया उसकी मुक्त कण्ठसे सराहना की गई है। उन्होंने वहाँ खादी आन्दोलनमें नई जान डाल दी है। उन्होंने बची हुई खादीको फेरी लगवाकर बेचनेमें मदद की और अमृतसर तथा लाहौरमें छः हजार रुपयेसे अधिक मूल्यकी खादी बेची। मन्त्री महोदयने लिखा है कि इन दिनों पंजाबके बाजारमें मन्दी रहा करती है। बाहर गये हुए सब लोग सितम्बरमें लौट आयेंगे; यदि श्री भरूचा फिर उस समय वहाँ आ सकें तो और अधिक काम हो जाये। मैं श्री भरूचाको उनकी सफलतापर बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे फिर पंजाबका दौरा करेंगे। उनके इस दौरेसे हमें यह सबक मिलता है कि अगर चाहे तो प्रत्येक प्रान्त अपनी खादी खुद बेच सकता है। यदि कार्यकर्त्ता कमर कस लें तो जनता तो खरीदनेके लिए तत्पर है ही।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-८-१९२४

३२४. टिप्पणियाँ

श्री केलकरकी मानहानि

बम्बईके उच्च न्यायालयके विद्वान न्यायाधीशोंने श्री केलकरको जो सजा दी है मेरा ख्याल है कि उससे श्री केलकर या 'केसरी'की कुछ भी हानि नहीं हो सकती। जुर्माना भर देनेके बाद भी दोनों जहाँके-तहाँ रहेंगे। श्री केलकर इस मामलेमें जिस बहादुरीसे डटे रहे उसपर पत्रकारों और लोकनायकोंने उन्हें बधाई दी है। 'केसरी'की इज्जत तो लोगोंमें वैसे ही काफी है; इस फैसलेसे वह और भी बढ़ गई है। समझमें नहीं आता न्यायाधीश इतनी तुनकमिजाजी क्यों जाहिर कर रहे हैं? निडरतासे की गई सार्वजनिक टीका-टिप्पणीसे उनका कुछ नहीं बिगड़ सकता। हो सकता है, हमेशा ही ऐसी टीकाएँ औचित्यपूर्ण न हों और शायद ऐसी भी न हों कि उनकी सफाई दी जा सके। जिन लेखोंके द्वारा अदालतकी मानहानि हुई मानी गई है, उन्हें मैंने देखा नहीं है। लेकिन इस सजासे सार्वजनिक लाभ क्या हो सकता है? क्या जनता या श्री केलकर इस फैसलेके कारण न्यायाधीशोंके प्रति अधिक उदार ख्याल रखने लगेंगे? यदि इन लेखोंमें न्यायाधीशोंका पक्षपातपूर्ण होना दिखाया गया है तो वह सिर्फ लोकमतका प्रतिबिम्ब है। सम्भव है ऐसा पक्षपात अनजाने ही हो जाता हो; लेकिन जनताका ऐसा विश्वास बन गया है कि भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच मुकदमोंमें न्यायाधीशोंकी ओरसे आम तौरपर पक्षपात होता ही है। खुद मेरा

दक्षिण आफ्रिकाका विस्तृत और वहांसे कुछ कम विस्तृत यहांका अनुभव जनताके इस विश्वासका समर्थन करता है। १९१९ में पंजाबके विशेष न्यायाधिकरणोंके फैसलोंका विश्लेषण मैंने 'यंग इंडिया' में दिया था।[1] उससे यह बात निर्विवाद रूपसे साबित हो गई थी कि पंजाबके इन न्यायाधिकरणोंमें नियुक्त न्यायाधीशोंने पक्षपात बरता था। यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच चलनेवाले मुकदमोंमें न्याय मिलना दुर्लभ है। मैं अपना खयाल इस मान्यताके विपरीत ही बनाना चाहता हूँ। लेकिन यह सम्भव नहीं हो पाया। मैं माननेके लिए तैयार हूँ कि ऐसी परिस्थितियोंमें कोई दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही करेगा। इसे दूसरी तरहसे इस ढंगसे कहा जा सकता है कि मानव स्वभाव सर्वत्र एक-सा ही रहता है। न्यायाधीश भी मनुष्य ही हैं और उनमें साधारण मनुष्यों-जैसी ही कमजोरियाँ होती हैं और वे भी उन्हींकी-सी भावनाओंसे संचालित होते हैं। इसलिए इन न्यायाधीशोंसे मेरा यह सविनय निवेदन है कि सार्वजनिक आलोचनासे वे उसी तरह चिढ़ जाया करेंगे जिस तरह वे 'केसरी' के मामलेमें चिढ़ गये जान पड़ते हैं — तो उसका यह अर्थ होगा कि वे स्वास्थ्यकर तत्वोंकी अवहेलना करनेपर तुले हुए हैं। श्री केलकर-जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति और अनुभवी पत्रकार जब किसी फैसलेकी आलोचना करना आवश्यक समझें तो उससे उन्हें अपने दोष दूर करनेकी प्रेरणा मिलनी चाहिए। यूरोपीय न्यायाधीश यदि स्वाभाविक द्वेष और एकतरफा प्रभावके खिलाफ, जिसके वे शिकार बने हुए हैं, संघर्ष करना चाहते हों तो मेरी विनम्र रायके मुताबिक उन्हें भारतीय पत्रकारोंकी टीकाका स्वागत करना चाहिए और उन्हें इसके लिए प्रोत्साहन देना चाहिए; किन्तु दुःखकी बात तो यह है कि जबतक ऐसी आलोचनाएँ उनके पास उनपर फैसला देनेके लिए नहीं आतीं तबतक वे उन्हें शायद ही पढ़ते हों। श्री केलकरके खिलाफ जो फैसला दिया गया है उसका परिणाम तो यह होगा कि वर्तमान पत्रोंके सम्पादक अपनी राय या तो प्रकट ही न करेंगे या उसे लीप-पोतकर प्रकट करेंगे; और उस हालतमें उनकी असली राय अपनी अभिव्यक्तिके लिए गुप्त-मार्गोंका सहारा लेगी। आज भी यह मनोवृत्ति हमारे बीच प्रचुर मात्रामें विद्यमान है। मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि श्री केलकरको दी गई सजाके परिणामस्वरूप हमारे चारों ओर फैले हुए मिथ्याचार के बढ़ने और यूरोपीयों और हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धोंमें अधिक कटुता आ जानेकी सम्भावना है। भला इस सबकी क्या जरूरत थी।

'राजा कभी गलती नहीं करता'

एक न्यायाधीशपर टीका करनेके लिए श्री केलकरको ५,०००) देने पड़े। एक कलेक्टरके खिलाफ लिखनेके लिए 'क्रॉनिकल' को १५,०००) देने पड़े।[2] लेकिन लॉर्ड लिटन, इसलिए कि वे बंगालमें सम्राट्के प्रतिनिधि हैं, हिन्दुस्तानी स्त्रियोंपर बेखटके कीचड़ उछाल सकते हैं और शायद उनके भक्तोंकी तरफसे उन्हें इस 'साफगोई' के

१. देखिए खण्ड १७ पृष्ठ २३९-४५।
२. देखिए "अनुचित प्रहार", ७-८-१९२४।

लिए वाहवाही भी मिल जाये। कहा जाता है कि उन्होंने एक व्याख्यानमें गम्भीरता-पूर्वक यह बात कही कि "सत्ताके प्रति नफरत होनेके कारण ही भारतीय पुरुष भारतीय पुलिसवालोंको केवल बदनाम करनेके खयालसे भारतीय स्त्रियोंको इस बातके लिए राजी कर लेते हैं कि वे शीलभंगके आरोप गढ़ें। यदि यह बात उनके व्याख्यानके विवरणके रूपमें न होकर संवाददाताके द्वारा लिखे गये उसके सारके तौरपर ही होती तो मैं इस बातपर विश्वास करनेसे इनकार कर देता कि एक जिम्मेवार अंग्रेज ऐसी नितान्त विवेकहीन बात कह सकता है। यह तो साफ है कि लॉर्ड लिटन यह नहीं जानते या जाननेकी परवाह भी नहीं करते कि इस प्रकार भारतीय स्त्रियोंपर दोषारोपण करनेसे भारतीयोंके दिलोंमें कैसी गहरी खलबली मच जायेगी। क्या लॉर्ड लिटनके पास अपनी बातके अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं? यदि उनके कथनका आधार केवल पुलिसके बयान ही है तो यह आधार बहुत लचर है। उनके सलाहकारोंको उन्हें ऐसे स्वार्थ-प्रेरित प्रमाणोंके सम्बन्धमें सावधान कर देना चाहिए था। लेकिन वे निःशंक होकर ऐसी लांछनास्पद बात कह ही कैसे सके? यदि बंगालका लोकमत और इसलिए सारे हिन्दुस्तानका लोकमत पुरअसर होता तो भी एकाध मामलेमें इस बातके सच होते हुए भी वे ऐसा आरोप लगानेकी हिम्मत न करते? आज देशमें ऐसा शक्तिशाली लोकमत है ही नहीं कि जो अपनी किसी बातको जोरोंके साथ पेश कर सके। तथापि देशके सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्तिको भी इस गुमानमें नहीं रहना चाहिए कि वे हिन्दुस्तानकी भावनाओंको हमेशा इसी तरह तिरस्कृत करते रह सकेंगे। राष्ट्रीय आन्दोलनमें हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े और परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियोंके मतभेद चन्द रोजा हैं; जब कि बड़े-बड़े ओहदोंपर बैठे हुए अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किये गये अपमान सभी भारतवासियोंके दिलोंमें गहरे उतर जाते हैं। लेकिन क्या सम्राट्के गैरजिम्मेदार प्रतिनिधियोंके ऐसे अविवेकपूर्ण कृत्योंके कारण ही हम अपने सब मतभेद ताकपर रख दें? मेरी समझमें इसी कारण ऐसा करना तो बड़ी अपमानजनक बात होगी।

एक व्यावहारिक विवरण

तमिलनाड खादी बोर्डने अखिल भारतीय खादी बोर्डको अपने कामका विवरण बड़े ही सुन्दर रूपमें भेजा है। यदि मेरे पास स्थान होता तो वह पूरा विवरण यहाँ छाप देता। जितना स्थान है, उतनेमें ही उसका सार प्रस्तुत करके मुझे सन्तोष करना पड़ेगा। विवरणमें बोर्डके अधीन चलनेवाले केन्द्रोंके उत्पादन और बिक्रीका लेखा पेश किया गया है। बोर्डके मन्त्रीने आशा व्यक्त की है कि वह शीघ्र ही प्रति मास ५०,०००) रुपयेकी खादीका उत्पादन करने लगेगा। तिरुपुर केन्द्रमें अब प्रतिमास १५ से २० हजार रुपयेके मूल्यकी खादीका उत्पादन होने लगा है। जितना उत्पादन होता है, सबकी खपत स्थानीय बाजारमें ही हो जाती है। इस तरह बिक्री और उत्पादन-की एक-दूसरेकी प्रतिक्रिया होती रहती है। वे लोग धीरे-धीरे खादीकी किस्ममें भी सुधार कर रहे हैं और अब खादीकी रंगीन साड़ियाँ तैयार करनेकी कोशिश हो रही है। उत्पादनके लिए सबसे पहले तो वे रुई इकट्ठी करते हैं जो सर्वथा उचित

ही है। उन्होंने ५०,००० रुपयेकी रुई खरीदी है और इस सारी रुईका बीमा करा लिया है। प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले गये हैं, जहाँ युवा कार्यकर्त्ताओंको ओटने, धुनने और कातनेकी शिक्षा दी जाती है। वेतन आदिमें मुझे फिजूल खर्चीका आभास नहीं मिला; बोर्ड अपने विभिन्न विभागोंपर पूरा नियन्त्रण रखता है। कोयुर-स्थित प्रशिक्षण स्कूलमें अभी दर्जन-भरसे अधिक नौजवान प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। ये लोग बहुत कड़े अनुशासनमें रहते हैं। वे सुबह साढ़े चार बजे उठकर सारा काम खुद करते हैं। वे सभी तरहकी धुनकियों और चरखोंका प्रयोग करना सीख जाते हैं। विवरण-के साथ एक रोचक सारणी भी दी गई है। उसमें हर प्रशिक्षणार्थी द्वारा ओटी, धुनी और काती गई रुईका परिमाण बताया गया है। भजन मण्डलियों द्वारा प्रचार उनकी एक प्रमुख विशेषता है। उसके फलस्वरूप लोग इस काममें बहुत दिलचस्पी लेने लगते हैं। कोयुरमें लगभग ५० घरोंमें लोग अपने ही हाथोंसे काते सूतके वस्त्रोंका उपयोग करते हैं। पाठक जरा कल्पना करें कि ऐसे कामके लिए कितनी एकाग्रचित्तता, सुन्दर कार्यपद्धति, व्यवहारशीलता, ईमानदारी, संगठन क्षमता और सहयोगकी आवश्यकता है। अब तनिक वे खादीके लिए पूर्ण रूपसे संगठित तथा आत्मनिर्भर किसी जिलेकी भी कल्पना करें। अब वे आसानीसे समझ जायेंगे कि कमसे-कम उस जिलेमें तो स्वराज्य आ ही गया है। पाठकोंको यह भी निश्चित तौरपर समझ लेना चाहिए कि यद्यपि इसकी प्रगतिका क्रम सम्यक् है फिर भी वह जिला खादीके कामकी तबतक सर्वांगपूर्ण व्यवस्था नहीं कर पायेगा जबतक वह अपने-आप अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त नहीं हो जाता। क्योंकि स्वैच्छिक उत्पादन और वितरणके लिए स्वैच्छिक सहयोग जरूरी है और यह तभी सम्भव होगा जब उस क्षेत्रके अदनासे-अदना निवासीको भी उस छोटे-से संघका स्वतन्त्र नागरिक होनेका गौरव अनुभव होने लगे।

तुरन्त कार्रवाई[1]

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने संयुक्त प्रान्त सरकारको प्रोफेसर रामदास गौड़की हिन्दी पाठ्यपुस्तकें जब्त किये जानेके बारेमें नीचे लिखा पत्र भेजा है:

> संयुक्त प्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीका ध्यान संयुक्त प्रान्त सरकार द्वारा जारी किये गये उस नोटिसकी ओर आकर्षित किया गया है जिसमें सरकारने १८९८ के अधिनियम ५ के खण्ड ९९ क के अन्तर्गत प्रोफेसर रामदास गौड़की हिन्दी पाठ्य पुस्तकोंकी संख्या ३, ४, ५ और ६ की सभी प्रतियों और उनके सभी उद्धरणोंको भी प्रतिबन्धित घोषित कर दिया है। ये पुस्तकें पिछले कुछ वर्षोंसे बहुतेरी पाठशालाओंमें प्रचलित हैं। इन पुस्तकोंमें मुख्यतया हिन्दीके विशिष्ट लेखकोंके लेख ही संकलित हैं। यह समझना कठिन है कि भारतीय दण्ड संहिताके खण्ड १२४ क के अनुसार पुस्तकोंके कौन-कौनसे अंश या अनुच्छेद आपत्तिजनक माने गये हैं। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा यदि आप

१. देखिए "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", २७-७-१९२४।

यह बतलानेकी कृपा करें कि इन पुस्तकोंके कौनसे अनुच्छेद या अंश सरकारकी रायमें आपत्तिजनक हैं, जिनके कारण वे किताबें जब्त की गई हैं। हमारी प्रान्तीय कमेटी इसपर गौर करेगी और यदि उसे यह विश्वास हो जायेगा कि ये अंश वास्तवमें अनुचित हैं तो वह प्रोफेसर रामदास गौड़को यकीनन सलाह देगी कि वे अपनी पुस्तकोंसे उन हिस्सोंको निकाल दें। मुझे बड़ी खुशी होगी यदि आप कृपा करके इस पत्रका उत्तर जल्दी देंगे; क्योंकि ये पुस्तकें मेरी कमेटीसे सम्बन्ध रखनेवाली कितनी ही पाठशालाओंमें चल रही हैं।

पण्डितजीने एक ऐसा ही पत्र संयुक्त प्रान्तके शिक्षा-विभागके मन्त्रीके नाम भी भेजा है। जनता आगेकी कार्रवाईको उत्सुकताके साथ देखेगी। इसी बीच पुस्तक-प्रकाशकोंने इस हुक्मको रद करानेके लिए कानूनी कार्रवाई शुरू कर दी है। ये पुस्तकें हजारोंकी संख्यामें बिक चुकी हैं। ऐसी हालतमें इन तमाम पुस्तकोंको जब्त करते फिरना सरकारके लिए कठिन होगा। लड़के-लड़कियाँ अपने-आप उन्हें नष्ट कर दें तो बात दूसरी है। अभीतक तो इस सिलसिलेमें कोई कार्रवाई नहीं हो रही है। बल्कि पुस्तकें अभीतक ज्योंकी-त्यों पाठशालाओंमें चल रही हैं। लेकिन सरकारके पास तो बहुतेरी तरकीबें होंगी; और वह मौका पाते ही उन लोगोंको गिरफ्तमें ले लेगी जिनके पास ये जब्तशुदा पुस्तकें मिलेंगी। लोग इस बातको जानकर खुश होंगे कि पुस्तकोंके विद्वान् लेखकने अपना सर्वाधिकार नहीं रखा है।

एक स्वागत करने योग्य भूल-सुधार

संयुक्त प्रान्त खादी-बोर्डके संयोजकने तार द्वारा सूचित किया है कि "संयुक्त प्रान्तके बारेमें पिछले हफ्ते जो आँकड़े प्रकाशित किये गये, उनमें कताई करनेके लिए अपने नाम पंजीयन करानेवालोंकी कुल संख्या नहीं बताई गई है। जैसे-जैसे हमें मातहत कमेटियोंसे सूचियाँ प्राप्त हो रही हैं, हम उनकी पंजियाँ भेजते जा रहे हैं।" मैं इस भूल-सुधारका स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि अन्तिम सूचीमें इतने नाम होंगे कि बंगाल भी मात खा जायेगा। कारण, बंगालके बाद हमारा सबसे घनी आबादीवाला प्रान्त संयुक्त प्रान्त ही है।

कट्टरपंथियोंका विरोध

वाइकोमकी 'सवर्ण महाजन सभा' के सभापतिने मुझे एक पत्र भेजा है, जिसके साथ कुछ प्रस्ताव भी संलग्न हैं। प्रस्तावोंमें, मैं जो वाइकोम सत्याग्रहका समर्थन कर रहा हूँ, उसके प्रति विरोध प्रकट करते हुए मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं उसे बन्द करा दूँ। पत्र-लेखकका कहना है कि वहाँकी स्थितिकी जानकारी देनेवाले लोगोंने मुझे गुमराह किया है। मैंने निष्पक्ष भावसे दोनों पहलुओंपर विचार किया है और तब इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि कुल मिलाकर सत्याग्रहियोंका आचरण बहुत ठीक रहा है और वे बहुत ही प्रतिकूल परिस्थितियोंमें संघर्ष चला रहे हैं। इसलिए मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अपने कट्टरपन्थी मित्रोंको मैं सन्तुष्ट नहीं कर सकता और मेरे लिए सत्याग्रह बन्द करनेकी सलाह देना सम्भव नहीं है।

ईश्वरीय वरदान

बाढ़के कारण आम तौरपर मलाबारमें बड़ी तबाही हुई है; लेकिन लगता है, हमारे दलित देशभाइयोंके लिए यह बाढ़ एक वरदान साबित हुई है। यह बात वाइकोम सत्याग्रह कैम्पसे लिखे श्री राजगोपालाचारीके पत्रके निम्नलिखित अंशसे स्पष्ट हो जायेगी :

> बाढ़के परिणामस्वरूप मन्दिर-प्रवेश और सामाजिक समानताकी समस्या दर्जन-भरसे अधिक स्थानोंमें अपने आप हल हो गई है, क्योंकि इस दैवी विपदाके कारण सभी जातियों और धर्मोंके लोगोंको एक साथ ऐसे मन्दिरों और घरोंमें शरण लेनी पड़ी, जिनमें बहुतसे लोगोंका प्रवेश वर्जित था। इस ईश्वरीय प्रकोपके कारण नम्बूद्रियों और पुलैयोंको एकसाथ बैठकर खाना पड़ा है। इस राज्यमें जो बाढ़ आई, उसके परिणामस्वरूप वाइकोम शेष राज्यसे बिलकुल ही कट गया है।

सर्वसामान्य विपत्ति लोगोंको जोड़नेवाली सबसे बड़ी ताकत है। यह बड़ी क्रूर होती है और व्यक्ति-व्यक्तिके बीच भेद नहीं मानती। यह राव और रंक दोनोंको अगाध जलराशिके हवाले कर देती है।

मूक साधना

उसी पत्रका एक और अंश नीचे दे रहा हूँ। उससे प्रकट होता है कि इस आन्दोलनमें लोग कैसा जीवट दिखा रहे हैं और जो आन्दोलन इस पत्रमें वर्णित ऐसे जीवटके साथ चलाया जा रहा हो, उसे बन्द करनेकी सलाह कोई कैसे दे सकता है? अंश इस प्रकार है :

> मौसम प्रतिकूल रहनेपर भी आश्रममें चरखेके काममें कोई ढील नहीं आने दी जाती। लगभग सभी स्वयंसेवक कताई करना अच्छी तरह जानते हैं और पुलिसके घेरोंके सामने डटे हुए स्वयंसेवकोंके लिए चरखे भेजे जाते रहते हैं। जब जोरोंकी वर्षा हो रही हो, तब जरूर ऐसा नहीं किया जाता। आधे लोगोंने तो धुनना भी सीख लिया है और अब मैं सभी कताई करनेवालोंके लिए अपनी-अपनी जरूरतकी सारी रुई स्वयं ही धुनना अनिवार्य करने जा रहा हूँ। पट्टी बनानेका काम चल रहा है। शीघ्र ही हम एक करघा भी लगानेवाले हैं।

जो सुसंस्कृत नौजवान इतनी ईमानदारीसे और इस विश्वाससे प्रेरित होकर यह काम कर रहे हैं कि इससे स्वयं उनके मन-प्राण भी शुद्ध होंगे और साथ ही राग, अमर्ष तथा पूर्वग्रहके विरुद्ध उनके संघर्षमें भी यह सहायक होगा, अतः मैं अत्यन्त विनम्र भावसे कहना चाहता हूँ कि वे भी मुझे या जनताको धोखा दे सकते हैं, मैं यह बात नहीं मान सकता। इसमें उनकी दिलचस्पी है ही नहीं; उनकी आस्था अपने काममें ही है।

इससे पत्थर भी पिघल जाये

किन्तु सभाके अध्यक्ष महोदय अपने पत्रमें लिखते हैं : "लगता है, आपका खयाल यह है कि जब भाई, भाईके विरुद्ध सत्याग्रह करे तो जिसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जाता है, उसका विरोध धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और वह सत्याग्रही भाईकी बात मान लेता है। लेकिन यहाँ तो हमें वैसा कुछ नहीं दीख पड़ रहा है।" सत्याग्रहियोंके कष्ट-सहनने अभीतक कट्टरपन्थियोंके हृदयोंको प्रभावित नहीं किया है, मुझे इसपर अचरज नहीं होता। अभी कष्ट-सहनकी उनकी अवधि और तीव्रता पर्याप्त नहीं हुई। कष्ट भी हम स्वयं तो पैदा नहीं कर सकते। ईश्वरने उनके भाग्यमें जो-कुछ लिख रखा है, उसे तो स्वीकार ही करना पड़ेगा। यदि उसकी यही इच्छा हो कि वे दीर्घ कालतक दुःख उठाते रहें, तो उसकी इस इच्छाको उन्हें शिरोधार्य करना चाहिए। उन्हें कठिनसे-कठिन परीक्षासे भी जी नहीं चुराना चाहिए; और न वे कृत्रिम रूपसे कष्टका आह्वान ही कर सकते हैं। मैंने जो सिख भाइयोंको गिरफ्तारीका विरोध करके गोलीबारीकी स्थिति उत्पन्न करनेसे रोका था;[1] उसका एक कारण यही था। कष्ट-सहनके बारेमें मेरा अनुभव तो बराबर एक-सा ही रहा है; और वह यह कि उससे कठोरसे-कठोर हृदय भी पिघल जाता है। खुद अपने सबसे बड़े भाईको सहमत करनेमें मुझे पूरे तेरह वर्ष लगे।[2] मैं अंग्रेज मित्रोंसे प्राप्त सभी पत्र प्रकाशित नहीं करता। लेकिन कुछ पत्रोंमें उन्होंने विनम्रताके साथ स्वीकार किया है कि अंग्रेज शासकोंने (यह सच है कि अनजाने ही) भारतका बड़ा अहित किया है। यदि ये अभिस्वीकृतियाँ सत्याग्रहीके कष्ट-सहनसे द्रवित होकर ज्ञानपूर्वक किया गया मत-परिवर्तन नहीं तो और क्या हैं? मुझे इस विश्वाससे कोई बात डिगा नहीं सकती कि यदि उद्देश्य अच्छा हो तो उसकी पूर्तिमें कष्ट-सहन जितना सहायक होता है, उतनी सहायक आजतक और कोई चीज नहीं हुई है। कट्टरपन्थी हिन्दुओंको तपस्याकी अमोघ शक्ति बतानेकी जरूरत मैं नहीं देखता; और सत्याग्रह सत्यके लिए की गई तपस्या ही तो है।

एक चिन्ताजनक बात

लेकिन अध्यक्षके पत्रमें एक चिन्ताजनक बात भी है। उसे उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत करना चाहिए :

> मैं आपका ध्यान ६ जुलाई, १९२४ की एक घटनाकी ओर दिलाता हूँ। यह घटना चेंगनूरमें घटी और इसके निमित्त वे लोग बने जो कांग्रेस पार्टीके समर्थक हैं। वहाँ सवर्ण हिन्दुओंकी एक सभाके आयोजनकी घोषणा की गई। सभामें हमारी कमेटीको भी एक प्रतिनिधि भेजनेके लिए आमन्त्रित किया गया था। कुछ शरारती लोगोंकी चालबाजीसे सभाका रंग ही बदल गया। उसमें ऐसे

१. देखिए खण्ड २३ "खुली चिट्ठी : अकालियोंके नाम", २५-२-१९२४।

२. लक्ष्मीदास गांधीके नाराज रहनेके कारणोंके लिए देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३४४-५ और खण्ड ६, पृष्ठ ४४४-४८।

प्रस्ताव रखे गये जो उन प्रस्तावोंसे बिलकुल उलटे थे, जिन्हें सभामें पेश करनेका इरादा किया गया था। हमारे प्रतिनिधि तथा अन्य बहुतसे सवर्णोंने तुरन्त सभा-भवनका त्याग कर दिया और बहुत ही प्रतिष्ठित सवर्ण हिन्दुओंकी एक दूसरी सभा बुलाई। इस सभाका आयोजन चेंगनूरके प्रमुख जमींदार वंजीपोशे सरदारके घरपर किया गया। उन लोगोंके छलपूर्ण हथकंडोंकी बात जाने दीजिए, हमें जिस बातपर दुःख और क्षोभ है वह यह कि श्री वंजीपोशेपर कीचड़ उछालने और उनको बोलने न देनेका संगठित प्रयास किया गया; यहाँतक कि उनपर हाथ उठानेकी कोशिश की गई। बेचारेको वहाँसे चुपचाप खिसक आना पड़ा। इस घटनाकी चर्चा मैंने यह जतानेके लिए की कि त्रावणकोरमें आज कांग्रेसका प्रचार किस तरहसे हो रहा है।

इस प्रचार-कार्यके संयोजकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इसका स्पष्टीकरण भेजें। उसे मैं सहर्ष छाप दूंगा। मुझे भरोसा है कि यदि उनसे कोई गलती हुई होगी तो वे उसे स्वीकार करनेमें संकोच नहीं करेंगे।

संवाददाताओंको चेतावनी

मैंने बड़ी मुश्किलसे — बड़े-बड़े कष्ट सहकर सहृदय होनेका जो यश कमाया था उसे अहमदाबादमें अ० प्रे० संवाददाताने (मुझे आशा है कि अस्थायी रूपसे) धो बहाया है। उसने खबर भेजी कि मैं पीड़ित मलाबारके लिए केवल यही सन्देश दे सकता हूँ कि जो लोग भूखे, वस्त्रहीन और बे-घरबार हो गये हैं, उन्हें सूत कातना चाहिए।[1] अपनी मानहानिके लिए यदि श्री पेन्टरको १५,००० रुपये मिल सकते हैं तो मेरा खयाल है कि मुझे अपनी इस बदनामीके लिए कमसे-कम १,५०,००० मिलने चाहिए। अगर मुझे यह रकम मिल जाये तो मैं अपनी खोई हुई कीर्ति कुछ अंशमें फिर प्राप्त कर लूं और सारीकी-सारी रकम मलाबारके पीड़ितोंको भेज दूं। लेकिन मैं पेन्टर-जैसा नहीं हूँ। मैं तो संवाददाता व संवाद-संस्था दोनोंको सब दोषोंसे बरी किये देता हूँ। स्थानिक संवाददाताने मुझसे कहा है कि वह सभामें गया ही नहीं था। जो लोग सभामें गये थे, उन्होंने भी पूरी बात नहीं सुनी। लेकिन उन्हें कुछ ऐसा खयाल रहा कि मैंने कताईके बारेमें कुछ कहा था। इससे अधिक स्वाभाविक क्या हो सकता है कि मैं मलाबारके पीड़ित लोगोंको कपड़े, खाने और रहनेका साधन प्राप्त करनेके लिए कातनेकी प्रेरणा दूं? क्या आचार्य राय यही काम नहीं कर रहे हैं? बेचारा संवाददाता यह भूल ही गया कि आचार्य राय यह काम लोगोंके पुनर्वासके बाद कर रहे हैं। खैर; इस भारी भूलसे संवाददाता और सर्वसाधारण दोनों ही सबक ले सकते हैं। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंका यश संवाददाताओंकी मर्जीका खेल है। उनके लिए नेताओंके भाषणों और कामोंकी गलत रिपोर्ट भेज देना मामूली बात है। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंको भी चाहिए कि वे छपी हुई सभी खबरोंको ब्रह्म-वाक्य न मान लिया

१. देखिए "पत्र: कामाक्षी नटराजनको", ६-८-१९२४ और "टिप्पणियाँ", ७-८-१९२४ का उप-शीर्षक "मलाबारकी बाढ़"।

करें। अपने सम्बन्धमें तो सर्वसाधारणको और दूसरे लोगोंको मुझे यह जताते ही रहना होगा कि जबतक मैं स्वयं किसी विवरणको प्रमाणित न कर दूं तबतक वे, मेरे बारेमें प्रस्तुत किसी भी विवरणपर विश्वास न करें। मेरे सारे ही शब्द अखबारोंको भेज दिये जायें इनकी मुझे कोई उत्सुकता नहीं रहती। वे जो-कुछ भेजना चाहते हैं यदि उसे मेरे द्वारा प्रमाणित नहीं करा पाते तो वे मेरे भाषण या वक्तव्यको कतई न भेजें; यह उनकी कृपा होगी।

मुझे यह इसलिए कहना पड़ता है कि मुझे अपने विचारोंकी गलत रिपोर्टोंके कई कष्टकर अनुभव हुए हैं। १८९६ में मैंने हिन्दुस्तानमें दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें ३० या कुछ अधिक सफोंकी एक पुस्तिका प्रकाशित की थी।[1] रायटरने उसका सार पांच लाइनोंमें तारसे[2] नेटाल भेज दिया। उस पुस्तिकामें मेरा कहनेका जो-कुछ भी अभिप्राय था तारका मजमून उसके बिलकुल ही खिलाफ था। बिलकुल ही गलत इस खबरसे नेटालके गोरे भड़क उठे; और जब मैं नेटाल लौटा तो क्रोधसे पागल एक भीड़ने मुझे इतना मारा कि मैं मरते-मरते बचा। मेरे वकील मित्रोंने मुझसे क्षति-पूर्तिका दावा करनेके लिए आग्रहपूर्वक कहा; लेकिन उस वक्त भी मैं सत्याग्रही था। मैंने दावा करनेसे इनकार किया[3]। दावा न करनेसे मेरा कुछ बिगड़ा भी नहीं। जब उन लोगोंने देखा कि मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूँ और मुझे कुछका-कुछ समझकर उन्होंने अत्याचार ही किया है तो उन्हें अपनी भूलपर पछतावा हुआ। इसलिए अन्ततोगत्वा संयम बरतनेसे मेरा कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। लेकिन इससे भी अधिक यश मुझे मिले तो भी मैं वैसा दूसरा अनुभव नहीं करना चाहता। मैं अभी और सेवा करते रहना चाहता हूँ; लेकिन यह ईश्वरकी इच्छापर निर्भर है। इसलिए मैं संवाददाताओंसे कहता हूँ कि अभी कुछ अरसेके लिए वे मुझे बचाये रहें।

मलाबारके लिए सहायता

ऊपरकी पंक्तियाँ मैंने सिर्फ संवाददाताओं और जनताको सावधान करनेके लिए ही नहीं लिखी हैं। अच्छीसे-अच्छी परिस्थितियोंमें भी ऐसी गलतियाँ होती ही रहेंगी। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि अहमदाबादमें अथवा प्रधान कार्यालयोंमें जानबूझकर कोई उपेक्षा नहीं की गई। लेकिन मैं इस अवसरका उपयोग पीड़ितोंके लिए अधिक पैसा प्राप्त करनेके लिए करना चाहता हूँ। जो लोग मेरी कथित हृदयहीनता पर नाराज थे, मैं उन सबको इन दुखियोंके लिए अपनी सामर्थ्य-भर अधिकसे-अधिक मददके लिए आमन्त्रित करता हूँ। 'नवजीवन' के पाठकोंसे मैंने अपनी बचतमें से ही नहीं, बल्कि अपनी आवश्यकताकी वस्तुओंमें से भी कुछ बचाकर देनेको कहा है।[4] यहाँतक कि वे अपने वस्त्र और भोजनमें से भी कटौती करें। लोगोंकी इसपर बड़ी

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १-७८।

२. रायटरके तारके लिए देखिए खण्ड २, पृष्ठ २००।

३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १७८।

४. देखिए "मलाबारमें बाढ़", १०-८-१९२४।

तत्पर और उदार प्रतिक्रिया हुई है। महाविद्यालयके छात्रोंने श्रद्धानन्दजीके गुरुकुलमें पढ़नेवाले उन विद्यार्थियोंकी परिपाटीका अनुकरण किया है जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके आन्दोलनके दिनोंमें मजदूरी करके दानके लिए राशि इकट्ठी की थी। महाविद्यालयके छात्रोंने अपने विद्यालयके लिए बन रही इमारतोंके निर्माणमें मजदूरोंकी तरह हाथ बँटाया है और वे प्राप्त होनेवाली यह मजदूरी सहायताकी राशिमें दे देंगे। इस प्रकारके कामकी सम्भावनाएँ अनन्त हैं।

१२ वर्षसे भी कम उम्रके लड़के-लड़कियोंने कई दिनोंके लिए दूध लेना बन्द कर दिया है और उससे होनेवाली बचत वे सहायता-कोषमें देंगे। इस तरह कई तो प्रतिदिन तीन-तीन आनेकी बचत कर लेंगे। वयस्क लोग हर दिन एक वक्तका भोजन नहीं कर रहे हैं।

लड़के-लड़कियाँ बहुत जरूरी कपड़ोंके अलावा सभी कपड़े दानमें दे रहे हैं। एक लड़कीने अपने चाँदीके पायजेब दे दिये हैं। एक लड़केने अपने सोनेके कीमती कुण्डल दे दिये हैं। एक बहनने सोनेके अपने चार भारी-भारी कंगन भेजे हैं। एक दूसरी बहनने भी अपना सोनेका वजनी हार दानमें दिया है। दाताओंकी सूची यहीं पूरी नहीं होती। मैंने तो नमूनेके तौरपर कुछ उदाहरण-भर दिये हैं। एक छोटी-सी बालिकाने चुराकर जमा किये हुए अपने सारे पैसे निकालकर दे दिये। राष्ट्रीय कालेजके विद्यार्थियोंने तथा अन्य लोगोंने मुझे अपना काता हुआ ढेरका-ढेर सूत दिया है। कुछ दूसरे लोग इन पीड़ितोंके लिए कुछ समयतक रोज कताई करनेका इरादा रखते हैं।

अगले स्तम्भमें चन्देकी एक सूची दी गई है। कईने तो बहुत उदारतासे दान दिया है। किन्तु, ऊपर जिनकी बात की गई है, वे मेरे लिए अधिक मूल्यवान हैं।

ईश्वर करे कि इन चन्दोंसे, और विशेषकर छोटे-छोटे बच्चोंके चन्दों और आत्म-त्यागसे विपद्ग्रस्त क्षेत्रके बेघरबार, भूखे-नंगे स्त्री-पुरुष तथा बच्चोंको राहत मिले। मैं 'यंग इंडिया' के पाठकोंको आमन्त्रित करता हूँ कि उनमें से जिन लोगोंने इस कोषके लिए अन्यत्र दान नहीं दिया हो, वे अब अपना-अपना हिस्सा दें। मेरे सामने जो तार पड़े हुए हैं, उनमें कहा गया है कि वस्त्रों और रुपयोंकी समान रूपसे जरूरत है इसलिए वस्त्र भी भेजे जा सकते हैं। गरीबसे-गरीब लोग भी कुछ-न-कुछ आत्म-त्याग करके यह दिखा दें कि वे अपने मलाबारवासी देशभाइयोंके दुख-दर्दको अपना ही दुख-दर्द मानते हैं।

कपड़े

कपड़े बहुत अधिक मात्रामें प्राप्त हो रहे हैं। इस सम्बन्धमें मैं पाठकोंको सूचित करना चाहता हूँ कि खादीके और दूसरे कपड़ोंमें भेद नहीं किया जा रहा है। जिन लोगोंके पास अब भी मिलके या विदेशी कपड़े हों, वे उन्हें भेज सकते हैं। बम्बईसे पूछा गया है कि कपड़े कहाँ दिये जायें। मेरा सुझाव है कि इसकी व्यवस्था प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके द्वारा हो। जबतक यह व्यवस्था न हो जाये, वे प्रिंसेज स्ट्रीट बम्बई स्थित 'नवजीवन' डिपोमें दिये जा सकते हैं। लेकिन दानकर्त्ता निम्नलिखित बातोंका खयाल रखें:

१. गन्दे कपड़े धोकर और तह करके ले जायें।

२. फटे कपड़े सीकर और तह करके दें।

३. कपड़े अच्छी तरह बंडल बनाकर और पार्सलोंके रूपमें सीकर भेजे जायें और साथमें कपड़ोंकी सूची और दाताका नाम भी हो।

उनकी स्वीकृति इन स्तम्भोंमें अलग-अलग प्रकाशित नहीं की जायेगी। लेकिन दानकर्त्ता कपड़ा लेनेवाले कार्यालयको रसीद लेकर ही कपड़े दें तो अच्छा हो। मैं उन्हें आगाह करना चाहता हूँ कि जबतक रुपयों या सामानकी बाकायदा रसीद न मिल जाये और उगाहनेवाले उनकी जान-पहचानके न हों तो किसीको कोई चीज न दें।

वैसे मुझे 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के कार्यालयोंमें चन्देके रूपमें पैसा, आभूषण और कपड़ा प्राप्त करके गौरवका अनुभव होता है; फिर भी मैं पाठकोंको बता देना चाहता हूँ कि वे चन्दा किस केन्द्रमें देते हैं, इसकी फिक्र न करें। वे जहाँ चाहें, वहाँ दे सकते हैं। उनका कर्त्तव्य तो देने-भरसे पूरा हो जाता है। आज दक्षिण भारत जिस भयंकर विपत्तिके दौरसे गुजर रहा है, उसमें सहयोगियों और असहयोगियों-का भेद भी नहीं किया जाना चाहिए। जहाँतक मेरे पास भेजे जानेवाले चन्दोंका सम्बन्ध है, मैं उनके वितरणका अच्छेसे-अच्छा तरीका ढूंढ़ निकालनेके लिए श्री वल्लभभाईके साथ परामर्श कर रहा हूँ; और श्री राजगोपालाचारीसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ; लेकिन मुझे तार भेजनेवाले लोग अगर अपने सुझाव भी भेजें तो मैं आभारी होऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-८-१९२४

३२५. तार: मुहम्मद अलीको

[साबरमती
१५ अगस्त, १९२४][१]

आज रातको शौकत अलीसे मिलनेका इरादा और कल सुबह छोटी लाइनसे रवानगी। मशीनें अभीतक नहीं भेजी गई हैं। सूची भेजनेको स्वामीको लिख रहा हूँ। आशा है बी-अम्मा अच्छी होंगी।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०११५) की फोटो-नकलसे।

१. यह मुहम्मद अलीके निम्नलिखित उस तारके उत्तरमें भेजा गया था जो गांधीजीको १५ अगस्त, १९२४को मिला था: "१५ तारीखको सुबहकी डाक गाड़ीसे रवाना हो सकें तो बड़ी मेहरबानी। यह मुमकिन न हो तो बड़ी लाइनसे बड़ौदा होकर। समझौता आपके आनेसे सम्भव। रवानगीका तार दें।

३२६. तार: सी० एफ० एन्ड्रयूजको[1]

[१५ अगस्त, १९२४][2]

चार्ली एन्ड्रयूज
द्वारकानाथ टैगोर लेन
कलकत्ता

बधाई। आशा है आप स्वस्थ होंगे। सबकी ओरसे प्यार। कल दिल्ली जा रहा हूँ।

मोहन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०११६) की फोटो-नकलसे।

३२७. तार: हकीम अजमलखाँको

[अहमदाबाद
१५ अगस्त, १९२४][3]

कल सुबह दिल्लीके लिए रवाना हो रहा हूँ। स्वास्थ्य ठीक ही है। आशा है कि आप और बेटी सकुशल होंगे। क्या आप दिल्ली आनेवाले हैं?

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०११४) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार सी० एफ० एन्ड्रयूजके १४ अगस्त, १९२४के तारके जवाबमें भेजा गया था। तार इस प्रकार था: "सकुशल पहुँच गया। मेरा हार्दिक प्यार। लेख भेज रहा हूँ।"

२. गांधीजी १६ अगस्त, १९२४को दिल्लीके लिए रवाना हुए थे। यह तार उससे एक दिन पहले भेजा गया था।

३. यह तार हकीम अजमल खांके १४ अगस्त, १९२४के उस तारके जवाबमें था जो १५ अगस्त, १९२४को उन्हें प्राप्त हुआ था। तार इस प्रकार था: "स्वास्थ्यके बारेमें और आप दिल्ली कब आ रहे हैं तार द्वारा सूचित कीजिए।"

३२८. पत्र: डा० सैफुद्दीन किचलूको

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय डा० किचलू,

एक गुमनाम संवाददाताने मुझे 'अर्जुन' अखबारकी एक कतरन भेजी है। मैंने उसका अनुवाद उर्दूमें करा लिया है। पढ़कर इसमें कुछ सच्चाई हो तो मुझे उससे अवगत करानेकी कृपा करें?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

३२९. पत्र: मोतीलाल नेहरूको

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ।

मैं अपने मनकी सारी बात आपके सामने रख रहा हूँ।

मैं जितना ही सोचता हूँ मेरी अन्तरात्मा बेलगांवमें सत्ताके लिए होनेवाली रस्साकशीके खिलाफ उतना ही अधिक विद्रोह करती है। परन्तु मैं कौंसिलोंके कार्य-क्रमके झमेलेमें अपनेको नहीं डालना चाहता। यह तभी हो सकता है जब स्वराज्य-वादी कांग्रेसपर छा जायें या फिर वे कांग्रेससे हट जायें। आपको और हमारे मित्रों-को इनमें से जो रास्ता ठीक जँचे, मैं उसीपर चलनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ। मैं कांग्रेसमें रहता हूँ तो कौंसिलोंके समर्थक उससे बाहर रहें। मैं तभी आपको मदद पहुँचा सकता हूँ; और यदि वे लोग कांग्रेसमें रहते हैं तो फिर मुझे कांग्रेससे व्यवहारतः बाहर हो जाना चाहिए। तब मेरी जो स्थिति १९१५ से १९१८ तक थी मैं बड़ी खुशीसे उसी स्थितिमें रह सकूँगा। मेरा उद्देश्य स्वराज्यवादियोंकी शक्तिको कम करना नहीं है और उनके काममें अड़चन डालनेका तो है ही नहीं। आप रास्ता

सुझाइए; आपकी इच्छानुसार चलनेका भरसक प्रयत्न करूँगा। यदि कोई बात बिलकुल साफ न हो पाई हो तो कृपया लिखिएगा।

मैं मुहम्मद अलीके तारपर कल दिल्ली जा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०११७) की फोटो-नकल तथा महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

३३०. पत्र: कनिकाके राजाको

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय राजा साहब,

इससे पहले आपके दो पत्र मिले थे। उनकी प्राप्ति-सूचना न भेज पानेके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। जवाब देनेसे पहले मैं सम्बन्धित कागजात अच्छी तरह देख लेना चाहता था। परन्तु हाथमें काम इतना है कि मैं उन्हें अभीतक गौरसे नहीं देख पाया हूँ। आशा है, जल्दी ही देखकर फिर लिखूंगा। आपने तत्परतासे ध्यान देनेके लिए आश्वासन दिया, इसके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

राजा कनिका
उड़ीसा

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

३३१. पत्र: कुमारी सोंजा श्लेसिनको

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय कुमारी श्लेसिन,

तुम्हारा पत्र यद्यपि काफी देरसे मिला फिर भी पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। शायद तुम इस पत्रको बहुत साफ-सुथरा लिखना चाहती थी; मगर तुम इसमें बिलकुल कामयाब नहीं हुई। वही पहले जैसी गन्दगी, जहाँ-तहाँ स्याहीके धब्बे। पत्रसे मानो तुम्हारी स्याही-सनी अँगुलियाँ झांक रही हैं। तुमने जो प्रमाणपत्र[1] चाहा है सो भेज रहा हूँ। अब तुम मुझपर झूठ बोलनेका आरोप लगा सकती हो; क्योंकि इस प्रमाणपत्रमें मैंने तुम्हारे अव्यवस्थितपनका उल्लेख ही नही किया। आशा है नया 'मालिक' अपेक्षाकृत भाग्यशाली रहेगा। तुमने मुझपर जो आरोप लगाये हैं मैं उनमें से एकको भी स्वीकार करनेमें असमर्थ हूँ। तुम्हें "कामके बारेमें प्रमाणपत्र" देनेकी फिक्र कैसे करूँ? लेकिन आखिर कट्टर सिद्धान्तवादी भी कैसे गिरे? उस २४ पौंडकी रकमके सम्बन्धमें मेरा खयाल था कि १५० पौंडके ड्राफ्टमें वे भी शामिल हैं। खैर, मैं पारसी रुस्तमजीको लिख रहा हूँ कि १५० पौंडमें से जो-कुछ भी रहता हो वह सब वे बट्टे-खातेमें डाल दें।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। तुमने पत्र लिखकर मेहरबानी की है; क्या इसे जारी रखोगी?

पत्रकी बाकी बातोंके जवाब रामदास देगा।[2]

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

सहपत्र

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
१५ अगस्त, १९२४[3]

कुमारी सोंजा श्लेसिनने दक्षिण आफ्रिकामें मेरे सार्वजनिक जीवनके महत्त्वपूर्ण दौरमें मेरे विश्वस्त सचिवके रूपमें लगभग सात वर्षतक काम किया था। इनको

१. देखिए सहपत्र।

२. पत्रका अनुवाद महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे किया गया है।

३. मूलमें १९१४ है जो कि गलतीसे लिखा गया होगा।

बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण काम सौंपा गया था जिसमें हिसाब-किताब रखनेका भी काम था और उसमें हजारोंकी लम्बी-लम्बी रकमोंका लेन-देन भी होता था। वे इस कामको करते हुए कौमों और विभिन्न राष्ट्रोंके सैकड़ों लोगोंके सम्पर्कमें आईं। दक्षिण आफ्रिकामें मेरे अन्तिम कारावास कालमें मेरे कार्योंकी देखभालकी पूरी जिम्मेदारी इन्हींके कन्धोंपर आ पड़ी थी। मुझे उनकी प्रामाणिकता अथवा योग्यतापर सन्देह करनेका अवसर कभी नहीं आया। वास्तवमें यह सेवा-कार्य वे वेतनके खयाल-से नहीं, वरन् जो काम उन्हें सौंपा गया था उसी कामको सही काम समझने तथा उसके प्रति रुचि रखनेके कारण करती थीं। वे सेवाके लिए हर क्षण उद्यत रहतीं। उनके संकेतलिपिके ज्ञान और साहित्यिक प्रतिभासे मुझे बड़ी मदद मिलती थी। मैं इनसे अधिक अच्छे सचिवकी अपेक्षा ही नहीं रख सकता था। मुझे यह सुनकर खुशी होगी कि उन्हें ऐसा कार्य दिया गया है जिसमें पूरी सावधानी और पूर्ण प्रामाणिकता और योग्यताकी अपेक्षा रखी जाती है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०११८j) की फोटो-नकल तथा महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

३३२. पत्र : कामाक्षी नटराजनको

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय श्री नटराजन,

जेल जानेसे पहले मैंने श्री पेटिटको पत्र लिखकर उनसे यह जानना चाहा था कि क्या पण्डित बनारसीदासको 'आई० सी० ए०'[1] कोषसे उस कामके लिए पैसा दिया जा सकता है जो उन्होंने विदेशोंमें बसे हुए भारतीयोंके सम्बन्धमें किया है। जेलमें मुझे ऐसा बताया गया था कि श्री पेटिट माँगी हुई रकमकी आधी रकम दिये जानेकी सिफारिश करनेको तैयार हैं। परन्तु श्री पेटिटको इस बातका स्मरण नहीं है।[2] कालेजकी पढ़ाईके महीनोंमें पण्डित बनारसीदास हिन्दी पढ़ानेके लिए गुजरात राष्ट्रीय पाठशालाको प्रतिदिन लगभग दो घंटे देते हैं। अपना बाकी वक्त और चार महीनोंकी लम्बी छुट्टियोंका समय वे विदेशोंमें बसे भारतीयोंके काममें लगाते हैं। उन्होंने इस कामको अपना ही काम मान लिया है और इन मामलोंके विशेषज्ञ बन गये हैं। श्री पेटिट बनारसीदासजीकी सेवाओंका महत्त्व तो समझते हैं परन्तु वे कहते हैं कि उन्हें बम्बईमें रहना चाहिए। पण्डित बनारसीदास शान्त स्वभावके और एकान्त सेवी व्यक्ति हैं। वे मुख्यतः एक अध्ययनशील व्यक्ति हैं। मैंने उन्हें अपने

१. इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन। (साम्राज्यीय नागरिकता संघ)
२. देखिए "पत्र : जे० बी० पेटिटको", २९-७-१९२४।

आश्रममें कमरे दे दिये हैं और वे आजकल वहीं रह रहे हैं। मैं नहीं समझता कि बम्बईमें रहनेसे उनका काम अधिक महत्त्वपूर्ण बन जायेगा। हाँ, यह जरूर है कि जब कभी बम्बईमें उनकी मौजूदगीकी जरूरत पड़ेगी, वे वहाँ जा सकते हैं। फिलहाल इन सज्जनको गुजरात विद्यापीठसे मेरी सिफारिशपर १३० रु० प्रतिमास दिये जाते हैं। फीजीके उनके सहयोगी श्री तोतारामजी आश्रममें रहते हैं। उन्हें आश्रम कोषसे ५० रुपये मासिक दिये जा रहे हैं। पण्डितजीको तार-चिट्ठी आदिके डाकखर्चके लिए पचास रुपये मासिक दिये जाते हैं। लेकिन मैं महसूस करता हूँ कि जब उनका अधिकांश समय विदेशोंमें बसे भारतीयोंके सम्बन्धमें व्यतीत होता है, तब कालेज या आश्रमपर उनके खर्चका बोझ डालना वाजिब नहीं। इसलिए मैं ऐसा सोचता हूँ कि संघको पिछले खर्चका कमसे-कम तीन-चौथाई अदा कर देना चाहिए और भविष्यमें कालेज तथा आश्रमसे दिये जानेवाले २३० रु०का तीन-चौथाई भाग भी देना चाहिए। क्या आप कृपया मुझे बतायेंगे कि मेरा यह सुझाव आपको ठीक जँचता है या नहीं।'

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९८९) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रकी प्राप्ति-स्वीकार करते हुए नटराजनने जवाब दिया था कि . . . "मेरा खयाल है कि पण्डित बनारसीदास और तोतारामजीके कामके लिए आपने आश्रम-कोषसे जो खर्च किया है उसके कुछ अंशका संस्था द्वारा भुगतान करनेकी आपकी इच्छा पूरी की जा सकती है और . . . मैं समझता हूँ कि पण्डितजी और तोतारामजीको अपने मासिक खर्चका ब्योरा डायरीके या आपके सुझाये किसी अन्य रूपमें पेश करनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी . . . ।"

३३३. पत्र : जमनादास गांधीको

श्रावण बदी १ [१५ अगस्त, १९२४][1]

चि० जमनादास,

रेवाशंकरभाईसे सलाह लो। मुझे लगता है, डाक्टर साहबके रुपये[2] मकानमें लगानेमें कोई हर्ज नहीं।

मैं कल दिल्ली जा रहा हूँ। शोर अपने-आप शान्त हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

चि० जमनादास खु० गांधी
मिडिल स्कूलके सामने
नवा परा, राजकोट

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२७) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१. गांधीजी १६ अगस्त, १९२४ को दिल्लीको रवाना हुए थे। यह पत्र उससे एक दिन पहले लिखा गया था। १९२४ में श्रावण बदी १, १५ अगस्तको थी।

२. डा० प्राणजीवन मेहता द्वारा दी गई रकम।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

डा० भगवानदासका पत्र

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

आपने १७-४-१९२४ के 'यंग इंडिया' में "अध्यापक और वकील" शीर्षकसे जो लेख लिखा है। उसमें १३० पृष्ठपर निम्नलिखित वाक्य आये हैं:

> पर यदि हम जनताके लिए स्वराज्य स्थापित करना चाहते हों — एक दलके बदले किसी दूसरे दलका जो शायद उससे भी अधिक बुरा निकले, राज्य स्थापित करना नहीं चाहते तो — इस कठिनाईका मुकाबला हमें केवल साहसके साथ ही नहीं, जानको हथेलीपर रखकर करना होगा।

दूसरा वाक्य है:

> यदि हमें स्वराज्यमें नगर जीवनको ग्रामजीवनके अनुरूप बनाना हो तो नगर जीवनका रंगढंग बदलना ही होगा।

मैं बड़ी संजीदगीके साथ आपका और 'यंग इंडिया' के सभी पाठकोंका ध्यान इन दो शर्तोंसे निकलनेवाले नतीजोंपर और पूरे असहयोग आन्दोलन तथा स्वराज्य संघर्ष-पर पड़नेवाले इनके अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण प्रभावकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। स्वराज्यके लिए विभिन्न दल अपने विभिन्न तरीकोंसे संघर्ष कर रहे हैं। इन दलोंने कांग्रेसके नये सिद्धान्त, जिसमें 'स्वराज्य' शब्दका प्रयोग किया गया है, को स्वीकार कर लिया है। लेकिन इस नये सिद्धान्तमें 'स्वराज्य' शब्दकी कोई निश्चित, सुस्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है, न यही बतलाया गया है कि स्वराज्य किस प्रकारका होगा।

हममें से कुछ लोगोंका पक्का विश्वास है कि असहयोग आन्दोलनकी प्रगतिमें बाधक और उसे प्रभावहीन बनानेवाली सभी त्रुटियोंमें से अनेक त्रुटियोंकी जड़ यही अनिश्चित और अस्पष्ट शर्तें हैं। जबतक ये शर्तें अस्पष्ट रहेंगी तबतक किन्हीं भी दो वर्गों, किन्हीं भी दो सिद्धान्तों, किन्हीं भी दो जातियोंके बीच परस्पर विश्वास पैदा हो ही नहीं सकेगा; बल्कि कहा तो यह भी जा सकता है कि तबतक स्वराज्य चाहनेवाले, उसके स्वरूपके बारेमें भले ही भिन्न-भिन्न मत रखनेवाले, किन्ही दो कार्य-कर्त्ताओंमें भी परस्पर कोई विश्वास पैदा नही हो सकेगा।

कारण यह है कि किसी शब्दका सही और पूरा-पूरा अर्थ समझे बिना उस एक शब्दके आधारपर हासिल की गई एकता बड़ी ही अवास्तविक किस्मकी एकता

है। इसीलिए वह लगातार टूटती चली जा रही है। वह राजनीतिक वहसमुवाहिसों-में भाषा और विचारगत उग्रताका और हिन्दू-मुस्लिम दंगोंके दौरान हिंसात्मक कार्योंका रूप धारण कर लेती है। और इसीलिए आन्दोलन अनेक दिशाओंमें असफल होता जा रहा है। ऐसी एकतासे न तो अविचल निष्ठा पैदा हो रही है, न अनुशासन सब रहा है, न संगठन मजबूत हो रहा है और न रचनात्मक या ध्वंसकारी किसी भी प्रकारके किसी व्यवस्थित कार्यको ही बल मिल रहा है।

उद्धृत किये गये पहले वाक्यके तुरन्त बाद, आप कहते हैं: "आजतक हजारों ग्रामीण हमें जीवित रखनेके लिए मरे-खपे हैं; अब शायद उन्हें जीवित रखनेके लिए हमें मरना पड़े।" लेकिन स्वराज्य जिस 'जनता' के लिए स्थापित किया जाना है, उसमें "हम लोग" (शहरी लोग) भी तो शामिल हैं। क्या हम लोग शामिल नहीं हैं? और शहरी लोगोंका एक बड़ा भाग उतना ही निर्धन है जितने कि गाँवोंके लोग। क्या ऐसा नहीं है?

शहरी लोगोंको कुछ ऐसा लगता रहा है कि असहयोग आन्दोलनसे मिलनेवाले स्वराज्यका अर्थ कोई नहीं जानता, पर वह शायद शहरोंको मिटा देगा (उसके विरुद्ध उठाये जानेवाले 'वोल्शेविज्म' के नारोंको देखिए), इसलिए स्वाभाविक ही है कि इससे उनके हृदयोंमें स्वराज्यके प्रति कोई उत्साह पैदा नहीं होता। तिलक स्वराज्य-कोषके लिए अधिकांश चन्दा शहरोंसे ही आया है; बम्बई इसमें सबसे आगे रहा है। चन्दा ऐसे लोगोंने दिया है जिनके धन्धे और जीविकाके साधनोंको असहयोग आन्दोलनका रचनात्मक और विध्वंसकारी कार्यक्रम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे क्षीण ही बनायेगा, उनकी जड़ें हिला देगा। फिर भी शहरी लोगोंकी ओरसे इतना चन्दा मिलनेका अंशतः एक कारण तो यह है कि सभी वर्गोंके भारतीय आपके व्यक्तित्वके प्रति श्रद्धालु हैं और उसका दूसरा आंशिक कारण है उनकी यह आशा कि आखिरकार वह मनोवांछित स्वराज्य शहरोंके खिलाफ कोई जिहाद नहीं बोल देगा, वह शहरोंकी बुराइयोंको ही दूर करनेकी कोशिश करेगा।

शहरोंके लोपका अर्थ होगा लक्ष्मी और सरस्वतीका लोप। और तब खलि-हानोंमें क्रीड़ा करती गौरी अन्नपूर्णा मानवीय जीवनको कलात्मक अभिरुचि, विज्ञानपरक बुद्धिसे सम्पन्न और इसीलिए विविधतापूर्ण बनानेमें असफल रहेगी, फिर चाहे हमारे खलिहान कितने ही धान्य पूरित क्यों न हों। आवश्यकता इस बातकी है कि सभी कालोंमें सभी देशों और धर्मोंके मानवों द्वारा सर्वपूजित इन तीनों दैवी शक्तियोंको सन्तुलित अनुपात दिया जाये। और इनमें से किसी एकका भी त्याग न किया जाये। रामराज्यमें यद्यपि लंका आंशिक रूपसे तहस-नहस हो गई थी तथापि अयोध्या फली-फूली थी।

बादके एक अनुच्छेदमें आपका यह वाक्य पढ़कर हमारे मनको बड़ी शान्ति मिली कि "नगर-जीवनका रंगढंग बदलना ही होगा"। इससे पहलेके वाक्योंने मनमें जो आशंकाएँ पैदा कर दी थीं वे इससे कुछ शान्त हो जायेंगी, हालाँकि लोग पूरी तौरपर आश्वस्त तो नहीं होंगे।

अधिकांश मानवता सदासे 'अनुग्रता', 'स्वर्ण-सन्तुलन', 'मध्यममार्ग', 'आत्म-संयम' की ही सहज आकांक्षा करती रही है और इसीके लिए प्रयत्नशील रही है। अब आप जबतक हमारे नेताओंके सिरमौरकी हैसियतसे देशके सामने स्वराज्यकी कोई ऐसी योजना नही रखेंगे जिससे जनताके सभी वर्गोंको यह अभय मिल जाये कि किसी भी वर्गको बिलकुल नेस्तनाबूद नहीं किया जायेगा, यद्यपि हर प्रकारकी और हर किसीकी क्षतिको रोकनेका यथोचित प्रबन्ध किया जायेगा, तबतक किसी भी वर्गकी जनता पूरे मनसे संघर्षमें नहीं उतरेगी और स्वराज्यके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोंमें सच्ची एकता पैदा नहीं हो सकेगी और इसीलिए सच्चा स्वराज्य कभी स्थापित नहीं किया जा सकेगा।

'यंग इंडिया' में स्थानकी मर्यादा है और वह बहुत कीमती है; इसलिए मुझे उसमें बहुत अधिक स्थान नही घेरना चाहिए; हालाँकि मेरा हार्दिक विश्वास है कि 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें अभीतक जितने भी विषयोंके बारेमें लिखा गया है, उनमें यह विषय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण या परिणामकी दृष्टिसे सर्वाधिक दूरव्यापी है, अर्थात् भारतको किस प्रकारके स्वराज्यकी जरूरत है — यही सर्वाधिक महत्त्वका विषय है।

मैं गत तीन वर्षोंसे इस विषयकी ओर मौके-बेमौके आम जनता और (बनारसकी स्थानीय कमेटीसे लेकर अखिल भारतीय कमेटीतक) सभी स्तरोंपर कांग्रेस कमेटियों और अलग-अलग नेताओंका ध्यान आकर्षित करता रहा हूँ। आपकी गिरफ्तारीके दिनतक और फिर आपकी रिहाईके बादसे भी मैं आपके पास इस सम्बन्धमें पत्र और प्रकाशित सामग्री भेजता रहा हूँ। मैं इसके सम्बन्धमें बार-बार अपनी राय व्यक्त कर चुका हूँ और मैं यहाँ उसे दोहराऊँगा नहीं। १९२३ के आरम्भमें थोड़े समयके लिए मुझे काफी आशा बँध गई थी कि इस विषयपर यथायोग्य विचार किया जायेगा, इसलिए कि देशबन्धु दास-जैसे प्रमुख नेताने कुछ समयतक इस विषयमें दिलचस्पी ली थी। लेकिन उनकी दिलचस्पी बहुत ही थोड़े समयतक रही। और मुझे भी कुछ ऐसा लगने लगा था कि अभी इस विषयकी चर्चाके लिए 'उपयुक्त समय' नहीं आया है।

परन्तु आपके लेखमें उपर्युक्त दो महत्त्वपूर्ण शर्तोंपर मेरी नजर पड़ी। उससे मुझे यह एक और प्रयास करनेकी प्रेरणा मिली।

हम कुछ लोगोंको इस विषयमें बहुत ही दिलचस्पी है। इसलिए यदि आप 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें इसके बारेमें कुछ लिखें — ऐसा कुछ लिखें जो निराशाके अँधेरेमें प्रकाशकी किरण-जैसा हो — तो हम "हम कुछ लोग" अत्यन्त ही कृतज्ञ होंगे।

आपका,
भगवानदास

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-५-१९२४

परिशिष्ट २

कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें स्वराज्यवादियोंका वक्तव्य[1]

२२ मई, १९२४

हम महात्मा गांधीके आभारी हैं कि उन्होंने कौंसिल-प्रवेशकी समस्यासे सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नोंपर हमारे साथ चर्चा करनेका कष्ट उठाया। उन्होंने हमें इस विषयपर समाचारपत्रोंमें प्रकाशनके विचारसे दिये गये अपने वक्तव्यकी एक अग्रिम प्रति देखनेका अवसर दिया, उनके इस सौजन्यके लिए हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं। उन्होंने बात-चीतके दौरान और समाचारपत्रोंको दिये गये अपने वक्तव्यमें जो विचार व्यक्त किये थे उन सभीपर हमने उनके महान् व्यक्तित्वको ध्यानमें रखते हुए बड़ी ही सावधानीके साथ विचार कर लिया है। उनके व्यक्तित्व और उनके विचारोंके प्रति हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा है, तथापि हम उनके तर्कोंसे अपने-आपको सहमत नहीं कर पाये।

हम खेदपूर्वक स्वीकार करते हैं कि कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें स्वराज्यवादियोंके दृष्टिकोणकी तर्क-संगतिके बारेमें हम महात्मा गांधीको सहमत करनेमें असमर्थ रहे हैं। हम समझ नहीं पाये कि कौंसिल-प्रवेशको नागपुर कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावमें निहित सिद्धान्तसे असंगत कैसे माना जा सकता है।

किन्तु यदि असहयोगको अधिकांशतः एक मानसिक दृष्टिकोण ही माना जाये, राष्ट्रीय जीवनके वर्तमान यथार्थपर एक जीवन्त सिद्धान्तको लागू करने तथा उसके अनुसार व्यवहार करनेसे असहयोगका कोई अधिक सम्बन्ध न हो और राष्ट्रीय जीवनको विनियमित करनेवाली नौकरशाही सरकारके बदलते हुए रवैयेको देखकर समय-समयपर तदनुकूल व्यवहार करनेसे उसका कोई अधिक सम्बन्ध न हो, तो हम देशके वास्तविक हितोंके साधनकी खातिर असहयोगतक को तिलांजलि देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

हमारी समझमें तो इस सिद्धान्तका अर्थ राष्ट्रके स्वस्थ विकासके लिए अपेक्षित सभी कार्योंमें आत्मनिर्भर बनना और स्वराज्यकी ओर हमारी प्रगतिमें बाधक बननेवाली नौकरशाहीका प्रतिरोध करना है। पर हम चाहते हैं कि शब्दोंको लेकर चलनेवाली यह अर्थहीन बहस समाप्त कर दी जाये। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने इस सिद्धान्तको जिस रूपमें समझा है उसके मुताबिक कौंसिल-प्रवेश और असहयोगके सिद्धान्तमें कहीं कोई असंगति नहीं है, न हो सकती है।

हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रममें 'अड़ंगा' शब्दका प्रयोग उस पारिभाषिक अर्थमें नहीं किया है जिसमें वह इंग्लैंडके संसदीय इतिहासमें प्रयुक्त हुआ है। अधीनस्थ, सीमित अधिकारोंवाले विधान-मंडलोंमें उस अर्थमें तो

१. इसे चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरूने संयुक्त रूपसे स्वराज्य पार्टीकी ओरसे प्रकाशित किया था।

'अड़ंगा' डालना सम्भव भी नहीं है। सुधार अधिनियमके अन्तर्गत हमारे यहाँकी विधान सभाएँ और प्रान्तीय विधान-मण्डल निःसन्देह अधीनस्थ और सीमित अधिकारोंवाले विधान-मण्डल ही हैं। हमें अपना अर्थ स्पष्ट करनेके लिए शायद कोई दूसरा शब्द काममें लाना चाहिए था। पर हम यहाँ इतना बतला देना चाहते हैं कि संसदीय शब्दावलीमें 'अड़ंगा' शब्दका जो अर्थ लगाया जाता है, वास्तवमें वैसी कोई बाधा तो हमारे यहाँ होती ही नहीं। हमारे यहाँ तो जो होता है वह प्रतिरोध ही अधिक है, स्वराज्यके मार्गमें नौकरशाही सरकार द्वारा पैदा की गई बाधाओंका प्रतिरोध। अड़ंगा या बाधा शब्दसे हमारा अभिप्राय वास्तवमें इसी प्रतिरोधसे था। हमने स्वराज्य पार्टीके विधानकी प्रस्तावनामें असहयोगकी जो परिभाषा की और जिस ढंगसे उसे पेश किया था उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। हमें लगता है कि नौकरशाहीकी ओरसे पैदा की जानेवाली ऐसी बाधाओंको हटानेपर जोर देना जरूरी है। हमने विधान मण्डलोंमें अभीतक इसी नीतिका अनुसरण किया है और यही नीति है जिसे भविष्यमें राष्ट्रीय जीवनकी परिवर्तनशील आवश्यकताओं और समस्याओंपर दिन-दिन अधिक कारगर रूपसे लागू किया जाना चाहिए।

अब इस नीतिको "एक समान, सतत और संगत बाधा" की नीति कहना उपयुक्त रहेगा या नहीं—इसके बारेमें भी हम नहीं चाहते कि कोई शाब्दिक बहस छिड़े। हमारा काम तो अपनी नीतिका निरूपण-भर कर देना है। हाँ, हमारे मित्र लोग अगर चाहें तो उनके लिए अधिक उपयुक्त संज्ञाकी तलाश करें। अब हम इस सिद्धान्त और नीतिकी दृष्टिसे विधान-मण्डलों और उनसे बाहर किये जानेवाले कार्यका भावी कार्यक्रम पेश करते हैं।

विधान मण्डलोंके अन्दर रहकर हम :

(१) तबतक 'बजटों' को हर बार अस्वीकृत करते रहेंगे जबतक हमारे अधिकारोंको मान्यता देनेकी खातिर या संसद और इस देशकी जनताके बीच किसी समझौतेके फलस्वरूप सरकारी व्यवस्था नहीं बदली जाती। अपने इस कार्यका औचित्य सिद्ध करनेके लिए केन्द्रीय सरकारके बजटसे सम्बन्धित चन्द मुख्य-मुख्य तथ्य बतला देना ही पर्याप्त है। प्रान्तोंके 'बजटों' पर भी ये तथ्य कमोबेश लागू होते हैं। (रेलवेको छोड़कर) बजटमें कुल १३१ करोड़ रुपयेकी राशिकी व्यवस्था की जाती है पर इनमें से केवल १६ करोड़ रुपयेकी राशिके बारेमें हमें मतदानका अधिकार रहता है। इतना ही नहीं, मतदानके क्षेत्रसे बाहर रखी जानेवाली राशिमें से ६७ करोड़ तककी राशि, बजटकी कुल राशिकी आधीसे-अधिक राशि, सेनापर व्यय की जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस देशकी जनताको बजटकी कुल राशिके आठवें-से भी कम हिस्सेपर मत देनेका अधिकार है और इस सीमित अधिकारके निर्वहनको भी यदि गवर्नर जनरल चाहे तो विफल बना सकता है।[1] इसलिए यह सर्वथा स्पष्ट है कि जनताको न तो 'बजट' तैयार करनेमें हाथ बँटानेका अधिकार है और न

१. भारत सरकार अधिनियमके खण्ड ६७-क के द्वारा सपरिषद् गवर्नर जनरलको यह अधिकार प्रदान किया है कि वह आवश्यक होनेपर पेशी कटौतियोंको रद कर सकता है।

'बजट' तैयार करनेवालोंपर ही उसका कोई नियन्त्रण है। उसको न तो राजस्व वसूल करनेका अधिकार है और न उसे व्यय करनेका। अतः हम पूछना चाहते हैं कि तब ऐसे बजटको स्वीकार करना और उसे स्वीकृत करनेके भागीदार बनना किस सिद्धान्तके अनुसार हमारा कर्त्तव्य ठहरता है? हमारा मत है कि जबतक यह दुर्व्यवस्था बदली नहीं जाती तबतक सभी विधान मण्डलोंमें ऐसे 'बजटों' को अस्वीकृत करानेकी कोशिश करना स्पष्ट ही हमारा एक कर्त्तव्य हो जाता है। निःसन्देह देशके अनेक आत्मसम्मानी व्यक्ति हमारे इस मतका समर्थन करते हैं।

(२) हम नौकरशाही द्वारा अपनी शक्तिको दृढ़ बनानेके लिए पेश किये गये सभी वैधानिक प्रस्तावोंको अस्वीकृत करानेके अपने प्रयत्न जारी रखेंगे। हम मान सकते हैं कि ऐसे चन्द विधानोंका परिणाम कभी-कभार कुछ अच्छा भी निकल सकता है, पर हमारा स्पष्ट मत है कि नौकरशाहीकी दुर्दमनीय शक्तियोंको और अधिक दृढ़ता प्रदान करनेसे कहीं अच्छा है कि ऐसी छोटी-मोटी सुविधाओंका अस्थायी तौरपर त्याग ही किया जाये।

(३) हम राष्ट्रीय जीवनके स्वस्थ विकासके लिए आवश्यक सभी प्रस्तावों, विधानों और विधेयकोंको पेश करने और उनके फलस्वरूप नौकरशाहीको विस्थापित करनेके अपने प्रयत्न जारी रखेंगे। महात्मा गांधीने अपने वक्तव्यमें जो सुझाव रखा है, हम उसे हृदयसे स्वीकार करते हैं और हमारा खयाल है कि उन्होंने कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमके समर्थनमें जिन प्रस्तावोंका उल्लेख किया है, स्वराज्यवादीदलको उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। हम आत्मनिर्भरता और नौकरशाही द्वारा खड़ी की गई बाधाओंके प्रतिरोधके जिस सिद्धान्तपर अबतक अमल करते रहे हैं, उसका तकाजा है कि कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको अपना लिया जाये, और यदि कांग्रेसका रचनात्मक कार्य असहयोग-सिद्धान्तके अनुरूप है तो हमारे ये प्रस्ताव भी, हालांकि ये विधान सभाओंमें रचनात्मक कार्यकी रूपरेखा निश्चित करते हैं, उसी तरह उसके उतने ही अनुरूप हैं।

(४) हम सभी शोषणकारी कार्योंमें बाधा डालकर जनताके धनका भारतसे बाहर जाना बन्द करनेके इसी सिद्धान्तपर आधारित एक सुनिश्चित आर्थिक नीतिका अनुसरण करते रहेंगे।

इस नीतिको कारगर बनानेके लिए हमें केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओंके सदस्योंको निर्वाचनके आधारपर सुलभ हर पदको ग्रहण करके उसपर काम करना चाहिए। हमारी राय यह है कि हमें निर्वाचनके आधारपर सुलभ सभी पदोंपर ही नहीं बल्कि जहाँ कहीं इस महत्त्वपूर्ण समस्याकी ओर अपने दलके सदस्योंका ध्यान आकर्षित करना सम्भव हो वहाँ प्रत्येक समितिमें भी शामिल होकर काम करना चाहिए। अपने दलके सदस्योंसे हमारा अनुरोध है कि वे जितनी जल्दी हो सके इस सम्बन्धमें निर्णय दे दें।

विधान सभाओंके बाहर हमारी नीति यह रहेगी:

हम सबसे पहले तो महात्मा गांधीके रचनात्मक कार्यक्रमका हार्दिक समर्थन करेंगे और कांग्रेसके जरिए उस कार्यक्रमपर दोनों दल मिलकर अमल करेंगे। हमारी

यह निश्चित राय है कि सार्वजनिक रूपसे रचनात्मक कार्यकी पृष्ठभूमि न रहनेसे कौंसिलोंके अन्दरका हमारा काम भी इतना प्रभावशाली सिद्ध नहीं होगा। हमें अपने कामके अनुमोदन और उसके समर्थनके लिए विधान सभाओंमें नहीं उनसे बाहर जनताका मुँह जोहना चाहिए; जनताके समर्थनके बिना हम कौंसिलों सम्बन्धी अपनी नीतिपर भी कारगर ढंगसे अमल नहीं कर सकेंगे। हमारी रायमें यह बिलकुल सच है कि रचनात्मक कार्यको विधान सभाओंके भीतर और बाहर दोनों ही ओरसे कार्यका पारस्परिक समर्थन मिलना चाहिए तभी उस समर्थनमें वह शक्ति पैदा होगी जिसके बलपर हम चलना चाहते हैं। हम इस सिलसिलेमें महात्मा गांधीके सविनय अवज्ञा सम्बन्धी सुझावको बिना किसी संकोचके स्वीकार करते हैं। हम उनको विश्वास दिला सकते हैं कि जैसे ही हम देखेंगे कि सिवाय सविनय अवज्ञाके नौकरशाहीकी स्वार्थपूर्ण हठधर्मीका और कोई इलाज नहीं रह गया है उसी क्षण हम विधान सभाओंसे अलग हो जायेंगे और यदि उस समयतक देश सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नहीं हो पायेगा तो हम इसके लिए देशको तैयार करनेमें उनका पूरा-पूरा हाथ बँटायेंगे। तब हम बिना किसी शर्तके उनका मार्गदर्शन स्वीकार कर लेंगे और उनके झण्डेके नीचे आकर कांग्रेस संगठनके जरिए काम करने लगेंगे जिससे कि हम सम्मिलित रूपसे सविनय अवज्ञा आन्दोलनको एक ठोस आधारपर खड़ा कर सकें।

दूसरी बात यह कि हमें देश-भरके मजदूर और किसान-संगठनोंकी सहायता करके कांग्रेसके कामको और अधिक बल पहुँचाना चाहिए। मजदूर समस्या तो वैसे हर देशमें हमेशा ही एक काफी कठिन समस्या रही है; परन्तु हमारे देशमें कठिनाइयाँ और भी ज्यादा हैं। एक ओर तो हमें संगठनका कोई ऐसा तरीका निकालना चाहिए जिसके जरिए हम पूंजीपतियों और भूस्वामियों द्वारा होनेवाले मजदूरोंके शोषणको बन्द कर सकें; दूसरी ओर हमें इस बातकी भी सतर्कता रखनी चाहिए कि ऐसे संगठन बेहिसाब और अनुचित माँगें सामने रखकर कहीं खुद ही उत्पीड़नके साधन न बन बैठें। मजदूरोंका संरक्षण तो किया ही जाना चाहिए, लेकिन औद्योगिक उपक्रमोंका संरक्षण भी जरूरी है। हमारे संगठनको शोषणके विरुद्ध दोनों ही को संरक्षण देना चाहिए और 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' को इस ढंगसे संगठित किया जाना चाहिए कि वह इस उपयोगी लक्ष्यका निर्वाह कर सके। हमारा निश्चित मत है कि दूरदर्शितासे काम लिया जाये तो इन दोनोंके और देशकी आम जनताके भी वास्तविक हित एक ही हैं।

हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि हमें महात्मा गांधीकी रायके साथ-ही-साथ अपने विचार भी देशके सामने प्रस्तुत करनेका यह अवसर मिला; हमें भरोसा है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके इन दोनो दलोंके बीच कुछ मतभेदोंके बावजूद एक अनिवार्य और मूलभूत एकता मौजूद है। वह चाहे विधान सभाओंके अन्दर हो या उनसे बाहर, दोनों ही दल रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करनेकी आवश्यकता महसूस करते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि महात्मा गांधी और स्वराज्य पार्टीके बीचकी सफल मैत्रीका बीज इसी तथ्यमें निहित है। हमारे ये प्रयत्न किसी समान दिशा-

में किये जायें या विभिन्न दिशाओंमें, पर नौकरशाहीको करारा जवाब हमारे सम्मिलित प्रयत्नोंसे ही मिलेगा — वह नौकरशाही जो भारतीय जनताके अधिकारों और उनकी स्वतन्त्रताको मान्यता नहीं देना चाहती। हम जोर देकर स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि एक ही लक्ष्यको सामने रखकर एक या अलग-अलग क्षेत्रोंमें काम करनेका हमारा यह संकल्प समूचे भारत देशका संकल्प है कि हम स्वराज्यके संघर्षको सफल बनाकर ही दम लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

वायस ऑफ फ्रीडम

परिशिष्ट ३

डा० भगवानदासका पत्र

बनारस
५ जून, १९२४

सम्पादक
'यंग इंडिया'
प्रिय महोदय,

लाखों अन्य पाठकोंकी भाँति, मैंने भी 'यंग इंडिया' के २९-५-१९२४ के अंकमें "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार" शीर्षक लेखमें किये गये आपके गुरु-गम्भीर तर्कोंको अत्यन्त सावधानीके साथ और पूरे ध्यानसे पढ़ लिया है। उसमें अनेक सुविदित सचाइयों (जिनको जनताने अभीतक उतनी गहराईसे नहीं समझा था) को सुबोध, सहज और सुन्दर ढंगसे स्पष्टवादिताके साथ प्रस्तुत किया गया है। अब आपकी अत्यन्त ही विश्वसनीय सत्यनिष्ठासे प्रमाणित हो जानेपर इन सचाइयोंको (अनुवाद होनेपर) लाखों लोग इनको पूरी गहराईके साथ समझ लेंगे, जो वे अबतक नहीं कर पाये थे। पर मुझे लगता है कि इस समस्याका निदान अधिक गहराईसे करने और इसके उपचारके लिए अधिक उग्र किस्मका नुस्खा तलाश करनेकी जरूरत है। मैं इसीलिए पादटिप्पणीमें कही गई आपकी बातके मुताबिक आपकी कुछ उक्तियोंके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न उठा रहा हूँ। आशा है कि आप इनका और अधिक विशद निरूपण करेंगे।

(१) आपने पृष्ठ १७६[1] पर कहा है: "मेरे निजी अनुभवसे भी इस मतकी पुष्टि होती है कि मुसलमान आम तौरपर धींगाधींगी करनेवाला और हिन्दू दब्बू होता है।" क्या यह बात हमेशा और हर जगह आम तौरपर लागू होती है? और यदि यह बात हमेशा ही या कभी-कभी ही ऐसी है तो क्यों है?

१. यहाँ यंग इंडियाकी पृष्ठ संख्याका हवाला दिया गया है।

इन प्रश्नोंका ठीक-ठीक और पूरा उत्तर पाये बिना, हिन्दुओंको हिंसात्मक या अहिंसात्मक ढंगसे वीर बननेकी सलाह-भर देनेसे कोई लाभ नहीं होगा।

क्या भारतमें रहनेवाले मुसलमान और हिन्दू दो अलग-अलग जातियों, दो अलग-अलग नस्लोंके लोग हैं? बिलकुल निश्चित तौरपर कहा जा सकता है—नहीं। ९९ प्रतिशत मुसलमानोंके पूर्वज या तो हिन्दू थे या उन्होंने स्वयं इधर हाल ही में धर्म-परिवर्तन किया है।

क्या हिन्दू सैनिकों, सिखों, गुरखाओं, डोगराओं, राजपूतों, जाटों, बैसवारियों, मराठों, अहीरों, नायरों, तैलंगों और असैनिक किस्मके, स्ट्रेचर ढोनेवाले कहारोंने भी, मुसलमान सैनिकों, ईसाई सैनिकों या यूरोपीय सैनिकोंसे कोई कम शौर्य दिखाया है? निश्चय ही, नहीं।

तब हम आपके इस कथनका क्या अर्थ लगायें कि "ज्यादातर झगड़ोंमें हिन्दू लोग ही पिटते हैं।" यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच होनेवाले केवल धार्मिक दंगों या भारतमें होनेवाले व्यक्तिगत झगड़ोंको ही लें तो सिर्फ उस परिस्थितिमें हम आपके कथनको अक्षरशः सही मान सकते हैं। क्या यही बात नहीं है? आपके अगले वाक्यसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है—"रेलगाड़ियोंमें, रास्तोंपर तथा ऐसे झगड़ोंका निपटारा करनेके जो मौके मिले हैं उनमें मैंने यही देखा है।" अब प्रश्न उठता है—ऐसा क्यों हुआ कि दोनोंमें जातिगत या वंशगत कोई अन्तर न होते हुए एकमें जन्मजात शौर्य (या आततायीपन, जो एक बिलकुल दूसरी ही चीज है) और दूसरोंमें जन्मजात बुजदिली न होते हुए भी, उन्होंने इन छोटे-मोटे झगड़ों और उद्दण्डतापूर्ण प्रदर्शनोंमें बुजदिली दिखाई जबकि मुसलमानोंने शौर्य या आततायीपन दिखाया?

क्या इन दोनों धर्मोंकी वर्तमान स्थितिमें ही कोई ऐसी बात है जो हिन्दुओं को इतना बुजदिल और मुसलमानोंको बहादुर बना देती है? क्या अलग चौका खींचकर रहनेकी विडम्बनापूर्ण मनोवृत्ति, ऊँची और नीची जातियोंकी आनुवंशिकताकी धारणासे उत्पन्न आत्मसेवी स्वार्थपरता या दम्भ और दिखावटी धर्मनिष्ठाका पाखण्ड इनका मूल हो सकता है। क्या यह हो सकता है कि इस पाखण्डने ही हिन्दुओंकी पारस्परिक सहानुभूतिकी भावनाको नष्ट कर दिया हो और ऐसे झगड़ोमें एक हिन्दू दूसरे हिन्दूकी मददसे हाथ खींच लेता है और इस प्रकार हिन्दू, असहायताके भानके कारण बुजदिल बन जाते हैं, और मुसलमानका लोकतान्त्रिक धर्म पारस्परिक सहायता-को सुनिश्चित बनाकर उसे बहादुर बना देता है?

तथाकथित दलित वर्गोंको ही अछूत नहीं माना जाता, हिन्दुओंकी तमाम जातियाँ और उपजातियाँ और उनकी उपजातियाँ किसी-न-किसी तरह एक दूसरीको कम या ज्यादा अछूत मानती हैं। एक दूसरेके खिलाफ इस तरह चौकाबन्दी और इसीलिए उपेक्षा और अविश्वासको जन्म देनेवाला कोई भी धर्म बुजदिलोंको ही पैदा कर सकता है और ऐसे बुजदिलोंका भाग्य यही हो सकता है कि 'बहादुर' लोग उनको हड़प कर जायें क्योंकि बुजदिलोंको देखकर लालच पैदा होगा ही और दूसरे लोग बहादुर बनने ही लगेंगे। आज इस्लाम भी पतनावस्थामें है, पर पतनावस्थामें पहुँचा हुआ भी वह

आजके हिन्दू धर्मसे स्पष्ट ही कुछ मामलोंमें बेहतर है। यदि इस्लाममें मारकाट कुछ कम होती और उसका दार्शनिक पक्ष अधिक सबल होता तो वह हिन्दू धर्मके सभी अधिक उन्नत स्वरूपोंके समान ही अच्छा होता और निचले किस्मके हिन्दू धर्मके सभी स्वरूपोंसे तो निश्चित रूपसे अच्छा ही होता।

(२) आपने पृष्ठ १८३ पर कहा है: "अगर हिन्दू अपना घर सँभाल लें तो मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि इस्लाममें भी उसकी उदार परम्पराओंके योग्य प्रतिक्रिया अवश्य दिखाई देगी। हिन्दुओंको . . . भीरुता या बुजदिली छोड़ देनी चाहिए।" कृपया हिन्दुओंको जरा अधिक स्पष्ट शब्दोंमें बतलाइए कि वे अपने अन्दरकी बुराइयाँ कैसे दूर करें, बुजदिलीको कैसे छोड़ें। क्या हिन्दू धर्मके व्यावहारिक स्वरूपमें, उसके मर्ममें व्याप्त व्याधि ही आज उसके पतनका मूल कारण नहीं है; यह चौकाबन्दीकी मनोवृत्ति ही उसकी मूल व्याधि नहीं है? बनारसके कई पण्डितोंने जबरन मुसलमान बनाये गये मलाबारके हिन्दुओंको फिरसे हिन्दू बनानेकी मंजूरी देनेकी व्यवस्थापर हस्ताक्षर करनेसे इनकार कर दिया था। उन लोगोंको इस्लाम-की छूत लग गई थी, और इसलिए उनको सदाके लिए हिन्दू धर्मसे अलग मान लिया गया था।

यदि मैं पड़ोसीके नौकरको अपने यहाँ बुलाना चाहूँ, और अगर मेरे छू देने-भरसे वह मेरे पड़ोसीके बिलकुल कामका न रह जाता हो, और इस प्रकार मुझे मिल सकता हो तो मैं उसे अवश्य ही छू दूंगा। उसे छू देनेका मुझे बड़ा प्रबल प्रलोभन होगा! हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जैसे झगड़े-फसाद होते हैं, वैसे ईसाइयों और मुसलमानोंके बीच क्यों नहीं होते? सच तो यह है कि ईसाई लोग मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों ही को ईसाई बना लेते हैं, फिर भी मुसलमान उनसे इतने नाराज नहीं होते जितने कि वे हिन्दुओंके शुद्धि और संगठन सम्बन्धी कार्योंपर नाराज होते हैं। ऐसा क्यों? आपने पृष्ठ १८० पर बिलकुल ठीक कहा है कि असलमें शुद्धि और संगठनका तरीका — उनका अपना प्रदर्शन, गाजे-बाजे और ढोल पीटना इत्यादि ही झगड़ेकी जड़ हैं। यदि हिन्दुओंमें, विशेषकर हिन्दू पुजारियोंमें थोड़ी ज्यादा समझदारी हो, ईमानदारी और सहजबुद्धि हो और वे पाखण्डपूर्ण दिखावे और आत्मघाती धूर्तताका सहारा थोड़ा कम लें तो वे केवल इतना कह सकते हैं कि जो भी चाहे अपने-आपको हिन्दू कह सकता है और मिलते-जुलते खानपान, स्वभाव और तौर-तरीकोंवाले किसी भी हिन्दूके साथ बैठकर भोजन कर सकता है। फिर कोई झगड़ा ही नहीं रह जायेगा। यदि वे मात्र स्पर्शसे दूषित होनेवाली पवित्रताके इस दम्भको एलानिया छोड़ दें तो फिर जैसे-तैसे हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन करानेके लिए मुसल-मानोंको न तो कोई प्रेरणा रह जायेगी और न कोई आवेश ही (और देखा जाये तो यह दम्भ अपने-आपमें बहुत ही अशक्त और कायरतापूर्ण है, क्योंकि वह अपने स्पर्शसे दूसरोंको शुद्ध करनेकी बजाय दूसरोंके स्पर्श-मात्रसे अशुद्ध और नष्ट हो जाता है)। इस दम्भका त्याग कर देनेपर मुसलमान और हिन्दू लोग फिरसे आपसमें मुक्त और मैत्रीपूर्ण मानवोंकी तरह बरताव करने लगेंगे। जब वे यह समझ लेंगे या कमसे-कम महसूस कर लेंगे कि सभी लोग समान हैं। वे सबसे पहले इन्सान और

बादमें हिन्दू या मुसलमान है। मनुष्योंके रूपमें वे समान हैं और उनको अपनी मर्जीके मुताबिक हिन्दू या मुसलमान या ईसाई या अन्य किसी धर्मको अपनाने या छोड़नेकी स्वतन्त्रता है, ठीक उसी तरह जैसे व्यक्तिको अपने कपड़े चुननेकी स्वतन्त्रता रहती है। और चूंकि ऊपर एक ही ईश्वर है इसलिए उनको एक-दूसरेके साथ भाइयोंकी तरह नेकी और ईमानदारीका बरताव करना जरूरी है। इतना महसूस कर लेनेपर वे जरा-जरा सी बातपर एक-दूसरेके सिर फोड़नेकी बात नहीं सोचेंगे।

हिन्दुओंके पास ऐसा कोई समुचित कारण नहीं है कि वे ऐसा एलान न करें। शुद्ध विचारके साथ, खानपान और विवाह 'पवित्रता' के मुख्य तत्त्व माने जाते हैं, ये सचमुच है भी। मद्यपानके मामलेमें इस्लाम हिन्दू धर्मकी अपेक्षा अधिक 'शुद्ध' है, क्योंकि सैद्धान्तिक रूपसे तो इस्लाम हर नशीले पेयकी मनाही करता है, जबकि हिन्दू धर्म हालांकि उसकी निन्दा करता है, पर इतनी सख्तीसे मनाही नहीं करता। आहारके मामलेमें दोनों ही में मांस, मछली और मुर्गा भक्ष्य हैं; इस्लाम गायके मांसपर आग्रह करता है; पर सूअरके मांसके खिलाफ है, हिन्दू धर्ममें सूअरके मांसकी अनुमति है; पर गायका मांस अभक्ष्य है। ईसाई धर्मके लोग दोनोंका मांस खाते हैं और मद्यपान भी करते हैं। विवाहके मामलेमें, हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों ही, सैद्धान्तिक रूपसे और एक हदतक व्यावहारिक रूपसे भी बहुपत्नी-प्रथाकी अनुमति देते हैं। तब फिर दोनोंमें यह हद दर्जेका असहयोग, यह 'स्पर्श-मात्रसे धर्म नष्ट होने या कमसे-कम स्नानकी आवश्यकता' महसूस करनेकी भावना क्यों?

इन विषयोंके सम्बन्धमें आप समय-समयपर, बिलकुल खरी और सीधी-सादी भाषामें बार-बार अपने विचार व्यक्त करते रहें, यह हिन्दुओंके लिए बड़ा ही जरूरी जान पड़ता है।

(३) आपने पृष्ठ १७७ पर कहा है: "बीज हमने बोये थे; फसल गुण्डोंने काटी।" कैसे? हमने किस तरह और क्यों बीज बोये? दोनों सम्प्रदायोंके प्रतिष्ठित, सम्माननीय लोग आपसमें पाखण्डपूर्ण व्यवहार क्यों करते जा रहे हैं? वे सच्चे हृदयसे शान्तिके लिए प्रयत्न क्यों नहीं करते? इसका कारण दोनोंमें अन्तर्निहित, सहज दुःप्रवृत्ति-मात्र है या फिर अतीतमें 'दोनोंको एक-दूसरेको और दोनोंके समान उद्देश्योंको' निकटसे समझनेके लिए प्रेरणा देनेका समुचित प्रयत्न नहीं किया गया है?

(४) आपने पृष्ठ १७७ पर कहा है: "तनावका दूसरा सबल कारण यह है कि हमारे अच्छेसे-अच्छे लोगोंके भीतर भी अविश्वासकी भावना बढ़ती जा रही है।" अविश्वास है ही क्यों? और वह बढ़ता क्यों जा रहा है? क्या इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्वराज्य और धर्म शब्दोंका स्पष्ट अर्थ नहीं समझा गया है; कि इन दो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण और परस्पर सम्बद्ध शब्दोंके ठीक-ठीक अर्थके बारेमें परस्पर सहमति नहीं है; कि इस अत्यन्त ही मार्मिक महत्त्वके विषयके बारेमें भी सभी कार्यकर्ताओंको सहमत करानेका कोई प्रयास नहीं किया गया है — हालांकि सभी कार्यकर्त्तागण यही नारा मुंहसे दोहराते-भर जाते हैं कि हम सब स्वराज्य चाहते हैं, हम सब ईश्वरको पाना चाहते हैं?

(५) आपने पृष्ठ १७९ पर लिखा है: "हम सब एक-दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर . . . काम करें।" अनुकूल बातोंका आप क्या अर्थ लगाते है? क्या दो व्यक्तियोंके बीच स्वभाव, रुचि, आदतों इत्यादिके आधारपर व्यक्तिगत मैत्री स्थापित करनेके उद्देश्यसे सम्पर्क; या दोनों सम्प्रदायोंके आधारपर सामाजिक सुविधाओंके लिए सम्पर्क; या राजनीतिक दलोंके बीच राजनीतिक गठबंधनके लिए सम्पर्क; या आप धर्मोंके बीच वास्तवमें एक गहरी, स्थायी एकता और संघबद्धताके लिए सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं?

(६) पृष्ठ १८२ पर आपने विभिन्न राजनीतिक मामलोंके निबटारेके लिए "हकीम अजमल खाँ के हाथमें कलम सौंप देने" की बात कही है। आपने सिर्फ उन्हींके नामका उल्लेख क्यों किया? क्या इसका कारण यह नहीं कि आप जानते हैं, या कमसे-कम महसूस करते हैं (जैसा कि कुछ अन्य लोगोंने भी महसूस किया है) कि हकीम साहब इन्सान पहले और मुसलमान बादमें हैं, कि वे एक भले, न्यायप्रिय और उदारचरित मनुष्य हैं और (शायद इसीलिए कि वे) धर्मके मामलेमें कट्टरपंथी है? भगवान् न करे, पर मान लीजिए कि वे अशक्त हो जायें तो क्या आप उनके स्थानपर अन्य कई नाम सुझा सकते है? और क्या इन राजनीतिक समस्याओंके निबटारेका बस एक यही, इतने जोखिमका रास्ता रह गया है कि एक ही मनुष्यको सारी जिम्मेदारी सौंप दी जाये, वह भी एक ऐसे मनुष्यके हाथमें जिसकी सेहत ठीक नहीं रहती, भले ही दोनों सम्प्रदायोंके लोगोंकी नजरोंमें उसका दर्जा ऐन आपके बाद ही हो? क्या इसका कोई दूसरा अधिक निरापद और समुचित मार्ग नहीं रह गया है? क्या ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी एक कोई संस्था किसी भी तरह खड़ी नहीं की जा सकती और उसके सदस्योंकी संख्याको लोक संसदके सदस्यों, विधान सभाओंके सदस्यों, पंच अदालतों और सर्वोच्च अखिल भारतीय पंचायतके सदस्योंमें से लोगोंका चुनाव करके एक सुसंगत स्तरपर कायम नहीं रखा जा सकता?

(७) पृष्ठ १८२ पर आप कहते हैं: "हिन्दू-मुस्लिम एकताका मतलब ही स्वराज्य है। जबतक इस अभागे देशमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच हार्दिक और स्थायी एकता कायम नहीं होती तबतक मुझे तो कोई रास्ता दिखाई नहीं देता।" और हरएक आदमी यही बात कहता है। परन्तु हम ऐसी एकता स्थापित कैसे करेंगे? क्या दोनों सम्प्रदायोंके लोगोंसे बार-बार यही कहकर कि एक हो जाओ — एक हो जाओ; आपसमें लड़ो मत; तुम गोवधपर और तुम गाजे-बाजेपर आपत्ति मत करो? ऐसा क्यों है कि सोते-जागते ऐसी ताकीदोंके बाद भी लोग एक नहीं होना चाहते, आपसमें लड़ते रहते हैं और एक-दूसरेके कामोंपर आपत्ति करते रहते हैं और सचमुच यह प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती जा रही है? क्या आप इस बातसे सहमत नहीं कि सम्पर्क स्थापित करनेके मुद्दों या कहिए कि सभी धर्मोंके समान तत्त्वोंको सार्वजनिक तौरपर अधिक स्पष्ट शब्दोंमें अधिक प्रयत्नपूर्वक बार-बार बतलाना कहीं ज्यादा कारगर साबित होगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

परिशिष्ट ४

पं० मोतीलाल नेहरूका पत्र

(क)

"सुनीता"
रिज रोड
मलाबार हिल
२५ जुलाई, १९२४

प्रिय महात्माजी,

मैंने मौलाना मुहम्मद अलीको हाल ही में उनके इलाहाबाद आनेपर लिखित उत्तर पानेकी दृष्टिसे एक प्रश्न-सूची दी थी। उसकी एक प्रति मैं पत्रके साथ भेज रहा हूँ। मौलाना हमारे घरपर ही ठहरे थे और प्रश्न-सूची दिये जानेके बाद वे पूरा दिन इलाहाबादमें रुके थे। जाते समय मैंने उनको प्रश्नोंकी याद दिलाई थी। इसपर उन्होंने इतना ही कहा कि कुछ कुशंकाएँ पैदा हो गई हैं। उन्होंने अधिक जानकारीके लिए मुझे मौलवी रफी अहमदसे मिलनेको कहा। मौलवी साहब भी वहीं मौजूद थे। उन्होंने उसी वक्त कहा कि उनको कोई जानकारी नहीं। लेकिन मौलानाने मजाकिया लहजेमें कुछ कहकर बात टाल दी और चले गये। इसके बाद मैंने जवाहरलालसे पूछा कि क्या उसे कुछ अन्दाज है कि मौलाना साहब जवाब देंगे भी या नहीं। उसने कहा कि उसे कुछ अन्दाज नहीं है। यह ठीक है कि मौलाना साहबको इन या अन्य किसी भी प्रश्नका उत्तर देनेपर कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन इन प्रश्नोंके स्पष्ट उत्तर न मिलनेपर मुझे अपने ही निष्कर्ष निकालनेकी छूट है, फिर मेरे निष्कर्ष भले ही सही न हों।

मैं आपको बतला दूं कि तीसरे और चौथे प्रश्नमें जिन तथ्योंका उल्लेख है मैंने विश्वस्त प्रमाणके आधारपर उनके बिलकुल सही होनेकी तसल्ली कर ली है। इनके सम्बन्धमें आपके विचार जाननेकी भी मेरी बड़ी इच्छा है। यदि शेष प्रश्नोंके बारेमें भी आपके विचार मुझे मालूम हो जायें तो मुझे आगेकी कार्रवाईके बारेमें फैसला करनेमें बड़ी मदद मिलेगी।

मैं बम्बईमें चार या पांच दिन रुकूँगा। कृपया लिखें कि आप कबतक बम्बई पहुँच रहे हैं।

सादर,

हृदयसे आपका,
मोतीलाल नेहरू

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष, मौलाना मुहम्मद अलीको पण्डित मोतीलाल नेहरू द्वारा उत्तर पानेकी दृष्टिसे दिये गये प्रश्न :[1]

प्रश्न :

१. कांग्रेस द्वारा दिल्ली और कोकोनाडामें पास किये गये प्रस्तावोंको देखते हुए क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अहमदाबादकी पिछली बैठकमें पास किये प्रस्तावोंका आप यह अर्थ लगाते हैं कि अपरिवर्तनवादी लोग कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध देशमें सक्रिय रूपसे प्रचार कर सकते हैं?

२. यदि हाँ, तो क्या आप मानते हैं कि स्वराज्यवादी भी इस प्रचारकी काटके लिए प्रचार करनेको स्वतन्त्र है?

३. क्या यह सच है कि आपने और मौलाना शौकत अलीने कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध सक्रिय रूपसे प्रचार शुरू भी कर दिया है, और आपने लखनऊमें अपने प्रभावका इस्तेमाल करते हुए विधान परिषदोंके स्वराज्यवादी सदस्योंको परिषदोंसे बाहर आ जानेके लिए राजी करनेकी कोशिश भी की थी?

४. क्या यह सच है कि आपने, मौलाना शौकत अलीने या दोनोंने ही स्वराज्यवादियों और अन्य कांग्रेसियोंके सामने समस्याको इस रूपमें पेश किया था कि मुख्य प्रश्न तो यह है कि वे महात्मा गांधीको नेता स्वीकार करते हैं या पण्डित मोतीलाल नेहरूको?

५. क्या आप कांग्रेसके आगामी अधिवेशनमें सदस्योंका बहुमत निम्नलिखित बातोंके पक्षमें लानेके लिए प्रयत्नशील हैं:

(१) आम तौरपर ऐसे हर प्रस्तावके पक्षमें जो महात्मा गांधी कांग्रेसके सामने पेश करें?

(२) और खास तौरपर

(क) कौंसिल प्रवेशके बारेमें दिल्ली और कोकोनाडा अधिवेशनों द्वारा स्वीकृत समझौतेके प्रस्तावोंको रद करानेके पक्षमें

(ख) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अहमदाबादमें पास किये गये हाथ-कताई सम्बन्धी प्रस्तावमें सम्मिलित दण्डकी व्यवस्थाको पुनः लागू करने; और

(ग) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और विभिन्न प्रान्तीय, जिला तथा तहसील कांग्रेस कमेटियोंकी सदस्यतासे सभी स्वराज्यवादियोंको अलग करनेके पक्षमें।

६. यदि उपर्युक्त प्रश्नोंके किसी भी भागका उत्तर आप 'हाँ' में देते हैं तो क्या आप इस बातसे सहमत हैं कि स्वराज्यवादियोंको इसकी काटके लिए प्रचार करनेकी पूरी छूट है?

१. गांधीजीने प्रश्न-सूचीके प्रश्न १, २, ५, ६ और ७ वें प्रश्नोंके उत्तर दिये थे। देखिए "पत्र: मोतीलाल नेहरूको", २६-७-१९२४।

७. (क) क्या आप इस बातसे सहमत हैं कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और विभिन्न प्रान्तीय, जिला तथा तहसील कमेटियाँ हालाँकि मोटे तौरपर कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितियाँ मानी जाती है, पर वे वास्तवमें विचार-विमर्श करनेवाली ऐसी समितियाँ ही है जिनमें सैकड़ों सदस्य होते है और फिर प्रत्येक समितिकी एक अपनी परिषद् होती है, जो ठीक कार्यकारिणी समितिके रूपमें कार्य करती है?

(ख) यदि हाँ, तो क्या आपका मंशा स्वराज्यवादियोंको केवल केन्द्रीय और प्रान्तीय संगठनोंकी शुद्ध कार्यकारिणी समितियोंसे अलग करनेका ही है या ऊपर बताई गई ज्यादा बड़ी विमर्शकारी समितियोंसे भी उनको अलग किया जायेगा?

मौलाना मुहम्मद अलीको इलाहाबादमें १८-७-१९२४ को दस्ती दिया गया।

मो० ला० ने०

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००२) की फोटो-नकलसे।

(ख)

"सुनीता"
रिज रोड
मलाबार हिल
२८ जुलाई, १९२४

प्रिय महात्माजी,

आपका पत्र मिला। मौलाना मुहम्मद अलीके सामने रखे गये प्रश्नोंमें से कुछ प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिए धन्यवाद।

प्रश्न-सूचीकी एक प्रतिके साथ अपना पिछला पत्र भेज चुकनेके बाद, मैंने समाचारपत्रोंमें देखा कि आप सिर-दर्द और बुखारसे जब-तब पीड़ित रहते हैं और आपका वजन भी काफी घट गया है। ऐसी हालतमें मैंने प्रश्न भेजकर आपको परेशान किया, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। यदि पत्र लिखनेसे पहले मैंने ऐसे समाचार पढ़े होते तो मैं कदापि वैसा न करता।

मैं अब आपके स्वास्थ्यके बारेमें काफी चिन्तित हूँ। ऐसी हालतमें सबसे पहला काम यही हो जाता है कि आप तुरन्त सारा काम बन्द कर दें और पूर्णतया विश्राम करें। परन्तु दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि आप ऐसा नहीं करेंगे। सभी महान् व्यक्तियोंकी अपनी कुछ कमजोरियाँ होती हैं और कभी-कभी वे कमजोरियाँ साधारण व्यक्तियोंमें पाई जानेवाली कमजोरियोंकी अपेक्षा बड़ी मात्रामें होती हैं। अपनी सेहतकी ओर ध्यान न देनेकी कमजोरी ऐसे लोगोंमें विशेष तौरपर पाई जाती है। आप मानते हैं कि आपने जिस कामका बीड़ा उठाया है उसे सम्पन्न करने लायक शक्ति आपके शरीरमें नहीं है, फिर भी आप सिर्फ वही एक काम नहीं करेंगे जिसे कि हर आदमी

और खुद आप भी जानते-समझते हैं कि आपके स्वास्थ्य-लाभके लिए अत्यावश्यक है। इसे मैं राष्ट्रीय विपत्तिके अतिरिक्त अन्य कोई संज्ञा नहीं दे सकता।

मैं आपके साथ पूरी स्पष्टवादितासे काम लूँगा, चाहे आप नाराज ही क्यों न हो जायें। मैं आपसे बिलकुल खरी बात कह देना चाहता हूँ कि आप इस समय जो काम कर रहे हैं वह अभी कुछ दिनोंतक रुका रह सकता है और यदि वह बिलकुल किया ही न जाये और यदि उसके बदले एक या दो महीनेमें भी हमें अपना गांधी पूर्णतः स्वस्थ होकर मिल जाये तो राष्ट्रकी जरा भी हानि नहीं होगी। मेरा बस चले तो मैं कुछ समयके लिए भारतसे आपका सारा सम्पर्क तुड़वा दूं, बिलकुल पूरी तरहसे, और आपको ऐसी लम्बी समुद्री-यात्रापर भेज दूं जहाँ आपको छः सप्ताहतक कहीं भी भूमिका दर्शन ही न होने पाये। आप कमसे-कम लंकाकी यात्रा तो कर ही सकते हैं। वहाँ आपका सारा वातावरण बदल जायेगा। आपकी अनुपस्थितिमें, आपकी सारी चिट्ठी-पत्रियाँ आश्रममें ही रख ली जायें। लेकिन इस लहजेमें लिखते जानेसे कोई लाभ नहीं। मुझे तो लगता है कि मैं आपसे अपनी बात मनवा ही नहीं सकता और हम सिवाय इसके कुछ कर ही नहीं सकते कि हाथपर-हाथ धरकर देखते रहें कि भविष्य क्या दिखाता-दिखलाता है। लेकिन मैंने एक बात अपने तईं तय कर ली है, वह यह कि आप इस समय जो आत्मघाती काम कर रहे हैं मैं उसमें सहभागी नहीं बनूंगा, जबतक आप काफी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर लेते तबतक और अधिक पत्र-व्यवहार या बातचीत करके आपकी परेशानी नहीं बढ़ाऊँगा, भले ही काम कितना ही फौरी क्यों न हो।

आपका पोस्टकार्ड[1] मुझे शायद इलाहाबाद पहुँचनेपर मिलेगा। मैं परसों रात वापस जा रहा हूँ। यदि मैं समझता कि मेरे मिलनेका कुछ उपयोग होगा तो मैं एक दिनके लिए साबरमती भी पहुँच जाता। लेकिन मुझे अपनी यात्रासे कोई लाभ नहीं दिखाई देता और इसलिए मैंने उसका विचार छोड़ दिया है। फिर भी मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ। यदि मैं आपसे कहूँ कि आप इलाहाबादसे पाँच मीलकी दूरी-पर गंगातटपर स्थित मेरे एक मित्रकी वाटिकामें आकर चन्द सप्ताह रहें तो क्या आप मुझे पागल करार देंगे? वाटिका पूरी तरहसे मेरे ही हाथमें है। आपके स्वास्थ्य-लाभके लिए समुद्री यात्राका एक यही विकल्प मुझे सूझ रहा है।

हृदयसे आपका,
मोतीलाल नेहरू

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००४) की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं है।

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजात-का केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

साबरमती संग्रहालय — पुस्तकालय तथा संग्रहालय: जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'टाइम्स ऑफ इंडिया': १८८३ से बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक। बादमें दिल्लीसे भी प्रकाशित।

'नवजीवन' (१९१९–१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' (१९१८–१९३२): अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक – मो० क० गांधी; प्रकाशक – मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दी नवजीवन' (१९२१–१९३२): गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित साप्ताहिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी

'गांधीजीकी छत्रछायामें': घनश्याम दास बिड़ला; सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

'नरसिंहरावनी रोजनीशी' (गुजराती): नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया; गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद।

'बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'लाला लाजपतराय – जीवनी': अलगूराय शास्त्री द्वारा सम्पादित; लोकसेवक मण्डल, नई दिल्ली, १९५७।

'वायस ऑफ फ्रीडम' (अंग्रेजी): के० एम० पणिकर तथा ए० प्रसाद द्वारा सम्पादित।

'स्टोरी ऑफ माई लाइफ'; खण्ड २: (अंग्रेजी) मु० रा० जयकर; एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९५९।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

[८ मई, १९२४ से १५ अगस्त, १९२४ तक]

१३ मई : बम्बईसे गांधीजीने बोरसदमें हुई गुजरात राजनीतिक परिषद्के लिए सन्देश भेजा।

१४ मई : बोरसदमें हुई अन्त्यज परिषद्के लिए सन्देश भेजा।

१५ मई : बोरसदमें हुई धाराला परिषद्के लिए सन्देश भेजा।

१६ मई : वाइकोम सत्याग्रह समितिके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की।

१७ मई : वाइकोम सत्याग्रहपर बातचीत जारी रही।

वाइकोम सत्याग्रह और कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे भेंट की।

१८ मई : बम्बईमें बुद्ध जयन्ती समारोहकी अध्यक्षता की।

२० मई : वाइकोम सत्याग्रह समितिके प्रतिनिधियोंसे बातचीत समाप्त।

२२ मई : कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर गांधीजी और स्वराज्य दलके नेताओंने अलग-अलग वक्तव्य दिये।

२८ मई : गांधीजी बम्बईसे अहमदाबादके लिए रवाना हुए।

२९ मई : २६ महीने बाद सत्याग्रह आश्रम वापस लौटे।

'यंग इंडिया' में हिन्दू-मुस्लिम तनाव, तथा इसके कारण और उपचारका पूरा विश्लेषण किया।

३० मई : नागपुरसे प्रकाशित 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे भेंट की।

३१ मई : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।

३ जून : 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिके साथ हुई भेंटमें अहिंसा तथा नागपुरमें हुए साम्प्रदायिक झगड़ोंकी चर्चा की।

५ जून : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे गोपीनाथ साहासे सम्बन्धित बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके प्रस्तावकी चर्चा की।

८ जून : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रम, हिन्दू-मुस्लिम तनाव और अ० भा० कां० कमेटीकी आगामी बैठकसे सम्बन्धित प्रश्नोंके उत्तर दिये।

१० जून : गुजरात विद्यापीठके सत्रारम्भके अवसरपर भाषण दिया।

११ जून : सौराष्ट्र राजपूत परिषद्को सन्देश भेजा।

१९ जून : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें पेश किये जानेवाले चार प्रस्ताव 'यंग इंडिया' में प्रकाशित किये।

२४ जून : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।

२६ जून : 'यंग इंडिया' में अ० भा० कां० कमेटीके सदस्योंके नाम 'खुला पत्र' प्रकाशित किया।

२७ जून: अहमदाबादमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें अपने चार प्रस्तावोंमें से पहला प्रस्ताव पेश किया।

२८ जून: अ० भा० कां० कमेटी की बैठकके दूसरे दिन भाषण दिया।

२९ जून: कां० क० की बैठकमें अपना दूसरा और तीसरा प्रस्ताव पेश किया।

३० जून: अ० भा० कां० कमेटीकी अनौपचारिक बैठकमें भाषण दिया।

१ जुलाई: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त किये।

२ जुलाई: वाइकोमके सत्याग्रहियोंको सन्देश भेजा।

३ जुलाई: 'यंग इंडिया' में कांग्रेस कमेटीकी बैठककी कार्यवाहीका सिंहावलोकन किया।

११ जुलाई: गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाषण दिया।

१३ जुलाई: नागपुरमें साम्प्रदायिक दंगे होनेका समाचार मिला।

१५ जुलाई: दिल्लीमें साम्प्रदायिक दंगे शुरु होनेका समाचार मिला। साबरमतीमें सरोजिनी नायडूसे भेंट की।

१७ जुलाई: गांधीजीने 'यंग इंडिया' मे श्रीश चन्द्र चटर्जी और अन्य लोगों द्वारा जारी की गई 'राष्ट्रसे अपील' का विश्लेषण करते हुए स्वराज्यकी परिभाषापर भी चर्चा की।

३० जुलाई: गांधीजीको मलाबारकी भयंकर विनाशकारी बाढ़का समाचार मिला।

१ अगस्त: अहमदाबादमें गुजरातकी राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षकोंकी परिषद्की अध्यक्षता की।

२ अगस्त: राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्के प्रस्तावोंपर भाषण दिया।

६ अगस्त: एनी बेसेंटकी सार्वजनिक सेवाके ५० वर्ष पूरे होनेपर उन्हें आदरांजलि अर्पित की।

७ अगस्त: गांधीजीने बाढ़ग्रस्त मलाबारमें सहायता कार्य सम्बन्धी अपने दृष्टिकोणके बारेमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे बातचीत की।

८ अगस्त: अहमदाबादके गुजरात महाविद्यालयमें भाषण दिया।

९ अगस्त: अ० भा० कां० कमेटीकी आगामी बैठकके अध्यक्षके चुनावके सम्बन्धमें मोतीलालजीको पत्र लिखा।

१२ अगस्त: हसरत मोहानीकी जेलसे रिहाई।

१४ अगस्त: गांधीजीने 'यंग इंडिया' में अनिवार्य शिक्षाके विरोधमें अपने विचार व्यक्त किये।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

य

र

ल

व

श